मराठों का नवीन इतिहास-2

गोविंद सखाराम सरदेसाई

मराठा सत्ता का प्रसार
[1707 – 1772 ई. तक]

New History of the Marathas, Vol. II
का हिन्दी अनुवाद

तृतीय संशोधित संस्करण 1972

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी
आगरा

मराठों का नवीन इतिहास

[Hindi Edition of New History of the Marathas
by G S Sardesai]

द्वितीय खण्ड

मराठा सत्ता का प्रसार

[१७०७–१७७२ ई०]

मूल लेखक

गोविन्द सखाराम सरदेसाई

['मराठी रियासत' के रचयिता]

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता आगरा-३

[अनुवाद म केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मन्त्रालय द्वारा निर्धारित शब्दावली का प्रयोग किया गया है]

प्रकाशक

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी

अस्पताल रोड, आगरा-३

●

शाखाएँ

चौड़ा रास्ता, जयपुर ● खजूरी बाजार, इन्दौर

तृतीय संशोधित संस्करण १९७२

●

मूल्य पन्द्रह रुपये

शिव आर्ट प्रिण्टर्स, आगरा-२

समर्पण

सेना खास खेल, शमशेर बहादुर, ग्राड कमाडर ऑव दि स्टार आव इण्डिया

बडौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड

[१८७५-१९३९]

की

पुण्य स्मृति मे

जिनके राज्य म मेरा समस्त सेवा काल व्यतीत हुआ और जिन्होंने
मुझ तरुणावस्था में ही इतिहास के सुखद भाग पर
प्रेरित किया।

—गो० स० सरदेसाई

प्रकाशकीय

तृतीय सस्करण के प्रति

महाराष्ट्र मे मराठा इतिहास के महान शोधकर्ता श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई से हमने उनके महत्त्वपूण ऐतिहासिक ग्रन्थ "New History of the Marathas" (तीन खण्डों मे) का हिन्दी अनुवाद करने की आज्ञा मांगी और उन्होने कृपा कर हमारी प्राथना बडे उत्साह एव प्रेम से स्वीकार कर ली।

हम उन्हे उनके जीवनकाल में केवल प्रथम खण्ड (प्रथम सस्करण) ही भेंट कर पाये। वे उसकी साजसज्जा और मुद्रण आदि को देखकर गद्गद् हो उठे थे तथा उन्होंने हमे अपना आशीर्वाद प्रदान किया। द्वितीय खण्ड (प्रथम सस्करण) के मुद्रण काल मे वे ससार से चल बसे! इसी खण्ड का तृतीय सस्करण पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें विश्वास है कि द्वितीय सस्करण की पुनरावृत्ति होने के बावजूद इस सस्करण को पाठकगण भाषा और भाव सम्बन्धी दोषों से पूणतया मुक्त और अधिक लाभदायक पायेंगे।

इस ग्रन्थमाला के तृतीय और अन्तिम खण्ड का अनुवाद हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर चुके हैं। आशा है इन उत्कृष्ट ग्रन्थो के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी में एक बडे अभाव की पूर्ति होगी और साथ ही सुयोग्य विद्वान तथा अधिक काय करने के इच्छुक सामग्री के इस विशाल भण्डार का उपयोग कर चिर अपेक्षित अधिकारपूण मराठों के इतिहास की रचना कर सकेंगे, और हमारा यह प्रयास हिन्दी जगत के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

राधेमोहन अग्रवाल

भूमिका

अपनी पुस्तक 'मराठो का नवीन इतिहास' के प्रथम खण्ड के इतन शीघ्र पश्चात् इस द्वितीय खण्ड वे प्रकाशन म मुझे बहुत शान्ति प्राप्त हो रही है। जो कुछ मैं पहले वह चुका हूँ, उसके अतिरिक्त भूमिका के रूप म मुझे अधिक नही कहना है। मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ वे समान ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त होगा कि मैं इसके तृतीय खण्ड को भी शीघ्र समाप्त कर दू तथा उसके साथ मैं अपने महान् काय को भी पूरा कर लू। इन दोना खण्डा की सामग्री मेरी आशा से बहुत अधिक बढ गयी है क्याकि मुझको विचार हुआ कि मराठो की निष्पत्ति तथा असफलता वे प्रति न्याय के लिए पूण वणन आवश्यक है। पाठकगण देखेंगे कि अनेक नवीन चरित्रो तथा उपाख्याना का वणन किया गया है, जिनका अब तक उचित निरूपण न हुआ था। दीघकाय मराठा मूलग्रन्थो तथा उन लिखित प्रमाणा के कारण जो नव प्रकाशित ईरानी पचाग' तथा पूना रेजीडेंसी पत्रव्यवहार' मे पाय जाते हैं, यह विस्तार आवश्यक हो गया था।

प्रत्येक अध्याय का तथा इस प्रकार समस्त मराठा इतिहास का तिथिक्रम इस पुस्तक की विशेषता है। इसका प्रथम उपयोग यहाँ पर किया गया है, तथा मुझको विश्वास है कि इतिहास के विद्यार्थी तथा सामान्य पाठक दोना ही इसका आदर करेंगे, यद्यपि इसस पुस्तक का आकार बहुत बढ गया है।

सर जदुनाथ सरकार तथा डा० वी० जी० दिघे के प्रति अपनी कृतज्ञता की गम्भीर भावना को मुझे पुन प्रकट करना है क्याकि उन दोना न मुझका अपरिमित सहायता दी है तथा इस काम की ओर ध्यान दिया है जो उन्होने स्वेच्छा से अविलम्ब इस काय को पूण करने म प्रदान किया है जो मेरे सदृश एकाकी कायकर्ता के लिए महत्त्वाकाक्षी प्रयास था।

कामशेट, जिला पूना

—गो० स० सरदेसाई

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ संख्या

अध्याय पृष्ठ संख्या

अध्याय पृष्ठ सख्या

अध्याय पृष्ठ संख्या

अध्याय पृष्ठ सख्या

तिथिक्रम

अध्याय १

१८ मई, १६८२	शाहू का जन्म।
३ नवम्बर, १६८९	शाहू का रायगढ़ में पकडा जाना।
९ जून, १६९६	ताराबाई के पुत्र शिवाजी का जन्म।
२३ मई, १६९८	राजसबाई के पुत्र सम्भाजी का जन्म।
२३ मई, १६९८	कान्होजी आग्रे सरखेल नियुक्त।
२० फरवरी, १७०७	अहमदनगर में औरंगजेब की मृत्यु।
५ मार्च, १७०७	आजमशाह सम्राट घोषित।
१३ मार्च, १७०७	बुरहानपुर में आजमशाह से शाहू की भेंट।
४ मई, १७०७	आजमशाह का सिरोंज पहुँचना।
८ मई, १७०७	मुगल शिविर से शाहू का दक्षिण को प्रस्थान।
२५ मई, १७०७	खानदेश में शाहू के साथ मराठे सरदार।
८ जून, १७०७	जाजऊ का युद्ध, आजमशाह का वध, बहादुरशाह सम्राट घोषित।
३ अगस्त, १७०७	शाहू के नाम पर ज्योत्याजी केसरकर द्वारा शाही सनदें प्राप्त करना।
अगस्त सितम्बर, १७०७	शाहू अहमदनगर मे, परद की विजय, फतेहसिंह सुरक्षा में।
१२ अक्टूबर, १७०७	खेड पर शाहू की विजय।
२७ अक्टूबर, १७०७	शंकरजी नारायण सचिव की मृत्यु। शाहू की अनेक गढों पर विजय।
१ जनवरी, १७०८	शाहू द्वारा सतारा हस्तगत।
१२ जनवरी, १७०८	शाहू का राज्याभिषेक।
१७ मई, १७०८	बहादुरशाह का दक्षिण के लिए नर्मदा पार करना।
२७ जून, १७०८	धनाजी जाधव की मृत्यु।
२० नवम्बर, १७०८	बालाजी विश्वनाथ सेनाकर्ते नियुक्त।
३ जनवरी, १७०९	कामबख्श की युद्ध मे मृत्यु।
मई, १७०९	बहादुरशाह उत्तर को वापस।
१६ मई, १७०९	पूना के समीप लोदीखाँ का वध।

२३ अगस्त, १७०६	रायभानजी भोंसले की मृत्यु ।
१७१०	पर्सोजी भोंसले की मृत्यु ।
दिसम्बर, १७१०	रावरम्भा निम्बालकर अहमदनगर का मुगल फौजदार नियुक्त ।
१७११	चन्द्रसेन जाधव, दमाजी थोरात और विठोजी चव्हाण का शाहू से विद्रोह ।
१७ अगस्त, १७११	बालाजी विश्वनाथ से झगडे के बाद चन्द्रसेन मुगलो के साथ ।
१ अक्टूबर, १७११	सन्ताजी जाधव सेनापति नियुक्त ।
२० नवम्बर, १७११	शाहू द्वारा प्रतिनिधि को गिरफ्तार करना ।
२ दिसम्बर, १७११	कृष्णराव खटावकर का दमन ।
१७१२	मानसिह मोरे शाहू का सेनापति नियुक्त ।
१७ फरवरी, १७१२	बहादुरशाह की मृत्यु ।
फरवरी, १७१३	निजामुल्मुल्क दक्षिण का सूबेदार नियुक्त ।
१७ नवम्बर, १७१३	बालाजी विश्वनाथ पेशवा नियुक्त ।
२८ फरवरी, १७१४	बालाजी विश्वनाथ तथा कान्होजी आग्रे का परस्पर मिलन और शान्ति सन्धि का प्रबन्ध ।
३० जनवरी, १७१५	जजीरा के सिद्दी की शाहू के साथ सन्धि ।
२५ मार्च, १७१५	कान्होजी आग्रे का सतारा मे शाहू से मिलन ।
२६ दिसम्बर १७१५	चार्ल्स बून बम्बई का प्रेसीडेण्ट नियुक्त ।
१७१८ १७२४	आग्रे के विरुद्ध अंग्रेजो का युद्ध ।
२ नवम्बर, १७१८	बून का खण्डेरी पर आक्रमण ।
दिसम्बर, १७२१	*कोलाबा के समीप बाजीराव के हाथों अंग्रेजो का परास्त होना ।*

अध्याय १

शाहू की स्थिति का स्थिरीकरण

[१७०७-१७१५ ई०]

१ शाहू का गृहागमन ।
२ खेड का युद्ध ।
३ सतारा मे राज्याभिषेक ।
४ बालाजी विश्वनाथ का उत्कर्ष ।
५ शाहू तथा बहादुरशाह ।
६ चन्द्रसेन द्वारा पक्ष-त्याग, कोल्हापुर का उदय ।
७ बालाजी का पेशवा का पद प्राप्त करना ।

१ **शाहू का गृहागमन**—प्राचीन समाप्तप्राय और नवीन प्रारम्भप्राय व्यवस्था का स्पष्ट विच्छेद औरगजेब की मृत्यु (२० फरवरी १७०७ ई०) से सूचित होता है। मराठो को परास्त करने के व्यर्थ प्रयास मे सम्राट् ने अपने लम्बे शासनकाल के पूरे २५ वर्ष तथा अपने विस्तीर्ण साम्राज्य के विशाल साधन नष्ट कर दिये थे। इस दीर्घकालीन स्वातन्त्र्य-युद्ध के कारण भारत के इतिहास मे मराठो को चिरस्थायी स्थान प्राप्त हो गया था। मुगल शिविर मे बन्दी के रूप मे शाहू के जीवन से हम अपना अध्ययन प्रारम्भ करते है।

औरगजेब की मृत्यु का समाचार पाकर उसका द्वितीय जीवित पुत्र आजमशाह शीघ्र अहमदनगर वापस आया और उसकी अतिम क्रिया पूरी की। ५ मार्च को उसने अपने को सम्राट घोषित कर दिया, तथा अपने पिता के समस्त शिविर के साथ तुरत उत्तर की ओर प्रस्थान किया, ताकि अपने बडे भाई शाहआलम का दमन कर सके जो लाहौर से राजगद्दी के निमित्त सघर्ष करने के लिए आ रहा था। शाहू के पास सिवाय आजमशाह का साथ देने के और कोई चारा न था। उसकी माता को मिलाकर उसके दल की सख्या लगभग २०० थी। मुख्य मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ से उसकी पुरानी मित्रता थी। जुल्फिकारखा मुगल अधिकृत दक्षिण प्रदेश को अपना भावी अधिकार-क्षेत्र समझता था। बुरहानपुर पहुचने पर जुल्फिकारखाँ ने शाहू को आजमशाह के सम्मुख उपस्थित किया, उसके पक्ष का समर्थन किया, तथा प्रार्थना की कि शाह शाहू को मुक्त करके मराठो को घरेलू झगडो मे व्यस्त रखने के लिए उसके प्रदेश वापस भेज दे। शिविर के कुछ राजपूत राजा शाहू के मित्र थे उन्होने भी आजमशाह को यही रास्ता सुझाया। आजमशाह ने उपहार तथा

वस्त्र देकर शाहू का सम्मान किया, परन्तु किसी न किसी बहाने उसकी मुक्ति को टाल दिया। इस समय उसका ध्यान उस संघर्ष की ओर केन्द्रित था जो निकट भविष्य में उसे अपने भाई के विरुद्ध करना था। शाहू के अभिभावक जिल्फिकार खाँ (उसका शाहू के प्रति बड़ा विश्वास था) की भावनाओं की उसे कोई परवाह न थी। १३ मार्च को बुरहानपुर से चलकर अप्रैल के अन्त में आज़मशाह ने नर्मदा को पार किया तथा ८ मई को भिलसा पहुँच गया।

अपने घर से दूर बढ़ने के साथ-साथ शाहू अपनी मुक्ति के विषय में अधीर और बेचैन होने लगा। उसने इस अंधकारमय आवरण के भाग से उसकी सदय प्रभु संरक्षिका दया बेगम जीनतुन्निसा तथा अन्य मित्रों ने उसको सलाह दी कि वह आज़मशाह की ओर से अपनी नियुक्ति की नियमित सनद प्राप्त करने की प्रतीक्षा न करके तुरन्त शिविर छोड़कर अपनी मातृभूमि की ओर चला जाय। उसने इस परामर्श पर तुरन्त आचरण किया। भोपाल के उत्तर-पश्चिम में लगभग २० मील पर स्थित दोराहा नामक स्थान पर ८ मई को उसने मुगल शिविर छोड़ दिया। मुसलमान लेखक यह कहते हैं कि वह भाग गया, किन्तु मराठा लेखक कहते हैं कि उसने अनुमति प्राप्त कर ली थी और शरीर रक्षकों के रूप में एक छोटी-सी टोली उसे दी थी जिसमें उसकी माता पत्नी और उसका अवैध भाई मदनसिंह शामिल थे। जोत्याजी केसरकर को उसने नियमित सनद के आने के निमित्त वहाँ छोड़ दिया था क्योंकि शिविर छोड़ने के समय वे तैयार न थीं। शाहू का पीछा नहीं किया गया। इससे स्पष्ट है कि या तो आज़मशाह ने अपनी मौन अनुमति दे दी थी या परिस्थितियों के कारण वह विवश था। मुक्ति की शर्तें जिन पर समय-समय पर वाद विवाद होता रहा था ये थीं—(१) कि वह मुगल सम्राट के अधीन रहकर अपने पितामह के छोड़े स्वराज्य पर शासन करेगा। (२) कि वह अपने स्वामी अर्थात् मुगल सम्राट की आज्ञानुकूल अपने सैन्य-दल सहित उसकी सेवा करेगा। (३) कि दक्षिण के केवल ६ मुगल सूबों से ही वह चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल कर सकेगा। प्रसंग में यहीं यह उल्लेख कर देना उचित है कि उक्त तीनों शर्तों में से प्रथम दो वही हैं जो स्वयं औरंगजेब ने १६६७ ई० में शिवाजी के लिए स्वीकार की थी। इस कालावधि में उनके मध्य अनेक युद्ध तथा झगड़ा के होते हुए भी १७१९ ई० में ये तीनों शर्तें मुहम्मदशाह से नियमित सनदों के द्वारा शाहू को प्राप्त हो गयीं।

मालवा मे आजमशाह के शिविर से शाहू के प्रस्थान के एक मास बाद ८ जून १७०७ ई० को आगरा के समीप जाजऊ के रणक्षेत्र पर औरंगजेब के दो पुत्रों के बीच संघर्ष का अन्तिम निर्णय हो गया। इस युद्ध में आजमशाह मारा

गया और बहादुरशाह की उपाधि धारण कर शाहआलम सम्राट हो गया। अपने राज्यारोहण के बाद १७०८ ई० में बहादुरशाह दक्षिण में आया। ३ जनवरी १७०९ ई० को हैदराबाद के समीप एक युद्ध में उसने अपने छोटे भाई कामबख्श को मार डाला और दिल्ली वापस लौट गया। तत्पश्चात् ३ वर्ष बाद १७ फरवरी १७१२ ई० को उसका देहान्त हो गया। उक्त घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए हम उस समय से जबकि शाहू केवल दो सौ अनुचरों सहित दोराहा में अपने घर की ओर चला था, उसके जीवन का अध्ययन करना चाहिए।

महादजी कृष्ण जोशी नामक एक साहूकार तथा गदाधर प्रह्लाद नासिककर नामक एक पुरोहित ही दो उल्लेखनीय व्यक्ति शाहू के साथ इस वापसी यात्रा पर थे। उनकी सलाह से उसने कई मराठा सरदारों को विधिवत पत्र लिखकर उनको अपने आगमन की सूचना दी तथा उनसे सहायता और आज्ञा-पालन की माँग की। नर्मदा को पार कर उसने बीजागढ़ और सुल्तानपुर के मार्ग से एक सकीर्ण मार्ग द्वारा पश्चिमी खानदेश में प्रवेश किया और इस प्रकार दक्षिण में मुगल शासन के केन्द्र स्थान बुरहानपुर होकर जाने वाले पूर्वी राजमार्ग से जानबूझकर दूर रहा। वह नर्मदा के दक्षिण में करीब ३० मील पर स्थित बीजागढ़ पहुँच गया और वहाँ पर इसका शासक मोहनसिंह रावल उसके साथ हो गया जो बहुत पहले से औरंगजेब का विद्रोही तथा मराठों का सहयोगी था। मोहनसिंह पहला व्यक्ति था जिसने शाहू का पक्ष लिया और सेना तथा धन द्वारा उसकी सहायता दी। बीजागढ़ से शाहू ताप्ती नदी पर स्थित सुल्तानपुर गया। यहाँ पर कुछ और मराठा सरदार उसके साथ हो गये— उदाहरणार्थ अमृतराव कदम बाँड, लौंबकानी का सुजानसिंह रावल, कोकिल, पुरन्दरे तथा अन्य प्रतिनिधि ब्राह्मण-परिवार जो नाम को तो मुगल शासन के सेवक थे, परन्तु वास्तव में शिवाजी के घोषित उत्तराधिकारी के पक्ष के समर्थक थे। सम्भवतः पुरन्दरे-परिवार ही अपने साथ बालाजी विश्वनाथ को लाया। यह व्यक्ति पूना में तथा उसके समीपस्थ प्रदेश में बहुत दिनों से एक व्यस्त कूटनीतिज्ञ के रूप में रह रहा था।

इस प्रकार महाराष्ट्र में शाहू का हार्दिक स्वागत प्राप्त हुआ। वह भोसले-परिवार का वैध वंशज था तथा उसकी मुक्ति के निमित्त दीर्घ तथा कठिन युद्ध भी बहुत दिनों से चल रहा था। परन्तु शाहू का सर्वोपरि महान् सहायक पर्सोजी भोसले सिद्ध हुआ जो नागपुर के भावी भोसले शासकों का पूर्वज था और जिसका उस समय बरार के प्रदेश पर अधिकार था। नेमाजी शिन्दे, हैबतराव निम्बालकर, रुस्तमराव जाधव (शाहू का श्वसुर), चिमनाजी दामोदर तथा अन्य व्यक्तियों ने पर्सोजी का अनुकरण किया। ये लोग उस समय खानदेश

तथा बागलान म काय कर रहे थ। सैन्य सग्रह तथा अपनी स्थिति को सुदृढ करने मे जून और जुलाई के दो मास खानदेश म व्यतीत कर शाहू अगस्त क प्रारम्भ म अहमदनगर की ओर चल दिया। उसको पूण आशा थी कि सतारा की राजधानी के लिए उस निष्कण्टक माग प्राप्त हो जायगा। जहाँ स वह स्वतन्त्र मराठा राजा की भाँति शासन करना चाहता था।

२ खेड का युद्ध—परन्तु शाहू का भ्रम शीघ्र ही निरस्त हो गया। उसको अपनी चाची ताराबाई स सूचना मिली कि वह उसको वचक समझती है, मराठा राजगद्दी पर उसका कोई अधिकार नही है वह अपन पिता सम्भाजी के राज्य को खो चुका है, वतमान राज्य उसक पति राजाराम का प्राप्त किया हुआ है, और अब उसका अल्पायु पुत्र शिवाजी इस राज्य का जन्मजात अधिकारी है, जिसका कुछ वष पहले नियमपूवक अभिषेक भी हो गया है। इस प्रकार वह योजना कार्यान्वित होने लगी जिसका निर्माण स्वय औरगजेब न मराठा जाति को विभाजित करने तथा ताराबाई और शाहू के अनुचरो क बीच गृह-युद्ध प्रारम्भ करने के उद्देश्य स किया था। फलस्वरूप शाहू को कठिन परिस्थिति का सामना करना पडा। अहमदनगर म वह तीन मास तक पडा रहा। इस काल मे वह अपनी चाची से सघष की तैयारी और अपनी सना का सगठन करने मे व्यस्त रहा।

इस बीच उसने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि मुस्लिम शासन के स्थानीय अधिकारियो के आधिपत्य के स्वत्व का उचित सम्मान करत हुए वह उनकी सद्भावना प्राप्त कर ले। वह खुल्दाबाद म मृतक सम्राट की समाधि के दशन करने पैदल गया उसकी स्मृति मे उसन अपनी श्रद्धा प्रकट की तथा दिल्ली के राजवश के प्रति अपनी गम्भीर कृतज्ञता तथा असदिग्ध भक्ति प्रदर्शित की। अहमदनगर स अनुपस्थिति के समय म दौलताबाद के उत्तर म लगभग २५ मील पर स्थित परद के ग्रामीणो से उसकी एक झपट हो गयी। गाँव का पाटिल मारा गया और उसकी विधवा अपने नन्हे से पुत्र को शाहू के पास ले पहुँची और उससे सुरक्षा की याचना की। इस घटना को अपनी प्रथम विजय समझकर शाहू ने उस बालक का नाम फतेहसिंह रख दिया तथा अपने पुत्र की भाति उसका पालन पोषण किया। लोखण्डे-परिवार के इस बालक न शाहू के दरबार मे महत्त्वपूण काय किया। सम्भाव्य उत्तराधिकारी राजकुमार की भाँति उसका पालन पोषण हुआ। सम्भव था कि वही शाहू की गद्दी का उत्तराधिकारी होता यदि उसन स्वय ही इसे अस्वीकार न कर दिया होता। उसका परिवार कुछ समय पूव तक अक्कलकोट म राज्य कर रहा था।

इस तुच्छ घटना से शाहू के चरित्र म विद्यमान कोमल दयालु भावना का

परिचय मिलता है। इसका प्रभाव उसके दीर्घ शासनकाल म उसके व्यक्तिगत कार्यों पर ही नही अपितु सम्पूर्ण मराठा राष्ट्र के भाग्य पर भी पडा। मृत्योन्मुख सम्राट को उसने वचन दिया था कि सम्राट् के वशजो की रक्षा के लिए जब कभी भी उनको उसकी सहायता की आवश्यकता होगी वह तुरत उपस्थित होगा। वास्तव म शाहू भी एक क्षण के लिए यह नही भूला कि उस समय जो कुछ भी उसकी स्थिति थी वह केवल सम्राट की दया के कारण ही थी जो यदि चाहता तो उसके जीवन का अन्त कर सकता था तथा उसकी माता और अन्य सम्बन्धियो को अनेक यातनाएँ दे सकता था। जब तक कि परिस्थितियो ने उसको विवश न कर दिया, उसने अहमदनगर नही छोडा। वास्तव म, खुले रूप म शस्त्र उठाने से बचने के लिए वह उसी नगर म शासन करना अधिक अच्छा समझता था। परतु सतारा को न्यायसगत मराठा राजधानी का अधिकार प्राप्त था और अहमदनगर मराठा राजधानी की आवश्यकताओ के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। साथ ही, शताब्दियो से वह मुसलमानो के अधिकार मे था और हाल ही म औरगजेब के शासन का केन्द्र रह चुका था। शाहू को, जब वह अहमदनगर मे था, अक्टूबर १७०७ ई० को ज्ञात हुआ कि ताराबाई की सेना उसके विरुद्ध प्रयाण कर रही है। वह उस स्थान से दक्षिण को पूना की ओर बढा और खेड के स्थान पर उसने अपना पडाव डाला। यहा पर उसने भीमा नदी के दूसरे तट पर आक्रमण करने के लिए तैयार खडी ताराबाई की शक्तिशाली सेना देखी।

शाहू की सेना म अनेक परस्पर विरोधी तत्त्व सम्मिलित थे। उसके पास कोई योग्य सेनापति भी न था जो युद्ध का सचालन कर सकता। दूसरे तट पर उसके विरुद्ध निपुण सैनिक एकत्र थे जिनका नेतृत्व धनाजी जाधव (सैकडो युद्धो का विजेता) और परशुराम पत प्रतिनिधि (ताराबाई का निष्ठावान पक्षपाती) कर रहे थे। आक्रमण करने के साहस को छोडकर अवश्यम्भावी सर्वनाश के भय मे शाहू ने तुरत कूटनीति की शरण ली जिसम पितृपरम्परागत चिटनिस खण्डो बल्लाल बालाजी विश्वनाथ भट्ट (एक ब्राह्मण सरसूबा) और नारो राम ने विशेष योग दिया। ये सब धनाजी के निकट के सहायक रह चुके थ। इन सबको तथा कुछ अन्य व्यक्तियो को पहले से ही शाहू के मसले म कोई सन्देह न था और वे उसके मोहक व्यक्तित्व से अत्यत प्रभावित थे। अत उसने इन कार्यकर्ताओ द्वारा धनाजी को गुप्त व्यक्तिगत भेंट के लिए बुलाया और उसको अपने पक्ष मे करने म सफल हो गया। धनाजी इस बात पर सहमत हो गया कि वह दिखावे के लिए युद्ध अवश्य करेगा किन्तु अवसर मिलते ही पक्ष त्यागकर शाहू के साथ हो जायगा। दूसरे ही दिन खेड के मैदान म भीमा

नदी के उत्तरी तट पर युद्ध हुआ । वीरता के साथ सफलता का विश्वास रखते हुए शाहू अपनी सेना का नतृत्व करत हुए सामने आया । प्रतिनिधि न वीरता पूवक युद्ध किया, परन्तु सेनापति द्वारा युद्ध क प्रारम्भ मे ही पक्ष-त्याग कर देने के कारण वह परास्त हुआ और सुरक्षा क लिए नदी पार भाग गया । इस प्रकार शाहू युद्ध म सफल हो गया । उसने रणभूमि पर ही अपना पडाव डाल दिया और वही धनाजी का स्वागत किया । उसको सनापति का पूण सम्मान अर्पित किया गया और खण्डो बल्लाल को चिटनिस का पद प्राप्त हुआ । इस काण्ड से ताराबाई की स्थिति की निबलता स्पष्ट हो गयी । मराठा राष्ट्र शाहू के पीछे दृढता स एकत्र हो रहा था और एक महिला के विरुद्ध उसन हृदय से उसका स्वागत किया । यह महिला योग्य होत हुए भी गद्दी पर नही बैठ सकती थी और उसका अल्पायु पुत्र शिवाजी राज्य काय सचालन के लिए सवथा अयोग्य था ।

३ **सतारा में राज्याभिषेक**— इस प्रथम सफलता के बाद शाहू न शीघ्र ही सतारा की ओर प्रयाण किया । वह थोडे म समय के लिए शिरवल म ठहर गया । इस स्थान के समीप भोर के पास रोहिडागढ म ताराबाई के एक अन्य राजभक्त अनुचर वीर सचिव शकरजी नारायण का अधिकृत निवास स्थान था । शाहू न उस तत्काल आत्मसमपण करन अन्यथा दुष्परिणाम भोगन की आज्ञा प्रेषित की । इस अनिवाय आह्वान पर हतबुद्ध होकर सचिव न २७ अक्टूबर १७०७ ई० को विष खाकर आत्महत्या कर ली । चूंकि वह समपण के लिए उपस्थित नहीं हुआ, अत शाहू ने स्वय उसक विरुद्ध प्रयाण किया परन्तु पहाडी पर चढत हुए जब उसन नीचे नदी के तट पर लोगो को सचिव के शव का दाह सस्कार के लिए लाते हुए देखा तो उसे बहुत दुख हुआ । मन म अति दुखी होकर वह सीध सचिव के महल मे गया और सान्त्वनादायक शब्दो म उसन मृतक सचिव की बुद्धिमती पत्नी यसुबाई को सान्त्वना दी । उसके लगभग एक वष की आयु के बालक को उसके परम्परागत सचिव क पद पर नियुक्त कर दिया और इस प्रकार उसने अभूतपूव चातुय और विवेक द्वारा मावलो क प्रदेश म मराठी जनता के बहुत बडे भाग के प्रेम को प्राप्त कर लिया ।

शिरवल स सतारा केवल ३५ मील है । शाहू न शीघ्र ही इस दूरी को पार कर लिया । माग म चन्दन और वन्दन क गढो पर अधिकार प्राप्त कर वह नवम्बर म सतारा म उपस्थित हो गया । ताराबाई और उसक पुत्र न राजधानी को पहले ही छोड दिया था । उन्होंन लगभग ६० मील और भी दक्षिण म पन्हालागढ म शरण ले रखी थी और सतारा की रक्षा का भार प्रतिनिधि को सौंप दिया था । शाहू न उसको आत्मसमपण की आज्ञा दी । प्रतिनिधि न आज्ञापालन स इन्कार कर दिया और शाहू को पुन युद्ध की चुनौती

दी । गढ की सेना का नायब शेख मीर नामक एक मुसलमान अधिकारी था। उसने शाहू से सुरक्षा तथा पुरस्कार का आश्वासन प्राप्त कर प्रतिनिधि को कारागार में डाल दिया और मराठा राज्य के अधिकृत उत्तराधिकारी के लिए गढ के द्वार खोल दिये। दिसम्बर में किसी शनिवार को शाहू ने राजधानी में प्रवेश किया। मुगल शिविर छोडे हुए उसको इस समय पूरे सात मास नहीं हुए थे।

इस प्रकार दीर्घ तथा साहसपूर्ण संघर्ष के बाद राष्ट्र को पुन अपना राजा प्राप्त हो गया। १२ जनवरी, १७०८ ई० को पूर्व प्रथानुसार ठाठबाट तथा विधिपूर्वक अभिषेक संस्कार का सम्पादन हुआ। इस अवसर पर शाहू ने नवीन मन्त्रियों की नियुक्तियाँ की। इस प्रकार बन्दी जीवन तथा कष्ट की प्रारम्भिक अवस्था का अन्त हो गया और सफलता तथा संयम का नवीन युग प्रारम्भ हुआ जिसमें आगे की पीढियों में उसका नाम जोड दिया गया। इस समय तक महाराष्ट्र के प्रत्येक घर में उसका नाम राजा की पवित्रता सरल जीवन तथा सबके प्रति सद्भावना के प्रतीक के रूप में विख्यात है।

उसके नवीन शासन का प्राय सर्वप्रथम कार्य अपनी चाची ताराबाई को प्रसन्न करना था ताकि घरेलू झगडे का अन्त हो जाय। इस उद्देश्य से उसने उसके समक्ष अत्यन्त उदार शर्तें प्रस्तुत की जो कि उसके छत्रपति के पद के भी प्रतिकूल थीं। परन्तु उस गर्वशील महिला ने मित्रता के लिए बढाये हुए हाथ को स्वीकार न करके संघर्ष को जारी रखने की तैयारियाँ की और कपट तथा कूटनीति की अपनी समस्त विचित्र शक्तियों का उपयोग किया। मार्च में शाहू ने पन्हाला पर चढाई की। उसके निकट आने पर ताराबाई ने उस गढ को भी त्याग दिया तथा लगभग ६० मील और भी दक्षिण में स्थित रंगना के गढ को चली गयी। इस समय उसका एकमात्र परामर्शदाता अनुभवी वृद्ध रामचन्द्र पन्त था जिसने उसके पक्ष का सतत समर्थन किया, यद्यपि उसके साधन दिन प्रतिदिन नष्ट हो रहे थे। जब ग्रीष्म में शाहू रंगना के निकट आ गया ताराबाई पश्चिमी तट पर मलवन को भाग गयी। आती हुई वर्षाऋतु के कारण शाहू ने उसका पीछा नहीं किया और पन्हाला को वापस चला गया जहाँ उसने वर्षाऋतु व्यतीत की।

४ बालाजी विश्वनाथ का उत्कर्ष—शाहू ने अपनी चाची के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही में इस प्रकार व्यस्त होते हुए भी अपने मुख्य उद्देश्य—अपने पैतृक राज्य के उत्तरी भागों को प्राप्त करना—की उपेक्षा न की थी। उसने अपने प्रतिनिधि गदाधर प्रह्लाद तथा अपने सेनापति धनाजी जाधव को अपने विश्वस्त विश्वासपात्र बालाजी विश्वनाथ के साथ बागलान और खानदेश भेज

रखा था। जुन्नार के करीमबग जैसे स्थानीय मुगल अधिकारियों को उन्होंने परास्त करके उस नगर के संचित धन को लूट लिया। वर्षाऋतु के आरम्भ होते ही शाहू ने उनको वापस बुला लिया। पन्हाला के मार्ग में धनाजी अकस्मात् बीमार पड गया और वारणा नदी पर वडगाँव नामक स्थान पर जून १७०८ ई० में उसका देहान्त हो गया। इस घटना से शाहू के हित को कठोर आघात पहुँचा। यद्यपि धनाजी के पुत्र चन्द्रसेन को शाहू ने तुरन्त सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया परन्तु चन्द्रसेन की निष्ठा पर उसे पहले से ही सन्देह था क्योंकि यह प्रसिद्ध था कि वह ताराबाई के पक्ष में है। नवीन सेनापति द्वारा सम्भावित विश्वासघात के विरुद्ध सुरक्षा के रूप में शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को सेनाकर्ते (सेना का संगठनकर्ता) के स्थान पर नियुक्त कर दिया। यह एक नवीन पद था जो सेनापति के क्षेत्र पर कुछ अंश तक एक नियन्त्रण था। बालाजी के विचारों तथा उसके द्वारा शाहू के पक्षपोषण में चन्द्रसेन का सदैव विरोध रहा था। खेड की रणभूमि में ताराबाई का पक्ष त्यागने के कारण शायद उसने अपने पिता की भी निन्दा की थी। परन्तु इस संकटवेला पर बालाजी ने अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया कि वह शाहू की इच्छाओं को पूर्ण करे। इस उद्देश्य से उसने धन संग्रह किया सैनिक भरती किये तथा राज्य के विरोधी तत्त्वों को आज्ञाकारी बनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि निपुणता तथा शीघ्रकारिता में वह शाहू के अन्य मन्त्रियों तथा सहायकों से आगे निकल गया। कुछ ही वर्षों में शाहू ने उसको पेशवा या प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया। बालाजी के इस पूर्ण उत्कर्ष से मराठा शासन तथा प्रशासन का सारा रूप ही बदल गया तथा समयान्तर में स्वयं छत्रपति की स्थिति भी निर्बल हो गया। उत्तरकालीन इतिहास में पेशवा का वर्णन मराठों के वास्तविक शासक के रूप में होता है। इस परिवर्तन के महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम पूर्व घटित उन कुछ घटनाओं का पुनरीक्षण करें जिन्होंने शाहू की दृष्टि में बालाजी को इतना ऊँचा उठा दिया था।

बालाजी विश्वनाथ के पूर्व चरित का इतिहास में बहुत कम उल्लेख है। हम जानते हैं कि उनके पूर्वज पश्चिमी तट पर श्रीवर्धन के देशमुख थे। यह जंजीरा के सिद्दी का क्षेत्र था जो पहले अहमदनगर के निजामशाही राजाओं का नाविक अधिकारी था और इसके पतन के पश्चात् दिल्ली के सम्राट् का अधिकारी नियुक्त हो गया था। बालाजी का बडा भाई जानोजी श्रीवर्धन की देशमुखी का कार्य सँभालता था और वह स्वयं चिपलूण के नमक के कार-खाने में लेखक था। इस पर भी सिद्दी का अधिकार था। जनश्रुति है कि सिद्दी ने बालाजी पर घोर अत्याचार किया। जिसके कारण बालाजी ने अपना घर

त्याग दिया और पश्चिमी घाटों के उत्तरी क्षेत्र म नौकरी की खोज मे आया। यहाँ पर ठीक इसी समय शक्तिशाली युवकों के लिए शिवाजी नवीन कार्यक्षेत्र स्थापित कर रहे थे। हम निश्चयपूर्वक यह नही कह सकते कि शिवाजी द्वारा स्थापित किसी कार्यालय म बालाजी को काय करने का अवसर प्राप्त हुआ या नही। प्राचीनतम लेख जो इस सम्बन्ध म हमको प्राप्त होता है उसका सम्बन्ध १६८९ ई० म है जब औरगजेब द्वारा सम्भाजी की हत्या की गयी थी। इसमे उल्लेख है कि रामचन्द्र पन्त अमात्य के अधीन बालाजी राजस्व लेखक है। १६९५ १७०७ ई० के १२ वर्षों के अनेक पत्रो का पता चल गया है जिनम रामचन्द्र पन्त द्वारा तथा राजाराम के अन्य मन्त्रियो द्वारा बालाजी को पूना तथा दौलताबाद के जिलो का सरसूबा कहा गया है। इन्ही जिलो मे मराठो के विरुद्ध सम्राट अपने युद्ध का सचालन कर रहा था। उसका वणन इस रूप म भी है कि सेनापति धनाजी जाधव के अधीन उसने राजस्व सग्राहक का काय किया।

हमे ज्ञात है कि मुगल सम्राट् ने जब वह मराठो से कठिन युद्ध कर रहा था, अपनी सेनाओ को १७०३ और १७०४ ई० की वर्षाऋतुओ मे पूना तथा खेड म शिविरस्थ किया था। उसी समय छत्रपति तथा उसके मन्त्रियो के आज्ञा पालक बालाजी विश्वनाथ का मुख्य स्थान मराठा अधिकारी के रूप म पूना था। प्रश्न यह होता है कि बालाजी किस प्रकार अपने शत्रु सम्राट् द्वारा पकडे जाने तथा वध किये जाने से बच निकला। इसका उत्तर शायद यह है कि बालाजी युद्धशील सेना म सम्मिलित न था, सम्भवत वह उस जिले के राजस्व अधिकारी के रूप म सहायक ही था और इस रूप म जीवन की नाना प्रकार की आवश्यक सामग्री—यथा लद्दू जानवर गाडियाँ, मजदूर तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ—वह मुगल शिविर को भी उसी प्रकार पहुँचा देता था जैसे अपने स्वामियो को। अल्प तथा विरल प्रमाणो से सिद्ध होता है कि बालाजी ने औरगजेब के बडे-बडे अधिकारियो को अपना मित्र बना लिया था। सम्भवत सम्राट की पुत्री जीनतुन्निसा बेगम का ध्यान भी उसकी ओर आकृष्ट था।[1] बालाजी बन्दी शाहू के हितो का भी ध्यान रखता था और ऐसे साधन उपलब्ध करता था जिनसे बाह्य जगत की घटनाओ की सूचना उस तक पहुच जाय। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शाहू के प्रस्तावित धर्म-परिवर्तन के विषय म भी वह गुप्त रूप से परिचित था तथा उसके विवाह के लिए वधुओ के चुनाव म भी शायद उससे परामर्श लिया गया हो। १७०३ ई० म जब सम्राट ने सिंहगढ को हस्तगत किया, मराठो ने टटकर तरबियतखाँ की तोपो से इसकी रक्षा की

[1] उस्मानिया विश्वविद्यालय म एक अप्रकाशित मराठी बाखर।

थी । पुरन्दर दफ्तर म मुद्रित एक पत्र मे वर्णन है कि इस प्रसिद्ध गढ को सम्राट् के हाथो म न जाने देने के लिए बालाजी न क्या क्या प्रयास किये । इस परोक्ष प्रमाण स यह निर्णय करना अनुचित न होगा कि १६९९ से १७०४ ई० तक पाच वर्षों म शाहू और बालाजी विश्वनाथ एक दूसरे क घनिष्ठ सम्पर्क म आ गये थे जबकि स्वय सम्राट पूना और सतारा के समीपवर्ती पहाडी दुर्गों पर अपने अभियान के सचालन म व्यस्त था । यह भी सम्भव है कि युवक सवाई जयसिंह भी जिसने अप्रल १७०२ ई० म विशालगढ को हस्तगत करने मे विशेष भाग लिया था इन दोनों स समान रूप से परिचित था । विशिष्ट व्यक्ति, जो किसी छोर से कार्यक्षेत्र म साथ साथ काम कर रहे हो एक-दूसरे से बहुत देर तक अपरिचित नहीं रह सकते । खेड के युद्ध के ठीक पहले बालाजी ने शाहू की अमूल्य सेवा की थी । कुछ म वर्षों का पूर्ण परीक्षा के बाद शाहू ने उसको पेशवा क पद से पुरस्कृत किया । इन वर्षों म बालाजी न सिद्ध कर दिया था कि उस राजनीतिक परिस्थिति पर जो मुगलो तथा मराठों क बीच म विकसित हो रही थी उसका असाधारण अधिकार है तथा उसम यह दुर्लभ योग्यता भी है कि उसका प्रबन्ध वह इस प्रकार कर कि उससे मराठा राष्ट्र का अधिकतम लाभ प्राप्त हो । इतिहास न शाहू की पसन्द को उचित सिद्ध कर दिया है तथा उसकी विवेक-बुद्धि की प्रशसा की है ।

५ **शाहू तथा बहादुरशाह**—शाहू के राजत्व काल के प्रारम्भिक वर्षों म उस पर बहादुरशाह का कठोर नियन्त्रण रहा । बहादुरशाह चतुर और शान्तिप्रिय शासक था तथा अपने कठोर पिता क अधीन उसने युद्ध एव शासन का दीर्घ और विविध अनुभव प्राप्त कर लिया था । अत ऐसा प्रकट होता था कि उसका शासनकाल लम्बा और सफल होगा तथा वह उन अतिक्रमो से दूर रहेगा जिन्होंने उसके पिता का सर्वनाश कर दिया था । यह भी आशा थी कि वह उन भयकर शक्तियो का पूर्ण दमन करेगा जिनका आरम्भ हो चुका था । उसकी अकाल मृत्यु से साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचा । परन्तु उसके पाँच वर्षों के शासन म शाहू को मराठों का नियन्त्रण करने म सम्राट की नीति का अनुसरण करना पडा ।

अपने राज्यारोहण के तुरन्त बाद ही बहादुरशाह का ध्यान सर्वप्रथम दक्षिण म मुगल प्रान्तो की पुन प्राप्ति की ओर गया । उसके भाई कामबख्श न इन पर अधिकार जमा रखा था । उसने तुरन्त आगरा स प्रस्थान किया तथा जून १७०८ ई० म गोदावरी क तट पर पहुँच गया । यहाँ पर शाहू अपनी चाची ताराबाई क विरुद्ध सैनिक कार्यवाही म व्यस्त था । बहादुरशाह न शाहू स अनुरोध किया कि वह अपनी सेना सहित आकर उसका साथ दे । शाहू न अपनी अनुपस्थिति क लिए क्षमायाचना की । कामबख्श न सघर्ष की तैयारी की और

३ जनवरी, १७०९ ई० को हैदराबाद के समीप हुए रक्तरंजित युद्ध म वह मारा गया। विजित प्रदेश के प्रशासनीय कार्यों का प्रबन्ध करके बहादुरशाह दक्षिण म वापस लौटा और मई म अहमदनगर पहुँचा। वहाँ शाहू के प्रतिनिधि गदाधर प्रह्लाद तथा रायभानजी भासले न उसकी सेवा म उपस्थित होकर उसस उन सनदा या लिखित प्रतिज्ञाओ की प्रार्थना की जो उनके स्वामी शाहू के चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार को प्रमाणित करने तथा उसकी स्थिति को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए आवश्यक थी। इस विषय मे ताराबाई भी कम प्रयत्नशील न थी। अपने प्रतिनिधिया द्वारा उसने भी इस अधिकार के लिए ऐसी ही प्रार्थना की। उसका दावा यह था कि मराठा गद्दी का न्यायसंगत अधिकारी शाहू नही है।

इस दुरावस्था म बहादुरशाह के वजीर मुनीमखाँ न जुल्फिकारखाँ के इस परामर्श को अस्वीकार कर दिया कि शाहू की नियुक्ति को सम्पुष्ट कर लिया जाय। उसने दोना के निवेदन पत्रा का विस्तार से अध्ययन किया और आज्ञा दी कि शाहू और ताराबाई अपने संघर्ष का निपटारा युद्ध द्वारा कर लें और तभी विजयी पक्ष को सनदें दे दी जायेंगी। इस निर्णय से उन आलोचका को पूर्ण उत्तर मिल जाता है जो यह तर्क करते हैं कि ताराबाई शिवाजी द्वारा संस्थापित पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त के लिए युद्ध कर रही थी, और शाहू की निन्दा इस कारण से करते हैं कि उसने सम्राट् के प्रति अधीनता स्वीकार कर ली थी। ताराबाई शाहू की चाल्ला का अनुसरण करती थी। इन संधि प्रस्तावा के समय म शाहजी का एक अवैध पुत्र रायभानजी भामले शाहू का मुख्य समर्थक तथा परामर्शदाता था। वह सम्राट के दरबार म उसके पक्ष का समर्थन करता था। उसने कई वर्षों तक औरंगजेब की सेवा की थी तथा मुगल मराठा सम्बन्धा की विभिन्न राजनीतिक प्रगतिया का उसने सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बहादुरशाह के दक्षिण से विदा होने के शीघ्र पश्चात् २३ अगस्त, १७०९ ई० को रायभानजी का देहान्त हो गया। अब मुगल शिविर म ऐसा कोई व्यक्ति न रहा जो शाहू के पक्ष का समर्थन करता।

६ चन्द्रसेन का पक्ष-त्याग—कोल्हापुर का उदय—दक्षिण म नये सम्राट की उपस्थिति के समय भी पूना के प्रदेश मे शाहू की प्रवृत्तियाँ यथापूर्व चलती रही। चाकन के स्थान से लोदीखाँ नामक एक योग्य मुगल अधिकारी मराठा प्रतिनिधिया को तंग करता रहता था, परन्तु गदाधर प्रह्लाद के नेतृत्व म शाहू के सिपाहियो ने १६ मई १७०९ ई० को पुरन्दर की घाटी मे एक लडाई म उसको मार डाला। जुन्नार का शक्तिशाली करीमबेग जो लोदीखाँ का सहायक था जीवित बन्दी बनाकर कारागार मे डाल दिया गया। इन दो उल्लेखनीय

सफलताओ से सतारा और जुन्नार के बीच के क्षेत्र मे शाहू की सत्ता शीघ्र ही
स्थापित हो गयी। परन्तु य सफलताएँ अल्पकालीन सिद्ध हुई और शाहू की
स्थिति पुन डगमगा गयी। इसका मुख्य कारण चन्द्रसेन जाधव के षड्यन्त्र थे।
उसको बालाजी की उदीयमान शक्ति स ईर्ष्या थी और उसने उसके विरुद्ध खुली
विरोधात्मक प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। एक तुच्छ घटना के कारण उनके बीच
का तनाव और भी बढ गया। १७११ ई० के ग्रीष्म म बालाजी और चन्द्रसेन
दोनो करहाड के समीप एक अभियान का सचालन कर रहे थे। बालाजी के एक
सिपाही ने एक हिरण का पीछा किया और उसे घायल कर दिया। वह हिरण
चन्द्रसेन के ब्राह्मण लेखक (व्यासराव) के रसोई के तम्बू म अकस्मात् घुस
गया। उस ब्राह्मण न उसको शरण दी और उसको वापस देने मे इन्कार कर
दिया। यह झगडा शीघ्र ही बालाजी और चन्द्रसेन तक पहुँच गया और इसने
उनको खुले युद्ध के लिए प्रेरित कर दिया। चन्द्रसेन ने बालाजी को परास्त कर
दिया और पीछा किये जाने पर बालाजी अपनी जान बचाकर भाग निकला।
बालाजी पकडे जाने से बच गया और अपने मध्यस्थो द्वारा उसन शाहू से सरक्षण
की प्रार्थना की। चन्द्रसेन ने राजा को धमकी दी कि यदि दण्ड पाने के लिए
बालाजी उसके सुपुर्द न कर दिया गया तो वह उसकी सेवा त्याग देगा और
ताराबाई के साथ हो जायगा। शाहू के पास अन्य कोई उपाय न था अत उसने
निश्चय कर लिया कि धृष्ट सेनापति के विरुद्ध वह बालाजी का समर्थन करेगा
क्योकि सेनापति की निष्ठा कभी दृढ न रही थी और उसकी सन्तुष्टि की कोई
आशा भी न थी।

शाहू के लिए तुरन्त भयकर स्थिति प्रस्तुत हो गयी। चन्द्रसेन ने उसके
विरुद्ध सर्वत्र भारी हलचल उपस्थित कर दी। ताराबाई ने हार्दिक सम्मान
व्यक्त कर चन्द्रसेन का स्वागत किया तथा चाटुकारिता की समस्त कलाओ
द्वारा उसके गर्व को उत्तेजित कर दिया। शाहू ने परशुराम पन्त तथा खाण्डेराव
दाभाडे को मध्यस्थ बनाकर सघर्ष का अन्त करने के लिए भेजा। शाहू ने
परशुराम पन्त को मुक्त कर दिया था और उससे प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह
अपने इस कार्य मे सफल रहा तो प्रतिनिधि का उच्च पद उसको द दिया
जायगा। परन्तु चन्द्रसेन न इन दोनो प्रसिद्ध व्यक्तियो को सरलता से अपने पक्ष
म मिला लिया और उन्होने शाहू का पक्ष त्याग दिया। कुछ स्थानीय सरदारो
न भी—उदाहरणार्थ दमाजी थोरात कृष्णराव खटावकर, उदाजी चव्हाण तथा
कुछ अन्य कम प्रसिद्ध व्यक्ति—इस अवसर से लाभ उठाकर अपनी स्वार्थ-
सिद्धि के लिए शाहू के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इनमे से किसी ने एक क्षण
के लिए भी राष्ट्रीय हितो की ओर ध्यान नही दिया। इस प्रकार १७११ ई०

के उत्तरार्द्ध म शाहू की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गयी। उसकी एकमात्र आशा का केन्द्र बालाजी था जो एक सफल सैनिक तो न था परन्तु उसम अनुपम धय, नियोजन क्षमता तथा सूझबूझ थी।

ताराबाई की मुख्य निबलता यह थी कि उसके अनुचर वग क विभिन्न तत्त्वा म दृढता या सगठन का पूण अभाव था। उसके पास धन का भी नितान्त अभाव था और कोइ भी सेना खाली पेट प्रयाण नही कर सकती थी। चन्द्रसेन केवल आत्मश्लाघी था। उसम नतृत्व की कोइ क्षमता न थी। ताराबाई के भूतपूव मन्त्री तथा परामशदाता रामचन्द्र पन्त का इतना तिरस्कार हो चुका था कि उसक कार्यों के प्रति उसमे कोई लगन या रुचि न रह गयी थी। वह शाहू क नवनिर्मित मन्त्रिमण्डल मे स्थान प्राप्त करन के लिए गुप्त रूप स बातचात कर रहा था। बालाजी अवसर के अनुकूल सिद्ध हुआ। मित्रा तथा साहूकारा द्वारा उसने बहुत सा धन ऋण ले लिया, सेना भरती की और उस दल का सगठन किया जिसको बाद म लोग हजरत या स्वय राजा की सेना कहन लग। उसन एक ही शीघ्रगामी प्रहार म खटावकर का दमन कर दिया तथा थोरात और चव्हाण का पर्याप्त निग्रह कर दिया। ताराबाई के अन्य शक्तिशाली उत्कट अनुयायी कान्होजी आग्रे क विरुद्ध भी उसने कूटनीतिक सफलता प्राप्त की। इसका वणन आग किया जायगा। इस प्रकार १७१२ तथा १७१३ ई० के दो वर्षा म शाहू के कष्टा का बहुत कुछ निवारण हो गया।

परन्तु ताराबाइ पर उसके अपन परिवार की ईर्ष्याओ के कारण घोरतम आघात हुआ। राजाराम की द्वितीय वधू राजसबाई तथा उसका पुत्र सम्भाजी द्वितीय महत्त्वहीन व्यक्ति रहकर सन्तुष्ट न थ। १७१४ इ० की वर्षाऋतु मे राजसबाई ने ताराबाई तथा उसके पुत्र शिवाजी को कारागार म बन्दी बनान तथा अपने पुत्र सम्भाजी को छत्रपति के आसन पर बिठाने का उपाय किया। इस सम्बन्ध म ताराबाई ने बहुत बाद म लिखा— 'समयान्तर म हम विवश होकर एक दुखद अनुभव करना पडा। राजसबाई तथा उसके पुत्र सम्भाजी न अपन कायकर्ताओ द्वारा हम कारागार म डलवा दिया और हम यातनाएँ पहुँचायी। सम्भाजी को गद्दी पर बिठा दिया गया।' स्पष्टत ताराबाई के प्रभुत्व क प्रति प्रबल विरोध था तथा अपने जीवन के शेष ४७ वष उसको व्यवहारत कारागार म व्यतीत करन पडे। अनेक गुणसम्पन्न वीर महिला का इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना अत्यन्त दुख तथा शोक का विषय है। इस क्रान्ति म चन्द्रसेन का कोई भाग नही है क्योकि दोनो पक्षा म से शायद कोइ भी उसका विश्वास नही करता था।

कोल्हापुर के शासन म इस परिवतन का यदि आरम्भ नही तो समथन

स्वय रामचन्द्र नीलकण्ठ ने अवश्य लिया होगा क्योंकि उस पत्र का यह गद्य
मात्र योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति था। १६ नवम्बर १७१५ ई० को समाप्त किया
हुआ प्रसिद्ध आज्ञापत्र रामचन्द्र पन्त द्वारा सम्भाजी द्वितीय को सम्बोधित है।
सम्भाजी की आयु उस समय १७ वर्ष की थी। इसमें शिवाजी की नीति का
व्याख्या है। यह एक प्रिय शिष्य को लिखा गया है तथा इसमें उस शिष्य को
शासन की कला की शिक्षा दी गयी है। शिवाजी की नीति का सविस्तर विवर
इसमें सर्वत्र विद्यमान है। इस नीति के सम्पादन का मुख्य यत्न स्वय अमात्य
था। इसकी भाषा तथा शैली उस उच्च विषय के अनुकूल है। अत सम्भाजी
के उच्च आदर्शों को प्रकट करने में यह लेख अत्यधिक मूल्यवान समझा जाना
है। इस आज्ञापत्र को निकालने के बाद या तो रामचन्द्र नीलकण्ठ का देहान्त
हो गया अथवा उसने अवकाश ग्रहण कर लिया।[2]

छत्रपति के वश में इस द्विराजत्व से सदैव हानि होती रही है जिसका
मराठा जाति की एकता पर कुप्रभाव पड़ा है। सम्भाजी ने अपनी राजधानी
कोल्हापुर में स्थापित की क्योंकि पन्हाला का गढ़ ताराबाई और उसके पुत्र
के नियन्त्रण के लिए उपयुक्त था। यद्यपि शाहू की ओर सम्भाजी की वृत्ति
अधिक प्रीतिकर न थी तथापि समयान्तर में उसकी विद्वेष की भावना कम
अवश्य हो गयी। निजामुल्मुल्क के हाथ की कठपुतली बना रहकर वह यदाकदा
शाहू की शान्ति भग कर देता था परन्तु पेशवा बाजीराव उन दोनों के बराबर
जोड़ का था और उसने शाहू को चिन्ताओं से मुक्त कर दिया। उसकी ओर से
निरन्तर विश्वासघातक कार्यों को सहन करने के पश्चात् शाहू ने अपने चचेरे
भाई को खुले युद्ध में परास्त कर दिया परन्तु १७३१ ई० में वारणा के सन्धि
पत्र द्वारा उसने उसके लिए उदार शर्तें निश्चित कीं। यह कोल्हापुर के वर्तमान
वश का स्थापना पत्र है जिसका आगे विस्तार से वर्णन किया जायेगा।

शाहू की इच्छा थी कि परशुराम पन्त को उसके विश्वासघात के लिए
कठोर दण्ड दिया जाय परन्तु अपने राजभक्त चिटनिस खण्डो बल्लाल की
मध्यस्थता द्वारा उसके समक्ष यह इच्छा प्रकट की गयी कि वह उसको क्षमा
कर दे तथा उसे प्रतिनिधि के प्राचीन पद पर पुन नियुक्त कर दे। २६ मई
१७१८ ई० को उसके देहावसान पर उसका द्वितीय पुत्र श्रीपतराव प्रतिनिधि के
पद पर नियुक्त हुआ क्योंकि उसके ज्येष्ठ पुत्र कृष्णाजी ने कोल्हापुर शाखा के
अधीन वही पद पहले से स्वीकार कर लिया था।

---

२ हाल ही में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें उस स्थान का निर्देश है
जहाँ पर पन्हाला के गढ़ में उसका अन्त्येष्टि संस्कार हुआ।

७ **बालाजी का पेशवा का पद प्राप्त करना**—बालाजी किस प्रकार पेशवा के पद पर नियुक्त हुआ, इसकी एक रोचक कहानी है। चन्द्रसेन की अपेक्षा अधिक चतुर तथा उससे अधिक वीर अपने दूसरे विरोधी कान्होजी आग्रे को उसने शाहू के पक्ष में कर लिया। वह पश्चिमी तट का संरक्षक तथा मराठा नौ-सेना का प्रधान पुरुष था। आंग्ल-भारतीय इतिहास में उसका चरित्र सुप्रसिद्ध है। ताराबाई के शासनकाल में कान्होजी ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। शाहू के मुगल शिविर से वापस आने पर वह तुरंत शाहू के साथ हो गया और उसका आज्ञाकारी तथा सहायक बन गया। परन्तु चन्द्रसेन जाधव के पक्ष-त्याग के बाद वह ताराबाई के दल से मिल गया और उसने शाहू के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया तथा शाहू के कई गढ़ों पर, जो घाट की पहाड़ियों पर स्थित थे अधिकार कर लिया। शाहू ने उसका दमन करने के लिए अपने पेशवा बहिरो पंत पिंगले को भेजा। परन्तु बहिरोपंत कान्होजी के जोड़ का न था। कान्होजी ने उसको पकड़ लिया और कोलाबा में बन्द कर दिया तथा शाहू की राजधानी सतारा पर आक्रमण करने को उतारू हो गया। १७१३ ई० की वर्षाऋतु में ताराबाई को असीम विजय प्राप्त हुई। इसी समय पर सुयोग्य निजामुलमुल्क दक्षिण में सम्राट् के सूबों का सूबेदार नियुक्त हुआ था। इससे शाहू की स्थिति और भी अधिक बाधापूर्ण हो गया।

शाहू आग्रे का दमन करने के लिए बेचैन हो उठा था। उसने सेनाकर्ते बालाजी को उसके विरुद्ध प्रयाण करने का परामर्श दिया तथा वचन दिया कि यदि वह अपने कार्य में सफल हुआ तो उसे पेशवा पद पर नियुक्त कर दिया जायगा। बालाजी ने प्रार्थना की कि वह राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए सहर्ष तैयार है परन्तु शर्त यह है कि वह स्वीकृत पेशवा के रूप में भेजा जाये तथा उसे युद्ध के गम्भीर विषयों को निर्णीत करने के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। उसने कहा—'इस शत्रु ने आपके पेशवा को पकड़ने और उसको बन्दी बनाने का दुस्साहस किया है। इससे उसका यह इरादा स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं छत्रपति के प्रति भी वह इसी प्रकार का आचरण करेगा। तब क्या यह आवश्यक नहीं है कि कान्होजी को यह बता दिया जाय कि परास्त पेशवा के स्थान पर दूसरे पेशवा की नियुक्ति कर दी गयी है तथा बिना विघ्न-बाधा के राजा का शासन चल रहा है? उसके दमन का केवल यही उपाय है।' यह तर्क लाजवाब था। बालाजी को अपना उद्देश्य प्राप्त हो गया। शाहू ने तुरंत उसको पेशवा का पद भेंट कर दिया तथा मंजरी के क्षेत्र पर उचित संस्कार के साथ उसकी इस पद पर नियुक्ति कर दी। यह स्थान पूना के ८ मील दक्षिण में है। उस समय उनका शिविर वहीं पर था। इस प्रकार १७ नवम्बर, १७१३ ई० का दिन केवल बालाजी

तथा उसके परिवार के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मराठा जाति के लिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस दिन से सत्ता छत्रपति के हाथों से निकलकर पेशवा के हाथों में स्थानान्तर होने का प्रारम्भ होता है। समयान्तर में नवीन पेशवा के पक्ष के व्यक्तियों में से ही अन्य मन्त्रियों की नियुक्तियाँ होने लगी, जिनकी निष्ठा तथा भक्ति अविचल सिद्ध हो चुकी थी। अम्बाजी पन्त पुरन्दरे पेशवा का मुतलिक या सहायक पेशवा नियुक्त किया गया रामजीपन्त भानु उसका फडनिस या खजाची नियुक्त हुआ। यह पद बाद में नाना फडनिस नामक उस परिवार के एक अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रान्तिकारी परिवर्तन द्वारा भट्ट, पुरन्दरे, भानु तथा भविष्य के कुछ अन्य प्रसिद्ध परिवार सुख या दुख के साथी के रूप में संगठित हो गये जो भविष्य में मराठा राज्य के उत्तरदायित्व को सम्मिलित रूप से संभालते रहे।

कान्होजी आंग्रे और बालाजी बहुत दिनों से पड़ोसी मित्रों के रूप में एक दूसरे से परिचित थे। वे पश्चिमी समुद्र-तट के एक ही प्रदेश के निवासी थे। सामान्य मित्रों तथा गुप्त कार्यकर्ताओं द्वारा बालाजी ने कान्होजी की अन्तरात्मा को प्रेरणा दी कि किस प्रकार शाहू के आधिपत्य में सम्मिलित होकर कार्य करने में उनके व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि होगी तथा किस प्रकार कोल्हापुर के नष्टप्राय दल का साथ देने से उनका नाश हो जायगा। उसने यह आग्रह किया कि मराठा राज्य शिवाजी महान् की देन है और यह उनका धर्म है कि वर्तमान संकट बेला में थल तथा जल दोनों प्रकार की सेना के समान सहयोग तथा सुसंगठित कार्य द्वारा वे उसका संरक्षण करें। शाहू उदार तथा विशालहृदय शासक है जो अपने किसी विरोधी को किसी भी प्रकार हानि नहीं पहुँचाना चाहता, सिद्दियों अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों जैसे शत्रुओं ने स्वयं कान्होजी को घेर रक्खा है वह अकेला बहुत दिनों तक उनके विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा नहीं कर सकता जब तक कि केन्द्रीय शासन का पूर्ण समर्थन उसको प्राप्त न हो अतः नीति तथा हित दोनों प्रकार की युक्तियाँ इस पक्ष में थीं कि वह शाहू की सहानुभूति प्राप्त करे तथा साथ ही पेशवा के रूप में बालाजी ने यह वचन दिया कि आंग्रे के प्रति की गयी समस्त प्रतिज्ञाओं का गम्भीरता-पूर्वक पालन वह स्वयं करायगा।

इस प्रबल प्रेरणा का प्रभाव शीघ्र ही प्रकट हुआ। जहाँ अस्त्र शस्त्र असफल रहे थे चतुर शब्द शीघ्र ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए। कान्होजी इस पर सहमत हो गया कि पेशवा के प्रति उचित सम्मान के साथ वह बालाजी से भेंट करेगा और अपने भावी सम्बन्धों के लिए उससे स्वयं शर्तें निश्चित कर लेगा। बालाजी ने पूना से लगभग ३० मील पश्चिम में लोहगढ़ के समीप तक

प्रयाण किया। यही पर कान्होजी ठहरा हुआ था। कान्होजी गढ से उतर आया तथा जनवरी १७१४ ई० के आरम्भ म लोनावाला के निकट बलवन म उन दोना का हार्दिक सम्मिलन हुआ। काफी देर तक उनमे वार्तालाप होता रहा। छत्रपति तथा सरखेल के मध्य स्थायी शान्ति की शर्तों पर उन्होन अपनी बातचीत की। बाद को य शर्तें उन सधियो की आधार सिद्ध हुइ जो अन्य अधीन सामन्ता के साथ हुइ। इस प्रकार भावी मराठा प्रसार के लिए एक नवीन सविधान की रचना शनै शन हो गयी, क्याकि शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् युद्ध तथा अशान्ति के काल म प्राचीन सविधान सवथा अस्त व्यस्त हो गया था। शाहू की जानकारी तथा अनुमोदन के साथ जब शर्तों पर दोना पक्षो की सहमति प्राप्त हो गयी, तो दोना सामन्त साथ साथ कोलाबा की ओर बढे जहा पर ८ फरवरी को यह सधि-पत्र प्रमाणित कर दिया गया। भूतपूव पेशवा बहिरोपन्त कारागार से मुक्त कर दिया गया। कान्होजी शाहू को प्रणाम करने सतारा म उपस्थित हुआ। यहा पर विशेष आमोद प्रमोद के साथ १७१५ ई० को होली का पव मनाया गया।[3] इस सधि पत्र ने विशेष रूप से छत्रपति तथा आग्रे के अधिकृत प्रदेशा का सीमा-विभाजन कर दिया तथा पारस्परिक सहयोग और सामान्य रक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

इस सकटपूण परिस्थिति की सुखद समाप्ति का प्राकृतिक प्रभाव जजीरा के सिद्दी तथा बम्बई के अग्रेजा की नीति पर पडा। य दोना कान्होजी के कट्टर शत्रु थे तथा इन दोना ने मराठा महत्त्वाकाक्षा के विरुद्ध सदव ही दृढ विरोध प्रकट किया था। ३० जनवरी १७१५ ई० को सिद्दी न तुरन्त आग्रे से सधि स्थापित कर ली और १७ वप तक इस शान्ति म कोई विघ्न न पडा।

परन्तु बम्बई के अग्रेज अपनी वृत्ति को सरलता स त्यागना न चाहते थे और उनको, विशषकर उनके युद्धप्रिय प्रेसीडेण्ट चार्ल्स बून को सबक देने की आवश्यकता थी। उसन २० दिसम्बर १७१५ ई० का अपना पद ग्रहण किया था। शाहू की सत्ता तथा उसके मान का विकास प्रत्यक दिशा मे तीव्र गति से हो रहा था। बून की चचल तथा आक्रामक प्रकृति न इसका विरोध किया। उसन एक प्रबल नौ-अभियान सगठित करके समुद्री डाकू आग्रे का अन्त करना चाहा (*उस समय आग्रे को अग्रेजा न डाकू की उपाधि द रखी थी*)। चूकि विशेष इतिहास पुस्तका म आग के वृत्तान्ता का सविस्तार वणन है अतएव इस घटना के पूण वणन का यहाँ पर आवश्यकता नही है। क्लीमेण्ट डाउनिंग

---

[3] सधि-पत्र क पूण पाठ्याश का अध्ययन सावजी तथा पारसनीस के मुद्रित सग्रहा म किया जा सकता है।

की प्रकाशित डायरी (दैनन्दिनी) स्पष्ट है और इसमें वर्णन है कि अंग्रेजों का अभियान किस प्रकार असफल रहा और किस प्रकार वर्ष प्रतिवर्ष अंग्रेजों ने इसकी पुनरावृत्ति की। अन्त में गोआ के पुर्तगालियों से मिलकर अंग्रेजों ने एक संघ की स्थापना की और १७२१ ई० में आंग्रे के विरुद्ध उन्होंने सम्मिलित आक्रमण किया। इस समय बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो चुकी थी और उसके पुत्र बाजीराव ने अपना नया पद संभाला ही था। उसने अपनी सर्वप्रथम विजय अंग्रेजों पर यकायक आक्रमण करके और कोलाबा के पास उन्हें परास्त करके प्राप्त की। अंग्रेजों ने भी इस समय शान्त रहना ही उचित समझा। उन्होंने पेशवा से सन्धि कर ली और कई वर्षों तक इसमें किसी प्रकार का विघ्न नहीं डाला गया।

तिथिक्रम

अध्याय २

११ अगस्त, १६७१	निजामुल्मुल्क का जन्म।
१७०८	दक्षिण में मुगल सूबेदार।
१७०८–१७१३	दाऊदखा पनी।
फरवरी, १७१३— अप्रल, १७१५	निजामुल्मुल्क।
मई, १७१५— नवम्बर, १७१८	सयद हुसनअलीखा।
दिसम्बर, १७१८— अगस्त, १७२०	आलमअली।
अगस्त, १७२०— जनवरी, १७२२	निजामुल्मुल्क।
१७०६–१७१०	सम्राट् के विरुद्ध राजपूत मित्र सगठन।
१७११	वजीर मुनीमखाँ की मत्यु।
१७ फरवरी, १७१२	बहादुरशाह की मत्यु।
१२ जनवरी, १७१३	जुल्फिकारखाँ का वध।
१६ जनवरी, १७१३	फरुखसियर सम्राट के पद पर।
नवम्बर, १७१३— जुलाई, १७१४	सयद हुसनअली का मारवाड पर आक्रमण।
१७१३	जयसिह सवाई मालवा का सूबेदार नियुक्त।
१० मई, १७१५	जयसिह द्वारा मालवा मे मराठों का परास्त होना।
२६ अगस्त, १७१५	दाऊदखा पनी की युद्ध में मृत्यु।
११ जनवरी, १७१७	मानसिह मोरे के स्थान पर शाहू द्वारा खाण्डेराव दाभाडे सेनापति नियुक्त।
१७१८	शकरजी मल्हार द्वारा सयद हुसनअली के लिए मराठा सहायता का प्रस्ताव।
१ अगस्त, १७१८	सहमति की शर्तों का शाहू द्वारा प्रवतन।
नवम्बर, १७१८	बालाजी विश्वनाथ द्वारा दिल्ली के मराठा अभियान का नेतृत्व।

१३ फरवरी, १७१६	सयद-बन्धुओं से सम्राट की भेंट।
२८ फरवरी, १७१६	सम्राट पदच्युत, दिल्ली के समीप कुछ मराठों की हत्या।
३ माच, १७१६	चौथ का पट्टा प्रमाणित।
१५ माच, १७१६	सरदेशमुखी का पट्टा प्रमाणित।
२० माच, १७१६	बालाजी विश्वनाथ दिल्ली से वापस।
४ जुलाई, १७१६	बालाजी विश्वनाथ का सतारा पहुँचना।
२ अप्रल, १७२०	बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु।

अध्याय २

नवयुग का उदय

[१७१५-१७२० ई०]

१ शाही राजनीति शाहू के पक्ष में।	२ मित्र राजपूत राजा।
३ सयद हुसनअली दक्षिण मे।	४ हुसनअली का मराठा सहायता प्राप्त करना।
५ मराठा अधीनता की शर्तें।	६ दिल्ली को बालाजी का अभियान।
७ सशस्त्र सघर्ष।	८ येसुबाई की कारागार से मुक्ति तथा मृत्यु।
९ चौथ और सरदेशमुखी की व्याख्या।	१० जागीरदारी का आरम्भ तथा उसके दोष।
११ वशपरम्परागत पद।	१२ बालाजी की मृत्यु, चरित्र निरूपण।

१ शाही राजनीति शाहू के पक्ष मे—शाहू की मुक्ति तथा पेशवा के पद पर बालाजी विश्वनाथ की नियुक्ति के बीच मे जो ६ वर्ष व्यतीत हुए उनमे मराठो के राजा के रूप मे शाहू की स्थिति स्थिर हो गयी। घरेलू घटनाओ की अपेक्षा १७ फरवरी, १७१२ ई० को बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात दिल्ली दरबार मे हुए अनेक तीव्र और क्षणिक परिवर्तनो से मराठा राजनीति को विशेष बल प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकारी जहादारशाह को एक वर्ष के अन्दर ही दुर्भाग्य ने आ घेरा और १७ जनवरी १७१३ ई० को मुख्यतया प्रसिद्ध सयद-बन्धुओ—अब्दुल्ला तथा हुसनअली—के समर्थन द्वारा फर्रुखसियर राजगद्दी पर आसीन हुआ। उन्होने वृद्ध अनुभवी सेनापति जुल्फिकारखा का वध कर दिया, जिसकी दृष्टि दक्षिण पर लगी हुई थी और जो यदि जीवित रहता तो हैदराबाद मे सम्भवतया अपना शासन स्थापित कर लेता। फर्रुखसियर के शासन-काल के ६ वर्ष उसमे तथा इन दो शक्तिशाली मन्त्रियो के बीच षड्यन्त्र और प्रति षड्यन्त्र मे व्यतीत हो गये। प्रत्येक ने यथाशक्ति एक-दूसरे का नाश करने का प्रयत्न किया। सयद-बन्धुओ को केवल सत्ता ही प्राप्त न थी, वरन् उनमे प्रशसनीय योग्यता के साथ ही साथ दुर्लभ गुण भी थे। यदि उनको यथेष्ट स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती, तो सम्भवत वे पतनोन्मुख मुगल प्रशासन की दशा को सुधारकर उसको बहादुरशाह के प्रशासन के स्तर तक पहुँचा देते। परन्तु

१३ फरवरी, १७१६	सयद-बंधुओं से सम्राट की भेंट।
२८ फरवरी, १७१६	सम्राट पदच्युत, दिल्ली के समीप कुछ मराठों की हत्या।
३ माच, १७१६	चौथ का पट्टा प्रमाणित।
१५ माच, १७१६	सरदेशमुखी का पट्टा प्रमाणित।
२० माच, १७१६	बालाजी विश्वनाथ दिल्ली से वापस।
४ जुलाई, १७१६	बालाजी विश्वनाथ का सतारा पहुँचना।
२ अप्रल, १७२०	बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु।

अध्याय २

नवयुग का उदय

[१७१५-१७२० ई०]

१	शाही राजनीति शाहू के पक्ष में।	२	मित्र राजपूत राजा।
३	सयद हुसनअली दक्षिण मे।	४	हुसनअली का मराठा सहायता प्राप्त करना।
५	मराठा अधीनता की शर्तें।	६	दिल्ली को बालाजी का अभियान।
७	सशस्त्र सघष।	८	ग्रेसुबाई की कारागार से मुक्ति तथा मृत्यु।
९	चौथ और सरदेशमुखी की व्याख्या।	१०	जागीरदारी का आरम्भ तथा उसके दोष।
११	वशपरम्परागत पद।	१२	बालाजी की मत्यु, चरित्र निरूपण।

१ **शाही राजनीति शाहू के पक्ष मे**—शाहू की मुक्ति तथा पशवा के पद पर बालाजी विश्वनाथ की नियुक्ति क बीच म जो ६ वप व्यतात हुए, उनम मराठा क राजा के रूप म शाहू की स्थिति स्थिर हा गयी। घरेलू घटनाआ की अपेक्षा १७ फरवरी, १७१२ ई० को बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात दिल्ली दर बार म हुए अनक तीव्र और क्षणिक परिवतना से मराठा राजनीति को विशेष बल प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकारी जहादारशाह का एक वप के अन्दर ही दुर्भाग्य ने आ घेरा और १७ जनवरी, १७१३ इ० को मुख्यतया प्रसिद्ध सयद बधुआ—अब्दुल्ला तथा हुसनअली—के समथन द्वारा फरुखसियर राजगद्दी पर आसीन हुआ। उन्होंने वृद्ध अनुभवी सेनापति जुल्फिकारखां का वध कर दिया, जिसकी दृष्टि दक्षिण पर लगी हुइ थी और जो यदि जीवित रहता तो हैदराबाद मे सम्भवतया अपना शासन स्थापित कर लेता। फरुखसियर के शासन काल के ६ वप उसम तथा इन दो शक्तिशाली मन्त्रिया के बीच षडयन्त्र और प्रति षड्यन्त्र म व्यतीत हो गये। प्रत्येक ने यथाशक्ति एक-दूसर का नाश करन का प्रयत्न किया। सैयद बधुआ को केवल सत्ता ही प्राप्त न थी, वरन् उनम प्रशासनीय योग्यता के साथ ही साथ दुलभ गुण भी थे। यदि उनको यथेष्ट स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती, तो सम्भवत वे पतनोन्मुख मुगल प्रशासन की दशा को सुधारकर उसको बहादुरशाह के प्रशासन के स्तर तक पहुँचा देत। परन्तु

मुगल वंश मे निराशाजनक फूट पड गयी और मराठों को उनका अभीष्ट अवसर प्राप्त हो गया ताकि वे अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर प्रत्येक दिशा में अपना प्रसार कर सकें।

जुल्फिकारखाँ के प्रतिनिधि के रूप में १७०८ ई० से दाऊदखाँ पन्नी मुगल अधिकृत दक्षिण प्रदेश पर शासन कर रहा था। जब फर्रुखसियर राजगद्दी पर बैठा और जुल्फिकारखाँ का वध हो गया तब निजामुल्मुल्क खानखाना की उपाधि से चिनकिलिचखाँ गाजीउद्दीन फीरोजजंग दक्षिण के शासन पर नियुक्त किया गया। उस समय उसकी आयु ४२ वर्ष (जन्म १६७१ ई०) की थी। दाऊदखाँ का तबादला गुजरात को हो गया। जुलाई १७१३ ई० में वह औरंगाबाद से रवाना हो गया। अक्टूबर में निजामुल्मुल्क ने अपना पद सँभाल लिया। इसी अवसर पर बालाजी विश्वनाथ पेशवा नियुक्त हुआ था। इस प्रकार इन दो महापुरुषों तथा उनके वंशजों ने मिलकर एक शताब्दी तक दक्षिण के इतिहास का निर्माण किया। उनमें कभी मित्रता का सम्बन्ध रहा, और कभी शत्रुता का। परिणामस्वरूप जब महाराष्ट्र में पेशवा का एक भी चिह्न विद्यमान नहीं रहा, तब भी निजाम का राज्य ब्रिटेन की छत्रछाया में तथा स्वतन्त्र भारत में भी १९४६ ई० तक वर्तमान रहा। यह कैसे हुआ, इसकी पूर्ण व्याख्या मराठा इतिहास में है।

सम्राट तथा सैयद-बन्धुओं के तीव्र वैमनस्य के कारण चिनकिलिचखाँ दक्षिण मे अपने स्थान पर केवल दो वर्ष (१७१३ १७१५ ई०) तक ही रहा। फर्रुखसियर ने १७१५ ई० में हुसनअली को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया तथा निजाम को उसकी इच्छा के विरुद्ध मुरादाबाद की महत्त्वहीन फौजदारी पर भेज दिया। इन दो वर्षों में निजामुल्मुल्क अपनी सत्ता को दृढ करने के लिए कुछ अधिक न कर सका। उसने अपने स्थानीय सहायकों को प्रोत्साहन दिया और रम्भाजी निम्बालकर चन्द्रसेन जाधव तथा अन्य पुरुषों से जो शाहू के विरुद्ध उठ खडे हुए थे मित्रता कर ली। उसने यह भी प्रयत्न किया कि पूना तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश पर मुगल अधिकार को दृढ कर दे जिससे शाहू तथा उसके पेशवा की प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण के साधन प्राप्त हो जायें। इस समय वह राजकीय वैभव के साथ औरंगाबाद मे निवास करता था। अपने दो पुत्रों—गाजीउद्दीन तथा नासिरजंग—की खतने की रस्म पर उसने बहुत धन व्यय किया। उस समय नासिरजंग की अवस्था लगभग ५ वर्ष की थी। शाहू प्रत्येक दिशा से तंग किया जाता रहा—विशेषकर चन्द्रसेन जाधव के द्वारा—और पेशवा बालाजी भारी बाधाओं से अपने स्वामी की स्थिति की रक्षा करने में व्यस्त रहा। निम्नलिखित पत्र मे जो शाहू ने अपने पेशवा को

१७१५ ई० म किसी समय लिखा था, उसकी सकटपूण स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है

'आपकी गतिविधि तथा योजनाओ का कोई भी समाचार हमको बहुत दिना से प्राप्त नही हुआ है। यहाँ पर अपनी परिस्थिति के विषय मे हमने आपको पहले ही सविस्तार सूचना भेज दी है। निजाममुलमुल्क की प्रेरणा से कोल्हापुर का हमारा भाई विद्रोही प्रवृत्तियो म व्यस्त है। इस प्रकार एक की सकीण दृष्टि तथा दूसरे का विश्वासघात सम्मिलित होकर हमको हानि पहुँचा रह ह। परन्तु हम इस परिस्थिति स किसी प्रकार भयभीत नही हैं। हमारा भय केवल यह है कि इतनी दूर स जहाँ पर आप इस समय हैं, किस प्रकार इन षड्यन्त्रो के विरुद्ध मोर्चा ले सकते हैं। परन्तु हम आपकी अनुपम क्षमता तथा सेवा से आश्वस्त होकर पूणतया निश्चिन्त तथा शान्त हैं। विभिन्न स्थानो म नियुक्त अपन बिखरे हुए सैनिको को हमने एकत्र कर लिया है और यदि आप अपन साधारण कार्यों को छोडकर तुरन्त यहा उपस्थित हो जाये तो हम अपनी चिन्ताओ स बहुत कुछ मुक्त हो जायेंगे।'

निजामुल्मुल्क के उत्तर की ओर प्रस्थान से शाहू कुछ समय के लिए चिन्तामुक्त हो गया। सैयद हुसैनअली के आगमन पर उसकी स्थिति बदल गयी। गुजरात के दाऊदखाँ पनी को सम्राट ने सैयद के विरुद्ध प्रयाण करने और उसका वध कर डालने की आज्ञा दी। इस काय के लिए उसने शाहू को भी प्रोत्साहन दिया। इस प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप २६ अगस्त, १७१५ ई० को बुरहानपुर के समीप दाऊदखा तथा सैयद के बीच घोर युद्ध हुआ। इसमे दाऊदखा मारा गया और सयद विजयी हुआ। अत शाहू के भविष्य पर उस नीति का प्रभाव पडा जिसका अनुसरण सैयद हुसैनअलीखा दिल्ली म अपने भाई सैयद अब्दुल्ला के सहयोग से करने वाला था। दोनो बन्धुओ की आत्म सुरक्षा की प्रवृत्ति एक एसा तत्त्व सिद्ध हुआ जिसने आगामी दो वर्षो के लिए शाहू की नीति को निर्धारित किया।

२ **मित्र राजपूत राजा**—सम्राट तथा उसके शक्तिशाली मन्त्रियो के बीच म हो रहे सघष की ओर प्रमुख राजपूत राजाओ की प्रवृत्ति एक अन्य सबल तत्त्व था जिसका शाहू के हितो पर प्रभाव पडा। राजपूतो को सन्तुष्ट करने की अकबर की नीति का औरगजेब न सवथा त्याग दिया था। उसकी मृत्यु से सम्राट के प्रति अपनी निष्ठा को त्याग दने का उनको सुलभ अवसर प्राप्त हो गया। इस राजद्रोह म जिन राजाओ का प्रमुख स्थान है वे विशेष सावधानी स उल्लेख के योग्य है। उदयपुर के राणा अमरसिंह न १७०० स १७१६ ई० तक और उसके पुत्र सग्रामसिंह न १७१६ स १७३४ ई० तक शासन

किया। ये दोनों सबल तथा चतुर थे। उन्होंने मुसलमान सम्राट की आज्ञा-पालन करने से इन्कार कर दिया। जोधपुर पर अजीतसिंह राठौर का शासन था। वह यद्यपि नाममात्र का सम्राट का सहायक था परन्तु उदयपुर के राणाओं की अपेक्षा वह हृदय में उसका अधिक अच्छा मित्र न था। अजीतसिंह ने १६७८ से १७२४ ई० तक अपने राज्य पर शासन किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अभयसिंह हुआ जिसने १७२४ से १७५० ई० तक शासन किया। वह इस काल के समस्त राजपूत राजाओं से अधिक भयानक था। जयपुर राज्य पर सवाई जयसिंह नामक एक प्रसन्नचित्त तथा बहुगुणसम्पन्न शासक का शासन था। वह औरंगजेब के राजभक्त सेनापति महान् मिर्जा राजा का चतुर्थ वंशज था। सवाई जयसिंह ने अपनी आरम्भिक युवावस्था में दक्षिण में सम्राट की सेवा की थी। नवम्बर १७०१ तथा अप्रैल १७०२ ई० के बीच के महीनों में विशालगढ़ के दुर्ग को हस्तगत करने में उसने औरंगजेब की विशेष सहायता की थी यद्यपि उस समय वह युवक ही था। मुख्यतया अपने दिल दिमाग के अनेक बहुमूल्य गुणों के कारण औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य की मन्त्रणाओं में उसने पर्याप्त प्रभाव तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। निम्न गुण उसने निरन्तर तथा कठिन परिश्रम द्वारा प्राप्त किये थे—साहित्य तथा विद्या के प्रति प्रगाढ़ प्रेम विज्ञान विशेषकर ज्योतिष का अध्ययन जीवन में उच्च आदर्शों द्वारा प्रभावित हितकारक तथा अनुरंजक भावना पुरुषों के सम्बन्ध में गम्भीर विवेक और अपने काल की अपेक्षा अत्यधिक उन्नत सुधार की लगन। इस सम्बन्ध में उस विशेष अनुराग का भी उल्लेख होना चाहिए जो शाहू तथा जयसिंह के बीच में विद्यमान था क्योंकि इसके द्वारा दो हिन्दू जातियों—राजपूतों तथा मराठों—के बीच में व्यापक राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुए। समस्त भारत के कवियों तथा लेखकों का आश्रयदाता जयसिंह था और शाहू सन्तों तथा योद्धाओं का। हाल ही में कई महाराष्ट्रीय नामों का पता लगा है जो जयसिंह की दृष्टि में पूज्य थे और जिनको उसने उच्च स्थान दिये थे। उसके पुरोहित और गुरु दोनों ही दक्षिणी ब्राह्मण थे। औरंगजेब के शिविर में अपने अल्प निवास-काल में ही उसने उनकी योग्यता के विषय में उच्च धारणा बना ली थी।

मराठा शाहू तथा राजपूत जयसिंह के विशेष सम्पर्क का आगे चलकर उस क्रान्तिकारी काल में जो महान् प्रभाव पड़ा होगा उसकी कल्पना ही की जा सकती है। वह आदर्श क्या हो सकता था जिसने उनको तथा उनके समाज के हृदयों को प्रेरणा दी। राजनीति की अपेक्षा हिन्दुओं को धर्म की चिन्ता सदैव अधिक रही है। १६६९ ई० में औरंगजेब द्वारा बनारस के काशी विश्वनाथ

मन्दिर का विनाश प्रत्येक साधारण हिन्दू के मस्तिष्क पर अविस्मरणीय आघात था। हम जानते हैं कि शिवाजी तथा उनकी माता पर इसका क्या प्रभाव पड़ा और किस प्रकार २५ वर्षों तक सम्राट के विरुद्ध अपने संघर्ष में मराठों को इसने शक्ति प्रदान की। अन्य विषयों में सम्राट से उनका कोई झगड़ा न था। उनको केवल एक ही आश्वासन की आवश्यकता थी कि उनकी धार्मिक स्वाधीनता में हस्तक्षेप न होगा। अपने घर से बाहर उनको राजनीतिक प्रभुत्व की पिपासा न थी। अपने धर्म को सुरक्षित रखने के प्रति उनके उत्साह का ही यह अप्रत्यक्ष परिणाम था कि बाद में उन्होंने अपनी सत्ता का प्रसार कर लिया। जजिया के विषय पर औरंगजेब को लिखे गये अपने प्रसिद्ध पत्र में शिवाजी ने इसे स्पष्ट कर दिया था। हिन्दू मन्दिरों का विनाश, बलपूर्वक धर्म परिवर्तन, जजिया तथा हिन्दुओं के प्रशासनीय अपकर्ष की सम्राट की धर्मान्ध नीति ने समस्त हिन्दू जाति को उसके विरुद्ध प्रकुपित कर दिया था और वे सम्राट के विरुद्ध हो गये थे। अपने धर्म पर इस आक्रमण के वे घोर विरोधी थे। केवल इसी को वे रोकना चाहते थे। हिन्दूपद पादशाही का स्वप्न प्रादेशिक महत्त्वाकांक्षा से सम्बन्धित न था, यह तो विशेषतया धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित था।[1]

निश्चय ही शाहू तथा जयसिंह ने मुगलों की इस नीति पर अपने विचारों का स्वतन्त्रतापूर्वक आदान प्रदान किया तथा बाद में प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से एक प्रकार का अहस्तक्षेप या सहनशीलता का समझौता स्थापित करने का प्रयत्न किया—जैसा कि अकबर महान् ने सिखाया और कार्यान्वित किया था। जब बहादुरशाह ने सिक्खों के विरुद्ध जिहाद आरम्भ किया, तो उपरिवर्णित प्रमुख राजपूत राजाओं ने पुष्कर झील के तट पर दीर्घकालीन सम्मेलन किया और पर्याप्त विचार विनिमय के बाद एक गम्भीर सर्वसम्मत नीति की घोषणा की कि वे भविष्य में अपनी कन्याओं का विवाह मुसलमानों से करेंगे और यदि इस निश्चय के विरुद्ध कोई राजा आचरण करेगा तो यदि आवश्यक हुआ तो बलपूर्वक अन्य राजा मिलकर उसका दमन करेंगे। इस घोषणा के अनुसार उदयपुर के राणा अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध रक्त के मान लिये गये थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कन्याओं को मुसलमानों को देने से सदैव इन्कार किया था। अतः पुष्कर सम्मेलन द्वारा यह विहित हो गया कि यदि किसी राजा के उदय

---

[1] सर जदुनाथ सरकार ने इसकी बहुत अच्छी व्याख्या की है—'हिस्ट्री ऑव औरंगजेब'—खण्ड ३, इस्लामी राज्यधर्म का अध्याय। जजिया का अर्थ है—स्थानापन्न कर, अनुग्रह का मूल्य अर्थात वह कर व दण्ड जो धार्मिक विषयों में स्वाधीनता के बदले लिया जाय।

किया। ये दोनों सबल तथा चतुर थे। उन्होंने मुसलमान सम्राट् की आज्ञा पालन करने से इन्कार कर दिया। जोधपुर पर अजीतसिंह राठौर का शासन था। वह यद्यपि नाममात्र को सम्राट का सहायक था परन्तु उदयपुर के राणाओं की अपेक्षा वह हृदय में उसका अधिक अच्छा मित्र न था। अजीतसिंह ने १६७८ से १७२४ ई० तक अपने राज्य पर शासन किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अभयसिंह हुआ जिसने १७२४ से १७५० ई० तक शासन किया। वह इस काल के समस्त राजपूत राजाओं से अधिक भयानक था। जयपुर राज्य पर सवाई जयसिंह नामक एक प्रसन्नचित्त तथा बहुगुणसम्पन्न शासक का शासन था। वह औरंगजेब के राजभक्त सेनापति महान् मिर्जा राजा का चतुर्थ वंशज था। सवाई जयसिंह ने अपनी आरम्भिक युवावस्था में दक्षिण में सम्राट की सेवा की थी। नवम्बर १७०१ तथा अप्रैल १७०२ ई० के बीच के महीनों में विशालगढ़ के दुर्ग को हस्तगत करने में उसने औरंगजेब की विशेष सहायता की थी यद्यपि उस समय वह युवक ही था। मुख्यतया अपने दिलो दिमाग के अनेक बहुमूल्य गुणों के कारण औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य की मन्त्रणाओं में उसने पर्याप्त प्रभाव तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। निम्न गुण उसने निरन्तर तथा कठिन परिश्रम द्वारा प्राप्त किये थे—साहित्य तथा विद्या के प्रति प्रगाढ़ प्रेम विज्ञान विशेषकर ज्योतिष का अध्ययन जीवन में उच्च आदर्शों द्वारा प्रभावित हितकारक तथा अनुरंजक भावना पुरुषों के सम्बन्ध में गम्भीर विवेक और अपने काल की अपेक्षा अत्यधिक उन्नत सुधार की लगन। इस सम्बन्ध में उस विशेष अनुराग का भी उल्लेख होना चाहिए जो शाहू तथा जयसिंह के बीच में विद्यमान था क्योंकि इनके द्वारा ही हिन्दू जातियों—राजपूतों तथा मराठों—के बीच में व्यापक राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुए। समस्त भारत के कवियों तथा लेखकों का आश्रयदाता जयसिंह था और शाहू सन्तों तथा योद्धाओं का। हाल ही में कुछ महाराष्ट्रीय नामों का पता लगा है जो जयसिंह की दृष्टि में पूज्य थे और जिनको उसने उच्च स्थान दिये थे। उसके पुरोहित और गुरु दोनों ही दक्षिणी ब्राह्मण थे। औरंगजेब के शिविर में अपने अल्प निवास-काल में ही उसने उनकी योग्यता के विषय में उच्च धारणा बना ली थी।

मराठा शाहू तथा राजपूत जयसिंह के विशाल सम्पर्क की ओर ध्यान देकर उस क्रान्तिकारी काल में जो महान् प्रभाव पड़ा होगा उसकी कल्पना ही की जा सकती है। यह आन्तरिक बल ही सकता था जिसने उनके तथा उनके समाज के हिन्दुओं को प्रेरणा दी। राजनीति की अपेक्षा हिन्दुओं को धर्म की चिन्ता सर्वोपरि रही है। १६६९ ई० में औरंगजेब द्वारा बनारस के काशी विश्वनाथ

मन्दिर का विनाश प्रत्येक साधारण हिंदू के मस्तिष्क पर अविस्मरणीय आघात था। हमे ज्ञात है कि शिवाजी तथा उनकी माता पर इसका क्या प्रभाव पड़ा और किस प्रकार २५ वर्षों तक सम्राट् के विरुद्ध अपने संघर्ष मे मराठों को इसने शक्ति प्रदान की। अन्य विषयों में सम्राट से उनका कोई झगडा न था। उनको केवल एक ही आश्वासन की आवश्यकता थी कि उनकी धार्मिक स्वाधीनता में हस्तक्षेप न होगा। अपने घर के बाहर उनको राजनीतिक प्रभुत्व की पिपासा न थी। अपने धर्म को सुरक्षित रखने के प्रति उनके उत्साह का ही यह अप्रत्यक्ष परिणाम था कि बाद में उन्होंने अपनी सत्ता का प्रसार कर लिया। जजिया के विषय पर औरंगजेब को लिखे गये अपने प्रसिद्ध पत्र में शिवाजी ने इसे स्पष्ट कर दिया था। हिंदू मन्दिरों का विनाश, बलपूर्वक धर्म परिवर्तन, जजिया तथा हिंदुओं के प्रशासनीय अपकर्ष की सम्राट की धर्मांध नीति ने समस्त हिंदू जाति को उसके विरुद्ध प्रकुपित कर दिया था और वे सम्राट के विरुद्ध हो गये थे। अपने धर्म पर इस आक्रमण के वे घोर विरोधी थे। केवल इसी को वे रोकना चाहते थे। हिन्दूपद पादशाही का स्वप्न प्रादेशिक महत्त्वाकांक्षा से सम्बन्धित न था, यह तो विशेषतया धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित था।[1]

निश्चय ही शाहू तथा जयसिंह ने मुगलों की इस नीति पर अपने विचारों का स्वतन्त्रतापूर्वक आदान प्रदान किया तथा बाद मे प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से एक प्रकार का अहस्तक्षेप या सहनशीलता का समझौता स्थापित करने का प्रयत्न किया—जैसा कि अकबर महान् ने सिखाया और कार्यान्वित किया था। जब बहादुरशाह ने सिक्खों के विरुद्ध जिहाद आरम्भ किया तो उपरिवर्णित प्रमुख राजपूत राजाओं ने पुष्कर झील के तट पर दीर्घकालीन सम्मेलन किया और पर्याप्त विचार विनिमय के बाद एक गम्भीर सर्वसम्मत नीति की घोषणा की कि वे भविष्य में अपनी कन्याओं का विवाह मुसलमानों से करेंगे और यदि इस निश्चय के विरुद्ध कोई राजा आचरण करेगा, तो यदि आवश्यक हुआ तो बलपूर्वक अन्य राजा मिलकर उसका दमन करेंगे। इस घोषणा के अनुसार उदयपुर के राणा अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध रक्त के मान लिये गये थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कन्याओं को मुसलमानों को देने से सदैव इन्कार किया था। अतः पुष्कर सम्मेलन द्वारा यह विहित हो गया कि यदि किसी राजा के उदय

---

[1] सर जदुनाथ सरकार ने इसकी बहुत अच्छी व्याख्या की है— हिस्ट्री ऑव औरंगजेब'—खण्ड ३ इस्लामी राज्यधर्म का अध्याय। जजिया का अर्थ है—स्थानापन्न कर, अनुग्रह का मूल्य अर्थात वह कर व दण्ड जो धार्मिक विषयों में स्वाधीनता के बदले लिया जाय।

पुर की कन्या से सन्तान हो, तो रिक्त गद्दी के उत्तराधिकारी के चुनाव के समय उस सन्तान को अन्य स्त्रियो की सन्तान से श्रेष्ठ समझा जायेगा। इस नियम के कारण चिकित्सा रोग से भी अधिक घातक हो गयी क्योकि कालान्तर मे समस्त राजस्थान मे इसके कारण अनेक उत्तराधिकार युद्ध हुए। कृष्णा कुमारी की प्रसिद्ध कथा इन परिणामो का ही एक उदाहरण है परन्तु मराठा प्रवृत्तियो के अपने इस निरूपण मे इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि भारतवर्ष मे धर्म किस प्रकार राजनीति से ऊपर था।

हिन्दुओ के धार्मिक अधिकारो का दमन करने मे सयद-बन्धु औरगजेब से कम उत्साहशील न थे। परम्परागत मुस्लिम नीति को कठोरतापूर्वक चलाने मे उन्होने भी अपनी शक्ति का उपयोग किया। पुष्कर सम्मेलन के परिणामो को प्रभावहीन करने के लिए उन्होने राजपूताना मे घोर युद्ध किये और मारवाड के अजीतसिंह को अपनी पुत्री इन्द्रकुमारी का विवाह सम्राट से करने के लिए विवश कर दिया। बाद मे बहुत आडम्बरपूर्वक दिल्ली मे यह विवाह हुआ। इस अशक्य परिस्थिति को अन्य राजपूत राजाओ ने स्वीकार कर लिया और शक्तिसम्पन्न सयदो के सम्मुख नतमस्तक हो गये। सयद निस्सन्देह बहुत वीर तथा योग्य थे परन्तु फर्रुखसियर मे यह बुद्धि न थी कि वह उनको उपयोगी कार्यों मे लगा सके। वह सदैव उनके सर्वनाश का षडयन्त्र करता रहा। जब अपने प्रत्यक्ष प्रयत्न मे वह परास्त हो गया तो उसने हुसैनअली को दक्षिण के शासन पर नियुक्त कर दिया जिसका वर्णन पहले हो चुका है। इस प्रकार उसने उन भाइयो को एक-दूसरे से अलग कर दिया।

३ **सयद हुसनअली दक्षिण में**—सयद हुसनअली को स्थान देने के लिए निजामुल्मुल्क को दक्षिण से वापस बुला लिया गया जिससे वह असन्तुष्ट हो गया। सैयदो तथा निजामुल्मुल्क मे कोई प्रीतिभाव न था। वे मालवा मे एक-दूसरे के पास से निकल गये परन्तु समान अधिकारी होते हुए भी स्वाभाविक प्रथानुसार परस्पर मिलन न गये। अपने आगमन पर तुरन्त ही जसा कि पहले कहा जा चुका है हुसनअली का सामना बुरहानपुर के समीप एक रणक्षेत्र मे दाऊदखाँ से हुआ और उसने दाऊदखाँ को उसी युद्ध मे मार डाला। सम्राट ने मराठो को आज्ञा दी थी कि वे भी उसका विरोध करे परन्तु वे पर्याप्त रूप से चतुर थे अत उन्होने किसी ओर से कोई सक्रिय भाग न लिया। शाहू के राजा तथा सेनापति खाण्डेराव दाभाडे मुगल अधिकारियो के हाथो से पूना के प्रदेश को छीनने मे व्यस्त रहे।

सम्राट तथा सयद दोनो का मुख्य उद्देश्य यह था कि दक्षिण मे उदीयमान मराठा शक्ति का दमन कर दिया जाय तथा मालवा मे जहाँ वे अपने पर

जमा रहे थे, उनको सर्वथा बाहर निकाल दिया जाय। चूंकि उत्तर और दक्षिण के बीच मे मालवा मुख्य राजमार्ग था, इस पर अधिकार रखना साम्राज्य की रक्षा के लिए सदैव आवश्यक समझा जाता था। स्वय औरगजेब मालवा का ध्यान रखता था और फरवरी १७०४ ई० म अपने विश्वस्त सेनापति गाजीउद्दीन द्वारा उसने दिपालपुर तथा उज्जैन के समीप कई मराठा सरदारो—यथा नेमाजी शिन्दे, पर्सोजी भासले, केशवपन्त पिंगले आदि—को बुरी तरह पराजित कर दिया था। परन्तु मराठो पर किसी प्रकार भी पूर्ण नियन्त्रण स्थापित न हो सका था और व दृढतापूर्वक सदैव लूटमार करते रहते थे। अन्त म, फर्रुखसियर ने १७१३ ई० म सवाई जयसिह को मालवा के शासन पर नियुक्त किया। जयसिह की इच्छा भी थी कि वह मालवा का गठबन्धन अपने पैतृक राज्य जयपुर से कर ले। १७१५ ई० के आरम्भिक मासो म खाण्डेराव दाभाड तथा कान्होजी भासले ने मालवा मे प्रवेश किया और उज्जैन तथा समीपवर्ती प्रदेशो को लूटा और जला दिया। जयसिह भी उनसे लडने को तैयार था अत २० मई को उसने उनको पूर्णतया परास्त कर दिया और उनके लूटे हुए सारे माल और सम्पत्ति को उनसे पुन प्राप्त कर लिया। परन्तु जयसिह की सफलता अल्पकालीन सिद्ध हुई और जब बाद को उसको वापस बुला लिया गया, तो मराठो ने क्रूरतापूर्वक अपने आक्रमण पुन प्रारम्भ कर दिये।

सम्राट के पास योग्य सेनापति तथा समस्त साधन थे। सैयद-बन्धु निजामुल्मुल्क अमीनखाँ, सआदतखा जयसिह अजीतसिह सभी वीर तथा योग्य पुरुष थे परन्तु उन्होने कभी सम्मिलित रूप से प्रयास न किया और इसी कारण व असफल सिद्ध हुए। इसका मुख्य कारण सम्राट की छलपूर्ण नीति तथा उनके प्रति अविश्वास था। उसके प्रत्येक अधिकारी तथा दरबारी के जीवन के लिए सकट उपस्थित रहता था और इसीलिए साम्राज्य की सेवा म वे अपना उत्तम प्रयत्न न कर सकते थ। इतिहासकार प्राय सैयद-बन्धुओ की यह आलोचना किया करते हैं कि उन्होने सीधे दिल्ली तक मराठो को निर्विघ्न मार्ग दे दिया, परन्तु वास्तव म ऐसी बात न थी। मराठो के दमन का उन्होने भरसक प्रयत्न किया और हुसैनअली ने तो दक्षिण म अपने प्रथम दो वर्षो म मराठो को बागलान तथा खानदेश म न घुसने देने का कठोर प्रयत्न किया। परन्तु अन्त मे जब सैयद-बन्धुओ को यह ज्ञात हुआ कि अपने ही स्वामी की ओर से उनके अपने जीवन तथा स्थिति के विषय म भारी सकट उपस्थित है तो व अपनी नीति बदलने और मराठो की मित्रता प्राप्त करने के लिए विवश हो गये।

इसी भाँति पर्याप्त समय तक शाहू की स्थिति भी सुरक्षित न रही थी। उसको अपने पेशवा के समान योग्य सेनापति न मिल सका था। धनाजी का

पुत्र चन्द्रसेन उस पद पर नियुक्त किया गया था परन्तु उसने स्पष्ट विश्वास घात किया। उसका भाई सन्ताजी, जिसको शाहू ने १७११ ई० मे वह पद दिया, निरा मूर्ख था। उसमे अभियानों की योजना बनाने की कोई क्षमता न थी। १७१२ ई० म उसका पद मार्नासिंह मोरे को दिया गया। वह स्वामिभक्त सेवक था परन्तु इस कार्य मे वह साधारण व्यक्ति से अधिक योग्य न था, और दुर्भाग्यवश उसका स्वास्थ्य भी बिगड गया। तब शाहू को खाण्डेराव दाभाडे का आश्रय लेना पडा। ११ जनवरी १७१७ ई० को शाहू ने उसको सेनापति के पद पर नियुक्त किया। कुछ समय तक तो उसने ठीक कार्य किया परन्तु वृद्धावस्था तथा निर्बलता के कारण वह राजनीतिक परिस्थितियो की जटिलताओ और दिल्ली दरबार मे हो रहे क्रान्तिकारी परिवर्तनो द्वारा उद्भूत नवयुग की माँगो के समक्ष असमर्थ रहा। पेशवा की योजनाओ तथा कार्यक्रमो मे हृदय से भाग लेने म भी वह असफल रहा। इस कारण उसको अपना स्थान छोडना पडा तथा होनहार नवयुवक बाजीराव के उदीयमान नक्षत्र को प्रकाशमान होने का शुभ अवसर प्राप्त हो गया।

दो वर्ष तक सैयद हुसनअली मराठो की आक्रामक कार्यवाहियो के दमन म प्रयत्नशील रहने के साथ-साथ वह स्वय अपने विरुद्ध सम्राट द्वारा रचे जाने वाले षडयन्त्रो के प्रति पूर्ण सजग रहा। उसके भाई सैयद अब्दुल्ला की स्थिति भी दिल्ली म निरन्तर बिगडती जा रही थी और वह इतनी सदिग्ध हो गयी थी कि अपने जीवन के प्रति भयभीत होकर उसने हुसैनअली को समस्त सैन्य सज्जा के साथ दिल्ली मे अपनी स्थिति की रक्षा के लिए दक्षिण से वापस बुला लिया। इस पर हुसनअली ने अपने मित्रो तथा अनुचरो के साथ यथेष्ट परामर्श किया और वह इस निश्चय पर पहुँचा कि उसकी सफलता का एकमात्र अवसर इसी म है कि वह मराठो और विशेषकर शाहू और उसके समर्थको की सद्भावना तथा सहयोग प्राप्त कर ले। दक्षिण से अपनी अनुपस्थिति के दौरान वह उनका विरोध नही चाहता था क्योकि यदि दक्षिण की ओर स मराठो के और उत्तर की ओर से सम्राट के दल के बीच म वे फँस जाते तो दोनो मन्त्री आसानी से कुचले जा सकते थे। शाहू के इतिहास का लेखक कहता है[२]

जब सम्राट फर्रुखसियर ने निजामुल्मुल्क को वापस बुला लिया तथा सैयद हुसनअली को दक्षिण का सरसूबा नियुक्त कर दिया तो सैयद ने शकरजी मल्हार नामक एक व्यक्ति को अपना परामर्शदाता नियुक्त किया।

---

२ Shahu s Chronicle पृ० २६ तथा ३६।

यह एक प्रसिद्ध मराठा कूटनीतिज्ञ था, जो जिंजी मे सचिव के रूप म राजाराम की सेवा बहुत पहले त्याग चुका था और अब बनारस मे रह रहा था। सम्राट को जब इस चतुर तथा उपयोगी व्यक्ति का पता चला, तो वह उसे अपने व्यक्तिगत अनुनय द्वारा दिल्ली लाया और सयद हुसैनअली के साथ दक्षिण भेज दिया ताकि वह मराठा सम्बन्धी विषयो पर उसके विश्वस्त परामर्शक के रूप मे काय करे। राजदूत के रूप म शकरजी की सेवा के लिए सम्राट न उचित धन का प्रबन्ध भी कर दिया।'

४ **हुसनअली का मराठा सहायता प्राप्त करना**—नगुण्डकर उपनामधारी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण इस शकरजी मल्हार म राजनीतिक विषयो के लिए विलक्षण बुद्धि थी। १६८६ ई० म वह छत्रपति राजाराम के साथ जिंजी गया था और बाद म किसी बात पर बिगडकर बनारस चला गया था। परन्तु उसके मन म विकल महत्त्वाकाक्षा की भावना प्रवेश कर गयी और सैयद हुसैनअली के साथ दक्षिण जाने के लिए सम्राट की नियुक्ति को उसने तुरत स्वीकार कर लिया। उसन शीघ्र ही हुसनअली की कृपा प्राप्त कर ली थी और अपन नवीन पद पर वह अमूल्य सिद्ध हुआ, क्योकि स्वय हुसनअली मराठो से सवथा अपरिचित था। व्यक्तिगत प्रतिनिधियो तथा नायको द्वारा शाहू तथा उसके पेशवा बालाजी को शकरजी की उपस्थिति शीघ्र ही ज्ञात हो गयी। जब दिल्ली से अपने भाई का सैयद हुसैनअली को अत्यावश्यक बुलावा आया तब उसका ध्यान सवप्रथम इस ओर गया कि वह मराठो के विरुद्ध केवल अपना युद्ध ही बन्द न कर दे, वरन् उनकी मित्रता तथा सैनिक सहायता भी प्राप्त कर ले जिससे वह अपनी भावी योजनाओ को सफलतापूवक जारी रख सके। उसने शकरजी को सतारा जाकर शाहू से मत्री सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा दी। १७१८ ई० के आरम्भ म शकरजी सतारा पहुँच गया। शाहू तथा उसके परामशको ने इस दूत के आगमन को ईश्वरप्रदत्त अवसर के रूप म माना क्योकि इसके द्वारा उन्हे दिल्ली से सीधा सम्पक स्थापित होने और उन क्लेशकर युद्धो की समाप्ति का विश्वास था जो उनकी शक्ति तथा साधनो का—विशेषकर शाहू की कारागार मुक्ति के बाद—उच्छेद कर रहे थे।[3]

अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने म शाहू तथा बालाजी पहले से ही कृतबुद्ध हो चुके थे। दस वष व्यतीत होने के बाद भी उनकी दशा म कोई सुधार न हुआ था। आन्तरिक तथा बाह्य कष्ट अपने अनुयायियो मे फूट तथा

[3] खफीखाँ तथा सियार उल-मुतखरीन का लेखक दोनो ही शकरजी के इस दौत्य की स्पष्ट व्याख्या करते हैं।

विश्वासघात, साम्राज्य के प्रशासन की अस्थिर दशा और सबत्र अव्यवस्था छोटे-से मराठा राष्ट्र के जीवन का शोषण कर रहे थे। उनके जीवित रहने और उनके पूज्य संस्थापक की रीति नीति के अनुसार उनका पुनरुत्थान होने की कोई आशा न थी।

मराठों के पास बुद्धि तथा शक्ति ज्यादा थी। औरंगजेब के विरुद्ध अपने लम्बे संग्राम में उन्होंने इसका अच्छा उपयोग किया था और इनको अनुशासित कर लिया था। उनके सैनिक दलों के दल देश में मारे मारे फिर रहे थे, उन्हें काय तथा पुरुषार्थ की आवश्यकता थी और इनके अभाव में वे एक-दूसरे का गला काटकर अपनी शक्ति का ह्रास कर रहे थे। कभी वे शाहू के पक्ष का समर्थन करने की प्रतिज्ञा करते और दूसरे ही क्षण उसके पक्ष को त्यागकर कोल्हापुर या मुगलों के साथ हो जाते। अपने स्वार्थी उद्देश्यों के अतिरिक्त उन्हें किसी अन्य बात की चिन्ता न थी। वे अन्न तथा सम्पत्ति के वास्तविक उत्पादक अभागी परिश्रमी जनता को कष्ट पहुँचाते थे। इस अराजकता का अन्त किस प्रकार किया जाय, इस समस्या का समाधान बालाजी तथा शाहू अपने समस्त विवेक से भी न कर सके। जब शंकरजी मल्हार पहुँचा, तब उसने इसके समाधान का संकेत किया। उसने साग्रह कहा कि यदि मराठा सैनिकों के भ्रमणशील दलों को उनके स्वाभाविक कार्यक्रम से बाहर कोई उपयुक्त काय दिया जा सके, तो उनका ध्यान बाह्य स्थित नवीन आशाओं के प्रति तुरन्त आकृष्ट हो जायेगा और इस प्रकार महाराष्ट्र में अव्यवस्था की दशा तुरन्त बदल जायेगी।

शंका तथा विचिकित्साग्रस्त पुरुषों को देवदूत की भाँति शंकरजी पन्त ने यह आश्वासन दिया कि मुगल सत्ता केवल कल्पना का विषय रह गयी है। उत्तर में भी उतनी ही अराजकता तथा विकलता है। वहाँ की जातियाँ तथा राज्य किसी भी उस सत्ता का स्वागत करने को तैयार हैं जो वहाँ पर जाकर उनका उद्धार करे। साहस और आत्मविश्वास की शिक्षाएँ शिवाजी महान् से उनको परम्परागत रूप से प्राप्त हुई हैं, अतएव उनके पद चिह्नों का अनुसरण उनको अवश्य करना चाहिए। शंकरजी ने कहा— ये दो शक्तिशाली सैयद हैं जो मित्रता का हाथ बढ़ा रहे हैं, बिना आगा पीछा सोचे इसको स्वीकार कर, आप अपनी शर्तें रखें वे पूर्ण इच्छा से स्वीकार की जायेंगी। इस क्षण के संकट से वे विवश हैं। आपका राजा धार्मिक तथा उदारहृदय है। वह किसी ऐसी नीति को न अपनायेगा जिससे सम्राट को हानि पहुँचे। स्वयं सैयद भी सम्राट को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहते हैं। उनको केवल यही चिन्ता है कि वे प्रशासन को ठीक कर दें क्योंकि वह निर्विघ्न चलना ही चाहिए। वे

शासन-यन्त्र पर पर्याप्त नियन्त्रण प्राप्त करना चाहते हैं। मरणासन्न औरंगजेब को शाहू ने वचन दिया था कि वह साम्राज्य के विरुद्ध कभी विद्रोह न करेगा, तथा आवश्यकता के समय अपनी समस्त शक्ति से उसकी सहायता करेगा।"[४] ठीक इसी माग का समर्थन शंकरजी ने किया। अत शान्ति तथा सद्भावना के सन्धि-पत्र का प्रस्ताव किया गया, जो विशिष्ट शर्तों सहित उभयसम्मत-पत्र का रूप धारण करे, जिससे दोनों दलों के हित सुनिश्चित हो जायें। शाहू तथा उसके दरबार से यह अपेक्षा की गयी कि वे सैयद मन्त्रियों का समर्थकों के रूप में साथ देंगे।

५ **मराठा अधीनता की शर्तें**——इस प्रकार की शान्ति-वार्ताएँ कुछ दिनों तक सतारा में चलती रहीं। वास्तविक विवरण लेखबद्ध नहीं है। इस योजना से सहमत होने का एक और व्यक्तिगत कारण भी शाहू के पास था। उसकी माता यसुबाई, उसकी धर्मपत्नी साविश्रीबाई (उसकी द्वितीय वधू अम्बिकाबाई का देहान्त पहले ही हो गया था) और उसका भाई मदनसिंह तथा कुछ अन्य अनुचर दिल्ली में इस समय भी शरीर-बन्धकों के रूप में रखे हुए थे जिनको पुन प्राप्त करने की स्वभावत उसकी उत्कट इच्छा थी। इस आशय की एक स्पष्ट शर्त बालाजी तथा शंकरजी ने उस सन्धि-पत्र में रख दी जो सैयद हुसनअली के अनुमोदन के लिए तैयार किया गया था। दोनों दलों द्वारा स्वीकृत प्रतिज्ञाएँ निम्न थीं

१ वे समस्त प्रदेश, जिनको शिवाजी का स्वराज्य (मूल अधिकृत प्रदेश) कहा जाता है उनमें स्थित गढ़ों सहित शाहू के पूर्ण अधिकार में दे दिये जायँ।

२ खानदेश, बरार, गोण्डवाना हैदराबाद तथा कर्नाटक के वे प्रदेश, जिनको मराठों ने कुछ समय पहले जीत लिया था, और जिनका वर्णन सन्धि पत्र के संलग्न पत्र में था वे सब मराठा राज्य के एक अंग के रूप में उनको दे दिये जायें।

३ मराठों को दक्षिण में समस्त ६ मुगल सूबों से चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया जाय। चौथ के बदले में १५ हजार सैनिकों सहित मराठे सम्राट के रक्षार्थ उसकी सेवा में तत्पर रहें तथा सरदेशमुखी के बदले मराठे यह उत्तरदायित्व ग्रहण करें कि डकैती तथा विद्रोहों का दमन कर वे पूर्ण व्यवस्था स्थापित रखेंगे।

४ कोल्हापुर के सम्भाजी को शाहू कोई हानि नहीं पहुँचाये।

५ १० लाख रुपये का नकद वार्षिक कर मराठे सम्राट् को भेंट करें।

---

[४] पेशवा दफ्तर पत्र, ३०, २२२।

६ शाहू की माता येसुबाई, उसकी धमपत्नी, उसके भाई मदनसिंह तथा उनके समस्त अनुचरो को, जो दिल्ली मे रोक लिये गये थे, सम्राट मुक्त कर दे और उनको दिल्ली से वापस भेज दे।

सैयद हुसनअली ने इन शर्तो को स्वीकार कर लिया और प्रतिज्ञा की कि उचित समय पर वह इनको सम्राट के द्वारा विधिवत् प्रमाणित करा देगा। १ अगस्त १७१८ ई० को शाहू ने अपने स्थानीय अधिकारियो को आज्ञा दी कि वे सम्मत पत्र की उक्त शर्तों का पूणरूप से पालन करें और चौथ तथा सरदेशमुखी के करा का सग्रह करें। ३० जुलाई १७१८ ई० को बालाजी की पूना के देशमुखो और देशपाडे लोगा को दी हुई आज्ञा इस समय भी विद्यमान है। इस आज्ञा मे इनको निर्देश है कि मुगल अधिकारी रम्भाजी निम्बालकर को इन करो का दना बद कर दिया जाय। सम्मत पत्र के स्थिर कर दिय जाने के तुरत पश्चात बालाजी ने उन जिलो का दौरा किया तथा शाहू के नाम म उन पर अधिकार कर लिया। सम्राट की सेवा के लिए उसने एक विशष दल तैयार किया जो बाद म उस दल के साथ जो पहले से ही उसके पास था, हजरत अर्थात राजा की सेना कहा जाने लगा।

नीति के सुखद उत्कष और सौभाग्य ने बालाजी के प्रशासन चातुय द्वारा शाहू की प्रतिष्ठा को तुरत उनत कर दिया और उसकी स्थिति को उसके चचेर भाई सम्भाजी की स्थिति के विपरीत मराठो के वधानिक शासक के रूप मे स्थापित कर दिया। अपनी मुक्ति के समय से शाहू सदव यह प्रयत्न कर रहा था कि इस वधानिक पद को वह प्राप्त कर ले और इसको दृढ करने म बालाजी क सर्वोपरि प्रयास अत म सफल हो गये। तुरत ही शाहू के स्वराज्य के लिए यवस्थित शासन का सगठन हो गया। इसके पहल यह शासन शक्ति के आधार पर केवल एक अस्थायी काय था। विभक्त निष्ठाओ का इस समय से अत हो गया और मराठा शासन-कार्यो को वधानिक रूप प्राप्त होने लगा। इस सधि पत्र क द्वारा मराठे जब अपने देश के स्वामी बन गय और दक्षिण म अपन मुख्य स्थान से बाहर प्रसार की नवीन सुविधाएँ प्राप्त कर सके। बहुत समय तक कई विषया म सम्मत शर्तों का यथाथ अथ सदिग्ध रहा तथा जब कभी किसी पक्ष के नवीन अधिकारी न उस विषय पर अपनी कायवाही की तो उसका अथ सदा बदलता रहा।

शिवाजी के समान शाहू न यह स्वत्व कभी स्थापित न किया कि वह सवस्वतत्र राजा है। वह इस पर सहमत रहा कि वह एक अधीन राजा है जो अपना वार्षिक कर देता है और सम्राट का नाम का आज्ञापालक है। तथापि उसन यह स्वीकार किया कि वह अपनी सेना द्वारा उसकी रक्षा

करगा। परन्तु जब कोई अधिपति अपने अधीन राजा से रक्षा चाहता है, तो इसका यह अथ होता है कि वास्तविक व्यवहार म दोनो शर्ते करने वाले पक्षो की तुलनात्मक शक्ति उलटी है। इस समय से मराठा को यह स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी कि वे इच्छानुसार नवीन प्रसार कर सकें।

कई वर्षों से शाहू इस प्रकार के विकास की खोज मे था। इसी उद्देश्य से १७१८ ई० मे उसन पारसनीस यादवराव प्रभु को दिल्ली भेजा था। अब इसी पारसनीस को २४ फरवरी, १७१८ ई० को उसन निम्नांकित पत्र लिखा

आपने तथा शकरजी मल्हार ने जो कुछ लिखा है उसी के अनुसार तीन रियायतें—स्वराज्य, चौथ तथा सरदशमुखी—सन्तोषपूर्वक प्राप्त हो गयी है। पूजनीय माता यमुबाई, मदनसिंह तथा उनके अनुचर वग की मुक्ति और उनकी वापसी का केवल एक विषय अभी तक कार्यान्वित नही हुआ है। जब यह काय सम्पन्न हो जायेगा, तभी आपके तथा शकरजी पन्त के समस्त सबल प्रयत्न तथा आप दोनो की मध्यस्थता जो आप निःस्वार्थ भाव से कर रहे हैं, लाभप्रद सिद्ध होंगे, कृपया इस विषय की उपेक्षा न करें। सयद का ध्यान सतत इसकी ओर आकृष्ट करते रहे तथा शीघ्र ही इसको कार्यान्वित करायें। मैंने इस विषय पर शकरजी पन्त को विवरण सहित लिख दिया है। उससे आपको मालूम हो सकता है कि मुझे विशेष चिन्ता क्या है ?

६ **दिल्ली को बालाजी का अभियान**—यद्यपि सैयद के साथ सन्तोषप्रद सहमति विधिपूर्वक स्थापित हो गयी थी परन्तु अभी तक दिल्ली में उसका प्रमाणीकरण न हुआ था जहाँ पर सम्राट अपने मन्त्रियों के साथ संघर्ष मे व्यस्त था। यह कोई नही जानता था कि वह तुरन्त शर्तो से सहमत हो जायगा। सम्राट किसी भी प्रकार से मराठा का मित्र नही था। उसके अपने परामर्शदाता और सलाहकार थ। मराठा की आशाएं दिल्ली म होने वाली वस्तुस्थिति पर निर्भर थी। वे अपने उद्देश्य उसी दिशा म प्राप्त कर सकते थे जब सयद-बन्धु अपने तथा सम्राट के बीच होने वाले संघर्ष म विजयी हो। जब हुसैनअली और बालाजी परस्पर मिले और उन्होने परिस्थिति पर बातचीत की तो उन्होंने इस विषय पर पूरी तरह और स्पष्ट बातचीत की होगी कि उस साहसपूर्ण काय के निमित्त जो व सम्मिलित रूप से कर रहे थे किन तैयारियो की आवश्यकता होगी, व किस प्रकार अपना काय करगे तथा आवश्यक व्यय राशि का प्रबन्ध किस प्रकार होगा। अपनी माता के प्रति अत्यधिक चिन्ता के कारण शाहू की ओर स सन्धि-वार्ता का विशेष आग्रह किया गया तथा बालाजी इस जोखिम को उठाने को अस्वीकार न कर सका।

परस्पर हुई प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए शाहू का सेनापति खाडेराव दाभाडे

१५ हजार की सना लेकर जून १७१६ ई० मे औरगाबाद पहुँच गया। मराठा को प्रसन्न करने के इस नवीन प्रयास की सूचना हुसैनअली ने पहले से ही सम्राट को भेज दी थी तथा उसकी अनुमति की प्राथना का थी तथापि इस समस्त व्यापार के प्रति सम्राट न उत्तर म अपनी सहमति प्रकट की और दक्षिण म कई महत्त्वपूण स्थाना पर उसन अपन निजी व्यक्तिया को नियुक्त कर लिया। हुसनअली न अपनी आर से इन अधिकारिया का दमन कर दिया तथा स्वतन्त्र रूप स बलपूवक उसने अपन कार्यो का स्वय प्रबन्ध किया। अब सम्राट को उस सकट का बोध हुआ जिसमे अपन शक्तिशाली मन्त्रिया को अपने विरुद्ध करके वह फँस गया था। निजामुल्मुल्क को मुरादाबाद से, सर बुलन्दखाँ को पटना से तथा अजीतसिंह का गुजरात से सम्राट न तुरन्त अपने पास बुला लिया। जब य सब सामन्त अपने बडे-बडे दल लेकर दिल्ली पहुँचे, तो सयद अब्दुल्ला न भी अपने युद्ध-साधना को सुदृढ कर लिया तथा अपने भाई हुसनअली को दक्षिण से बिना एक क्षण के विलम्ब किय राजधानी पहुँचने का आग्रह किया।

हुसनअली तुरन्त परिस्थिति को पूणतया समझ गया। वह एक क्षण भी विलम्ब नही कर सकता था। बालाजी के परामश से उसने अपनी योजनाएँ निश्चित की। उसन बालाजी से भी इस अभियान म साथ चलने का आग्रह किया। शाहू तथा उसके दरबार न हृदय से इस योजना का समथन किया तथा विवेक और पूव दृष्टि द्वारा प्रत्येक सम्भव प्रबन्ध कर लिया। शाहू के व्यक्तिगत प्रतिनिधियो के रूप म काय सचालन पर दृष्टि रखने हेतु खडो बल्लाल चिटनिस तथा यादवराव मुशी पारसनीस इस दल के साथ हो लिय। सना के मुख्य नता थ सनापति खाडेराव दाभाडे ऊदाजी कन्होजी तुकोजी पवार रानोजी और सन्ताजी भासल। शख मीर बाजी कदम नारो शकर चिमनाजी दामोदर महादेव भट्ट हिंगन अम्बाजी त्र्यम्बक पुरन्दरे बालाजी महादेव भानु तथा अन्य उन्नतशील व्यक्तिया को भी शाहू न अभियान म साथ जान का आज्ञा दी। अभियान का नतृत्व स्वय पशवा कर रहा था और उसका होनहार नवयुवक पुत्र बाजीराव उसक साथ था। य सब मिलाकर मराठा राजा क सर्वोच्च विचारक तथा योद्धा थ जैसा कि बाद म प्रकट हो जायगा।

अपन उत्साहपूण भतीज आलम अलीखाँ को उसक भाई सफुद्दीन अली क साथ हुसनअली न औरगाबाद म नियुक्त कर दिया। सफुद्दीन अली का काय अपन भाई की सहायता करना था। उनके साथ उसन शकरजी मल्हार को भी रख लिया जिसक परामर्शानुसार ही उसकी अनुपस्थिति म शासन-काय होना था। परन्तु बालाजी क विशेष आग्रह करन पर शकरजी पन्त को कुछ समय क लिए दिल्ली ले जाया गया किन्तु शीघ्र ही वापस भज दिया गया। हुसनअली की

एकमात्र आशा का आधार वह हार्दिक समर्थन था जो मराठों से उसको प्राप्त हो गया था। उच्च आशा तथा विश्वास सहित वीरतापूर्वक उसने नवम्बर १७१८ ई० में औरंगाबाद से तथा दिसम्बर के मध्य में बुरहानपुर से कूच किया, और आगामी वर्ष की १६ फरवरी को दिल्ली पहुँच गया। साम्राज्य के कोष से प्रत्येक मराठा सैनिक को एक रुपया प्रतिदिन अपने व्यय के लिए प्राप्त होता था।

७ **सशस्त्र संघर्ष**—जब सम्राट को हुसैनअली के दिल्ली-आगमन का समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने जीवन के प्रति अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसने बार बार सन्देश तथा विशेष प्रतिनिधि भेजकर उसे वापस लौट जाने के आदेश भेजे। इस पर हुसैनअली ने मराठा नायकों से वापस लौट जाने अथवा जहाँ हैं वहीं रुक जाने का आग्रह किया परन्तु जब तक कि शाहू की माता तथा उसका अनुचर वर्ग उनके सुपुर्द न कर दिये जायें उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। हुसैनअली ने यह समाचार सम्राट को भेज दिया। साथ ही यह भी कहला भेजा कि इस समय अपने मराठा मित्रों को रुष्ट करना उसके लिए सम्भव नहीं है क्योंकि यदि उनकी इच्छाओं का विरोध किया गया तो वे उन सबके लिए संकट उपस्थित कर देंगे। इस प्रकार वे सब बढ़ते गये। दोनों सैयद-बन्धु परस्पर दिल्ली में मिले। उन्होंने तुरन्त ऐसी निर्दोष योजनाएँ सुगठित कर लीं जिनसे कि उनको बदलती हुई परिस्थिति पर अधिकार प्राप्त हो जाय। आगामी क्रान्ति के अनेक विस्तारपूर्ण वर्णन प्राप्य हैं और उनका अध्ययन इरविन कृत 'लेटर मुगल्स' के पन्नों में 'सियार उल मुतखारीन' में तथा अन्य समकालीन वृत्तान्तों में किया जा सकता है। यहाँ पर केवल मराठों के कार्यों से सम्बन्ध रखने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन ही आवश्यक है।

बड़े-बड़े मराठा दलों तथा कई राजपूत शासकों एवं मुस्लिम सामन्तों के दलों के एकत्रीकरण के कारण फरवरी तथा मार्च में दिल्ली की राजधानी का वातावरण भयावह हो गया। आगे क्या होने वाला था इसके स्पष्ट लक्षण देखकर दिल्ली तथा उसके समीपवर्ती नगरों की जनता अति भयभीत हो उठी। स्थिति को सान्त्वनाप्रद करने के लिए सम्राट ने जयसिंह तथा अजीतसिंह को अपने-अपने राज्यों में भेजने का प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने केवल नगर के बाहर जाकर अपने पड़ाव डाल दिये। फरवरी के अन्तिम सप्ताह में सम्राट तथा दोनों बन्धु मन्त्रियों के मध्य कई बार जोश के साथ वार्तालाप हुआ जिसमें सैयदों का ही प्राबल्य रहा। इस समाचार से कि सम्राट हुसैनअलीखाँ का वध कराने का प्रयत्न कर रहा है दोनों भाई इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्होंने उसे राजच्युत करने तथा अपने द्वारा मनोनीत किसी अन्य ऐसे शाहजादे को जिसे वे अपनी नीति और कार्यों के अनुकूल बना सकें, गद्दी पर बिठाने का निश्चय कर लिया।

२७ फरवरी को सयद बन्धुओं ने राजभवन तथा किले को घेर लिया और समस्त गमनागमन को रोकने के लिए फाटकों पर अपने संरक्षक नियुक्त कर दिये। इसी प्रकार नगर के युद्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान भी सुरक्षित कर दिये गये। राजभवन के मुख्य द्वार से कुछ ही दूरी पर मराठा सैनिक नियुक्त थे। सयद अब्दुल्ला तथा अजीतसिंह समस्त रात्रि सम्राट के साथ एक कमरे में रहे। उनमें जोशीले शब्दों तथा क्रोधपूर्ण विशेषणों का आदान प्रदान हुआ। जैसे-जैसे रात बढ़ती गयी उनका स्वर ऊँचा होता गया तथा उनके क्रोध की मात्रा बढ़ती गयी। २८ फरवरी की प्रभात-वेला में साम्राज्य की राजधानी ने भयानक रूप धारण कर लिया। मन्त्रियों के घुड़सवार ही मुख्य सड़कों पर अपने विरोधियों का वध करते हुए घूम रहे थे। सम्राट के एक पक्षपोषक मुहम्मद अमीनखाँ ने अपने कुछ दृढ़ निश्चयी सैनिकों के साथ राजमहल के फाटक को बलपूर्वक खोल देने का प्रयास किया। द्वार पर नियुक्त मराठा संरक्षकों से उनका घोर संघर्ष हुआ। इसमें करीब डेढ़-सौ हजार मराठा अश्वारोही काम आये। इनमें प्रमुख थे—नागपुर का सन्ताजी भोसले तथा प्रसिद्ध नाना फड़निस का पितामह बालाजी पन्त भानु। मन्त्रियों ने सम्राट को पकड़ लिया और कारागार में डाल दिया। उन्होंने दो शाहजादों को एक-दूसरे के बाद थोड़े ही समयान्तर में राजगद्दी पर बिठाया। अन्त में मुहम्मदशाह गद्दी पर बिठाया गया। उसने अप्रैल १७४८ ई० तक अपनी मृत्युपर्यन्त शासन किया। राजच्युत होने के दो मास पश्चात राजच्युत फर्रुखसियर का भी वध कर दिया गया।

इस क्रान्ति में मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने सयद मन्त्रियों का साथ दिया। उसके प्रबल समर्थन से उनके समस्त उपाय सरलतापूर्वक कार्यान्वित हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक के लिए वे सर्वसत्ता सम्पन्न हो गये और अपने हितार्थ उत्तमोत्तम करने में जुट गये। उन्होंने निजामुल्मुल्क को मालवा के शासन पर नियुक्त किया। बालाजी ने उसके साथ मित्रता स्थापित कर ली क्योंकि उसके किसी समय दक्षिण का सूबेदार नियुक्त होने की सम्भावना थी। दिल्ली में निजामुल्मुल्क तथा बालाजी में भाईचारा हो गया तथा पारस्परिक मित्रता के रूप में उनमें सहभोज भी हुए। इस समय उनमें एक-दूसरे के प्रति इतना मान तथा स्नेह हो गया कि स्वयं निजाम ने सम्राट का ध्यान बालाजी तथा अम्बाजी त्र्यम्बक की ओर आकृष्ट किया। इसी प्रकार जयसिंह तथा अजीतसिंह ने स्वेच्छा से मराठों के उन स्वत्वों का समर्थन किया जो सयद द्वारा प्रतिपादित सन्धि-पत्र में सगृहीत थे। इस प्रकार वह वास्तविक व्यवहार नियमित हो गया जो मराठे शिवाजी के समय

से कर रहे थे। जैसे ही राजभवन की क्रान्ति समाप्त हो गयी, सयद बन्धुओं ने स्वराज्य चौथ तथा सरदेशमुखी—इन तीनों के विधिपूर्वक स्वीकार पत्र तयार किये तथा उनको राजकीय मुद्रा द्वारा प्रमाणित करके बालाजी के सुपुर्द कर दिया। शाहू की माता तथा उसके दल के अन्य व्यक्ति जो लगभग १२ वर्षों से दिल्ली में बन्दी थे, मुक्त करके मराठों के सुपुर्द कर दिये गये। चौथ की स्वीकृति की सनद पर ३ मार्च, १७१९ ई० का दिनांक लिखा हुआ है तथा सरदेशमुखी की सनद पर १५ मार्च का। सर रिचर्ड टेम्पल लिखता है

'अपने समस्त कूटनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में बालाजी विश्वनाथ सफल हुआ। वह अपने साथ पश्चिम भारत का एक राजनीतिक लेख-पत्र ले गया जो भारतीय इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय राजपत्र है और जो मराठा राज्य का महान् अधिकार पत्र (मैग्नाकार्टा) है।' सतारा में ये सनदें बहुत दिनों तक छत्रपति के पास रहीं। इतिहासकार ग्राण्ट डफ ने उनको देखा था। अब वे मुद्रित हो गयी हैं तथा प्राप्य हैं परन्तु मूल फारसी में नहीं।[५]

शाहू ने बालाजी तथा अन्य व्यक्तियों को परामर्श दिया था कि मालवा तथा गुजरात के सूबों के लिए भी वे इसी प्रकार की सनदें प्राप्त करने का यत्न करें तथा उनको प्राप्त कर लें, परन्तु दिल्ली के दरबार की परिस्थिति इस समय इस प्रकार की सम्पूर्ति के लिए अनुकूल न थी। जो कुछ भी उनको अब तक प्राप्त हो चुका था, वह कुछ कम न था। बालाजी को दिल्ली से उत्साह पूर्वक विदाई दी गयी। २० मार्च को वह और उसका दल यहाँ से चल पड़े और जुलाई के आरम्भ में सतारा पहुँच गये। इस बीच पेशवा शीघ्रता से बनारस की यात्रा करके उनसे आ मिला। अब उसने एक श्रद्धालु हिन्दू का स्वाभाविक कर्मकाण्ड पूरा कर लिया था। एक मास से अधिक समय तक मराठे दिल्ली में न ठहरे थे। मारवाड़ के अजीतसिंह को उसकी सेवाओं के बदले में सयद-बन्धुओं ने गुजरात का सूबा अनुदान में देकर पुरस्कृत किया। इस सूबे पर बहुत दिनों से उसकी निगाह थी और वह तुरन्त उस पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा।

सतारा से बहुत आगे बढ़कर शाहू ने पेशवा तथा उसके दल का उनके आगमन पर भव्य स्वागत किया। वह अभियान की सफलता पर बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि इस अभियान-काल में उसे कुछ कम चिन्ताएँ न रही थीं। उस

---

[५] मावजी तथा पारसनीस द्वारा सम्पादित 'ट्रीटीज एण्ड एग्रीमेण्टस', निर्णय सागर प्रेस, १९१४।

आनन्द की केवल कल्पना ही की जा सकती है जो उस १२ वर्ष के वियोग के पश्चात अपनी माता से मिलने पर प्राप्त हुआ था। इस महती सिद्धि पर उसने पेशवा को अनेकानेक धन्यवाद दिये। कहा जाता है कि सयद-बन्धु बालाजी को व्ययस्वरूप लगभग ५० हजार रुपये प्रतिदिन नकद देते थे। इसमें से उसने वास्तव में ३० लाख रुपये शाहू के कोष में जमा कर दिये। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के वस्त्र तथा अद्भुत वस्तुओं के असंख्य उपहार भी थे। ये उपहार अभियान दल के प्रत्येक सदस्य को अलग-अलग मिले होंगे। सबको अपना अपना पारिश्रमिक नियमपूर्वक नकद मिल जाता था और सेना की यह साधारण शिकायत कि उसका वेतन नहीं चुकाया गया है सुनने में न आयी।

सतारा में भव्य दरबार हुआ। बालाजी ने अपने साथियों और सहकारियों को शाहू के सम्मुख उपस्थित किया तथा उनकी विशिष्ट सेवाओं की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराया। आशा तथा स्पृहा का नवयुग महाराष्ट्र के लिए उदय हो चुका था। शाहू के कोल्हापुर वाले भाई के समस्त स्वत्व प्रतिपादन के भय अब शान्त हो गये थे। दिल्ली में सन्ताजी भोसले के प्राण जाने के कारण उसके भाई रानोजी को सवाई सन्ताजी की उपाधि दी गयी। उसके बलिदान के उपलक्ष में उसको नवीन इनाम तथा पुरस्कार दिये गये। ये दोनों भाई शाहू के प्रथम उपकारक पर्सोजी भोसले के पुत्र थे।[६]

उत्तर में इस प्रथम मराठा साहस के सामाजिक परिणाम कुछ कम महत्त्व-पूर्ण न थे। मराठा महत्त्वाकांक्षा को इसके द्वारा एक नवीन दिशा तथा एक नवीन दृष्टि प्राप्त हो गयी। अब तक यह माना जाता था कि दिल्ली बहुत ही दूर है। मराठों ने केवल इसके विषय में सुना ही था। उन्होंने न कभी शाही दरबार देखा था और न उसकी शोभा एवं गतिविधि से उनका परिचय था। दक्षिण के साधारण महाराष्ट्र के दीन तथा अर्द्धनग्न जीवन में तथा दिल्ली के वैभव में कैसा विचित्र अन्तर है, इसका ज्ञान उनको अब हुआ। समस्त जीवन

---

६ बालाजी महादेव भानु के पुत्र को २ अगस्त १७१९ ई० को लिखा हुआ शाहू का निम्नांकित पत्र प्रकट करता है कि राज्य के प्रति सेवाओं का पुरस्कार शाहू ने उसे किस प्रकार दिया

आपके पिता बालाजी पन्त ने अपने प्राणों की आहुति उस अव्यवस्था में दी जो दिल्ली में घटित हुई। वह पेशवा के साथ फडनिस के रूप में राज्य-कार्य पर गये थे। उनकी निष्ठापूर्ण सेवाओं की मान्यता में कवसाई का गाँव आपको इनाम में दिया जाता है। मृतक के भाई तथा अपने चाचा रामजी महादेव को भी आप इसमें भाग दें।'

वस्त्र भोजन, आचार विचार मे क्या महान् भेद है—इसका प्रथम अनुभव मराठो को अब हुआ। इससे उनकी दृष्टि विस्तृत हो गयी तथा विजय और विस्तार के प्रति उनका लाभ जाग्रत हो उठा। प्रथम पशवा के पुत्र बाजीराव के जीवन स यह स्पष्ट होता है कि उसका साहस उसके पिता के साहस स सवथा भिन्न है। इस होनहार नवयुवक म यह परिवतन शाहू क ध्यान म शीघ्र ही आ गया, और घर वापस आन के कुछ मास म ही बालाजी का सहसा दहात हो जाने पर उसन उसका नि सकोच पशवा क पद पर नियुक्त कर दिया।

८ यसुबाई की कारागार से मुक्ति तथा मृत्यु—शाहू की धमशीला तथा पूज्यनीया माता येसुबाई की कथा का यहाँ पर पूण कर दना चाहिए। वह शृगारपुर के पिलाजी शिर्के की पुत्री थी। ८ वष की आयु म सम्भाजी के साथ १६६९ ई० के लगभग उसका विवाह हुआ था। उसन अपना प्रारम्भिक जीवन शिवाजी महान् की देखरख में व्यतीत किया था। उसके दो सन्तानें हुईं—प्रथम भवानीबाई नामक एक कन्या और दूसरा शाहू नामक पुत्र। व तथा उनक अनुचर जिनकी सख्या २०० थी, रायगढ के पतन पर बन्दी बनाकर मुगल शिविर म कठोर कारावास म डाल दिय गये थे। युद्ध के १८ वर्षों म जहाँ जहा यह शिविर जाता, उनको भी जाना पडता था। इस काल म उसन अनक दुख तथा कष्ट भोग। उसके दुर्भाग्य पर दया आती है तथा उसका धय और उसकी सहनशीलता जिनका परिचय उसन कठोर परीक्षा के समय दिया, प्रशसनीय है। अहमदनगर म औरगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र आजमशाह की उत्तर की ओर यात्रा म उन्ह भी उसके साथ चलन क लिए विवश कर दिया गया। व शरीर-बन्धका के रूप म दिल्ली पहुँचे। राजधानी म दीघकालीन तथा क्लान्तिकारी निरोध के बाद माच १७१९ ई० म यसुबाई मुक्त कर दी गयी और उसक पश्चात शीघ्र ही वह सतारा पहुँची। यहाँ पर उसन दखा कि उसका पुत्र सुरक्षित रूप स मराठा गद्दी पर आसीन है। ऐसा ज्ञात होता है कि सतारा पहुँचन के कम से कम १२ वष तक वह जीवित रही। यसुबाई के सुख-दुखमय जीवन का अन्त सुखद रहा। वह अपने पीछे शुद्ध तथा नि स्वाथ आत्मा की पवित्र स्मृति छोड गयी। यसुबाई की मृत्यु का समाचार पाकर सम्भाजी न निम्नाकित शोक पत्र शाहू को लिखा। इस पत्र स स्पष्ट हो जाता है कि लोग उस महिला का असाधारण सम्मान की दृष्टि से दखत और मानत थ

आपकी पूज्यनीया माता यसुबाई की रुग्णता तथा परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु के दुखद समाचार से हमे आपका अपेक्षा कम दुख नही हुआ है। इस विषय पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नही है। हम सबको इसको सहन करना

होता है। आप बड़े हैं तथा निस्सन्देह आप में क्षमता है कि इस विपत्ति को आप शांतिपूर्वक सहन कर लें। इस दुःखद वियोग पर मैं आपको और क्या सांत्वना दे सकता हूँ ?" मराठा स्मृति में शाहू तथा येसुबाई लगभग उसी रूप में जीवित हैं जिसमें शिवाजी तथा उनकी माता जीजाबाई। शाहू सदैव यह अनुभव करता रहा कि उसका भाग्य उसकी माता के आशीर्वाद का ही परिणाम था।

६ चौथ और सरदेशमुखी की व्याख्या—औरंगजेब की मृत्यु के समय की मराठा स्थिति के पुनरुत्थान के निमित्त किये गये पेशवा की नीति और उसके प्रयासों के वास्तविक परिणामों का पुनरीक्षण करने के लिए यह उपयुक्त अवसर है।

बालाजी विश्वनाथ ने सम्राट की स्वीकृति द्वारा तीन मुख्य उद्देश्य प्राप्त किये। ये राज्य की भावी नीति का आधार बन गये। ये तीन विशिष्ट स्वत्व वे ही थे जिन्हें शिवाजी ने अपनी शक्ति द्वारा स्थापित किया था और जिनको बिना किसी बाह्य स्वीकृति के उन्होंने मुगल-साम्राज्य पर बलपूर्वक थोप दिया था। शाहू तथा बालाजी ने सम्राट से इन पुराने स्वत्वों के लिए नवीन स्वीकृतियाँ प्राप्त कीं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि शिवाजी अपने को स्वतन्त्र राजा मानते थे और अब मराठा राज्य का शासक सम्राट का आज्ञाकारी सेवक व अधीन राजा हो गया था। यह सुस्पष्ट एवं आश्चर्यजनक भेद निस्सन्देह सरल तथा असंदिग्ध है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में इसके कारण कोई अन्तर नहीं पड़ा क्योंकि हम पाते हैं कि शाहू तथा उसके पेशवा के शासन में मराठा सैनिक तथा जनसाधारण सम्भाजी तथा राजाराम के समय की अपेक्षा किसी प्रकार से कम स्वतन्त्र न थे। यदि सम्भाजी तथा राजाराम ने सम्राट के विरुद्ध प्रत्यक्ष युद्ध किये थे तो शाहू तथा उसके पेशवा ने भी मुगलों के प्रान्तीय सूबेदारों के विरुद्ध ऐसे ही युद्ध किये थे। शाहू की स्थिति निस्सन्देह अधिक निर्बल तथा पराधीन थी। सम्राट के बन्धन में अपनी युवावस्था व्यतीत होने के कारण वह अपना जीवन उसकी ही कृपा का फल समझता था और इसके पश्चात् ही वह मराठा राज्य का अध्यक्ष हुआ था। बालाजी की सहायता से मुगल दरबार की विचित्र कठिनाइयों का उसने अपने राष्ट्र के हित में उत्तम उपयोग किया और उस परिस्थिति से उसने यथासम्भव उत्तम लाभ उठाया। यदि वह स्पष्ट रूप से मुगल सत्ता तथा उसके अनेकानेक स्थानीय प्रतिनिधियों का विरोध करता और साथ ही युद्ध के पुराने दौर को ही जारी रखता तो वह अपने प्रयास में असफल रह जाता, क्योंकि धनाभाव के साथ साथ उसके पास सैनिक और साधन भी न थे। अतः उसने अनुरंजन तथा सद्भावना की

माग अगीकार किया और इस प्रकार व्यवहार मे अधिक उज्ज्वल और स्थिर परिणाम प्राप्त कर लिये। किसी और उपाय से यह परिणाम प्राप्त नही हो सकते थे। उसको अपनी निबलताओ का ज्ञान था और उसने जानबूझकर शिवाजी की पूण स्वाधीनता की नीति को त्यागा था।

तीनो अधिकार पत्रो—स्वराज्य, चौथ तथा सरदेशमुखी—की अत्यन्त निकटता के कारण साधारण पाठक के मन मे उनकी उत्पत्ति तथा महत्त्व के विषय मे शायद कुछ भ्रान्ति उपस्थित हो सकती है। वे तीनो सवथा भिन्न विषय है। उनका समीपता केवल सुयोग की बात है क्योकि वे तीना अधिकृत पत्र एक साथ और एक ही समय दिल्ली मे माच १७१६ ई० म लिखे तथा कार्यान्वित किय गये। इसलिए उनका वणन अधिकृत पत्रो मे साथ-साथ होता रहा है। पहले सतारा म भी ऐसा होता रहा। उसके बाद ग्राण्ट डफ ने अपन इतिहास म इसका अनुसरण किया। अत पाठ्य-पुस्तका तथा अध्ययन मे उनका सहअस्तित्व लोक प्रसिद्ध हो गया है।

'स्वराज्य'* शब्द केन्द्रीय महाराष्ट्र के उन भू प्रदशा के लिए प्रयुक्त होता था जिन्ह शिवाजी ने बीजापुर के आदिलशाह तथा दिल्ली के मुगल साम्राज्य के अधिकृत प्रदेशा मे से जीतकर एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे सगठित किया था। औरगाबाद और बुरहानपुर के समीपस्थ भाग को छोडकर इसका विस्तार व्यवहारत उत्तर मे ताप्ती नदी से दक्षिण मे कृष्णा नदी तक था। पश्चिम म यह समुद्र तक विस्तृत था तथा पूरब मे परिस्थितिया मे सदा परिवतन होते रहने के कारण इसकी सीमाएँ निश्चित न थी। चूकि शिवाजी ने इसे प्राप्त किया था इस कारण मराठे सदैव इस पर अपना न्यायपूण पैतृक अधिकार मानत रहे और इसी विरासत की रक्षा के लिए उन्होन औरगजेब से २५ वष तक कठोर युद्ध किया। बालाजी द्वारा प्राप्त स्वराज्य की सनद म उन विशेष जिला का स्पष्ट वणन है जो इस शब्द के अथ म सम्मिलित थे। ऐसा माना जाता था कि कुछ पृथक थाने—यथा कोपबल, गदग, बलारी एव वेल्लोर जिजी तथा तजौर—जिनको शिवाजी ने जीता था उनके द्वारा स्थापित स्वराज्य मे शामिल थे। ये दूरस्थ थान एक शृखला का निर्माण करत थे जिसके द्वारा दक्षिणी प्रदेशा पर नियन्त्रण रह सकता था। अपन पूण हिन्दवी स्वराज्य का स्वप्न साक्षात कर सकने के लिए शिवाजी स्वय जीवित न रहे।

---

* फारसी के लेखपत्रा म इस शब्द का अनुवाद है—ममालिक कदीम—अथात 'पुराना राज्य' अर्थात वे प्रदश जिन पर पहले शिवाजी का अधिकार था। इसका अथ हिन्दू राज्य गलत है।

होता है। आप बडे हैं तथा निस्सन्देह आप मे क्षमता है कि इस विपत्ति को आप शान्तिपूर्वक सहन कर लें। इस दुखद वियोग पर मैं आपको और क्या सात्वना दे सकता हूँ ?' मराठा स्मृति म शाहू तथा येसुबाई लगभग उसी रूप मे जीवित हैं जिसमें शिवाजी तथा उनकी माता जीजाबाई। शाहू सदव यह अनुभव करता रहा कि उसका भाग्य उसकी माता के आशीर्वाद का ही परिणाम था।

६ **चौथ और सरदेशमुखी की व्याख्या**—औरगजेब की मृत्यु के समय का मराठा स्थिति के पुनरुत्थान के निमित्त किये गये पेशवा की नीति और उसके प्रयासो के वास्तविक परिणामो का पुनरीक्षण करने के लिए यह उपयुक्त अवसर है।

बालाजी विश्वनाथ ने सम्राट की स्वीकृति द्वारा तीन मुख्य उद्देश्य प्राप्त किये। ये राज्य की भावी नीति का आधार बन गये। ये तीन विशिष्ट स्वत्व वे ही थे जिन्हे शिवाजी ने अपनी शक्ति द्वारा स्थापित किया था और जिनको बिना किसी बाह्य स्वीकृति के उन्होने मुगल साम्राज्य पर बलपूर्वक थोप दिया था। शाहू तथा बालाजी ने सम्राट स इन पुराने स्वत्वो के लिए नवीन स्वीकृतियां प्राप्त की। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि शिवाजी अपने को स्वतन्त्र राजा मानते थे और अब मराठा राज्य का शासक सम्राट का आज्ञाकारी सेवक व अधीन राजा हो गया था। यह सुस्पष्ट एव आश्चर्यजनक भेद निस्सन्देह सरल तथा असदिग्ध है। परन्तु वास्तविक व्यवहार म इसके कारण कोई अन्तर नही पडा क्योकि हमे ज्ञात है कि शाहू तथा उसके पेशवा के शासन म मराठा सैनिक तथा जनसाधारण सम्भाजी तथा राजाराम के समय की अपेक्षा किसी प्रकार स कम स्वतन्त्र न थे। यदि सम्भाजी तथा राजाराम ने सम्राट के विरुद्ध प्रत्यक्ष युद्ध किये थ तो शाहू तथा उसके पेशवा न भी मुगलो के प्रान्तीय सूबदारो के विरुद्ध ऐसे ही युद्ध किय थे। शाहू की स्थिति निस्सन्देह अधिक निर्बल तथा पराधीन थी। सम्राट के बन्धन म अपनी युवावस्था व्यतीत होने के कारण वह अपना जीवन उसकी ही कृपा का फल समझता था और इसके पश्चात ही वह मराठा राज्य का अध्यक्ष हुआ था। बालाजी की सहायता स मुगल दरबार की विचित्र कठिनाइयो का उसन अपने राष्ट्र के हित म उत्तम उपयोग किया और उस परिस्थिति से उसने यथासम्भव उत्तम लाभ उठाया। यदि वह स्पष्ट रूप स मुगल सत्ता तथा उसके अनेकानेक स्थानीय प्रतिनिधियो का विरोध करता और साथ ही युद्ध के पुराने दौर को ही जारी रखता, तो वह अपने प्रयास म असफल रह जाता, क्योकि धनाभाव के साथ साथ उसके पास सैनिक और साधन भी न थ। अत उसने अनुरजन तथा सद्भावना का

माग अगीकार किया और इस प्रकार व्यवहार म अधिक उज्ज्वल और स्थिर परिणाम प्राप्त कर लिये। किसी और उपाय से यह परिणाम प्राप्त नही हो सकते थे। उसको अपनी निवलताओ का भान था और उसने जानबूझकर शिवाजी की पूण स्वाधीनता की नीति को त्यागा था।

तीना अधिकार पत्रो—स्वराज्य, चौथ तथा सरदेशमुखी—की अत्यन्त निकटता के कारण साधारण पाठक के मन म उनकी उत्पत्ति तथा महत्त्व के विषय मे शायद कुछ भ्रान्ति उपस्थित हो सकती है। वे तीनो सवथा भिन्न विषय हैं। उनकी समीपता केवल सुयोग की बात है क्योकि व तीना अधिकृत पत्र एक साथ और एक ही समय दिल्ली म माच १७१६ ई० म लिखे तथा कार्यान्वित किये गय। इसलिए उनका वणन अधिकृत पत्रा मे साथ-साथ होता रहा है। पहले सतारा म भी ऐसा होता रहा। उसके बाद ग्राण्ट डफ ने अपा इतिहास म इसका अनुसरण किया। अत पाठ्य-पुस्तको तथा अध्ययन म उनका सहअस्तित्व लोक प्रसिद्ध हो गया है।

'स्वराज्य'* शब्द केन्द्रीय महाराष्ट्र के उन भू प्रदेशो के लिए प्रयुक्त होता था जिन्हें शिवाजी न बीजापुर के आदिलशाह तथा दिल्ली के मुगल साम्राज्य के अधिकृत प्रदेशा म से जीतकर एक स्वतन्त्र राज्य के रूप म सगठित किया था। औरगाबाद और बुरहानपुर क समीपस्थ भाग को छोडकर इसका विस्तार व्यवहारत उत्तर मे ताप्ती नदी से दक्षिण मे कृष्णा नदी तक था। पश्चिम म यह समुद्र तक विस्तृत था तथा पूरब मे परिस्थितिया मे सदा परिवतन होत रहन के कारण इसकी सीमाएँ निश्चित न थी। चूकि शिवाजी ने इसे प्राप्त किया था इस कारण मराठे सदव इस पर अपना न्यायपूण पतृक अधिकार मानते रहे और इसी विरासत की रक्षा के लिए उन्होंने औरगजेब स २५ वप तक कठोर युद्ध किया। बालाजी द्वारा प्राप्त स्वराज्य की सनद म उन विशेष जिला का स्पष्ट वणन है जो इस शब्द के अथ मे सम्मिलित थे। ऐसा माना जाता था कि कुछ पृथक थान—यथा कोपबल, गदग, बेलारी एव वेल्लोर जिजी तथा तजौर—जिनको शिवाजी न जीता था उनके द्वारा स्थापित स्वराज्य म शामिल थे। ये दूरस्थ थाने एक शृखला का निर्माण करत थे जिसके द्वारा दक्षिणी प्रदेशा पर नियन्त्रण रह सकता था। अपन पूण हिन्दवी स्वराज्य का स्वप्न साक्षात कर सकने के लिए शिवाजी स्वय जीवित न रहे।

---

* फारसी के लेखपत्रा म इस शब्द का अनुवाद है—ममालिक कदीम—अथात 'पुराना राज्य' अर्थात वे प्रदेश जिन पर पहले शिवाजी का अधिकार था। इसका अथ हिन्दू राज्य गलत है।

दूसरा भ्रामक शब्द 'सरदेशमुखी' है। इसका स्वराज्य या चौथ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसकी उत्पत्ति उस प्राचीन समय में हुई थी जब महाराष्ट्र में सर्वप्रथम उपनिवेश स्थापित हुए और राजस्व के लिए कृषि पर कर लगाया गया। इसका संग्रह करने के लिए ग्राम या जिला अधिकारी नियुक्त किए गए थे। ये देशमुख या भूमि के अधिकारी कहे जाते थे। भूमि-कर संग्रह करने का काम इन्हीं को दिया गया। इनको अपनी सेवाओं के लिए कर पर दस प्रतिशत मिलता था। जैसे यदि एक गाँव का भूमि-कर एक हजार रुपये होता तो देशमुख प्रत्येक भू-स्वामी से उचित धन संग्रह करता, सरकारी कोष में ९०० रुपये जमा करता और शेष १०० रुपये वह अपने श्रम के लिए रख लेता। उस समय राजस्व एकत्र करने की यह शैली अत्यन्त सरल, सस्ती तथा सुलभ सिद्ध हुई क्योंकि उस काम के लिए पूरे वेतन पर नियुक्त राजकीय सेवकों की ईमानदारी का कोई भरोसा न था तथा वे भू-स्वामियों और कृषकों को निकट से जानते भी न थे। देशमुख अपने हित अर्थात् कमीशन वृद्धि के निमित्त ऊसर भूमि पर बसने और कृषि करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को आकृष्ट करते थे। इन देशमुखों से यह अपेक्षित था कि वे ग्राम प्रशासन पर साधारण निरीक्षण रखेंगे तथा ऐसी सुविधाएँ प्रस्तुत करेंगे कि रैयत को उसके श्रम का पूर्ण लाभ प्राप्त हो।

सुदूर अतीत में मराठों और मुसलमानों के शासन के पहले से समस्त महाराष्ट्र में देशमुखों की नियुक्ति के कारण सभी दलों के हित सुरक्षित हो गये थे। अनेक नवीन विजेता आये, उन्होंने बारी-बारी से देश पर अधिकार किया, परन्तु शासकों के परिवर्तनों से देशमुखों में कोई परिवर्तन न हुआ, क्योंकि उनका अस्तित्व सभी के लिए अत्यन्त आवश्यक था। कई गाँवों के समूह या एक जिले पर नियन्त्रण रखने वाले मुख्य देशमुख को सरदेशमुख कहते थे और वह समस्त जिले में शांति तथा सुव्यवस्थित शासन के लिए उत्तरदायी था। ये देशमुख या सरदेशमुख अपने अधिकार क्षेत्र को वतन या पैतृक सुरक्षित क्षेत्र समझते थे जिस पर राजनीतिक क्रांतियों या शासन के परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। पर इस धारणा में शिवाजी ने थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया था। छत्रपति की हैसियत से उन्होंने अपने को सम्पूर्ण स्वराज्य का सर्वोपरि सरदेशमुख कहा और अपने अनुचरों तथा कृपापात्रों में देशमुखी वतनों को वितरित करने का अधिकार स्वयं अपने हाथों में ले लिया जिससे उनका राजस्व सुनिश्चित हो जाय और उस स्वराज्य के प्रति जिसकी वह स्थापना कर रहे थे कोई षड्यन्त्र भी न हो। उन्होंने निश्चित कर दिया कि सम्पूर्ण देश का सरदेशमुख स्वयं छत्रपति है। यही शाहू ने भी किया। छत्रपति

के रूप म अपना अभिषक हाते ही उसन सरदशमुख का कतव्य धारण कर लिया और १७१६ ई० म सम्राट की अनुमति द्वारा इसको नियमित करा लिया। मराठा स्वराज्य के प्रदशा तथा दक्षिण के छ मुगल सूबा तक ही सरदेशमुखी कर सीमित था।

चौथ एक भिन्न प्रकार का कर है जो उपयुक्त दाना विषया म सवथा भिन्न है। पश्चिमी तट पर पुतगालिया द्वारा विजित कुछ प्रदशा म शिवाजी के पहले स यह व्यवहार था कि पुतगाली अधिवासी अपन अधिकृत प्रदशा के राजस्व का एक चौथाई भाग समीपवर्ती सरदारा के आक्रमणा स बचन और अपनी सुरक्षा के हिताथ उन्ह इच्छापूवक दे दत थ। बसइ और दमन के बीच मे उत्तर कोकण क जिला को जब पुतगालिया न जीत लिया, तो स्थानीय सरदार तथा भूमिपति उन पर प्राय आक्रमण करत थ और व उनको भी अपनी निर्धारित आय का एक चौथाई भाग अपनी सुरक्षा या भावी आक्रमणा से बचने के लिए दे देत थे।[८] इस प्रकार का व्यवहार या अनुबन्ध देश के कुछ अन्य भागा म भी विद्यमान था। बाद म जब शिवाजी न इन विदेशी प्रदशा को विजय किया, तो इस व्यवहार को उन्होंने भी अपन लाभ क लिए अपना लिया। उन्होंन अपना स्वराज्य सवप्रथम उन थोडे-स जिला म स्थापित किया जो उनको वशपरम्परागत रूप म प्राप्त हुए थ और स्पष्टतया प्रकृतित मराठा थे। इसके बाद बाह्य प्रदशा पर धावे करके व अपन राज्य का विस्तार करने लग। य भी प्रकृतित मराठा थे, परन्तु बीजापुर और गोलकुण्डा के मुस्लिम राज्या तथा मुगल-साम्राज्य के अग थ। जस ही इन प्रदशा के किसी भाग को वह अपन अधीन कर लत वसे ही उनक सरदारा या नताओ को यह विकल्प देत कि व या तो सवथा उनके शासन म मिल जायें अथवा अपनी वार्षिक आय का एक चौथाइ भाग उनको दे। इसके बदल मे उन्हे आग तग नही किया जाता था तथा किसी अन्य विजेता से उनकी रक्षा करन क लिए भी व अपन को बाध्य समझते थे। इस प्रकार अद्ध विजित प्रदेशा क एक समान वग का उदय हुआ जो चौथ देकर अपनी निष्ठा स्वीकृत करत थे, परन्तु जिनक आन्तरिक कल्याण तथा प्रशासन के लिए व प्रत्यक्ष रूप स उत्तरदायी न थ। शिवाजी सदृश विजेता के लिए यह परमावश्यक था कि अपनी विजया को सुदृढ करन हेतु वे कुछ उपाय ढूढ निकालें। उनको आक्रामक सेना पर धन व्यय करना पडा था, अत स्वराज्य के विकल्प के रूप मे उन्होंने चौथ की

८ देखिए डा० सेन कृत 'मिलिट्री सिस्टम आव दि मराठाज', अध्याय २, आग देखिए स्टोरिआ डू मागोर ('चौथाइ' शीर्षक के अन्तगत)।

शली का आविष्कार किया। इस प्रथा के अन्तगत यह नियम था कि अधीन जनता अपनी सुरक्षा का व्यय स्वय सहन करती थी। विद्यार्थी देखेंगे कि अग्रेज गवनर जनरल लाड वेलजली की सहकारी-पद्धति (Subsidiary system) चौथ की निश्चित तथा सूक्ष्मता से सुस्थापित विकास मात्र थी, जो कि शिवाजी स लेकर नाना फडनिस तक मराठा शासका द्वारा प्रचलित रही।[६]

बालाजी विश्वनाथ तथा आगामी पशवाओ के हाथो म चौथ की यह पद्धति मराठा सत्ता के सवेग प्रसार मे सुलभ साधन सिद्ध हुई। सम्भाजी तथा राजाराम क शासनकाल म औरगजेब के विरुद्ध सफल युद्ध करने म भी यह पद्धति लाभदायक सिद्ध हुई थी। उसके प्रदेशा पर ये चौथ सग्रह के आधार पर धावे करते। खानदेश, मालवा, कर्नाटक तथा मुगल साम्राज्य के अन्य भागो पर भी मराठा ने चौथ का कर लागू कर दिया। इन मराठा अधिकारा को न तो औरगजेब ने कभी स्वीकार किया और न बाद के किसी अन्य मुगल सूबेदार ने। निजामुल्मुल्क सदृश मुगल शासको ने ता १७१९ ई० म मुगल सम्राट द्वारा विधिवत दी हुई स्वीकृतियो के पालन की भी चिन्ता नही की। उनके अनुसार तो ये सैनिक धमकियो के दबाव के कारण बलपूवक प्राप्त कर ली गयी थी। इसके कारण समस्त १८वी शताब्दी म सतत सघष चलता रहा। एक ओर चौथ सग्रह के लिए भ्रमण करने वाले मराठा नेता थ और दूसरी ओर उनके इन अधिकारो का विरोध करने वाले मुगल शासक। भारतीय राजनीति का १८वी शताब्दी का इतिहास इस सघष का लेखा है।

अब हम निष्पक्ष होकर यह विचार करना है कि व्यावहारिक रूप म ये अधिकृत लेख किस प्रकार कार्यान्वित किये गय। वे स्पष्टत दो विरोधी दलो—मराठा और मुगलो—के बीच म एक प्रकार का दक्ष छल-कपट मात्र सिद्ध होते हैं। मुगल अधिपति के रूप म अपनी प्रतिष्ठा सुरक्षित रखना चाहते थे और साथ ही इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का भी गुप्त रखना चाहते थ कि आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओ के विरुद्ध उन्हे मराठा सरक्षण की आवश्यकता है। दूसरी ओर मराठा न दिखावटी अधीनता या कर-सरदारो की स्थिति स्वीकार की हुई थी। यद्यपि बाह्य रूप स वे सम्राट के आज्ञापालक थ परन्तु वास्तव म उनको अपने हित के लिए साम्राज्य की समस्याओ का जैसा चाहे वसा प्रबन्ध करने का वास्तविक सत्ता प्राप्त थी। मराठे १५ हजार सेना सहित सम्राट की सेवा करने तथा दस लाख रुपय वार्षिक नजर कर देने को सहमत हो गये। इसके

---

[६] सिलेक्शन्स फ्राम साहित्य ? न० ६९७ म साधारण राज्य का विवरण देखिए। रानाडे कृत राइज आव द मराठा पावर अध्याय ६ भी देखिए।

बदले मे उनको दक्षिण के छ सूबो से २५% चौथ तथा १०% सरदेशमुखी सग्रह करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह मान लिया गया था कि उन छ सूबो की वार्षिक आय १६ करोड रुपये है यद्यपि यह कहने मात्र को थी। इसमे ३५% आय मराठो को होनी थी। स्पष्ट है कि व्यवहार रूप मे सगृहीत धन कागजी हिसाब से बहुत कम होता था। व्यक्तियो की भाति वे शासन भी जो विदेशी सरक्षण स्वीकार करते हैं वास्तव मे अपनी निर्बलता तथा परिणाम-भूत स्वाधीनता की हानि स्वीकार करते है।

१० **जागीरदारी का आरम्भ तथा उसके दोष**—चौथ का सग्रह जागीर-दारी की प्रथा द्वारा मराठा प्रसार का प्रत्यक्ष कारण था। अत यहा जागीरदारी के गुण तथा दोषो का वर्णन होना आवश्यक है क्योकि यह तो केवल भाग्य की बात थी कि बालाजी के नवयुवक पुत्र बाजीराव ने तीनो सनदो मे वर्णित शर्तो को बलपूर्वक प्रचलित करने मे अपने को समर्थ सिद्ध कर दिया। उसने उत्साही साथियो—पवार होल्कर, शिन्दे तथा अन्य व्यक्ति—का एक दल एकत्र किया तथा कुछ ही वर्षों मे दक्षिण के छ सूबो के आगे भी मराठा सत्ता का विस्तार कर लिया। इस कार्य के लिए प्रत्येक सेना के नायक को एक अलग क्षेत्र दे दिया गया जो उसका अपना अकेले का क्षेत्र था, जहा पर वह अपनी स्वतन्त्र कार्यवाही कर सकता था। उत्तर मे नर्मदा नदी तथा दक्षिण मे जिंजी के बीच मे हजारो वर्गमील के विशाल क्षेत्र पर औरगजेब के विरुद्ध मराठो के १७ वर्ष के सघर्ष काल मे यह प्रथा नितान्त आवश्यक भी हो गयी थी। इस दीर्घकालीन युद्ध की आवश्यकताओ ने प्रत्येक मराठा नेता को इस बात पर विवश कर दिया कि वह अपने ही उपक्रम पर अपना कार्य करे तथा वह स्वय ही उन उपायो की रचना करे जिनके द्वारा वह अपनी परिस्थिति के अनुकूल भलाभाति आचरण कर सके। सन्ताजी धनाजी परशुराम त्र्यम्बक शकरजी नारायण तथा अन्य सकडो नेताओ ने महाराष्ट्र मे पन्हाला मे निवास करने वाले रामचन्द्र पन्त अमात्य के, तथा कर्नाटक मे जिंजी मे निवास करने वाले छत्रपति राजाराम के नाममात्र के आदेशो के अनुसार कार्य किया। परन्तु उस समय वास्तव मे न कोई केन्द्रीय शासन था और न सचार की सरल सुविधाएँ ही थी जिससे अधीनस्थ अधिकारियो पर कोई विशिष्ट आज्ञाएँ तथा योजनाएँ बलपूर्वक लादी जा सकें।

समयान्तर मे अज्ञात रूप मे स्वयमेव ऐसी परिस्थिति का विकास हो गया जिसमे मराठा नेताओ तथा युद्धशील दलो के नायको ने देश के दूरस्थ भागो पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और अपने प्रभाव के उस विशिष्ट क्षेत्र मे जा बसे। घोरपडे-परिवार ने कृष्णा नदी के दक्षिण मे अधिकाश

कनाटक को अपने अधीन कर लिया तथा ममल्कत मदार, हिंदुराव और अमीर उल उमराव की उपाधियाँ प्राप्त की। सनासाहेब-सूबा कान्होजी भोसले ने बरार तथा नागपुर पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। सर-लश्कर निम्बालकर परिवार ने बागलान पर अधिकार कर लिया। सेनापति दाभाडे पश्चिमी खानदेश तथा गुजरात के कुछ भागों में जम गया। पेशवा ने भी मध्य के प्रदेशों को हस्तगत करने का प्रयत्न किया जिससे राज्य के प्रधान मन्त्री की हैसियत से वह समस्त व्यक्तियों की प्रवृत्तियों का नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण कर सके।

इसके पहले ही जबकि १७१९ ई० में दिल्ली में बालाजी को विधिवत सनदें प्राप्त हुई वस्तुस्थिति उपरोक्त प्रकार की हो गयी थी। इस परिस्थिति में नर्मदा नदी के दक्षिण में अधिकांश देश को विभिन्न मराठा सरदारों ने पहले से ही परस्पर बाँट रखा था। इन सनदों की प्राप्ति के बाद नये-नये नेता तथा नायकों ने शाहू के दरबार में एकत्र होकर प्रार्थना की कि उनको भी वह कहीं कार्यक्षेत्र बतलाये तथा उनके लिए काम दे क्योंकि दिल्ली से पेशवा के सफल प्रत्यागमन पर मराठा आकांक्षाओं को नवीन प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था और प्रत्येक नवयुवक मराठा सैनिक के मन में पराक्रम, प्रसरण तथा विजय का एक प्रकार का उन्माद प्रवेश कर गया था। परिणामस्वरूप नम्र हृदय कृपालु राजा ने उनको उनकी इच्छानुसार अपना विकास करने की स्वाधीनता दे दी। अपने धर्म पुत्र फतेहसिंह भोसले को उसने मराठा राज्य की दक्षिणी सीमा अक्कलकोट पर नियुक्त कर दिया ताकि वह हैदराबाद के नवाब पर नियन्त्रण रख सके। फतेहसिंह के वंशज अक्कलकोट के छोटे से राज्य पर भारत के पूर्ण स्वतन्त्र होने तक शासन कर रहे थे। शाहू के घनिष्ठ मित्र तथा कृपापात्र प्रतिनिधि को राजधानी के समीप कुछ जिले दिये गये जिनके वंशजों का अब तक औंध पर शासन रहा। कोलाबा का सरखेल कान्होजी आंग्रे पश्चिमी तट का समुद्री संरक्षक नियुक्त हुआ परन्तु उसके वंश का नाश हो गया। इन नेताओं में से प्रत्येक से यह अपेक्षा थी कि वे राज्य की सेवार्थ, जब कभी भी इसकी आवश्यकता पड़े कुछ अनुभवी सैनिक अपनी सेवा में रखेंगे तथा संगृहीत चौथ से अपना व्यय चलायेंगे, और शेष धन को राजकीय कोष में जमा कर देंगे तथा अपनी आय-व्यय का नियमित लेखा छत्रपति को देंगे।

यह उस प्रबन्ध की रूपरेखा मात्र है जो बालाजी तथा राजा का अति सुलभ जान पड़ा। कोई सम्पूर्ण नवीन पद्धति वे अकस्मात स्थापित कर भी नहीं सकते थे। उस समय वर्तमान पद्धति के आधार पर ही उन्हें अपना कार्य करना था तथा उसमें उपलब्ध सामग्री का ही वे उपयोग कर सकते थे। इस

प्रथा के दोषो का ज्ञान बालाजी को अवश्य था। यही प्रथा आगे चलकर मराठा की जागीरो तथा सरंजामो की प्रथा मे परिणित हो गयी। मराठा सत्ता के तीव्र प्रसरण के लिए कोई अन्य व्यवस्था इतनी उपयोगी सिद्ध भी नही हो सकती थी। जागीरदारो का काय कोई सरल काय न था। वे दूरस्थ प्रदेशो म शत्रुओ से घिरे हुए थे, जिनका उन्हें सदैव सामना करना पडता था। चौथ का सग्रह भी उन्हें सेना द्वारा ही करना पडता था। यह सेना उन्हें हर समय तैयार रखनी पडती थी और इसका वेतन चुकाने के लिए उनको बहुत-सा ऋण लेना पडता था। अपने लिये अपेक्षित धन का सग्रह करने में उन्हें अनेक कष्ट उठाने पडते थे। उनकी सेनाएँ भी समय पर वेतन न पा सकने के कारण सदव उपद्रव करती रहती थी।

मराठा राज्य के सस्थापक शिवाजी ने कभी भी इस प्रकार की जागीरदारी प्रथा को स्वीकार नही किया था। वे अपनी सेना को राज्य की भूमि न देकर नकद नियमित वेतन देते थे। इसके विपरीत उन्होंने वे तमाम भूमियाँ जब्त कर ली थी जो शासन की सेवा के बदले मे पुराने शासनो के समय से पुरस्कार तथा इनाम के रूप मे दी हुई चली आती थी। शिवाजी के इस उपयोगी नियम को शाहू तथा उसके पेशवा ने कई बातो के विचार से त्याग दिया था। पिछले युद्धो के कारण जागीरो का अस्तित्व स्थायी हो गया था और अकस्मात् उनका लोप नही किया जा सकता था। शाहू की अपनी तत्सम स्थिति भी इन जागीर दारो द्वारा उसको दी गयी सहायता के कारण थी। अपनी इच्छा से वह उनके अधिकृत प्रदेशो का अपहरण नही कर सकता था क्योकि विद्रोह अथवा गृह युद्ध के काल म उनके द्वारा अव्यवस्था उत्पन्न कर देने की आशका थी जिसके लिए वह तयार न था। उसकी अपनी कोई नियमित सेना भी न थी जिससे कि वह सामन्तीय वैमनस्य तथा विद्रोह का दमन कर सकता। चन्द्रसेन जाधव का व्यवहार इसका स्पष्ट उदाहरण है।

इस प्रथा मे ह्रास के बीज निहित होते हुए भी इसके कारण कुछ समय तक मराठा सत्ता का प्रसरण अवश्य ही तीव्र गति से हुआ। जब उनसे सेवा की माँग की जाती, तो जागीरदार सामन्त नाना प्रकार के बहाने तथा कठिनाइयाँ उपस्थित करते। वे प्राय सेना की निश्चित मात्रा तथा रण-सज्जा न रखते थे। अनुपस्थिति के लिए हजारो बहाने बना देते और सदव पृथक होने की प्रवृत्ति तथा स्वाथ भावना प्रकट करते जो राज्य के हितो के लिए अति विनाशक होते। उनके लेखे कभी पूण न होते और दूर से वे तय भी न किये जा सकते थे, तथा यह तथ्य समस्त सम्बन्धित व्यक्तियो के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बन जाता।

परन्तु योग्य पुरुषों ने इस प्रथा के अन्तर्गत भी प्रशंसनीय कार्य किये, विशेषकर द्वितीय पेशवा बाजीराव ने। उसमें नेतृत्व, व्यक्तिगत वीरता, समीक्षण तथा आकर्षक आचरण के अधिकांश गुण विद्यमान थे। उसने नवयुवक उत्साहियों का एक दल एकत्र किया और कुछ ही वर्षों में अपने अनुभवी प्रतिद्वन्द्वी निजामुल्मुल्क आसफजाह का दमन करके मालवा, गुजरात तथा बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया तथा चौथ संग्रह के बहाने को लेकर उसने मराठा सेनिकों को ठीक दिल्ली के फाटकों तक पहुँचा दिया। उसके योग्य नायकों ने अपने लिये छोटी छोटी पैतृक जागीरें या आश्रित राज्य स्थापित कर लिये और उपयुक्त सुदुर्गीकृत राजधानियाँ स्थापित कर लीं। मराठा मित्र प्रदेशों में धार, देवास, इन्दौर, उज्जैन, ग्वालियर, सागर, नागपुर, बड़ौदा तथा अन्य नगर मूल रूप में मराठों के उपनिवेश बन गये जो कि आधुनिक समय तक विद्यमान हैं। मराठा राज्य को संगठित रखने के लिए कोई अन्य पद्धति ऐसे प्रशस्त रूप में अपना कार्य नहीं कर सकती थी विशेषकर जब जबकि दूरस्थ प्रदेशों पर केवल सैन्य शक्ति द्वारा ही अधिकार रखा जा सकता था। उस समय सतारा में केन्द्रीय शासन-केन्द्र के साथ सरल संचार के लिए कोई सुनिश्चित मार्ग न थे जबकि उसी स्थान से संकट की अवस्था में सैनिक सहायता प्राप्त हो सकती थी। जागीरदारी प्रथा का मुख्य आधार छत्रपति तथा पेशवा द्वारा जागीरदारों से आज्ञा-पालन कराने की क्षमता थी। शाहू तथा उसके प्रथम तीन पेशवा और तृतीय पेशवा की मृत्यु के बाद उसका पुत्र माधवराव इन जागीरदारों को उचित नियन्त्रण में रख सके तथा उन्होंने दृढ़ता और न्यायपूर्वक वर्द्धमान साम्राज्य के अनेकानेक विषयों की देखभाल की। परन्तु पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद मराठा शासन का भवन योग्य स्वामी के अभाव में ध्वस्त हो गया। इतिहास के विद्यार्थियों के रूप में अपना अन्तिम निर्णय देने से पूर्व जागीरदारी प्रथा के गुणों तथा अवगुणों पर हमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

११ वंश-परम्परागत पद—न्याय और हानिकारक सिद्धान्त वंश परम्परागत पदों का था जो कि उस काल में महाराष्ट्र में ही नहीं अपितु सारे देश में जड़ जमाए हुए था। इतिहास के विद्यार्थियों को इसे सावधानी से समझ लेना चाहिए। उच्च तथा निम्न व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक—समस्त पदों तथा संस्थाओं पर व्यक्ति अपना पैतृक अधिकार मानते थे। जब किसी अधिकारी यथा [illegible] का देहान्त हो जाता तो उसका पुत्र या कोई अन्य सम्बन्धी उस पद पर अपना न्यायपूर्ण अधिकार समझता चाहे वह स्वयं योग्य हो या न हो। शासन के सभी पदों पर पैतृक नियुक्तियों के इस व्यवहार का विनाश बुद्धिमान शिवाजी ने

कठोरतापूर्वक किया। नियुक्तियों में वे केवल योग्यता का ध्यान रखते थे। परन्तु समाज से इस व्यवहार का पूर्ण मूलोच्छेद न हो सका तथा मुगल संघर्ष के काल में तो यह व्यवहार दुगुने जोर से पुनरुज्जीवित हो गया था। प्रत्येक प्रकार के पद भूमि या नकद सम्पत्ति के अनुदान आदि को लोग व्यक्तिगत समझने लगे। इसको 'वतन' कहा जाता था और इस पर पैतृक परम्परा द्वारा अधिकार माना जाता था। व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक व्यवहार दोनों में यही स्थिति थी। कुछ वतन—यथा ग्राम-अधिकारियों—पाटिल या कुलकर्णी—को प्रदत्त—भूमि के रूप में सम्भवतया बहुत प्राचीन समय से विद्यमान थे। यह प्रथा ग्रामीण प्रशासन के लिए चाहे जितनी आवश्यक क्यों न रही हो, परन्तु सार्वजनिक सेवा के लिए जहाँ क्षमता और निपुणता ही आवश्यक योग्यता होनी चाहिए यह निश्चय ही हानिकारक सिद्ध हुई। यह आवश्यक नहीं कि बढ़ई या सुनार के पुत्र की भांति सेनापति का पुत्र भी अपने पिता की मृत्यु के बाद उसके कर्तव्यों का संचालन करने के योग्य हो। केवल इच्छा मात्र से नायकों तथा प्रशासकों की उत्पत्ति नहीं की जा सकती। उनको बाह्य अनुभव का प्रशिक्षण देना होता है।

व्यक्ति को सुसेवा के लिए पुरस्कृत करना प्रशंसनीय नीति है। परन्तु अपने पूर्वजों द्वारा की हुई सेवा के लिए उसी पुरस्कार को प्राप्त करने हेतु किसी व्यक्ति का अपना स्वत्व प्रकट करना असह्यनीय एवं बुरा है। इससे शिथिलता तथा अकर्मण्यता को प्रोत्साहन मिलता है उपक्रम की हत्या होती है तथा समाज का सर्वनाश हो जाता है। मराठी भाषा में अनेक पत्र प्रकाशित हुए हैं जिनमें सहस्रों आवेदन-पत्र दिये हुए हैं जिनका आशय तथा सार संक्षेप में, निम्न प्रकार दिया जा सकता है। एक प्रार्थी को पेशवा लिखता है

'आपने अमुक समय तथा अमुक स्थान पर उपस्थित होकर मुझे बताया कि किस प्रकार आपके पिता पितामह आदि ने निष्ठापूर्वक राज्य की सेवा की थी। आपकी भी हार्दिक इच्छा है कि उसी कार्य को आप दिलोजान से करते रहें। आपके पास बड़ा परिवार है जिसका पालन-पोषण करने के लिए आपके पास कोई साधन नहीं है। अतः कुछ भूमि और गाँव आपको कृपापूर्वक इनाम में दिये जायें। इस विनम्र प्रार्थना पर ध्यान देते हुए हम आपको निम्नलिखित भूमि या ग्राम प्रसन्नतापूर्वक देते हैं—आदि-आदि।'

इस प्रकार जो पुरस्कार पहले निष्ठा तथा प्रशंसनीय सेवा के लिए अथवा वीरता और बलिदान के लिए दिया जाता था, उसकी माँग अब बड़े परिवारों के पालन पोषण तथा निर्वाह के लिए होने लगी। यह एक प्रकार की भिक्षावृत्ति थी जिसने राज्य तथा भिक्षुक दोनों का नाश कर दिया था। जब तक योग्य

पेशवा या स्वामी विद्यमान रहा, जो अपने उच्च आसन से यथेष्ट नियन्त्रण करता रहा तथा लोगो से आज्ञा पालन कराता रहा, पुरस्कारो की यह प्रथा अपना कार्य ठीक करती रही और इसके परिणाम भी सन्तोषजनक रहे। उत्तरकालीन मराठा प्रगतियो का सम्पूर्ण तथा युक्तियुक्त पुनरीक्षण ही उन तीन स्मरणीय शाही अनुदानो के परिणामो तथा सम्बन्धो की विशुद्ध व्याख्या कर सकता है जो १७१९ ई० के आरम्भिक मासो मे प्रथम पेशवा ने प्राप्त किये। १८वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे जबकि मराठे उत्तर भारत की ओर अपने लिये मार्ग प्रशस्त कर रहे थे, उनके सुकर्मों या कुकर्मों का मूल्यांकन करने के लिए इसी पुनरीक्षण द्वारा कसौटी प्राप्त होगी।

२२ बालाजी की मृत्यु--चरित्र निरूपण---दुर्भाग्यवश बालाजी विश्वनाथ इतना दिनो तक जीवित न रहा कि वह अपने उद्देश्यो तथा सकल्पो को कार्यान्वित कर सकता जिनका निर्माण या प्रकाशन उसने दिल्ली मे सैयद-बन्धुओ तथा अन्य शक्तिसम्पन्न अधिकारियो के साथ हुई बातचीत मे किया था। जब बालाजी उत्तर मे अपने अभियान पर था, कोल्हापुर के सम्भाजी ने शाहू के विरुद्ध कुचेष्टा करने के लिए पेशवा की अनुपस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। अत यदि बालाजी को वह सफलता प्राप्त न होती जो उसको हुई, तो महाराष्ट्र मे कुछ गम्भीर सकट अवश्य उपस्थित हो गया होता। सम्भाजी के विरुद्ध शाहू ने तुरन्त अपनी सेना द्वारा आक्रमण किया और १७१९ ई० के आरम्भिक मासो मे वडगाँव के समीप वारणा मे उसने सम्भाजी को परास्त कर दिया। अपनी वापसी के तुरन्त बाद ही बालाजी ने पूना और उसके समीपवर्ती जिलो पर तथा उत्तर कोंकण मे कल्याण और भिवण्डी के जिलो पर अपना अधिकार कर लिया। १७१९ ई० के अन्तिम मासो मे शाहू और बालाजी ने सम्भाजी पर फिर आक्रमण किया तथा उसकी राजधानी कोल्हापुर को घेर लिया, किन्तु वे सम्भाजी की दूषित प्रगतियो को स्थायी रूप से न रोक सके। मार्च १७२० ई० मे बालाजी सासवाड वापस आया। पूना मे राजभवन के निर्माण के पहले यह पेशवाओ का अल्पकालीन निवास-स्थान था। बालाजी का प्रथम निवास स्थान सूपा मे था। वहाँ से वह अपने मित्र पुरन्दरे परिवार के पास सासवाड मे आ गया था। यहाँ पर अकस्मात् २ अप्रल, १७२० ई० को उसका देहान्त हो गया। उसकी आयु का कही पर उल्लेख नही है, परन्तु अनुमानत उसकी आयु लगभग ६० वर्ष या इससे कुछ अधिक थी।

अपने पीछे उसने अपनी पत्नी राधाबाई को छोडा। वह चतुर तथा प्रतिष्ठित महिला थी। उसका जन्म बर्वे-परिवार मे हुआ था। वह अपने पति के देहान्त के बाद ३३ वर्षों तक जीवित रही और उसने मराठा राज्य के हित

म, जिसके निर्माण म बालाजी ने अथव परिश्रम किया था, वास्तविक सेवा की। अपने पुत्र तथा पौत्र के समय मे राधाबाई की बात चलती थी और उसका भारी प्रभाव था—विशेषकर सामाजिक तथा धार्मिक विषया मे, पेशवा के महल के निर्माण मे, तथा पूना और उसके बाहर के स्थानो मे अनेक मन्दिरो की स्थापना मे। उसके चार सन्तान हुइ—दो पुत्र और दो पुत्रियाँ। उन सब के विवाह बालाजी की मृत्यु के पहले ही हो गये थे। उसका ज्येष्ठ पुत्र विसाजी—अपरनाम बाजीराव—बालाजी के देहान्त पर उसका उत्तराधिकारी पेशवा नियुक्त हुआ। दूसरा भाई अन्ताजी—अपरनाम चिमनाजी अप्पा—था। वह भी मराठा राज्य प्रबन्ध म अपने भाई के समान प्रसिद्ध हुआ। इनके बाद अनुबाई नामक एक पुत्री का जन्म हुआ था। उसका विवाह इचलकरनजी के व्यकटराव घोरपडे के साथ हुआ था, जहाँ उसके वशज कोल्हापुर क्षेत्र मे एक छोटी सी रियासत पर अब तक शासन कर रहे थे। अनुबाई दोना भाइयो की बडी कृपापात्र थी। उन्हाने सदव दुष्प्राप्य वस्त्रा तथा अद्भुत वस्तुओ के उपहार द्वारा उसको प्रसन्न रखन का प्रयत्न किया। सबसे छोटी सन्तान भिऊबाई नामक एक पुत्री थी। उसका विवाह बारामती के आबाजी नायक जोशी के साथ हुआ था। चास के महादजी कृष्ण जोशी की पुत्री काशीबाई के साथ बाजीराव का विवाह हुआ था। यह जोशी धनी साहूकार था। इसने शाहू के सकटो म उसकी सहायता की थी तथा छत्रपति ने उसका अपना कोषाध्यक्ष नियुक्त किया था। चिमनाजी अप्पा बाजीराव स सम्भवत दो या तीन वष छोटा था। उसका विवाह त्र्यम्बकराव पेठे (जो बाद मे त्र्यम्बकराव मामा के नाम से प्रसिद्ध हुआ) की बहन रखमाबाई के साथ हुआ था। अनेक अभियाना म उसने पेशवा की सेना का सचालन किया। दोना भाइयो—बाजीराव तथा चिमनाजी—म परस्पर प्रगाढ प्रेम था। राजनीतिक जीवन म उनकी सफलता का बहुत बडा कारण उनमे बुद्धिपूण समीक्षण तथा उत्साही सहयोग था जो व सदव एक दूसरे को दुख-सुख की अवस्था म देत थे। इन पेशवाओ के समस्त परिवार की आकृति सुन्दर तथा गौर वण था।

जो अद्भुत सफलता पेशवाओ न अपन जीवन मे प्राप्त की उसका बहुत कुछ श्रेय चरित्र तथा उद्योग के उस विकास को है जो पेशवा के महल मे तथा इसके समीपवर्ती क्षेत्र म उनके गाहस्थ जीवन मे, विशेषकर उनकी महिलाआ द्वारा बलपूवक प्रवर्तित किया गया। समकालीन मुसलमान परिवारा के ह्रास-मय जीवन के सवथा विपरीत यह लक्षण लगभग एक शताब्दी तक महाराष्ट्र समाज के उच्च-वग म व्याप्त रहा।

बालाजी विश्वनाथ सवथा स्वशिक्षित पुरुष था। रामचन्द्र पन्त अमात्य

के अधीन काय करने से उस समय की राजनीति तथा राष्ट्रीय साधना व सगठन म उसको उत्तम शिक्षण प्राप्त हो गया था। उस समय नाना प्रकार की समस्याओं तथा विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियो वाले पुरुषो का उसको अनुभव हुआ। उसने केवल मराठा चरित्र तथा उनकी क्षमता का ही अध्ययन नही किया वरन् उसको उतना ही व्यापक ज्ञान मुगल दरबार तथा उसके काय कर्ताओ के जीवन और उनके स्वभाव का था। इस प्रकार केवल बालाजी ही मराठा नीति के भावी माग का निर्माण कर सकता था। औरगजेब के अतिम दिनो म देश की स्थिति का उसने गम्भीरतापूवक अध्ययन किया था तथा उसको यह अनुभव हो गया कि मराठा राष्ट्र के लिए उत्तम अवसर उसी समय प्राप्त हो सकता है जब वह ताराबाई की अपेक्षा शाहू के पक्ष का समथन करे। उसने धनाजी जाधव को सहायता दी तथा अय प्रमुख व्यक्तियो तथा परिवारो—यथा पुरदरे बोकिल आदि—का सहयोग प्राप्त कर लिया। खाडेराव दाभाडे पर्सोजी और कान्होजी भोसले तथा शकरजी मल्हार उसके घनिष्ठ सहकारी थे। मित्रता तथा पारिवारिक सम्बधो के कारण उस समय के अधिकाश साहूकारो का आर्थिक समथन भी उसको प्राप्त हो गया। इसी कारण वह चद्रसेन जाधव तथा दमाजी थोरात के विश्वासघात का सामना करने म समथ हुआ। उसके चरित्र मे शिवाजी के समान विलक्षण बुद्धि के अन्वेषण की चेष्टा व्यथ है, परतु अपवादस्वरूप ऐसे अनेक गुणसम्पन्न व्यक्तियो को छोडकर हम बालाजी विश्वनाथ को अपने समय के अय प्रसिद्ध व्यक्तियो की तुलना म उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ कह सकते हैं। सर रिचड टेम्पिल की उक्ति है

वह अपने समस्त उत्तराधिकारियो की अपेक्षा बहुत कुछ आदश ब्राह्मण था। उसकी बुद्धि शात गम्भीर तथा प्रभावशाली थी उसकी प्रकृति कल्पना शील तथा महत्त्वाकाक्षी थी नतिक बल द्वारा उद्धत प्रकृति पर शासन करने की प्रवृत्ति उसम थी, कूटनीतिक सश्लेष की विलक्षण बुद्धि उसम थी आर्थिक विषयो पर उसका अधिकार था। उसकी राजनीतिक भवितव्यता ने उसको उन विषयो मे फसा दिया जिनसे उसको घोर कष्ट हुआ होगा। अनेक बार उसको मार डालने की धमकी दी गयी। अपने जातीय गुणो के कारण वह मृत्यु का सहष आलिगन करने को प्रस्तुत था पर मुक्ति का अवसर उसे सुयोग्य से प्राप्त हो गया। भत्सना तथा तक द्वारा उसने मुगलो से मराठा स्वातन्त्र्य की मायता प्राप्त कर ली। अपने समस्त कूटनीतिक विषयो म उसने विजय प्राप्त की। उसकी असामयिक मृत्यु हुई परतु उसे अपनी मृत्यु से पहले ही विश्वास हो गया था कि मुस्लिम सत्ता के खण्डहरो पर एक हिंदू

साम्राज्य की स्थापना हो गयी है तथा इस साम्राज्य का वंश परम्परागत नेतृत्व उसके परिवार को प्राप्त हो गया था।'[10]

जिस उच्च आदरणीय दृष्टि से यह पेशवा देखा जाता था उसका निम्नांकित समकालीन विवरण प्राप्त है—"बालाजीपंत नाना की अति उत्कट इच्छा यह थी कि जनसाधारण को सुख तथा समृद्धि प्राप्त हो जाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त उसने अपने मस्तिष्क तथा हृदय की समस्त शक्तियों को लगा दिया। उसने मराठा भूमि में दीर्घकालीन विनाशक संघर्ष को सर्वथा नष्ट कर शान्ति तथा समृद्धि को पुनः स्थापित कर दिया। उसने बलपूर्वक समस्त अशान्त तत्त्वों का दमन कर दिया तथा विशेष अनुदानों द्वारा देश को पुनः आबाद किया। इस प्रकार प्रजा नाना को अपना महान् उपकारक समझने लगी। समस्त दिशाओं में उसका यश असाधारण रूप से फैल गया।"[11]

कुछ समालोचकों ने इस पेशवा पर यह आरोप लगाया है कि उसने मराठा राज्य के संस्थापक के विवेकयुक्त नियमों का परित्याग करके उसके नाश के बीज बो दिये हैं। उनका कहना है कि वे तीन अधिकार पत्र (सनदें) जिन्हें बालाजी दिल्ली से लाया, सम्राट की सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करने के कारण दासता की कड़ियों से कुछ कम न थे। इसकी व्याख्या पहले ही हो चुकी है कि परिस्थिति किस प्रकार बालाजी द्वारा सैयद-बन्धुओं को सहायता देकर मराठों का विस्तार प्राप्त करने की नीति को न्यायसंगत बताती है। इसका समान उदाहरण क्लाइव द्वारा बंगाल की दीवानी के स्वीकरण में है जिसके कारण केवल नाममात्र की सत्ता सम्राट के हाथ में रह गयी थी। अंग्रेजों ने वास्तविक सत्ता हासिल करके भी बहुत दिनों तक शून्य-तुल्य सम्राट के नाम का ही उपयोग किया और १८३५ ई० तक उनके सिक्के भी सम्राट के ही नाम से निकलते रहे। सम्राट को मराठा सहायता प्रस्तुत कर बालाजी ने वास्तविक सत्ता प्राप्त कर ली। यह योजना सम्पूर्ण कही जाने के योग्य है। गृह युद्ध तथा अप्रगति के चक्रव्यूह से नवीन मार्ग का अनुसंधान करने में बालाजी सफल हुआ। अतः मराठा राज्य के अन्तिम पतन के प्रति बालाजी को किसी भी प्रकार उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

---

[10] ओरिएण्टल एक्सपीरिएन्स', पृ० ३८६-९० ।
[11] हिंगने दफ्तर, जिल्द १, पृ० १५ ।

तिथिक्रम

अध्याय ३

१८ अगस्त, १७००	बाजीराव का जन्म।
१७ अप्रल, १७२०	बाजीराव पेशवा नियुक्त।
१९ जून, १७२०	रतनपुर का युद्ध, दिलावरअली का वध।
३१ जुलाई, १७२०	बालापुर का युद्ध, आलमअली का वध, शंकरजी मल्हार की मृत्यु।
८ अक्तूबर, १७२०	सयद हुसनअली की हत्या।
१४ नवम्बर, १७२०	सयद अब्दुल्ला बन्धन मे (११ अक्तूबर, १७२२ ई० को उसका वध)।
१५ दिसम्बर, १७२०	गोदावरी के तट पर मराठों के हाथों मुगलों की पराजय।
४ जनवरी, १७२१	चिखलथान पर बाजीराव तथा निजाम का मिलन।
फरवरी, १७२१	वजीर अमीनखा की मृत्यु।
२१ अक्तूबर, १७२१	निजाम का दक्षिण से दिल्ली को प्रस्थान।
जनवरी, १७२२	निजाम वजीर नियुक्त।
२ अक्तूबर, १७२२	निजाम का मालवा को प्रस्थान।
५ दिसम्बर, १७२२	बाजीराव का खानदेश मे ऐवाजखां से मिलन।
१३ फरवरी, १७२३	बाजीराव तथा निजाम का बोलशा मे मिलन।
१५ मई, १७२३	निजामुल्मुल्क का दिल्ली वापस आना।
२३ दिसम्बर, १७२३	निजामुल्मुल्क का वजीर का पद त्यागकर दक्षिण को कूच करना।
१७२४	मुबारिजखां द्वारा शाहू के विरुद्ध युद्ध आरम्भ।
१८ मई, १७२४	बाजीराव तथा निजाम का नलछा मे मिलन।
११ जून, १७२४	औरंगाबाद पर निजाम का अधिकार।
२७ जुलाई, १७२४	कमरुद्दीनखां वजीर नियुक्त।
३० सितम्बर, १७२४	फतेह खेरडा पर निजाम की विजय, मुबारिजखां का वध, निजाम द्वारा स्वतन्त्रता की घोषणा, औरंगाबाद मे बाजीराव का अतिथि-सत्कार।
२० जून, १७२५	सम्राट द्वारा दक्षिण में निजाम की नियुक्ति।
२१ सितम्बर, १७२६	खण्डो बल्लाल चिटनिस की मृत्यु।
२५ अगस्त, १७३४	अम्बाजी पुरन्दरे की मृत्यु।

तिथिक्रम

अध्याय ३

१८ अगस्त, १७००	बाजीराव का जन्म।
१७ अप्रल, १७२०	बाजीराव पेशवा नियुक्त।
१९ जून, १७२०	रतनपुर का युद्ध, दिलावरअली का वध।
३१ जुलाई, १७२०	बालापुर का युद्ध, आलमअली का वध, शकरजी मल्हार की मृत्यु।
८ अक्तूबर, १७२०	सयद हुसनअली की हत्या।
१४ नवम्बर, १७२०	सयद अब्दुल्ला बन्धन मे (११ अक्तूबर, १७२२ ई० को उसका वध)।
१५ दिसम्बर, १७२०	गोदावरी के तट पर मराठो के हाथों मुगलों की पराजय।
४ जनवरी, १७२१	चिखलथान पर बाजीराव तथा निजाम का मिलन।
फरवरी, १७२१	वजीर अमीनखा की मृत्यु।
२१ अक्तूबर, १७२१	निजाम का दक्षिण से दिल्ली को प्रस्थान।
जनवरी, १७२२	निजाम वजीर नियुक्त।
२ अक्तूबर, १७२२	निजाम का मालवा को प्रस्थान।
५ दिसम्बर, १७२२	बाजीराव का खानदेश मे ऐवाजखां से मिलन।
१३ फरवरी, १७२३	बाजीराव तथा निजाम का बोलशा मे मिलन।
१५ मई, १७२३	निजामुल्मुल्क का दिल्ली वापस आना।
२३ दिसम्बर, १७२३	निजामुल्मुल्क का वजीर का पद त्यागकर दक्षिण को कूच करना।
१७२४	मुबारिजखां द्वारा शाहू के विरुद्ध युद्ध आरम्भ।
१८ मई, १७२४	बाजीराव तथा निजाम का नलछा मे मिलन।
११ जून, १७२४	औरंगाबाद पर निजाम का अधिकार।
२७ जुलाई, १७२४	कमरुद्दीनखां वजीर नियुक्त।
३० सितम्बर, १७२४	फतेह खेरडा पर निजाम की विजय, मुबारिजखा का वध, निजाम द्वारा स्वतन्त्रता की घोषणा, औरंगाबाद मे बाजीराव का अतिथि-सत्कार।
२० जून, १७२५	सम्राट द्वारा दक्षिण में निजाम की नियुक्ति।
२१ सितम्बर, १७२६	खण्डो बल्लाल चिटनिस की मृत्यु।
२५ अगस्त, १७३४	अम्बाजी पुरन्दरे की मृत्यु।

अध्याय ३

निजाम तथा बाजीराव—प्रथम सम्पर्क

[१७२०-१७२४ ईस्वी]

१ प्रतिष्ठापना तथा दरबार मे स्थिति। २ सयद-बन्धुओ का पतन।
३ निजामुल्मुल्क द्वारा मराठा अधिकारों का विरोध। ४ बाजीराव के सम्मुख नवीन सकट।
५ निजाम का अपने को स्वतन्त्र घोषित करना।

१ **प्रतिष्ठापना तथा दरबार मे स्थिति**—बालाजी की अकस्मात मृत्यु वस्तुत राष्ट्रीय क्षति थी, परन्तु शाहू के शोकग्रस्त होने के विशेष कारण भी थे क्योकि उसका भाग्य तथा स्थिति इस राजभक्त सेवक के ही कारण थे। तथापि मराठा राष्ट्र के सौभाग्यवश १९वर्षीय बाजीराव अपने पिता की उत्तरकालीन प्रगतियो मे उसके निकट ससर्ग मे रह चुका था। इनमे दिल्ली का अभियान भी सम्मिलित है। उसने इस अभियान के गूढ परिणामो पर भी ध्यान दिया था। साधारणतया लोग उसे अपक्व अनुभवहीन, चचल नवयुवक समझते थे, क्योकि अभी तक किसी को उसकी विलक्षण बुद्धि को परखने का अवसर प्राप्त न हुआ था। परन्तु शाहू व्यक्तियो का निपुण परीक्षक था और उसमे अनासक्त निरीक्षण की क्षमता थी। वह प्राय अपने ही सहज परन्तु अचूक निर्णय के अनुसार कार्य करता था अत दिवगत पेशवा के उत्तराधिकारी की नियुक्ति के प्रश्न पर उसने अविलम्ब अपना निश्चय कर लिया। यह युवक तथा महत्त्वाकाक्षी पुरुषो की साहसिक भावना का प्रशसक था जिससे प्रेरित होकर उसने प्रधानमन्त्री के उत्तरदायी पद पर बाजीराव को नियुक्त करने का निश्चय किया।

शाहू के दरबार के अनेक वयोवृद्ध अनुभवी तथा योग्य व्यक्ति इस चुनाव को अपना समर्थन या अनुमति देने को तयार न थे। श्रीपतिराव प्रतिनिधि, आनन्दराव सुमन्त, नारोराम मन्त्री, खाडेराव दाभाडे, कान्होजी भोसले तथा ऐसे ही विचार के अन्य व्यक्तियो ने इस नियुक्ति का सम्पूर्ण शक्ति से तीव्र विरोध किया। इस विचार से ही वे क्रोधित हो उठते थे कि बाजीराव सदृश एक बालक उन पर नियन्त्रण करेगा तथा उन्हें उसका आज्ञापालक बनकर रहना पडेगा। शाहू ने जनता की इस भावना का यथार्थ अनुमान तो कर लिया था

परन्तु उसके लिए अपने दरबारियो और परामर्शको की आवाज को दबाना कठिन था। कोंकण से आने वाले प्रतिष्ठा प्राप्त चितपावन ब्राह्मणो के दुराग्रह को भी वह समझ गया था। इस प्रकार की सकटपूर्ण स्थिति मे शाहू ने अपने निकटवर्ती दरबारियो को अपने विश्वास म लेकर प्रत्येक से व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गम्भीर मन्त्रणाएँ की तथा उनसे अपने निर्णय के समर्थन की प्रार्थना की। बालाजी तथा उसके परिवार की एक विशेषता पर उसने अत्यधिक बल दिया और अपने दरबारियो को समझाया कि बाजीराव मे यथेष्ट सूझबूझ है तथा किसी भी काम को हाथ म लेने के पश्चात अनेक विघ्न-बाधाओ के बावजूद उसे पूरा करने और नैराश्य को पास न आने देन की उसमे सामर्थ्य है। इतिहास ने उसके इस कथन को सत्य सिद्ध कर दिया।

उसके पिता के देहान्त के ठीक १५ दिन बाद (१७ अप्रैल १७२० ई० को) सतारा के ३० मील पूरब मे मसूर के स्थान पर शाहू के शिविर म पेशवा का पद बाजीराव को प्रदान कर दिया गया। इस काम के लिए उसने एक विशेष दरबार का आयोजन करके एकत्र सभा से प्रार्थना की कि वे सब उसके इस काम मे अपना हार्दिक समर्थन दें। उसने उनको उसी समय यह आश्वासन भी दिया कि यदि बाजीराव उसकी भावी योजनाओ तथा कार्यों म अयोग्य सिद्ध होगा, तो वह स्वय उसको पदच्युत कर देगा तथा किसी अन्य योग्य व्यक्ति की नियुक्ति करेगा। शाहू ने बताया कि इस समय बाजीराव को ही उस स्थान पर नियुक्त करके वह मृतक बालाजीपन्त नाना के भारी ऋण से उऋण हो सकता है।

बाजीराव ने समय को भलीभाँति पहचान लिया था और अपने पिता की नीतियो तथा उपायो से भी वह पूर्ण परिचित था। जैसा कि इतिहासकार ग्राण्ट डफ का कथन है, बाजीराव मे योजना बनाने की बुद्धि के साथ-साथ उसको कार्यान्वित करने की क्षमता भी थी। उसने मल्लविद्या तथा अश्वारोहण म परम्परागत शिक्षा प्राप्त की थी। पढने लिखने तथा लेखा रखने मे वह निपुण था तथा उस समय ब्राह्मण जाति मे प्रचलित प्राचीन संस्कृत विद्या से भी वह सुपरिचित था। बालाजी के परिवार के समस्त व्यक्ति फुर्तीले और मेधावी थे तथा उनकी आकृति प्राय सुन्दर थी। इसके अतिरिक्त उनका स्वभाव विनम्र तथा सभ्य था जिसके कारण वे जहाँ कही भी जाते, अपने अनुकूल प्रभाव उत्पन्न कर लेते थे। बाजीराव के विषय मे यह बात मुख्यतया सत्य थी। यह प्रसिद्ध है कि निजामुल्मुल्क के यहाँ आते-जाते रास्ते म जिन जिन स्थानो से होकर वह गुजरता, वहाँ के जन-समूहो मे विचित्र उत्साह प्रवाहित हो जाता। इसका उल्लेख है कि जब वह ३०वर्षीय ब्राह्मण योद्धा, जिसका नाम उसकी

वीरता तथा कूटनीति के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध हो गया था तथा जिसने इतने अल्प समय मे गिरिधर बहादुर, दया बहादुर तथा मुहम्मदखाँ बगश सदृश मुगल दरबार के अनुभवी अधिकारियो को परास्त कर दिया था, औरगाबाद, बुरहानपुर उज्जैन तथा जयपुर के नगरो मे घोडे पर सवार होकर निकलता, तो पुरुषो तथा स्त्रियो के झुण्ड अपनी खिडकियो म इस प्रसिद्ध व्यक्ति का दर्शन करने के लिए एकत्र हो जाते। जो विचित्र गुण बाजीराव म विद्यमान थे, व यदाकदा ही देखने म आते हैं।

हम यह विश्वास कर सकते हैं कि शिवाजी तथा शम्भाजी, रामचन्द्रपन्त अमात्य तथा सन्ताजी घोरपडे की जीवन-कथाएँ अवश्य बाजीराव को ज्ञात रही होगी और उनसे उसको अवश्य ही वीरता तथा बलिदान के कार्यों के प्रति प्रेरणा मिली होगी। ऐसे ही कार्यों द्वारा वह उस महान् स्वातन्त्र्य-युद्ध से पूर्ण लाभ उठा सकता था जिसके बीच म उसके पिता प्रथम पेशवा ने अपना सकटमय तथा व्याकुल जीवन व्यतीत किया था। बाजीराव की शिक्षा तथा मनोवृत्ति का शुद्ध अनुमान उन अनेक पत्रो तथा लेखो से लगाया जा सकता है जो विद्यमान हैं तथा प्रकाशित हो चुके हैं। एक आधुनिक गणना के अनुसार उस समय के समस्त लेखको तथा कार्यकर्ताओ के राजकीय पत्र-व्यवहार को सम्मिलित करके उनकी सख्या ३५०० से भी अधिक है। इनम से कम से कम पाच सौ स्वय बाजीराव तथा उसके भाई के ही हाथ के लिखे हुए है।[१] यह भी निश्चय है कि समय के प्रभाव तथा उपेक्षा के कारण अनेक पत्र नष्ट हो गये हैं, परन्तु जो कुछ भी शेष हैं वे विद्यार्थी को उसके जीवन तथा कार्य का शुद्ध आकलन करने म यथेष्ट हैं।

बाजीराव का शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा दृढ था, परन्तु इसके विपरीत उसका छोटा भाई चिमनाजी प्राय जुकाम खासी और दमा का रोगी रहता था। उसकी माता तथा उसके निकट-सम्बन्धियो को उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे सदैव चिन्ता बनी रहती थी तथा इस विषय मे व उसे बार-बार सावधान भी करते रहते थे। दोनो भाइयो ने अपने स्वामी शाहू की कृपा तथा सद्भावना

---

[१] इन ३५०० पत्रो मे से करीब ३१०० पर दिनाक है और शेष ४०० पर कोई दिनाक नही है। इनमे से ५५० का सम्बन्ध बाजीराव के शासन के प्रथम आठ वर्षो से तथा २८०० से अधिक का सम्बन्ध अन्तिम बारह वर्षों म है। केवल ६०० का सम्बन्ध युद्धो और पश्चिमी तट के विषयो स है। इनम से अधिकांश हाल ही मे पेशवा के दफ्तर म मिले हैं। बम्बई सरकार ने इनको प्रकाशित कर दिया है। इन पत्रो के प्रकाशन से पहले बाजीराव का कोई यथार्थ तथा शृखलाबद्ध वृत्तान्त नही लिखा जा सकता था।

प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। इस उद्देश्य से वे अपना कोई न कोई विश्वासपात्र व्यक्ति सदैव राजा के सन्निकट रखते थे। इसके दो अभिप्राय थे—एक यह कि बाह्य जगत की समस्त घटनाओं में राजा को सूचित रखें और दूसरे शाहू सदृश स्पष्ट मृदुल तथा शंकारहित राजा के हृदय पर से अपने विरोधियों के विपरीत परामर्शों का निराकरण करते रहे। बाजीराव तथा उसके भाई के लिए उनके स्वामी का पूर्ण समर्थन तथा असंदिग्ध विश्वास उनकी बाह्य सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। उन दिनों ऐसा प्रचलन था कि प्रत्येक मन्त्री के लिए एक मुतलिक या उपमन्त्री नियुक्त होता था। जब मन्त्री कार्यवश बाहर होता था तो यह मुतलिक ही दरबार में उसके स्थान पर राजा की आज्ञाओं तथा उसके विचारार्थ आये हुए अन्य विषयों के सम्पादन का कार्य करता था। जब बाजीराव पेशवा नियुक्त हुआ तो अम्बाजीपन्त पुरन्दरे को उसका मुतलिक नियुक्त किया गया। उसने १७३४ ई० में अपनी मृत्युपर्यन्त निष्ठापूर्वक उसका समर्थन किया और उसके बाद उसके सम्बन्धियों ने भी इसी प्रकार उसकी सेवा की।

कोंकणस्थ पेशवा परिवार तथा देशस्थ पुरन्दरे परिवार में घनिष्ठ सम्बन्ध था यद्यपि उनकी उत्पत्ति भिन्न थी। यह घनिष्ठता पेशवा की बहुत सी सफलताओं का कारण है। जब बाजीराव तथा अम्बाजी दोनों कार्यवश बाहर जाते तो चिमनाजी अप्पा ही उचितानुचित परामर्शदाता के रूप में शाहू के साथ रहता। जब कुछ वर्षों में बाजीराव का अल्पवयस्क पुत्र बालाजी (अपरनाम नानासाहेब) बड़ा हो गया तो वह सतारा में रहने लगा और चिमनाजी कार्यवश बाहर जाने के लिए स्वतन्त्र हो गये। पेशवाओं का एक अन्य प्रबल समर्थक प्रतिष्ठित सन्त ब्रह्मेन्द्र स्वामी दरबार में था। जंजीरा के सिद्दी के विरुद्ध युद्ध में उसके द्वारा किये गये कार्य की व्याख्या एक आगामी अध्याय में की जायेगी। शाहू का तथा उसके दरबार के कुछ अन्य सदस्यों का गुरु होने के नाते उसका बड़ा प्रभाव था। वयोवृद्ध खण्डो बल्लाल चिटनिस शाहू का सचिव था। वह पत्रों तथा प्रार्थनाओं को नियमपूर्वक आज्ञा के लिए शाहू के सम्मुख उपस्थित करता तथा दूरस्थ अभियानों अथवा राज्य-कार्य में व्यस्त विभिन्न अधिकारियों के कार्य को भी सीमित करता। जब १७२६ ई० में खण्डो बल्लाल की मृत्यु हो गयी, तो उसका पुत्र गोविन्दराव अपने पिता के पद पर आसीन हुआ तथा बहुत समय तक उसने उत्साह तथा ईमानदारी के साथ अपना कार्य किया। गोविन्दराव पेशवाओं का चतुर तथा निष्ठावान समर्थक था। वह राजा की आज्ञाओं का मधुर अनुरंजक भावना से निष्कपटता तथा अनुनय सहित पालन करता और सदैव राज्य का उच्चतम हित-सम्पादन करने का प्रयत्न करता।

पेशवा का पद प्राप्त होते ही बाजीराव ने समवयस्क सहचारी तथा भक्त नुचरो का अपना एक दल बना लिया। शाहू के पास निस्सन्देह प्रौढ पुरुषो का एक दल था। बाजीराव ने सावधानी से प्रयत्न किया कि उनकी भावनाओ को चोट न पहुँचे। नवयुवको का एक बडा दल और था। बाजीराव ने अपनी ओजस्वी तथा शक्तिशाली नीति के प्रति उनको आकृष्ट कर लिया और इन्होने भक्ति तथा बुद्धिपूर्वक उसके नेतृत्व का अनुसरण किया। पुरन्दर, भानु, कोकिल हिंगने, पठे तथा अन्य परिवार जो भविष्य मे प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले थे हृदय से बाजीराव के साहसिक कार्यों मे सम्मिलित हो गये और उसकी सफलता के लिए उन्होने अपना-अपना सहयोग दिया। शाहू का एक अनुभवी कृपापात्र पिलाजी जाधव था। अपने स्वामी की आज्ञा पर उसने अपना हार्दिक सहयोग बाजीराव को अर्पित किया। पिलाजी की मधुर प्रकृति तथा चतुर दूरदर्शिता बाजीराव की आरम्भिक प्रगतियो मे बहुत सहायक सिद्ध हुई। बाद को भी पिलाजी ने उसके अनेक कठोर अभियानो तथा कठिन कार्यों मे उसका यथाशक्ति समर्थन करने का प्रयत्न किया। शाहू का एक अन्य बडा कृपापात्र फतहसिंह भोसले था। शाहू ने उसका पालन-पोषण अपने सम्भव उत्तराधिकारी की भाँति किया था। उसका चरित्र निश्छल तथा सौम्य था और वह अपनी कमियो से परिचित था। वह बाजीराव का लगभग समवयस्क था। वह तुरन्त बाजीराव के विचारो से सहमत हो गया तथा उसने कभी भी उसके प्रति विरोध प्रकट नही किया।

२ सैयद-बन्धुओं का पतन—नवीन सम्राट मुहम्मदशाह ने, जिसको सैयद-बन्धुओ ने १७१९ ई० मे गद्दी पर बैठाया था उनकी शक्ति को नष्ट करने के लिए उनके विरुद्ध पुराने षडयन्त्र आरम्भ कर दिया। साम्राज्य के इन व्यापारो का जीवन के आरम्भ मे ही बाजीराव की योजनाओ पर क्या प्रभाव पडा इस प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार करना है। दरबार मे सैयद-बन्धुओ का एकमात्र शक्तिशाली विरोधी चिनकिलिचखाँ निजामुलमुल्क उस समय मालवा के शासन पर नियुक्त कर दिया गया। १५ मार्च, १७१९ ई० को उसने दिल्ली से प्रस्थान किया तथा उज्जैन पहुँचकर बहुत से सैनिक एकत्र कर लिये। ऊपर से उसका अभिप्राय यह प्रतीत होता था कि वह मालवा से मराठो को निकालना चाहता है परन्तु वास्तव मे वह उपयुक्त अवसर पर सैयद-बन्धुओ का दमन करना चाहता था। उसके चचेरे भाई मुहम्मद अमीनखाँ ने भी सैयद-बन्धुओ के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी कर ली। वह भी उसके समान ही शक्तिशाली सामन्त था तथा आगरा का राज्यपाल था। इन परिस्थितियो से चिन्तित होकर सैयद-बन्धुओ ने अपनी ओर से ही युद्ध आरम्भ करने का

निश्चय किया। उन्होने अपने एक विश्वस्त तथा वीर पक्षपाती दिलावर अलीखाँ को पर्याप्त युद्ध सामग्री सहित निजामुल्मुल्क के दमन के लिए भेज दिया। उसी समय उन्होने अपने चचेरे भाई आलम अलीखा को, जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था, अपनी समस्त सशस्त्र सेना सहित औरगाबाद से मालवा की ओर प्रयाण करने का निर्देश दिया। प्रबन्ध यह था कि निजामुल्मुल्क को दो शक्तिशाली सेनाओ के बीच म घेरकर कुचल दिया जाये। एक सेना उत्तर से दिलावर अलीखाँ के नेतृत्व म और दूसरी दक्षिण से आलम अलीखाँ के नेतृत्व म बढने वाली थी। इन प्रगतियो के कारण भारत के मध्यवर्ती तथा दक्षिणी प्रान्तो मे भारी भय का सचार हो गया। सम्राट तथा उसकी माता ने सयद बन्धुओ के सवनाश हेतु निजामुल्मुल्क को व्यक्तिगत पत्र लिखे। सम्मानो तथा पुरस्कारो की प्रतिज्ञाएँ करते हुए उन्होने शक्तिशाली सैयद-बन्धुओ के अत्याचार से मुक्ति दिलाने का आग्रह किया। दोनो नवयुवक दिलावर अलीखाँ तथा आलम अलीखाँ उस काय के लिए समथ थे जो विश्वस्त रूप से उनको सौंपा गया। परन्तु उनमे शान्ति तथा समीक्षा का अभाव था। इसके विपरीत वयोवृद्ध निजामुल्मुल्क चतुर तथा निपुण एव पूण अनुभवी था। वह विचारशील तथा कुछ अश तक एकाग्रचित था। वह अत्यन्त सावधानी से अपनी प्रगति का प्रबन्ध करता था। सयदो ने उसे दिल्ली वापस आने की आज्ञा दी। परन्तु उसने इस आज्ञा का पालन करने से इन्कार कर दिया तथा दक्षिण की ओर चल पडा। मई १७२० ई० म उसने नमदा को पार किया, अर्थात् ठीक उसी समय जब बाजीराव पेशवा के पद पर नियुक्त हुआ था। निजामुल्मुल्क न तुरन्त असीरगढ पर अधिकार कर लिया। यह गढ दक्षिण के द्वार की रक्षा करता था। गढ को उसने अपने पुत्र गाजीउद्दीन के सरक्षण म छोड दिया। इसके बाद उसने ताप्ती नदी के उत्तरी तट पर बुरहानपुर म अपना अड्डा जमाया। यहाँ पर बरार से ऐवाजखाँ आकर उसके साथ हो गया।

निजामुल्मुल्क की इन आक्रामक प्रगतियो की सूचना आलमअली को प्राप्त हो गयी और उसने तुरन्त अनवरखाँ तथा राव रम्भा को असीरगढ तथा बुरहानपुर को पुन हस्तगत करने के लिए भेजा। जब ये दोनो सरदार उसकी बढती हुई सेनाओ की मार म आ गये तो निजामुल्मुल्क ने उनको बन्दी बना लिया। दिलावरअली के साथ सम्मिलित होने के लिए आलमअली ने स्वय जून के आरम्भ मे औरगाबाद छोड दिया। दिलावरअली ने हडिया नामक स्थान पर नमदा को पार कर लिया था और बडे वेग से निजाम की ओर बढ रहा था। निजाम न उनको किसी भी प्रकार मिलने से रोकने का निश्चय किया जिससे दोनो से अलग अलग युद्ध करके वह उनका विनाश कर सके। दोनो हो

प्रतिद्वन्द्वियों ने पेशवा की सहायता की याचना की। परन्तु शाहू ने बाजीराव को पूर्णरूपेण तटस्थ रहते हुए दूर से ही युद्ध का अवलोकन करने तथा परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाने की आज्ञा दी।

निजामुल्मुल्क ने रतनपुर के समीप अपना पड़ाव डाला। यह स्थान बुरहानपुर के ३० मील उत्तर में है और वर्तमान खण्डवा के रेलवे स्टेशन से दूर नहीं है। इसके विपरीत दिलावरअली ने दक्षिण से आलमअली के आगमन की प्रतीक्षा न करके और निजाम को युद्ध के लिए तैयार देखकर तुरन्त ही १६ जून को उस पर बिना सोचे-समझे आक्रमण कर दिया। तीन घण्टों के घमासान युद्ध के बाद उसकी घोर पराजय हुई। दिलावरअली तथा उसके अधिकांश अनुयायी मार डाले गये और निजामुल्मुल्क को निर्णायक विजय प्राप्त हुई। इतिहास में यह युद्ध खण्डवा का युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। आलमअली इस समय तक बुरहानपुर के समीप पहुँच गया था परन्तु दिलावरअली के पतन का समाचार पाकर वह अत्यन्त घबरा गया। निजाम ने अपनी विजय से उत्साहित होकर गम्भीरतापूर्वक अपनी पूर्व-योजना के अनुसार बिना विश्राम किये तुरन्त आलमअली के विरुद्ध प्रयाण किया और उसको इतना भी अवकाश न दिया कि वह वापस हो सके या अपने मोर्चे तथा रण योजना की पुनः रचना कर सके। २७ जून को बुरहानपुर पहुँचकर निजामुल्मुल्क ने आलमअली को लिखा कि दक्षिण की सूबेदारी प्राप्त करने की उसको कोई लालसा नहीं है उसकी तो एकमात्र इच्छा यह है कि वह मक्का की यात्रा करे और वहाँ शान्तिपूर्वक अपने जीवन को समाप्त करे परन्तु इसके पूर्व वह अपनी सेनाओं को समाप्त कर देना चाहता है और अपने आर्थिक मामलों को निपटा लेना चाहता है।

आलमअली को उसके निकटतम मित्रों तथा मराठा सहायकों ने साग्रह परामर्श दिया कि इस घोर वर्षा में (जो आरम्भ हो गयी थी) वह युद्ध के संकट में न फँसकर औरंगाबाद की ओर किसी सुविधापूर्ण स्थान पर आश्रय ले अथवा अहमदनगर को ही वापस हो जाय और मराठा प्रथा के अनुसार इस मध्यकाल में वह शत्रु को बराबर तंग करता रहे। पर आलमअली ने इस परामर्श को स्वीकार नहीं किया। उसने अपनी रण योजना बनायी। निजाम ने भी पूर्ण कूटनीति से काम लिया। बाढ़ग्रस्त पूर्णा नदी के किनारे-किनारे दोनों दलों ने बालापुर की ओर प्रयाण किया। निजाम उत्तर के तट पर था और आलमअली दक्षिण के तट पर। निजाम ने शीघ्र ही नावों के पुल से नदी को पार करने का प्रबन्ध किया और बालापुर के समीप आलमअली के सम्मुख मोर्चे पर उपस्थित हो गया। आलमअली के पास मित्रों के रूप में खाण्डेराव दाभाड़े, सन्ताजी शिन्दे, कान्होजी भोसले तथा अन्य पुरुषों के अधीन एक

मराठा टुकड़ी थी। उनकी कुल संख्या १८ हजार थी। सयदों के प्रतिनिधि शंकरजी मल्हार ने शाहू की स्पष्ट आज्ञाओं के विरुद्ध भी आलमअली के हित में मराठा समर्थन प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया। १० अगस्त, १७२० ई० को आलमअली ने व्यक्तिगत वीरता तथा आत्मविश्वास के उच्च भाव से प्रेरित होकर निजाम के स्थान पर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध के मध्य अपने मदोन्मत्त हाथी को वश में करने के लिए अकुश लगाते हुए एक गोली से उसको प्राणघातक घाव लगा। इस संकटपूर्ण क्षण में निजाम के एक सरदार ने घायल हाथी पर झपटकर आलमअली का सिर काट लिया और बड़े हर्ष से उसको अपने स्वामी के पास ले गया। सेनानी के इस प्रकार मारे जाने पर उसके समस्त अनुयायी उसके हित में युद्ध करते हुए रणक्षेत्र में जूझ गये। और निजाम को निर्णायक विजय प्राप्त हुई। शंकरजी मल्हार भी लड़ाई के बीच घायल हुआ और जीवित बन्दी बना लिया गया। कुछ ही दिनों बाद उसका देहान्त हो गया। आलमअली को पराजय से बचाने के अपने उत्साही प्रयास में मराठों ने लगभग ७०० व्यक्तियों के प्राणों की आहुति दे दी।

कुछ ही सप्ताहों के भीतर खण्डवा तथा बालापुर की विजयों के कारण भारत की राजनीति तथा इतिहास में भारी परिवर्तन हो गया, क्योंकि इनसे सैयद बन्धुओं की शक्ति के पतन तथा उनके विरोधी निजामुल्मुल्क के उदय का आरम्भ होता है। आलमअली के अधिकांश अनुयायियों ने—*उदाहरणार्थ* मुबारिजखाँ, तुर्कताजखाँ तथा अन्य व्यक्तियों ने—तथा उसके मराठा मित्रों ने भी विजयी निजाम की अधीनता स्वीकार कर ली, अभिवादन किया तथा बधाई दी। निजाम की प्रवृत्ति आश्चर्यजनक रूप से विवेकपूर्ण तथा विचारशील थी। उसने आलमअली के परिवार तथा उसके सम्बन्धियों के प्रति दया एवं नम्रता का व्यवहार किया, उनके जीवनयापन के निमित्त उनको वृत्तियाँ दीं तथा आश्वासन दिया कि वह उनका परम मित्र है और उसको उनके प्रति कोई व्यक्तिगत विद्वेष नहीं है। अपने शत्रुओं की भी सद्भावना प्राप्त करने की निजाम की इस नीति से उसको अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण करने में बहुत सहायता मिली।

आलमअली की पराजय तथा मृत्यु के समाचार से जो दिलावरअली की पराजय तथा मृत्यु के समाचार के तत्काल बाद ही उन्हें प्राप्त हुआ, सैयद-बन्धु भयभीत हो उठे। उनके विनाश का मूलभूत कारण दो भाइयों—अमीनखाँ तथा निजामुल्मुल्क—के कपटमय षडयन्त्र थे। दोनों ने एक स्वर होकर सैयद बन्धुओं के नाश का कार्य किया। गुप्त रूप से सम्राट ने भी उनको प्रोत्साहन दिया। उसने यह बहाना किया कि वह विद्रोही निजाम के विरुद्ध प्रयाण कर

रहा है। उसने सैयद हुसैनअली से कहा कि वह उसके साथ चले और अब्दुल्ला को दिल्ली में ही छोड़ दे। इस प्रकार दोनों भाई एक-दूसरे से अलग कर दिये गये। सम्राट् ने ११ सितम्बर को आगरा से जयपुर के लिए प्रस्थान किया। इस समस्त काल में वह गुप्त रूप से उपयुक्त अवसर पर सैयद हुसैनअली की हत्या कराने का षडयन्त्र रच रहा था। जयपुर के पूरब में लगभग ६० मील पर किसी स्थान पर जहाँ उनका शिविर लगा हुआ था, ८ अक्तूबर, १७२० ई० को सहसा सैयद हुसैनअली की हत्या कर दी गयी। हत्यारों को सम्राट के तीन उच्च अधिकारियों ने प्रोत्साहन दिया था। इस घटना पर अति प्रसन्न होकर सम्राट ने एक भव्य दरबार का आयोजन किया और उन लोगों को पुरस्कार दिये जिन्होंने अपने षडयन्त्रों द्वारा यह हत्या करायी थी। उसने तुरन्त ही मुहम्मद अमीनखाँ को वजीर नियुक्त कर दिया और दिल्ली वापस चल दिया। इस प्रयाण में मुहम्मदखाँ बंगश सम्राट् के साथ हो गया। वह सैयद-बन्धुओं का एक अन्य शक्तिशाली विरोधी था। इस प्रकार अब अब्दुल्ला अकेला रह गया और अपने शत्रुओं का आसानी से शिकार हो गया। उसने कुछ समय तक तो सम्राट का विरोध करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, परन्तु शीघ्र ही उसके हिन्दू भक्त खजांची रतनचन्द की हत्या करा दी गयी और अब्दुल्ला को बन्दी बना लिया गया तथा १४ नवम्बर को कारागार में बन्दी कर दिया गया। लगभग दो वर्ष तक कैद में रहने के बाद ११ अक्तूबर, १७२२ ई० को उसकी भी हत्या कर दी गयी।

३ **निजामुल्मुल्क द्वारा मराठा अधिकारों का विरोध**—सैयद-बन्धुओं के पतन के बाद शाहू के दरबार में पेशवा तथा उसके सहकारियों को उन शाही पट्टों को कार्यान्वित करना कठिन हो गया जिनको बालाजी विश्वनाथ ने प्राप्त किया था। वे अच्छी तरह जानते थे कि निजामुल्मुल्क तथा शाही दरबार के अन्य सदस्य उनका तीव्र विरोध करेंगे। निजामुल्मुल्क यह आसानी से न भूल सकता था कि मराठों ने बालापुर में आलमअली की सहायता की थी। परन्तु उसने इस समय मराठों के विरुद्ध कुछ भी रोष प्रकट न किया। १५ अक्तूबर, १७२० ई० को बाजीराव के भाई तथा प्रतिनिधि मल्हारराव बर्वे ने दिल्ली से यह समाचार भेजा— 'अमीनखाँ ने सैयद हुसैनअली की हत्या कर दी है। अब मैदान साफ है। आप अपने शत्रुओं को उसे हस्तगत न कर लेने दें।' इस पत्र में राजदूत ने इस प्रकार के उपाय करने का सुझाव दिया था जिनमें उनके समर्थक सैयदों के पतन के दुष्परिणामों का निरोध हो सके। इसी समय हैदराबाद से मुबारिजखाँ ने निजाम को आग्रहपूर्वक लिखा— 'कर्नाटक में चौथ के संग्रहार्थ मराठों का दबाव नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है

अत सम्मिलित प्रयासो द्वारा तुरन्त उनका दमन होना चाहिए।" निजाम सकेत को समझ गया। उसने चन्द्रसेन जाधव को भेजकर कोल्हापुर के सम्भाजी को प्रोत्साहन दिया कि वह भी चौथ सग्रह के लिए वैसे ही अधिकार पत्र पर जैसे शाहू तथा उसके पेशवा ने बलपूर्वक जारी कर रखे थे। तत्पश्चात निजामुल्मुल्क ने बाजीराव को सूचना भेजी कि उसके अधिकारो के समान अधिकार सम्भाजी ने उससे मांगे हैं परन्तु वह नहीं जानता कि न्यायसगत अधिकार किसका है और चूकि शाहू तथा सम्भाजी की घरेलू लडाई का फैसला नहीं हुआ है अत वह किसी को भी उस समय तक चौथ वसूल नहीं करने देगा जब तक कि आपस में इस प्रश्न का निबटारा न हो जाय।

यह नवीन परिवर्तन, जो निजाम की कल्पना थी मराठा अधिकारो की प्राप्ति के मार्ग मे विशेष रोडा बन गया। शाहू ने अपने सरलश्कर सुल्तानजी निम्बालकर को पहले ही निर्देश दे दिया था कि वह गोदावरी नदी तथा औरगाबाद के बीच के प्रदेश से चौथ सग्रह करे। निजामुल्मुल्क ने चुनौती को स्वीकार करते हुए चन्द्रसेन, राव रम्भा तथा मुहकमसिह को सरलश्कर के विरुद्ध भेजा। १५ दिसम्बर १७२० ई० को घोर युद्ध हुआ जिसमे सुल्तानजी ने मुगलो पर निर्णायक विजय प्राप्त की।

इस समय शाहू तथा बाजीराव ने निजाम के प्रति व्यवहार को स्थिर करने के लिए विचार विमर्श किया क्योंकि उसने सम्राट के पट्टो को मान्यता देने से इन्कार कर दिया था। बाजीराव सशस्त्र सघर्ष के पक्ष मे था। उसकी सम्मति मे अन्तिम निर्णय प्राप्त करने के लिए यही एकमात्र प्रभावकारी उपाय था। उसने कहा "यह पेशवा का कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के साहसिक कर्मों को अगीकार करे। यदि मैं अपना अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सकता तो मुझे उस पद के उच्च सम्मान का कोई अधिकार नहीं है। मुझे केवल श्रीमन् की आज्ञा चाहिए। मुझे शत्रु के विरुद्ध प्रयाण करने की आज्ञा तो दें और फिर आप देखे कि मैं आपके आशीर्वाद से क्या कर सकता हूँ। मैं इस निजामुल्मुल्क का दमन कर दूगा और समस्त उत्तर भारत में जहाँ पर मेरे पूज्य पिता ने राजपूत राजाओ के साथ राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे अपने अधिकारो को स्थापित कर दूगा। इस प्रार्थना पर शाहू ने बाजीराव को आवश्यक आज्ञा तो दे दी परन्तु यह परामर्श भी दिया कि पहले वह निजाम से व्यक्तिगत रूप मे मिले और इस कलह का शान्तिपूर्वक निपटारा करने का प्रयत्न करे।[२]

---

२ चिटनिस कृत 'लाइफ ऑव शाहू' पृ० ४५।

शाहू का वंदशिक सचिव आनन्दराव सुमन्त निजाम के पास गया तथा पेशवा के आगमन के लिए समय और स्थान निश्चित कर लिया। पिलाजी जाधव, खाडेराव दाभाड, काहाजी भोसले तथा फतहसिंह भोसले को उनकी पूर्ण सेनाओं सहित अपने साथ लेकर बाजीराव चिखलथान को चल दिया। यह स्थान चालीसगाँव के कुछ मील पूरब में है। यहाँ पर वह तथा निजामुल्मुल्क ४ जनवरी १७२१ ई० को परस्पर मिले। इस समय सम्मिलन के ठाठ-बाट को चार दिनों तक दर्शकगण देखते रहे। साधुवादों तथा उपहारों का विशाल मात्रा में आदान प्रदान हुआ आवश्यक प्रश्नों पर दीर्घकालीन वार्तालाप हुए परन्तु जहाँ तक वास्तविक परिणामों का सम्बन्ध है ये सब निरर्थक सिद्ध हुए। बाजीराव ने यह निष्कर्ष निकाला कि निजाम मराठा अधिकारों को सैन्य बल द्वारा विवश किये जाने पर ही स्वीकार करेगा। शाहू तथा बाजीराव की माता को इन दो सरदारों के व्यक्तिगत सम्मिलन से बहुत भय था अतः वापसी पर उन्होंने पेशवा को बिना किसी दुर्घटना के उसकी शान्तिपूर्वक यात्रा पर हार्दिक बधाई दी।

इस भेंट के पश्चात शीघ्र ही बाजीराव ने अपने मार्ग का अनुसरण किया और निजाम तथा उसके विश्वस्त सहायक मुबारिजखाँ ने अपना ध्यान कर्नाटक पर एकाग्र किया जहाँ पर कुछ समय से मराठे अपना प्रभुत्व प्रकट कर रहे थे। मुबारिजखाँ[३] को मराठों से कठोर शत्रुता थी। वह उनका भयानक विरोधी था। उसने कई वर्षों तक गुजरात तथा मालवा के शासन का कार्य सफलता और निपुणतापूर्वक किया था तथा पूर्व सम्राटों ने मराठों को उनके अन्यायपूर्ण आक्रमणों के लिए दण्ड देने हेतु विशेष रूप से उसको वहाँ नियुक्त किया था। इस प्रकार १७२१ ई० में ये दो शक्तिशाली सरदार—निजामुल्मुल्क तथा मुबारिजखाँ—बाजीराव के घोर शत्रु हो गये।

४ **बाजीराव के सम्मुख नवीन संकट**—सैयदों के पतन पर सम्राट ने मुहम्मद अमीनखाँ को अपना वजीर नियुक्त किया था। अपनी नियुक्ति के कुछ ही महीनों के भीतर फरवरी १७२१ ई० में वह मर गया। इस प्रकार यह स्थान रिक्त हो गया। इसकी पूर्ति करने के लिए सम्राट ने दरबार के किसी प्रौढ़ सामन्त की ओर ध्यान न दिया, क्योंकि उनमें कोई भी निजामुल्मुल्क की तरह अपने चरित्र तथा योग्यता के कारण उस स्थान के उपयुक्त न थे। परन्तु

---

[३] मराठी पत्रों में इस खान के विभिन्न नाम हैं। उसका मूल नाम अमानतखाँ था। फर्रुखसियर ने उसको मुबारिजखाँ की उपाधि दी और हैदराबाद का नाजिम नियुक्त किया। इस पद पर वह बहुत वर्षों तक रहा।

निजाम की केन्द्रीय शासन में भाग लेने की कोई इच्छा न थी। वजीर का आसन फूलों की गद्दी न था जैसा कि नवीनतम अनुभवों से सिद्ध हो चुका था। जुल्फिकारखाँ तथा सय्यद सदृश शक्तिशाली पुरुषों को इस पद पर अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद शासन के सतत् परिवर्तनों से जनसाधारण को यह स्पष्ट हो गया था कि मुगल सत्ता का ह्रास होने लगा है। सम्राट ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने के विचार से निजामुल्मुल्क से प्रार्थना की कि वह स्वयं वजीर का स्थान स्वीकार करे तथा चगताई राजवंश के गौरव की रक्षा हेतु आवश्यक उपाय करे। कुछ समय तक निजाम आगा पीछा करता रहा। उसके मित्र तथा परामर्शक मुबारिजखाँ ने उससे दक्षिण न छोड़ने का आग्रह किया। परन्तु सम्राट अपने आह्वान बारम्बार भेजता रहा। अतः यह असम्भव हो गया कि निजामुल्मुल्क अपने स्वामी की इच्छाओं का निरन्तर प्रतिरोध करता रहे। अन्त में दक्षिण के शासन पर मुबारिजखाँ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके २१ अक्तूबर १७२१ ई० को वह औरंगाबाद से दिल्ली के लिए चल पड़ा।

दिल्ली को निजाम के स्थानान्तर होने का यह अर्थ था कि उसके साथ अपने अधिकारों के विषय में जो समझौता मराठों ने कर रखा था वह भंग हो गया। वजीर के पद पर निजाम की स्थिति के सुरक्षित न होने के कारण मराठों को अधिक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ सकता था। वह जनवरी १७२२ ई० में दिल्ली पहुँच गया और १३ फरवरी को विधिपूर्वक वजीर का पद उसको सौंप दिया गया। अपने दस महीने के कार्यकाल में ही उसे ज्ञात हो गया कि सम्राट के साथ उसका निर्वाह असम्भव था क्योंकि अपने व्यक्तिगत आनन्द के अतिरिक्त उसके स्वामी को अन्य किसी बात की कोई चिन्ता न थी। शीघ्र ही उनमें गम्भीर मतभेद पैदा हो गया तथा निजामुल्मुल्क को अपनी स्थिति असह्य प्रतीत हुई और उनको एक-दूसरे का साथ छोड़ना पड़ा। इस असहमति के समय में उसकी चतुर चालों तथा योजनाओं का जिनको आगामी दो वर्षों में कार्यान्वित करने के लिए वह कटिबद्ध था मराठों के हितों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। निजामुल्मुल्क की महत्त्वाकांक्षा थी कि वह साम्राज्य से अलग होकर दक्षिण में अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण कर ले जिसमें यदि सम्भव हो सके तो मालवा तथा गुजरात भी सम्मिलित हों क्योंकि मालवा दक्षिण के भाग का द्वार था। इस उद्देश्य से वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने लगा। परन्तु इस साहसी योजना में न केवल मराठों की ओर से अपितु जयपुर तथा मारवाड़ के दो राजपूत शासकों की ओर से भी उसको विरोध का सामना करना पड़ा। स्वयं उन राजाओं की आँखें क्रमशः मालवा

तथा गुजरात पर लगी हुई थी। इन दोनों प्रांतों में मराठों ने भी अपने पैर जमा रखे थे और दक्षिण पर अपना नियन्त्रण वे आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे। सम्राट के साथ जो निजाम की बातचीत होती, उसकी पूरी सूचना बाजीराव को दिल्ली स्थित अपने प्रतिनिधि से प्राप्त हो जाती थी। इस प्रकार जो योजनाएँ तथा प्रयोजनाएँ वह बनाता उनको बाजीराव जान लेता।

१७२२ ई० के अंत में निजामुलमुल्क ने एक बड़ी सेना एकत्र की और मालवा में आ पहुँचा। उसने यह प्रसिद्ध किया था कि उसका अभिप्राय मराठों को उस प्रांत से निकाल देने का है। यह बाजीराव को सीधी चुनौती थी। उसने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया और पर्याप्त तैयारियाँ करके मालवा में घुस गया। परन्तु उस समय उसमें तथा निजामुलमुल्क में कोई सीधी टक्कर न हुई। दोनों की इच्छा थी कि खुल्लमखुल्ला युद्ध न किया जाये और मध्यस्थ पुरुषों द्वारा उन्होंने द्वितीय व्यक्तिगत सम्मिलन का प्रबंध किया ताकि समाधान और शांतिमय समझौते के लिए कोई आधार ढूँढ निकालें। मालवा तथा गुजरात की सीमा पर दोहद से लगभग २५ मील दक्षिण में बालशा नामक स्थान पर १३ फरवरी, १७२३ ई० से लगभग एक सप्ताह तक उनमें बातचीत होती रही। इसका कोई उल्लेख नहीं है कि इस सम्मिलन में वास्तव में क्या निश्चय हुए, परन्तु यह अनुमान लगाना गलत नहीं है कि उन्होंने एक बार फिर यह प्रयत्न किया कि सद्भावना तथा अभिनन्दनात्मक शिष्टाचार के विपुल प्रदर्शन के आडम्बर द्वारा वे अपने वास्तविक उद्देश्यों को एक-दूसरे से गुप्त रखें। दो परस्पर विरोधी आक्रामक पराकाष्ठाओं का मिलन असम्भव था। इस सम्मिलन में तथा अन्य ऐसी ही भेंटों में बाजीराव को पर्याप्त चेतावनी मिल गयी कि उसके प्राण-हरण का भी उपाय किया जा सकता है। परंतु वह सदा वीरता प्रदर्शित करता रहा। इसका उल्लेख है कि इस अवसर पर उसने एक मुसलमान फकीर ज्योतिर्लिङ्ग बाबा से परामर्श किया था जिसमें उसको यह आश्वासन प्राप्त हुआ था कि उस सम्मिलन में उसको कोई हानि न होगी।[४]

फरवरी से मई १७२३ ई० तक के समय में निजामुलमुल्क ने मालवा तथा गुजरात पर एक प्रकार का शिथिल अधिकार प्राप्त कर लिया और सम्राट को यह बयान दिल्ली वापस गया कि आक्रामक मराठों को प्रतिरोध करने में वह कहाँ तक सफल हो गया है। परन्तु उनकी पारस्परिक असहमति ने वही हिंसक रूप धारण कर लिया जो कुछ वर्ष पूर्व फर्रुखसियर तथा सैयदों की असहमति ने किया था। इस समय तीन बड़े प्रांतों—मालवा, गुजरात तथा दक्षिण—

४ पेशवा दफ्तर सिलेक्शन्स, १०, २५।

निजाम की केन्द्रीय शासन में भाग लेने की कोई इच्छा न थी। वजीर का आसन फूलों की गद्दी न था जैसा कि नवीनतम अनुभवों से सिद्ध हो चुका था। जुल्फिकारखाँ तथा सैयद सदृश शक्तिशाली पुरुषों को इस पद पर अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद शासन के सतत् परिवर्तनों से जनसाधारण को यह स्पष्ट हो गया था कि मुगल सत्ता का ह्रास होने लगा है। सम्राट ने अपनी स्थिति को दृढ करने के विचार से निजामुलमुल्क से प्रार्थना की कि वह स्वयं वजीर का स्थान स्वीकार करे तथा चगताई राजवंश के गौरव की रक्षा हेतु आवश्यक उपाय करे। कुछ समय तक निजाम आगा पीछा करता रहा। उसके मित्र तथा परामर्शक मुबारिजखाँ ने उससे दक्षिण न छोड़ने का आग्रह किया। परन्तु सम्राट अपने आह्वान बार-बार भेजता रहा। अतः यह असम्भव हो गया कि निजामुलमुल्क अपने स्वामी की इच्छाओं का निरन्तर प्रतिरोध करता रहे। अन्त में दक्षिण के शासन पर मुबारिजखाँ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके २१ अक्तूबर १७२१ ई० को वह औरंगाबाद से दिल्ली के लिए चल पड़ा।

दिल्ली को निजाम के स्थानान्तर होने का यह अर्थ था कि उसके साथ अपने अधिकारों के विषय में जो समझौता मराठों ने कर रखा था वह भंग हो गया। वजीर के पद पर निजाम की स्थिति के सुरक्षित न होने के कारण मराठों को अधिक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ सकता था। वह जनवरी १७२२ ई० में दिल्ली पहुँच गया और १३ फरवरी को विधिपूर्वक वजीर का पद उसको सौंप दिया गया। अपने दस महीने के कार्यकाल में ही उसे ज्ञात हो गया कि सम्राट के साथ उसका निर्वाह असम्भव था क्योंकि अपने व्यक्तिगत आनन्द के अतिरिक्त उसके स्वामी को अन्य किसी बात की कोई चिन्ता न थी। शीघ्र ही उनमें गम्भीर मतभेद पैदा हो गया तथा निजामुलमुल्क को अपनी स्थिति असह्य प्रतीत हुई और उनको एक दूसरे का साथ छोड़ना पड़ा। इस असहमति के समय में उसकी चतुर चालों तथा योजनाओं का जिनको आगामी दस वर्षों में कार्यान्वित करने के लिए वह कटिबद्ध था मराठों के हितों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। निजामुलमुल्क की महत्त्वाकांक्षा थी कि वह साम्राज्य से अलग होकर दक्षिण में अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य का निर्माण करे जिसमें यदि सम्भव हो सके तो मालवा तथा गुजरात भी सम्मिलित हों क्योंकि मालवा दक्षिण के भाग का द्वार था। इस उद्देश्य से वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने लगा। परन्तु इस साहसी योजना में न केवल मराठों की ओर से अपितु जयपुर तथा मारवाड़ के दो राजपूत शासकों की ओर से भी उसको विरोध का सामना करना पड़ा। स्वयं उन राजाओं की आँखें क्रमशः मालवा

तथा गुजरात पर लगी हुई थी। इन दोनों प्रान्तों में मराठों ने भी अपने पैर जमा रखे थे और दक्षिण पर अपना नियन्त्रण वे आसानी से छोड़ने वाले नहीं थे। सम्राट् के साथ जो निजाम की बातचीत होती, उसकी पूरी सूचना बाजीराव को दिल्ली स्थित अपने प्रतिनिधि से प्राप्त हो जाती थी। इस प्रकार जो योजनाएँ तथा प्रयोजनाएँ वह बनाता उनको बाजीराव जान लेता।

१७२२ ई० के अन्त में निजामुल्मुल्क ने एक बड़ी सेना एकत्र की और मालवा में आ पहुँचा। उसने यह प्रसिद्ध किया था कि उसका अभिप्राय मराठों को उस प्रान्त से निकाल देने का है। यह बाजीराव को सीधी चुनौती थी। उसने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और पर्याप्त तैयारियाँ करके मालवा में घुस गया। परन्तु उस समय उसमें तथा निजामुल्मुल्क में कोई सीधी टक्कर न हुई। दोनों की इच्छा थी कि खुल्लमखुल्ला युद्ध न किया जाये और मध्यस्थ पुरुषों द्वारा उन्होंने द्वितीय व्यक्तिगत सम्मिलन का प्रबन्ध किया ताकि समाधान और शान्तिमय समझौते के लिए कोई आधार ढूँढ निकालें। मालवा तथा गुजरात की सीमा पर दोहद से लगभग २५ मील दक्षिण में बोलशा नामक स्थान पर १३ फरवरी, १७२३ ई० से लगभग एक सप्ताह तक उनमें बातचीत होती रही। इसका कोई उल्लेख नहीं है कि इस सम्मिलन में वास्तव में क्या निश्चय हुए परन्तु यह अनुमान लगाना गलत नहीं है कि उन्होंने एक बार फिर यह प्रयत्न किया कि सद्भावना तथा अभिनन्दनात्मक शिष्टाचार के विपुल प्रदर्शन के आडम्बर द्वारा वे अपने वास्तविक उद्देश्यों को एक-दूसरे से गुप्त रखें। दो परस्पर विरोधी आक्रामक पराकोटियों का मिलन असम्भव था। इस सम्मिलन में तथा अन्य ऐसी ही भेंटों में बाजीराव को पर्याप्त चेतावनी मिल गयी कि उसके प्राण-हरण का भी उपाय किया जा सकता है। परन्तु वह सदा वीरता प्रदर्शित करता रहा। इसका उल्लेख है कि इस अवसर पर उसने एक मुसलमान फकीर ज्योतिर्लिङ्ग बाबा से परामर्श किया था जिससे उसको यह आश्वासन प्राप्त हुआ था कि उस सम्मिलन से उसको कोई हानि न होगी।[४]

फरवरी से मई १७२३ ई० तक के समय में निजामुल्मुल्क ने मालवा तथा गुजरात पर एक प्रकार का शिथिल अधिकार प्राप्त कर लिया और सम्राट को यह बताने दिल्ली वापस गया कि आक्रामक मराठों का प्रतिरोध करने में वह कहाँ तक सफल हो गया है। परन्तु उनकी पारस्परिक असहमति ने वही हिंसक रूप धारण कर लिया जो कुछ वर्ष पूर्व फर्रुखसियर तथा सय्यदों की असहमति ने किया था। इस समय तीन बड़े प्रान्तों—मालवा, गुजरात तथा दक्षिण—

[४] पेशवा दफ्तर सिलेक्शन्स, १०, २५।

पर निजामुल्मुल्क का अधिकार था। सम्राट उसकी बढ़ती हुई शक्ति से भय-भीत हो गया और अपने को संकट से बचाने के लिए उसने निजाम का तबादला अवध के शासन पर कर दिया। इस पर निजामुल्मुल्क को इतना रोष आया कि २७ दिसम्बर १७२३ ई० को उसने घृणापूर्वक वजीर के पद से त्यागपत्र दे दिया तथा अवध में अपने नये पद पर जाने के बजाय सीधे दक्षिण को प्रयाण किया। उसने सम्राट को यह सूचना भेजी कि उसकी समझ में उसका सर्वोपरि कर्तव्य यह था कि वह मराठों को मालवा तथा गुजरात से बाहर निकाल दे। सतत् तथा तीव्र प्रयाणों द्वारा वह शीघ्र ही उज्जैन पहुँच गया। उसे कभी यह स्वप्न भी न आया था कि वहाँ पर उसे समस्त बल सहित उपस्थित पेशवा का सामना करना होगा। इस बीच में सम्राट ने विद्रोही को दण्ड देने का निश्चय किया। इस हेतु उसने दक्षिण के शासन पर मुबारिजखाँ की नियुक्ति कर दी और उसको तथा राजा शाहू को अपनी समस्त सेना सहित निजाम का दमन करने का आदेश दिया। यह बाजीराव के लिए शुभ अवसर सिद्ध हुआ। दिल्ली मे अपने प्रतिनिधियों द्वारा निजाम की प्रगतियों की यथार्थ सूचना पाकर वह जनवरी १७२४ ई० में सतारा से चल दिया था। कुछ समय उसने उत्तरी खानदेश में अपनी सेना का पुनः संगठन करने में व्यतीत किया और ८ मई को नर्मदा पार करके सिहोर में निजाम के शिविर के पास पहुँच गया।

इस बीच में मुबारिजखाँ को इस विषय में गम्भीर शंका हो गयी थी कि उस संघर्ष में जो निजाम तथा सम्राट के बीच में होने वाला था उसकी अपनी वृत्ति क्या होनी चाहिए—वह निजाम का साथ देकर मराठों को दण्ड दे अथवा निजाम का दमन करके सम्राट की आज्ञा का पालन करे। तीनों दलों के अपने अपने उद्देश्य थे। वे सभी सावधानी से परिस्थिति का अवलोकन कर रहे थे। केवल शाहू ने हृदय से यह प्रयत्न किया कि शान्ति बनी रहे, खुला युद्ध न हो तथा परस्पर विरोधी स्वार्थों का वैर शान्त हो जाये। फरवरी में शाहू ने अपने सरदारों को आग्रह आह्वान भेजे कि वे अपने समस्त दलों सहित भागानगर के मुगल सामन्त मुबारिजखाँ के विरुद्ध संघर्ष में सम्मिलित हों। उसने उसके पास अपने राजदूत आनन्दराव सुमन्त को भेजकर शान्ति का एक आधार भी उपस्थित किया किन्तु साथ ही चेतावनी दी कि यदि उसकी शर्तों का तिरस्कार किया गया तो संघर्ष तुरन्त आरम्भ हो जायेगा क्योंकि शाहू तथा उसके दरबार का यह निश्चय था कि निजाम के द्वारा प्रवृत्त संघर्ष से उत्तम लाभ उठाया जाय।

पेशवा दफ्तर संग्रह की दसवीं जिल्द में नं० १ पर मुद्रित एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पत्र से मराठों के उद्देश्यों तथा इस त्रिपक्षीय संघर्ष में उनकी प्रवृत्ति

का स्पष्ट पता चलता है। इस पत्र में शाहू के व्यापक एवं साग्रह आह्वान का बार-बार उल्लेख है कि सम्राट् के समस्त शुभचिन्तकों का यह कर्तव्य है कि वे विद्रोही निजामुल्मुल्क का दमन करने के लिए राजा शाहू की सेनाओं में अपनी सेनाओं को सम्मिलित कर लें।" किन्तु निजाम मुबारिजखाँ को अपना सर्वप्रथम शत्रु समझता था। उसने मराठों के अनुरंजन का प्रयास किया, क्योंकि निजाम को एक ही समय में दो शत्रुओं से एक साथ संघर्षरत होना अपनी शक्ति के बाहर की बात प्रतीत हुई, विशेषकर उस स्थिति में जबकि सम्राट ने उसको विद्रोही घोषित कर दिया हो। अतः दक्षिण की ओर जाते हुए मार्ग में १८ मई १७२४ ई० को धार के समीप नलछा के स्थान पर वह तीसरी बार बाजीराव से मिला। इस समय भी उन्होंने एक-दूसरे के प्रति मित्र भाव प्रकट करते हुए अपने वास्तविक उद्देश्यों को गुप्त रखा और किन्हीं विशेष शर्तों के पालन का निश्चय न किया।

निजामुल्मुल्क के विरुद्ध इस संघर्ष में मुबारिजखाँ ने भी मराठों की सहायता की याचना की। ऐसा मालूम पड़ता है कि अपने दूत सुमन्त आनन्द राव के द्वारा शाहू ने मुबारिजखाँ के सम्मुख अपनी कुछ विशेष निश्चित शर्तें रखीं। यहाँ पर उनका पूरा वर्णन आवश्यक है क्योंकि वे मराठों की अपनी प्रगतियों के लिए निजी क्षेत्र स्थापित करने के उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या करती हैं

१ चौथ, सरदेशमुखी तथा स्वराज्य के पट्टों के प्रमाणीकरण के साथ-साथ उन शर्तों का पालन किया जाय जो सम्राट् की मुद्रा सहित पहले ही स्वीकार कर ली गयी हैं।

२ इनके अतिरिक्त मालवा तथा गुजरात के प्रान्तों से चौथ तथा सरदेशमुखी संग्रह के अधिकार की भी स्वीकृति दी जाय।

३ तंजौर का राज्य मराठों को दे दिया जाय जो मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था।

४ शिवनेर चाकन माहुली कर्णाला, पाली और मिरज के गढ़ उनसे सम्बन्धित भूमियों सहित मराठों को दिये जायें।

५ सिन्नार की देशमुखी व्यक्तिगत रूप से शाहू को दे दी जाय।

६ शाहू की सिफारिश पर ही दक्षिण के मुगल सूबेदार की नियुक्ति की जाये।

७ दक्षिण के तीन मुगल अधिकारियों—दिलेरखाँ, अब्दुल नबीखाँ तथा अलफखाँ—को निजामुल्मुल्क का दमन करने में मराठों का साथ देने की आज्ञा दी जाये।

८ शाहू के पहाला वाल भाई को कोई सुरक्षा न दी जाय ।

९ मराठा-पक्ष को त्यागकर जान वाला को मुगल सवा म न लिया जाय।

१० मराठा पक्ष को त्याग करन वालो को जो पहल से मुगल-सवा म थे वापस कर दिया जाय ।

११ वे मुगल तथा मराठा सरदार जिनके पास भूमिया के पटटे है अपने अधिकृत प्रदेशा म रहने दिये जायें किन्तु यह आवश्यक है कि वे उत्साहपूवक निजामुल्मुल्क के दमन का प्रयास कर ।

१२ फतहसिंह भासल को हैदराबाद का राज्यपाल नियुक्त किया जाय ।

१३ व गढ तथा प्रदेश जिन पर जजीरा क सिद्दी ने अधिकार कर लिया था पुन मराठो को दे दिय जायें ।

१४ मुबारिजखाँ के साथ सेवा पर नियुक्त मराठा सनिका का उसी दर से वेतन दिया जाय जो सयदो ने बालाजी विश्वनाथ के सनिका को दिया था ।

१५ ५० हजार रुपया का पुरस्कार शाहू को दिया जाये जिसका वचन सम्राट न दिया था ।

यह स्पष्ट है कि वे शर्तें देखन म वसी ही हैं जसी सयदो को दी गयी थी परन्तु उनस उच्च स्तर की हैं । मराठा के उद्देश्य सार रूप म य थे—उनकी इच्छा थी कि वे दक्षिण के स्वामी बन जायें तथा दक्षिण स बाहर भी सम्राट के रक्षक रह । सम्भाजी तजौर के राजा तथा जजीरा क नवाब के प्रसग स उन संघर्षों का पूर्वाभास होता है जो कुछ वष बाद उनस किय गय और जिन पर व्यक्तिगत रूप से शाहू की आँख लगी हुई थी ।

५ निजाम का अपने को स्वतन्त्र घोषित करना—मालवा म निजाम स मिलन के बाद बाजीराव तुरत पूना वापस आ गया जिससे निकट भविष्य म हाने वाले सघष म अपना योग दन क निमित्त वह तयार हो जाये । इसी समय सम्राट ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि निजाम भयानक विद्रोही है और उसक पुत्र गाजीउद्दीन को उसने मन्त्री-पद स हटाकर कमरुद्दीनखाँ को उस पद पर नियुक्त कर दिया है । उसने गिरिधर बहादुर को मालवा के शासन पर नियुक्त कर दिया जिससे निजाम उस प्रान्त को हस्तगत न कर ले ।

जून तथा जुलाई १७२४ ई० म शाहू क दरबार को पूना म बहुत व्यस्त रहना पडा । निकटवर्ती सघष क सम्भव परिणामा तथा उस सघष के प्रति उनकी अपनी वृत्ति क्या हानी चाहिए—इस पर व विचार विमश करत रह । २९ जुलाई को शाहू न कान्होजी भासले को लिखा निजामुल्मुल्क तथा मुबारिजखाँ क बीच युद्ध होन वाला है । आप किसी भी दल का साथ न दें । ५

---

५ शाहू रोयुसी २२ ।

शाहू ने पूर्णतया तटस्थ रहना ही बुद्धिसंगत समझा क्योंकि उसको किसी पक्ष विशेष की विजय की आशा न थी। पर बाजीराव इस अवसर से उत्तमोत्तम लाभ उठाने के लिए तयार हो गया। उसने तुरंत बुरहानपुर के प्रांत पर अधिकार कर लिया जो दोनों मुगल सामंतों के बीच युद्ध का मुख्य क्षेत्र था। उसने चिमनाजी अप्पा को लिखा, 'मुगलों ने बुरहानपुर खाली कर दिया है। चूंकि आपको उसी मार्ग से जाना है इसलिए आप उस प्रदेश पर अधिकार करना न भूलें—बलपूर्वक भी, यदि आवश्यकता हो।'[६]

हैदराबाद में मुबारिजखाँ को समाचार मिला कि निजाम अत्यंत शीघ्रता से निर्णायक युद्ध के लिए उसकी ओर बढ़ रहा है। खान उस समय यह निर्णय न कर सका कि अपनी सुरक्षा के निमित्त उसे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़कर स्वयं ही निजाम से भिड़ जाना चाहिए तथा दक्षिण में मुगल सत्ता के केन्द्र स्थान औरंगाबाद पर अधिकार कर लेना चाहिए। उसका प्रतिनिधि ऐवाजखाँ इस स्थान का अधिकारी था तथा उस पर विश्वासघाती होने का उसे संदेह न था। पर ऐवाजखाँ निजामुल्मुल्क के पक्ष में था। मुबारिजखाँ को पता चलने के पहले ही उसने उस स्थान को निजामुलमुल्क को समर्पित कर दिया। मई के अन्त में निजाम मालवा में धार नामक स्थान पर पहुँच गया और तीन सप्ताह में औरंगाबाद आ गया। अपने विरोधी के शीघ्र प्रयाण के कारण मुबारिजखाँ पूर्णतः हतबुद्ध हो गया। इस नगर के हाथ से निकल जाने से वह अपने समस्त बहुमूल्य भाण्डार तथा सामग्री खो बैठा जिससे उसकी स्थिति अत्यधिक निर्बल हो गयी। मुबारिजखाँ को असावधान रखने के लिए निजाम ने एक अन्य छद्म का भी आश्रय लिया। वह उसको प्रायः इस आशय के पत्र लिखा करता था[७]—

'हम परस्पर नहीं लड़ना है। मैं तो केवल मराठों को दण्ड देने के लिए आया हूँ। वे हमारे सामान्य शत्रु हैं। मैंने सम्राट से प्रार्थना की है कि मुझे वह किसी अन्य स्थान पर नियुक्त कर दें। उसकी आज्ञा प्राप्त होते ही मैं दक्षिण छोड़ दूंगा और अपने अधिकार क्षेत्र में चला जाऊँगा। हमें व्यर्थ में मुसलमानों का रक्त नहीं बहाना चाहिए।'

इसी बीच मुबारिजखाँ को सम्राट की विधिवत् आज्ञा से दक्षिण का राज्यपाल स्थिर कर दिया गया। साथ ही उसे निजामुल्मुल्क पर आक्रमण कर उसका सर्वनाश कर देने की प्रेरणा प्राप्त हुई और इस कार्य के निमित्त सम्राट ने राजधानी से सहायक सेना भेजने का भी वचन दिया। मुबारिजखाँ नवयुवक

---

६ पेशवा दफ्तर, १०, ३०।

७ इरविन खण्ड २।

तथा क्षिप्रकारी था। उसने सावधानी को तिलाजलि दे दी और निजाम से लड़ने के लिए वीरतापूर्वक प्रस्थान किया। उसको विश्वास था कि अपनी सेना तथा उत्तर से आने वाली दूसरी सेना के बीच में निजाम को पकड़कर वह कुचल देगा। उसने मराठा दलो का नकद वतन मांगने पर अपमान किया। सीधे औरंगाबाद जाने की बजाय उसने हैदराबाद से उत्तर की ओर प्रयाण किया और इस प्रकार निजाम को भावी युद्ध के लिए उपयुक्त स्थल चुनने का अवसर मिल गया। जब उसको ज्ञात हुआ कि मुबारिजखाँ उत्तर की ओर गया है तो ३ सितम्बर को उसने औरंगाबाद से चलकर पूरब की ओर प्रयाण किया। लगभग ८० मील की दूरी पर उसे ज्ञात हुआ कि मुबारिजखाँ का पडाव पूर्णा नदी के तट पर मेहकर जिले में साखरखेर्डा नामक स्थान पर है। ६ सितम्बर को बाजीराव ने अपने एक सेनानायक को इस प्रकार लिखा— आपकी मुझे सूचना मिली है कि मुबारिजखाँ ने साखरखेर्डा नामक गाव में पडाव डाल रखा है। इससे स्पष्ट होता है कि वह आक्रमण करने की स्थिति में नहीं है। शायद रात्रि में वह गुप्त रूप से भाग जाय। उसकी गतिविधि का आप अवश्य ध्यान रखें तथा मुझको सूचित करते रहें। मैंने निजामुल्मुल्क को परामर्श दिया है कि वह इस स्थान पर एक दिन ठहर जाये।[८]

आक्रमण के उचित अवसर की खोज में कुछ दिनों तक दोनो पक्ष अपनी अपनी चाल चलते रहे। ३० सितम्बर को उनमें रक्तरंजित युद्ध हुआ। इसके यथार्थ विवरणों का अध्ययन एक प्रत्यक्षदर्शी के विदग्ध वर्णन में किया जा सकता है जिसको इरविन ने उद्धृत किया है। मुबारिजखाँ ने अति रोष तथा निश्चय से युद्ध किया परन्तु संकटग्रस्त परिस्थिति में जहाँ व्यक्तिगत शौर्य की अपेक्षा धैर्य अधिक लाभप्रद होता है वह परिस्थिति का ठीक आकलन न कर सकता था और न आगे की सोच सकता था। कर्नाटक अर्काट कडप्पा कर्नूल के अधिकांश नवाब तथा सरदार मुबारिजखाँ के समर्थन में उपस्थित थे। उसके प्रति उनका व्यक्तिगत अनुराग था। वे सब निर्भय होकर लड़े। मुबारिजखाँ अपने दो पुत्रों सहित लड़ता हुआ मारा गया। वस्तुतः उसकी समस्त सेना का सर्वनाश हो गया। निजामुल्मुल्क विजयी हुआ और इस प्रकार उसने भारत के भावी इतिहास का भाग बदल दिया। बहुत सा सामान अनेक हाथी तथा पशु उसके हाथ लगे। मुबारिजखाँ का कटा हुआ सिर उसने सम्राट को भेज दिया। उसके साथ व्यंग्यात्मक क्षमायाचना का पत्र भी था। उसमें लिखा

८ पेशवा दफ्तर १० ३४।

था—"हुजूर के आशीर्वाद से मैं इस विद्रोही का वध करने में सफल हुआ हूँ।" उसने इस रणभूमि का नाम साखरखेर्डा से बदलकर फतेहखेर्डा रख दिया।

इस प्रसिद्ध युद्ध में मराठों का वास्तव में क्या भाग रहा, यह निश्चय करना कठिन है। बाजीराव तथा कुछ अन्य व्यक्ति इसके निकट सम्पर्क में रहे। वे परिणाम की प्रतीक्षा में थे तथा विजयी पक्ष से सौदा करने के लिए तैयार थे। बाजीराव की व्यक्तिगत सहानुभूति निजामुल्मुल्क के साथ थी क्योंकि मराठों के प्रति मुबारिजखाँ की शत्रुता का उसको सम्भवतः कटु अनुभव था। एक लेखपत्र में वर्णन है कि 'मुबारिजखाँ के विरुद्ध युद्ध में लगे हुए घावों की मरहम-पट्टी कराने के लिए राणोजी सिंधिया तथा अन्य व्यक्तियों को दस रुपये दिये गये।' इसी प्रकार के अन्य भुगतानों का भी वर्णन प्राप्त है जिनमें भावी इतिहास के उदीयमान नक्षत्रों का भी उल्लेख किया गया है। मुबारिजखाँ के पक्ष में लड़ता हुआ सिन्दखेड का रघुजी जाधव मारा गया। यह उसी परिवार का वंशज था जिसने शिवाजी की माता जीजाबाई को जन्म दिया था। उसका पुत्र मानसिंहराव जाधव था जिसकी माता अम्बिकाबाई राजाराम छत्रपति की पुत्री थी। उसका पालन पोषण शाहू ने किया था, परन्तु शाहू की मृत्यु के पश्चात उसके पेशवा के साथ हुए संघर्ष में वह ताराबाई के पक्ष में हो गया था।

वास्तविक युद्ध की समाप्ति पर परिस्थिति का प्रबन्ध करने में निजाम का व्यावहारिक चातुर्य तथा उसका दूरदर्शी विवेक भलाभाँति प्रकट हो गया। मुबारिजखाँ के परिवार तथा उसके मित्रों के दुःख को शान्त करने के लिए जो कुछ भी उससे बन पड़ा उसने किया। उसने प्रत्येक सम्भव प्रकार से उनको सन्तुष्ट रखा और इस प्रकार परास्त शत्रु की ईर्ष्या को नष्ट कर दिया। शवों का उचित रूप से अन्तिम संस्कार किया गया तथा घायलों की सावधानी से चिकित्सा की गयी। निजाम उस स्थान पर चार दिन तक ठहरकर औरंगाबाद वापस आ गया। यहाँ पर आभार प्रदर्शन के निमित्त आये हुए बाजीराव का उसने विधिवत स्वागत किया। उसने उसको सातहजारी की उपाधि से विभूषित किया और व्यक्तिगत सम्मान तथा नकद पुरस्कार भी दिये जिनमें वस्त्र तथा दुर्लभ आभूषण भी थे। यह सम्भवतः उस तटस्थ वृत्ति का पुरस्कार था जिसको युद्ध के पहले से बाजीराव धारण किये हुए था।[६] दक्षिण में अपने स्वतन्त्र जीवन के आरम्भ पर निजाम को यह चिन्ता थी कि वह किसी प्रकार बाजीराव के हृदय से समस्त विरोध तथा कटुता को दूर कर दे तथा मराठा भावना के अनुरंजन का प्रयत्न करे। इसी प्रकार उसने शाही मुगल सेवा में

---

६ इस आगमन का विवरण पुरन्दरे दफ्तर (जिल्द १, पृष्ठ ७७) में है।

रह रहे मराठा सरदारों—यथा राव रम्भा निम्बालकर तथा चन्द्रसेन जाधव—को भी पुरस्कार दिये।

औरंगाबाद तथा उत्तरी प्रदेशों की सुरक्षा का आवश्यक प्रबन्ध करने के बाद निजामुल्मुल्क ने दक्षिणी प्रदेशों के नियन्त्रणार्थ हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मराठा शासन का एक अति भयानक शत्रु ऊदाजी चह्वाण उससे आकर मिला। उसने पण्ढरपुर में उसको अपनी अधीनता अर्पित की तथा उसकी सेवा करने पर सहमत हो गया। इस प्रकार उचित समय पर हैदराबाद में अपनी स्थिति को निजाम ने स्थिर कर लिया। उस स्थान पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद उसने उन समस्त तत्त्वों को सन्तुष्ट कर लिया जिन्होंने उसका विरोध करने का प्रयत्न किया था। तत्पश्चात उसने सम्राट को एक लम्बा व्याख्यात्मक पत्र लिखा। यह पत्र राजनिष्ठा तथा आज्ञाकारिता की उक्तियों से भरा हुआ था और इसमें उसने अपने अपराधों की क्षमा-याचना भी की थी। सम्राट ने अनिवार्यता को भलाई में परिणत करते हुए निजाम के वचनों को स्वीकार कर लिया तथा उसे स्थायी रूप से दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया। उसी समय पर गुजरात तथा मालवा के प्रान्त उसके अधिकार-क्षेत्र से अलग कर लिये गये और सर बुलन्दखाँ को गुजरात में तथा राजा गिरिधर बहादुर को मालवा में नियुक्त कर लिया गया। इन परिवर्तनों का शाही फर्मान उचित समय पर पहुँच गया तथा २० जून १७२५ ई० को सम्मानपूर्वक निजामुल्मुल्क ने उसको प्राप्त किया।

इस प्रकार शागरखेड़ा का युद्ध आसफजाही राजवंश के भाग्य के लिए एक मोड़ सिद्ध हुआ।[१०] निजाम द्वारा समस्त व्यावहारिक कार्यों के निमित्त स्वतन्त्रता धारण का यह सूचक है। यह ऐसा राजनीतिक परिवर्तन था जिसके कारण मराठों का भविष्य हैदराबाद के शासकों के भाग्य से जुड़ गया। यद्यपि कुछ समय तक उसने अपनी नवीन स्थिति को गुप्त रखा तथा चतुरतापूर्वक उन बाह्य चिह्नों और स्पष्ट घोषणाओं को अपने से दूर रखा जिनसे यह संकेत प्राप्त हो सकता था कि दिल्ली के केन्द्रीय शासन से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया है परन्तु इसके बाद शासन-सम्बन्धी विषयों पर आज्ञा के निमित्त उसने दिल्ली को कोई पत्र नहीं भेजे और न अधिक राजस्व का शाही कोष

म जमा ही किया। अपनी ही ओर से वह युद्ध घोषित करता तथा सन्धियाँ स्थापित करता। सम्राट की तरह ही वह नियुक्तियाँ करता और आदर सम्मान तथा उपाधियाँ भेंट करता।[११] परन्तु उसने अपने लिये न तो राजसिंहासन बनवाया और न अपने नाम के सिक्के ही ढलवाये। जुमा की अपनी प्रार्थनाओं में भी वह सम्राट का ही नाम लेता रहा। अपने समस्त पत्र-व्यवहार में भी वह भाषा की उन शैलियों का ही उपयोग करता जिनमें सम्राट को उसका स्वामी माना जाता। परन्तु साथ ही साथ यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि निजाम द्वारा प्रदर्शित स्पष्ट विद्रोह के इस उदाहरण से मुगल-साम्राज्य का वास्तविक अंग भंग आरम्भ होता है। जब उसको यह सुझाव दिया गया कि वह अपने लिये स्वतन्त्र गद्दी स्थापित कर ले, तो उसने तुरन्त व्यंग्यपूर्वक कहा 'राजगद्दियाँ तथा राजछत्र उनका कल्याण करें जिनके पास वे हैं। मेरा कार्य अपने सम्मान को सुरक्षित रखना है और यदि वह मेरे पास है तो मुझे शाही गद्दी की क्या आवश्यकता?' निस्सन्देह शीघ्र ही अन्य व्यक्तियों ने भी इस उदाहरण का अनुसरण किया।

इस प्रकार हैदराबाद का आसफजाही राजवंश एक स्थायी तत्त्व बन गया, जिसकी भविष्य नीति के प्रति मराठों को उस समय जबकि दिल्ली का हस्तक्षेप कम होता जा रहा था, सदा सजग रहना पड़ा। इसके बाद मराठों के भाग्य पर एक प्रबल व्यक्ति का नियन्त्रण रहा, जिसकी अपेक्षा अधिक योग्य व्यक्ति केवल बाजीराव ही सिद्ध हुआ। वर्तमान परिस्थितियों में उसने उत्तरी भाग में निजाम की प्रगतियों का निराकरण करने के अभिप्राय से गुजरात तथा मालवा में ही स्थायी रूप से अपने पैर जमाना ही श्रेयस्कर समझा। इसी मन्तव्य से अपने औरंगाबाद के अभ्यागमन पर उसने शासन के कार्यों के संचालन तथा पारस्परिक अधिकारों तथा कलहों के निबटारे के लिए निजाम को अपना सहयोग प्रस्तुत किया था। इसके निमित्त पेशवा का प्रस्ताव था कि वे सम्मिलित रूप से कर्नाटक पर अभियान करें जहाँ पर अति आवश्यक विषय उसके ध्यान को आकृष्ट कर रहे थे।[१२]

---

[११] देखिए पृष्ठ ६९—सातहजारी की उपाधि बाजीराव को दी गयी।
[१२] देखो पुरन्दर दफ्तर जिल्द १, पृ० ७७।

तिथिक्रम

अध्याय ४

नवम्बर, १७२५— मई, १७२६	कर्नाटक में बाजीराव का प्रथम अभियान।
नवम्बर, १७२६— अप्रल, १७२७	कर्नाटक में बाजीराव का द्वितीय अभियान।
१७२६	शाहू द्वारा सुंदा के सरदार को सुरक्षा का आश्वासन।
१७२६	कर्नाटक मे निजामुल्मुल्क का प्रयाण।
फरवरी, १७२६	शाहू के विरुद्ध सम्भाजी का विद्रोह।
१९ नवम्बर, १७२६	सरलश्कर सुल्तानजी निम्बालकर निजाम के साथ, शाहू द्वारा बर्खास्त।
नवम्बर, १७२६	चन्द्रसेन, राव रम्भा, ऊदाजी चव्हाण का शाहू के प्रदेश पर धावा।
अप्रल, १७२७	श्रीरंगपट्टन मे मराठा सेनाओ मे हैजा फलना।
अप्रल, १७२७	कर्नाटक के सरदारो द्वारा बाजीराव की अधीनता स्वीकार।
अप्रल, १७२७	अर्काट के नवाब सआदत उल्लाखाँ के साथ बाजीराव का समझौता।
२७ अगस्त, १७२७	निजामुल्मुल्क के विरुद्ध बाजीराव का प्रस्थान।
अक्तूबर दिसम्बर, १७२७	सम्भाजी की सहायता से निजाम द्वारा शाहू के देश पर आक्रमण।
जनवरी, १७२८	बाजीराव का उत्तरी खानदेश पर धावा, बुरहानपुर को धमकी, अलीमोहन की ओर प्रयाण।
फरवरी, १७२८	पूना मे निजाम का सम्भाजी को छत्रपति घोषित करना, पूना के प्रदेश का नाश, शाहू तथा चिमनाजी अप्पा का पुरंदर मे शरण लेना।
१४ फरवरी, १७२८	बाजीराव खानदेश मे ताप्ती के तट पर।
२८ फरवरी, १७२८	पालखेड पर बाजीराव द्वारा निजाम का मानमर्दन।

तिथिक्रम

अध्याय ४

नवम्बर, १७२५— मई, १७२६	कर्नाटक में बाजीराव का प्रथम अभियान ।
नवम्बर, १७२६— अप्रल, १७२७	कर्नाटक में बाजीराव का द्वितीय अभियान ।
१७२६	शाहू द्वारा सुदा के सरदार को सुरक्षा का आश्वासन ।
१७२६	कर्नाटक मे निजामुल्मुल्क का प्रयाण ।
फरवरी, १७२६	शाहू के विरुद्ध सम्भाजी का विद्रोह ।
१६ नवम्बर, १७२६	सरलश्कर सुल्तानजी निम्बालकर निजाम के साथ, शाहू द्वारा बर्खास्त ।
नवम्बर, १७२६	चन्द्रसेन, राव रम्भा, ऊदाजी चव्हाण का शाहू के प्रदेश पर धावा ।
अप्रल, १७२७	श्रीरंगपट्टन मे मराठा सेनाओ में हैजा फैलना ।
अप्रल, १७२७	कर्नाटक के सरदारो द्वारा बाजीराव की अधीनता स्वीकार ।
अप्रल, १७२७	अर्काट के नवाब सआदत उल्लाखाँ के साथ बाजीराव का समझौता ।
२७ अगस्त, १७२७	निजामुल्मुल्क के विरुद्ध बाजीराव का प्रस्थान ।
अक्तूबर दिसम्बर, १७२७	सम्भाजी की सहायता से निजाम द्वारा शाहू के देश पर आक्रमण ।
जनवरी, १७२८	बाजीराव का उत्तरी खानदेश पर धावा, बुरहानपुर को धमकी, अलीमोहन की ओर प्रयाण ।
फरवरी, १७२८	पूना मे निजाम का सम्भाजी को छत्रपति घोषित करना, पूना के प्रदेश का नाश, शाहू तथा चिमनाजी अप्पा का पुरन्दर मे शरण लेना ।
१४ फरवरी, १७२८	बाजीराव खानदेश मे ताप्ती के तट पर ।
२८ फरवरी, १७२८	पालखेड पर बाजीराव द्वारा निजाम का मानमर्दन ।

तिथिक्रम

अध्याय ४

नवम्बर, १७२५— मई, १७२६	कर्नाटक में बाजीराव का प्रथम अभियान।
नवम्बर, १७२६— अप्रल, १७२७	कर्नाटक में बाजीराव का द्वितीय अभियान।
१७२६	शाहू द्वारा सुंदा के सरदार को सुरक्षा का आश्वासन।
१७२६	कर्नाटक मे निजामुल्मुल्क का प्रयाण।
फरवरी, १७२६	शाहू के विरुद्ध सम्भाजी का विद्रोह।
१९ नवम्बर, १७२६	सरलश्कर सुलतानजी निम्बालकर निजाम के साथ, शाहू द्वारा बर्खास्त।
नवम्बर, १७२६	चन्द्रसेन, राव रम्भा, ऊदाजी चव्हाण का शाहू के प्रदेश पर धावा।
अप्रल, १७२७	श्रीरंगपट्टन में मराठा सेनाओं में हैजा फैलना।
अप्रल, १७२७	कर्नाटक के सरदारों द्वारा बाजीराव की अधीनता स्वीकार।
अप्रल, १७२७	अर्काट के नवाब सआदत उल्लाखां के साथ बाजीराव का समझौता।
२७ अगस्त, १७२७	निजामुल्मुल्क के विरुद्ध बाजीराव का प्रस्थान।
अक्तूबर दिसम्बर, १७२७	सम्भाजी की सहायता से निजाम द्वारा शाहू के देश पर आक्रमण।
जनवरी, १७२८	बाजीराव का उत्तरी खानदेश पर धावा, बुरहानपुर को धमकी, अलीमोहन की ओर प्रयाण।
फरवरी, १७२८	पूना में निजाम का सम्भाजी को छत्रपति घोषित करना, पूना के प्रदेश का नाश, शाहू तथा चिमनाजी अप्पा का पुरन्दर मे शरण लेना।
१४ फरवरी, १७२८	बाजीराव खानदेश मे ताप्ती के तट पर।
२८ फरवरी, १७२८	पालखेड़ पर बाजीराव द्वारा निजाम का मानमर्दन।

६ मार्च, १७२८	मुंगीशिवगांव पर निजाम द्वारा बाजीराव की शर्तों को स्वीकार करना।
जून, १७२८	जतपुर में मुहम्मदखां बंगश द्वारा छत्रसाल पर घेरा।
२५ अक्तूबर, १७२८	चिमनाजी अप्पा का पूना से मालवा को प्रयाण।
२५ नवम्बर, १७२८	चिमनाजी नर्मदा के तट पर।
२६ नवम्बर, १७२८	अमेरा का युद्ध—गिरिधर बहादुर तथा दया बहादुर का वध।
१३ दिसम्बर, १७२८	चिमनाजी द्वारा उज्जैन का घेरा।
फरवरी, १७२९	देवगढ़ तथा गढ़ा के मार्ग से बुन्देलखण्ड में बाजीराव का प्रवेश।
१२ मार्च, १७२९	बाजीराव और छत्रसाल की भेंट।
१८ अप्रैल, १७२९	बाजीराव का बंगश को परास्त करना तथा बुन्देला प्रदेश का एक भाग प्राप्त करना।
२३ मई, १७२९	बाजीराव का दक्षिण को वापस आना।
दिसम्बर, १७२९	मराठों का माण्डवगढ़ पर अधिकार।
३१ मार्च, १७३०	मांडवगढ़ सम्राट को वापस।
१४ दिसम्बर, १७३१	छत्रसाल की मृत्यु।

अध्याय ४

दक्षिण तथा उत्तर मे वेगवती सफलताएँ

[१७२५-१७२९]

१ कर्नाटक मे दृढीकरण ।
२ निजामुल्मुल्क का सम्भाजी को छत्रपति बनाना ।
३ पालखेड मे निजाम का मान मदन ।
४ अमेरा का तीव्र युद्ध ।
५ छत्रसाल का उद्धार ।

१ कर्नाटक मे दृढीकरण—शिवाजी तथा राजाराम के समय मे पूरवी कर्नाटक या कृष्णा नदी के प्रदेश म मराठा हिता का किस प्रकार विकास हुआ, इसका वणन पहल किया जा चुका है। उन स्थाना तथा थाना पर जो बहुत पहले स शाहू के पूव-ा की सम्पत्ति थे, प्रबल मराठा निय-त्रण रखन की इच्छा के अतिरिक्त शाहू का तजोर के अपन भाइया के प्रति गहरा अनुराग था। वहाँ पर इस समय राजा शर्फोजी के शासन की स्थिति अनिश्चित थी और वहा का वातावरण अस्थिर तथा विराधी था। जून, १६९७ ई० म स ताजी घारपडे की हत्या का बदला लेन के उद्देश्य से उसके भाइया तथा भतीजा ने जुल्फिकारखाँ तथा अ-य शाही सनापतियो के अधीन मुगल सेनाओ के विरुद्ध घोर तथा अविराम युद्ध किया था। ये शाही सेनापति उन दूरस्थ प्रदशा से मराठा को निकाल दने का प्रयास कर रह थे। घोरपडे परिवार ने लगभग उस समय तक, जिसका हम उल्लख कर रहे ह उन समस्त प्रदेशा को विजय कर लिया था तथा व्यवहार म वहाँ पर अपना शासन स्थापित कर लिया था। स-ताजी का भाइ बहिरजी हि-दुराव, उसका पुत्र सिधाजी तथा पौत्र मुरारराव कर्नाटक के इतिहास म कुछ समय तक प्रसिद्ध व्यक्ति रह चुके थे।[1]

---

[1] घारपडे परिवार की प्रगतिया स सम्बद्ध साहित्य का हाल म पता लगा है। इसका मुद्रण अनियमित रूप से हुआ है। इससे परस्पर सगत कथा को प्राप्त करन के लिए सावधान तथा धैर्यपूवक अध्ययन की आवश्यकता है। मुरारराव ने अपना स्थायी निवास स्थान गुट्टी म बनाया था। उसके अद्ध शताब्दी के इतिहास का निर्माण अभी तक नही हुआ है। (देखिए शिवचरित्र साहित्य जिल्द ३—सोधा)

शाहू तथा पेशवा ने भारत के भाग्य निर्णायकों के रूप में अपने न्यायिक उद्देश्यों पर दृढ़ विश्वास रखते हुए राजनीतिक परिस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करना अपना परम कर्तव्य समझा, क्योंकि विभिन्न सरदारों के परस्पर विरोधी स्वत्वों को नियमबद्ध करने तथा आवश्यकतानुसार उन्हें बलपूर्वक आज्ञाकारी बनाकर रुचिकर शांतिमय शासन स्थापित करने की उनकी उच्च तथा उत्कृष्ट अभिलाषा थी। साखरखेर्ड के युद्ध के बाद बाजीराव ने निजामुल्मुल्क से अपने सम्मिलन के अवसर पर अपने उद्देश्यों तथा विचारों पर स्वतन्त्रतापूर्वक वार्तालाप किया था। बाजीराव द्वारा प्रस्तुत कर्नाटक के सम्मिलित अभियान के प्रस्ताव पर निजाम सहयोग देने को प्रस्तुत हो गया था। १७२५ ई० की शरद ऋतु में सतारा में भी इस विषय पर वार्तालाप हुआ था तथा शाहू ने बाजीराव को अपनी अनुमति दे दी थी। परिणामस्वरूप क्रम से दो मराठा अभियान हुए—पहला नवम्बर १७२५ से मई १७२६ ई० तक चालू रहा और दूसरा, नवम्बर १७२६ से अप्रैल १७२७ ई० तक होता रहा। प्रथम का नाम चीतलदुर्ग और द्वितीय का नाम श्रीरंगपट्टन अभियान है। दोनों का नेतृत्व स्वयं बाजीराव कर रहा था यद्यपि शाहू ने नाममात्र के लिए नायक का पद अपने कृपा पात्र फतेहसिंह भोसले को दिया था। निजामुल्मुल्क ने फरवरी १७२५ ई० में अपने दरबार के मराठा प्रतिनिधि नर्सो कुसाजी को बाजीराव के पास भेजकर उससे उसके कर्नाटक जाने के उद्देश्य की जानकारी भी की थी।[२]

कर्नाटक की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रस्तावित सम्मिलित अभियान की योजना से निजाम जानबूझकर अलग रहा। उसने यह प्रयत्न किया कि पेशवा की प्रगति से उसके अपने हितों को जो कुछ भी हानि पहुँचे, उसका वह प्रतिकार कर ले। उसने अपने सहकारी ऐवाजखाँ को एक सुसज्जित सेना सहित पेशवा से स्वतन्त्र रहकर अपना कार्य करने हेतु भेजा। इस समय से निजामुल्मुल्क को मराठों से संघर्ष की सम्भावना दीखने लगी और उसने शाहू तथा बाजीराव दोनों के विरुद्ध गम्भीर किन्तु गुप्त षड्यन्त्र प्रारम्भ कर दिये जो पालखेड में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हुए। वर्तमान अभियान में फतेहसिंह भोसले के साथ त्र्यम्बकराव दाभाडे, सुल्तानजी निम्बालकर तथा प्रतिनिधि भी थे। इनके अतिरिक्त उसके साथ स्वयं पेशवा था। उनकी कुल सेना लगभग ५० हजार थी। बाद को गुट्टी से आकर मुरारराव घोरपडे भी उनके साथ हो गया। शाहू के विशेष आग्रह पर फतेहसिंह भोसले तंजौर गया तथा शर्फोजी से कर्नाटक के अभियान के उद्देश्य की व्याख्या की।

---

२ पेशवा दफ्तर सिलेक्शन्स, जिल्द ३०, पृ० ३६।

बीजापुर, गुलबर्गा तथा कोपबल होकर मराठे चीतलदुग की ओर बढ़े। उन्होने कर के शेष धन का सग्रह किया, भविष्य म नियमित रूप से कर चुकाने के वचन प्राप्त किये, विरोधियो का दमन किया तथा उन स्थानो म मराठा शासन को पुन स्थापित किया जहाँ से इसको उखाड फेंका गया था। शाहू की विशेष आज्ञा पर सुन्दा (सोंध) का सरदार मराठा सरक्षण मे ले लिया गया।[3] अभियान के समाप्त होने पर मराठे दल वर्षा ऋतु व्यतीत करने के लिए अपने मुख्य स्थान पर वापस आ गये। १७२६ ई० की हेमन्त ऋतु मे चौथ सग्रह के शेष काय को पूरा करने तथा निजाम की ओर से सम्भव विरोध का सामना करने के लिए वे पुन कर्नाटक आ गये। इस सम्बन्ध म २० जुलाई, १७२६ ई० को शाहू ने लक्ष्मीश्वर के देशमुख को निम्नांकित पत्र लिखा

"जो अत्याचार आप पर तथा आपके प्रदेश पर नवाब निजामुलमुल्क कर रहा है, उसके विरुद्ध सहायता के निमित्त आपकी प्राथना हमको प्राप्त हुई है तथा आपको यह सूचित करते हुए हमको हर्ष होता है कि आगामी दशहरा के निकट आपको आवश्यक सहायता भेजने का प्रबन्ध हमने कर लिया है क्योंकि उसी समय सैनिक प्रगति वास्तव म सम्भव हो सकती है। सेनापति, पेशवा तथा सरलश्कर दक्षिण को जायेंगे। जो कुछ भी साधन आपके पास हैं, उनम उनके आगमन तक आप अपनी स्थिति की रक्षा का प्रयत्न करते रहे तथा अपने राज्य म निजाम के प्रवेश को रोके रहे।"[४]

उक्त पत्र कर्नाटक के द्वितीय अभियान की आवश्यकता की आंशिक व्याख्या करता है। बाजीराव की अनुपस्थिति म निजाम ने मराठो के प्रभाव-क्षेत्र पर अपनी घुसपैठ प्रारम्भ कर दी। शाहू ने भी तत्काल इसके निवारणाथ अपने अधीन सामन्तो की रक्षा का प्रबन्ध किया। इस बार बेदनूर पहुँचने के लिए बाजीराव ने बेनगाँव, सुन्दा तथा लक्ष्मीश्वर होकर पश्चिमी माग का अनुसरण किया। वहाँ से वह श्रीरंगपट्टन गया जहाँ पर वह ४ माच को पहुँच गया। उस स्थान पर एक मास ठहरने के बाद वह जल्दी से सतारा वापस आ गया, क्योकि इस बीच म अपने स्वामी से उसको उस सकट का सामना करने का आग्रहपूर्ण आह्वान प्राप्त हुआ था जिसका आरम्भ महाराष्ट्र के अनेक भागो म निजाम ने कर दिया था। उष्णता, जलाभाव तथा महामारी के अकस्मात फूट पडने के कारण मराठो को १७२७ ई० मे भयानक हानियो को सहन करना पडा। श्रीरंगपट्टन म बाजीराव ने अर्काट के नवाब सआदत उल्लाखाँ के साथ मित्रता

---

3 देखिए शिवचरित्र साहित्य, जिल्द ३ पृ० ४६७।

४ सतारा के पत्र, २७।

को जारी रखा। वे चन्द्रसेन तथा ऊदाजी चह्वाण सदृश व्यक्तियों की सहायता से निजामुल्मुल्क के हाथों की कठपुतली बन गये। सेनापति के एक कार्यकर्ता रायजी मल्हार को २३ जुलाई १७२१ ई० को लिखा हुआ सम्भाजी का एक पत्र इस षडयन्त्र की स्पष्ट व्याख्या करता है 'चन्द्रसेन जाधव ने आपको पहले ही सूचित कर दिया होगा कि हमारे पक्ष में उसकी कितनी गम्भीर रुचि है तथा हमारे पक्ष के समर्थनार्थ वह क्या प्रयास कर रहा है। आप भी हमारे प्रति अपने महान अनुराग के कारण उसी उद्देश्य के निमित्त अपना यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है।'[५]

स्पष्ट है कि शाहू के विरुद्ध इस प्रकार के षडयन्त्र १७२१ ई० से ही रचे जा रहे थे। परन्तु १७२५ ई० से पूर्व अर्थात निजामुल्मुल्क के द्वारा सम्भाजी के पक्ष के स्पष्ट समर्थन से पूर्व ये षडयन्त्र वास्तविक शक्ति न प्राप्त कर सके। प्रसिद्ध रामचन्द्र अमात्य का पुत्र भगवन्तराव अमात्य भी शाहू के विरुद्ध इन षडयन्त्रों में सम्मिलित हो गया। शाहू के एक स्वामिभक्त नायक नीलकण्ठराव जाधव को एक युद्ध में निजामुल्मुल्क ने बन्दी बना लिया था। २३ अगस्त १७२५ ई० की शाहू की एक आज्ञा में नीलकण्ठराव को मुक्त कराने की चिन्ता का वर्णन है। २५ नवम्बर को बाजीराव ने शाहू को इस आशय का एक पत्र लिखा 'मैं आपके अभिप्राय से पूर्णतया परिचित हूँ कि पण्ढरपुर के निकट सैन्य संग्रह द्वारा निजामुल्मुल्क के मन में सन्देह न उत्पन्न होने दूं किन्तु यह मेरे कर्नाटक अभियान के निमित्त आवश्यक है तथा मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा कोई कार्य नहीं कर रहा हूँ जिससे निजामुल्मुल्क रुष्ट हो जाये। तथापि मैं अपनी प्रबल आशंका आपको अवश्य प्रकट करूँगा कि लक्षण प्रतिकूल हैं तथा मुझे संघर्ष की आशंका है।'[६]

फरवरी १७२६ ई० में सम्भाजी ने चन्द्रसेन को लिखा आपके पत्रों को प्राप्त कर तथा यह जानकर हमको बहुत प्रसन्नता हुई कि आपने निजामुल्मुल्क को इस बात पर राजी कर लिया है कि वह हमारे पक्ष का समर्थन करेगा तथा प्रत्येक उपाय से उसको उन्नत करेगा। आपके मूल्यवान प्रस्ताव के अनुसार हम दक्षिण की ओर ठीक तुंगभद्रा नदी तक एक अभियान पर गये। हमारे साथ हिन्दुराव तथा सगुणबाई घोरपडे तथा पीरजी और रानोजी भी थे। चूंकि श्रीपतराव प्रतिनिधि ने हमारे विरुद्ध प्रयाण किया है, कृपया शीघ्र ही हमारी सहायतार्थ आ जायें। निजामुल्मुल्क ने करनौली की ओर प्रयाण किया है और

---

५ राजवाडे जिल्द ३ पृ० ५५६।

६ सतारा के पत्र १४, १५७।

हमसे हमारी सेना भेजने के लिए कहा है। अत हमने अपने मन्त्री नीलकण्ठ त्र्यम्बक को भेज दिया है तथा उनको आज्ञा दी है कि वह शीघ्र ही निजाम के साथ सम्मिलित हो जाय। इस समय हम लोगों न म आपके मिलन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम स्वयं इस समय निजाम के साथ सम्मिलित नहीं हो सकते, क्योंकि पेशवा तथा प्रतिनिधि दोनों हमसे युद्ध करने आ रहे हैं। निजामुल्मुल्क को इस बात पर राजी करके कि वह शाहू से सम्बन्ध विच्छेद कर ले तथा हमारे पक्ष का समर्थन करे, आपने वास्तव में हमारी बड़ी सेवा की है। हमको विश्वास है कि मुरारराव घोरपडे, उदाजी चव्हाण अप्पाजी गुरो तथा अन्य व्यक्ति भी शीघ्र ही हमारा साथ देंगे। पवारजर्गो न भी एक भिन्न दिशा में अपना काम सोत्साह प्रारम्भ कर दिया है। इस प्रकार युद्ध के लिए समय उपयुक्त है। हम केवल आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि यथासम्भव शीघ्र ही आप हमारे पास आ जायें।'[७] यह उस षड्यन्त्र का प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसकी रचना निजामुल्मुल्क शाहू के विरुद्ध कर रहा था। सम्भाजी इस प्रकार जाल में फँसकर निजामुल्मुल्क के हाथों का एक यन्त्र बन गया था। क्या सम्भाजी यह सब मराठा स्वातन्त्र्य को स्थिर रखने के लिए कर रहा था?

वस्तुत सम्भाजी के पास एक भी योग्य व्यक्ति न था और न स्वयं उसमें वे गुण थे जो एक राजा को अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक हैं। शाहू की वर्द्धमान जनप्रियता तथा समृद्धि से ईर्ष्यालु होकर उसने नीच षड्यन्त्रों तथा राजद्रोह का आश्रय ग्रहण किया जिसने अन्त में उसका ही नाश कर दिया। शाहू ने यथाशक्ति सम्भाजी को इस पाप मार्ग से दूर रखने का प्रयत्न किया। बाजीराव को कर्नाटक भेजते हुए शाहू ने ३० दिसम्बर, १७२५ ई० को सम्भाजी के समक्ष उसके सहयोग के लिए निम्नलिखित शर्तें भी प्रस्तुत की थीं

"हम दोनों को पूर्ण सहयोग के साथ यथाशक्ति यह प्रयत्न करना है कि हम मुगल प्रदेशों को पुन हस्तगत करके अपने पूर्वजों की भाँति उनको अपने स्वराज्य में मिला लें। आप दक्षिण में काम कर सकते हैं, हम उत्तर में अपना काम करेंगे। उत्तर में जो कुछ भी हमें मिलेगा उसका उचित भाग हम आपको देंगे। इसी प्रकार जो कुछ आपको दक्षिण में मिले, उसका उचित भाग आप हमें दें।'[८]

परन्तु सम्भाजी ने शाहू से सहमत होना बुद्धिमत्ता न समझा और वह

---

[७] डल्वी कृत हिस्ट्री आव द जाधव फमिली, ८१।

[८] पत्रे यादी, १४।

को जारी रखा। वे चन्द्रसेन तथा ऊदाजी चह्वाण सदृश व्यक्तियों की सहायता से निजामुल्मुल्क के हाथों की कठपुतली बन गये। सेनापति के एक कार्यकर्ता रायजी मल्हार को २३ जुलाई १७२१ ई० को लिखा हुआ सम्भाजी का एक पत्र इस षडयन्त्र की स्पष्ट व्याख्या करता है 'चन्द्रसेन जाधव ने आपको पहले ही सूचित कर दिया होगा कि हमारे पक्ष में उसकी कितनी गम्भीर रुचि है तथा हमारे पक्ष के समर्थनार्थ वह क्या प्रयास कर रहा है। आप भी हमारे प्रति अपने महान अनुराग के कारण उसी उद्देश्य के निमित्त अपना यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है।' [५]

स्पष्ट है कि शाहू के विरुद्ध इस प्रकार के षडयन्त्र १७२१ ई० से ही रचे जा रहे थे। परन्तु १७२५ ई० से पूर्व अर्थात निजामुल्मुल्क के द्वारा सम्भाजी के पक्ष के स्पष्ट समर्थन से पूर्व ये षडयन्त्र वास्तविक शक्ति न प्राप्त कर सके। प्रसिद्ध रामचन्द्र अमात्य का पुत्र भगवन्तराव अमात्य भी शाहू के विरुद्ध इन षड्यन्त्रों में सम्मिलित हो गया। शाहू के एक स्वामिभक्त नायक नीलकण्ठराव जाधव को एक युद्ध में निजामुल्मुल्क ने बन्दी बना लिया था। २३ अगस्त १७२५ ई० की शाहू की एक आज्ञा में नीलकण्ठराव को मुक्त कराने की चिन्ता का वर्णन है। २५ नवम्बर को बाजीराव ने शाहू को इस आशय का एक पत्र लिखा 'मैं आपके अभिप्राय से पूर्णतया परिचित हूँ कि पण्ढरपुर के निकट सैन्य संग्रह द्वारा निजामुल्मुल्क के मन में सन्देह न उत्पन्न होने दूं किन्तु यह मेरे कर्नाटक अभियान के निमित्त आवश्यक है तथा मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा कोई कार्य नहीं कर रहा हूँ जिससे निजामुल्मुल्क रुष्ट हो जाये। तथापि मैं अपनी प्रबल आशंका आपको अवश्य प्रकट करूँगा कि लक्षण प्रतिकूल हैं तथा मुझे संघर्ष की आशंका है।' [६]

फरवरी १७२६ ई० में सम्भाजी ने चन्द्रसेन को लिखा 'आपके पत्र को प्राप्त कर तथा यह जानकर हमको बहुत प्रसन्नता हुई कि आपने निजामुल्मुल्क को इस बात पर राजी कर लिया है कि वह हमारे पक्ष का समर्थन करेगा तथा प्रत्येक उपाय से उसको उन्नत करेगा। आपके मूल्यवान प्रस्ताव के अनुसार हम दक्षिण की ओर ठीक तुंगभद्रा नदी तक एक अभियान पर गये। हमारे साथ हिन्दुराव तथा सगुणबाई घोरपडे तथा पीरजी और रानोजी भी थे। चूंकि श्रीपतराव प्रतिनिधि ने हमारे विरुद्ध प्रयाण किया है कृपया शीघ्र ही हमारी सहायतार्थ आ जायें। निजामुल्मुल्क ने अन्नानी की ओर प्रयाण किया है और

---

५ राजवाड़े जिल्द ३ पृ० ५५६।
६ मराठा के पत्र १४, १५७।

हमसे हमारी सेना भेजने के लिए कहा है। अत हमने अपने मन्त्री नीलकण्ठ त्र्यम्बक को भेज दिया है तथा उसको आज्ञा दी है कि वह शीघ्र ही निजाम के साथ सम्मिलित हो जाय। इस समय हम तोगल मे आपम मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम स्वय इस समय निजाम के साथ सम्मिलित नहीं हो सकते, क्योकि पेशवा तथा प्रतिनिधि दोनो हमसे युद्ध करने आ रहे हैं। निजामुल्मुल्क को इस बात पर राजी करके कि वह शाहू से सम्बन्ध विच्छेद कर ले तथा हमारे पक्ष का समर्थन करे आपने वास्तव मे हमारी बडी सेवा की है। हमको विश्वास है कि मुरारराव घोरपडे, ऊदाजी चव्हाण, अप्पाजी सुर्वे तथा अन्य व्यक्ति भी शीघ्र ही हमारा साथ देंगे। ऐवाजखाँ ने भी एक भिन्न दिशा मे अपना कार्य सोत्साह प्रारम्भ कर दिया है। इस प्रकार युद्ध के लिए समय उपयुक्त है। हम केवल आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि यथासम्भव शीघ्र ही आप हमारे पास आ जायें।"[७] यह उस षडयन्त्र का प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसकी रचना निजामुल्मुल्क शाहू के विरुद्ध कर रहा था। सम्भाजी इस प्रकार जाल मे फँसकर निजामुल्मुल्क के हाथो का एक यन्त्र बन गया था। क्या सम्भाजी यह सब मराठा स्वातन्त्र्य को स्थिर रखने के लिए कर रहा था?

वस्तुत सम्भाजी के पास एक भी योग्य व्यक्ति न था और न स्वय उसमे वे गुण थे जो एक राजा को अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक हैं। शाहू की वर्द्धमान जनप्रियता तथा समृद्धि से ईर्ष्यालु होकर उसने नीच षडयन्त्रो तथा राजद्रोह का आश्रय ग्रहण किया जिसने अन्त मे उसका ही नाश कर दिया। शाहू ने यथाशक्ति सम्भाजी को इस पाप मार्ग से दूर रखने का प्रयत्न किया। बाजीराव को कर्नाटक भेजते हुए शाहू ने ३० दिसम्बर, १७२५ ई० को सम्भाजी के समक्ष उसके सहयोग के लिए निम्नलिखित शर्तें भी प्रस्तुत की थी

'हम दोनो को पूर्ण सहयोग के साथ यथाशक्ति यह प्रयत्न करना है कि हम मुगल प्रदेशो को पुन हस्तगत करके अपने पूर्वजो की भाँति उनको अपने स्वराज्य मे मिला लें। आप दक्षिण मे कार्य कर सकते है, हम उत्तर मे अपना कार्य करेंगे। उत्तर मे जो कुछ भी हमे मिलेगा उसका उचित भाग हम आपको देंगे। इसी प्रकार जो कुछ आपको दक्षिण मे मिले, उसका उचित भाग आप हमे दें।'[८]

परन्तु सम्भाजी ने शाहू से सहमत होना बुद्धिमत्ता न समझा और वह

---

[७] डफ्वी कृत हिस्ट्री आव द जाधव फमिली, ८१।

[८] पत्रे यादी, १४।

निजामुलमुल्क के स्वार्थी कार्यकर्ताओं के हाथों स्वेच्छा से खेलता रहा। इनमें उसके परामर्शदाता थे उसके मन्त्री नीलकण्ठ त्र्यम्बक प्रभु महादार तथा शाहू का एक अन्य प्रभावशाली अधिकारी उसका राजन चिमनाजी दामोदर मोघे। चिमनाजी २० वर्ष का राजभक्त सेवक था तथा उसको शाहू ने यह अधिकार तक दिया था कि वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से निजामुलमुल्क के साथ यह बातचीत करके उसको उस हानिकारक मार्ग से दूर रखने का प्रयत्न करे जिसका अनुसरण वह कर रहा था। ३० जुलाई १७२६ ई० के एक पत्र में वर्णन है कि शाहू ने चिमनाजी को निजाम से मिलने के लिए भी भेजा था।[९]

चिमनाजी दामोदर को यह व्यर्थ का विश्वास था कि युद्ध तथा कूटनीति दोनों में वह बाजीराव के तुल्य सिद्ध हो सकता है तथा उसके प्रति घृणा के कारण ही वह निजामुलमुल्क के जाल में फंस गया। निजामुलमुल्क ने उसको प्रलोभन देकर सम्भाजी द्वारा प्रदत्त पेशवा पद को स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। चिमनाजी ने प्रसन्नतापूर्वक शाहू का पक्ष त्याग दिया तथा सम्भाजी की सेवा करने के लिए सहमत हो गया यद्यपि अन्त में इस कार्य से उसको भारी हानि उठानी पड़ी। शाहू को कदापि भी यह सन्देह न था कि उसके विरुद्ध प्रबल विरोध की रचना हो रही है। किन्तु कर्नाटक अभियान में व्यस्त बाजीराव की अनुपस्थिति के काल में १७२६ ई० के अन्त में वह इस विपत्ति के प्रति सहसा जाग्रत हो गया।

१७२६ ई० के दशहरा के लगभग (२४ सितम्बर) सम्भाजी कोल्हापुर से चलकर निजामुलमुल्क के साथ हो गया। उसकी माता राजसबाई साधारण प्रशासन के संचालन के लिए पीछे ही ठहर गयी थी। वह लगभग ३ वर्षों तक अपनी राजधानी से बाहर रहा।[१०] शाहू के विरुद्ध शत्रुवत कार्यवाही विभिन्न दिशाओं में तुरन्त ही प्रारम्भ हो गयी। १७२६-१७२७ ई० की वसन्त ऋतु में संगमनेर के समीप तुकताजखां ने घोर अत्याचार किये। निजामुलमुल्क बहुत समय तक प्रतिनिधि तथा सुमन्त के माध्यम से शाहू के प्रति अपनी सद्भावना और स्नेह प्रदर्शित करता रहा। उसका कहना था कि शाहू के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से उसको कुछ नहीं कहना था परन्तु समस्त उत्पात का मूल कारण उसका पेशवा था। तुकताजखां के साथ निजाम के अन्य अधिकारी—यथा निम्बालकर राव रम्भा और उसका पुत्र जानोजी तथा उदाजी चह्वाण—सतारा के समीप उत्पात मचा रहे थे। सतारा के कुछ मील पूरब में स्थित

---

९ सतारा पत्र २८।

१० राजवाडे की पुस्तकें, खण्ड ६, नं० ९४ तथा ९६।

रहीमतपुर गाव पर उन्होंने आक्रमण भी किया। यहा पर अगस्त १७२६ ई० के एक युद्ध मे शाहू का एक सरदार रायजी जाधव मारा गया। चन्द्रसेन के भाई शम्भूसिंह तथा कोल्हापुर के सेनापति पीरजी घोरपडे को शाहू न उसके सहायक आनापत धरराव निम्बालकर सहित अपनी ओर मिला लिया। धनाजी जाधव के वृद्ध सेवक अनुभवी व्यासराव ने कोल्हापुर के पक्ष के अन्य व्यक्तियो को इसी प्रकार पक्ष-त्याग पर तैयार कर लिया जिससे शाहू को बहुत लाभ हुआ। १७२७ ई० के आरम्भ मे पूना के जिले मे वास्तविक शासक के रूप मे सम्भाजी ने दौरा किया। वहाँ के स्थानीय अधिकारियो से उसने अधीनता स्वीकार करायी तथा उन्हे सनदें प्रदान की। जब यह वृत्तान्त शाहू के काना तक पहुँचा तो उसको बहुत आश्चय हुआ और अब वह उस षडयन्त्र को भी समझ गया जिसकी रचना निजामुल्मुल्क उसके विरुद्ध कर रहा था। अत उसन अपने कुछ उत्तरवर्ती सरदारो को बिना एक क्षण के विलम्ब के उसकी सहायताथ उपस्थित होने के हेतु पत्र लिखे क्योकि उसकी समस्त सेनाएँ इस समय कर्नाटक मे बहुत दूर थी।[11]

सवाई जयसिंह को लिखे गये निम्नलिखित पत्र से निजामुल्मुल्क के दुष्ट मनोरथो की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है 'बारम्बार सम्राट को यह सूचना दी गयी है कि मराठे मेरे ही सुझाव तथा प्रोत्साहन पर गुजरात तथा मालवा पर धावे करते है। इस तरह के गलत कार्यो को रोकने के मेरे समस्त उपाय विफल हुए है। मैंने बारम्बार शाहू राजा को लिखा तथा उसको सत्परामर्श भी दिया कि मराठो को गुजरात तथा मालवा को नही लूटना चाहिए। परन्तु इसका परिणाम कुछ भी नही हुआ है तथा मराठो न अपनी धावे करने की नीति को नही छोडा है। अत सम्राट के आज्ञा पालन के उद्देश्य से मैंने अपने पक्ष मे राजा सम्भाजी को मिला लिया है जो शाहू का प्रतिद्वन्द्वी है। मैंन उसे अपनी सहायता का पूर्ण विश्वास दिलाते हुए शाहू को दण्ड देने तथा उसका सर्वनाश कर देने के कार्य म लगा दिया है। शत्रु की सेना का सर लश्कर सुल्तानजी निम्बालकर यहाँ आकर मुझसे मिला है और मैंन उसको सम्भाजी की सेना का प्रमुख अधिकारी नियुक्त कर दिया है। ईश्वर की कृपा से मुझे आशा है कि इसी प्रकार शाहू के अन्य पक्षपाती भी उसके पक्ष का त्याग कर देंगे। चूकि इस समय सम्राट के द्वारा लिखे हुए अनेक पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं जिनमे मुझको आज्ञा दी गयी है कि मैं शाहू का दमन कर दू, मैंने इस महान साहसिक कार्य को अगीकार कर लिया है ताकि सम्राट को

[11] सतारा के पत्र, २५, २६।

सन्तोष हो जाय और मेरी निष्ठा तथा राजभक्ति का प्रमाण भी उसको मिल जाये। अन्यथा मेरे लिये यह बात अत्यन्त अनावश्यक थी कि मैं मराठों के साथ अपने सम्बन्ध भंग कर दूं। इस समय तो समस्त शाही प्रदेश को स्थायी रूप से उन्होंने अपने चंगुल में फँसा लिया है और उनकी शक्ति तथा सत्ता सीमा से बाहर हो गयी है। मैंने उनको युद्ध का आह्वान दे दिया है क्योंकि ईश्वर की दया तथा सम्राट की कृपा पर मुझको पूरा भरोसा है।[12]

३ पालखेड में निजाम का मानमर्दन—इस संकट के अवसर पर शाहू के परामर्शकों की भिन्न भिन्न सम्मतियां थीं। एकमात्र साहसी तथा अग्र-दृष्टि युक्त पुरुष जो परिस्थिति की रक्षा कर सकता था वहाँ से बहुत दूर था तथा जो शाहू के निकट थे उनका यह परामर्श था कि वह निजामुल्मुल्क के साथ नम्र तथा विवेकपूर्ण उपायों द्वारा समझौता कर ले। अपने को निर्बल अनुभव कर शाहू ने उनके परामर्श को स्वीकार कर लिया तथा अपने सुमन्त और प्रतिनिधि को निजाम के साथ शान्तिमय समझौता करने की आज्ञा प्रदान कर दी। निजाम ने प्रस्ताव किया कि उचित चौथ के धन को वह नकद चुका देगा यदि विभिन्न स्थानों पर इस कार्य के निमित्त नियुक्त मराठे कार्यकर्ता वापस बुला लिये जायें। साथ ही उसने कोंकणस्थ पेशवा को दूषित प्रभाव से मुक्त कर देने का अपना मैत्रीपूर्ण तथा लाभदायक परामर्श भी शाहू को भेजा।

शाहू नकद चौथ चुकाने के प्रस्ताव को लगभग स्वीकार करने वाला ही था कि बाजीराव वापस आ गया और इस विषय पर अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए उसने सविस्तार बताया कि उस मार्ग के अनुसरण द्वारा बाह्यस्थ जिलों पर जो पहले से ही अधीन कर लिये गये थे मराठों का सम्पूर्ण नियन्त्रण नष्ट हो जायेगा। जब शाहू के दरबार में यह वार्तालाप हो रहा था उसको सूचना मिली कि चौथ का प्रस्तावित नकद चुकारा भी नहीं किया जा सकता क्योंकि मराठा राज्य के शिरोभूत व्यक्ति के रूप में अब सम्भाजी का उस पर अधिकार था। इसका स्पष्ट अर्थ मराठों के स्वतन्त्र राजा के रूप में शाहू की स्थिति के प्रति संकट उपस्थित होना था अतएव क्रोध में आकर उसने बाजीराव को निजामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की आज्ञा प्रदान की। इस कार्य के निमित्त २७ अगस्त १७२७ ई० को बाजीराव ने सतारा से प्रस्थान किया।

१३ अक्तूबर को शाहू ने निजामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर

---

[12] सर जदुनाथ सरकार द्वारा 'इस्लामिक कल्चर' में मुद्रित अनुवाद तथा मूल।

दी।[13] निजाम न तुरत इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। उसन अपनी गति को सवथा गुप्त रखा। यह बताकर कि वह औरगाबाद जा रहा है उसने जुन्नार तथा पूना की ओर प्रयाण किया। १७२७ ई० के आरम्भ मे उसने अपना पडाव बीड मे डाला और जून स अगस्त तक के तीन मास उसने शहर म व्यतीत किय। २१ सितम्बर १७२७ ई० को पुरदर ने बाजीराव को सूचना दी कि सुल्तानजी निम्बालकर के मागदशन म निजामुल्मुल्क सहसवाड के रास्त सतारा की ओर प्रयाण कर रहा है। इस सकट-वेला म केवल बाजीराव शाहू का प्रबल समथक था। उसका सेनापति खाडराव दाभाडे वृद्ध था और पारिवारिक झगडा म फँसा हुआ था। इसके अतिरिक्त दाभाडे को पेशवा से द्वेष भी था, क्योकि पेशवा न सेनापति के अधिकृत कतव्यो का सवथा अपहरण कर रखा था। दोनो ओर स सनिक तयारिया प्रारम्भ हो गयी।

तुकताजखा और एवाजखा निजामुल्मुल्क के दो योग्य सहायक अधिकारी थे तथा बाजीराव का विश्वास मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया पर था। सिंधिया न पेशवा से विश्वासपूवक कहा—"मैं किसी भी घटना के लिए तयार हूँ—प्राणो की बलि देने का भी, यदि इसकी आवश्यकता हुई। ईश्वर सबका सरक्षक है। पवार-बधु भी समान रूप से उसम निष्ठा रखते थे तथा पूण स्वामिभक्ति स उन्होने बाजीराव की सेवा भी की। ऐवाजखा ने औरगाबाद से पूना की ओर कूच किया, परन्तु सिन्नार के समीप उसका पाला तुकोजी पवार स पड गया। सिन्नार का देशमुख कुवरबहादुर मुगल-सेवा म एक पुराना जमींदार था। कुवरबहादुर परास्त हुआ तथा उसको पेशवा के झण्डे का साथ देना पडा। फतहसिंह तथा रघुजी भोसले ने चन्द्रसेन जाधव का सामना किया तथा काफी रक्तपात के बाद उसको परास्त कर दिया।

निजामुल्मुल्क ने पूना जिले को अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया था। उसने अपने विश्वस्त मराठा नायको द्वारा इसको पूणतया रौंद डाला। उन्होने लोहगढ पर आक्रमण किया तथा चिचवाड और पूना तक जा पहुँचे। शाहू की गढस्थ सेना ने अधिकाश थानो को त्याग दिया और सुरक्षा के लिए विभिन्न दिशाओ म भाग गयी। सम्भाजी के साथ स्वय निजामुल्मुल्क ने जुन्नार से पूना के जिले म प्रवेश किया तथा माग म स्थित अधिकाश दुर्गीकृत स्थानो पर अधिकार प्राप्त करता हुआ पूना पहुँच गया और यहाँ पर उसन निवास किया। यहाँ फरवरी १७२७ ई० मे रामनगर के सिसोदिया वश की एक राजपूत कन्या स सम्भाजी का विवाह हुआ तथा यही पर वह अधिकृत रूप स

---

[13] सतारा के पत्र ३०।

सन्तोष हो जाय और मेरी निष्ठा तथा राजभक्ति का प्रमाण भी उसको मिल जाये। अन्यथा मेरे लिये यह बात अत्यन्त अनावश्यक थी कि मैं मराठों के साथ अपने सम्बन्ध भंग कर दूं। इस समय तो समस्त शाही प्रदेश को स्थायी रूप से उन्होंने अपने चंगुल में फंसा लिया है और उनकी शक्ति तथा सत्ता सीमा से बाहर हो गयी है। मैंने उनको युद्ध का आह्वान दे दिया है क्योंकि ईश्वर की दया तथा सम्राट की कृपा पर मुझको पूरा भरोसा है।[12] —

३ पालखेड में निजाम का मानमर्दन—इस संकट के अवसर पर शाहू के परामर्शकों की भिन्न भिन्न सम्मतियां थीं। एकमात्र साहसी तथा अग्र-दृष्टि युक्त पुरुष, जो परिस्थिति की रक्षा कर सकता था वहां से बहुत दूर था तथा जो शाहू के निकट थे उनका यह परामर्श था कि वह निजामुल्मुल्क के साथ नम्र तथा विवेकपूर्ण उपायों द्वारा समझौता कर ले। अपने को निर्बल अनुभव कर शाहू ने उनके परामर्श को स्वीकार कर लिया तथा अपने सुमन्त और प्रतिनिधि को निजाम के साथ शान्तिमय समझौता करने की आज्ञा प्रदान कर दी। निजाम ने प्रस्ताव किया कि उचित चौथ के धन का वह नकद चुका देगा, यदि विभिन्न स्थानों पर इस कार्य के निमित्त नियुक्त मराठे कार्यकर्ता वापस बुला लिये जायं। साथ ही उसने कोंकणस्थ पेशवा के दूषित प्रभाव से मुक्त कर देने का अपना मैत्रीपूर्ण तथा लाभदायक परामर्श भी शाहू को भेजा।

शाहू नकद चौथ चुकाने के प्रस्ताव को लगभग स्वीकार करने वाला ही था कि बाजीराव वापस आ गया और इस विषय पर अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए उसने सविस्तार बताया कि उस मार्ग के अनुसरण द्वारा बाह्यस्थ जिलों पर जो पहले से ही अधीन कर लिये गये थे मराठों का सम्पूर्ण नियन्त्रण नष्ट हो जायगा। जब शाहू के दरबार में यह वार्तालाप हो रहा था, उसको सूचना मिली कि चौथ का प्रस्तावित नकद चुकारा भी नहीं किया जा सकता क्योंकि मराठा राज्य के शिरोभूत व्यक्ति के रूप में अब सम्भाजी का उस पर अधिकार था। इसका स्पष्ट अर्थ मराठों के स्वतन्त्र राजा के रूप में शाहू की स्थिति के प्रति संकट उपस्थित होना था अतएव क्रोध में आकर उसने बाजीराव को निजामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की आज्ञा प्रदान की। इस कार्य के निमित्त २७ अगस्त १७२७ ई० को बाजीराव ने सतारा से प्रस्थान किया।

१३ अक्तूबर को शाहू ने निजामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर

---

[12] सर जदुनाथ सरकार द्वारा 'इस्लामिक कल्चर' में मुद्रित अनुवाद तथा मूल।

दी।[13] निजाम ने तुरत इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। उसने अपनी गति को सर्वथा गुप्त रखा। यह बताकर कि वह औरगाबाद जा रहा है, उसने जुन्नार तथा पूना की ओर प्रयाण किया। १७२७ ई० के आरम्भ मे उसने अपना पडाव बीड मे डाला और जून से अगस्त तक के तीन मास उसने धरूर मे व्यतीत किये। २१ सितम्बर, १७२७ ई० को पुरदरे ने बाजीराव को सूचना दी कि सुल्तानजी निम्बालकर के मार्गदर्शन मे निजामुलमुल्क महसवाड के रास्ते सतारा की ओर प्रयाण कर रहा है। इस सकट-वेला मे केवल बाजीराव शाहू का प्रबल समर्थक था। उसका सेनापति खाडेराव दाभाडे वृद्ध था और पारिवारिक झगडो मे फँसा हुआ था। इसके अतिरिक्त दाभाडे को पेशवा से द्वेष भी था, क्योंकि पेशवा ने सेनापति के अधिकृत कर्तव्यो का सर्वथा अपहरण कर रखा था। दोनो ओर से सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयी।

तुर्कताजखाँ और एवाजखाँ निजामुलमुल्क के दो योग्य सहायक अधिकारी थे तथा बाजीराव का विश्वास मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया पर था। सिंधिया ने पेशवा से विश्वासपूर्वक कहा— "मैं किसी भी घटना के लिए तैयार हूँ—प्राणो की बलि देने को भी, यदि इसकी आवश्यकता हुई। ईश्वर सबका सरक्षक है।" पवार-बंधु भी समान रूप से इसमे निष्ठा रखते थे तथा पूर्ण स्वामिभक्ति से उन्होने बाजीराव की सेवा भी की। ऐवाजखाँ ने औरगाबाद से पूना की ओर कूच किया परन्तु सिन्नार के समीप उसका पाला तुकोजी पवार से पड गया। सिन्नार का देशमुख कुवरबहादुर मुगल-सेवा मे एक पुराना जमीदार था। कुवरबहादुर परास्त हुआ तथा उसको पेशवा के झण्डे का साथ देना पडा। फतहसिंह तथा रघुजी भोसले ने चन्द्रसेन जाधव का सामना किया तथा काफी रक्तपात के बाद उसको परास्त कर दिया।

निजामुलमुल्क ने पूना जिले को अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया था। उसने अपने विश्वस्त मराठा नायको द्वारा इसको पूर्णतया रौंद डाला। उन्होने लोहगढ़ पर आक्रमण किया तथा चिचवाड और पूना तक जा पहुँचे। शाहू की गढस्थ सेना ने अधिकाश थानो को त्याग दिया और सुरक्षा के लिए विभिन्न दिशाओ मे भाग गयी। सम्भाजी के साथ स्वय निजामुलमुल्क ने जुन्नार से पूना के जिले मे प्रवेश किया तथा मार्ग मे स्थित अधिकाश दुर्गीकृत स्थानो पर अधिकार प्राप्त करता हुआ पूना पहुँच गया और यहाँ पर उसने निवास किया। यहाँ फरवरी १७२७ ई० मे रामनगर के सिसोदिया वश की एक राजपूत कन्या से सम्भाजी का विवाह हुआ तथा यही पर वह अधिकृत रूप से

[13] सतारा के पत्र, ३०।

मराठा का छत्रपति घोषित किया गया। फजल बेग को पूना का अधिकारी नियुक्त कर निजामुल्मुल्क खानी पारगाँव, पाटस, सूपा तथा बारामती को गया तथा अपने उपयोगी तोपखाने के द्वारा उसने इन स्थानों पर त्राहि त्राहि मचा दी।

इसके विपरीत बाजीराव के पास कोई तोपखाना न था। उसका आश्रय केवल गनीमी कावा (गुरिल्ला युद्ध) का साधारण चालें था—अर्थात लम्बे प्रयाण तथा भिन्न भिन्न स्थानों पर शत्रु पर आकस्मिक झपट। सितम्बर में पूना से चलकर उसने पुतम्बा के समीप गोदावरी नदी को पार किया तथा ५ नवम्बर को ऐवाजखाँ को परास्त करके जालना और सिधखेड को लूट लिया। इसके बाद बाजीराव बरार होकर आगे बढ़ा और माहुर, मगरूल तथा वाशिम को नष्ट कर दिया। तदुपरान्त उत्तर पश्चिम का मार्ग लेकर उसने खानदेश में प्रवेश किया। उसने कोकरमुण्डा के स्थान पर ताप्ती नदी को पार किया और विद्युत वेग से पूरबी गुजरात में होकर जनवरी १७२८ ई० में अलीमोहन या छोटा उदयपुर पहुँच गया। गुजरात के सूबेदार सर बुलन्दखाँ ने निजाम के विरुद्ध उसका साथ दिया। यहाँ पर यह सूचना पाकर कि निजाम पूना की ओर मुड गया है बाजीराव ने कूटनीति का आश्रय लिया और यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह उत्तर में मुख्य मुगल बाजार बुरहानपुर को लूटने जा रहा है किन्तु १४ फरवरी को वह खानदेश में बेतवाड के स्थान पर जा पहुँचा।

बाजीराव का यह अनुमान ठीक ही निकला कि बुरहानपुर तथा औरंगाबाद पर उसके आकस्मिक धावे से निजामुल्मुल्क अपने उत्तरी प्रदेशों की रक्षा के हेतु पूना छोड देगा। इस हेतु उसने चिमनाजी अप्पा को निजाम की गतिविधि के अवलोकनार्थ नियुक्त कर दिया था और आदेश दिया था कि अपनी रण कुशल चालों के द्वारा वह निजाम को बाजीराव के स्थान के समीप खींच लाये। चिमनाजी अप्पा तथा शाहू ने इस बीच में पुरन्दर के गढ़ में अपना स्थान जमा लिया था। इसके दो कारण थे—एक वे सुरक्षित रहें और दूसरे वे शत्रु की गतिविधि का ध्यान रख सकें। निजामुल्मुल्क को अब पता चला कि पूना पर अधिकार रखना उसके लिए अत्यन्त हानिकारक है। उसके मित्रों सम्भाजी तथा चन्द्रसेन के पास न तो योग्य सेनाएं थीं और न पर्याप्त धन। वे उसकी प्रगति में विघ्न सिद्ध हो रहे थे तथा उसके धन का भी दुरुपयोग कर रहे थे। जब उसने सुना कि उसके उत्तरी प्रदेशों का नाश हो रहा है तो उसने लगभग फरवरी के मध्य में पूना छोड दिया तथा बाजीराव के सर्वनाश के उद्देश्य से गोदावरी की ओर बढ़ा ताकि किसी खुली हुई समतल भूमि में वह उसकी शीघ्रगामी सेनाओं से युद्ध करे और उसका नाश कर दे क्योंकि उसका तोपखाना ऐसी ही भूमि पर अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर सकता था।

अत्यन्त सावधानी तथा जागरूकता से दोनो पक्ष अपनी-अपनी चाले चलते रहे। परन्तु मराठे अधिक सावधान तथा वेगवान सिद्ध हुए। उनके गुप्तचर शत्रु की योजनाओ के सम्बन्ध म उपयोगी जानकारी प्राप्त कर लेते तथा शीघ्रता से उसको विभिन्न सरदारो के पास भेज देते। उन्होने निजाम को असावधान ही रखा तथा आखेट के पशु की भाति उसको दुस्तर स्थिति म फँसा लिया। निजामुल्मुल्क ने भी आगे बढने की गति को तीव्र करने के लिए अपने भारी तोपखाने को पीछे छोड दिया ताकि शीघ्रातिशीघ्र गोदावरी को पार करके औरगाबाद के समीप बाजीराव स युद्ध करे। २५ फरवरी को अपने प्रयाण माग मे निजाम को ज्ञात हुआ कि पालखेड के समीप वह एक दुगम स्थान म फँस गया है। यह स्थान औरगाबाद के पश्चिम म लगभग २० मील पर है और बजपुर स करीब १० मील पूरब म है। यह दुगम पहाडी स्थान है। यहा पर न पानी मिल सकता है और न किसी प्रकार की अन्य सामग्री। यहाँ पर मराठा फौजो ने उसको समस्त दिशाओ से घेर लिया। बाह्य जगत से उसका सम्पक सवथा नष्ट हो गया और उसको शीघ्र पता चल गया कि उस दुगम स्थान से न तो वह अपने को बचा सकता है और न किसी सुरक्षित स्थान म भागकर ही पहुँच सकता है। बाजीराव ने इस परिस्थिति के विषय म इस प्रकार लिखा है "आज मैं नवाब के दृष्टिक्षेत्र मे आ गया हूँ। हम दोनो के बीच मे केवल चार मील की दूरी है। कृपया मुझको वह उत्तम माग बतायें जिससे मैं उसको गतिहीन कर सकू। समस्त सनिको को अत्यन्त सावधान रहने का आदेश दे दें तथा बिना एक क्षण के विलम्ब के मेरे पास आ जाय।" मल्हारराव होल्कर को यह काय सौंपा गया कि वह निजाम की गतिविधियो पर ध्यान रखे और उसके आने जाने के समस्त मार्गों को बन्द कर दे।

ऐवाजखाँ तथा चन्द्रसेन दोनो घटनाचक्र की गम्भीरता को समझ गये। उन्होने बाजीराव से सहायता की प्राथना की क्योकि निजामुल्मुल्क के लिए परिस्थिति प्रत्येक दिन निराशापूण होती जा रही थी। कुछ भी सहायता देने के पहले बाजीराव ने शरीरबधक मागे। अब दोनो दल मुगीशिवगाँव की ओर चल दिये जहाँ पर अत्यधिक मात्रा म जल तथा भोज्य सामग्री नवाब को दी गयी। ६ माच १७२९ ई० को एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसकी शर्तें ये थी

१ छ मुगल सूबो के शासन के लिए समस्त प्रशासनीय तथा कूटनीतिक कार्यों का सम्पादन मराठो द्वारा होगा जो शाही हितो की पूणतया रक्षा करेंगे।

२ राजनीतिक काय-सम्पादन के लिए मध्यवर्ती साधन के रूप म आनन्द

राव सुमन्त को न नियुक्त किया जाये क्योंकि अब पेशवा को उस पर विश्वास नही है।

३ राजा सम्भाजी पर से नवाब अपना सरक्षण हटा ले तथा उसको पन्हाला जाने की आज्ञा दे।

४ पूना, बारामती खेड, तालेगाव तथा अन्य स्थान जिन पर नवाब ने अधिकार कर लिया है पुन शाहू को दे दिये जायें।

५ स्वराज्य तथा सरदेशमुखी के पूव प्रदत्त पट्टा का पुष्टीकरण किया जाय।

६ बलवन्तसिंह (?) तथा अन्य व्यक्तिया को उनकी जागीरें वापस द दी जायें।

७ कृष्णा तथा पचगगा नदिया के बीच म जो जागीर राजा शाहू ने सम्भाजी को दे रखी थी, उनके अतिरिक्त और कोई जागीर उसको न दी जाये।

८ सुल्तानजी निम्बालकर को जिसने नवाब के हित मे मराठा पक्ष त्याग दिया था, आगे कोई दुष्टता न करने दी जाय।

९ वे कर जिनका सग्रह सम्भाजी ने अन्यायपूण ढग स कर लिया था, राजा शाहू के पास जमा कर दिये जाये।

१० शाहगढ का वतन तथा पाटिलकी यथापूव पिलाजी जाधव के पास रहे।

११ मराठा स्वराज्य स जिन व्यक्तिया को तुकताजखा ने बन्दी रखा था उन्हे वापस भेज दिया जाये।

१२ पेटा निम्बाने के पाच गाव पवार बन्धुओ कृष्णाजी, ऊदाजी तथा केरोजी का अनुदान म दिये जाय।

१३ राजा सम्भाजी को कृष्णा नदी के उत्तर क जिलो स चौथ-सग्रह करने से वचित रखा जाय।[१४]

जब ये शर्तें निश्चित हो गयी, बाजीराव तथा निजाम परस्पर मिले तथा वस्त्रो और उपहारो क विधिपूवक विनिमय द्वारा उन्होने उनका प्रमाणीकरण कर दिया। इस प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध की हार्दिक भावना पूण रूप से पुन

[१४] देखिए पेशवा दफ्तर, १५, ८६, पृ० ८९। चार महत्त्वहीन धाराएँ छोड दी गयी हैं।

स्थापित हो गयी। यह इन दो सरदारों का पाँचवाँ सम्मिलन था। चौथा सम्मिलन औरंगाबाद में फतहखेर्डा के युद्ध के बाद हुआ था।

पालखेड के अभियान में बाजीराव ने निजामुल्मुल्क को सफलतापूर्वक परास्त कर दिया। इस विजय के मराठों के हित में महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले जिनके निमित्त एक वर्ष के लगातार संघर्ष में मराठों ने कठोर परिश्रम तथा अनेक चिन्ताओं को सहन किया था। मुख्य उद्देश्य जो उन्होंने प्राप्त कर लिया, वह था निजामुल्मुल्क द्वारा मराठा स्वत्वों का विधिपूर्वक स्वीकरण, जिनको बहुत पहले सैयदों ने प्रमाणित कर दिया था। अब आसफजाह ने निर्विवाद रूप में इनको स्वीकार कर लिया। अब वह स्पष्ट रूप से भविष्य में सम्भाजी का समर्थन न कर सकता था और न शाहू के इस स्वत्व का तिरस्कार कर सकता था कि वह मराठा राज्य का प्रमुख व्यक्ति है। निजाम की शक्ति निश्चय ही पूर्णतया भंग न हो सकी थी और न यह मराठा नीति का स्वीकृत उद्देश्य ही था। विरोधी के रूप में बाजीराव की क्षमता को निजामुल्मुल्क पूरी तरह समझ गया तथा उसको यह भी मालूम हो गया कि भविष्य में बाजीराव की ओर से उसे क्या अपेक्षा रखनी पड़ेगी। पालखेड के अल्पकालीन परन्तु सफल काण्ड का यह विशेष परिणाम था। इसमें बाजीराव ने उस समय के सर्वोपरि रण-कुशल पुरुष को परास्त किया था जो आयु में उससे तीस वर्ष बड़ा था।

इस विजय का एक अन्य अप्रत्यक्ष परिणाम वह प्रतिबन्ध था जो मराठा पक्ष-त्यागियों पर लगा दिया गया—यथा चन्द्रसेन जाधव, ऊदाजी चव्हाण, कान्होजी भोसले तथा सेनापति दाभाडे और सरलश्कर निम्बालकर—जो केवल अपने स्वार्थ की सोचते थे और दोनों पक्षों में अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे तथा अपनी विभाजित निष्ठाओं द्वारा व्यक्तिगत लाभ उठाना चाहते थे। बाजीराव तथा उसके भाई ने इन विघ्नकारियों के विश्वासघातक षडयन्त्रों का पूर्ण निग्रह कर अब उन पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लिया था क्योंकि ये शाहू तथा उसके पेशवा के कष्टों से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। गनीमीकावा की चालों की तोपखाने पर विजय हुई। जो लोग बिना सोचे समझे पेशवा पर यह आरोप लगाते हैं कि वह अपनी असमर्थता या उपेक्षा के कारण दक्षिण से निजाम का अन्तिम उन्मूलन न कर सका, उनको सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि हैदराबाद राज्य को सुरक्षित रखने का मुख्य उत्तरदायित्व शाहू पर है। वह पेशवा बाजीराव को इस प्रकार लिखता है—'आप किसी कारण भी निजामुल्मुल्क की कोई हानि न पहुँचायें और न उसकी भावनाओं

भय था कि वह उनसे रुष्ट हो जायगा तथा उनका अनुमोदन न करेगा। शायद उनके पास अपने लक्ष्यो की पूर्ति हेतु पूर्ण तथा विस्तृत योजनाएँ भी न थी उनके सम्मुख केवल एक प्रेरक उद्देश्य ही था। शाहू बहुत दिनो से ऋणग्रस्त था जिसको चुकता करने की उसकी प्रबल इच्छा थी। यदि अपने स्वामी को ऋण भार से मुक्त करने के लिए पेशवा धन न एकत्र कर सकता था, तो अन्य कौन व्यक्ति यह कार्य कर सकता था? किस अन्य पुरुष से शाहू इस प्रकार की आशा कर सकता था? अत किसी न किसी उपाय से धन प्राप्त करना था। मल्हारराव होल्कर तथा रानोजी सिंधिया ने, जिनको मालवा से पूर्व परिचय था, वहा की सम्पन्नता का अनुमान किया था तथा अपने स्वामी को उन्होने एक अभूतपूर्व सफलता तथा शीघ्र लाभ की आशा दिलायी। निस्सन्देह गुजरात पर्याप्त रूप से धनी था परन्तु यह सेनापति का सुरक्षित क्षेत्र था और पेशवा उसको छूने तक का साहस न कर सकता था।

गिरिधर बहादुर उस समय मालवा का मुगल सूबेदार था। वह योग्य तथा सुपरीक्षित अधिकारी था। उसको मुगल प्रभुत्व तथा परम्परा की रक्षा करने का गौरव भी प्राप्त था। अपने ही चचेरे भाई दया बहादुर के रूप मे उसके पास अपने ही समान स्फूर्तिमान तथा सूझ-बूझ वाला सहायक उपस्थित था। उन्होने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मालवा से मराठो का निराकरण कर देंगे, तथा इस कार्य के निमित्त जो कुछ भी सहायता उन्होने सम्राट से मागी वह उनको प्राप्त हो गयी थी। बाजीराव ने अपने विश्वस्त कूटनीतिज्ञ दादो भीमसेन को सवाई जयसिंह से मिलने तथा मालवा पर आक्रमण करने के सम्भव परिणामो की जानकारी के हेतु भेजा। जयसिंह शाहू का पुराना मित्र था। उसको मालवा को स्वय अपने लिए प्राप्त करने का मोह था। उसको गिरिधर तथा उसके भाई को सहायता देने का उस समय कोई सरोकार न था। दादो भीमसेन ने १७ अगस्त, १७२८ ई० को एक पत्र द्वारा जयपुर से जयसिंह के परामर्श से पेशवा को सूचित किया कि मालवा मे पेशवा के प्रवेश के लिए समय उपयुक्त था तथा इसको आरम्भ करने मे एक क्षण का भी विलम्ब नही होना चाहिए।

बाजीराव तथा उसके भाई ने मालवा पर आक्रमण के लिए अपनी योजनाएँ बनायी। प्रत्येक ने अलग-अलग एक शुभ दिवस पर पूना से विधिपूर्वक प्रस्थान किया। चिमनाजी ने बागलान तथा खानदेश होकर पश्चिमी भाग को ग्रहण किया। बाजीराव ने अहमदनगर बरार, चाँदा और देवगढ होकर बुन्देलखण्ड की ओर पूरबी भाग का अनुसरण किया। दोनो निकट सम्पर्क म

रहे ताकि आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे की सहायता कर सकें। मल्हारराव राणोजी तथा ऊदाजी तीन विश्वस्त सहायकों के अतिरिक्त बाजी भीवराव रेठरेकर गणपतराव मेहेन्दळे मानाजी शंकर अन्ताजी माणकेश्वर तथा गोविन्द पन्त बुन्देले चिमनाजी के साथ गये। मल्हारराव राणोजी तथा ऊदाजी बहुत पहले से आगे चल दिये थे ताकि मालवा पर सहसा धावे की तैयारियाँ पूरी कर सकें। चिमनाजी का वास्तविक प्रयाण शीघ्र ही आरम्भ न हो सका (अक्तूबर २३)। बाजीराव का प्रयाण बहुत देर से आरम्भ हुआ क्योंकि शाहू ने उसको अपने पास बुला लिया था ताकि वह उसके साथ तुलजापुर चला जाए जहाँ वह अपने इष्टदेव के दर्शन करने जा रहा था। वयोवृद्ध पिलाजी जाधव तथा नवनियुक्त सरलश्कर दावलजी सोमवंशी बाजीराव के साथ गये।

२५ नवम्बर को चिमनाजी नर्मदा तट पर पहुँच गया तथा ४ दिन बाद २९ नवम्बर को उसने अमझेरा के स्थान पर (धार के समीप) घोर युद्ध के पश्चात शानदार विजय प्राप्त की। इस युद्ध में गिरिधर बहादुर तथा दया बहादुर दोनों भाई मारे गये। विद्युत की भाँति अति शीघ्रता से इस निर्णायक युद्ध का समाचार सारे भारत में फैल गया। इससे मराठों को जितनी प्रसन्नता हुई मुगल दरबार को उतना ही भारी धक्का लगा। बाजीराव को यह समाचार बरार में प्राप्त हुआ और उसने तुरन्त अपने भाई को निर्देश भेजे कि अमझेरा के रण का अनुसरण और आगे बढ़कर करे। इन दो अनुभवी वीर सेनापतियों के नेतृत्व तथा यथेष्ट क्षमतावान तोपखाने की रक्षा के बावजूद भी मुगल सेनाओं की पराजय अकस्मात कैसे हो गयी यह एक रहस्य है जिसका उद्घाटन पूर्ण विवरणों की अनुपस्थिति में नहीं हो सकता। मुगल पराजय का प्रथम वर्णन निम्नलिखित है

दया बहादुर मराठों से लड़ने के लिए आगे बढ़ा तथा अमझेरा पर उसने उनके आगमन की प्रतीक्षा की। उसने विन्ध्य-पर्वतमाला के संकीर्ण दर्रे को रोक दिया था। परन्तु मराठे उस दर्रे से बचकर निकल गये। वे माडवगढ़ की घाटी पर चढ़ गये तथा आशा के विपरीत उन्होंने पीछे से मुगलों पर आक्रमण कर दिया। दया बहादुर इस चक्र में फँस गया। उसके पास सिवाय आक्रमण को सहन करने के और कोई उपाय न था। उसने वीरता पूर्वक युद्ध किया तथा अपने अनेक प्रसिद्ध मित्रों सहित मारा गया। मराठों ने हाथियों घोड़ों, ढोलों तथा झण्डों को हस्तगत कर लिया तथा समस्त मुगल शिविर को लूट लिया।' चिमनाजी अप्पा ३० नवम्बर को लिखता है "गिरिधर बहादुर ने हम पर धोखे से वार किया तथा ६ घण्टों (२ प्रहर) तक

घोर युद्ध हुआ। वह अपनी समस्त सेना सहित परास्त हुआ और मार डाला गया।"[१६]

जयपुर का पत्र इस प्रकार है

'२९ नवम्बर, १७२८ ई० को लिखी हुई महाराजा सवाई जयसिंह का केशवराव की अर्जदाश्त। आपने मालवा का वृत्तान्त पहले ही सुन लिया होगा। उसी की सूचना मैं आपको भेज रहा हूँ। कण्ठ मराठा (कण्ठाजी कदम) दस हजार सवारो सहित मालवा म भ्रमण करता हुआ गुजरात पहुँचा। उसके भ्रमण का समाचार पाकर राजा गिरिधर बहादुर ने जिसका पडाव उस समय मन्दसौर म था, अपने व्यक्तिगत अधिकारियो को उज्जैन भेज दिया और स्वय वहा से दुश्मन की खोज मे चला। जब राजा बहादुर का शिविर अमेरा मे था, बाजीराव के भाई चिमना पण्डित तथा ऊदा पवार ने २२ हजार सवारो सहित सहसा नर्मदा को पार कर लिया तथा एक दिन म तीस कोस का प्रयाण करके अपने कुछ सैनिको को धार के गढ पर नियुक्त कर दिया ताकि मुहम्मद उमरखा वहा से भागने न पाये। वह वहाँ पर गढ की रक्षा के निमित्त नियुक्त था और राजा बहादुर से सम्मिलित होने जा रहा था। शेष मराठो को लेकर वह राजा बहादुर की सेना पर टूट पडा। इस रण मे प्रथम आहुति राव गुलाबराम की पडी। फिर जमादार सलाबतखाँ मारा गया। राजा आनन्दराम के दो गोलियाँ लगी। उसको उसके भाइ शम्भूसिह सहित शत्रु ने पकड लिया। राजा बहादुर स्वय उस समय तक बाण-वर्षा करता रहा जब तक कि चार तरकस खाली नही हो गये। इसी समय सहसा उसकी छाती म गोली लगी तथा अपने स्वामी की सेवा मे उसने प्राण दे दिये।"

और भी अनेक पत्र हैं जो उज्जैन पर भविष्य मे होने वाले आक्रमणो का वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं, किन्तु मराठो के प्रचण्ड आक्रमणो के विरुद्ध शाही सेना वीरतापूर्वक अपना स्थान यहाँ पर जमाये रही।

---

[१६] जयपुर के लेख पत्रो म प्राप्त पत्रो मे इसी के समान वृत्तान्त है। इन पत्रो के कारण इसम कोई सन्देह नही रहता है कि दोनो सामन्तो की दुखद मृत्यु एक ही समय पर तथा एक ही युद्ध म २९ नवम्बर को हुई, यद्यपि सम्भव है कि तथ्य का यथार्थ रूप मे पता लगाने और समाचार भेजने म कुछ समय लग गया हो। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इन दोनो सामन्तो की मृत्यु का ठीक समय तथा उसका विवरण प्राप्त करने मे अनुसन्धानकर्ता विद्यार्थियो ने गत कई वर्ष लगा दिये हैं और उनकी बुद्धि को बहुत प्रयास करना पडा है। किन्तु यह हर्ष की बात है कि डा० रघुवीरसिंह ने इस घटना से सम्बद्ध रहस्य को अन्तिम रूप से अनावृत कर दिया है।

इस प्रथम सफलता से पूर्ण सन्तुष्ट न होकर बाजीराव ने अपने भाई को लिखा "आशा पर आपकी विजय का समाचार पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। यह हमारे स्वामी तथा पूज्य पिता के पुण्य आशीर्वादों का फल है। ईश्वर सदैव आपको इस प्रकार की सफलताएँ प्रदान करता रहे। भविष्य का आप अभी से ध्यान रखें। समस्त बल से उज्जैन की राजधानी पर दबाव डालें जिससे हमको पर्याप्त धन की प्राप्ति हो जाय और हम अपना छत्रपति के ऋण का भुगतान कर दें। ऊदाजी पवार तथा अन्य सज्जनों की परिश्रमपूर्ण सेवाएँ मेरे ध्यान में हैं जिनका वर्णन आपने किया है। उन सब पर हमको विश्वास है कि वे उसी लगन से इस प्रथम सफलता का अनुसरण आगे भी करेंगे। उन सबको मेरी ओर से साधुवचन कहिए और उनको मेरे सन्देशों का आश्वासन दीजिए। आपको विशेष रूप से बहुत सावधान रहना है। अनुशासन में कोई शिथिलता न आने पाये और न अपनी सफलता पर अनुचित गर्व ही होने पाये। हमारा प्रथम उद्देश्य धन तथा और भी अधिक धन होना चाहिए। चाँदा तथा देवगढ़ होकर बुन्देलखण्ड की ओर प्रयाण करने का हमारा इरादा है।"

इसी प्रकार के अभिनन्दन समस्त दिशाओं से चिमनाजी को प्राप्त हुए। इसी बीच यह भी ज्ञात हो गया कि होल्कर तथा पवार ने मुगल सेनाओं की नियुक्तियों की सूचना पहले से ही प्राप्त कर ली है। नदी पर पुल बाँधने तथा उसके आगे नालों को पार करने के उचित मार्ग भी उनको पहले से ही मालूम थे—यह बात भी ज्ञात हो गयी। इस चमत्कारी सफलता से पेशवा का नाम तुरन्त प्रसिद्ध हो गया तथा उसका आसन सर्वोच्च हो गया। मराठा प्रवेश का स्थानीय राजपूतों ने स्वागत किया और उस साहसिक कार्य में उन्होंने बहुमूल्य सहायता प्रस्तुत की जिसको मराठों ने अंगीकार किया था। ऊदाजी पवार ने माण्डवगढ़ के प्राचीन दुर्ग पर तुरन्त अधिकार कर लिया। मालवा में घाटियों तथा मार्गों का नियन्त्रण इस दुर्ग द्वारा होता है। सवाई जयसिंह के विशेष आग्रह करने पर शाहू ने बाद में इस दुर्ग को सम्राट के अधिकार में पुनः दे दिया।

५ छत्रसाल का उद्धार—अब हम स्वयं बाजीराव की गतिविधियों की ओर ध्यान देना है। यह समय मराठों के लिए संकट तथा आशा दोनों से पूर्ण था। भारतीय राजनीति में नवयुग का उदय हो रहा था। उत्तर भारत के राजपूत मुगल साम्राज्य की ओर से पूर्णतया असन्तुष्ट हो गये थे। बुन्देलों का मराठों से प्राचीन मैत्री सम्बन्ध था। वे अपने स्वाधीनता के युद्ध में और राष्ट्रीय उन्नति के अपने अनेक कष्टप्रद साहसिक कार्यों तथा परीक्षणों में मराठों का अनुकरण कर रहे थे। चम्पतराय के छत्रसाल नामक वीर पुत्र ने

पना म अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी तथा औरगजेब और शिवाजी के समय से वह मुगलो के विरुद्ध सतत युद्ध कर रहा था। उसका ज म २६ मइ, १६५० ई० को हुआ था तथा दुर्भाग्य और विपरीत परिस्थितियो का वह वहुत दिनो से सामना कर रहा था। मिर्जा राजा जयसिह के साथ काय की खोज मे छत्रसाल वहुत पहले उस समय दक्षिण आया था जवकि उस शक्ति शाली सेनापति को औरगजेब ने शिवाजी का परास्त करन के लिए भेजा था। उस समय से ही छत्रसाल न्यूनाधिक रूप स शिवाजी की प्रगतियो के सम्पक म रहा था तथा उसके सदृश अपने देश के लिए स्वाधीनता प्राप्त करन की उसकी इच्छा थी। उस समय उसका देश प्रशासनीय कार्यो के लिए इलाहाबाद के सूवे के अ तगत था। मुहम्मदखाँ बगश नामक वीर तथा याग्य पठान सेनापति इस समय इस प्रा त का मुगल सूवेदार था। वह छत्रसाल की राष्ट्रीय प्रगतियो का कठोर निग्रह कर रहा था। इस पठान ने फरुखाबाद के नवाबा के वश सस्थापक के रूप म बाद मे भारतीय इतिहास मे अपना नाम प्रसिद्ध किया। इस प्रकार इन दाना मे प्रवल विद्वेष उत्पन्न हा गया तथा इसके कारण कई वर्षों तक युद्ध तथा रक्तपात हाता रहा।

लगभग ठीक उसी समय जबकि दक्षिण म १७२८ ई० के आरम्भिक मासा मे निजामुल्मुल्क तथा बाजीराव अपनी युद्ध प्रवृत्तियो में व्यस्थ थे मुहम्मदखा वगश न विशाल सेना सहित बु देला राजा पर आक्रमण किया। इस सेना का नेतृत्व वह स्वय तथा उसके तीन वीर पुत्र कर रहे थे। कई स्थानो पर उसने छत्रसाल को पराजित कर दिया। जून १७२८ ई० म घोर रक्तरजित युद्ध के बाद छत्रसाल ने जतपुर के गढ मे आश्रय लिया। बगश न तुरत इस पर घेरा डाल दिया। यह घेरा लम्बा तथा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। दिसम्बर १७२८ ई० म जब अमेरा के स्थान पर अपनी अभूतपूव सफलता के बाद चिमनाजी अप्पा ने उज्जन पर घेरा डाला था छत्रसाल जतपुर मे इतना तग हो गया था कि उसन निराश होकर लडत हुए गढ से बाहर निकल जाने का प्रयास किया, परन्तु घायल होकर वह गढ सहित हस्तगत कर लिया गया। उज्जन म चिमनाजी अप्पा तथा बजीराव को उसने आग्रहपूण स देश तथा ममस्पर्शी आह्वान भेजे कि वे समस्त वेग से उसकी सहायताथ वहाँ पहुचकर उसके प्राणा तथा सम्पत्ति की रक्षा करें। मुहम्मदखाँ बगश निपुण राजनीतिज्ञ तथा परिपक्व सनिक था। शाही हित क प्रति उसकी निष्ठा थी। मालवा म मराठा की गति विधिया से यद्यपि वह पूण परिचित था परन्तु उसको स्वप्न म भी यह आशा न थी कि एक अ य विशाल सेना सहित बाजीराव पूरवी भाग स बु देलखण्ड की ओर प्रयाण करेगा। चिमनाजी इस समय मराठा स्थाना को सुदृढ करने म

व्यस्त था तथा उज्जन की लूट से धन प्राप्त कर रहा था। बाजीराव को देवगढ़ म वहाँ की वस्तुस्थिति का समाचार प्राप्त हुआ। जनवरी म उसने अपने भाई को इस प्रकार लिखा "उज्जन पर समय तथा शक्ति का व्यथ व्यय न कीजिए। अन्य स्थान तथा परिवर्ती जिले हैं जो उसके समान ही आकषक है। मुझे तुरन्त बतायें कि यदि आवश्यकता हो तो मैं आपके पास आ जाऊँ। यदि आपकी ओर स कोई समाचार नही मिला, तो मैं सीधे बुन्देलखण्ड को जाऊँगा।' इसी बीच छत्रसाल ने बाजीराव के पास अपने विश्वासपात्र दूत को भेजने का प्रबन्ध कर लिया। उसने उसका ममस्पर्शी शब्दो म बिना एक क्षण के विलम्ब के उसकी सहायताथ आने का आह्वान भेजा।[१७] यह आग्रहपूण आह्वान उसको गढा के स्थान पर फरवरी १७२९ ई० म प्राप्त हुआ और उसने तुरन्त चिमनाजी को लिखा मैं छत्रसाल के सहायताथ जा रहा हूँ। जसा आप उत्तम समझें मुझसे स्वतन्त्र रूप म अपनी प्रगति का प्रबन्ध कर सकते है।

बाजीराव के पास करीब २५ हजार सवार थे। पिलाजी जाधव नारो शकर, तुकोजी पवार तथा दावलजी सोमवशी सदृश विश्वस्त व्यक्ति इनके नता थे। १२ माच को वह महोबा पहुँच गया। यहाँ पर छत्रसाल के पुत्र ने उसका स्वागत किया। अगले दिन छत्रसाल स्वय घेरे से भागकर विविध उपहारो म सम्मानित राजचिह्नो सहित उसके समक्ष उपस्थित हुआ।[१८] बाजीराव बगश के विरुद्ध आगे बढा। उस सघष के लिए जिसे वह आरम्भ कर रहा था अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करके उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को कई स्थलो पर हराकर मराठो के उस यश को और भी उन्नत कर दिया जिसको चिमनाजी ने अमेरा म प्राप्त किया था। बगश ने भी वीरतापूवक विपत्ति का सामना किया। उसने सम्राट के पास सहायता के लिए आग्रहपूण प्राथनाएँ भेजी तथा अपने पुत्र कायमखाँ को नयी फौजो सहित अविलम्ब अपने पास बुला

---

[१७] इस याचनापूण आह्वान को एक कवि ने हिन्दी पद्य म अमर कर दिया है। इससे एक पौराणिक कथा का पुन स्मरण होता है जिसस प्रत्येक विद्यार्थी सुपरिचित है। इसका अथ है—'बाजीराव ! क्या तुम जानते हो कि मैं इस समय उसी दु खित अवस्था म हूँ जिसम वह प्रसिद्ध हाथी था जिसको ग्राह ने पकड लिया था। मेरे वीर वश का अन्त होने वाला है। आओ और मेरे सम्मान की रक्षा करो।

मूल यह है—जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति जानहुँ आज।
बाजी जात बुन्देलन की राखो बाजी लाज॥

[१८] पेशवा दफ्तर २२ ३९।

भेजा। बाजीराव को ज्ञात हुआ कि कायमखाँ बहुत शीघ्रता से आ रहा है। अत इसके पहले कि पिता और पुत्र एक साथ हो जायें। बाजीराव ने कायमखाँ के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। जैतपुर के समीप कायमखाँ परास्त हुआ तथा अपनी प्राण रक्षा के लिए केवल सौ अनुचरा सहित समरभूमि स भाग निकला। रण स्थल से पिलाजी जाधव लिखता है—"देवगढ के सरदार स मेल करने के बाद पशवा गढा को गया जहा पर उसको ज्ञात हुआ कि २० हजार की सुसज्जित प्रबल सेना सहित बगश छत्रसाल पर आक्रमण करने आ रहा है। तब हम छत्रसाल की सेना से मिल गये और हमने बगश को घेर लिया। इस बीच म ३० हजार सैनिको की नयी फौज लेकर कायमखाँ बगश ने हमारे विरुद्ध प्रयाण किया। हमने उसको अपने पिता से मिलन से रोक दिया और इतनी भयकरता से उससे युद्ध किया कि घोर रक्तपात के बाद वह पूणतया परास्त हो गया। लूट मे बहुत-सी चीजें प्राप्त हुइ जिनमे ३ हजार घोडे तथा १३ हाथी भी है। हमार मृतको तथा घायलो की सूची सलग्न है। कृपया उनके सम्बधिया को समाचार भेज दें। हमको आशा है कि इस काण्ड को हम शीघ्र समाप्त कर देंगे और घर वापस आ जायेंग। मुहम्मदखाँ बगश पर घेरा अब तक पडा हुआ है। यदि वह बाहर निकलने का साहस करेगा, तो समाप्त हो जायेगा। यदि भूख के कारण मत्यु से बचना चाहता है, तो वह शीघ्र ही शर्तो की प्राथना करेगा और ये उसका भेज दी जायेगी जिससे युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाये क्योकि ऋतु शीघ्र व्यतीत हो रही है।"[१६]

मुहम्मदखा का मानमदन हो गया तथा यह लिखित प्रतिज्ञा देन पर कि 'वह कभी भी बुदेलखण्ड को वापस नही आयेगा और न छत्रसाल को किसी प्रकार का कष्ट देगा उसको अपने मुग्य स्थाना को सकुशल वापस होने की आज्ञा मिल गयी।' इस प्रकार बुदेलखण्ड भी मुगल-साम्राज्य से उसी प्रकार निकल गया जिस तरह चार मास पूव मालवा निकल गया था। अपने समय के मुगल सामता मे मुहम्मदखाँ बगश सर्वोपरि वीर तथा उत्साही व्यक्ति था। उसकी पराजय तथा उसका अपमान पूण रूप से हो गया था। सम्राट ने इलाहाबाद के शासन से उसको बचित कर दिया तथा सर बुलदखाँ को उस पद पर नियुक्त किया।

अब वृद्ध छत्रसाल का शान्तिपूण तथा यशस्वी अत भी समीप आ गया था। बाजीराव को उसने समस्त सम्मान भेंट किय तथा बहुत-सा धन भी दिया। बाजीराव उसको इतना प्रिय हो गया कि उमन उसके सम्मान म खुले

---

[१६] राजवाडे, ३ १४।

था। छत्रसाल के कार्यकर्ता हरिदास पुरोहित तथा आशाराम बाजीराव को प्रदान की गयी जागीर के विषय में कुछ धाराओं का समाधान करने हेतु पूना आये। इसी बीच में छत्रसाल का देहान्त हो गया तथा उसके दोनों पुत्र इस बात पर सहमत हो गये कि उनमें से प्रत्येक बाजीराव को सवा लाख का प्रदेश दे दे। अगले वर्ष जब चिमनाजी अप्पा बुन्देलखण्ड गया तो उसने समर्पित जिलों का भार सँभाल लिया तथा गोविन्दपन्त खेर को अर्जित प्रदेश का प्रबन्धकर्ता नियुक्त कर दिया। यह खेर तत्पश्चात् बुन्देले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन प्रदेशों की गणना इस प्रकार है—कालपी, हाता, सागर, झांसी, सिराज, कुच, गढकोटा तथा हृदयनगर।[21]

---

[21] बाद को बाजीराव ने इनमें से कुछ जिले मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर को दे दिये। उसने बांदा को अपना मुख्य निवास स्थान बनाया। इस प्रकार उसके वंशजों को बांदा के नवाब की उपाधि प्राप्त हुई। कहा जाता है कि बाद में बांदा की जागीर से ३३ लाख रुपयों का वार्षिक कर प्राप्त होता रहा।

राव सुमन्त को न नियुक्त किया जाये क्योंकि अब पशवा को उस पर विश्वास नहीं है।

३ राजा सम्भाजी पर से नवाब अपना सरक्षण हटा ले तथा उसको पन्हाला जाने की आज्ञा दे।

४ पूना, बारामती खेड, तालगाँव तथा अन्य स्थान जिन पर नवाब ने अधिकार कर लिया है पुन शाहू का दे दिये जाय।

५ स्वराज्य तथा सरदेशमुखी के पूव प्रदत्त पट्टों का पुष्टीकरण किया जाये।

६ बलवन्तसिंह (?) तथा अन्य व्यक्तियो को उनकी जागीरें वापस द दी जाय।

७ कृष्णा तथा पचगगा नदिया के बीच मे जो जागीरे राजा शाहू न सम्भाजी का दे रखी थीं उनके अतिरिक्त और कोई जागीर उसको न दी जाय।

८ सुल्तानजी निम्बालकर को जिसन नवाब के हित मे मराठा पक्ष त्याग दिया था, आगे कोई दुष्टता न करने दी जाये।

९ वे कर जिनका सग्रह सम्भाजी ने अन्यायपूण ढग स कर लिया था, राजा शाहू के पास जमा कर दिये जायें।

१० शाहगढ का वतन तथा पाटिलकी यथापूव पिलाजी जाधव के पास रहे।

११ मराठा स्वराज्य से जिन व्यक्तियो को तुकताजखा न बन्दी रखा था उन्हे वापस भेज दिया जाय।

१२ पेटा निम्बोने के पाच गाव पवार बन्धुओ, कृष्णाजी, ऊदाजी तथा केरोजी को अनुदान म दिये जायें।

१३ राजा सम्भाजी को कृष्णा नदी के उत्तर के जिलो से चौथ-सग्रह करन से वचित रखा जाय।[१४]

जब ये शर्तें निश्चित हो गयी बाजीराव तथा निजाम परस्पर मिले तथा वस्त्रो और उपहारो के विधिपूवक विनिमय द्वारा उन्होने उनका प्रमाणीकरण कर दिया। इस प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध की हार्दिक भावना पूण रूप स पुन

---

[१४] देखिए पशवा दफ्तर, १५, ८६, पृ० ८६। चार महत्त्वहीन धाराएँ छोड दी गयी हैं।

स्थापित हो गयी। यह इन दो सरदारो का पाँचवाँ सम्मिलन था। चौथा सम्मिलन औरंगाबाद मे फतेहखेडा के युद्ध के बाद हुआ था।

पालखेड के अभियान म बाजीराव न निजामुलमुल्क को सफलतापूवक परास्त कर दिया। इस विजय के मराठो के हित म महत्त्वपूण परिणाम निकले जिनके निमित्त एक वष के लगातार सघष म मराठा न कठोर परिश्रम तथा अनक चिन्ताआ को सहन किया था। मुख्य उद्देश्य जो उन्होंने प्राप्त कर लिया, वह था निजामुलमुल्क द्वारा मराठा स्वत्वा का विधिपूवक स्वीकरण, जिनको बहुत पहले सयदा ने प्रमाणित कर दिया था। अब आसफजाह न निर्विवाद रूप मे इनको स्वीकार कर लिया। अब वह स्पष्ट रूप से भविष्य मे सम्भाजी का समथन न कर सकता था और न शाहू के इस स्वत्व का तिरस्कार कर सकता था कि वह मराठा राज्य का प्रमुख व्यक्ति है। निजाम की शक्ति निश्चय ही पूणतया भग न हो सकी थी और न यह मराठा नीति का स्वीकृत उद्देश्य ही था। विरोधी के रूप मे बाजीराव की क्षमता को निजामुलमुल्क पूरी तरह समझ गया तथा उसको यह भी मालूम हो गया कि भविष्य मे बाजीराव की ओर से उसे क्या अपेक्षा रखनी पडेगी। पालखेड के अल्पकालीन परन्तु सफल काण्ड का यह विशेष परिणाम था। इसम बाजीराव ने उस समय के सर्वोपरि रण कुशल पुरुष को परास्त किया था जो आयु म उससे तीस वष बडा था।

इस विजय का एक अय अप्रत्यक्ष परिणाम वह प्रतिबन्ध था जो मराठा पक्ष-त्यागियो पर लगा दिया गया—यथा चन्द्रसेन जाधव, ऊदाजी चव्हाण कान्होजी भासले तथा सनापति दाभाडे और सरलश्कर निम्बालकर—जो केवल अपने स्वाथ की सोचते थे और दोना पक्षो मे अपना काय सिद्ध करना चाहते थे तथा अपनी विभाजित निष्ठाआ द्वारा व्यक्तिगत लाभ उठाना चाहते थे। बाजीराव तथा उसके भाई ने इन विघ्नकारिया के विश्वासघातक षडयन्त्रा का पूण निग्रह कर अब उन पर पूण नियन्त्रण प्राप्त कर लिया था, क्योंकि ये शाहू तथा उसके पेशवा के कष्टा स अपना स्वाथ सिद्ध करना चाहते थे। गनीमीकावा की चालो की तोपखाने पर विजय हुई। जो लोग बिना सोचे समझे पेशवा पर यह आराप लगाते हैं कि वह अपनी असमथता या उपेक्षा के कारण दक्षिण से निजाम का अन्तिम उन्मूलन न कर सका, उनको सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि हैदराबाद राज्य को सुरक्षित रखने का मुख्य उत्तरदायित्व शाहू पर है। वह पेशवा बाजीराव को इस प्रकार लिखता है—"आप किसी कारण भी निजामुलमुल्क को कोई हानि न पहुँचायें और न उसकी भावनाआ

का पीड़ित कर। आपके पूज्यनीय पिता की स्मृति के प्रति पवित्र कर्तव्य के रूप में हम आपको यह आदेश देते हैं। दूसरी ओर इसके साथ ही शाहू ने पेशवा को मराठा शासन तथा राज्य पर पूर्ण नियन्त्रण रखने की अनुमति भी दे दी थी।[१५]

प्रसंगवश यह भी स्पष्ट है कि वे व्यक्ति स्वयं अपने को अपराधी घोषित करते हैं जो शाहू तथा उसके पेशवाओं पर यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने मराठा स्वाधीनता को मुगलों के हाथों बेच दिया, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही उनके प्रति अपनी अधीनता स्वीकार कर ली थी। यदि मराठा राज्य का नेतृत्व शाहू ने न प्राप्त कर लिया होता तो क्या ताराबाई और उसका दल इससे अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकता था?

४ आलेरा का तीव्र युद्ध—बाजीराव के चरित्र में पालखेड एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है। अप्रैल १७२० ई० से (जब वह पेशवा नियुक्त हुआ) मार्च १७२८ ई० तक (जब उसने अपनी प्रथम उल्लेखनीय विजय प्राप्त की) ८ वर्षों के समय को हम उसका परीक्षा-काल कह सकते हैं। इस परीक्षा-काल के अन्त पर ही उसने निजामुल्मुल्क सदृश क्षमता और चरित्र के वयोवृद्ध शासक तथा कूटनीतिज्ञ के विरुद्ध विजय प्राप्त की थी। इस परीक्षा-काल ही में उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया अपना एक अलग दल संगठित किया तथा मराठा राज्य के नेतृत्व के हेतु अपनी योग्यता सिद्ध कर दी। सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसने अपने स्वामी शाहू का विश्वास प्राप्त कर लिया तथा उसको स्वयं अपनी शक्तियों में विश्वास हो गया। ऐसा मालूम होता है कि इसी समय पर अपनी सत्ता के प्रसार के लिए उसने दक्षिण की अपेक्षा उत्तर को अधिक पसन्द किया। दक्षिण में प्रतिनिधि सुमन्त, चन्द्रसिंह भागले तथा स्वयं शाहू उसकी नीतियों के स्वतन्त्र सम्पादन में बाधक थे। सतत व्यक्तिगत ईर्ष्याओं तथा दरबार के षडयन्त्रों से ऊबकर ही उसने मालवा तथा बुन्देलखण्ड को उस क्षेत्र के रूप में चुना जहाँ वह अपना स्थायी चिह्न छोड़ सकता था।

१७२८ ई० की वर्षा ऋतु में दोनों भाइयों तथा उनके सन्निकट के साथियों ने बहुत दिनों तक विचार विनिमय के उपरान्त यह निश्चित कर लिया कि वे प्रथम प्रहार करेंगे घोर प्रहार करेंगे तथा परिणामोत्पादक प्रहार करेंगे। शायद उन्होंने अपनी योजनाओं को शाहू को भी प्रकट न किया क्योंकि उनको

---

[१५] पेशवा दफ्तर, १०, पृ० ७५, सतारा के पत्र, १८८ पेशवा दफ्तर १७ पृ० १३।

भय था कि वह उनस रुष्ट हो जायेगा तथा उनका अनुमोदन न करेगा। शायद उनके पास अपने लक्ष्यो की पूर्ति हेतु पूर्ण तथा विस्तृत योजनाएँ भी न थी, उनके सम्मुख केवल एक प्रेरक उद्देश्य ही था। शाहू बहुत दिनो से ऋणग्रस्त था जिसको चुकता करने की उसकी प्रबल इच्छा थी। यदि अपने स्वामी को ऋण भार से मुक्त करने के लिए पेशवा धन न एकत्र कर सकता था, तो अन्य कौन व्यक्ति यह कार्य कर सकता था ? किस अन्य पुरुष से शाहू इस प्रकार की आशा कर सकता था ? अत किसी न किसी उपाय से धन प्राप्त करना था। मल्हारराव होल्कर तथा रानोजी सिन्धिया ने, जिनको मालवा से पूर्व परिचय था, वहा की सम्पन्नता का अनुमान किया था तथा अपने स्वामी को उन्होने एक अभूतपूर्व सफलता तथा शीघ्र लाभ की आशा दिलायी। निस्सन्देह गुजरात पर्याप्त रूप से धनी था, परन्तु यह सेनापति का सुरक्षित क्षेत्र था और पेशवा उसको छूने तक का साहस न कर सकता था।

गिरिधर बहादुर उस समय मालवा का मुगल सूबेदार था। वह योग्य तथा सुपरीक्षित अधिकारी था। उसको मुगल प्रभुत्व तथा परम्परा की रक्षा करने का गौरव भी प्राप्त था। अपने ही चचेरे भाई दया बहादुर के रूप मे उसके पास अपने ही समान स्फूर्तिमान तथा सूझ-बूझ वाला सहायक उपस्थित था। उन्होने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मालवा से मराठो का निराकरण कर देगे तथा इस कार्य के निमित्त जो कुछ भी सहायता उन्होने सम्राट से मागी, वह उनको प्राप्त हो गयी थी। बाजीराव ने अपने विश्वस्त कूटनीतिज्ञ दादो भीमसेन को सवाई जयसिंह से मिलने तथा मालवा पर आक्रमण करने के सम्भव परिणामो की जानकारी के हेतु भेजा। जयसिंह शाहू का पुराना मित्र था। उसको मालवा को स्वय अपने लिए प्राप्त करने का मोह था। उसको गिरिधर तथा उसके भाई को सहायता देने का उस समय कोई सरोकार न था। दादा भीमसेन ने १७ अगस्त, १७२८ ई० को एक पत्र द्वारा जयपुर से जयसिंह के परामर्श से पेशवा को सूचित किया कि मालवा मे पेशवा के प्रवेश के लिए समय उपयुक्त था तथा इसको आरम्भ करने मे एक क्षण का भी विलम्ब नही होना चाहिए।

बाजीराव तथा उसके भाई ने मालवा पर आक्रमण के लिए अपनी योजनाएँ बनायी। प्रत्येक ने अलग-अलग एक शुभ दिवस पर पूना से विधिपूर्वक प्रस्थान किया। चिमनाजी ने बागलान तथा खानदेश होकर पश्चिमी मार्ग को ग्रहण किया। बाजीराव ने अहमदनगर, बरार चांदा और देवगढ होकर बुन्देलखण्ड की ओर पूरबी मार्ग का अनुसरण किया। दोनो निकट सम्पर्क मे

रहे ताकि आवश्यकता पडने पर एक-दूसरे की सहायता कर सकें। मल्हारराव रानोजी तथा ऊदाजी तीन विश्वस्त सहायकों के अतिरिक्त बाजी भीवराव रेतरेकर गणपतराव मेरेण्डले, नारो शंकर अन्ताजी मानकेश्वर तथा गोविन्द-पन्त बुन्देले चिमनाजी के साथ गये। मल्हारराव, रानोजी तथा ऊदाजी बहुत पहले से आगे चल दिये थे ताकि मालवा पर सहसा धावे की तैयारियाँ पूरी कर सकें। चिमनाजी का वास्तविक प्रयाण दीवाली तक आरम्भ न हो सका (अक्तूबर २३)। बाजीराव का प्रयाण बहुत देर से आरम्भ हुआ क्योंकि शाहू ने उसको अपने पास बुला लिया था ताकि वह उसके साथ तुलजापुर चले जहाँ वह अपने इष्टदेव के दर्शन करने जा रहा था। वयोवृद्ध पिलाजी जाधव तथा नवनियुक्त सरलश्कर दावलजी सोमवंशी बाजीराव के साथ गये।

२५ नवम्बर को चिमनाजी नर्मदा तट पर पहुँच गया तथा ४ दिन बाद २९ नवम्बर को उसने अझेरा के स्थान पर (धार के समीप) घोर युद्ध के पश्चात शानदार विजय प्राप्त की। इस युद्ध मे गिरिधर बहादुर तथा दया बहादुर दोनों भाई मारे गये। विद्युत की भाँति अति शीघ्रता से इस निर्णायक युद्ध का समाचार सारे भारत मे फैल गया। इससे मराठों को जितनी प्रसन्नता हुई मुगल दरबार को उतना ही भारी धक्का लगा। बाजीराव को यह समाचार बरार मे प्राप्त हुआ और उसने तुरन्त अपने भाई को निर्देश भेजे कि अझेरा के रण का अनुसरण और आगे बढकर करे। इन दो अनुभवी वीर सेनापतियों के नेतृत्व तथा यथेष्ट क्षमतावान तोपखाने की रक्षा के बावजूद भी मुगल सेनाओं की पराजय अकस्मात कैसे हो गयी यह एक रहस्य है जिसका उद्घाटन पूर्ण विवरणों की अनुपस्थिति में नहीं हो सकता। मुगल पराजय का प्रथम वर्णन निम्नलिखित है

"दया बहादुर मराठों से लडने के लिए आगे बढा तथा अझेरा पर उसने उनके आगमन की प्रतीक्षा की। उसने विन्ध्य-पर्वतमाला के संकीर्ण दर्रे को रोक दिया था। परन्तु मराठे उस दर्रे से बचकर निकल गये। वे माडवगढ की घाटी पर चढ गये तथा आशा के विपरीत उन्होंने पीछे से मुगलों पर आक्रमण कर दिया। दया बहादुर इस चक्र में फँस गया। उसके पास सिवाय आक्रमण को सहन करने के और कोई उपाय न था। उसने वीरता पूर्वक युद्ध किया तथा अपने अनेक प्रसिद्ध मित्रों सहित मारा गया। मराठों ने हाथियों घोडो, ढोलों तथा झण्डों को हस्तगत कर लिया तथा समस्त मुगल शिविर को लूट लिया।" चिमनाजी अप्पा ३० नवम्बर को लिखता है "गिरिधर बहादुर ने हम पर धोखे से वार किया तथा ६ घण्टा (२ प्रहर) तक

घोर युद्ध हुआ। वह अपनी समस्त सेना सहित परास्त हुआ और मार डाला गया।'[१६]

जयपुर का पत्र इस प्रकार है

'२९ नवम्बर, १७२८ ई० को लिखी हुई महाराजा सवाई जयसिंह को केशव-राव की अर्जदाश्त। आपने मालवा का वृत्तान्त पहले ही सुन लिया होगा। उसी की सूचना मैं आपको भेज रहा हूँ। कण्ठ मराठा (कण्ठाजी कदम) दस हजार सवारो सहित मालवा मे भ्रमण करता हुआ गुजरात पहुँचा। उसके भ्रमण का समाचार पाकर राजा गिरिधर बहादुर ने, जिसका पडाव उस समय मन्दसौर मे था, अपने व्यक्तिगत अधिकारियो को उज्जैन भेज दिया और स्वय वहा से दुश्मन की खोज मे चला। जब राजा बहादुर का शिविर अमेरा मे था, बाजी-राव के भाई चिमना पण्डित तथा ऊदा पवार ने २२ हजार सवारो सहित सहसा नर्मदा को पार कर लिया तथा एक दिन मे तीस कोस का प्रयाण करके अपने कुछ सैनिको को धार के गढ पर नियुक्त कर दिया ताकि मुहम्मद उमरखा वहाँ से भागने न पाये। वह वहाँ पर गढ की रक्षा के निमित्त नियुक्त था और राजा बहादुर से सम्मिलित होने जा रहा था। शेष मराठो को लेकर वह राजा बहादुर की सेना पर टूट पडा। इस रण मे प्रथम आहुति राव गुलाबराम को पडी। फिर जमादार सलाबतखाँ मारा गया। राजा आनन्दराम के दो गोलियाँ लगी। उसको उसके भाई शम्भूसिंह सहित शत्रु ने पकड लिया। राजा बहादुर स्वय उस समय तक बाण-वर्षा करता रहा जब तक कि चार तरकस खाली नही हो गये। इसी समय सहसा उसकी छाती मे गोली लगी तथा अपने स्वामी की सेवा मे उसने प्राण दे दिये।"

और भी अनेक पत्र हैं जो उज्जैन पर भविष्य मे होने वाले आक्रमणो का वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं, किन्तु मराठो के प्रचण्ड आक्रमणो के विरुद्ध शाही सेना वीरतापूर्वक अपना स्थान वहाँ पर जमाये रही।

---

[१६] जयपुर के लेख पत्रो मे प्राप्त पत्रो मे इसी के समान वृत्तान्त है। इन पत्रो के कारण इसमे कोई सन्देह नही रहता है कि दोनो सामन्तो की दुखद मृत्यु एक ही समय पर तथा एक ही युद्ध मे २९ नवम्बर को हुई, यद्यपि सम्भव है कि तथ्य का यथार्थ रूप से पता लगाने और समाचार भेजने मे कुछ समय लग गया हो। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इन दोनो सामन्तो की मृत्यु का ठीक समय तथा उसका विवरण प्राप्त करने मे अनु-सन्धानकर्ता विद्यार्थियो ने गत कई वर्ष लगा दिये हैं और उनकी बुद्धि को बहुत प्रयास करना पडा है। किन्तु यह हर्ष की बात है कि डा० रघुवीरसिंह ने इस घटना से सम्बद्ध रहस्य को अन्तिम रूप से अनावृत कर दिया है।

इस प्रथम सफलता से पूर्ण सन्तुष्ट न होकर बाजीराव ने अपने भाई को लिखा 'अमेरा पर आपकी विजय का समाचार पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। यह हमारे स्वामी तथा पूज्य पिता के पुण्य आशीर्वाद का फल है। ईश्वर मदद आपको इस प्रकार की सफलताएँ प्रदान करता रहे। भविष्य का आप अभी से ध्यान रखें। समस्त वेग से उज्जैन की राजधानी पर दबाव डालें जिससे हमको पर्याप्त धन की प्राप्ति हो जाये और हम अपने छत्रपति के ऋण को चुकता कर दें। ऊदाजी पवार तथा अन्य सज्जनों की परिश्रमपूर्ण सेवाएँ मेरे ध्यान में है जिनका वर्णन आपने किया है। उन सब पर हमको विश्वास है कि वे उसी लगन से इस प्रथम सफलता का अनुसरण आगे भी करेंगे। उन सबको मेरी ओर से साधुवचन कहिए और उनको मेरे सदाशयों का आश्वासन दीजिए। आपको विशेष रूप से बहुत सावधान रहना है। अनुशासन में कोई शिथिलता न आने पाये और न अपनी सफलता पर अनुचित गर्व ही होने पाये। हमारा प्रथम उद्देश्य धन तथा और भी अधिक धन होना चाहिए। चाँदा तथा देवगढ होकर बुन्देलखण्ड की ओर प्रयाण करने का हमारा इरादा है।

इसी प्रकार के अभिनन्दन समस्त दिशाओं से चिमनाजी को प्राप्त हुए। इसी बीच यह भी ज्ञात हो गया कि होल्कर तथा पवार ने मुगल सेनाओं की नियुक्तियों की सूचना पहले से ही प्राप्त कर ली है। नदी पर पुल बाँधने तथा उसके आगे नालों को पार करने के उचित मार्ग भी उनको पहले से ही मालूम थे—यह बात भी ज्ञात हो गयी। इस चमत्कारी सफलता से पेशवा का नाम तुरन्त प्रसिद्ध हो गया तथा उसका आसन सर्वोच्च हो गया। मराठा प्रवेश का स्थानीय राजपूतों ने स्वागत किया और उस साहसिक कार्य में उन्होंने बहुमूल्य सहायता प्रस्तुत की जिसको मराठों ने अंगीकार किया था। ऊदाजी पवार ने माण्डवगढ के प्राचीन दुर्ग पर तुरन्त अधिकार कर लिया। मालवा में घाटियों तथा मार्गों का नियन्त्रण इस दुर्ग द्वारा होता है। सवाई जयसिंह के विशेष आग्रह करने पर शाहू ने बाद में इस दुर्ग को सम्राट के अधिकार में पुनः दे दिया।

५ **छत्रसाल का उद्धार**—अब हम स्वयं बाजीराव की गतिविधियों की ओर ध्यान देना है। यह समय मराठों के लिए संकट तथा आशा दोनों से पूर्ण था। भारतीय राजनीति में नवयुग का उदय हो रहा था। उत्तर भारत के राजपूत मुगल-साम्राज्य की ओर से पूर्णतया असन्तुष्ट हो गये थे। बुन्देलों का मराठों से प्राचीन मैत्री सम्बन्ध था। वे अपने स्वाधीनता के युद्ध में और राष्ट्रीय उन्नति के अपने अनेक कष्टप्रद साहसिक कार्यों तथा परीक्षणों में मराठों का अनुकरण कर रहे थे। चम्पतराय के छत्रसाल नामक वीर पुत्र ने

पन्ना में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी तथा औरंगजेब और शिवाजी के समय से वह मुगलों के विरुद्ध सतत युद्ध कर रहा था। उसका जन्म २६ मई, १६५० ई० को हुआ था तथा दुर्भाग्य और विपरीत परिस्थितियों का वह बहुत दिनों से सामना कर रहा था। मिर्जा राजा जयसिंह के साथ काम की खोज में छत्रसाल बहुत पहले उस समय दक्षिण आया था जबकि उस शक्तिशाली सेनापति को औरंगजेब ने शिवाजी को परास्त करने के लिए भेजा था। उस समय से ही छत्रसाल न्यूनाधिक रूप से शिवाजी की प्रगतियों के सम्पर्क में रहा था तथा उसके सदृश अपने देश के लिए स्वाधीनता प्राप्त करने का उसकी इच्छा थी। उस समय उसका देश प्रशासनीय कार्यों के लिए इलाहाबाद के सूबे के अन्तर्गत था। मुहम्मदखाँ बंगश नामक वीर तथा योग्य पठान सेनापति इस समय इस प्रान्त का मुगल सूबेदार था। वह छत्रसाल की राष्ट्रीय प्रगतियों का कठोर निग्रह कर रहा था। इस पठान ने फर्रुखाबाद के नवाबों के वंश संस्थापक के रूप में, बाद में भारतीय इतिहास में अपना नाम प्रसिद्ध किया। इस प्रकार इन दोनों में प्रबल विद्वेष उत्पन्न हो गया तथा इसके कारण कई वर्षों तक युद्ध तथा रक्तपात होता रहा।

लगभग ठीक उसी समय जबकि दक्षिण में १७२८ ई० के आरम्भिक मासों में निजामुल्मुल्क तथा बाजीराव अपनी युद्ध प्रवृत्तियों में व्यस्त थे मुहम्मदखाँ बंगश ने विशाल सेना सहित बुन्देला राजा पर आक्रमण किया। इस सेना का नेतृत्व वह स्वयं तथा उसके तीन वीर पुत्र कर रहे थे। कई स्थानों पर उसने छत्रसाल को पराजित कर दिया। जून १७२८ ई० में घोर रक्तरंजित युद्ध के बाद छत्रसाल ने जैतपुर के गढ़ में आश्रय लिया। बंगश ने तुरन्त इस पर घेरा डाल दिया। यह घेरा लम्बा तथा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। दिसम्बर १७२८ ई० में जब अमझेरा के स्थान पर अपनी अभूतपूर्व सफलता के बाद चिमनाजी अप्पा ने उज्जैन पर घेरा डाला था, छत्रसाल जैतपुर में इतना तंग हो गया था कि उसने निराश होकर लड़ते हुए गढ़ से बाहर निकल जाने का प्रयास किया, परन्तु घायल होकर वह गढ़ सहित हस्तगत कर लिया गया। उज्जैन में चिमनाजी अप्पा तथा बाजीराव को उसने आग्रहपूर्ण सन्देश तथा मर्मस्पर्शी आह्वान भेजे कि वे समस्त वेग से उसकी सहायतार्थ वहाँ पहुँचकर उसके प्राणों तथा सम्पत्ति की रक्षा करें। मुहम्मदखाँ बंगश निपुण राजनीतिज्ञ तथा परिपक्व सैनिक था। शाही हित के प्रति उसकी निष्ठा थी। मालवा में मराठों की गतिविधियों से यद्यपि वह पूर्ण परिचित था परन्तु उसको स्वप्न में भी यह आशा न थी कि एक अन्य विशाल सेना सहित बाजीराव पूर्वी मार्ग से बुन्देलखण्ड की ओर प्रयाण करेगा। चिमनाजी इस समय मराठा स्थानों को सुदृढ़ करने में

व्यस्त था तथा उज्जन की लूट से धन प्राप्त कर रहा था। बाजीराव को देवगढ म वहाँ की वस्तुस्थिति का समाचार प्राप्त हुआ। जनवरी म उसने अपने भाई को इस प्रकार लिखा 'उज्जन पर समय तथा शक्ति का व्यथ व्यय न कीजिए। अय स्थान तथा परिवर्ती जिले हैं जो उसके समान ही आवश्यक है। मुझे तुरत बतायें कि यदि आवश्यकता हो तो मैं आपके पास आ जाऊँ। यदि आपकी ओर से कोई समाचार नही मिला, तो मैं सीधे बुदेलखण्ड को जाऊंगा। इसी बीच छत्रसाल ने बाजीराव के पास अपने विश्वासपात्र दूत को भेजने का प्रबध कर लिया। उसने उसको ममस्पर्शी शब्दो मे बिना एक क्षण के विलम्ब के उसकी सहायताथ आने का आह्वान भेजा।[१७] यह आग्रहपूण आह्वान उसको गढा के स्थान पर फरवरी १७२९ ई० म प्राप्त हुआ और उसन तुरत चिमनाजी को लिखा "मैं छत्रसाल के सहायताथ जा रहा हूँ। जैसा आप उत्तम समझें मुझसे स्वतत्र रूप मे अपनी प्रगति का प्रबध कर सकते है।

बाजीराव के पास करीब २५ हजार सवार थे। पिलाजी जाधव नारो शकर, तुकोजी पवार तथा दावलजी सोमवशी सदृश विश्वस्त व्यक्ति इनके नता थे। १२ माच को वह महोबा पहुँच गया। यहाँ पर छत्रसाल के पुत्र ने उसका स्वागत किया। अगले दिन छत्रसाल स्वय घेरे से भागकर विविध उपहारो व सम्मानित राजचिह्नो सहित उसके समक्ष उपस्थित हुआ।[१८] बाजीराव बगश के विरुद्ध आगे बढा। उस सघष के लिए जिसे वह आरम्भ कर रहा था, अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करके उसन अपने प्रतिद्वन्द्वी को कई स्थलो पर हराकर मराठो के उस यश को और भी उन्नत कर दिया जिसको चिमनाजी न अझेरा म प्राप्त किया था। बगश ने भी वीरतापूवक विपत्ति का सामना किया। उसने सम्राट के पास सहायता के लिए आग्रहपूण प्राथनाएँ भेजी तथा अपन पुत्र कायमखाँ को नयी फौजा सहित अविलम्ब अपने पास बुला

---

[१७] इस याचनापूण आह्वान को एक कवि ने हिन्दी पद्य मे अमर कर दिया है। इससे एक पौराणिक कथा का पुन स्मरण होता है जिसस प्रत्येक विद्यार्थी सुपरिचित है। इसका अथ है— बाजीराव ! क्या तुम जानते हो कि मैं इस समय उसी दु खित अवस्था म हूँ जिसम वह प्रसिद्ध हाथी या जिसको ग्राह ने पकड लिया था। मेरे वीर वश का अन्त हान वाला है। आओ और मरे सम्मान की रक्षा करो।

मूल यह है—जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुदलन की राखो बाजी लाज॥

[१८] पशवा दफ्तर २२ ३६।

भेजा। बाजीराव का ज्ञात हुआ कि कायमखाँ बहुत शीघ्रता से आ रहा है। अत इसके पहले कि पिता और पुत्र एक साथ हो जायें। बाजीराव ने कायमखाँ के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। जतपुर के समीप कायमखाँ परास्त हुआ तथा अपनी प्राण रक्षा के लिए केवल सौ अनुचरा सहित समरभूमि से भाग निकला। रण स्थल से पिलाजी जाधव लिखता है— 'देवगढ के सरदार से मेल करने के बाद पेशवा गढा को गया जहा पर उसको ज्ञात हुआ कि २० हजार की सुसज्जित प्रबल सेना सहित बगश छत्रसाल पर आक्रमण करने आ रहा है। तब हम छत्रसाल की सना से मिल गये और हमने बगश को घेर लिया। इस बीच म ३० हजार सैनिको की नयी फौज लेकर कायमखा बगश ने हमारे विरुद्ध प्रयाण किया। हमने उसको अपने पिता से मिलने से रोक दिया और इतनी भयकरता से उससे युद्ध किया कि घोर रक्तपात के बाद वह पूणतया परास्त हो गया। लूट मे बहुत-सी चीजें प्राप्त हुइ जिनमे ३ हजार घोडे तथा १३ हाथी भी हैं। हमारे मतको तथा घायलो की सूची सलग्न है। कृपया उनके सम्बंधिया को समाचार भेज दें। हमको आशा है कि इस काण्ड को हम शीघ्र समाप्त कर दग और घर वापस आ जायेंगे। मुहम्मदखाँ बगश पर घेरा अब तक पडा हुआ है। यदि वह बाहर निकलने का साहस करेगा, तो समाप्त हो जायेगा। यदि भूख के कारण मत्यु से बचना चाहता है तो वह शीघ्र ही शर्तों की प्राथना करेगा और ये उसको भेज दी जायेंगी जिससे युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाये क्याकि ऋतु शीघ्र व्यतीत हो रही है।"[१६]

मुहम्मदखाँ का मानमदन हो गया तथा यह लिखित प्रतिज्ञा देने पर कि 'वह कभी भी बुदेलखण्ड को वापस नही आयेगा और न छत्रसाल को किसी प्रकार का कष्ट दगा उसको अपने मुख्य स्थानो को सकुशल वापस होने की आज्ञा मिल गयी।' इस प्रकार बुदेलखण्ड भी मुगल-साम्राज्य से उसी प्रकार निकल गया जिस तरह चार मास पूव मालवा निकल गया था। अपने समय के मुगल सामता म मुहम्मदखा बगश सर्वोपरि वीर तथा उत्साही व्यक्ति था। उसकी पराजय तथा उसका अपमान पूण रूप से हो गया था। सम्राट न इलाहाबाद के शासन से उसको वचित कर दिया तथा सर बुलदखा को उस पद पर नियुक्त किया।

अब वृद्ध छत्रसाल का शातिपूण तथा यशस्वी अत भी समीप आ गया था। बाजीराव को उसने समस्त सम्मान भेंट किये तथा बहुत-सा धन भी दिया। बाजीराव उसको इतना प्रिय हो गया कि उसने उसके सम्मान मे खुले

---

[१६] राजवाडे, ३, १४।

दरबार का आयोजन किया और अपने दो अल्पवयस्क पुत्रों—हृदयेश तथा जगतराज—को पेशवा के सम्मुख उपस्थित करके उन्हें भविष्य में उसकी रक्षा में अर्पित कर दिया। उसी समय अपने राज्य में एक बड़ी जागीर तथा मकान के लिए उसने बाजीराव को दी तथा उससे पवित्र प्रतिज्ञा कराली कि वह उसके उन दोनों पुत्रों को अपने छोटे भाइयों के समान मानेगा तथा बाहरी और के शत्रुओं द्वारा होने वाली हानि से उनकी रक्षा करेगा। बाजीराव तुरन्त सहमत हो गया। बहुत सम्भव है कि इसी समय पर नवयुवती मस्तानी का अद्भुत उपहार के रूप में छत्रसाल ने बाजीराव को दे दिया।[२] उच्चवर्गीय अतिथि के सम्मान का यह परम्परागत व्यवहार था तथा छत्रसाल ने भी उसी का अनुसरण किया क्योंकि बाजीराव ने सन्निकट उपस्थित सर्वनाश से उसकी रक्षा की थी।

२३ मई १७२९ ई० को बाजीराव ने जैतपुर से पूना के लिए प्रस्थान किया। २ वर्ष बाद १४ दिसम्बर १७३१ ई० को वृद्ध छत्रसाल का देहान्त हो गया किन्तु मृत्यु-समय उसको इस विचार से पूर्ण सन्तोष था कि उसके वंशज उस कष्ट से सर्वथा मुक्त रहेंगे जिसको उसे अपने लम्बे संकटग्रस्त जीवन में झेलना पड़ा था। शिवाजी के उदाहरण की भाँति बाजीराव के उदाहरण से बुन्देलों तथा उत्तर भारत के राजपूतों को प्रेरणा प्राप्त हुई। दूरस्थ पंजाब के सिक्खों में भी अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय से हो रहे धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना व्याप्त हो गयी। मुगल-साम्राज्य ह्रासमान था!

अपनी जन्मभूमि में बाजीराव के वापस आने पर उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी तथा उस पर हार्दिक धन्यवादों की वर्षा की गयी। परन्तु शाहू की भावना क्या रही होगी? क्या वह इन भव्य विजयों पर प्रसन्न हुआ? नहीं! न्याय तथा सद्भावना की उसकी चेतना उन अतिक्रमणों का स्वागत न कर सकती थी जो सुदूर देश में पेशवा-बन्धुओं ने किये थे। उसको भय था कि वे संकट तथा प्रतिफल उपस्थित कर देंगे। १२ अप्रैल १७२९ ई० को उसने लिखा अब फौजों के वापस आने का समय आ गया है। हमको बाजीराव को कुछ आवश्यक उपालम्भ देने हैं तथा उसको आज्ञा देनी है कि ऊदाजी पवार तथा होल्कर को अपने साथ लेकर तुरन्त हमारी सेवा में उपस्थित हो जाय। कृपया विलम्ब न करें।

जो प्रबन्ध छत्रसाल ने किया था वह उन उद्देश्यों के लिए उपयोगी होने की अपेक्षा अधिक कष्टप्रद सिद्ध हुआ जिनको प्राप्त करने का उसका आशय

---

२ मस्तानी की कहानी का वर्णन अन्यत्र किया जायेगा।

था। छत्रसाल के कार्यकर्ता हरिदास पुरोहित तथा आशाराम बाजीराव को प्रदान की गयी जागीर के विषय में कुछ धाराओं का समाधान करने हेतु पूना आये। इसी बीच में छत्रसाल का देहान्त हो गया तथा उसके दोनों पुत्र इस बात पर सहमत हो गये कि उनमें से प्रत्येक बाजीराव को सवा लाख का प्रदेश दे दे। अगले वर्ष जब चिमनाजी अप्पा बुन्देलखण्ड गया तो उसने समर्पित जिलों का भार सँभाल लिया तथा गोविन्दपन्त खेर को अर्जित प्रदेश का प्रबन्धकर्ता नियुक्त कर दिया। यह खेर तत्पश्चात् बुन्देले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन प्रदेशों की गणना इस प्रकार है—कालपी, हाता, सागर, झाँसी, सिरोंज, कुच, गढ़कोटा तथा हृदयनगर।[२१]

---

[२१] बाद को बाजीराव ने इनमें से कुछ जिले मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर को दे दिये। उसने बाँदा को अपना मुख्य निवास स्थान बनाया। इस प्रकार उसके वंशजों को बाँदा के नवाब की उपाधि प्राप्त हुई। कहा जाता है कि बाद में बाँदा की जागीर में ३३ लाख रुपयों का वार्षिक कर प्राप्त होता रहा।

१७ मार्च, १७३१	निजाम तथा बगश का नर्मदा पर सम्मिलन। उनके द्वारा मराठों के विरुद्ध उपायो का चिन्तन।
१ अप्रल, १७३१	डभई का युद्ध, त्र्यम्बकराव का वध, उसकी माता द्वारा शाहू से न्याय की याचना।
१३ अप्रल, १७३१	शाहू तथा सम्भाजी में वारना की सन्धि।
मई, १७३१	उमाबाई दाभाडे का बाजीराव से मेल।
१४ अप्रल, १७३२	*अमर्यसिंह द्वारा डाकोर में पिलाजी गायकवाड़ की हत्या।*
१७३२ ४०	सतारा मे सम्भाजी का पाँच बार आगमन।
२६ अप्रल, १७५१	सम्भाजी की माता राजसबाई का देहान्त।
२० दिसम्बर, १७६०	सम्भाजी का देहान्त।
६ दिसम्बर १७६१	राजाराम की रानी ताराबाई का देहान्त।

अध्याय ५

अन्य विजयें

[१७३०–१७३१]

१ दीपसिंह का दूत मडण्ल ।

२ सम्भाजी अधीन ।

३ राजबन्धुओं का यथाविधि मिलन तथा सहमति ।

४ सेनापति दाभाडे का निष्क्रमण ।

१ दीपसिंह का दूत-मण्डल—अब हम शाहू के दरबार की गतिविधियो के पुनरीक्षण के साथ यह अध्ययन करना है कि १७२९ ई० मे जबकि पेशवा और उसका भाई मालवा, गुजरात तथा बुन्देलखण्ड को अपने अधीन करने मे व्यस्त थे, शाहू तथा उसके निकटस्थ परामर्शकों की क्या मनोदशा थी। गुजरात का वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। पालखेड पर निजामुल्मुल्क का निरोध अस्थायी सिद्ध हुआ। उसने दक्षिण मे मराठा उन्नति के मार्ग मे विघ्न-बाधा उपस्थित करने के प्रयासो का त्याग नही किया था। गिरिधर बहादुर की पराजय और मृत्यु तथा बंगश की पराजय से सम्राट तथा उसके उत्तरदायी परामर्शकों के हृदयो मे भय व्याप्त हो गया था। अपनी भावी नीति के सम्बन्ध मे इन लोगो मे परस्पर मतभेद था। एक दल जिसके नेता खान दौरान तथा जयसिंह थे, इस पक्ष मे था कि मराठो से मेल किया जाय तथा साम्राज्य को स्थिर रखने के लिए उन पर विश्वास किया जाय। दूसरे दल के नेता सआदतखाँ मुहम्मदखाँ बंगश तथा अभयसिंह आदि थे। इनका मत था कि मराठो के विरुद्ध तुरन्त संयुक्त आक्रमण प्रारम्भ कर दिया जाये जिससे बल-पूर्वक उनका निराकरण किया जा सके। वजीर कमरुद्दीनखाँ तथा सम्राट इस बात पर कोई निश्चय न कर सके कि किस मार्ग का अनुसरण किया जाये।

दिल्ली का दरबार अपनी समस्त प्राचीन शक्ति नष्ट कर चुका था। जब उनको यह ध्यान आता कि मराठो के विरुद्ध औरंगजेब, बहादुरशाह तथा सैयद-बन्धुओ के अर्द्ध शताब्दी के वीर प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए थे तो वे अपने को आक्रामक युद्ध के लिए अति निर्बल समझने लगते थे। दूसरी ओर अपनी अन्तरात्मा मे वे नितान्त आत्मसमर्पण का विचार भी न कर सकते थे। इस अवसर पर जयसिंह ने आगे बढ़कर मराठो से निपटने का उत्तरदायित्व अंगीकार किया तथा अपने प्रयासों की पूर्वभुक्ति (पेशगी) के रूप मे शाहू से व्यक्तिगत प्रार्थना द्वारा माडवगढ को पुनः प्राप्त करने मे वह सफल भी हो

गया। कोई भी निश्चय करने से पूर्व यह जानना आवश्यक था कि वास्तव में मराठों के उद्देश्य क्या हैं, कहाँ तक वे मुगल दरबार से संधि करना चाहते हैं तथा सम्राट की ओर व्यक्तिगत रूप से राजा शाहू की क्या वृत्ति थी ? इन विषयों पर विश्वसनीय सूचना के बिना कोई कदम नहीं उठाया जा सकता था किन्तु यह सूचना विश्वसनीय कार्यकर्ताओं द्वारा ही व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हो सकती थी। अतः सम्राट तथा उसके दरबार ने यह निर्णय किया कि सतारा को एक दूत-मण्डल भेजा जाय जो राजा शाहू तथा पेशवा से मिल उनके साथ स्थायी समझौते की धाराओं पर वार्तालाप करे और साथ ही साथ निजामुल्मुल्क के विचारों तथा उसकी इच्छाओं का पता लगाये क्योंकि दक्षिण के सम्मानप्राप्त सूबेदार की स्थिति में उसका प्रभाव तथा उसका अनुभव किसी भी निश्चय के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। दूत मण्डल को यह अधिकार दिया गया कि वह विधिपूर्ण सहमति की विशेष शर्तों को निर्धारित करे जो बाद को प्रमाणित कर दी जायगी।

स्वयं जयसिंह ने संधि-वार्ता को आरम्भ किया। उदयपुर के राणा संग्रामसिंह से परामर्श करने के बाद उसने इस दूत मण्डल के व्यक्तियों का चुनाव कर लिया। उसने स्वयं दीपसिंह तथा मनसाराम पुरोहित को इसका सदस्य बनाया तथा संग्रामसिंह ने अपनी ओर से बाग्जी (व्याघ्रजी) को नियुक्त किया। ये राजदूत उपयुक्त उपाचारी-वर्ग सहित १७३० ई० की शरद् ऋतु में सतारा पहुँच गये। पूर्ण सौजन्य से उनका स्वागत किया गया। सितम्बर मास में स्पष्ट रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से इन प्रतिनिधियों ने पेशवा, फतहसिंह, रघुजी भोसले, प्रतिनिधि, सुमन्त, पुरन्दरे-परिवार तथा अन्य व्यक्तियों से परामर्श किया। सतारा में अपना कार्य समाप्त कर यह दूत-मण्डल निजामुल्मुल्क से मिलने औरंगाबाद गया। उसने भी समान सत्कारपूर्वक उनका स्वागत किया। वे नवम्बर के आरम्भ में औरंगाबाद से चल दिये और अपना वृत्तान्त जयसिंह तथा सम्राट के दरबार को दिया। उदयपुर के प्रतिनिधि बाग्जी का देहान्त अजन्ता के समीप फारसी में हो गया। मराठा सरदार तथा उनकी नीति के विषय में इन राजदूतों की बड़ी उच्च धारणा बन गयी। उनमें से मनसाराम पुरोहित को शाहू का रहन-सहन तथा सतारा का जीवन इतना पसन्द आया कि वह शीघ्र ही वहाँ वापस आ गया तथा उसने अपना शेष जीवन शाहू के साथ व्यतीत किया। दरबार में उसका काफी सम्मान हुआ।

इस दूत-मण्डल की धारणा यह थी कि मराठों का कोई आक्रमण करने या हमला करने की कुत्सापूर्ण मनोकामना न थी। उनका एकमात्र आग्रह केवल चौथ-प्राप्ति के ऊपर था किन्तु बदले में वे आवश्यकता के समय सम्राट की

सेवा तथा रक्षा के लिए भी तैयार थे। गुजरात तथा मालवा से वे क्रमशः ११ तथा १५ लाख रुपये का वार्षिक चौथ-कर माँगते थे। यदि इस प्रकार के किसी प्रबन्ध को सम्राट विधिपूर्वक अपनी अनुमति दे दे, तो भविष्य में मराठे किसी प्रकार का कष्ट उपस्थित न करेंगे। परन्तु निजामुल्मुल्क के विचार सर्वथा इसके विपरीत थे। बाजीराव के प्रति उसकी राय अच्छी न थी। उसकी स्पष्ट राय थी कि वह उसके वचन का विश्वास नहीं कर सकता, यद्यपि बल प्रयोग द्वारा उसका दमन करने का भी कोई सुझाव वह नहीं दे सका क्योंकि इस कार्य में उसे बारम्बार असफलता का मुँह देखना पड़ा था। निजामुल्मुल्क ने राजदूतों पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न किया तथा उनको प्रलोभन भी दिया कि वे सम्राट के समक्ष मराठा महत्त्वाकांक्षाओं के विषय में अत्यन्त प्रतिकूल वृत्तान्त प्रस्तुत करें। उसने बताया कि यदि हम मालवा के लिए १५ लाख रुपये वार्षिक चौथ देने को तैयार हो गये, तो वहाँ के सूबेदार वंगश का पूर्णतः नाश हो जायगा क्योंकि साधारण संग्रह में से इतना रुपया बचाना उसके लिए असम्भव था। उसके अनुसार गुजरात की स्थिति इससे भी ज्यादा खराब थी क्योंकि गायकवाड़ बांडे अभयसिंह तथा अन्य व्यक्ति उस प्रान्त पर अपने-अपने स्वत्व रखते थे तथा पेशवा उनको अपने नियन्त्रण में नहीं रख सकता था। दीपसिंह का सुझाव था कि पेशवा और जयसिंह सम्मिलित होकर बांडे तथा गायकवाड़ों का निराकरण कर सकते हैं। किन्तु निजामुल्मुल्क ने प्रत्युत्तर में कहा कि 'वे केवल ऐसा करने को कहते अवश्य हैं परन्तु बाजीराव का विश्वास कौन कर सकता है?' दीपसिंह ने उत्तर दिया— 'मैं बाजीराव के प्रतिज्ञा-वचन को पूर्णतया विश्वसनीय मानता हूँ क्योंकि वह तथा जयसिंह परम्परागत मित्र तथा एक दूसरे के प्रशंसक हैं।'

निजामुल्मुल्क दीपसिंह के अनुमानों का खण्डन नहीं कर सकता था। क्रोध के वशीभूत होकर उसने पूछा— 'सतारा में आप किसको विश्वास तथा सम्मान के योग्य समझते हैं? आपके विचार में राजा को किस पर विश्वास है?' दीपसिंह ने उत्तर दिया— 'निस्सन्देह बाजीराव पर। यही मालूम करने के लिए मैं विशेष रूप से दिल्ली से भेजा गया हूँ। वीरता, सत्यता, कूटनीतिक क्षमता या संगठनात्मक योग्यता में शाहू के दरबार का कोई व्यक्ति बाजीराव के तुल्य नहीं है। वही एक पुरुष है जिसका मराठा दरबार पर सर्वोपरि प्रभाव है।' निजाम ने पूछा— 'स्वयं राजा के विषय में आपकी क्या राय है?'

दीपसिंह— 'राजा भी सुयोग्य शासक है।'

निजाम— 'मेरी राय ऐसी नहीं है। उसमें गम्भीरता का पूर्ण अभाव है तथा गप्पें मारना उसे अधिक पसन्द है।'

दीपसिंह—"यदि वह बुद्धिमान तथा योग्य न होता, तो उसका राज्य इस प्रकार की उन्नति कैसे कर सकता था। वास्तव में वह बुद्धिमान तथा विचारशील शासक है और अपने कार्य को भलीभांति समझता है।'

निजामुलमुल्क के दरबार में नियुक्त मराठा प्रतिनिधि की इस विषय पर टीका इस प्रकार है— बाजीराव की जो भूरि भूरि प्रशंसा दीपसिंह ने की उस पर निजामुलमुल्क बहुत चिढ गया। उसने उत्तर दिया—'बाजीराव की प्रतिभा अथवा मनुष्यता के विषय में मेरी धारणा कदापि अनुकूल नहीं है।

दीपसिंह— आपके पास अपने ही आधार होंगे जिनके कारण उसके विषय में आपने इस प्रकार की धारणा बना रखी है। मुझे निश्चय है कि बाजीराव एक योग्य व्यक्ति है। वह अनुभवी तथा सज्जन है और अपने प्रतिज्ञा-वचन का सम्मान करता है। राजा के समस्त परामर्शकों में उसका चरित्र सर्वोपरि है। उसकी सेना उसे एक उत्कृष्ट व्यक्ति समझकर उस पर विश्वास करती है।'

निजाम— परन्तु वह असाधारण रूप से गर्वशील है। उस पर कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता है।

दीपसिंह—' आपके लिए यह बात मैं बुद्धिसंगत नहीं मानता हूँ कि बाजीराव सदृश योग्य व्यक्ति को आप अपना विरोधी बनाने का विचार करें जबकि स्वयं सम्राट आपको विद्रोही तथा पक्षत्यागी मानता है। आपका विरोध करने के लिए बाजीराव किसी समय भी एक लाख सेना एकत्र कर सकता है।

निजाम— क्या शाहू के दरबार में नारो बाबा (नारो राम) उतना ही योग्य व्यक्ति नहीं है ? मैंने गयासखाँ को सतारा भेजा था। उसकी राय है कि नारो बाबा को अपने विश्वास में लेकर वह सरलता से बाजीराव का दमन कर सकता है। आप शीघ्र ही देखेंगे कि किस प्रकार हम अपने इस उद्देश्य को सिद्ध करते हैं कि बाजीराव के घुटने टिका दें। सिधोजी निम्बालकर कण्ठाजी बाडे ऊदाजी पवार कान्हाजी भोसले तथा गायकवाडों ने हमसे प्रतिज्ञा की है कि वे ५० हजार सैनिक एकत्र कर लेंगे। वे सब हमारा साथ देने को तैयार हैं। उनके सहयोग से या तो हम बाजीराव को जिन्दा पकड़ लेंगे अथवा उसका इस प्रकार दमन कर देंगे कि वह अपना सिर फिर कभी न उठा सके।

दीपसिंह— जो कुछ भी मुझको उचित तथा न्यायसंगत प्रतीत होता था वह मैंने आपको कह दिया है। जो कुछ भी उपाय आप आवश्यक समझें उसके लिए आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

दीपसिंह के दूत मण्डल के इस वृत्तान्त से उस आजीवन संघर्ष की लिखित व्याख्या हमको प्राप्त होती है जो निजामुलमुल्क तथा बाजीराव के बीच में

हुआ, तथा जिसके परिणाम सुविख्यात हैं। यह भी सम्भव है कि मराठा मैत्री प्राप्त करके जयसिंह की इच्छा मालवा तथा आगरा के सूबा को प्राप्त करने की हो किन्तु जहाँ तक प्रत्यक्ष परिणामों का सम्बन्ध है दीपसिंह-दूत-मण्डल असफल सिद्ध हुआ। यह केवल उस समय की राजनीतिक परिस्थिति का एक स्पष्ट चित्र उपस्थित करता है तथा भावी घटनाओं की दिशा की व्याख्या करता है।

निजामुल्मुल्क मुगल सत्ता का योग्यतम वृद्ध प्रतिनिधि था तथा बाजीराव आयु में उससे ३० वर्ष छोटा होने के बावजूद मराठों का अल्पवयस्क उदीयमान नक्षत्र था। निजाम के यहाँ नियुक्त बाजीराव के प्रतिनिधि ने नवम्बर १७३० ई० में इस प्रकार की सूचना उसको भेजी— आनन्दराव सुमन्त ने आपके प्रति अति निन्दात्मक अपवचन निजामुल्मुल्क को लिखे है। ये शब्द अवश्य ही विपत्तिजनक हैं। निजामुल्मुल्क इन वृत्तान्तों को सत्य मानता है। उसके हृदय में विष है। वह षडयन्त्रकारी तथा छद्मपूर्ण है। कण्ठाजी, ऊदाजी तथा कान्होजी प्राय यहाँ आया करते हैं। आनन्दराव सुमन्त उनको प्रलोभन दे रहा है। उसने निजाम को आश्वासन दिया है कि बाजीराव के दमन का राजा शाहू को तनिक भी दुख नहीं होगा और न इस प्रकार की घटना पर किसी को खेद ही होगा। इसके बाद प्रतिनिधि बाजीराव को उसकी शिथिलता तथा उपेक्षा के विरुद्ध सचेत करते हुए लिखता है— 'आकस्मिक स्वप्न से भी मनुष्य को चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। निजाम के दो प्रमुख सहायक हामिदखाँ तथा ऐवाजखाँ इस दुनिया से चल बसे हैं। कुछ अन्य सरदारों को भी उसमें श्रद्धा नहीं रह गयी है। उसकी स्पष्ट राय है कि वह शीघ्र ही चेतनारहित हो रहा है तथा मृत्यु के निकट पहुँच रहा है जिसे वह आपके हाथों से प्राप्त होगा। आप भाग्यशाली हैं कि आपको शाहू सदृश धर्मपरायण राजा का आशीर्वाद प्राप्त है। जो आपका विरोध करेंगे अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे। निजाम की ओर से इस प्रकार की मूक प्रगति इस बात की सूचक है कि भविष्य में आप अधिक उच्च सफलताएँ प्राप्त करेंगे। गर्व का पतन अवश्यम्भावी है। ईश्वर सत्य का साथ देता है। कल दीपसिंह को विदाई दी गयी। उस समय उन दोनों की परस्पर उदासीनता स्पष्टतया दिखायी दे गयी। चन्द्रसेन जाधव बिगड रहा था वह शान्त किया जा रहा है। पेशवा का दमन तथा शाहू के राज्य को समाप्त करने में सफल होने की दशा में दाभाडे तथा बांडे ने निजाम को पत्र लिखकर उससे आश्रय पाने के आश्वासन की प्रार्थना की है। वे सम्भाजी को छत्रपति दाभाडे को सेनापति तथा कण्ठाजी बांडे को सरलश्कर बनाने की सोच रहे हैं। गमासर्ता से भी इसी आशय के पत्र प्राप्त हुए

है। इस पर निजाम ने कहा— सम्भाजी का हित मुझे अति प्रिय है। यदि हमसे बन सका तो हम शाहू को पदच्युत करके उसे गद्दी पर बठा देंगे और इस प्रकार उनकी पारिवारिक फूट को उत्तेजित करके अपनी स्वार्थ सिद्धि करेंगे। बिना हमारी प्रार्थना के यह सुअवसर उपस्थित हुआ है, यद्यपि शाहू अथवा सम्भाजी में से किसी की भी पराजय से हमारा कोई सरोकार नहीं है। हमारे लिये तो प्रत्येक दशा में एक शत्रु कम हो जायगा अतः हम किसी भी स्थिति से सन्तुष्ट होंगे।

निजाम के केन्द्र स्थान से बाजीराव के एक अन्य प्रतिनिधि ने इस प्रकार लिखा है— आप अति सावधान रहें। यहाँ पर प्रतिनिधि आपके विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा है। यह निश्चित अपकार है। इसका प्रतिकार करना आवश्यक है। निजाम को शाहू की मित्रता खोने का भय है। चूंकि बाजीराव का भय उसके हृदय में प्रवेश कर गया है वह ऊपर से साधु-वचन बोलता है।

विभिन्न दिशाओं से नित्य प्रति ऐसे ही वृत्तान्त बाजीराव को प्राप्त हो रहे थे। ऐसी दशा में असावधान रहना उसके लिए पागलपन ही होता। शाहू तथा मराठा राज्य की सुरक्षा उस पर निर्भर थी। उसने अविलम्ब शाहू को सारा हाल बताकर उसके मन में यथासमय विपत्तिपूर्ण परिस्थिति की वास्तविक चेतना उत्पन्न कर दी। निजामुल्मुल्क दाभाडे तथा अन्य विश्वासघातियों से मिलकर यह परिस्थिति उपस्थित कर रहा था। इस प्रकार सम्भाजी तथा दाभाडे दोनों के निग्रह की आवश्यकता प्रस्तुत हो गयी। इस कार्य में बाजीराव दो वर्षों तक (१७३० तथा १७३१) व्यस्त रहा। यहाँ अब हम इसकी ओर ध्यान देना है।

२ सम्भाजी अधीन—शाहू का एक गार्हस्थ्य संघर्ष जो १७०७ ई० में दक्षिण में उसके प्रवेश पर आरम्भ हुआ था कई करवट बदल चुका था परन्तु इस समय तक समाप्त न हुआ था। निजामुल्मुल्क द्वारा अकारण आक्रमण जो पालखेड में उसकी पराजय पर ही समाप्त हुआ वह भी सम्भाजी द्वारा ही आरम्भ किया गया था—इसका वर्णन पहले हो चुका है। इसके बाद भगवन्तराव अमात्य तथा उदाजी चह्वाण ने अनुत्साहपूर्वक उसके पक्ष का समर्थन किया। चन्द्रसेन जाधव को साहस न हुआ कि शाहू तथा बाजीराव के विरुद्ध किसी प्रवृत्ति में सक्रिय भाग ले सके। किन्तु शाहू सदैव यथाशक्ति अपने राजभ्राता से मेल करने का प्रयत्न करता रहा। जब उसने स्पष्ट विद्रोह कर दिया तथा १७२७ ई० में निजामुल्मुल्क की शरण ली तो शाहू ने उसको एक पत्र लिखा। इसको यहाँ पूरा उद्धृत कर देना उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें उन आदर्शों का वर्णन है जिनका अनुसरण मराठा राजा के रूप में शाहू कर

रहा था। इसम उस पद्धति का भी वणन है जिसका उपयाग वह अपने शत्रुआ क प्रति अपन व्यवहार म कर रहा था।

"यह राज्य ईश्वर की दन है। यह आशा आप कमे कर सकते हैं कि एक मुसलमान की रक्षा प्राप्त करके आपको सफलता मिल सकती है ? यदि आपकी इच्छा थी कि आपका अपना एक अलग राज्य हो, तो आप अपनी इच्छा को मुख पर प्रकट कर सकते थे। हमारे पास अग्रगण्य क्षमता सम्पन्न अनेक व्यक्ति हैं जिनम से कुछ आपका साथ देत तथा आपके लिय अपना राज्य बना देत। या आप अपनी ही क्षमता द्वारा अपना राज्य बना लेत। इस समय हम नवीन प्रदेश प्राप्त कर रह हैं उनको हम अपने राज्य मे मिला लेंगे। य वे प्रदेश है जिन पर मुगलो न अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। आप भी इसी प्रकार के माग का अनुसरण कर सकते थे तथा अपना प्रभाव स्थापित कर सकत थे। परन्तु जो कुछ हमन प्राप्त किया है, उसमे हिस्सा माँगना तो ठीक नही है। आपके पूज्य पिता दिवगत राजाराम महाराज जिंजी तक गये और अपने महान् व्यक्तिगत प्रयासो द्वारा अन्त म उन्होने अपने लिय एक राज्य स्थापित कर लिया। अपने घर महाराष्ट्र वापस आकर उन्होने धनी तथा प्रसिद्ध नगरो को लूटा तथा इतिहास मे अपना नाम विख्यात कर लिया। आप इस बात से भलीभाति परिचित होग कि उनकी हमारे कल्याण म कितनी तीव्र रुचि थी तथा उन्होने कितने प्रयत्न किय कि हमको शाही विरोध से मुक्त करा दें। यह सब जानते हुए भी एक मुसलमान सूबदार की शरण की इच्छा करना आपके लिए उचित न था। आप तुरन्त मुगलो का साथ छोड दें और हमार पास आ जायें। जिस किसी वस्तु की आपको आवश्यकता हो, वह हम स्वेच्छा से अति प्रसन्नतापूवक आपको दे देंग। परन्तु राज्य म हिस्सा माँगना धर्मानुमोदित नही है। इस पाप माग का आप त्याग दें। चन्द्रसेन जाधव का यह आचरण अति निन्दनीय है कि वह हमारे प्रति विश्वासघाती सिद्ध हुआ तथा उसने एक मुगल सूबेदार के अधीन सेवा स्वीकार कर ली। देवगिरि के रामदेव राव के जाधव परिवार का वशज होते हुए भी उसने स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र धम के विरुद्ध आचरण किया है—अर्थात उस पवित्र नीति के विरुद्ध जिसको हमारा धम विहित करता है। आपम अत्यन्त मूर्खता हुई कि इस प्रकार के धमभ्रष्ट व्यक्ति के परामर्शानुसार आपने आचरण किया तथा मुसलमानो के हितो की सेवा की।

इस आदेशात्मक पत्र का कोई प्रभाव सम्भाजी पर न पडा, परन्तु शीघ्र ही उसके सेनापति रानोजी घोरपडे उसके अमात्य भगवन्तराव तथा अन्य अधिकारियो न घृणावश उसका पक्ष त्याग दिया और शाहू के समक्ष अपनी

सेवाएँ अर्पित कर दी। अपनी का प्रभावहीन ऊदाजी चह्वाण कुछ समय तक सम्भाजी का एकमात्र सहायक रह गया। जब १७२९ ई० म बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा मालवा और बुन्देलखण्ड म व्यस्त थे ऊदाजी न सम्भाजी के ही सकेत पर शाहू के प्रदेशो को लूटा तथा उसके लिए सकट उत्पन्न कर दिया। तब १७३० ई० के आरम्भ म स्वय शाहू ने ऊदाजी के विरुद्ध अभियान किया। एक दिन जब शाहू शिकार के लिए गया हुआ था ऊदाजी के कुछ कायकर्ता उसकी हत्या करने की नीयत से आये किन्तु षडयन्त्र का पता लग गया तथा अपराधियो को दण्ड दिया गया। इस पर शाहू ने अपनी साधारण समान वृत्ति का त्याग कर दिया और त्र्यम्बकराव दाभाडे को एक विशाल सना सहित सीधे सम्भाजी के प्रदेश पर प्रयाण की आज्ञा प्रदान की। स्वय शाहू का डेरा वारणा नदी पर रहा। माच १७३० ई० मे वारणा के दूसरे तट पर लग हुए सम्भाजी के शिविर पर प्रतिनिधि ने आक्रमण किया। सम्भाजी तथा ऊदाजी दोनो अलग अलग परास्त हुए और पन्हाला को भाग गये। जब सम्भाजी का शिविर लूटा गया तो उसकी चाची ताराबाई तथा रानी जीजाबाई सहित समस्त परिचारी वग पकड लिया गया। वे बन्दियो के रूप मे शाहू के सम्मुख उपस्थित किये गये। इस अवसर पर शाहू के हृदय का सौजन्य पुन प्रकट हो उठा जिसस समस्त राजमहिलाओ को आश्चय हुआ। उसने उन सबसे उचित सम्मान के साथ सप्रेम वार्तालाप किया तथा पन्हाला मे सम्भाजी के पास उनको वापस जाने की आज्ञा प्रदान की। ताराबाई ने जो सम्भाजी के बन्धन म थी शाहू के साथ सतारा म ही रहना पसन्द किया। उसकी सुविधाओ का उचित प्रबन्ध करने के लिए यादो गोपाल खटावकर उसका गृह प्रबन्धक नियुक्त किया गया। उसकी स्वाधीनता पर वे ही प्रतिबन्ध लगाये गये जिनको वह पन्हाला म सहन कर रही थी। तदुपरान्त शाहू तथा ताराबाई वर्षाऋतु व्यतीत करने शिविर से सतारा वापस आये। मेल मिलाप का यत्न करने के लिए उसन सम्भाजी का पीछा करने की योजना त्याग दी। सम्भाजी को अब अपनी निराशाजनक वस्तु स्थिति का ज्ञान हुआ। भगवन्तराव अमात्य इस विषय म लिखता है सम्भाजी के काय नित्य प्रति बिगडते गय। उसके प्रशासन स न्याय चरित्र विवेक आदि गुणो का लोप हो गया। उनका अभाव सुस्पष्ट दिखायी देन लगा। उसके यहाँ एक भी ऐसा पुरुष नही रहा जिसको सज्जन कहा जा सके।

उसके शुभचिन्तको ने तथा शायद विशेषकर उसकी रानी जीजाबाइ ने सम्भाजी को परामश दिया कि वह शाहू की दया का आश्रय ले और उससे शत्रुता जारी रखन की बजाय जहाँ तक सम्भव हो सके समझौता कर ले,

क्योंकि शाहू के साधनों के सामने उसकी सफलता की कोई आशा न थी और शाहू ने विशालगढ तथा सम्भाजी के अन्य स्थानों को हस्तगत करने के लिए पहले ही सेनाएँ भेज दी थीं। कान्हाजी चव्हाण ने भी सम्भाजी का पक्ष त्याग कर शाहू के अधीन सेवा स्वीकार कर ली थी।

सतारा में ताराबाई की उपस्थिति से विचारों के आदान प्रदान के लिए एक मार्ग खुल गया। सम्भाजी से आग्रह किया गया कि वह स्वयं शाहू से आकर मिले, क्योंकि वे पहले कभी नहीं मिले थे। शाहू ने उसको प्रेमपूर्ण व्यक्तिगत पत्र लिखा और प्रायश्चित्त की भावना से उसके आगमन पर उसके भव्य स्वागत का आश्वासन दिया। प्रत्युत्तर में अक्टूबर १७३० ई० में सम्भाजी ने शाहू को निम्नांकित पत्र लिखा

"पूजनीया मातु श्री साहब (ताराबाई) द्वारा प्रेषित परस्पर हार्दिक तथा स्थायी मेल मिलाप के लिए आपका सौजन्यपूर्ण अभिवादन तथा आपकी सच्ची व हार्दिक इच्छाएँ हमको प्राप्त हो गयी हैं। उनसे हमारा हृदय प्रसन्न हो गया है। आपके सदृश प्रसिद्ध तथा ज्येष्ठ व्यक्ति का यह सन्देश अत्यन्त स्वागत-योग्य है। यह सर्वथा उचित है। मैं आपकी भावनाओं को उतने ही उत्साह से प्रकट करता हूँ। इससे अधिक हमारे लिये क्या श्रेयस्कर हो सकता है कि हमारे मतभेद सदा के लिए दूर हो जायें तथा हम में पूर्ण स्नेह सदैव वर्तमान रहे। महाराणी ने हमको बहुत पहले परामर्श दिया था कि हम बावाजी प्रभु को आपके पास उभयसम्मत कार्यवाही का प्रबन्ध करने तथा उस पर वार्तालाप करने के लिए भेजें। परन्तु अस्वस्थता के कारण वह आज तक यह यात्रा न कर सका। अब वह पहले की अपेक्षा स्वस्थ है और मेरा यह पत्र आपके पास ला रहा है। हमारे पारस्परिक झगडों की शुभ समाप्ति के लिए यह पत्र हमारी हार्दिक इच्छा का प्रतीक मात्र है।'

भगवन्तराव अमात्य ने भी उसी समय शाहू को लिखा "कोल्हापुर का दरबार नीच तथा असभ्य व्यक्तियों का केन्द्र-स्थान बन गया है। मैं बहुत कृतज्ञ हूँगा यदि हुजूर मुझे अपने चरणों में सेवा करने का अवसर प्रदान करें।"

सम्भाजी के पत्र में वर्णित कोल्हापुर का बावाजी नीलकण्ठ प्रभु पारसनीस चतुर तथा प्रभावशाली व्यक्ति था। छत्रपति के वंश के इन दो भाइयों में स्थायी मेल स्थापित करने के लिए उसने हृदय से परिश्रम किया। व्यवहार रूप में शाहू सम्भाजी की प्रत्येक माँग से पूर्ण सहमत था। उसने राजदूत को वस्त्र तथा उपहार देकर वापस भेज दिया। उसने उसके साथ अति अनुनयपूर्ण शब्दों में लिखा हुआ एक पत्र भी भेजा जिसे पढकर सम्भाजी सदृश कठोर व्यक्ति का भी हृदय पिघल गया। सम्भाजी का उत्तर भाषा तथा भावना का

सदव आन्श रहेगा। उसने यह स्वत्प सन्देश भेजा— आपकी दवी कृपा तथा आपके विचित्र प्रेम ने मेरे ममस्थल को वध न्िया है। मेरे लिय आप पिता तुल्य है। इस स्थिति म यह आपको शोभा देता है कि आप मेरा ध्यान रख। इस आचरण से आपको सदव यश प्राप्त होगा।

३ **यथाविधि मिलन तथा सहमति**—सम्भाजी ने इस प्रकार अपने उच्च स्वत्व प्रतिपान्न को त्याग दिया तथा वह इस बात पर सहमत हो गया कि जो कुछ भी शाहू उन्ारतापूवक अपनी इच्छा से देगा वह उसको स्वीकार कर लेगा। परन्तु शाहू ने भी किसी प्रकार की कोई सकीणता उपस्थित न होने दी और अवसर के अनुकूल ही आचरण किया। उसने सम्भाजी के पहले पापा के प्रति कोई कटुता न प्रकट होने न्ी। नवम्बर १७३० ई० मे शाहू ने उच्च अधिकारियो तथा प्रभावशाली व्यक्तियो का एक मण्डल आदर सहित सम्भाजी को अपने साथ पन्हाला ले आने के लिए भेजा। फतेहसिंह भोसले प्रतिनिधि नारवाबा मन्त्री बालाजी बाजीराव भवानीशकर मुशी अम्बाजीपन्त पुरन्दरे कृष्णाजी दाभाडे निम्बालकर तथा अन्य अनेक व्यक्ति विशाल सेना लेकर पन्हाला को गये। विशेष आयोजित दरबार म समान आदर के साथ उनका स्वागत किया गया। यहाँ पर उन सब ने सम्भाजी को नजरें दी तथा हाथियो घोडो आभूषणो तथा वस्त्रो के उपहार भट किये। बदले मे विदाई के अवसर पर उन सबको भी उसी प्रकार के वस्त्र दिये गये। सम्भाजी तथा उसके दल को साथ लेकर वे पन्हाला से १६ दिसम्बर को चल पडे। लौटते समय उन्होने अपना माग छोटी छोटी मजिलो म तय किया। बन्गाँव पर वारणा नन्ी को पार कर वे उचित समय पर कर्हाड के समीप पहुँच गये। शाहू पहल से ही कर्हाड पहुँच गया था। यह स्थान सतारा स लगभग ३० मील दक्षिण पूव म है। यहाँ कृष्णा नन्ी के तट पर भव्य शिविर स्थापित किया गया था। न्ोना राजबन्धुओ क मिलन क लिए कुछ मील दूर जाखिनवाडी नामक गाँव म स्थान नियत किया गया था। यहाँ नन्ी तट पर एक विशाल सुसज्जित शामियाना लगाया गया था। न्ोना न्लो क सरन्ारो और सनिको क समुन्ाय की सन्या कहा जाता है दो लाख क ऊपर थी। वास्तविक सम्मिलन क लिए शक सवत् १६५२ की फाल्गुन सुन्ी २ शनिवार तदनुसार २७ फरवरी १७३१ ई० के तीसर प्रहर का शुभ समय निश्चित किया गया था। नाना प्रकार के वाद्य वान्नो तथा सगीत क मध्य शाहू तथा सम्भाजी बहुमूल्य झूलो स सज हुए हाथियो पर बठकर एक-दूसरे की ओर मिलन क लिए चल। माग म दोनो ओर सुसज्जित सनिको की लम्बी-लम्बी पक्तियाँ खडी कर दी गयी थी जो उनक प्रति अपना आन्र-सत्कार भेंट कर रही थी। जस ही

उनकी निगाह एक दूसरे पर पड़ी वे अपने हाथियों से उतर पड़े और समीप आकर एक-दूसरे से सप्रेम लिपट गये। शास्त्र विहित परम्परागत विधि का उन्होंने पूर्ण पालन किया। अब वे दरबार में गये जहाँ पर दोनों दलों के लोगों ने उनको प्रणाम किया। दरबार के बाद दोनों राजा एक ही हाथी पर सवार होकर शाहू के शिविर में गये। सायंकाल को विशाल भोज का प्रबन्ध किया गया जिसके बाद बहुमूल्य पुरस्कारों का वितरण किया गया। दोनों राजाओं ने कुछ दिन साथ-साथ शिविर में व्यतीत किये। वे परस्पर स्वतन्त्रतापूर्वक वार्तालाप करते तथा शिकार, संगीत, खेलों तथा अन्य विनोदों का आनन्द लूटते रहे। प्रत्येक एक दूसरे को प्रसन्न करने का यथाशक्ति प्रयत्न करता। प्रत्येक दिन के लिए कोई नवीन कार्यक्रम रखा जाता। इस अवसर का आनन्द और भी अधिक हो गया क्योंकि होली के पर्व का समारोह भी इसके साथ आ गया। यह १२ मार्च को प्रारम्भ हुआ। इसके लिए अतिथि तथा आतिथेय दोनों ही विशेष विनोदार्थ शाहूनगर को गये। इस समारोह में जो सुन्दर दृश्य उपस्थित हुए उनसे सम्पूर्ण महाराष्ट्र में हर्ष की लहर दौड़ गयी, और यह समारोह उस पीढ़ी के स्मृति-पटल पर चिरकाल तक जीवित रहा।

इस प्रकार वह गृह युद्ध समाप्त हो गया जिसका आरम्भ शाहू की मुक्ति पर हुआ था। एक शान्ति-सन्धि की रचना हुई। इसमें नौ धाराएं थीं। १३ अप्रैल, १७३१ ई० को यह प्रमाणित कर दी गयी। यह वारणा की सन्धि से विख्यात है, क्योंकि वह नदी दोनों राज्यों के बीच की सीमा रेखा निश्चित की गयी थी। इस नदी के दक्षिण का समस्त प्रदेश जो कि तुंगभद्रा तक फैला हुआ था सम्भाजी को स्वतन्त्र राज्य के रूप में समर्पित कर दिया गया। समस्त महत्त्वशाली विषयों में यह पूर्ण स्वतन्त्र रखा गया परन्तु वैदेशिक सम्बन्धों तथा रक्षा के विषयों में यह शाहू के ही अधीन रहा। यह भी नियत किया गया कि ठीक रामेश्वरम् तक तुंगभद्रा के आगे के दक्षिणी जिले दोनों के सम्मिलित प्रयास के लिए सामान्य मान लिये जायें। अपने राज्य का विस्तार करने के लिए सम्भाजी कभी बाहर नहीं निकला और न इस निमित्त उसने कोई प्रयास ही किया। जो क्षेत्र शाहू ने उसको १७३० ई० में दिया, वही क्षेत्र भारतीय गणराज्य में सम्मिलित होने के समय तक कोल्हापुर राज्य का क्षेत्र रहा। दो सौ वर्षों की उथल पुथल के बावजूद इसमें कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। शायद बेलगाम और कुछ अन्य स्थान कोल्हापुर के हाथ से निकल गये थे।

सम्भाजी का चरित्र तथा उसकी क्षमता दोनों ही सीमित थे। शाहू की उच्च स्थिति तथा शीघ्र गति से उन्नति करने वाले उसके पेशवाओं की अपेक्षा सम्भाजी महत्त्वहीन होता गया। यदि नम्र स्वीकृति की भावना से शाहू के

प्रति अधीनता स्वीकार करने में वह अधिक विनम्रता करता तो सम्भवतः उसका अस्तित्व ही नष्ट हो गया होता। गृह युद्ध के २३ वर्षों में समझौते की सम्भावना के तीन प्रयत्न स्पष्ट दीख पड़ते हैं—प्रथम १७०८ ई० में शाहू के अभिषेक के ठीक बाद, दूसरा १७२५ ई० में तथा अन्तिम इस भेंट में जो १७३१ ई० में हुई। प्रत्येक अवसर पर शाहू की शर्तें कम उदार होती गयी क्योंकि सम्भाजी ने स्पष्ट रूप से उनका सतत विरोध किया। इस प्रकार उस गृह युद्ध से जिसका आरम्भ ताराबाई ने किया और जिसको सम्भाजी ने भरपूर शक्ति से प्रचलित रखा कोई लाभ न हुआ और न इसके कारण शाहू की भावी उन्नति पर ही कोई वास्तविक प्रभाव पड़ा। वह जनसाधारण की दृष्टि में ऊंचा ही उठता गया। इसका कारण उसका उच्च व्यक्तिगत चरित्र तथा अपने समीप एकत्र व्यक्तियों की सेवा की वह छूट थी जो उसने योग्य व्यक्तियों को प्रदान की हुई थी।

सम्भाजी से शाहू के सम्बन्धों का यह परिणाम मराठा राज्य के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय सिद्ध हुआ है। महाराष्ट्र के केन्द्र में एक स्वतन्त्र राज्य सदैव के लिए स्थापित हो गया जो वैमनस्य का स्थिर कारण सिद्ध हुआ। कोल्हापुर के शासक सतारा के शासकों के पद के समान पद का दावा करते थे। अतः कोल्हापुर राज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप मराठा राष्ट्र का यह विभाजन स्थायी हो गया। १७४० ई० में बाजीराव के देहान्त पर जब सम्भाजी शाहू से मिलने सतारा आया तो नवनियुक्त पेशवा ने उसके साथ एक गुप्त समझौता कर लिया जिसके अनुसार छत्रपति के वंश की दोनों शाखाओं को संयुक्त करने का निश्चय हुआ। शाहू के कोई पुत्र न होने के कारण उसकी मृत्यु पर सम्भाजी को ही उसका उत्तराधिकारी बनाने का इसमें प्रस्ताव था। यदि इस प्रकार का प्रबन्ध स्थापित हो जाता तो अन्तर्दलीय संघर्ष का स्थायी कारण सदा के लिए नष्ट हो जाता।

वारणा की सन्धि से सम्भाजी की स्थिति संभल न सकी और न शाहू से उसके सम्बन्ध ही सर्वथा स्नेहमय रहे। वह प्रायः शाहू के निमन्त्रण पर कई बार सतारा आया तथा सदैव ही पूर्ण सम्मान तथा प्रेम से उसका आदर सत्कार किया गया। परन्तु विभिन्न क्षुद्र कारणों से वह अप्रसन्न तथा असन्तुष्ट ही रहा। उसके कुछ अपने ही अधीन व्यक्तियों ने उसकी स्पष्ट अवज्ञा की जिसे उसने समझा कि शाहू के कुछ सेवकों ने उनको उसके विरुद्ध उकसा दिया था। सम्भाजी का जन्म २३ मई १६९८ ई० को हुआ था और उसकी मृत्यु २० दिसम्बर १७६० ई० को हुई। यह विचित्र बात है कि सन्धि निश्चित होने के बाद शाहू या ताराबाई कभी फिर पन्हाला और कोल्हापुर में गये।

सम्भाजी की माता राजसबाई का देहान्त २६ अप्रल, १७५१ ई० को हुआ तथा छत्रपति राजाराम की वृद्धा पत्नी ताराबाई का देहान्त उसके १० वर्ष बाद ९ दिसम्बर, १७६१ ई० को हुआ।

४ सेनापति दाभाडे का तिरस्करण—इसका वर्णन पहले हो चुका है कि पैतृक नियुक्तियों का नियम किस प्रकार मराठा राज्य के लिए विनाशक सिद्ध हुआ। शाहू ने ११ जनवरी, १७१७ ई० को खाडेराव दाभाडे को सेनापति नियुक्त किया था। निस्सन्देह वह एक योग्य नेता था परन्तु शीघ्र ही सामर्थ्य रहित हो गया। वह उत्साही पेशवा (बाजीराव) की नवीनतम नीतियों तथा साहसिक कार्यों को कार्यान्वित करने में अयोग्य सिद्ध हुआ जिसके फलस्वरूप बाजीराव ने विवश होकर सेनापति के कर्तव्यों का अपहरण कर लिया। उसने अपनी स्वतन्त्र सेनाएँ एकत्र कर ली तथा अभियानों का स्वतन्त्र नेतृत्व भी किया, और इस प्रकार शनैः शनैः सेनापति तिरस्कृत कर दिया गया। इस प्रकार दाभाडे-परिवार धीरे धीरे पृष्ठभूमि में पड़ गया। वे अपना समय तथा अपनी शक्ति उद्वेग तथा दोषारोपण में व्यतीत करने लगे। शाहू इसको रोक न सकता था। खाडेराव का स्वास्थ्य बिगड़ गया था और अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में वह व्यक्तिगत रूप से असमर्थ हो गया था। उसके परिवार में षड्यन्त्र तथा कुचेष्टाएँ घर कर गयी। उसकी पत्नी उमाबाई तथा उसके पुत्र त्र्यम्बकराव ने अपने उद्धत आचरण तथा पेशवा के प्रति अपने विरोध से परिस्थिति को और भी विकट बना लिया यद्यपि ये दोनों अपने ढंग से उत्साही तथा योग्य थे परन्तु पेशवा के प्रति ईर्ष्यालु थे। जब २७ दिसम्बर १७२९ ई० को खाडेराव का देहान्त हो गया तो सेनापति के परिवार के लिए परिस्थिति विकराल रूप धारण करने लगी। ८ जनवरी, १७३० ई० को सतारा में शाहू ने त्र्यम्बकराव को उसके पिता के पद के वस्त्र समर्पित कर दिये।

गुजरात का प्रान्त तथा खानदेश के कुछ भाग शाहू ने सेनापति को उसके कार्यक्षेत्र के रूप में दे रखे थे। चिमनाजी अप्पा गुजरात में इसके पहले ही प्रवेश कर चुका था तथा उसने इसको सरबुलन्दखाँ से प्राप्त कर लिया था। अतः इस कारण से इसका आधा भाग पेशवा माँगता था। शाहू उनके अधिकारों का निपटारा न कर सका और पारस्परिक कलह प्रारम्भ हो गयी जिसके कारण अन्त में सशस्त्र संघर्ष हुआ। १७३० ई० के आरम्भिक मासों में चिमनाजी ने एक बड़ी सेना लेकर गुजरात में प्रवेश किया तथा सरबुलन्दखाँ से उस प्रान्त पर चौथ और सरदेशमुखी के मराठा अधिकारों को प्राप्त कर लिया। मालवा तथा महाराष्ट्र में लगी हुई शर्तों के समान ही यहाँ भी शर्तों

की रचना की गया। मराठा के विरुद्ध गुजरात पर अपना अधिकार रखने मे सरबुलन्दखाँ असफल सिद्ध हुआ था। अतः सम्राट ने उसको वापस बुला लिया और मारवाड के अभयसिंह को उसकी जगह पर नियुक्त कर दिया। इस कारण परिस्थिति और अधिक जटिल हो गयी। त्र्यम्बकराव ने शाहू के सम्मुख पेशवा के विरुद्ध उसके कार्यक्षेत्र मे हस्तक्षेप करने की शिकायत की किन्तु जब उसको यह स्पष्ट हो गया कि शाहू अपने कोमल स्वभाव के कारण पेशवा का सफल नियन्त्रण नही कर सकता है, तो वह स्पष्ट रूप से सशस्त्र संघर्ष के निमित्त तैयारियाँ करने लगा। १७३० ई० की शरद्‌ऋतु मे जबकि शाही राजदूत दीपसिंह मालवा के विषय मे शाहू से वार्तालाप कर रहा था यह कलह सतारा को आकुल किये हुए थी।

दाभाडे के अधीन बागलान, खानदेश तथा पूरबी गुजरात के कई शक्तिशाली स्थानीय सरदार थे। बाजीराव ने उनको अधिक आश्वासन देकर फुसला लिया। मुडाने के भाऊसिंह ठोके अमान के दलपतराव ठाके सिन्नार के कुँवर देशमुख पैठ के लक्षधीर दनपतराव बजाजी अटोले, आवजी कावडे तथा अन्य सरदारो को बाजीराव ने अपने अधीन सेवा स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। इस पर त्र्यम्बकराव तथा उसकी माता उमाबाई और अधिक क्रुद्ध हो गये। उन दोनो ने बाजीराव के इस आचरण के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया और बाजीराव के आकस्मिक आक्रमण के प्रतिकार हेतु निजामुल्मुल्क से सहायता देने की बातचीत शुरू कर दी। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि पालखेड पर अपने मानमर्दन के कारण निजामुल्मुल्क को कितनी तीव्र वेदना थी तथा वह स्वयं बाजीराव तथा शाहू के कुछ समर्थकों—यथा कान्होजी भोसले सरलश्कर निम्बालकर आदि को—प्रलोभन देकर अपने पक्ष मे लेने का प्रयत्न कर रहा था। जब बाजीराव के दमन का प्रस्ताव लेकर दाभाडे उसके पास आया तो हम समझ सकते है कि निजाम ने किस उत्साह से इस प्रस्ताव का स्वागत किया होगा। वह भलीभाँति जानता था कि यदि उपर्युक्त स्थानीय सरदारो ने बाजीराव का नेतृत्व स्वीकार कर लिया तो उससे उसके (निजामुल्मुल्क) प्रदेश की रक्षा पर भारी प्रभाव पडेगा क्योकि उसका प्रदेश उनके क्षेत्रो के साथ मिला हुआ था अतएव अपने शक्तिशाली तोपखाने द्वारा उसने उनको एक एक करके कुचलना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार १७३० ई० के अन्त के समीप उत्तरी दक्षिण का वायुमण्डल गम्भीर हलचलो तथा निकटवर्ती युद्ध के लक्षणो से विक्षुब्ध हो गया।

बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा ने विपत्ति को पहले से ही जान लिया था, और वे निजामुल्मुल्क की शक्ति का अनुमान लगाने के बाद वीरतापूर्वक

उसका सामना करने को तैयार हो गये थे। शाहू ने अपनी ओर से सानुनय तक तथा अनुरंजन की अपनी साधारण विधि आरम्भ कर दी। उसने अपने व्यक्तिगत प्रतिनिधि दाभाडे के पास भेजे ताकि वे उसको युक्तिसंगत समझौता स्वीकार करने पर तैयार कर लें तथा बाजीराव को आज्ञा दी कि जो कुछ भी दाभाडे मांगे वह देकर उसको शान्त कर दे। इस पर चिमनाजी ने कटु उत्तर दिया 'यदि दाभाडे हमारे लिये कठिनाई उत्पन्न करता है तो हम भी उसकी दुष्टता को रोकने में समर्थ हैं। परन्तु यदि वह यहाँ से जाकर निजाम के साथ मिलता है तो हुजूर उसके सेनापति के पद का अपहरण करने में कदापि संकोच न करें।' इस पर शाहू ने अपने विश्वस्त कार्यकर्ता अम्बाजी त्र्यम्बक नारो राम तथा नारो गंगाधर मजूमदार को त्र्यम्बकराव तथा उमाबाई से मिलने तथा उनको शान्तिमय निपटारे के लिए उचित युक्तियुक्त मार्ग पर लाने के लिए भेजा। किन्तु दाभाडे ने मुख्य विषय पर बातचीत करने की बजाय सन्दिग्ध वाद विवाद तथा साधारण आरोपों में ही समय नष्ट कर दिया। उसने पेशवा के विरुद्ध अपनी शिकायतों का वर्णन किया तथा संधि के प्रति कोई इच्छा प्रकट नहीं की। इस समस्त काल में गुप्त रूप से वह निजामुल्मुल्क के साथ षडयन्त्र की बातचीत करने तथा उसके साथ मिलकर विद्रोही योजनाओं की रचना में व्यस्त रहा। उसकी राजभक्ति की निस्सार उक्तियों के कारण पेशवा सावधान हो गया। उसने अपने हृदय में निश्चय कर लिया कि वह कदापि विलम्ब न करेगा। सेनापति ने शाहू के कार्यकर्ताओं से कहा 'हम अपनी भूमि का एक इंच भी न छोड़ेंगे तथा जो सेवा हमसे बन पड़ेगी, करेंगे।' जब शाहू को मालूम हुआ कि दाभाडे निजामुल्मुल्क के साथ हो गया है तो उसने उसको प्रतिरोधस्वरूप निम्नलिखित पत्र[1] भेजा

"आप राजभक्त हिन्दू सेवक रहे हैं और इसी रूप में हमने सदैव आपके साथ व्यवहार किया है तथा आप पर पूर्ण कृपा रखी है। तब भी आप शत्रु से मिल गये हैं। आप किसी कारण क्रुद्ध हो गये हैं जिसका पता हमको नहीं है। आप जानते ही हैं कि देशद्रोहियों का क्या परिणाम होता है। अतः हमारा आपसे आग्रह है कि अपने समस्त अपराधों को भुला दें और यह स्मरण करें कि आपके पूर्वजों का हमारे प्रति कैसा व्यवहार रहा है। शत्रु की सेवा करने की बजाय राज्य की सेवा करें जिससे राष्ट्र आपके आचरण पर गर्व कर सके। आप यह प्रयास करें कि हमारी आज्ञा का पालन हो तथा आप हमसे अधिक

---

[1] पेशवा दफ्तर, १७, १२।

कृपाएँ प्राप्त कर। केवल इसी प्रकार का आचरण उत्तम होगा। आपको राष्ट्र के शत्रुओ का साथ देने की बजाय उन्हे अपने अधीन करना है। आपका मराठा राज्य के प्रसरण के निमित्त ही काय करना है। यह चेतावनी आपको इस विश्वास के साथ भेजी जाती है कि आप अवश्य ही राज्य के निष्ठावान सेवक बन रहेगे तथा दरिद्र निरपराध रैयत को कष्ट न देंगे।' यह पत्र उपदेशात्मक होने के अतिरिक्त प्रसगवश मराठा राज्य के उद्देश्यो की व्याख्या भी करता है। उनका अनुसरण करने म शाहू की नीति की भी व्याख्या इसम है। किन्तु दाभाडे पर इसका कोई प्रभाव न पडा और इस समस्या ने शीघ्र ही उग्र रूप धारण कर लिया।

शाहू के परामशको मे से बाजीराव को सवथा अलग कर देने के लिए निजाम ने भारी षडयन्त्र की रचना की तथा इस षडयन्त्र मे दाभाडे और कुछ अन्य सामन्त तुरन्त सम्मिलित हो गये। इसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि केवल दक्षिण के ही नही वरन मालवा तथा गुजरात के भी राजनीतिक प्रश्नो के निणय की सर्वोपरि शक्ति शाहू के हाथो से निकलकर निजामुलमुल्क के हाथो म आ जाये। उदाजी पवार तथा उसका भाई आनन्दराव, पिलाजी गायकवाड तथा बाँडे-बन्धु चिमनाजी दामोदर तथा अन्य सरदार निजामुलमुल्क और दाभाडे के साथ इस षडयन्त्र म सम्मिलित हो गये। इस प्रकार पेशवा को कुचलकर वे शाहू की स्थिति के लिए गम्भीर सकट उपस्थित करना चाहते थे। बाजीराव शान्तिपूवक इस प्रकार की स्थिति को सहन न कर सकता था। वह अग्रदृष्टि तथा सावधानी से अपने शत्रुओ का सामना करने के लिए तयार हो गया।

तब शाहू ने बाजीराव को गुजरात जाकर दाभाडे को उसके सम्मुख सतारा मे उपस्थित करने की आज्ञा दी क्योकि दाभाडे ने अधिकृत प्रतिनिधियो के द्वारा भेजी गयी उसकी लिखित आज्ञाओ एव आदेशो का पालन नहीं किया था। इस समय शाहू अपने भाई सम्भाजी स अपनी गाहस्थ कलह के निपटान म व्यस्त था तथा अनुनय के महत्त्व मे श्रद्धा रखने के कारण उसका विश्वास था कि यदि उसके भाई सम्भाजी की भाँति दाभाडे को भी किसी प्रकार सतारा लाया जा सके तो वह स्वय शान्ति तथा सद्भावना के वातावरण म सफलतापूवक झगडे का निपटारा कर लेगा। अत जब अन्य सब उपाय असफल हो गय तो शाहू ने बाजीराव को, दाभाडे को सतारा ले आने के लिए भेजा। अब बाजीराव के लिए परिस्थिति बडी नाजुक हो गयी।

पेशवा-बन्धुओ ने दशहरा के शुभ दिवस पर १० अक्टूबर १७३० ई० को पूना स प्रयाण किया। उनका उद्देश्य दाभाडे को उस कुमाग पर चलने से

ोकना तथा व्यक्तिगत समाधान के लिए उसको सतारा आने पर विवश कर ना था। परन्तु जब वे अपने कार्य पर आगे बढ़े, तो उनको उन गहन ोजनाओं का परिचय हुआ जिनकी रचना दाभाडे ने निजामुल्मुल्क के साथ पूर्ण रामर्श के बाद की थी और जो व्यक्तिगत रूप से शाहू तथा मराठा राज्य के ार्मिक हितों के प्रति तुरन्त सकट उपस्थित करने वाली थी।

इसी समय पर सम्राट् ने मुहम्मदखाँ बंगश को मालवा तथा अभयसिंह को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया जिससे वे इन प्रान्तों में मराठा आक्रमण को रोक दें। बंगश ने उज्जैन पहुँचकर मराठों के दमनार्थ निजामुल्मुल्क को अपना हार्दिक सहयोग समर्पित किया। इस उद्देश्य के निमित्त प्रभावशाली उपायों को संगठित करने तथा निश्चित सफलता प्राप्त करने के लिए विशाल संयुक्त प्रयास हेतु दोनों सामन्तों ने निश्चय किया कि अपनी सेनाओं को दाभाडे की सहायता के निमित्त अग्रसर करने के पहले उन्हें परस्पर मिल लेना चाहिए, क्योंकि जब तक उन सबके बीच में पूर्ण संगठित योजना तैयार न हो जाये, वे पेशवा के विरुद्ध अकस्मात् युद्ध का आरम्भ नहीं कर सकते थे। विरोधियों की प्रगति से बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा ने अपने को पूर्णतया परिचित रखा तथा अपूर्व चातुर्य और बुद्धिपूर्ण पूर्वाभास से उनकी योजनाओं को प्रभावहीन करने के लिए उन्होंने शीघ्र कार्यवाही की।

१७३० ई० के अन्त के समीप निजामुल्मुल्क ने अभियान के आरम्भ और उचित समय पर दाभाडे के साथ होने के लिए औरंगाबाद से कूच कर दिया। वह बुरहानपुर तक गया जहाँ पर उसको मालूम हुआ कि बंगश उज्जैन में है। आरम्भिक परामर्श के बाद उन्होंने प्रथम बार व्यक्तिगत रूप से मिलने तथा एक-दूसरे के साथ भेंट करने का निश्चय किया और उसके बाद निश्चित सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी योजनाओं को परिपूर्ण करने का विचार किया। उच्चपदस्थ दो उत्तरदायी सूबेदार केवल सीमा पर ही भेंट कर सकते थे। अतः वे दोनों नर्मदा पर अकबरपुर के घाट की ओर बढ़े जहाँ पर १७ से २८ मार्च, १७३१ ई० के लम्बे समय तक एक-दूसरे के साथ रहे तथा अपनी योजना के विवरणों को निश्चित करके विदा हो गये। बंगश उज्जैन वापस आ गया तथा निजाम शीघ्र ही गुजरात में प्रवेश कर गया जहाँ बाजीराव पहले से ही दाभाडे की खोज में लगा हुआ था। अपने विश्वस्त सहायकों तथा गुप्तचरों के एक दल के साथ मल्हारराव होल्कर भी नर्मदा के समीप ठहरा हुआ था। उसकी निगाह निजाम और बंगश की योजनाओं तथा प्रगतियों पर लगी हुई थी और तत्सम्बन्धी प्रत्येक मार्मिक सूचना को वह तुरन्त बाजीराव

के पास भेज दिया था। उपरान्त वर्णित सम्मेलन के दौरान में वह बराबर बंगश को तंग करता रहा था।

इसके विपरीत मराठों ने निजाम तथा बंगश के इस गुप्त सम्मेलन को गम्भीर संकट की दृष्टि से देखा। निजाम तो कुख्यात विश्वासघाती तथा षड्यन्त्रकारी था ही, किन्तु बंगश को मराठों ने निजाम का [illegible] के लिए चुनाया था। अब जब पेशवा सामन्त मराठों की परिवर्द्धित शक्ति को कम करने के लिए गुप्त योजनाओं की रचना कर रहा था मुहम्मदखाँ बंगश को आदेश दिया गया कि वह अपने सरकारी कर्तव्यों का पालन करे। परिस्थिति की इस जटिलता द्वारा ही दाभाड़े निर्बल हो गया तथा उसी अनुपात से पेशवा प्रबल हो गया। उत्तरी प्रदेशों में इस जटिल परिस्थिति को सतारा में शाहू पूर्णतया न समझ सका। उसके पास किसी झगड़े को शान्त करने का केवल एक ही उपाय था और वह था झगड़ा करने वालों को समाधान के लिए अपने सम्मुख उपस्थित करना। परन्तु निजाम द्वारा प्रतिज्ञात सहायता पर विश्वास करके दाभाड़े ने बाजीराव के साथ सतारा आने से इन्कार कर दिया। इस पर शाहू को संघर्ष का भय हो गया और उसने १५ दिसम्बर १७३० ई० को पेशवा को गुजरात में आधा हिस्सा देने की अपनी आज्ञा को रद्द कर दिया। उसकी आशा थी कि इस प्रकार दाभाड़े सन्तुष्ट हो जायगा। पेशवा तुरन्त इस आज्ञा का पालन न करके और घटना चक्र की प्रतीक्षा करता रहा।

आवजी कावडे अम्बाजी त्र्यम्बक अथवा मजूमदार तथा अपने अन्य निष्ठावान साथियों सहित बाजीराव तथा चिमनाजी ने खानदेश की ओर प्रयाण किया। यहाँ पर चिमनाजी निजामुल्मुल्क की प्रगति पर निगाह रखने के लिए ठहर गया तथा बाजीराव नासिक पेठ सूरत और भड़ौच होकर दिसम्बर में बड़ौदा की ओर बढ़ गया। उसके शीघ्र पश्चात चिमनाजी भी गुजरात में उसके साथ हो गया क्योंकि उसको निश्चय हो गया था कि निजामुल्मुल्क नर्मदा की ओर गया है और वहाँ से वह दाभाड़े की सहायता के लिए बंगश की सेना सहित अपने साथ बहुत बड़ा दल लायगा।

फरवरी में दोनों बन्धुओं का सम्मिलन हुआ तथा उन्होंने भावी युद्ध की सम्भावना पर विचार किया। अहमदाबाद में अभयसिंह के पास बाजीराव ने उसकी मित्रता तथा परामर्श प्राप्त करने के लिए अपना प्रस्ताव भेजा। अभयसिंह ने सौजन्यपूर्ण सन्देश भेजकर बाजीराव को व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए बुलाया। बाजीराव तुरन्त सहमत हो गया और अविलम्ब अहमदाबाद की ओर चल दिया। यहाँ पर शाही बाग में उनका सम्मिलन हुआ जिसमें बाजीराव ने अभयसिंह का समर्थन प्राप्त कर लिया। अभयसिंह ने बाजीराव से समझौता

कर लिया जिसके अनुसार वह १३ लाख रुपये वार्षिक चौथ के रूप म देने को तैयार हो गया, जिसम से ६ लाख रुपये तुरत दे दिये गये और यह निश्चित हुआ कि शेष धन का चुकारा उस समय होगा जब पेशवा पिलाजी गायकवाड तथा दाभाडे को गुजरात से निष्कासित कर देगा। इस काय की सम्पुष्टि के लिए बाजीराव अहमदाबाद से चल पडा। उसके साथ अभयसिंह की एक छोटी-सी सना तथा छोटा-सा तोपखाना था। तत्पश्चात शीघ्र ही पिलाजी को बडौदा से निकाल देने के लिए वह वहाँ रवाना हुआ। अभयसिंह की सेना का वस्तुत कोई मूल्य न था, किन्तु गुजरात के सूबेदार का नतिक समथन अवश्य ही प्रभावशाली सिद्ध हुआ।[२]

बडौदा के समीप पहुँचकर कुछ मील उत्तर की ओर सावली के स्थान पर बाजीराव ने अपना पडाव डाला। यहा पर उसको मालूम हुआ कि दाभाड तथा गायकवाड डभोई तथा भीलपुर के मैदान म खुले युद्ध के लिए तयार खडे है तथा उनके पास लगभग चालीस हजार सेना है। बाजीराव के पास मुश्किल से पच्चीस हजार की सना थी। सावली से बाजीराव ने बार-बार सन्देश भजकर दाभाडे से सतारा चलने और वहाँ छत्रपति की उपस्थिति मे अपन झगडे का शान्तिपूवक निपटारा करने का आग्रह किया और साथ ही, परामश दिया कि राजा के दो प्रमुख सवकों को व्यक्तिगत सघष म उलझना उचित नही है। यह देखकर कि दाभाडे की वृत्ति कठोर है और वह झुकने वाला नही है पेशवा शीघ्रतापूवक सहसा १ अप्रैल, १७३१ ई० का सेनापति के शिविर पर टूट पडा। दाभाडे न दृढता तथा निश्चय से युद्ध किया। कुछ समय तक वास्तविक परिणाम का पता न चला। अकस्मात एक गोली त्र्यम्बकराव के सिर मे लगी[३] जिसस तुरत उसका देहान्त हो गया और परिणाम पेशवा के अनुकूल सिद्ध हुआ। उसन इस घटना का वृत्तान्त अपने गुरु ब्रह्मेन्द्र स्वामी को इन शब्दो मे भेजा

'दाभाडे ४ शव्वाल को युद्ध के निमित्त आगे बढा। स्वय त्र्यम्बकराव जावजी दाभाडे, मालोजी पवार तथा पिलाजी गायकवाड का पुत्र सम्भाजी युद्ध म मारे गये। ऊदाजी पवार तथा चिमनाजी दामोदर पकड लिये गये। पिलाजी गायकवाड तथा कुँवरबहादुर घायल होकर भाग निकले। बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। हमारी ओर से भी वीर आत्माओ के प्राण गये।'

---

२ एच० आर० सी० प्रोसीडिंग्स, १९१९—अभयसिंह के पत्र।

३ बाद का वृत्तान्त है कि वह गोली जिससे दाभाडे मारा गया, त्र्यम्बकराव के मामा जमाने के भाऊसिंह ठोके ने चलायी थी। शायद बाजीराव ने उसको अपनी ओर कर लिया था।

विजय के बाद बाजीराव ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से काम किया। उसने कोई कटुता प्रकट न होने दी। उसने उन हाथियों को पकड़ लिया जिन पर सेनापति का शव तथा उसके झण्डे थे, परन्तु उसने उन्हें उसके (सेनापति दाभाडे) भाई यशवन्तराव को लौटा दिया जो नवीन सहायक सेना लेकर उस समय वहाँ पहुँच गया था। रात्रि में दाह संस्कार करने के बाद प्रातःकाल में युद्ध को पुनः आरम्भ करने के लिए यशवन्तराव फिर आ गया। परन्तु उस घोर रण के बाद बाजीराव वहाँ एक क्षण भी न ठहरा और लूट का माल लेकर तुरन्त सतारा वापस आ गया। मार्ग में सूरत के समीप निजाम की सेना के एक दल से उसकी झड़प हुई। बाजीराव की उत्कट इच्छा थी कि इससे पहले कि कोई अन्य व्यक्ति उसके स्वामी के चित्त को उसके विरुद्ध दूषित कर सके वह युद्ध के विवरणों की सूचना शीघ्र शाहू के पास पहुँचा दे।

सेनापति की पराजय और मृत्यु के समाचार से शाहू को भारी आघात पहुँचा। सेनापति की माता उमाबाई (अभोने के ठोके परिवार की वंशज) का हृदय अपने पुत्र की मृत्यु पर टूट गया और उसने इसका एकमात्र कारण पेशवा का विश्वासघात बताया तथा शाहू से माँग की कि वह पेशवा को इसके लिए तुरन्त तथा पर्याप्त दण्ड दे। शाहू स्वयं उस महिला से मिलने तथा उसको सतारा ले आने के लिए तलेगाम गया ताकि वह (उमाबाई) वहाँ बाजीराव का स्वयं सामना कर सके क्योंकि अपराध या दण्ड का निश्चय आसान कार्य न था। दोनों दलों की विचित्र स्थिति तथा भावनाओं से सम्पूर्ण मराठा राष्ट्र में अपूर्व हलचल उपस्थित हो गयी थी।

कहा जाता है कि शाहू ने उमाबाई तथा पेशवा को अपने सम्मुख बुलाया तथा भरे दरबार में बाजीराव को उस महिला को साष्टांग प्रणाम करने की आज्ञा देते हुए उस महिला को तलवार देकर उससे बाजीराव का सिर काट कर प्रतिशोध की आग को ठण्डा कर लेने के लिए कहा किन्तु बाजीराव द्वारा विनम्र भाव से क्षमायाचना करने तथा उसकी हानि को यथाशक्य निस्तारने का वचन देने पर वह शान्त हो गयी। शाहू ने सेनापति का पद मृतक के छोटे भाई यशवन्तराव को दे दिया। परन्तु वह अत्यन्त अयोग्य सिद्ध हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि शाहू के द्वारा अपनी मृत्युपर्यन्त उस परिवार को बल प्रदान करने के प्रत्येक प्रयास के बावजूद दाभाडे परिवार शीघ्र ही सत्ताहीन हो गया। पिलाजी गायकवाड तथा उसके पुत्र दमाजी ने गुजरात में सेनापति के कार्य को सँभाल लिया। वे दोनों सेनापति के संरक्षण में प्रशिक्षित योग्य व्यक्ति थे। उन्होंने अपना कार्य प्रत्येक दशा में इतनी योग्यता से किया कि गुजरात में अब तक उनके वंश का शासन रहा है। पेशवा तथा दाभाडे-परिवार

मे कोइ स्थायी मल स्थापित न हो सका। शाहू की मत्यु के बाद इस परिवार न पशवा को उसके पद स हटा देने क अनेक असफल प्रयास किये।

इसके पहले कि निजाम दाभाडे को सहायता दे सके बाजीराव न उसको पहल ही समाप्त कर दिया था जसा कि अब्दुलनबीखा को लिखित आसफखा के एक फारसी पत्र स प्रकट होता है। ऐसा मालूम होता है कि इस वृत्तात का सम्बध उस युद्ध से है जो बाजीराव तथा निजाम के दल म सूरत के निकट डभई से अपनी वापसी यात्रा के बीच हुआ।

आसफजाह की ओर स अब्दुलनबीखाँ को—अप्रल १७३१ ई०।

'दुष्ट बाजीराव ने यह देखकर कि गुजरात म उसके रक्षक उपस्थित नहीं हैं बडौदा को घेर लिया। यह नगर उन लोगो के हाथ म है जिनम परस्पर विरोध है।

'मेरा विचार है कि यदि—ईश्वर ऐसा न करे—इस विद्रोह का बडोदा पर अधिकार हो गया, तो हमारा अपमान तथा हानि तो होगी ही हमारी सारी योजनाए नष्ट हो जायेंगी और वह सदव उस प्रात म उपद्रव करता रहेगा तथा वहा स मुहम्मद के धम का प्रभुत्व सवथा नष्ट हो जायेगा। अत इस्लाम के प्रति निष्ठा और गव रखत हुए तथा सम्राट के नमक के प्रति श्रद्धानत मैं इस धार्मिक कतव्य पर कटिबद्ध हो गया हूँ कि नमदा को पार करन के बाद पूण वेग स मैं इस कुख्यात दुष्ट के उमूलन म यस्त हो जाऊँ और इस प्रकार इसे धम युद्ध का रूप देकर उपद्रव को निमूल कर दू। अलीमोहन के माग स इस्लामी सना के आगमन के प्रवाद सुनकर यह दुष्ट तुरत अपना प्रभुत्व स्थापित करन की समस्त योजनाओ को त्यागकर बडौदा के घेरे स वापस हो गया है। इस्लामी सेना तथा विद्रोही दल के बीच लम्बी दूरी डाल दन के विचार से, मुसलमानी सेना स भयभीत होकर, अत्यत गड़बडी की दशा म अद्ध रात्रि को इस दुष्ट न नमदा को पार कर लिया है तथा दक्षिण की सीमा म प्रवेश कर गया है। अपनी अल्प-दृष्टि के कारण यह देखकर कि इस्लामी सेना उसके दल से बहुत दूर है उसने अकलेश्वर के परगने मे उपद्रव करके उस प्रदेश को थल जल सहित, लूट लिया और जमा दिया।

अत मुस्तफा के आज्ञापालक इस अनुचर (अर्थात आसफजाह) न माडव-गढ़ के समीप अकबरपुर के घाट स अपने सामान, शिविर तथा बडी तोपो को बुरहानपुर भेज दिया। ईश्वर की शक्ति और सत्ता की कृपा से मैं बहुत वेग से अति अल्प समय म नदुरबार पहुँच गया। अपन अय अधिक भारी सामान तथा तोपखाने को वही छोडकर मैंने पुन अपने को हल्का कर दिया, क्योकि यह सामान मेरे शीघ्र प्रयाण म बाधा उपस्थित कर रहा था। इस प्रकार मैं

थोडे ही दिनो म सूरत के समीप पहुँच गया । अपनी छोटी तोपा का काठोर म छोडकर हमारी सेना बहुत प्रयास के बाद शत्रु के दल के पास पहुँच गयी।

"हमने अचानक मराठा पर उस समय हमला किया जब वे निश्चिन्त सोय हुए थ और उन्ह हमारे पहुँचने का ज्ञान न था । वे अत्यन्त गडबडी म भाग निकले । मुसलमान सना ने उनको मार गिराया और पूरे वेग से उनका पीछा किया । असख्य सिपाही मारे गये । हमारे सिपाहिया न उनकी सम्पत्ति को लूट लिया । उनके अव्यवस्थित पलायन म कोलिया तथा भीलो ने उनको जगलो तथा रगिस्तानो मे लूटा—विशेषकर रात्रि म, जबकि विद्रोही अपना माग भूल जात हैं । उनक हाथ बहुत सा धन लगा । नीचा का सब कुछ लुट गया ।

गुजरात का सूबा बाजीराव के उपद्रवा से मुक्त कर दिया गया है । मालवा का सूबा भी उस दुष्ट की दुष्टताओ स सुरक्षित है तथा (सूरत का) पवित्र बन्दरगाह धूत के पजो मे फसन स बचा लिया गया है ।

डभोई म दाभाडे परिवार का यह शोचनीय अन्त वास्तव म मराठा की पृथक्करण प्रवृत्ति का परिणाम है । प्रशासन का सचालक होने के नात पेशवा का यह कतव्य था कि वह इसका निग्रह करता क्योकि बाजीराव को ही यह श्रेय है कि उसने बुद्धिमानी स पवार बांडे गायकवाड तथा अन्य व्यक्तिया को उनके पूव पदा पर पुन स्थापित कर दिया यद्यपि कुछ समय तक वे विद्रोही दल म सम्मिलित रह थे ।

अपने अनिश्चय के कारण अभयसिंह को गुजरात म अपने पद से अलग होना पडा । बाजीराव से उसकी मित्रता अल्पकालीन सिद्ध हुई । उसकी यह धारणा हुई कि डभोई मे दाभाडे की पूण पराजय से उसको लाभ के स्थान पर भारी हानि हुई है क्योकि इसस गायकवाड सशक्त तथा उसका शत्रु हो गया है । अभयसिंह ने विश्वासघाती उपाया का सहारा लेकर १४ अप्रल १७३२ ई० को डाकोर के स्थान पर पिलाजी की हत्या करवा दी । इस हत्या का पूण प्रतिरोध पिलाजी क योग्य पुत्र दमाजी ने लिया । डभोई तथा बडौदा पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद उसने अहमदाबाद पर प्रयाण किया । इस समय अपने सकट को समझकर अभयसिंह मराठो को वार्षिक चौथ देन पर सहमत हो गया तथा शीघ्र ही अपने घर वापस हो पतृक राज्य मारवाड की रक्षा करन के लिए चला गया जहाँ उसके अन्य शत्रु उसकी स्थिति के लिए भय उपस्थित कर रहे थ । गुजरात म वह अपन पीछे अपने भाइया—आनन्दसिंह तथा रायसिंह—को नियुक्त कर गया परन्तु व गायकवाडा की बढती हुई शक्ति को न रोक सक । इस प्रकार गुजरात पर शासन करने की अभयसिंह की आकाक्षा निष्फल सिद्ध हुई ।

तिथिक्रम

अध्याय ६

१६४६ १७४६	ब्रह्मेन्द्र स्वामी का जीवनकाल ।
८ फरवरी, १७२७	सिद्दी सात का चिपलूण मे परशुराम के मंदिर को भ्रष्ट करना ।
४ जुलाई, १७२६	कान्होजी आग्रे की मृत्यु ।
२६ जुलाई, १७२६	उसका पुत्र सेखोजी सरखेल नियुक्त ।
दिसम्बर, १७३०	जयसिंह का मालवा से पदच्युत किया जाना और मुहम्मदखाँ बगश सूबेदार नियुक्त ।
माच, १७३१	बगश का उज्जन में आना और निजामुल्मुल्क से वार्तालाप ।
१२ फरवरी, १७३२	बाजीराव तथा सेखोजी का कोलाबा में मिलन ।
२६ जुलाई, १७३२	सिंधिया, होल्कर तथा पवार में पेशवा द्वारा मालवा का विभाजन ।
दिसम्बर, १७३२	जयसिंह मालवा का सूबेदार नियुक्त ।
२७ दिसम्बर, १७३२	निजाम तथा बाजीराव का रोहे रामेश्वर पर सम्मिलन ।
आरम्भिक मास, १७३३	चिमनाजी अप्पा उत्तर भारत मे ।
फरवरी, १७३३	होल्कर का मन्दसौर के समीप जयसिंह को परास्त करना ।
फरवरी, १७३३	सिद्दी रसूल की मृत्यु ।
माच-अप्रेल, १७३३	चिमनाजी अप्पा तथा होल्कर द्वारा बुन्देलखण्ड के एक भाग पर अधिकार ।
अप्रेल, १७३३	बाजीराव द्वारा जजीरा के विरुद्ध युद्ध का आरम्भ ।
८ जून, १७३३	प्रतिनिधि द्वारा रायगढ़ पर अधिकार ।
८ जुलाई, १७३३	गोवलकोट मे घोर युद्ध ।
२८ अगस्त, १७३३	सेखोजी आग्रे की मृत्यु ।
६ दिसम्बर, १७३३	बाजीराव का जजीरा के युद्ध को समाप्त करना ।
आरम्भिक मास, १७३४	पिलाजी जाधव, सिंधिया तथा होल्कर द्वारा बुन्देलखण्ड और मालवा मे मराठा शासन स्थापित।

१२ अप्रैल, १७३४	पिलाजी जाधव, सिंधिया तथा होल्कर द्वारा बूंदी पर अधिकार।
वर्षाऋतु, १७३४	जयसिंह के द्वारा मराठों के विरुद्ध राजपूत-संघ का संचालन।
नवम्बर, १७३४	बालाजी बाजीराव सहित पिलाजी जाधव का बुंदेलखण्ड में प्रवेश।
आरम्भिक मास, १७३५	खानदौरान तथा होल्कर द्वारा मराठों के विरुद्ध युद्धारम्भ।
१३ फरवरी, १७३५	सिन्धिया तथा होल्कर के हाथों रामपुरा के समीप मुगलों की पराजय।
१४ फरवरी, १७३५	राधाबाई का पूना से तीर्थयात्रा पर प्रस्थान।
२८ फरवरी, १७३५	होल्कर द्वारा साँभर की लूट।
२ मार्च, १७३५	पिलाजी जाधव द्वारा बुंदेलखण्ड में कमरुद्दीनखाँ परास्त।
४ मार्च, १७३५	खानदौरान द्वारा चौथ की मराठा शर्त की स्वीकृति।
६ मई, १७५५	राधाबाई उदयपुर में।
२१ जून, १७३५	राधाबाई जयपुर में।
१७ अक्टूबर, १७३५	राधाबाई बनारस में।
नवम्बर, १७३५	भगवतसिंह अदारू का युद्ध में मारा जाना।
फरवरी, १७३६	बाजीराव उदयपुर में।
४ मार्च, १७३६	बाजीराव का जयसिंह से किशनगढ़ में मिलना।
मई, १७३६	सम्राट द्वारा बाजीराव के स्वागत से इन्कार। सिंधिया तथा होल्कर को मालवा में छोड़कर उसका पूना वापस आना।
१ जून, १७३६	राधाबाई का पूना वापस आना।
नवम्बर, १७३६	दिल्ली पर धावा करने के निमित्त बाजीराव का पूना से प्रस्थान।
१८ फरवरी, १७३७	मराठों द्वारा भदावर तथा अटेर हस्तगत।
१२ मार्च, १७३७	सआदतखाँ का दोआब में होल्कर तथा भाजी भीमराव को पराजित करना।
११ मार्च, १७३७	मथुरा के समीप मुगलों का शिविर।
२८ मार्च, १७३७	बाजीराव का दिल्ली पर सहसा आक्रमण।

५ अप्रल, १७३७	बाजीराव का जयपुर को वापस आना।
७ अप्रल, १७३७	निजाम का बुरहानपुर से उत्तर के लिए प्रयाण।
२८ मई, १७३७	निजाम तथा बाजीराव सिरोंज के समीप।
२ जुलाई, १७३७	निजाम का दिल्ली मे सम्राट् से मिलना।
अक्टूबर, १७३७	मालवा पर पुन अधिकार करने निजाम का दिल्ली से प्रस्थान।
नवम्बर, १७३७	चिमनाजी द्वारा नासिरजग को अपने पिता की सहायतार्थ उत्तर जाने से रोकना।
१३ दिसम्बर, १७३७	बाजीराव तथा निजाम भोपाल के समीप आमने सामने।
१६ दिसम्बर, १७३७	बाजीराव द्वारा भोपाल मे निजाम पर घेरा डालना।
२६ दिसम्बर, १७३७	रघुजी भोंसले के हाथों बरार मे शुजातखा की पराजय।
७ जनवरी, १७३७	निजाम द्वारा बाजीराव की शर्तों की स्वीकृति तथा सराय दोराहा पर शान्ति सन्धि करना।
१३ फरवरी, १७३८	कोटा पर धावा।

अध्याय ६

मुगल सत्ता का पराभव

[१७३२–१७३९]

१ जजीरा पर युद्ध, ब्रह्मेन्द्र स्वामी का प्रतिशोध। २ बाजीराव की निजाम से भेंट।
३ मराठों को रोकने का जयसिंह द्वारा प्रयास। ४ राधाबाई की उत्तर में तीर्थ यात्रा।
५ सम्राट का बाजीराव से मिलने से इन्कार करना। ६ बाजीराव का दिल्ली पर धावा।
७ निजाम का भोपाल मे पराभव

१ जजीरा का युद्ध, ब्रह्मेन्द्र स्वामी का प्रतिशोध—शिवाजी के समय से ही मराठो को निजाम की भाँति ही जजीरा के सिद्दियो से सदैव युद्ध करना पडा। सिद्दी हब्शी वश के मुसलमान थे। उन्होने मलिक अम्बर के समय मे भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर अपना छोटा सा उपनिवेश स्थापित कर लिया था। बम्बई के दक्षिण मे लगभग ५० मील पर स्थित जजीरा नामक अपने अजेय दुर्ग से वे अपने छोटे-से स्वतन्त्र राज्य पर शासन करते थे, जिसका अस्तित्व उत्थान-पतन के विचित्र क्रम द्वारा वर्तमान समय तक बना रहा है। शिवाजी के आक्रमण के विरुद्ध औरगजेब ने उनको अपना सरक्षण प्रदान किया तथा उनको समुद्री मार्ग से मुसलमान यात्रियो को सूरत से मक्का तथा वहा से वापस लाने का कार्य सौंपा। बम्बई के बन्दरगाह के प्रवेश मार्ग पर स्थित उन्देरी के छोटे से टापू पर भी उन्होने अपना अधिकार कर लिया तथा वहा से वे समुद्रतट पर स्थित मराठा प्रदेशो पर, विशेषकर उस भाग पर धावे करते जो मराठो के नौसेनाध्यक्ष कोलाबा के आग्रे के अधिकार मे थे। सिद्दी प्राय गोआ की पुर्तगाली सत्ता तथा बम्बई के अग्रेजो का साथ देते। ये सब विदेशी शक्तियाँ प्राय मराठो के विरुद्ध सम्मिलित हो जाती तथा उनकी उचित महत्वाकाक्षाओ मे विघ्न उपस्थित करती थी। अत सिद्दियो का सर्वनाश एक प्रकार से मराठो का धार्मिक कर्तव्य बन गया।

परन्तु इस समय युद्ध का तात्कालिक कारण ब्रह्मेन्द्र स्वामी नामक एक

प्रभावशाली हिन्दू साधु की उपासना की प्रवृत्ति थी। इस साधु को राजा शाहू तथा अधिकतर मराठा भद्र पुरुष जिनमें पेशवा भी सम्मिलित था अपना गुरु मानते थे। यह साधु एक प्रसिद्ध प्रचारक प्रभावशाली लेखक तथा वक्ता था। उसका निवास चिपलूण के पास सुनसान जंगल में था जहाँ पर अपने प्रारम्भिक जीवन में बालाजी विश्वनाथ कार्य नियुक्त था। बालाजी पर सन्त की चमत्कारिक शक्तियों का प्रभाव पड़ा और वह उसका भक्त हो गया। स्वामी ने परशुराम के एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया जो अभी तक चिपलूण के निकट एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। उसने इस कार्य के लिए अधिकांश मराठा सरदारों से धन संग्रह किया। उनके सैनिक अभियानों में वह स्वयं भिक्षा संग्रहार्थ उनके साथ जाता। आंग्रे परिवार तथा सिद्दी भी उसको आदरणीय दृष्टि से देखते थे तथा उस मन्दिर के लिए जिसको उसने इस प्रकार निर्माण कराया वे धन भूमि तथा अन्य उपहार देते थे। उस स्थान पर शिवरात्रि के दिन वह विशाल उत्सव करता। १७२७ ई० में यह पर्व ९ फरवरी को पड़ा। मन्दिर के समीप ही गोवलकोट तथा अंजनवेल नामक दो दुर्गीकृत

लौटा तो शाहू तथा स्वामी दोनो ने उससे सिद्दी को अकारण अपराध के लिए दण्ड देने का आग्रह किया। सम्भवत बाजीराव को इसमे उत्साह न था क्योकि इससे किसी तात्कालिक लाभ की आशा न थी और साथ ही इस काय मे नौ युद्ध की आवश्यकता थी जिसमे वह स्वय बहुत निपुण न था। १७३२ ई० मे सतारा मे युद्ध की भावी योजनाओ पर गम्भीरतापूवक विचार हुआ तथा आगामी ऋतु म अभियान निश्चय किया गया। युद्ध के मुख्य उद्देश्य ये थे—(१) सिद्दी के नियन्त्रण म मराठा राजधानी रायगढ की मुक्ति। १६८६ ई० मे हस्तगत करने के बाद सम्राट औरगजेब न इसकी रक्षा का भार सिद्दी को सौंप दिया था। (२) चिपलूण के मन्दिर के समीप स्थित अजनवल तथा गोवलकोट के गढो का हस्तान्तरण। य दोनो गढ भी सिद्दी के अधिकार म थे। (३) जजीरा पर आक्रमण तथा सम्भव परिस्थितियो मे पर उस अधिकार कर लेना एव मराठा शासन म विघ्न-बाधा उपस्थित करने की सिद्दी की शक्ति को पूण रूप स नष्ट करना। इसी उद्देश्य से फरवरी १७३२ ई० मे बाजीराव कोकण जाकर नौसेनाध्यक्ष सेखोजी आग्रे से मिला और जल तथा थल द्वारा एक साथ सिद्दी पर आक्रमण करने की योजनाओ पर उसके साथ विचार विमश किया।

दूसरी ओर शाहू के दरबार की गति बहुत मन्द थी और मई १७३३ ई० के आरम्भ तक कोई भी व्यक्ति निश्चित स्थानो पर नही पहुँचा। मई म जजीरा के विरुद्ध बाजीराव ने प्रबल आक्रमण प्रारम्भ कर दिया तथा शीघ्र ही स्थल पर कई स्थानो तथा दुर्गों को हस्तगत कर लिया और राजपुरी की खाडी म सिद्दी की नौसेना का नाश कर दिया। इसके शीघ्र पश्चात ही प्रतिनिधि आ गया तथा रिश्वत या किसी कूटनीतिक प्रबन्ध द्वारा उसने प्रथम प्रयास म ही ८ जून १७३३ ई० को रायगढ पर अधिकार कर लिया। यह उसका आकस्मिक तथा हलचल मचा देने वाला काय था जिसम उसको अल्पकालीन गौरव प्राप्त हो गया।

परन्तु इस सफलता पर या तो गव अथवा अधिक खुशी के वशीभूत होकर प्रतिनिधि ने राजपुरी म बाजीराव के पास जाकर उससे मिलने तथा युद्ध की एकतन्त्री योजना बनाने तक की चिन्ता न की। उनका पारस्परिक वमनस्य सवविदित था तथा गोवलकोट के सिद्दी सात ने शीघ्र ही उससे लाभ उठाया। आग्रे-परिवार के एक वीर अधिकारी बकाजी नायक ने सुवण दुग से चलकर अजनवल और गोवलकोट को हस्तगत करने का यत्न किया। उस समय तक सिद्दी सात इनकी योग्यतापूवक रक्षा कर रहा था। प्रतिनिधि भी चिपलूण पहुँच गया। सिद्दी सात ने परस्पर बातचीत द्वारा उन दोनो स्थानो के समपण के

लिए उससे प्रस्ताव किया। चूँकि प्रतिनिधि रायगढ़ में सफलता प्राप्त कर चुका था अतएव गोवलकोट में भी सफल हो जाने के विचार से उसने बकाजी नायक का घेरा उठाने का आदेश दिया। परन्तु सिद्दी सात सफल चाल चल गया। उसने बहुत समय तक प्रतिनिधि को धोखे में रखा तथा संधि वार्तालाप को लम्बा खींचता गया। इस बीच में पूर्ण वेग से वर्षा का आरम्भ हो गया तथा समस्त युद्ध प्रयास अशक्य हो गये। बाजीराव की आज्ञा पर सेखोजी आंग्रे ने बकाजी नायक को वापस बुला लिया। तब प्रतिनिधि को अपनी मूर्खता का आभास हुआ।

दुर्भाग्यवश युद्ध का आरम्भ ऐसे समय पर हुआ था जब घोर वृष्टि तथा उससे भी भयंकर समुद्र ज्वार के कारण कोई समुद्री या स्थलीय युद्ध सम्भव नहीं था। बाजीराव तथा सेखोजी आंग्रे राजपुरी में एकत्र हुए तथा परिस्थिति का बहुत समय तक अध्ययन करते रहे। सेखोजी ने कारण सहित बताया कि वर्षा ऋतु के बाद ही सिद्दि के विरुद्ध प्रभावोत्पादक कार्यवाही की जा सकती है और इस प्रकार बाजीराव अकर्मण्य होकर जजीरा के सम्मुख पड़े रहने के लिए विवश हो गया। यहाँ पर सिद्दियों ने शरण ली थी और इसके विरुद्ध वर्षाऋतु में जल अथवा स्थल सेनाएँ कोई प्रभाव नहीं डाल सकती थी। अगस्त में बाजीराव ने शाहू को लिखा— सिद्दी कोई साधारण शत्रु नहीं है। आप जानते हैं कि अनेक बार पहले भी उसके पराभव के हमारे वीर प्रयास असफल रह चुके हैं। यदि उसको अंतिम रूप से परास्त करना है तो घोर प्रयत्न आवश्यक हैं। जब तक उसका पूर्णरूप से जल पर विरोध न हो जाय और साथ ही उसके विरुद्ध स्थल पर व्यवस्थित सैनिक कार्यवाही न की जाय उसे परास्त करना असम्भव है। इसका अर्थ है धन का अति व्यय और यह धन प्राप्य नहीं है। इस प्रकार के प्रयास के लिए हमको कम से कम १५ हजार निपुण पैदल सैनिक चाहिए जो कम से कम दो वर्ष तक सेवा कार्य में व्यस्त रहेंगे। जजीरा को अजनवेल तथा उंदेरी से सहायता प्राप्त हो रही है। इस मुख्य दुर्ग पर आक्रमण की सफलता के निमित्त यह आवश्यक है कि इन दोनों स्थानों पर हम पहले अधिकार कर लें। हम अपना समस्त धन एवं अन्य साधन समाप्त कर चुके हैं। अतः जब तक आप हमको विपुल धनराशि नहीं भेजेंगे हम कोई प्रगति नहीं कर सकते। हम यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। सिद्दियों को सूरत तथा बम्बई से भी सहायता मिल रही है। प्रतिनिधि राजपुरी नहीं आया है। भविष्य के लिए आपकी आज्ञाओं की प्रतीक्षा है।

ये उच्च व्यावहारिक सुझाव थे परन्तु शाहू उनके अनुकूल कार्य न कर सका। वर्षाऋतु के चार मास सिद्दी के लिए वरदान सिद्ध हुए। इस काल में

पुतगालियो, बम्बई के अंग्रेजो, सूरत म अपने सहकारियो, निजाम तथा दिल्ली के सम्राट सभी से उसने आग्रहपूण प्राथनाएँ की। यह बात बाजीराव के ध्यान म बहुत देर म आयी और अब तुरन्त इनका निराकरण सम्भव नहीं था। इन रहस्यमय चालो और षडयन्त्रो के सम्मुख स्वय उसकी शक्ति तथा आज्ञाएँ व्यथ होती थी और उधर शाहू अपने अनक कृपापात्रो द्वारा विरोधी वृत्तान्तो को सुनकर इतना व्याकुल हो गया कि उसन बाजीराव को कठोर प्रत्यादेश भेजे जिनका उसन भी उसी कठोरता से उत्तर दिया। य पत्र अध्ययन के योग्य हैं क्योकि व मराठा चरित्र के बल तथा निबलता को पूणतया प्रकट करते हैं।[1]

एक अन्य अनपेक्षित दुघटना—सेखोजी आग्रे की आकस्मिक मत्यु—के कारण युद्ध के सचालन म घोर बाधा पड गयी। सेखोजी का देहान्त छोटी सी बीमारी के बाद उसकी युवावस्था मे कोलाबा नामक स्थान पर २८ अगस्त, १७३३ ई० को हुआ। वह असाधारण गम्भीर तथा अग्रदष्टि-युक्त व्यक्ति था। अपने तीन योग्य तथा वीर बन्धुओ—सम्भाजी मानाजी तथा तुलाजी—पर उसका पूण नियन्त्रण था। वह उनस उनकी योग्यता के अनुकूल उच्चतम काय करा लेता था। उसकी मत्यु आग्रे परिवार तथा साथ ही साथ मराठा नौसेना के प्रति विनाशक सिद्ध हुई। इसमे फूट की प्रवत्तिया तुरन्त प्रारम्भ हो गयी तथा बाजीराव अभियान त्यागने पर विवश हो गया। बकाजी नायक तो पहले ही वापस बुला लिया गया था तथा सितम्बर मे प्रतिनिधि भी सतारा वापस आ गया। अन्त सिद्दी से अल्पकालीन समझौते की स्थापना करने के बाद बाजीराव स्वय दिसम्बर म वापस हो गया। उसने शाहू से परिस्थिति के कष्टो को व्यक्तिगत रूप स बता दिया और पश्चिमी तट पर फिर किसी अभियान का स्वय नेतृत्व न किया। उस समय अर्थात १७३३ ई० के अन्त तक यह प्रयास असफल ही रहा।

चिपलूण म परशुराम के मन्दिर पर किये गय अन्याय का प्रतिकार करने के लिए यह आवश्यक था कि गोवलकोट तथा अजनवेल के महत्त्वपूण गढ सिद्दी सात से छीन लिये जायें। सखोजी की मत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न पर आग्रे-बन्धुओ म आरम्भ हुई कलह को समाप्त करन के निमित्त शाहू ने उक्त दोनों गढो पर अधिकार करने वाले भाई को ही सरखेल का पद देने की घोषणा

---

[1] पेशवा दफ्तर सग्रह (खण्ड २ पृ० ४३) म शाहू के प्रत्यादेश का उल्लेख है। यह सेखोजी आग्रे के नाम है परन्तु वास्तव म यह बाजीराव के लिए है। बाजीराव का उत्तर जो एक शक्तिशाली परन्तु गौरवपूण विरोध पत्र है, खण्ड ३३ (पृ० ७६) म सग्रहीत है।

जिसके नेता जयसिंह तथा मीरबख्शी खानदौरान थे, मराठों के साथ मेल मिलाप बढ़ाने तथा उनकी सन्तुष्टि के पक्ष में था, और दूसरा दल, जिसके नेता सआदतखाँ मुहम्मदखाँ बंगश तथा अन्य लोग थे, इस पक्ष का समर्थक था कि मराठों के विरुद्ध तत्काल संगठित आक्रमण आरम्भ किया जाये। वजीर कमरुद्दीनखाँ, निजाम तथा स्वयं सम्राट शीघ्र किसी मार्ग का निश्चय न कर सके तथा अच्छे दिनों की आशा में उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। दीपसिंह का दूत मण्डल अगस्त १७३० ई० में सतारा आया था तथा वापस पहुँचने पर उन्होंने अपने विचारों को प्रकट किया। अपने प्रतिनिधियों के परामर्श के अनुसार जयसिंह ने शाहू से समझौते का प्रबन्ध किया—(१) मालवा की चौथ का दस लाख वार्षिक धन मराठों को दिया जाय। (२) इस धन के बदले में शाहू का एक सरदार सम्राट के दरबार में सेवा के लिए उपस्थित रहे। जयसिंह के पास नियुक्त शाहू के दूत दादो भीमसेन ने यह समझौता सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया परन्तु वह स्वीकृत न किया गया। इस पर जयसिंह ने सम्राट से निम्न विनय की

गत बीस वर्षों से मराठों को मालवा से निकाल देने का खेल हुजूर खेल रहे हैं। यदि आप इसका हिसाब लगायें कि इस प्रयास पर आपने कितना धन व्यय किया है तथा क्या सफलता प्राप्त की है तो मुझे निश्चय है कि मेरी योजना आपको यह प्रेरणा देगी कि इस कष्ट का एकमात्र यही उपाय है।

सम्राट अपने ही निश्चय पर अटल रहा। उसने जयसिंह का तबादला कर दिया तथा १७३० ई० के अन्त के समीप बंगश की उस पद पर नियुक्ति कर दी। उज्जैन में बंगश के आगमन तथा मार्च १७३१ ई० में निजाम के साथ उसके सम्मिलन का उल्लेख पहले हो चुका है। कुछ दिनों तक ऐसा मालूम हुआ कि बंगश सफलता प्राप्त कर रहा है। उस समय बाजीराव दाभाडे-परिवार के साथ युद्ध में व्यस्त था और होल्कर तथा अन्ताजी माणकेश्वर मालवा में कार्य-व्यस्त थे। बंगश ने अन्ताजी को उज्जैन के समीप पराग्त कर दिया था किन्तु बाद में जब उसी वर्ष रानोजी सिन्धिया होल्कर से आ मिला, तो बंगश को पता चला कि मराठों को पीछे धकेल देने का कार्य उसके वश का न था। उसने सम्राट से अधिक सहायक सेनाएं तथा धन भेजने

लिए बगश को वापस बुला लिया तथा १७३२ ई० के अत म जयसिह को पुन उस प्रान्त मे नियुक्त कर दिया। जयसिह ४ वर्षो तक उस स्थान पर रहा।

१७३२ ई० का वप सयोगवश पेशवा के लिए अपेक्षाकृत शाति का वप रहा। वर्षाऋतु मे जब वह जजीरा के अभियान के लिए तैयारिया पर वार्तालाप कर रहा था उसन सिधिया और होल्कर को सतारा बुलाया तथा मालवा के जिलो का एक प्रकार का क्रियात्मक विभाजन उसन उन दोना तथा तीन पवार सरदारा के बीच कर दिया। विभाजन के इस दस्तावेज पर २६ जुलाई, १७३२ ई० का दिनाक है।

डभोई के स्थान पर दाभाडे और निजाम की सम्मिलित पराजय से पेशवा तथा निजामुल्मुल्क म पारस्परिक मेल का माग प्रशस्त हो गया। निजाम न व्यक्तिगत सम्मिलन का प्रस्ताव किया ताकि उनक बीच म नित्य के सघष का अत हो जाय और परस्पर पडोसिया के-से सम्बन्ध स्थापित हो सकें। उनक व्यक्तिगत सम्मिलन से किसी सुपरिणाम की स्वय बाजीराव को कोई आशा न थी क्योकि उन दोना मे स कोइ भी दूसरे के वचन पर भरोसा नही कर सकता था। निजामुल्मुल्क न बार बार सुमन्त द्वारा अपनी इच्छा शाहू तक पहुँचायी। शाहू ने तुरत बाजीराव को निजाम से जाकर मिलने की आज्ञा दी। इस परिस्थिति म यह समाचार फैल गया कि निजामुल्मुल्क न किसी बुरे अभिप्राय से बाजीराव को मिलने के लिए बुलाया है और शाहू को व्यक्तिगत सम्मिलन के लिए बाजीराव को भेज देने पर एक करोड रुपय देने को कहा है। प्रतिक्रिया स्वरूप उसके मित्रा तथा सहाकारिया की ओर स बाजीराव को अनकानेक पत्र प्राप्त हुए जिनमे उसस प्राथना की गयी थी कि वह इस निमन्त्रण का स्पष्टत तथा सवथा अस्वीकार कर दे। परन्तु शाहू ने विशेष आग्रह किया और वह विलम्ब सहन न कर सकता था। अत म बाजीराव कुछ चुने हुए मित्रो तथा सरक्षको को अपने साथ लेकर वीरतापूवक निजाम के राज्य मे प्रवेश कर गया। अनेक योग्य गुप्तचरा न इस समय भक्तिपूवक उसकी सेवा की। लातुर से करीब आठ मील उत्तर म औसा के समीप उत्तर मजीरा पर स्थित रोह रामेश्वर नामक स्थान पर २७ दिसम्बर, १७३२ ई० बुधवार को दोना सरदारा की भेंट हुई। इस भेंट के केवल थोडे-से विवरण प्राप्य हैं। यह मिलन सौजन्यपूण सिद्ध हुआ। निजाम ने बाजीराव को सात वस्त्र, बहुमूल्य मोतिया के दो सुन्दर जोडे, दो घोडे और एक हाथी भेंट मे दिये। भेंट की सफल समाप्ति पर समस्त महाराष्ट्र हष स पुलकित हो उठा। अनेक गढा स तोपा की सलामी तथा शाहू और अन्य पुरुषा द्वारा मिष्ठान के वितरण के साथ यह समाचार घोषित किया गया।

स्वयं बाजीराव ने इस भेंट का निम्न वृत्तान्त अपने भाई को भेजा

मैं शीघ्र प्रयाण करके लातुर की ओर गया जहाँ पर मुझे मालूम हुआ कि लगभग २० मील दूर बगीर के समीप कोटी के स्थान पर नवाब ठहरा हुआ है। २५ दिसम्बर को मैंने आनन्दराव सुमन्त को नवाब के पास उनसे मिलकर भेंट के विवरणों को निश्चित करने के लिए भेजा। सुमन्त ने तुरन्त उत्तर भेजा। मेरे आगे बढ़ने पर नवाब हैदराबाद की अपनी यात्रा को रद्द करके विशेषकर मुझसे मिलने आया और सुविधापूर्ण स्थान पर खुले मैदान में ठहर गया। अगले दिन २७ दिसम्बर को मैं अपनी पूरी सेना लेकर नवाब के शिविर को गया। मेरे आगमन पर नवाब ने साधारण सशस्त्र रक्षक-दल को फाटक में हटा दिया तथा सुमन्त रावरम्भा और तुकताजखाँ को फाटक पर मेरा स्वागत करने तथा अन्दर ले जाने के लिए नियुक्त किया। मैंने अपनी सेना बाहर छोड़ दी तथा केवल दो सौ सैनिक लेकर अन्दर गया। नवाब ने कुछ विशेषाधिकारियों की एक टोली मुझे अन्दर लिवा ले जाने के लिए भेजी तथा स्वयं एवाजखाँ और हामिदखाँ के साथ अपने तम्बू के आगे खड़ा हो गया। आगे बढ़कर मैंने पहले स्वागतकारी अधिकारियों से बात की और उन्होंने नवाब से मेरा परिचय कराया। तब बहुत सम्मान तथा स्नेह से उसने मेरा स्वागत किया। हमने कुछ ही मिनट खुले दरबार में व्यतीत किये एक-दूसरे का हाल पूछा तथा स्वागत किया। इसके बाद नवाब मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर मुझे एक दूसरे तम्बू में विश्वस्त वार्तालाप के लिए ले गया जहाँ पर केवल रावरम्भा, तुकताजखाँ तथा मेरे चार साथी उपस्थित थे। यहाँ पर हमने प्रेम तथा हर्ष के भाव में अनेक विषयों पर काफी देर तक तथा स्वतन्त्रतापूर्वक वार्तालाप किया। नवाब ने मेरी तथा हमारे छत्रपति की बहुत प्रशंसा की। एक घण्टे के वार्तालाप के बाद उसने मुझको पान दिया तथा बाहर भी सब लोगों को पान दिये गये। इस प्रकार भेंट समाप्त हुई और मैं अपने स्थान को सन्ध्या से एक घण्टे पहले वापस आ गया। यहाँ हमें विभिन्न प्रकार की पर्याप्त सामग्री अपना भोजन बनाने के लिए नवाब से प्राप्त हुई। इसमें मिठाइयों तथा फलों की टोकरियाँ भी थीं और इनकी उसके शिविर से मेरे शिविर तक एक लम्बी पंक्ति बन गयी। इससे पहले भी मैं नवाब से तीन बार भेंट कर चुका था, परन्तु वे केवल औपचारिक थीं जिनमें हम हृदय खोलकर बात नहीं कर सकते थे। परन्तु इस समय हमने बहुत-से प्रश्नों पर स्पष्ट वार्तालाप किया, जिससे हमारी पारस्परिक सद्भावना और मित्रता दृढ़ हो गयी। जो कुछ भी सन्देह तथा भय पहले थे वे अब सर्वथा दूर हो गये हैं। नवाब ने परस्पर स्नेह तथा हर्षोत्पादक सम्बन्धों में सदैव वृद्धि की इच्छा व्यक्त की है। उसने सुल्तानजी निम्बालकर

तथा चन्द्रसेन जाधव को विशेष रूप से मुझसे मिलने बुलाया था तथा मुझसे प्रार्थना की कि मैं उनकी ओर अपनी कृपा दृष्टि रखूं।'[४]

इस महत्त्वपूर्ण भेंट के परिणाम का वर्णन एलफिंस्टन ने इस प्रकार किया है— 'निजाम तथा बाजीराव में एक गुप्त सहमति हुई जिसके द्वारा मराठा शासन ने प्रतिज्ञा की कि वह दक्षिण को तंग न करेगा और उस पर चौथ तथा सरदेशमुखी के अतिरिक्त और कोई कर न लगायेगा। उत्तर की ओर प्रयाणों में मराठों द्वारा खानदेश के प्रान्त को कोई क्षति न पहुँचाने की शर्त पर निजाम उनके उत्तर पर प्रयोजित आक्रमणों के समय तटस्थ रहने पर सहमत हो गया।'

३ मराठों को रोकने का जयसिंह द्वारा प्रयास—पेशवा तथा निजाम रोहे-रामेश्वर में परस्पर वार्तालाप कर रहे थे जयसिंह ने उज्जैन पहुँचकर मालवा के शासन का भार सँभाल लिया। इसी समय चिमनाजी अप्पा उस सहमति को पूरा करने के लिए जिस पर काफी बातचीत हो चुकी थी, दक्षिण से जयसिंह से मिलने के लिए यहाँ आ पहुँचा। परन्तु जयसिंह को आज्ञा दी गयी थी कि वह मालवा से मराठों को खदेड़ दे अतः समझौता असम्भव हो गया। प्रतिक्रिया-वश चिमनाजी ने होल्कर के मुख्य सहायक विठोजी बूले तथा आनन्दराव पवार को जयसिंह को परास्त करने के लिए कहा। कुछ दिनों तक दृढ़ता से युद्ध होता रहा। अकस्मात जयसिंह को पता चला कि दोनों मराठा सरदारों की सेनाओं ने उसको चारों ओर से घेर लिया है और वे उस पर भारी दबाव डाल रहे हैं। सम्राट के यहाँ से भी कोई सहायक सेनाएँ न आयीं। अतएव जयसिंह ने इस कठिन परिस्थिति से अपनी रक्षा हेतु दण्डस्वरूप ६ लाख रुपये नकद देना तथा अपनी नियुक्ति के पश्चात इकट्ठा किया हुआ कर चुकाना स्वीकार

---

[४] मराठा राज्य में इन दोनों महत्त्वपूर्ण तथा उच्चपदस्थ सामन्तों ने मराठा पक्ष त्याग दिया था तथा निजाम की ओर हो गये थे। चन्द्रसेन १७११ ई० में बालाजी विश्वनाथ से झगड़ों के बाद तथा सुल्तानजी निम्बालकर १७२६ ई० में। अब वे निजाम की सेवा में थे और उनको बाजीराव की ओर से दण्ड का भय था। बाजीराव का निजामुल्मुल्क के यहाँ यह छठा उल्लिखित अभ्यागमन है। इनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है—
४ जनवरी, १७२१ ई०—चिखलथान, १३ फरवरी, १७२३ ई०—बोलशा
१८ मई, १७२४ ई०—जलछा, अक्टूबर १७२४ ई०—औरंगाबाद
६ मार्च, १७२८ ई०—पालखेड २७ दिसम्बर, १७३२ ई०—रोहे रामेश्वर।
(कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया खण्ड ४, पृ० ३८२ इरविन कृत लेटर मुगल्स खण्ड २, पृ० २५२, पेशवा दफ्तर संग्रह खण्ड १५ पृ० ९४ ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, खण्ड ६, पृ० ११)

किया। इस समस्त कार्य का सम्पादन होल्कर ने किया क्योंकि चिमनाजी बुन्देलखण्ड में उन जिलों का भार ग्रहण करने को चला गया था जो छत्रसाल ने तीन वर्ष पहले बाजीराव को दिये थे। दो बुन्देले कार्यकर्ता—आशाराम तथा हरिदास पुरोहित पूना के विभाजन की समस्या का निपटारा करने हेतु आये हुए थे। बाजीराव ने उनको अपने प्रतिनिधि मुधोजी हरि के साथ चिमनाजी अप्पा के पास भेज दिया। बुन्देलखण्ड पर मराठा नियन्त्रण को पुष्ट करने के लिए तथा कई राज्यों से बलपूर्वक कर-संग्रह के लिए चिमनाजी ने गोविन्द पन्त तथा मुधोजी हरि को नियुक्त किया। वर्षाऋतु की समाप्ति पर चिमनाजी जून १७३३ ई० के समीप सिन्धिया तथा होल्कर को अपने साथ लेकर दक्षिण को वापस आ गया। उस समय बाजीराव जंजीरा के अभियान में व्यस्त था।

परन्तु उत्तर में अभी बहुत काम बाकी था। चूंकि बाजीराव तथा उसके भाई दोनों को दक्षिण में ठहरना था उन्होंने सिन्धिया तथा होल्कर के साथ पिलाजी जाधव को १७३३ ई० की समाप्ति पर मालवा भेजा। इन सरदारों के पास बहुत बड़ी सेना थी। इनको नरवर व ग्वालियर के आगे ठीक भण्डेर तक चलते चले गये। उन्होंने कर का संग्रह किया और वर्षाऋतु व्यतीत करने के लिए मई १७३४ ई० में घर वापस आ गये। मालवा के सूबेदार के रूप में जयसिंह ने भरसक प्रयत्न किया कि मराठा सरदारों से मुल्कमगुन्दा टक्कर न हो। इस समय वह बूंदी राज्य के शासक पद के उत्तराधिकार सम्बन्धी वाद विवाद में फंसा हुआ था। वह स्वयं इस पद को चाहता था। एक दावेदार प्रतापसिंह हाडा ने सतारा पहुँचकर जयसिंह के विरुद्ध शाहू से सहायता की याचना की। शाहू ने होल्कर तथा सिन्धिया को आज्ञा दी कि वे बूंदी पर अधिकार करके उसको प्रतापसिंह को सौंप दें। तदनुसार १२ अप्रैल १७३४ ई० को दोनों सरदारों ने बूंदी पर अधिकार कर लिया। परन्तु मराठा सेनाओं के दक्षिण वापस लौटते ही जयसिंह ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया। जयसिंह की प्रार्थना पर सम्राट ने धन तथा सामग्री-सहित उसके पास अधिक सेनाएँ भेज दीं। इस सेना का नेता मुजफ्फरखाँ मीरआतिश था जो एक योग्य नायक था तथा खानदौरान का भाई था। इसके अतिरिक्त १७३४ ई० की वर्षाऋतु में जयसिंह ने राजपूत राजाओं का एक प्रबल संघ बना लिया था। इस प्रकार की भयानक तैयारियों के बाद उसने मालवा से मराठों का निराकरण आरम्भ किया।

जब इस नवीन विरोध की सूचना राजा के पास पहुँची, तो उसने तुरन्त पिलाजी जाधव को मालवा भेजा। उसके साथ युवक नाना साहब (बालाजी बाजीराव) था जिसकी आयु उस समय १४ वर्ष था। सिन्धिया तथा होल्कर

को अपने यथापूर्व रण कौशल मे काय करने तथा मालवा पर मराठा अधिकार को पुष्ट व दूर करने के विशेष निर्देश दिये गये थे। इस प्रकार १७३५ ई० का वर्ष दोना पक्षो के भाग्य निर्णयार्थ, विशाल तैयारियो के साथ, मालवा म आरम्भ हुआ। सम्राट तथा उसके योग्य अधिकारी भी इसम तुरत सम्मिलित हो गये। दिल्ली से उन्होने दो दलो म प्रयाण किया। एक दल ने खानदौरान के अधीन पश्चिमी मार्ग से राजस्थान म तथा दूसरे दल ने वजीर कमरुद्दीन के अधीन पूर्वी मार्ग से बुन्देलखण्ड मे प्रवेश किया। मुकन्दरा की घाटी से जब मराठे मालवा म प्रवेश कर गये, तो खानदौरान के नेतृत्व मे जनवरी तथा फरवरी के मासो म कई राजपूत राजाओ की सेनाओ से उनके अनेक युद्ध हुए। इस प्रकार सिन्धिया उनसे युद्ध म उलझा रहा तथा होल्कर ने शीघ्र ही उत्तर की ओर प्रयाण करके मारवाड और जयपुर के प्रदेशो को लूट लिया तथा २८ फरवरी को साँभर के धनी व्यापारिक नगर से बहुत-सा लूट का माल ले गया। मराठो के गनीमीकावा का जयसिंह तथा साम्राज्यवादियो पर इतना भारी दबाव पडा कि उन्होने २२ लाख रुपये नकद देना स्वीकार किया तथा २४ मार्च १७३५ ई० को कोटा म उभयपक्ष द्वारा सम्पादित गम्भीर सहमति द्वारा शान्ति स्थापित की। बीस हजार मराठे दो लाख मुगल सेना से श्रेष्ठ सिद्ध हुए। यह मराठा रण कौशल की अपूर्व विजय थी।

वजीर के अधीन बुन्देलखण्ड का अभियान अधिक सफल सिद्ध न हुआ। उसका पाला पिलाजी जाधव, रानोजी भोसले तथा वेंकटराव नारायण घोरपडे से पडा। ? मार्च १७३५ ई० को पिलाजी ने परिणाम की सूचना इस प्रकार भेजी— वजीरने २५ हजारसेना लेकर हम परआक्रमण किया। हमारे उनके साथ तीन घोरयुद्ध हुए। हमने उनके ३०० घोडे औरऊँट छीन लिये तथा कोला-रसको वापस आ गये। कमरुद्दीनखाँ ५ लाख रुपये देने को तयार है। परन्तु हमने प्रस्ताव को स्वीकार नही किया है तथा आगामी परिणामो की प्रतीक्षा मे है। हम चाहते है कि वर्षाऋतु व्यतीत करने के लिए शीघ्र ही घर पहुँच जायें।'

इसी समय पर भगवन्तसिंह अदरू का काण्ड घटित हुआ। वह फतहपुर जिले म यमुना के उत्तरी तट के समीप गाजीपुर का छोटा-सा जागीरदार था। यह काण्ड मुगल सत्ता के पतन का स्पष्ट सूचक है। भगवन्तसिंह ने कमरुद्दीनखाँ के एक निकट सम्बन्धी को मार डाला था और चार वर्षो तक वजीर ने उसको दण्ड देने के लिए परिश्रम किया परन्तु उसको सफलता नही मिली। अन्त म सआदतखाँ को आज्ञा दी गयी कि वह गाजीपुर के विरुद्ध प्रयाण करे। अब घोर युद्ध हुआ जिसम भगवन्तसिंह नवम्बर १७३५ ई० म

लडता हुआ मारा गया। परन्तु उसके पुत्र रूपसिंह ने बुंदेलखण्ड में मराठा से रक्षा की प्रार्थना की और यह झगडा बहुत दिनों तक समाप्त न हुआ।

४ राधाबाई की उत्तर में तीर्थ-यात्रा—१७३५ ई० का वर्ष मुगल मराठा संघर्ष के व्यापक परिणामों से परिपूर्ण रहा। पेशवा की माता राधाबाई ने इस वर्ष उत्तर भारत में शांतिमय तथा अत्यन्त सफल यात्रा की जबकि वीर जयसिंह मराठा के विरुद्ध घोर अभियान का संचालन कर रहा था। १४ फरवरी, १७३५ ई० को राधाबाई ने पूना से प्रस्थान किया तथा १ जून १७३६ ई० को वह घर वापस आयी। उसके साथ बहुत से अनुचर थे तथा बारामती का आवजी नायक, उसका जामाता और उसका भाई बाबूजी यात्रा के प्रबंधक थे। जब यह प्रसिद्ध हो गया कि उस महिला का संकल्प तीर्थ-यात्रा करने का है तो उत्तर भारत के राजपूत राजाओं तथा मुगल अधिकारियों के ढेर के ढेर पत्र पूना में जमा हो गये। इनमें उस सम्माननीया महिला से प्रार्थना की गयी थी कि वह उनके राज्यों में प्रतिष्ठित मंदिरों के दर्शनार्थ अवश्य पधारें। यह बाजीराव के नाम का भयावह प्रभाव था। स्वयं सम्राट ने आज्ञा दी कि उसके अपने निजी संरक्षक दल के एक हजार सैनिक उसके नर्मदा नदी के उत्तर में ठहरने के समय तक उसके साथ रहें। मुहम्मदखाँ बंगश ने भी जिसको केवल कुछ ही वर्ष पहले बाजीराव ने परास्त किया था इस महिला के प्रति मुगल अधिकृत क्षेत्र में से गुजरते समय सस्नेह स्वागत का प्रस्ताव भेजा।

राधाबाई ८ मार्च को बुरहानपुर पहुँची। १८ अप्रैल को उसने नर्मदा को पार किया तथा ६ मई को उदयपुर में उसका स्वागत हुआ। १८ मई को नाथद्वारा के दर्शन करते हुए उसकी टोली २१ जून को जयपुर पहुँच गयी। जयसिंह की विशेष प्रार्थना पर उसने यहाँ पूरे तीन मास तक निवास किया। सितम्बर तथा अक्टूबर में मथुरा, वृंदावन, कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग की शीघ्रता से यात्रा पूरी करके १७ अक्टूबर को वह बनारस पहुँच गयी। यहाँ वह दो मास से अधिक समय तक ठहरी और वहाँ उसने उस स्थान के शांतिमय आध्यात्मिक वातावरण के आनंद का पूर्ण उपभोग किया। दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में उसने गया की ओर प्रस्थान किया जहाँ से जनवरी १७३६ ई० में वह अपनी वापसी-यात्रा पर चल पड़ी। बुंदेलखण्ड होकर उसने ठीक पश्चिम का मार्ग लिया और कुछ दिन सागर में ठहरकर वह सकुशल पूना आ गयी। जयपुर में रह रहे पेशवा के दूत ने उसकी तीर्थ-यात्रा का वर्णन इस प्रकार लिखा है— पूज्यनीया माता आषाढ़ के आरम्भ में बाबूजी नायक की संरक्षता में जयनगर आ गयी हैं। उनसे आग्रह किया जा रहा है कि वे यहाँ पर दशहरा तक ठहरें जो यहाँ विशेष उत्सव का दिन होता है। उनके पवित्र व्यक्तित्व के

कारण यहाँ उनको कोई कष्ट नही है। मुझे विश्वास है कि शेष यात्रा भी समान रूप से सफल सिद्ध होगी। बाजीराव के नक्षत्र अत्यन्त प्रभावशाली है तथा किसी प्रकार उसकी हानि नही हो सकती है। महाराजा जयसिंह ने अपने प्रतिनिधि रामनारायणदास को उनको सम्पूर्ण यात्रा मे उनका साथ देने के लिए आज्ञा दे दी है। नारायणदास का सम्बन्धी राय हरप्रसाद मुहम्मखा बगश का दीवान है। वह पेशवा का इतना आदर करता है कि यमुना नदी पर हरप्रसाद हमसे मिलने आया। नदी से हमको सकुशल उतारकर वह हमको अपने स्वामी खान से मिलाने के लिए ले गया। उसने हम सबका सस्नेह स्वागत किया। खान ने अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की कि बाजीराव ने अपने स्नेहपूर्ण पत्र द्वारा उसे सम्मानित किया है तथा उसकी माता की सुरक्षा के प्रति उसको (खान) पूर्ण विश्वास है। वह कहता है कि—" 'मेरे लिये वह मेरी माता के ही समान है। उसने अपने जिलो के अधिकारियो को आज्ञाएँ भेज दी हैं कि उसके प्रदेश मे उनका पूर्ण रूप से स्वागत किया जाय। हरप्रसाद उनके लिए १ हजार नकद रुपया की भेंट तथा आसमानी रग की (विधवा के लिए उपयुक्त) साडियाँ भी लाया है। सवाई जयसिंह ने पेशवा के प्रति अपना उच्च तथा हार्दिक सम्मान प्रकट किया है। उदयपुर के राणा ने भी ऐसा ही सत्कार किया है। उसने अपने कार्यकर्ता सामन्तसिंह को विशेष उद्देश्य से पूना भेजा है। इन शक्तिशाली शासको के हृदय मे आपके नाम से ही सम्मान तथा भय उत्पन्न हो गया है।'[५]

मुगल-मराठा युद्ध के इस अशान्त वर्ष मे बिना किसी अनिष्ट घटना के पेशवा की माता की तीर्थ यात्रा से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे पेशवा का नाम सम्मान से तथा भयपूर्वक लिया जाता था। इस हर्षपूर्ण परिणाम का श्रेय केवल जयसिंह को है, क्योकि उस महिला के प्रति उसने ठीक पुत्रवत व्यवहार किया। उसने सबल सरक्षक दल उसके साथ भेजा तथा स्वय ने अपनी राजधानी मे उसका आदर-सत्कार किया। उसने उसकी आवश्यकताओ तथा सुविधाओ की छोटी से छोटी वस्तुएँ तक प्रस्तुत की।[६]

५ **सम्राट का बाजीराव से मिलने से इन्कार करना**—सवाई जयसिंह

---

[५] पेशवा दफ्तर सग्रह, जिल्द ३०, पृ० १३४। उत्तर भारत के साथ इस प्रकार के मराठा सम्पर्क से महाराष्ट्र के सामाजिक तथा व्यापारिक जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यह ऐसा विषय है जिसका विशेष तथा सावधानी से अध्ययन होना चाहिए। इसके लिए अब पर्याप्त मुद्रित सामग्री भी प्राप्य है।

[६] हिंगणे दफ्तर, भाग १, पृ० १९।

घटनाओं का चतुर अन्वेषक था। वह स्वयं बहुत समय से युद्ध तथा कूटनीति में व्यस्त रहने के कारण मराठों तथा मुगलों की सेनाओं का अपेक्षाकृत शुद्ध अनुमान कर सकता था। शायद वही एक ऐसा व्यक्ति था जो दीर्घकालीन चिन्ताजनक संघर्षों के बाद स्थायी समाधान स्थापित कराने के योग्य था। वह वास्तव में शान्तिप्रिय व्यक्ति था। वह सतत युद्ध से ऊब गया था जो जन साधारण के शान्तिपूर्ण कार्यों में विघ्न उपस्थित करता था। उसने अपनी शक्तियों को स्थायी तथा शान्तिपूर्ण हल निकालने की ओर लगाया। १७३३-३५ ई० में उसने पूर्ण सच्चाई के साथ मराठों के विरुद्ध आक्रामक युद्ध का संचालन किया और वजीर तथा मीरबख्शी सदृश मुगल सामन्तों के साथ वह यथाशक्ति मराठों के विरुद्ध प्रयत्नशील रहा। अतः सैनिक बल द्वारा मराठा आक्रमण को रोकने के प्रयत्न की निष्फलता को जयसिंह अच्छी तरह समझता था। अतएव उसने एक बार फिर परस्पर मेल कराने के लिए सम्राट पर अपने प्रभाव का उपयोग किया। उसने आग्रह किया कि स्वयं पेशवा से सीधी बातचीत की जाय जिससे वह अहित तथा भ्रान्ति न होने पाये जो दोनों पक्षों के मध्यस्थ व्यक्ति उत्पन्न कर सकते थे। उसका आग्रह था कि यदि बाजीराव तथा सम्राट परस्पर मैत्रीपूर्वक सम्मिलन में एकत्र हों, तो अनेक कटुतर तथा अपरिमित माँगें उठने ही न पायेंगी। जयसिंह ने अपने विचारों को सम्राट की सभाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक प्रस्तुत किया और उन पर स्पष्ट वाद विवाद किया तथा उसकी पूर्ण अनुमति से बाजीराव को व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए दिल्ली आने का निमन्त्रण भेजा। किन्तु शर्त यह थी कि यह वार्ता पहले राजपूत राजा शुरू करेंगे जिसके बाद में सम्राट बातचीत करेगा। इस प्रकार के दर्शनीय अभ्यागमनों तथा सम्मिलनों के परिणाम के सम्बन्ध में स्वयं बाजीराव को आशाएँ न थीं परन्तु वह इस प्रस्ताव पर दो कारणों से सहमत हो गया प्रथम वह जयसिंह का बहुत मान करता था और दूसरे मैत्रीपूर्वक मुलाकात द्वारा राजपूत राजाओं को अपने पक्ष में करने का भी यह एक अवसर था।

इस साहसिक कार्य के लिए बाजीराव ने शाहू की अनुमति प्राप्त कर ली। १७३५ ई० की दीवाली के शुभ दिन उसने पूना से प्रस्थान किया तथा १७३६ ई० के फरवरी मास में वह उदयपुर पहुँच गया। इस विचार से कि उसकी सेनाएँ फसलों को तथा जनता के शान्तिमय धन्धों को कोई हानि न पहुँचायें उसने मुख्य सेना के मार्ग को भिन्न दिशा में परिवर्तित कर दिया तथा स्वयं ने एक छोटे-से व्यक्तिगत संरक्षक दल के साथ राजस्थान में प्रवेश किया। एक लेखक का कहना है कि उत्तर में पेशवा के नाम से लोगों के मन में इतना भय व्याप्त हो गया है कि वह आसानी से सम्राट को उसके

स्थान से हटाकर छत्रपति को दिल्ली की गद्दी पर बैठा सकता है।' दिल्ली नियुक्त पेशवा का प्रतिनिधि महादेव भट्ट हिंगणे उदयपुर आया। वह अपने साथ सम्राट द्वारा प्रस्तावित सन्धिपत्र की पाण्डुलिपि भी लाया। उसके साथ बाजीराव के लिए भेंटें तथा उपहार भी थे। महादेव भट्ट के साथ जयसिंह का दीवान अयामल्ल भी था। उसका दूसरा नाम राजमल था, परन्तु लोग उसको साधारणतया मल्लजी कहते थे।[७]

हर्ष तथा सम्मान के अनेकानेक प्रदर्शनों द्वारा प्रत्येक स्थान पर बाजीराव का स्वागत हुआ। उदयपुर में उसका बहुत बड़ा स्वागत हुआ। चम्पाबाग के महल में उसको ठहराया गया। अगले दिन महाराणा के द्वारा भव्य खुले दरबार में उसका सम्मान किया गया। यहाँ पर दो स्वर्णजटित गद्दियाँ रखी गयी—एक अतिथि के लिए तथा दूसरी आतिथेय के लिए। जब बाजीराव उस गद्दी के निकट पहुँचा जिस पर बैठने के लिए राणा ने उसको संकेत किया था, तो उसने सज्जनतापूर्वक राणा के साथ समानता का आसन ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वह भारत के प्राचीन देव-तुल्य महाराणा का सिंहासन था। वह उस गद्दी के नीचे एक आसन पर बैठ गया। उन्होंने परस्पर दीर्घ तथा स्वच्छन्द वार्तालाप किया। वस्त्र तथा उपहार भेंट किये गये तथा ३ से ७ फरवरी तक पाँचों दिन आमोद प्रमाद होते रहे। बाजीराव ने विभिन्न दर्शनीय स्थानों तथा राज्य के प्रसिद्ध भवनों का निरीक्षण किया और इसके बाद नाथद्वारा चला गया। चौथ के रूप में डेढ़ लाख रुपये वार्षिक देने पर राणा सहमत हो गया।

राजस्थान में उसके भ्रमण-काल में बाजीराव को समस्त दिशाओं से उपहार तथा भेंटें अति मात्रा में प्राप्त हुई। मीरबख्शी खानदौरान ५ से लेकर १० हजार रुपये प्रतिदिन तक भेजता रहा। नाथद्वारा में बाजीराव तथा उसकी पत्नी काशीबाई ने साथ साथ प्रसिद्ध श्रीनाथजी की अर्चना-पूजा की। आगे बढ़ने पर ४ मार्च को किशनगढ़ के समीप बमभोला नामक स्थान पर बाजीराव तथा जयसिंह का प्रथम मिलन हुआ।[८] वे दोनों हाथियों पर सवार थे तथा जैसे ही उन्होंने एक-दूसरे को देखा, वे उतर पड़े, गले मिले तथा खुले दरबार में एक ही मसनद पर बैठे। कई दिनों तक (८ मार्च तक) वे साथ-साथ रहे और शान्ति की शर्तों पर बातचीत करते रहे। सम्राट से मिलने के प्रबन्धों पर भी उन्होंने विचार किया जिसके विषय में शीघ्र ही दिल्ली से

---

[७] पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द ३०, पृ० १३४, जिल्द १४, पृ० ५० एवं ३५ ३७।

[८] कुछ पत्रों में उनके मिलन के स्थान का नाम मनोहरपुर लिखा है।

ऋतु म भी उत्तर भारत मे ही पडी रही। इसके बाद इन सरदारो ने मालवा म अपन स्थायी शिविर स्थापित कर लिये।

स्वय बाजीराव घटना-स्थल से बहुत दूर न था। उसने शाहू तथा अपन सहकारियो स परामर्श करने के बाद अपन प्रबन्ध को सम्पूर्ण कर जनवरी १७३७ ई० के आरम्भ मे मालवा म प्रवेश किया। १३ जनवरी को रानाजी उससे भिलसा के स्थान पर मिला तथा तूफानी अभियान के विवरणो पर परस्पर विचार विमर्श किया। बाजीराव न नर्मदा तथा यमुना के बीच के प्रदेशो से चौथ वसूल करने का काय विभिन्न सरदारो को सौंप दिया। बाजी भीवराव तथा होल्कर बुन्देलखण्ड मे होकर आगे बढे। स्वय बाजीराव तथा सिन्धिया मन्द गति स उसके पीछ पीछे रहे ताकि आवश्यकता के समय उनकी सहायता कर सकें। भदावर तथा अटेर पर अधिकार कर लिया गया और बहुत-सा लूट का माल प्राप्त हुआ। सचित धनराशि पर तथा व्यय की मदो पर बाजीराव के आदेशानुसार नाना फडनिस के पिता जनार्दन बाबा ने कठोर निरीक्षण रखा।

इस बीच सम्राट ने भी सआदतखाँ को मराठो से युद्ध करने की आज्ञा प्रदान कर दी। उसने उनके विरुद्ध आगे बढकर होल्कर और बाजी भीवराव के दल पर आक्रमण किया। मराठे दोआब के उवर शाही प्रदेशो को लूटने के लिए यमुना को पार कर चुके थे। उन्होंने आगरा के दूसरी पार एतमादपुर तथा अन्य स्थानो को लूट भी लिया था। इस समय सआदतखाँ की अति प्रबल सेना ने उन पर अकस्मात आक्रमण कर दिया। मराठे अपनी प्राण रक्षा के लिए भाग निकले परन्तु कुछ पकड लिये गये और मार डाले गये। शेष सेना ने यमुना को पुन पार किया और मुख्य सेना से जा मिले। वास्तव म यह युद्ध थोडे स आगे बढे हुए तथा भटके हुए सिपाहियो से केवल एक महत्वहीन झडप मात्र था। परन्तु सआदतखाँ समझा कि वही मुख्य मराठा दल था, तथा उसने तुरन्त सम्राट के पास एक गवपूर्ण वृत्तान्त भेजा कि मराठा दल से उसका सामना हो गया है और उसन उसको पूर्णत नष्ट कर दिया है। सम्राट न तुरन्त सआदतखाँ तथा अन्य अधिकारियो को मुबारकबाद भेजे तथा उनको सम्मानो तथा पुरस्कारो से विभूषित किया। समस्त मुगल सरदारो ने जिनमे वजीर मीरबख्शी तथा मुहम्मदखाँ बगश भी शामिल थे मथुरा के समीप अपना शिविर स्थापित किया तथा अपनी विजय के उपलक्ष म आमोद प्रमोद मनाने लगे। आने वाली आँधी का उन्हे कुछ भी ज्ञान न था।

बाजीराव इस समय बुन्देलखण्ड म था। उसकी निगाहे घटनाक्रम पर लगी हुई थीं। सम्राट को भ्रमरहित करने तथा उसके घमण्डी अनुचरो की

मिथ्या गर्वोक्ति की पोल खोलने के उत्तम मार्ग पर वह विचार कर रहा था। मुगल शिविरों की दिल्ली को जाने वाले मार्गों की तथा राजधानी की रक्षा के साधनों की ठीक ठीक सूचना उसने प्राप्त कर ली थी। इस विषय में उसके कार्यकर्ताओं धोंडो गोविन्द तथा हिंगणे ने उसको बहुमूल्य संकेत तथा सुझाव भेजे थे। आगे क्या हुआ—इसका लम्बा वृत्तान्त स्वयं बाजीराव ने ४ अप्रैल, १७३७ ई० को जयपुर से लिखकर अपने भाई को भेजा[1]

सआदतखाँ ने सम्राट को यह असत्य वृत्तान्त भेजा कि उसने मुख्य मराठा दल को परास्त कर दिया है, दो हजार मराठों को मार गिराया है तथा अन्य दो हजार को यमुना में डुबा दिया है। उसने यह भी वृत्तान्त भेजा कि मल्हारजी होल्कर तथा विठोजी बूले मारे जा चुके हैं तथा उसने इस प्रकार बाजीराव के तथाकथित भयानक आक्रमण को निरस्त कर दिया है। इस समाचार पर सम्राट इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उन सबको हार्दिक धन्यवादों सहित वस्त्र मोतियों की एक माला बहुत से हाथी तथा अन्य पुरस्कार भी भेजे। हमारा कार्यकर्ता धोंडो गोविन्द हमको प्राय सन्देश भेजता रहा जिनमें शाही दरबार की इन घटनाओं के शुद्ध समाचार होते थे। आप जानते हैं कि इन मुगल सामन्तों की उक्तियाँ कितनी निस्सार होती हैं, अत मैंने सम्राट को उचित सबक देने का निश्चय किया है ताकि वह जान जाये कि होल्कर तथा बूले अब भी जीवित हैं। मेरे सामने दो मार्ग थे—प्रथम कि सआदतखाँ पर आक्रमण करूँ और उसका विनाश कर दूँ या स्वयं दिल्ली पर धावा करूँ और उसके बहिस्थ स्थानों को जला दूँ। परन्तु सआदतखाँ आगरा से बाहर निकलने का साहस नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने दूसरा मार्ग अपनाया। मुख्य मुगल शिविरों से दूर हटकर मैं मेवाती प्रदेश से आगे बढ़ा। खानदौरान तथा बंगश ने आगरा की ओर प्रयाण किया और २३ मार्च को वे सआदतखाँ से जा मिले। हमारे कार्यकर्ता धोंडो गोविन्द पर दुष्टता का आरोप लगाकर उन्होंने शिविर से निकाल दिया। वह आकर मेरे साथ हो गया।

दो लम्बे प्रयाणों में ही मैं २८ मार्च को दिल्ली पहुँच गया और नगर के बाहर अपना पड़ाव जमाया। मैंने उपनगरीय स्थानों को जला देने का विचार छोड़ दिया क्योंकि मैंने विचार किया कि इस प्राचीन नगर पर इस प्रकार का अत्याचार करना पाप है। २८ मार्च को रामनवमी थी। उसके उपलक्ष में नगर में उत्सव हो रहे थे और वहाँ उपस्थित जनता के झुण्डों पर टूटकर और कुछ लूट का सामान लेकर हमने हलचल उत्पन्न कर दी। जनता को भयग्रस्त

---

[1] ब्रह्मेन्द्र चरित—नं० ७।

करने के लिए यह पर्याप्त था। यह समाचार ३० मार्च को सम्राट् के पास पहुँचा। उसने अपने दूत को मेरे पास भेजा और प्रार्थना की कि मैं धोंडो गोविन्द को वापस भेज दूं। मैंने कहलाया कि उसको क्रोधोन्मत्त जनता में से होकर जाना होगा, अतः उसकी कुशलपूर्वक यात्रा के लिए रक्षा दल की आवश्यकता होगी। उस भय को कम करने के लिए जो हमारी उपस्थिति से उत्पन्न हो गया था, हम नगर से दूर एक स्थान को चले गये और अपना शिविर झील पर लगा दिया। जब हम हट रहे थे, सम्राट ने करीब ८ हजार की सेना हमको खदेड़ देने के लिए भेज दी। हमारे सरदारों, होल्कर, सिंधिया तथा पवार बन्धुओं ने तुरंत उनसे टक्कर ली तथा उनको पूर्णरूप से परास्त कर दिया। १२ मुगल अधिकारी मारे गये तथा मीर हसन कोका घायल हो गया। कई सरदार तो प्राण रक्षा के लिए भाग गये। हमें नाममात्र की हानि हुई। झील पर पहुँचकर मध्याह्न में हमको पता चला कि वजीर कमरुद्दीनखाँ हमसे लड़ने आ रहा है। हमने तुरंत उस पर आक्रमण किया, परन्तु शीघ्र अँधेरा हो जाने के कारण हमको वापस होना पड़ा। बृहस्पतिवार, ३१ मार्च को हमको समाचार मिला कि समस्त मुगल सेना सम्मिलित रूप से हमारी ओर बढ़ रही है। उनको दूर घसीट ले जाने के लिए तथा उन पर एक एक करके हमला करने के लिए हमने रेवाड़ी तथा कोटपुतली की ओर प्रयाण किया। अब हम सुनते हैं कि सम्राट ने उन सबको वापस बुला लिया है। जयसिंह ने लिखकर मुझसे प्रार्थना की है कि मैं उसके प्रदेश को हानि न पहुचाऊँ। शेष कर के संग्रहार्थ अब हम ग्वालियर की ओर जा रहे है। यदि मुगल हमारा पीछा करेंगे, तो उनका सामना करने तथा उनका विनाश करने मे हम पूर्ण समर्थ हैं। दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेशों को हमने व्यवहारतः निर्जन कर दिया है। यदि निजामुलमुल्क नर्मदा पार करने तथा सम्राट् को सहायता देने का प्रयत्न करे तो आप उसको रोक दें तथा उस पर नियन्त्रण रखें। इस महान आक्रमण का यही फल है।' बाजीराव ने इस दण्ड को ही पर्याप्त समझा और वह वर्षाऋतु के पहले ही दक्षिण को वापस हो गया।

इस विचित्र धावे पर बाजीराव को अपने मित्रों तथा सहकारियों से असीम साधुवाद प्राप्त हुए। वेंकाजी राम जयपुर से लिखता है— राजस्थान के राजाओं ने अब अपनी चंचल नीति को त्याग दिया है और उसके निकट पहुँचने तथा उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए मित्रवत प्रयत्न किये है। राजा ने ५ हजार रुपये नकद जवाहरसिंह के साथ आपकी दावत के लिए भेजे है तथा उसके द्वारा आपके भ्रातृवत स्नेह पर उसने कृतज्ञता प्रकट की है। आपके पत्र का प्रत्येक शब्द मैंने पढ़कर उसको सुनाया। इस पर उसने उत्तर

दिया—'हम सब पेशवा के निष्ठापूर्ण सेवक हैं। हमारा सब राज्य उसका है। यह उसके लिए उचित ही है कि प्रत्येक प्रकार से वह हमारा ध्यान रखता है। उसकी पूज्यनीया माता ने हमको अपना आशीर्वाद दे रखा है और उसको अवश्यमेव वह आशीर्वाद बनाये रखना है।"

जब बाजीराव उत्तर में था सम्राट ने मुहम्मदखाँ बंगश को शीघ्रतापूर्वक जयपुर भेजा ताकि वह राजा की सैनिक तैयारियों का निरीक्षण करे और पेशवा के विरुद्ध सम्मिलित तथा वीरतापूर्ण विरोध की सम्भावनाओं पर अपनी सूचना भेजे। दूसरी ओर शाहू उत्तर से प्राप्त होने वाले परस्पर विरुद्ध वृत्तान्तों से काफी चिन्तित था। उसने बाजीराव को वापस बुलाने के लिए साग्रह पत्र लिखे। उसे भय हो रहा था कि कहीं अपनी असावधानता के कारण बाजीराव अपना नाश न कर बैठे और इस प्रकार मराठा हित को कोई स्थायी हानि हो। उसने लिखा—'आपके सदृश अनुपम क्षमता का सेवक हमारे लिये महान सम्पत्ति है। आप कभी यह प्रयास न करें कि आपका तथा सम्राट् का व्यक्तिगत सम्मिलन हो। हमको सूचना मिली है कि निजाम तथा अन्य उच्चपदस्थ सामन्त आपके प्रति कदापि मित्रता नहीं रखते। वे सब आपके विनाश पर तुले हुए हैं। अतः कृपया पूर्ण सावधान रहें तथा अपनी निकट भविष्य की योजनाओं का समाचार हमको यथाशीघ्र भेजें।'[11]

७ निजाम का भोपाल में पराभव—१७३६ ई० के आरम्भ से ढाई वर्षों को उचित रूप से मुगल-मराठा-युद्ध का काल कह सकते हैं। इन वर्षों में बाजीराव ने उत्तर में युद्ध का संचालन किया तथा उसके भाई ने वही कार्य दक्षिण में किया। उसके भाई के सहायक आवजी कावड़े, रघुजी भोसले, वेंकटराव घोरपड़े तथा अन्य सरदार थे जिनका नाम उस समय के पत्रों में बार बार आया है। १७३८ ई० में घटनाएँ उस समय अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयीं जब बाजीराव तथा निजामुल्मुल्क शक्ति की अन्तिम परीक्षा के निमित्त सम्मुख हुए। १७३७ ई० के ग्रीष्मकाल में बाजीराव के धावे से भयभीत होकर सम्राट ने निजामुल्मुल्क को दिल्ली आकर मराठों के उत्थान को बन्द करने के लिए बारम्बार आग्रहपूर्ण आह्वान भेजे थे। राहू रामेश्वर के स्थान पर सितम्बर १७३२ ई० में हुए परस्पर गुप्त समझौते के उपरान्त बाजीराव तथा निजामुल्मुल्क ने अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण पालन किया था तथा गुप्त रूप से एक-दूसरे के माग

---

११ [illegible] का [illegible] पत्र। [illegible] बाजीराव पर [illegible] का [illegible]

म विघ्न-बाधा उपस्थित नही की थी। इस समय सम्राट का आह्वान प्राप्त होने पर निजाम ने बाजीराव को सूचना भेजी कि उसका दिल्ली जाने का एकमात्र उद्देश्य उस कलक को मिटाना है जो प्रथम विद्रोही—जिसने केन्द्रीय सत्ता स अपना स्वातन्त्र्य घोषित कर दिया है—के नाम से उसके साथ बहुत दिना पहले जुड गया है। अत १७३७ ई० की बसन्तऋतु म वह अपने राज्य स चलकर १० मई को सिराज पहुँचा। यहाँ पर उसको मालूम हुआ कि दिल्ली क समीपवर्ती प्रदेश को नष्ट करके दक्षिण की ओर अपनी प्रतियात्रा पर उस स्थान के समीप ही बाजीराव कुछ दिना स अपना शिविर लगाये हुए है। उनके लिए यह बात शिष्टाचार विरुद्ध होती यदि एक-दूसरे के इतन समीप होत हुए भी वे उदासीनता बरतत। पिलाजी जाधव के रूप मे एक आज्ञाकारी मध्यस्थ भी उन्ह मिल गया जो बाजीराव की ओर से २८ मई को निजामुल्मुल्क स मिलने गया। निजाम ने स्वाभाविक रूप स उसका विधिपूर्वक अभिवादन किया यद्यपि हमको यह विश्वास कर लेना चाहिए कि पिलाजी को इसलिए भेजा गया था कि वह निजामुल्मुल्क की भावी योजनाओ के विषय मे कुछ सकेत प्राप्त कर ले। निजाम बहुत चतुर था। उसने उसे अनेक उपहार दिये तथा अपने वास्तविक अभिप्राय को गुप्त रखा। परन्तु मौन ने सब बात प्रकट कर दी तथा बाजीराव न भी सकेत ग्रहण कर लिया और निकटवर्ती युद्ध के लिए तुरत तयारी करने लगा।

मालवा म निजामुल्मुल्क न सवप्रथम उन स्थानीय सरदारा को अपनी आज्ञा म कर लेने का प्रयत्न किया जो अझेरा के युद्ध के बाद निजाम का पक्ष त्यागकर मराठा के साथ हो गय थ। यह भी सम्भव हो सकता है कि बाजीराव जानबूझकर ग्रीष्मऋतु म खुले सघष से दूर रहा। कई मासा के कठिन अभियान के कारण उसकी सनाएँ भी काफी थकी हुई थी और वर्षा-ऋतु के आरम्भ क पहल ही अपने घरा को पहुँच जाना चाहती थी तथा उस लूट के माल को भी सुरक्षापूवक जमा कर देना चाहती थी जो उन्होन प्राप्त किया था। अपनी योजनाओ को परिपक्व करन के लिए निजाम सिराज से दिल्ली की ओर गया। राजनीतिक क्षितिज पर घोर घटाएँ छाने लगी। एक बार पुन शाही राजधानी मे निजाम का स्वागत अत्यधिक परन्तु कृत्रिम हर्ष स किया गया। सम्राट् तथा समस्त दरबार ने उसका हार्दिक स्वागत किया। निजामुल्मुल्क ने विनम्र भाव से सम्राट का अभिवादन किया जिसके बदले म उसको अपूव सौजन्य तथा अपार सम्मान प्राप्त हुए। सम्राट न उपहार म उसको अपने वस्त्र तथा सिरपाव दिया तथा आसफजाह की उपाधि स विभूषित किया, जो मुगल सामन्त-वग म उच्चतम उपाधि थी। वह उसको

अपनी रसोई से उसके ठहरने के समय तक नित्य उत्तम भोजन भेजता रहा। वेंकाजीराम १० अगस्त को दिल्ली से लिखता है

निजामुल्मुल्क ने सम्राट से ५ सूबा के शासन की मांग के अतिरिक्त एक करोड़ नकद रुपये की भी मांग की है ताकि उत्तर भारत से मराठा संकट का निराकरण करने के लिए वह अपनी तैयारियाँ कर सके। जो कुछ भी उसने मांगा है सम्राट ने उसे इच्छापूर्वक दे दिया है। उसके पुत्र गाजीउद्दीन को आगरा तथा मालवा के सूबे दे दिये गये हैं। उसके दूसरे पुत्र नासिरजंग को आज्ञा दी गयी है कि वह मराठा सहायक सेनाओं को दक्षिण से मालवा में प्रवेश न करने दे। इलाहाबाद अजमेर तथा गुजरात के तीनों सूबे उन व्यक्तियों को मिलेंगे जिनको निजाम मनोनीत करेगा। बाजीराव इन नियुक्तियों का ठीक-ठीक अर्थ समझ गया जिनकी सूचना उसके विश्वस्त प्रतिनिधि ने भेजी थी तथा वह मुगलों से लड़ने को तैयार हो गया।

प्रत्येक विषय में आवश्यक वस्तुओं से सुसज्जित होकर निजामुल्मुल्क ने तीस हजार चुनी हुई सेना लेकर अक्टूबर में दिल्ली से प्रयाण किया। उसके साथ शक्तिशाली तोपखाना भी था। साथ ही बुन्देलखण्ड और मालवा से मराठों का निराकरण करने के निमित्त स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का पूर्ण अधिकार भी उसे दिया गया था। उसने दक्षिण का सरल मार्ग ग्रहण किया। आगरा के समीप यमुना को पार करके वह दोआब में पहुँच गया जहाँ कालपी के पास उस नदी को पुनः पार करके वह बुंदेलखण्ड में पहुँच गया। पेशवा पहले से ही उत्तर कोंकण में पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त था। परंतु दोनों ही भाई अवसर के अनुकूल समान रूप से योग्य सिद्ध हुए तथा मालवा में उन्होंने निजाम के अपेक्षाकृत विशाल युद्ध का संचालन किया। मराठा योद्धाओं तथा उनके सहायकों ने इससे पहले कभी भी इस प्रकार के चिंतापूर्ण समय का अनुभव न किया था। औरंगजेब के समय से मुगल साम्राज्यवादियों ने मराठों के विरुद्ध इस प्रकार का सर्वोपरि सम्मिलित प्रयास कभी नहीं किया था। शाहू की निस्पृह समवृत्ति के लिए भी स्थिति भयानक थी। उसने सतारा में पेशवा से बार बार गम्भीर विचार विनिमय किया और उत्तर भारत से रानोजी मल्हारराव तथा अन्य उत्तरदायी नेताओं को पूर्ण परामर्श के लिए अपने पास बुलाया। बाजीराव ने उत्साहपूर्वक चुनौती स्वीकार कर ली तथा अपने राजा की निराशामय भावनाओं को प्रोत्साहित किया। पासा पड़ चुका था। १५ अक्टूबर के शुभ दिन बाजीराव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। उसके साथ राजा के आशीर्वाद के साथ साथ राष्ट्र की उत्तम कामनाएं भी थीं, जो इससे पहले कभी भी इतनी संगठित न थी।

इस बीच मे नासिरजग भी जो अपने योग्य पिता का योग्य पुत्र था अकमण्य न रहा था। उसने मालवा म उपयोग के लिए नवीन सना एकत्र की। दो दलो के बीच मे मराठो को डालकर उनको कुचल दने की तयारियो म उसने पर्याप्त धन व्यय किया। वह स्वय दक्षिण से तथा उसका पिता उत्तर स मराठो पर आक्रमण कर—यह उसकी योजना थी। इस चाल की पूव-कल्पना करके ही बाजीराव ने अपने भाई चिमनाजी अप्पा का ताप्ती नदी पर वनगाम क स्थान पर नियुक्त कर दिया था तथा उसको निर्देश दिया था कि वह नासिरजग को बुरहानपुर स आग न बढने द। चिमनाजी न अपने कतव्य का श्रेष्ठतापूवक पालन किया। रघुजी भासल, दमाजी गायकवाड तथा आवजी कावडे सदृश अन्य अनुभवी मराठा सरदारो न बाजीराव को हृदय से सहायता दी तथा जो काय उनको सौंपे गय उनका उन्होने अविचल रहकर पालन किया।

स्वय बाजीराव न विशाल सन्य दल सहित दिसम्बर के आरम्भ म नमदा को पार किया। उसन अपने सचार साधनो पर घोर नियन्त्रण रखा तथा शत्रु की प्रत्यक प्रगति की सूचना प्राप्त करन हतु विभिन्न दिशाओ म अपन कायकर्ताओ तथा गुप्तचरो को उपयुक्त स्थानो पर नियुक्त कर दिया। यह प्रबन्ध करने के बाद वह अपनी गनीमीकावा चालो से मुगलो को असह्य स्थिति म डाल देने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। यह उसके जीवन का सर्वोपरि मार्मिक सघष था। मालवा मे उसके पहुँचने के पहले ही निजामुल्मुल्क न बुन्देलखण्ड को अधीन कर लिया था। उसन अपन शिविर का ऐसा निर्माण किया जो सघन हो और जिस पर सरलता से निरीक्षण रह सक। दिसम्बर के आरम्भ से मराठो क दल मुगल शिविर के चारो ओर चक्कर काटने लग। व उनको दूर ही स तग करते तथा उनकी तोपो की मार के बाहर ही रहत। जस ही बाजीराव मालवा की पठार भूमि पर पहुँचा, अग्रिम पक्ति म नियुक्त मराठा सनाओ ने मुगलो को दक्षिण की ओर बाजीराव के जाल म ढकेलना आरम्भ कर दिया। मराठो की चालें शीघ्र ही प्रभावशील सिद्ध हुइ। निजाम जल्दी ही समझ गया कि मराठो का पीछा करना उसक लिए सम्भव नही है और न वह अपनी इतनी बडी छावनी के साथ उनका कोई प्रतिकार ही कर सकता है। जीवन की आवश्यक वस्तुए उसके लिए शीघ्र अप्राप्य हो रही थी। उसन शीघ्र ही किसी सुदुर्गीकृत स्थान म शरण लेने का निश्चय किया जहाँ वह अपनी सना को सुरक्षित रख सके तथा विभिन्न मराठा दलो स अलग अलग निपट सके।

वह बाजीराव की ओर बढ रहा था। जब वह भोपाल पहुँचा, तो इसकी

पूर्व निश्चय किये बिना कि वहाँ पर उसको पर्याप्त भोज्य-सामग्री मिल सकेगी अथवा नहीं उसने प्राचीरयुक्त नगर में शरण ले ली। परिखाएँ खोदकर उसने अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर लिया। यही जाल था जिसमें अपने शत्रु को फाँसने को बाजीराव यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा था। उस छोटे-से परकोटे-युक्त स्थान में बाजीराव ने मुगलों को घेर लिया और बाहर से रसद आदि भी उनके पास न पहुँचने दी। १८ दिसम्बर को घेरा आरम्भ हुआ और एक सप्ताह से भी कम समय में अन्न के अभाव के कारण मुगलों की दुर्दशा हो गयी। केवल उनके तोपखाने ने उनकी अच्छी सेवा की, क्योंकि उसके ही कारण मराठे दूर रहे। निजामुल्मुल्क को शीघ्र ही अपनी स्थिति असह्य प्रतीत होने लगी और अपनी तोपों की रक्षा में उसने सम्पूर्ण शिविर सहित घेरे से बाहर निकल जाने का प्रयत्न किया। परन्तु वह एक दिन में चार या पाँच मील से अधिक नहीं चल सकता था। इस प्रकार पूरे १५ दिन तक वह भारी दबाव और कठिनाइयाँ सहन करता रहा। जब उसको यह ज्ञात हुआ कि उसके पुत्र के अधीन अभीष्ट सहायता अभी तक बुरहानपुर भी नहीं पहुँची है तो निराशा के कारण वह पूर्ण परास्त हो गया। अति दुःखी होकर उसने मराठा शिविर से अपने एकमात्र मित्र आनन्दराव सुमन्त को बुलाया तथा उसके द्वारा बाजीराव से शान्ति की शर्तों की प्रार्थना की। बाजीराव ने सुमन्त की मार्फत सन्धि क्रम पर वार्तालाप करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह सुमन्त पर विश्वास नहीं करता था। उसके स्थान पर बाजीराव ने अपने कार्यकर्ता पिलाजी जाधव, बाजी भीवराव तथा बाबूराव मल्हार को निजाम के पास भेजने का प्रस्ताव किया। इस बीच में जयसिंह का मन्त्री आयामल्ल सयद लश्करखाँ तथा अन्य प्रतिनिधियों सहित, निजाम की ओर से बाजीराव से मिलने तथा सन्धि की शर्तों का प्रबन्ध करने के लिए आ गया। उन्होंने आग्रह किया कि यदि बिना उसका अपमान किये बाजीराव निजाम को उसकी वर्तमान कठिन स्थिति से मुक्त कर दे तो निजाम बाजीराव की किसी भी माँग को सहर्ष स्वीकार कर लेगा। दीर्घकालीन तथा चिन्ताकुल सम्मिलनों के बाद ७ जनवरी, १७३८ ई० को सिरोंज से लगभग ६४ मील उत्तर में दोराहा सराय के स्थान पर निजामुल्मुल्क ने निम्नलिखित शर्तों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये

(१) निजामुल्मुल्क ने प्रतिज्ञा की कि वह शाही मुद्रा सहित मालवा का विधिपूर्वक पट्टा मराठों को दे देगा।

(२) नर्मदा तथा यमुना के बीच का समस्त प्रदेश वह उसको दे देगा।

(३) मराठो को व्यय के रूप मे वह शाही कोष स ५० लाख रुपये नकद देगा।

प्रदत्त प्रदेशो के समस्त जागीरदार तथा सरदार वापस भेज दिये गये। इन्होने पहले मराठा आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, परन्तु इस नूतन अभियान म वे मराठा का पक्ष त्यागकर निजाम के साथ हो गये थे। पेशवा ने खुले दरबार मे उनका स्वागत किया। यहाँ पर इन्होने उसके प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण की। इस प्रकार एक बार फिर बाजीराव ने अपने उस शत्रु के खिलाफ जिसने कई बार अपनी प्रतिज्ञाएँ भग की थी और जो मराठा को अतिम रूप स कुचल देना चाहता था, शस्त्र प्रयोग और अधिक दण्ड न देकर अपनी अपूर्व उदारता का परिचय दिया। सम्राट तथा उसके सूबेदारो के प्रति छत्रपति की नीति का यह एक और उदाहरण है। वास्तव मे मराठा को इस समय निजामुल्मुल्क पर सर्वनाशक प्रहार करने का एक अच्छा अवसर मिला था जिसे उन्होने खो दिया और बिना कठोर दण्ड दिये ही उनको भाग जाने दिया। इस प्रकार उन्होने अपनी परम्परागत नीति—जिओ और जीने दो—का पालन किया। बाजीराव अपने भाई को लिखता है—'नवाब के पास प्रबल तोपखाना था। बुदेल तथा राजपूत राजे उसके दृढ़ मित्र थे। मैंने आपके परामर्श को स्वीकार करके जो शर्तें हम उससे बलपूर्वक ले सकते थे उनस बहुत कम शर्तों पर सहमत हो गये। आप उस कठोर हार्दिक वेदना का अनुमान कर सकते है जो निजाम को स्वय अपने हाथ से उस पत्र पर हस्ताक्षर करने म हुई होगी जिसके द्वारा उसने मालवा तथा उसम चौथ और सरदेशमुखी लगान के अपने अधिकारो का त्याग कर दिया। इसके पहले वह कभी उनका नाम भी न लेता था। यह उसके लिए लज्जा की बात थी कि वह इनको स्वीकार करने पर विवश कर दिया गया। यह सफलता भी जो बहुत है उस आशीर्वाद का प्रताप है जो हमको अपने पूजनीय छत्रपति स तथा अपने दिवगत पिता स प्राप्त हुआ है। मुगल साम्राज्य के उच्चतम सामन्त ने हमारे सामने घुटने टेक दिये है। उसने कुरान पर हाथ रखकर शपथ ग्रहण की है कि वह सहमत शर्तों का निष्ठापूर्वक पालन करेगा।"

इस पत्र की पक्तियो का विश्लेषण करने पर हम शाहू की नीति स्पष्ट हो जाती है जो बाजीराव को उसके भाई की मध्यस्थता द्वारा भेजी गयी थी। इस प्रकार भोपाल म बाजीराव ने अतिम तथा उच्चतम विजय प्राप्त की। विजय के इन क्षणो म मर्यादा का अतिक्रमण न करने के कारण वह यशस्वी है। सन्धि-पत्र की प्राप्ति के बाद मुगलो को बिना किसी छेडछाड के वहाँ से चले जाने की सुविधा दी गयी। परन्तु बाजीराव उत्तर म कुछ माग और ठहरा

तिथिक्रम

अध्याय ७

११ जनवरी, १७३०	पूना मे मस्तानी का प्रथम उल्लेख।
५ जुलाई, १७३०	सदाशिवराव भाऊ का जन्म।
अप्रल, १७३२	काउण्ट आव सण्डोमिले गोआ का पुर्तगाली राज्यपाल।
१७३४	सण्डोमिले द्वारा थाना का दुर्गीकरण प्रारम्भ।
१८ अगस्त, १७३४	रघुनाथराव का जन्म।
१७३४	मस्तानी के पुत्र शमशेर बहादुर का जन्म।
४ फरवरी—३ अप्रल, १७३५	बाजीराव कोलाबा मे तथा उसके द्वारा आंग्रे-परिवार की सम्पत्ति का सम्भाजी तथा मानाजी के बीच दो भागों मे विभाजन।
ग्रीष्म, १७३७	पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ।
२७ मार्च, १७३७	चिमनाजी अप्पा द्वारा थाना, धारावी तथा अन्य स्थानों पर अधिकार।
१७३८	नादिरशाह का काबुल पर अधिकार।
२७ नवम्बर, १७३८	पेड्रो द मेलो का थाना में वध।
२९ दिसम्बर, १७३८	तारापुर की लडाई।
९ जनवरी, १७३९	माहीम तथा अन्य स्थानो पर अधिकार।
१२ जनवरी, १७३९	पुर्तगाली केन्द्र गोआ पर वेंकटराव घोरपडे द्वारा आक्रमण।
१२ जनवरी, १७३९	नादिरशाह का लाहौर पर अधिकार।
१८ जनवरी, १७३९	नादिरशाह से युद्धार्थ सम्राट का दिल्ली से प्रस्थान।
१३ फरवरी, १७३९	नादिरशाह द्वारा करनाल के समीप सम्राट को परास्त तथा गिरफ्तार करना।
७ मार्च, १७३९	नादिरशाह दिल्ली में।
९ मार्च, १७३९	सआदतखाँ द्वारा विषपान तथा उसकी मृत्यु।
अप्रल, १७३९	नादिरशाह द्वारा दिल्ली और आसपास की लूट।
२५ अप्रल, १७३९	नादिरशाह का भारतीय शासकों से सम्राट की सहायता करने के लिए कहना।

अध्याय ७

बाजीराव की अन्तिम अवस्था

[१७३९-१७४०]

१ नादिरशाह का आक्रमण, हिन्दू प्रभुत्व (?)।
२ पुर्तगालियो से युद्ध, बम्बई पर अधिकार।
३ बम्बई मे प्रतिक्रिया।
४ लघु घटनाएँ—आग्रे परिवार।
५ मस्तानी की प्रेम कथा।
६ नासिरजग परास्त।
७ आकस्मिक मृत्यु।
८ बाजीराव का चरित्र।

१ नादिरशाह का आक्रमण, हिन्दू प्रभुत्व (?)—नादिरशाह का आक्रमण तथा मुगल-साम्राज्य पर उसका विनाशक प्रभाव इतने अधिक विख्यात हैं कि यहा पर उनके सविस्तार निरूपण का आवश्यकता प्रतीत नही होती। हमारा सम्बन्ध तो केवल इस जानकारी से है कि मराठा इतिहास की सामान्य प्रवृत्ति पर इस काण्ड की क्या प्रतिक्रिया हुई। भोपाल मे अपनी पूर्ण पराजय के बाद निजामुल्मुल्क दिल्ली लौट गया। उसने अपनी कारगुजारियो के विषय मे सम्राट को क्या सूचना दी, यह जानने का हमारे पास कोई साधन नही है। परन्तु यह पूर्णतया स्पष्ट है कि बाजीराव से की हुई प्रतिज्ञा का पालन करने का उसने किंचित् प्रयत्न नही किया और न दोराहा सराय की सहमति की शर्तों का ही सम्राट से पूर्ण प्रमाणीकरण कराया। दिसम्बर १७३८ ई० मे मराठा दूत बाबूराव मल्हार ने दिल्ली से यह वृत्तान्त भेजा—'मैं एक बार सम्राट से मिला। उसने निजामुल्मुल्क के साथ परस्पर मित्रता की गम्भीर शपथ ग्रहण कर ली है। सीमा सम्बन्धी कुछ झगडो के कारण तथा नादिरशाह की भर्त्सनाओं के उद्वेगपूर्ण समाचार से दिल्ली दरबार का शान्तिमग्न वातावरण विक्षुब्ध हो गया है। प्रवाद यह है कि सआदतखा तथा निजामुल्मुल्क ने सम्राट को उन साधनो मे जिनसे वह इस सकट का सामना करने के लिए सगठित कर रहा था सहायता देने की बजाय नादिरशाह के साथ कुछ गुप्त विश्वासघाती मन्त्रणा की है। हाँ यह स्पष्ट है कि यदि मुगल दरबार के ये दो सर्वोपरि मुख्य सामन्त सम्राट को अपना पूर्ण सहयोग देकर नादिरशाह के आक्रमण को रोकने मे दत्तचित्त होकर परिश्रम करते तो सकट का निराकरण हो सकता था। किन्तु सत्तारूढ मन्त्रियो ने ईरान की ओर से उपस्थित इस भय को तुच्छ समझा और साम्राज्य के हित मे लेशमात्र भी त्याग न करके उन्होने अपना

स्नाय सिद्ध करना चाहा। ये सब सामन्त पृथक पृथक विभिन्न कारणों से मराठों से घृणा करते थे। सम्भव है कि उनका यह भी विचार हो कि नादिर शाह के आने पर उसकी अनुकूल सहायता से वे मराठों का दमन कर देंगे। ही जनसाधारण में यह विश्वास अवश्य फैला हुआ था कि कभी सन्तुष्ट न होने वाले आक्रान्ता (नादिरशाह) ने यह आक्रमण आमन्त्रित मराठों से मुगल सत्ता की रक्षा करने के लिए ही अंगीकार किया है।

एक वर्ष पहले से ही दिल्ली में नादिरशाह के मनोरथ ज्ञात थे। १७३८ ई० में उसने काबुल पर अधिकार कर लिया और तुरन्त दिल्ली को सम्राट के पास दूत भेजकर प्रार्थना की कि वह उसके प्रदेश का नाश करने वाले सीमा पर स्थित कबीलों के उपद्रवों का दमन करे। जब इन शिकायतों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो नादिरशाह नवम्बर में काबुल से चल पड़ा। पेशावर तथा अटक पर अधिकार करने के बाद वह जनवरी १७३९ ई० के आरम्भ में लाहौर के निकट पहुँच गया। यदि निजामुल्मुल्क ने जैसा कि उसने ढोंग रचा था १७२३ ई० से सम्राट के प्रति अपने विद्रोही आचरण का वस्तुतः प्रायश्चित्त कर लिया था तो इस दौरान में वह क्या करता रहा? लाहौर के योग्य सूबेदार जकारियाखाँ ने लाहौर से आक्रान्ता को दूर रखने का यथाशक्ति प्रयास किया परन्तु वह परास्त हो गया और १२ जनवरी को लाहौर उसके हाथ से निकल गया। अब तक दिल्ली में जूँ भी न रेंगी थी। १८ जनवरी को मुहम्मद शाह अपने समस्त दल तथा सामन्तों सहित दिल्ली से नादिरशाह का प्रतिरोध करने के लिए चला। उसने अपनी उत्तम सुसज्जा तथा रण सामग्री के साथ करनाल पर विशाल शिविर स्थापित किया। अपने दृढ़ निश्चय साहस तथा सबसे अधिक आवश्यक अपने सेनाधिकारियों एवं सलाहकारों के ऐक्य होने की दशा में वह इस सामग्री और सज्जा से आक्रमणकारी का दमन कर सकता था। मुख्य सामन्तों में परस्पर फूट तथा षडयन्त्र मुगल दरबार के नाश के विशिष्ट कारण थे तथा इसीलिए मिट्टी के घरौंदे की भाँति यह ढह गया। ५ फरवरी को नादिरशाह सरहिन्द पहुँचा। १३ फरवरी को साम्राज्य-पालकों ने अपने केन्द्र स्थान करनाल से आगे बढ़कर ईरानियों पर आक्रमण कर दिया परन्तु भारी प्रहार के साथ उन्हें पीछे धकेल दिया गया। मीरबख्शी खानदौरान को प्राणघातक घाव लगा और दो दिन बाद उसका देहान्त हो गया। सआदतखाँ घायल हुआ और बन्दी बना लिया गया। निजामुल्मुल्क अन्त तक अनिश्चित रहा तथा उसने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति उससे मार्गदर्शन की आशा रखता था क्योंकि वह साम्राज्य का सर्वाधिक गम्भीर तथा अनुभवी सामन्त था।

ल्यि जाने की धमकी दी। चूकि सआन्तरी परिस्थिति का सामना न कर सकता था अत विष खाकर उसने अपने जीवन का अत कर लिया।[1] १० मार्च को नादिरशाह मुगल गद्दी पर बैठा और अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया। तुरन्त ही उसने दिल्ली की असहाय जनता पर व अत्याचार प्रारम्भ किये जिन्हे भारतीय आज तक नही भुला सके हैं। ६ मार्च से १ मई तक सभी श्रेणियो के व्यक्तियो ने उस निर्दयता सकट तथा सार्वजनिक अपमान को सहन किया जिसका वर्णन नही किया जा सकता। कहा जाता है कि २० करोड रुपये की जगह नादिरशाह ने लगभग एक अरब रुपये नाद तथा सामान के रूप मे एकत्र किये। इनमे दिल्ली का मयूर सिंहासन जिसको शाहजहाँ ने बनवाया था तथा कोहिनूर हीरा भी थे। इन सबको वह ईरान ले गया।

उत्तरी भारत मे नियुक्त सभी घटना अन्वेषको और योग्य मराठा कार्यकर्ताओ ने ये सारे वृत्तान्त महाराष्ट्र मे बाजीराव शाहू तथा मराठा राज्य के अन्य नेताओ के पास सविस्तार भेजे। प्रत्येक ने अपने ढग से भविष्य मे अपने मार्ग का अनुसरण करने के सुझाव भी दिये। हिंगणे सामन्त और बापूराव मल्हार ने भी अपने परामर्श भेजे। जयसिंह ने अपने प्रतिनिधि कृपाराम को दिल्ली मे रख छोडा था। बाजीराव ने पिलाजी जाधव को मालवा मे नादिरशाह को आगे न बढ़ने देने के लिए नियुक्त कर रखा था। आनन्दराय सुमन्त दिल्ली मे निजामुल्मुल्क के साथ था और घटना चक्र पर दृष्टि रखे हुए था। दिल्ली तथा राजस्थान से प्राप्त समस्त समकालीन वृत्तान्तो से स्पष्ट था कि सम्पूर्ण उत्तर भारत मे अपूर्व अराजकता का साम्राज्य था। ऐसा कोई शासक न था जो इस समय वहाँ अपनी आज्ञा का पालन करा सके। सम्पूर्ण देश मे जनता पर कर गयी थी और प्रत्येक भविष्य की चिन्ताओ मे लीन था। कुछ लोगो ने बाजीराव को वीरतापूर्वक आगे बढ़कर इस आक्रमण को बाहर निकाल देने का सुझाव दिया। कुछ अन्य लोगो ने अधिक सावधान नीति का समर्थन करते हुए घटनाक्रम का सूक्ष्म अन्वेषण करने तथा उपयुक्त अवसर पर हस्तक्षेप का सुझाव दिया। अधिक कट्टरपथी उपराधियो की भी कमी न थी जिन्होने दिल्ली के रिक्त राज्यासन पर हिन्दू सम्राट को बैठाने के चिर विलम्बित स्वप्न को तुरन्त कार्यान्वित कर लेने का परामर्श दिया। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि बाजीराव पर थी। उस दशा मे उपयुक्त बकी सास्त्री

[1] इरविन कृत 'लेटर मुगल्स' जिल्द २ पृ० ३२६। हिंगणे दफ्तर मराठ (जिल्द १ पृ० ११) मे नादिरशाह द्वारा की गयी लूट का अनुमान पौने चार करोड रुपया है।

व्यक्ति था जो वीरतापूर्वक परिस्थिति का सामना कर सकता था तथा जन-साधारण के विश्वास को प्राप्त कर सकता था।

जयसिंह तथा बाजीराव हृदय से मित्र थे और उन्होंने परस्पर सलाह से काम किया। इस समय सम्राट की ओर से उपस्थित रहने वाले अनेक हानि-कारक तत्वों से भी वे छुटकारा पा चुके थे। बहुत दुःखी होकर सम्राट ने इस समय उसकी सहायता करने के निमित्त जयसिंह को पत्र लिखा। परन्तु जयसिंह अपने घर में न टला। इसके विपरीत उसने सौजन्यपूर्ण पत्रों द्वारा नादिरशाह को साधुवाद भेजे। धोंडो गोविन्द ने जो चतुर घटना-अन्वेषक था, बाजीराव को दिल्ली से पत्र लिखकर परामर्श दिया कि वह संघर्ष के लिए पूर्ण रूप से तैयार होकर मालवा में ही ठहरा रहे। उसने लिखा—"नादिर-शाह ईश्वर नहीं है कि पृथ्वी का विनाश कर दे। उसमें पर्याप्त बुद्धि है और वह अपना कार्य समझता है। जब उसको मालूम हो जायेगा कि उसका विरोध करने के लिए आप पर्याप्त रूप से सशक्त हैं तो वह आपसे शत्रुता ठानने के स्थान पर आपकी मित्रता का इच्छुक होगा। कृपया हमको निर्देश भेजें कि हम किस प्रकार अपना कार्य करें। पहले आप अपनी शक्ति का परिचय दें, तथा इसके पश्चात कोमल और मधुर व्यवहार रखें। मुझको यह विश्वास नहीं है कि आप में और उसमें वास्तव में कोई युद्ध होगा। बल तथा कठोरता के प्रदर्शन मात्र से ही कभी-कभी महत्त्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हो जाते हैं। जयसिंह तथा आप बुंदेला सरदारों की सहायता से प्रबल हिन्दू-पक्ष स्थापित कर लेंगे जिसे ईश्वर अवश्य सफलता प्रदान करेगा क्योंकि वह परम विवेकी है। जयसिंह उत्सुकतापूर्वक आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है और आपके नेतृत्व के प्रति आशावान है। निजाम धूर्ततापूर्ण चालें चल रहा है। उसके कुछ गुप्तचरों को जयसिंह ने पकड़ लिया है। वे इधर उधर घूमकर जयसिंह की गुप्त मन्त्रणाओं को जानने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया है कि उन्हें निजाम ने ही भेजा है। उन्हें उनके नाक-कान काटकर छोड़ दिया गया है। जब निजामुल्मुल्क सदृश शक्तिशाली सामन्त अपने स्वामी के प्रति इस प्रकार का विश्वासघातक आचरण करता है, तब फिर आप कैसे यह आशा कर सकते हैं कि नादिरशाह बिना हिंदुओं को दण्ड दिये शान्तिपूर्वक वापस हो जायेगा? सभी व्यक्ति इस पर सहमत हैं कि केवल दो सामन्तों—निजामुल्मुल्क तथा सआदतखाँ—ने नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने का प्रलोभन दिया। सआदतखाँ को उचित दण्ड मिल गया है। निजाम अब भी जीवित है परन्तु उसका जीवन मृत्यु से भी अधिक लज्जाजनक है। गधे पर बैठकर नादिरशाह को मुजरा करने जाने को उसे बाध्य किया गया है।

विजय इस समय केवल पेशवा के पक्ष में है। यहाँ पर अनेक लोगों की इच्छा है कि उदयपुर के राणा को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा दिया जाय और हिन्दुओं का सम्राट बना दिया जाय। उत्तरी राजा लोग उत्सुकतापूर्वक पेशवा के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शीघ्र ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता दिखायी दे रहा है। संसार का संहार हो रहा है। हमको वीरतापूर्वक परिस्थिति का सामना करना है। २

इस सभ्रामक संकटपूर्ण स्थिति में केवल शाहू की दृष्टि निर्मल रही तथा अपनी सत्ता की शक्ति का अंतिम निर्णय उसी ने किया। उसके निर्देश पर मराठा दरबार तथा राष्ट्र ने अपने को इस कार्य के प्रति समर्थ नहीं पाया कि वे दिल्ली में हिन्दू सम्राट की रक्षा का भार वहन कर सकें। शाहू तथा उसका पेशवा इस समय इस संघर्ष में उलझने के लिए तैयार न थे क्योंकि पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों के विरुद्ध वे जीवन मरण के एक संघर्ष में पहले से ही व्यस्त थे। बसई का पतन तथा भारत से नादिरशाह का बहिर्गमन एक ही समय पर हुए। किन्तु पिलाजी जाधव के परामर्शानुसार बाजीराव तुरन्त उत्तर जाने के लिए तैयार हो गया। इस कार्य की आज्ञा स्वयं शाहू ने दी। उसको उसकी वह प्रतिज्ञा याद थी जो उसने मृत्यु शय्या पर सम्राट औरंगजेब के सम्मुख की थी कि जब कभी भी बाह्य आक्रमण से साम्राज्य की सुरक्षा को भय होगा तो वह उसकी रक्षा यथाशीघ्र करेगा। शाहू के लिए अपनी प्रतिज्ञा पालन करने का उचित समय आ गया था। जब बाजीराव बुरहानपुर पहुँचा तो दिल्ली से उसको सूचना मिली कि नादिरशाह अपनी मातृभूमि को वापस हो गया है और उसने मुहम्मदशाह को दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा दिया है तथा भारतीय शासकों को उसकी (मुहम्मदशाह) आज्ञाओं का पालन करने की सबल आज्ञाएं प्रेषित की है।

शाहू को बाजीराव में असंदिग्ध विश्वास था। उसने एक आज्ञा प्रसारित की थी— 'समस्त जन श्रद्धापूर्वक बाजीराव की आज्ञा का पालन करें तथा उसके चित्त को अशान्त करने का कोई कार्य न करें।' ३ दिल्ली में हिन्दू राज्य स्थापित करने के विषय में जब उससे प्रश्न किया गया तो ३१ मई

---

२ नादिरशाह के आक्रमण की महत्त्वपूर्ण घटना के साथ साथ इस लम्बे पत्र से हम इतिहास के मंच पर कार्य करने वाले दो मुख्य नेताओं— बाजीराव तथा निजाम—के चरित्रों का सापेक्षिक अनुमान भी प्राप्त होता है। यह बहुमूल्य समकालीन प्रमाण है। (ऐतिहासिक चर्चा ४)

३ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १७ पृ० १३।

१७३९ ई० का लगभग ठीक उसी समय जब बाजीराव उत्तर की ओर जा रहा था उसने निम्नलिखित स्पष्ट चेतावनी दी, जिसकी सूचना पुरन्दरे ने उसके (पेशवा) पास इस प्रकार भेजी

ईश्वर की कृपा से मुहम्मदशाह ने अपने हाथ से निकली हुई राजगद्दी पुनः प्राप्त कर ली है और अब जबकि नादिरशाह चला गया है यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मुगल सम्राट के प्रति मराठो की क्या वृत्ति होनी चाहिए। इस विषय में महाराजा छत्रपति की यह इच्छा है कि आप निम्नलिखित नीति का अनुसरण करें हमारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि हम पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य को पुनः बल प्रदान करें। छत्रपति की यह आकांक्षा नहीं है, जैसा कि आपको पहले से विदित है कि वह शाही आसन को स्वयं प्राप्त करें। एक नवीन भवन के निर्माण से एक प्राचीन जीर्ण शीर्ण भवन का नवीनीकरण करना ही अधिक उचित होगा। यदि हम अन्य मार्ग का (आक्रमण के) अनुसरण करेंगे, तो अपने सब पडोसियो से हमारी शत्रुता हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि हम अनावश्यक संकटो में फँस जायेंगे और प्रत्येक दिशा से विपत्तियाँ उठ खडी होगी। अतः वर्तमान परिस्थिति में हमारे लिए सर्वथा बुद्धिमत्तापूर्ण मार्ग यही है कि हम पूर्ण हृदय से वर्तमान शासन का समर्थन करें। साम्राज्य के अमीर उल उमरा के रूप में प्रशासनीय प्रबन्धो को प्राप्त कर करो का संग्रह करें और उसमें से अपनी सेनाओं का व्यय लेकर शेष धन को शाही कोष में जमा कर दें। यह साधारण नीति है जिसको मैं छत्रपति की आज्ञा से आपके मार्गदर्शन के लिए भेज रहा हूँ। शाहू द्वारा मराठा उद्देश्यो की इस स्पष्ट व्याख्या की ओर मुगल-मराठा सम्बन्धो का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो को अवश्य ध्यान देना चाहिए। क्या यथार्थ रूप से यह वही नीति नहीं है जिसको बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के निमित्त क्लाइव ने बाद में अपनाया ?

अपनी उत्तर की यात्रा के दौरान में बाजीराव ने इन आज्ञाओं का परिपालन किया, परन्तु जब मालूम हुआ कि नादिरशाह भारत से चला गया है तो उसका कार्य काफी सरल हो गया। बाजीराव ने सम्राट को लिखित आश्वासनो सहित उसके प्रति अपनी निष्ठा तथा सम्मान को व्यक्त किया और १०१ मोहरो की नजर भेजी। सम्राट ने भी उसका समान स्नेहपूर्वक प्रत्युत्तर भेजा और समस्त पूर्व-समझौतो को सम्पुष्ट कर दिया तथा श्रद्धापूर्वक उनको कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञाओ को दुहराया। भारत छोडने के पहले नादिरशाह ने एक परिपत्र भारत के शासको को भेजा था। सतारा का छत्रपति तथा पेशवा भी इनमें शामिल थे। इस पत्र में उनसे आशा की गयी थी कि वे

दिल्ली के सम्राट की आज्ञाओं का यथावत पालन करे तथा उसका सदा भक्त रहे।[४]

२ पुर्तगालियों से युद्ध बसई पर अधिकार—पुर्तगालियों से अधिकार से सालसेट[५] के टापू तथा बसई के दुर्ग की विजय मराठा इतिहास का एक अत्यन्त गौरव-सम्पन्न काण्ड है। इस तथ्य के कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है कि मराठे एक प्रबल विदेशी नौ-सत्ता पर विजयी सिद्ध हुए जो समुद्री युद्ध कला में निपुण थे और अपने तोपखाने के कारण अजेय थे। गोआ से दमन तक करीब ४०० मील तक फैली हुई पश्चिमी समुद्र-तट की पट्टी पर थोड़े से स्थानों में पुर्तगाली शासन था। थोड़ी थोड़ी दूर पर परकोटे युक्त में स्थान उनकी रक्षा के लिए आश्रय स्थान थे। भाला तथा तलवार सदृश प्राचीन अस्त्र शस्त्रों का उपयोग करने वाला कोई आक्रान्ता उनको तोड़ न सकता था।

पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों और मराठों में संघर्ष का मुख्य कारण पेशवा की प्रसरण नीति तथा हिन्दू धर्म की रक्षा की महत्वाकांक्षा थी। कैथोलिक धर्मावलम्बियों की कट्टरता तथा हिन्दुओं पर उनके अत्याचार से उनके सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये। उत्तर कोंकण के हिन्दू निवासियों द्वारा पेशवा से प्रायः उनके विरुद्ध शिकायतें और प्रतिकार के निमित्त प्रार्थनाएँ की गयी थीं। पुर्तगालियों का धार्मिक उत्साह उन वीभत्स अत्याचारों से स्पष्ट हो जाता है जो वे अपने प्रदेश के गैर ईसाई निवासियों पर कर रहे थे। पश्चिमी समुद्र-तट का प्रयोग करने वाले जहाजों से वे कर माँगते थे तथा देशी सरदारों के न्यायोचित क्षेत्र में हस्तक्षेप करते थे। इस प्रकार पश्चिमी तट के निवासियों के लिए पुर्तगाली शासन अत्यन्त पीडक तथा भयावह बन गया था। तलवार की धार पर पूरे पूरे गाँवों को ईसाई धर्म स्वीकार करने पर उन्होंने विवश किया था। परिवार के मुख्य पुरुष की मृत्यु पर अल्पवयस्क बालकों को पुर्तगाली पादरी अपने अधिकार में ले लेते थे तथा उनको मांस का चुम्बन करने के लिए विवश करते थे। हिन्दुओं को अपने धार्मिक कृत्य तथा संस्कार करने की आज्ञा न थी। मन्दिरों को गिरा कर उनके स्थान पर गिरजाघर बनवाये गये थे। उच्च पदस्थ तथा प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्तियों पर पादरी लोग मिथ्या दोषारोपण करते

४ किंकेड कृत हिस्ट्री आव द मराठा पीपुल खण्ड २ पृ० २३६ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २२, पृ० २६६ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १५ पृ० ८३ सतारा इतिहास समिति, खण्ड २ नं० २६८।

५ सालसेट उस टापू का नाम है जो बांद्रा की खाड़ी से बसई तक फैला हुआ है। यह षष्टि का अपभ्रंश है जिसका अर्थ ६६ गाँव है।

बलपूर्वक उनका धर्म-परिवर्तन कर देते थे। ये उपाय यद्यपि उस समय कुछ नम्र कर दिये गये थे, परन्तु वे इतने असह्य हो गये थे कि अपने धर्म की रक्षार्थ पेशवा को शस्त्र उठाने पड़े।

१७१९ ई० में बाजीराव के पिता ने कल्याण के जिले को पुनः जीतकर धीरे धीरे अपनी विजय का प्रसार जौहर और रामनगर तक कर लिया था। १७३० ई० में पिलाजी जाधव ने पुर्तगाली प्रदेश पर युद्ध आरम्भ कर लिया। उसने कम्बा पर अधिकार कर लिया जो भिवण्डी के पास सीमा पर स्थित पुर्तगालियों का एक थाना था। पुर्तगाली सूबेदार काउंट द सण्डोमिल ने जो उसी समय भारत आया था, अप्रैल १७३२ ई० में भारत स्थित पुर्तगाली अधिकृत प्रदेशों का भार ग्रहण कर लिया। वह कठोर तथा शक्तिशाली था। भारत में अपने नौ वर्षीय सेवा-काल में उसने मराठों के प्रति ऐसी अन्यायपूर्ण तथा कष्टप्रद वृत्ति धारण की कि उनको विवश होकर तुरन्त युद्ध आरम्भ करना पड़ा। उत्तर में पुर्तगाली शासन के अन्तर्गत दो मुख्य स्थान थे—बसई तथा थाना। बसई सुदृढ़ रूप से दुर्गीकृत स्थान था परन्तु थाना इतना सुरक्षित न था। कल्याण के मराठों की ओर से संघर्ष की आशंका से नये सूबेदार ने थाना में एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण आरम्भ कर दिया। यह मराठा अधिकृत कल्याण तथा उत्तर कोंकण के जिलों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप था जिसे वे सहन न कर सकते थे। थाना के दुर्ग के पूर्ण होने के पहले ही मराठों ने १७३७ ई० की ग्रीष्मऋतु में उसके विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। चिमनाजी अप्पा ने चुने हुए सैनिक दल भेजकर २६ मार्च को थाना पर अधिकार कर लिया। मराठों ने शीघ्र ही दुर्ग का निर्माण कार्य पूरा करके उस स्थान के रक्षा साधनों का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि वह बसई के विरुद्ध सैनिक प्रवृत्ति का प्रबल केन्द्र बन गया। अप्रैल में सालीसट टापू के कुछ अन्य स्थानों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। मई में धारावी तथा जून में शान्ता क्रुज पर भी अधिकार हो गया, किन्तु अभी तक तो युद्ध की कहीं भी आवश्यकता न पड़ी थी।

भारत के इस भाग में पुर्तगाली सत्ता का मुख्य केन्द्र था बसई का दुर्ग। मराठों ने स्थल मार्ग से अब तक जितने आक्रमण किये थे, उनको इसने रोक लिया था। दुर्ग की परिधि डेढ़ मील की थी और इसका आकार त्रिभुज के समान था। इसकी दीवारें पत्थर की थीं और वे जमीन से ३० से ४० फुट तक ऊँची और लगभग ५ फुट मोटी थीं। प्रत्येक कोने पर चतुर्भुजी बुर्ज बने हुए थे जिन पर शक्तिशाली तोपें चढ़ी हुई थीं। दुर्ग के दक्षिण की ओर बसई की खाड़ी थी और पश्चिम की ओर खुला समुद्र था। पूरब की ओर दलदल

ने अपने बहनोई वंकटराव घोरपडे को गत वर्ष ही गोआ के विरुद्ध भेज दिया था। उसने अपना कार्य इतनी कुशलता से किया कि उस क्षेत्र के समस्त पुर्तगाली स्थानों पर आसानी से अधिकार हो सकता था। मराठों का यह उद्देश्य न था। अतएव बसई का पतन होने ही वंकटराव वापस बुला लिया गया।

७ फरवरी को चिमनाजी स्वयं बसई के सम्मुख पहुँच गया तथा उस दुर्ग पर आकस्मिक आक्रमण के लिए उसने तुरंत तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। पत्थर की दृढ़ दीवारों को तोड़कर जिन पर पुर्तगाल की बनी हुई भयंकर तोपें चढ़ी हुई थीं, मार्ग का निर्माण करना आवश्यक था। यह मार्ग उत्तर की ओर से स्थल-रक्षा पर हो शक्य था। दीवारों की नीवों के नीचे सुरंगें लगायी गयीं। इस कार्य में खनकों को दुर्गस्थ सेना की ओर से अग्नि तथा गोलों की वर्षा सहन करनी पड़ी। काम पर आगे बढ़ते हुए खनकों पर बम तथा आग्नेय वस्तुएँ फेंकी गयीं। परन्तु कठोर निश्चय से वे आगे बढ़ते ही गये। मराठा तोपों तथा बंदूकों ने शत्रु के तोपखाने को शान्त कर दिया। घेरा तंग करने में काफी कठिनाइयाँ हुईं किन्तु अन्त में बुर्जों* तथा अन्य स्थानों के लिए तेरह सुरंग बिछाने में मराठे सफल हो गये। २ मई के विनाशकारी प्रभात में मराठों के नगाड़े जोर से बजे और सुरंगों में आग लगा दी गयी। एक विस्फोट से उत्तरी बुर्ज गिर गया जिसके कारण उसमें चौड़े चौड़े छेद हो गये जिनमें होकर वीर मराठों की टोलियाँ जल्दी से दुर्ग के अन्दर प्रवेश कर गयीं। कुछ सुरंगों में आग देर से लगने के कारण कुछ घबराहट हो गयी परन्तु दुर्गरक्षकों के विरुद्ध वे निर्भय आगे बढ़ते गये। सैनिक से सैनिक भिड़ गया और घोर संहार होने लगा। अगले दिन एक और बड़ी सुरंग लगायी गयी जिसके कारण मराठा सेना को एक और मार्ग मिल गया। इन्होंने यथाशीघ्र बुर्जों पर अधिकार कर लिया। यह इस युद्ध का अन्त सिद्ध हुआ।

अन्तिम युद्ध दो दिन तक चलता रहा। पुर्तगालियों के ८०० अधिकारी तथा सैनिक मारे गये। उनका गोला बारूद समाप्त हो गया तथा जीवित सैनिकों की भावी रक्षा की कोई आशा न रही। ४ मई को उन्होंने श्वेत ध्वज फहरा दिया तथा एक पुर्तगाली अधिकारी समर्पण की शर्तों का प्रबन्ध करने के लिए चिमनाजी अप्पा से मिलने आया। ५ मई को समर्पण-पत्र पर हस्ताक्षर हो गये तथा दुर्ग छोड़ने के लिए उनको एक सप्ताह का समय दिया गया।

पराजित शत्रु के प्रति मराठा सरदारों की नीति सदैव उदारता की रही है। इस घटना में भी इसका बहुत अच्छा परिचय प्राप्त हुआ। पुर्तगालियों को अत्यन्त सम्मानपूर्ण शर्तें देकर चिमनाजी ने वीरता तथा उदारता के लिए

---

* फारेस्ट सिलेक्शन्स—मराठा सीरीज जिल्द १, पृ० ३९।

अपनी प्रसिद्धि को और भी बढा लिया। शेष दुर्गस्थ सेना को बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने परिवारों तथा सामान सहित पूर्ण सैनिक सम्मान से गढ़ छोड देने की अनुमति के साथ-साथ बन्दरगाह मे ठहरे हुए युद्ध पोतो को आज्ञा दी गयी कि बिना किसी विघ्न के वे यथाशीघ्र तोपखाने को वहाँ से उठा ले जायें। उत्तर कोंकण के जिले मे अपने धर्म का आचरण करने के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गयी। युद्ध का मुख्य कारण भी यही था। बन्दियो का विनिमय भी सन्तोषपूर्वक हो गया। समस्त पुर्तगाली गिरजाघरो को ईसाई प्रथा के अनुसार पूजा तथा प्रार्थना की पूर्ण स्वाधीनता दे दी गयी।

३ **बम्बई मे प्रतिक्रिया**—बसई का अभियान जो दो वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा, साधारणतया मराठो के लिए महान सफलता तथा विशेषकर पेशवा और उसके भाई के लिए अपूर्व यशप्रद सिद्ध हुआ। १२ मई को मराठो का भगवा ध्वज बसई के प्राकारो पर विधिवत फहरा दिया गया। इसके साथ ही उस दुर्ग सहित सम्पूर्ण प्रान्त के मराठा राज्य मे विधिवत विलय की घोषणा कर दी गयी। दोनो प्रतिद्वन्द्वियो की हानि तथा लाभ का अनुमान न्यूनाधिक यथार्थ रूप से किया जा सकता है। वाणिज्य तथा धर्म के क्षेत्रो मे लगभग दो सौ वर्षों तक पुर्तगाली सत्ता प्रबल रही थी और इसने पश्चिमी समुद्र-तट पर स्थित भारतीय प्रदेशो पर अपना आतंक स्थापित कर रखा था। अब व्यावहारिक रूप से इसका अन्त हो गया और यह केवल दो तीन स्थानो मे—यथा ड्यू, गोआ, दमन—ही सीमित रह गया। बसई के पतन के कुछ दिनो बाद ही अंग्रेजो की मध्यस्थता के द्वारा अलीबाग के समीप की दो छोटी पुर्तगाली बस्तियाँ—चौल तथा कोर्लाई—भी मराठा अधिकार मे आ गयी।

युद्ध के कारण उत्पन्न आवश्यक समाधानो को पूरा करने के बाद चिमनाजी अप्पा तथा वेंकटराव घोरपडे क्रमश बसई तथा गोआ से जून १७३९ ई० के अन्त के समीप सतारा वापस आ गये। यहाँ पर छत्रपति ने उनकी हार्दिक प्रशंसा की और इस चिन्ताजनक तथा दुस्साध्य युद्ध की सफलतापूर्वक समाप्ति के उपलक्ष मे उनको अनेक पुरस्कार दिये।

बसई की विजय का एक अन्य तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि बम्बई के समीप ही नाविक शस्त्रागार सहित मराठा सत्ता स्थापित हो जाने से उस अंग्रेजी उपनिवेश को भय उपस्थित हो गया। बम्बई के विरुद्ध अनायास मराठा आक्रमण की योजनाओ के निराकरण के लिए अंग्रेजो ने कप्टिन इंचबर्ड को भेजा ताकि वह चिमनाजी अप्पा से मेल करे जो उस समय बसई के प्रशासनीय विषयो को निपटाने में व्यस्त था। इंचबर्ड तथा चिमनाजी जून, १७३९ ई० मे एक दूसरे से मिले तथा उन्होंने अपने पारस्परिक हित मे शान्ति तथा मित्रता

की एक साधारण सन्धि की रचना की। परन्तु इस विशेष समझौते से ही सन्तुष्ट न होकर बम्बई के अंग्रेज शासकों ने मराठा सत्ता के वास्तविक बल तथा छत्रपति और पेशवा के सम्बन्धों की वास्तविक जानकारी हेतु कप्टिन गार्डन के नेतृत्व में एक दूत-मण्डल सतारा के शासकों के पास भी भेजा। उसको यह विशेष निर्देश दिया गया था कि वह वहाँ रहकर राजा तथा उसके पेशवा के बीच में विरोध भाव की कैसी भी सम्भावना की जानकारी प्राप्त करे। १२ मई को गार्डन बम्बई से चलकर ६ जून को शाहू से मिला तथा ३० जून तक वहाँ रहने के बाद १४ जुलाई को बम्बई वापस आ गया। वह अपने साथ शाहू तथा उसके दरबारियों के लिए भेंट लाया था। वह उनसे अलग-अलग मिला तथा उसने केन्द्रीय मराठा शासन के बल तथा उसकी निर्बलता की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त की। उसने अपना मत प्रकट किया कि सम्पूर्ण सत्ता केवल बाजीराव के अधीन थी तथा उसको सत्ता से हटाने की कोई सम्भावना न थी।

अब बम्बई के शासकों को ज्ञात हुआ कि बाजीराव का अनुरंजन ही उनके हित के लिए आवश्यक था। इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने कप्टिन इंचबर्ड को बाजीराव से मिलकर मामले को निपटाने के लिए भेजा। १७३९ ई० के अन्त के समीप इंचबर्ड बम्बई से चला। पूना में उसको सूचना मिली कि बाजीराव बाहर दौरे पर गया हुआ है। वह बाजीराव की ओर बढ़ा तथा १४ जनवरी, १७४० ई० को गोदावरी तट पर पैठन के समीप उससे मिला। शान्ति तथा मित्रता की सन्धि पर वार्तालाप हुआ तथा उसकी रचना हो गयी। इसका मुख्य सम्बन्ध पुर्तगालियों के विरुद्ध गत मराठा युद्ध के गौण परिणामों से था। आठ धाराओं की इस सन्धि का वास्तविक प्रमाणीकरण ७ सितम्बर १७४० ई० को अगले पेशवा नाना साहेब के द्वारा किया गया क्योंकि २८ अप्रैल को बाजीराव की मृत्यु हो गयी थी। इस सन्धि के परिणामस्वरूप चौल या रेवदाडा मराठों के अधिकार में आ गया। उन्होंने बाद में इस दुर्ग को गिरा दिया। दोनों सत्ताओं की आपेक्षिक शक्ति के विषय में अंग्रेजों तथा मराठों के बीच हुए इन आदान प्रदानों का अब केवल ऐतिहासिक महत्त्व है।

४ लघु घटनाएँ, आंग्रे-परिवार—लेखक का उद्देश्य यहाँ केवल बाजीराव के जीवन से सम्बन्धित मुख्य विषयों का वर्णन करना ही है न कि उसके नाना प्रकार के प्रवृत्तिमय जीवन की प्रत्येक घटना का सविस्तार अध्ययन करना क्योंकि उसके पर्याप्त अध्ययन के लिए एक बहुत बड़ी पुस्तक की आवश्यकता हो जाती। अनेक योग्य नेताओं ने भी चाहे वे बाजीराव के साथ रहे हों चाहे उसके विरुद्ध इस समय के इतिहास निर्माण में बहुत कुछ भाग लिया और उनका भी थोड़ा-बहुत उल्लेख आवश्यक है। इनमें से एक नागपुर

राज्य का संस्थापक रघुजी भोसले था जिसके चाचा कान्होजी तथा कान्होजी के पिता परसोजी ने सर्वप्रथम शाहू के पक्ष का समर्थन तब किया जब वह औरंगजेब की मृत्यु के शीघ्र बाद मुगल शिविर से वापस आया था। बाद मे जब शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को अपना पेशवा नियुक्त किया तथा व्यवहार रूप मे अपनी पूर्ण सत्ता उसको समर्पित कर दी, तो पेशवा का यह कर्तव्य हो गया कि वह विभिन्न नेताओ तथा सरदारो मे जो विभिन्न स्थानो मे शाहू की ओर मे कार्यरत होते हुए भी बिखरे हुए थे, योजना तथा कार्य की समता तथा प्रयास का सहयोग स्थापित करे। दाभाडे तथा आंग्रे परिवारो की भांति यह भोसले-परिवार भी पेशवा के नियन्त्रणात्मक अधिकार तथा अपने प्रति किये गये उसके व्यवहार से रुष्ट होने लगा क्योंकि उन सबको स्वयं छत्रपति ने नियुक्त किया था और वे अपने पदो के निमित्त किसी प्रकार मे पेशवा के कृतज्ञ न थे। पेशवाओ ने भी राज्य-कार्य मे सन्तुलन रखने के निमित्त सिन्धिया तथा होल्कर सदृश व्यक्तियो को प्रमुखता प्रदान कर दी क्योंकि वे उनके विश्वस्त सहायक थे। वीरता तथा योग्यता के होते हुए भी मराठो ने एक जाति के रूप मे सदैव पृथक्त्व की भावना प्रकट की है जो कभी भी केन्द्रीय नियन्त्रण सहन नही कर सकती। संगठित कार्य जो शक्तिशाली शासन का प्राण है मराठा इतिहास मे एक विरल सी वस्तु है। यह जन्मजात निर्बलता इस बात का स्पष्ट कारण है कि मराठे इस विशाल महाद्वीप मे स्थायी साम्राज्य की स्थापना न कर सके। बाजीराव की बहुत सी शक्ति का ह्रास अपने ही घर मे इन अविनेय तत्त्वो को नियन्त्रित करने मे हुआ। बालाजी विश्वनाथ तथा चन्द्रसेन जाधव मे गृह युद्ध, तत्पश्चात बाजीराव तथा त्र्यम्बक-राव दाभाडे मे हुआ उसी प्रकार का युद्ध तथा इसके भी बाद तृतीय पेशवा द्वारा तुलाजी आंग्रे के विरुद्ध की गयी प्रतिशोधात्मक सनिक-कार्यवाही—ये सब निकट गार्हस्थ्य राजनीति के कुछ विशेष उदाहरण है जिनका प्रबन्ध पेशवाओ को करना पड़ता था। इसके साथ ही वे दूरस्थ बाह्य प्रान्तो मे मराठा सत्ता के प्रसरण मे भी अति व्यस्त रहते थे। परन्तु रघुजी भोसले अपनी कमियो को जानता था, अतः उसने अपनी ईर्ष्या को वश मे रखा और बाजीराव से बिगाड़ न होने दिया। इन दोनो ने सदैव पारस्परिक सम्मान तथा आदर की वृत्ति स्थिर रखी और एक-दूसरे के कार्यों मे सहयोग देते रहे।

आंग्रे-परिवार पश्चिमी समुद्रतट का संरक्षक था जिसकी रक्षा वे मराठा बेड़े की सहायता से करते थे। कान्होजी तथा उसका पुत्र सखोजी दोनो मराठा शासन के प्रभावशाली सदस्य थे और नौ सेना का उपयोग उन्होंने इस चातुर्य मे किया कि विदेशी सत्ताएँ भी उनका भय मानती थीं और उनका सम्मान

करती थी। इन विदेशियों ने अपने पैर पश्चिमी तट पर जमा लिये थे। सेखोजी के देहान्त के बाद उसके दोनों भाई सम्भाजी तथा मानाजी परस्पर उत्तराधिकार के प्रश्न को न सुलझा सके और शाहू ने बाजीराव को कोलाबा जाकर इस झगड़े का शान्तिपूर्वक निपटारा करने की आज्ञा दी। उसने वहाँ की परिस्थिति का अध्ययन किया। चूँकि दोनों भाइयों के परस्पर विरोधी स्वत्वों का समाधान न हो सका अतः उसने आंग्र सम्पत्ति के दो टुकड़े कर दिये। बड़ा टुकड़ा जो सुवर्णदुर्ग से विजयदुर्ग तक फैला हुआ था सम्भाजी को सरखेल की उपाधि सहित दिया गया। उत्तरी भाग मानाजी को दिया गया। उसका मुख्य स्थान कोलाबा रहा तथा उसको वजारत माब की उपाधि दी गयी। इस विभाजन से मराठा नौ-सेना कमजोर हो गयी तथा पारिवारिक ईर्ष्या का अन्त होने के स्थान पर परस्पर ईर्ष्या स्थिर हो गयी। दोनों भाइयों ने खुला युद्ध आरम्भ कर दिया जिससे अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों ने शीघ्र ही लाभ उठाया। आंग्र परिवार की यह कलह मराठा नीति में एक चिरस्थायी घाव सिद्ध हुई जो १२ जनवरी १७४२ ई० को सम्भाजी की मृत्यु पर भी न भर सका। सम्भाजी का भाई तुलाजी अगले पेशवा के लिए अधिक अविनय सिद्ध हुआ। पेशवा ने अंग्रेजी नौ-सेना की सहायता से तुलाजी का दमन अवश्य कर दिया परन्तु यह एक ऐसा उपाय था जो भविष्य में मराठा राष्ट्रीय हितों के प्रति विनाशक सिद्ध हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आरम्भ से ही मराठा सत्ता के आन्तरिक प्रबन्ध में कहीं न कहीं पर दोष विद्यमान था। यद्यपि बाह्य रूप से इसका प्रसरण शीघ्रता से हुआ, परन्तु पतन के कपटी कीटाणु सदैव उपस्थित रहे और वे शीघ्र ही इसको खा गये। इसका मूल कारण शाहू का कोमल हृदय था और यह कोमलता उसकी आयु के साथ साथ बढ़ती ही गयी। वह सतारा के चारों ओर फैले हुए अपने कुञ्ज से शायद ही कभी बाहर निकला हो। इस कलंक को दूर करने का साहस वह एक ही बार कर सका जब उसने एक अति सरल कार्य को अंगीकृत किया। इस कार्य को मिरज का अभियान कहा जाता है। मिरज मराठा राजधानी के अति समीप मुगल-साम्राज्य का एक अवशेष था और उसी की विजय के लिए यह अभियान किया गया था। दो वर्ष के मन्द अभियान के बाद ३ अक्टूबर १७३९ ई० को उस पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु इस छोटी सी सफलता से शाहू को राज्य में अपना पूर्व गौरव पुनः प्राप्त न हो सका। हाँ इस अभियान से उसको पण्ढरपुर सदृश कुछ तीर्थस्थानों की यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ। पेशवाओं के प्रबन्ध के अनुसार मिरज उनके पक्षपातियों—पटवर्धनों—को प्राप्त हो गया

जिस पर अनेक परिवतनो के बावजूद उस परिवार का इस समय तक अधिकार रहा था।

इतिहास के विद्यार्थियो को ज्ञात होगा कि १७३९ ई० का वर्ष मराठा राज्य के लिए विशेष महत्व की घटनाओ से परिपूर्ण था। इसी वर्ष नादिरशाह ने भारत को विक्षुब्ध किया, उत्तरी कोंकण से पुर्तगालियो का निराकरण हुआ तथा आंग्रे-परिवार की निर्बलता से अंग्रेजो को अपनी उन्नति का अवसर मिला। इंचबर्ड तथा गॉर्डन के दूत मण्डलो ने प्रथम बार स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया। परन्तु किसी को स्वप्न मे भी पेशवा की आकस्मिक तथा समय से पूर्व मृत्यु का आभास न हुआ जिसका अद्भुत चरित्र ही मराठा सत्ता के शीघ्र प्रसरण का मुख्य कारण था। उसकी अनपेक्षित मृत्यु का रहस्य एक विचित्र प्रकार की गार्हस्थ घटना के कारण अधिक गम्भीर हो जाता है। अब हम इस ओर अपना ध्यान देना है।

५ **मस्तानी की प्रेम कथा**—यह बात प्रसिद्ध है कि जब समस्त दिशाओ मे बाजीराव उज्ज्वल सफलताएँ प्राप्त कर रहा था, उसके परिवार मे कुछ न कुछ कष्ट था। १७३० ई० से वह मस्तानी नामक एक मुसलमान नर्तकी पर आसक्त था। इसके कारण वह कट्टर मराठा समाज म बदनाम हो गया जिसमे उसके अति निकट के सगे सम्बन्धी भी शामिल थे। मस्तानी का वंश अज्ञात है। परम्परा से वह एक हिन्दू पिता और मुसलमान माता की सन्तान कही जाती है परन्तु वह उच्च शिक्षा प्राप्त तथा विलास की अभ्यस्त कलाओ म दीक्षित थी। उसके नाम का प्रथम उल्लेख बाजीराव के ज्येष्ठ पुत्र नाना साहब के विवाह-सम्बन्धी वृत्तान्तो के प्रामाणिक पत्रो म है। यह विवाह ११ जनवरी, १७३० ई० को हुआ था। उसी वर्ष बाजीराव ने पूना म अपने 'शनिवार भवन' का निर्माण किया था। बाद मे उसने इस भवन के एक और भाग का भी निर्माण किया जिसका नाम उसकी प्रेयसी के नाम पर ही रखा गया। १७३४ ई० मे उसके गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम शमशेर बहादुर रखा गया। तारीखे मुहम्मदशाही म उल्लेख है कि "यह एक कंचनी (नर्तकी) है जो घोड़े की सवारी करने तथा तलवार और भाला चलाने म निपुण है। वह बाजीराव के अभियानो म सदैव उसके साथ रहती है और उसके साथ कदम मिलाकर चलती है।' वह संगीत मे निपुण थी तथा पेशवा के महल म गणपति के वार्षिक उत्सव मे जनता के समक्ष गायन करती थी। बाजीराव का उस पर प्रगाढ स्नेह था तथा अपने घटनापूर्ण जीवन की समस्त प्रेरणा वह उसकी संगति म प्राप्त करता था। वह हिन्दू महिलाओ की भाँति कपड़े पहनती, बातचीत करती तथा रहती थी और एक पत्नी की भाँति

बाजीराव की सुविधाओं का सदैव ध्यान रखती थी। अत कोई आश्चर्य नहीं कि आयु के साथ-साथ बाजीराव की आसक्ति उसके प्रति बढती ही गयी। इसके कारण वह मांस भक्षण तथा मदिरापान भी करने लगा, जो ब्राह्मण परिवार म अत्यधिक गह्य हैं। बाजीराव के उसकी हिन्दू पत्नी स भी पुत्र थे। जो अनुग्रह समाज-बहिष्कृत व्यक्तियो के प्रति दिखाया गया, उससे स्वभावत पेशवा की पारिवारिक शान्ति म गम्भीर विघ्न उपस्थित हो गया। जनसाधारण के अनुसार मांस तथा मदिरा के प्रति बाजीराव का प्रेम मस्तानी की सगति के कारण था। परन्तु बाजीराव सदृश व्यक्ति जिसको एक सनिक का जीवन व्यतीत करना पडता था, ब्राह्मण जाति के कठोर नियमो का पालन न कर सकता था क्योकि सभी प्रकार के लोगो स उसको स्वतन्त्रतापूर्वक मिलना होता था। महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण के सकीर्ण निषेधात्मक जीवन म ये आकस्मिक परिवर्तन स्वाभाविक एव अनिवार्य थे क्योकि उसको दूरस्थ प्रदेशो म प्रयाण करना होता था तथा राजपूत दरबारो के सम्पर्क मे आना पडता था जहा पर मदिरापान, मांसाहार तथा धूम्रपान प्राय हुआ ही करत थ। बाजीराव की कमियो का एक सूत्र यह है। अपने प्रभरण-काल म मराठा-समाज म निस्सन्देह महान परिवर्तन हो गया था।

बाजीराव के परिवार मे वास्तव में क्या हुआ इसकी केवल एक झलक प्रकाशित पत्रो म प्राप्त होती है। यह सम्भव है कि उस समय इस सकट क तात्कालिक कारण रघुनाथराव का यज्ञोपवीत सस्कार तथा सदाशिवराव का विवाह सस्कार हो, किन्तु उस समय बाजीराव जनसाधारण की समालोचना का विषय बन गया था और पुरोहित लोग इन सस्कारो म बाजीराव सदृश दूषित व्यक्ति की उपस्थिति मे अपना कार्य करने को तैयार न थे। १७३९ ई० के अन्त के समीप जब बाजीराव पूना से एक अभियान पर अनुपस्थित था, तब नाना साहिब तथा चिमनाजी अप्पा न अकस्मात मस्तानी को पकड लिया तथा कारागार म डाल दिया। इसके कारण बाजीराव का हृदय टूट गया और समस्त ससार उसके लिए भारस्वरूप हो गया। वह पूना आकर अपनी प्रेमसी को बलपूर्वक मुक्त कराने के भी पक्ष मे न था क्योकि इससे समाज तथा जनमत का क्रोध भडक सकता था। महादोबा पुरन्दरे मोरशेट करजे तथा परिवार के अन्य हितैषी जन बाजीराव से पटास के स्थान पर मिले तथा उसको उत्तम मार्ग के अनुसरण का परामर्श दिया। कट्टर दल मस्तानी को शायद मार ही डालना चाहता था क्योकि उनके अनुसार कष्ट का वही एकमात्र कारण थी। उन लोगो ने राजा के मन्त्री चिटनिस को इस हिंसक कार्य के लिए उसकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए लिखा। परन्तु राजा अधिक बुद्धिमान

था। २४ जनवरी १७४० ई० को गोविन्दराव लिखता है—'मस्तानी के विषय पर मैंने निजी तौर पर राजा की इच्छा का पता लगा लिया है। बलपूर्वक पृथक्करण या व्यक्तिगत निरोध के प्रस्ताव के प्रति उसको गम्भीर आपत्ति है। वह बाजीराव को किसी भी प्रकार अप्रसन्न किया जाना सहन नहीं करेगा क्योंकि वह उसे सदैव प्रसन्न रखना चाहता है। दोष उस महिला का नही है। इस दोष का निराकरण उसी समय हो सकता है जब बाजीराव की ऐसी इच्छा हो। बाजीराव की भावनाओं के विरुद्ध हिंसा प्रयोग की कैसी भी सलाह राजा किसी भी कारण नही दे सकता।' बाजीराव उस समय नासिरजग के विरुद्ध अपने अंतिम संघर्ष में व्यस्त था जब मस्तानी को किसी दूर दुष्प्राप्य स्थान पर कैद में डाल दिया गया तथा ४ और ७ फरवरी, १७४० ई० को क्रमश रघुनाथराव का यज्ञोपवीत संस्कार तथा सदाशिवराव का विवाह-संस्कार पूना में कर दिया गया। अपनी उपस्थिति से इन संस्कारों को सुशोभित करने के लिए शाहू विशेष रूप से सतारा से पूना आया।

६ नासिरजग परास्त—शायद नासिरजग के प्रकरण से बाजीराव को अपने परिवार के इन महत्त्वपूर्ण संस्कारों के अवसर पर पूना से अनुपस्थित रहने का दिखावटी बहाना मिल गया। निजामुलमुल्क के छ्टा पुत्रो में नासिरजग निम्संदेह योग्यतम था। भोपाल अभियान के समय अपने पिता को सहायता देने के लिए उसने विशाल अनुशासित सेना का गठन किया था जिसको अभी तक भंग नही किया गया था। १७३९ ई० के आरम्भिक मासों में दक्षिण पर नादिरशाह के आक्रमण का भय भी उपस्थित था। ऐसा प्रतीत होता है कि आक्रान्ता की वापसी पर भोपाल में हुई अपनी हार का बदला लेने के लिए निजामुलमुल्क ने फिर से सतारा में गुप्त षड्यन्त्र का प्रयत्न किया। उसका आज्ञाकारी साधन आनन्दराव सुमन्त था जो पालखेड की शर्तों के अनुसार निजाम की सेवा में न रह सकता था। यह सुमन्त नादिरशाह के आक्रमण-काल में निजाम के साथ दिल्ली में था। अब उसे बाजीराव के विरुद्ध छत्रपति के मन में विष-वमन हेतु सतारा भेजा गया। बरार के प्रान्त पर जिसको निजाम अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझता था, रघुजी भोसले ने हाल ही में अपना अधिकार कर लिया था। प्रतिकार रूप में १७३९ ई० के अंत के समीप नासिरजग ने औरंगाबाद से बढ़कर गोदावरी को पार कर लिया और पेशवा के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। बाजीराव ने तुबाजी अनन्त को गोदावरी के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में स्थित निजाम के कुछ गढ़ों को हस्तगत करने हेतु वहाँ पहले से ही भेजा हुआ था। जब बाजीराव ने नासिरजग की प्रगति के विषय में सुना वह अविलम्ब चल पड़ा और इसके शीघ्र पश्चात ही उसका

भाई भी आकर उसके साथ हो गया। यह देखकर कि उसका खेल बिगड़ गया है, नासिरजंग पीछे हट गया तथा पृष्ठरक्षक युद्ध लड़ता रहा। लगातार उसका पीछा किया गया और अन्त में औरंगाबाद के समीप उसको घेर लिया गया। शीघ्र ही हतबुद्ध होकर उसने उन शर्तों को स्वीकार कर लिया जो बाजीराव ने उस पर लगायी। २७ फरवरी को मुंगीशिवगाँव के स्थान पर विधिपूर्वक संधि का निश्चय हुआ और ३ मार्च को पिम्पलगाँव के स्थान पर दोनों सरदारों के व्यक्तिगत सम्मिलन के अवसर पर इस संधि का विधिवत प्रमाणीकरण हो गया। नासिरजंग ने नर्मदा के दक्षिण में निमाड़ में हँडिया और खारगोन के दो जिले बाजीराव को दिये तथा बाजीराव तुरन्त उन पर अधिकार करने उत्तर को चला। चिमनाजी अप्पा भी १७ मार्च को औरंगाबाद में नासिरजंग से मिला।

७ आकस्मिक मृत्यु—तब कोई भी नहीं जानता था कि बाजीराव की मृत्यु सन्निकट है। ७ मार्च १७४० ई० का नाना साहेब के नाम लिखा हुआ चिमनाजी का निम्नलिखित पत्र भयावह चेतावनी देता है जिससे हमको थोड़ा सा सन्देह होता है कि बाजीराव वास्तव में हृदय से रुग्ण था 'जब से हम एक-दूसरे से विदा हुए हैं मुझको पूजनीय राव से कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ है। मैंने उसके विक्षिप्त मन को यथाशक्ति शान्त करने का प्रयास किया, परन्तु मालूम होता है कि ईश्वर की इच्छा कुछ और ही है। मैं नहीं जानता हूँ कि हमारा क्या होने वाला है। मेरे पूना वापस होते ही हमको चाहिए कि हम उसको (मस्तानी को) उसके पास भेज दें।" स्पष्ट है कि बाजीराव अत्यन्त व्याकुल था जिसका एकमात्र कारण मस्तानी की संगति का उससे अपहरण ही नहीं था अपितु एक अन्य कारण उसको कर्ज से मुक्त कराने में उसकी असमर्थता भी थी। ऐसी ही अनिश्चित स्थिति में सोमवार २८ अप्रैल को नर्मदा के दक्षिण तट पर रावेर के स्थान पर अचानक बाजीराव का देहान्त हो गया। यहीं पर एक छोटा-सा पत्थर का चबूतरा उसकी स्मृति को अब तक सुरक्षित रखे हुए है। गत शुक्रवार को उसको तीव्र ज्वर हो गया था। यह उसके जीवन की प्रथम तथा अन्तिम बीमारी थी। शनिवार को जब यह बढ़ता हो गया तो उसने जीवन की समस्त आशाएँ छोड़ दी थीं। उसकी पत्नी काशीबाई अपने छोटे पुत्र जनार्दन सहित उसकी मृत्यु शैय्या के निकट थी। वहाँ मस्तानी का कोई वर्णन नहीं है। शायद अपनी व्यथा को भुला देने के लिए बाजीराव अत्यधिक मदिरापान करने लगा था। कुछ भी कारण हो, उसकी मृत्यु अति दुःखद तथा आकस्मिक हुई।

जैसे ही बाजीराव की मृत्यु का समाचार मस्तानी के पास पहुँचा उसका

पूना के महल म मृत्यु हो गयी। यह कहना कठिन है कि उसने आत्महत्या कर ली या शोक प्रहार से वह मर गयी। उसका शव पवल को भेजा गया जो पूना के पूरब मे लगभग २० मील पर एक छोटा सा गाव है। यह गाव बाजीराव ने उसको इनाम मे दिया था। यहाँ पर एक साधारण-सी कब्र आने जाने वालो को उसकी प्रम कथा तथा दुखद मृत्यु का स्मरण दिलाती है। सवसम्मति से वह अपने समय की सर्वाधिक सुदरी थी।

बाजीराव का स्थायी स्मारक पूना म शनिवार भवन के रूप मे विद्यमान है। इसको सवप्रथम उसने बनवाया था। इस समय केवल उसकी चहार दीवारी तथा सामने का फाटक शेष रह गये है। इसका निर्माण १० जनवरी, १७३० ई० को आरम्भ तथा गृह प्रवेश का सस्कार ४ फरवरी, १७३१ ई० को हुआ था। इसके निर्माण म १६,११० रुपये खच हुए थे। बाजीराव के पिता ने पूना का पुराना थाना मुस्लिम अधिकार से प्राप्त किया था। बाजीराव अपने परिवार का स्थायी निवास-स्थान सासवाड के बजाय इसी स्थान पर बनाना चाहता था, यद्यपि अपने मित्र पुरदरे लोगो के साथ अपने आरम्भिक जीवन म वह सासवाड मे ही रहा था।

८ बाजीराव का चरित्र—बाजीराव के चरित्र तथा उसकी सफलताओ के विषय म अलग से लिखना आवश्यक नही है। उसके काय स्वय उसकी ओर से बोल रहे है। सनिक बुद्धि-सम्पन्नता म उसका स्थान केवल महान शिवाजी के बाद है। १९ वष की अल्पायु मे ही उसको पेशवा पद के लिए मनोनीत करने म शाहू का विवेक न्यायसगत से भी अधिक उत्तम सिद्ध हुआ। एक बालक जो पूरे २० वष का भी न हो, मराठा छत्रपति के अधीन उच्चतम स्थान को प्राप्त कर ले और २० वर्षों म इस योग्य हो जाये कि मराठा राज्य का विस्तार प्रत्येक दिशा म—उत्तर, दक्षिण, पूरब पश्चिम—कर सके तथा अपने ही देश म और उसके बाहर भी महान प्रतिद्वन्द्वियो को परास्त कर दे—एक ऐसी सफलता है जिसका स्थायी श्रेय मराठा जाति को है। उसके ये २० वष सतत क्रियाशीलता तथा अश्रात यात्राओ म व्यतीत हुए। ये यात्राएँ श्रीरगपट्टन से दिल्ली तक तथा अहमदाबाद से हैदराबाद तक सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप के आर पार होती रही। इनम इस महान कमण्य पुरुष का लौह शरीर भी क्षीण हो गया। उसके कतव्यपरायण चरित्र ने इन बीस वर्षों म मराठा राज्य के स्वरूप म पूर्ण क्राति का दशन किया तथा समग्र भारत में राजनीतिक सत्ता का सम्पूर्ण पुनर्वितरण इसी समय म हुआ। उसकी मृत्यु के समय (१७४० ई० म) राजनीतिक आकपण का केन्द्र दिल्ली से हटकर शाहू के दरबार म पहुँच गया था। जिस प्रथा का प्रारम्भ बाजीराव के पिता

द्वारा हुआ जो उसके तथा उसके पुत्र के द्वारा कार्यान्वित की गयी उसने शिवाजी द्वारा विहित विधान का भी वैसा ही रूपान्तर कर दिया, तथा भारत के मानचित्र को मराठा सत्ता के अनेकानेक केन्द्रों से चिह्नित कर दिया। इस प्रकार बाजीराव महान महाराष्ट्र का स्रष्टा हो गया। अब शाहू अपने पिता और पितामह की स्थिति के समान एक जाति तथा एक भाषा वाले छोटे-से आत्म-सीमित राज्य का छोटा-सा राजा नहीं था बल्कि वह विस्तृत तथा नाना चरित्र युक्त महा राज्य का शक्तिशाली अधिपति था। शाहू मनुष्यों के चरित्र का सुयोग्य निरीक्षक था और उत्तम पुरुषों को वरण करने के वह बुद्धिसंगत नियमों का अनुसरण करता था। वह उनको पूर्ण अवकाश तथा उपक्रम की स्वतन्त्रता देता था और कभी उनकी योजनाओं या कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता था। इसका एक अच्छा उदाहरण है बाजीराव की पेशवा पद पर नियुक्ति। वह एक अद्वितीय अश्वारोही सेनानायक था तथा उसने अपनी ही शैली को युद्ध-कला में प्रवेश कराया। यह बहुत समय तक मराठा जाति का काम देती रही। स्वयं बाजीराव का शरीर पुष्ट तथा कष्टों को सहन योग्य था, जिसको पता न था कि रोग क्या होता है। परन्तु उसके भाई चिमनाजी की दशा सर्वथा इसके विपरीत थी क्योंकि वह सदा रुग्ण बीमार तथा श्वास रोगी रहा। जब चिमनाजी बसई के विजयी अभियान से वापस आया तो शाहू उसी के मुख से प्रत्येक विवरण सुनने के लिए अधीर हो उठा, और इस हेतु उसने उसको सतारा बुलाया, परन्तु चिमनाजी इतना रुग्ण था कि उसने क्षमायाचना करते हुए एक करुणाजनक पत्र लिखा जो भावना तथा भाषा दोनों का आदर्श है।[८]

अपने स्वामी के साथ पेशवा के सम्बन्धों का व्यापक तथा यथार्थ विश्लेषण डा० दिघे ने अपनी विशेष अध्ययनपूर्ण पुस्तक बाजीराव एण्ड मराठा एक्सपैंशन में दिया है। वह लिखता है— राजा तथा पेशवा के ढंग भिन्न भिन्न थे, परन्तु उनका उद्देश्य एक ही था। शाहू मुगल सम्राट का स्थान नहीं लेना चाहता था वरन् वह उसको सैनिक सहायता देना चाहता था, तथा इस प्रकार सम्राट की नीतियों पर नियन्त्रण प्राप्त करना चाहता था। जिस दृष्टि से वह चगताइयों की गद्दी को देखता था उससे सेवक की स्वामी के प्रति दीनता प्रकट नहीं होती अपितु *वह सहानुभूति प्रकट होती है जो किसी सुसम्कृत व्यक्ति की किसी उच्च आत्मा* की, प्राचीन अवशेष के प्रति—नष्टप्राय हित के प्रति—होती है। बाजीराव ने उसकी इस वृत्ति को उचित एवं महत्त्वपूर्ण मानते हुए उत्तर में राजनीतिक

---

८ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १७ पृ० ९८।

आधिपत्य की स्थापना का प्रयास किया और मराठा राज्य की सैनिक शक्ति का इस योग्यता से उपयोग किया कि राजा का बड़े से बड़ा स्वप्न भी साक्षात हो जाय। पेशवा यह कभी भी न भूला कि उसके अधिकार का मूल स्रोत राजा था और इसकी जड़ें उस विश्वास में ही निहित थी जो राजा उसमें रखता था। कुछ छोटे सरदार इस प्रकार प्राप्त अधिकार का विरोध करते थे। वे यह नहीं समझ सके कि जो तत्त्व पेशवा को राजसभा में प्रभुत्व प्रदान करता था, वह तत्त्व सैनिक शक्ति थी जिसको उसने वर्षों के सतत युद्धों द्वारा प्राप्त कर लिया था। वे भी सेनाएँ एकत्र कर सकते थे और उनके द्वारा विदेश-विजय कर सकते थे। परंतु अपने स्वामी की भाँति उनको दरबार का विश्राम पसन्द था परिणामस्वरूप वे शनै-शनै महत्त्वहीन हो गये। कभी-कभी राजा भी अपने पेशवा की अतिवर्द्धित शक्ति का अनुभव करता और इसको तीव्र उपालम्भों द्वारा प्रकट भी करता।'

बाजीराव को निजामुल्मुल्क के विरुद्ध कठोर युद्ध करना पड़ा। वह प्रथम विद्रोही था जो मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध सफल हो गया था। सम्राट कभी निजाम पर विश्वास न करता था। नादिरशाह के आक्रमण के समय जो अपकार उसने किया वह स्पष्ट था। सआदतखाँ उसको धूर्त कहता था। बाजीराव के समक्ष वह अपनी निर्बलता को समझता था और उसके विरुद्ध स्पष्ट संघर्ष से सदैव दूर रहता था। तथापि छत्रपति शाहू उसका मान करता था क्योंकि उसकी दृष्टि में वह औरंगजेब के शासन का अन्तिम प्रतिनिधि था। वह निजाम को उसके पद से हटा देने के विचार को एक क्षण के लिए भी अपने पास नहीं आने देता था। इसके विपरीत जब कभी उसको मालूम होता कि बाजीराव ने निजामुल्मुल्क के विरुद्ध कोई भी आक्रमण किया है तो वह बाजीराव का ही नियन्त्रण करता। बाजीराव के सन्तुलनार्थ वह सुमन्त तथा प्रतिनिधि का उपयोग करता ताकि निजाम निश्चिन्त रहे। जो लोग यह पूछते हैं कि निजाम को दक्षिण में स्थायी विघ्नकारी तत्त्व के रूप में क्यों रहने दिया गया, उनको पेशवाओं की इस परिस्थिति को सदैव स्पष्ट रूप से अपने ध्यान में रखना चाहिए।

इतिहास तथा राजनीति के एक विद्वान सर रिचर्ड टेम्पिल ने बाजीराव की महत्ता का यथार्थ अनुमान एक वाक्य समूह में किया है जिसमें उसका असीम उत्साह फूट-फूटकर निकल रहा है। वह लिखता है—'सवार के रूप में बाजीराव को कोई भी मात नहीं दे सकता था। युद्ध में वह सदैव अग्रगामी रहता। यदि कार्य दुस्साध्य होता तो वह सदैव स्वयं अग्नि-वर्षा का सामना करने को उत्सुक रहता। वह कभी थकता न था उसे अपने सिपाहियों के साथ दुःख-सुख

उठाने म बडा आनन्द आता था। विरोधी मुसलमानो और राजनीतिक क्षितिज पर नवोदित यूरोपीय सत्ताओ के विरुद्ध राष्ट्रीय उद्योगो म सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा उसे हिन्दुओ के विश्वास और श्रद्धा म सदव मिलती रही। वह उस समय तक जीवित रहा जब तक अरब सागर से बगाल की खाडी तक सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप पर मराठो का भय व्याप्त न हो गया। उसकी मृत्यु डेरे म हुई जिसम वह अपने सिपाहियो के साथ आजीवन रहा। युद्धकर्ता पेशवा के रूप म तथा हिन्दू शक्ति के अवतार के रूप म मराठे उसका स्मरण करते है।"[६]

बाजीराव के कार्यों का वर्णन एक समकालीन मराठा पत्र म इस प्रकार है— 'अपने पिता के आशीर्वाद के साथ पुनरुत्थान का महान काय उसको पैतृक सम्पत्ति के रूप मे प्राप्त हुआ था। उसने इसको अगीकार किया तथा इसके निष्पादन का आजीवन प्रयास किया—अर्थात नर्मदा के उत्तर के प्रदेश म शान्ति तथा समृद्धि की स्थापना जो उस नदी के दक्षिण के देशो मे हो चुकी थी। बाजीराव ने प्रयास किया कि हिन्दू धर्म अपने प्राचीन वैभव को प्राप्त हो जाय। उसकी महत्वाकाक्षा थी कि वह बनारस म काशी विश्वेश्वर के महान मन्दिर का पुन निर्माण करे। इन प्रयासो म वह अपने पिता से भी अधिक चमक उठा। वह असाधारण वीर था। अपने राष्ट्र के पुनस्रष्टा के रूप म उसकी ख्याति सर्वत्र व्याप्त हो गयी।'[१०]

---

[६] ओरिएण्टल एक्सपीरिएन्स, पृ० ३६०।

[१०] हिंगणे स्पतर सग्रह जिल्द १, पृ० १५।

तिथिक्रम

अध्याय ८

१७१०	निजामुल्मुल्क के ज्येष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन का जन्म।
१२ दिसम्बर, १७२१	बालाजी बाजीराव का जन्म।
११ जनवरी, १७३१	गोपिकाबाई से बालाजी का विवाह।
२५ जून, १७४०	बालाजी पेशवा नियुक्त।
२५ जून, १७४०	बाबूजी नायक का पेशवा पद पर अपना स्वत्व प्रस्तुत करना।
अगस्त, १७४०	महादेवभट्ट हिंगणे का पूना में पेशवा से मिलना।
" "	निजामुल्मुल्क का अपने विद्रोही पुत्र नासिरजंग के दमनार्थ दिल्ली से औरंगाबाद को प्रस्थान।
२ जून, १७४० से ३० मार्च, १७४१ तक	कोल्हापुर के सम्भाजी का सतारा मे आगमन। पेशवा से उसका गुप्त समझौता।
५ जनवरी १७४१	होल्कर द्वारा धार पर अधिकार।
७ जनवरी, १७४१	पेशवा का निजाम से एदलाबाद मे मिलना।
१२ १९ मई, १७४१	पेशवा का जयसिंह से धौलपुर मे मिलना।
४ जुलाई, १७४१	पेशवा का मालवा का पट्टा सम्राट द्वारा प्रमाणीकृत।
२३ जुलाई, १७४१	खुल्दाबाद का युद्ध, अपने पुत्र पर निजाम की विजय।
७ सितम्बर, १७४१	सम्राट द्वारा मालवा के पटटे का प्रमाणीकरण।
२१ अप्रल, १७४३	सिंधिया व होल्कर तथा पवार मालवा के पटटे की शर्तों के पालनार्थ प्रतिभू नियुक्त।

पेशवा के उत्तरी भारत के अभियान

१ दिसम्बर, १७४०–जुलाई, १७४१—धौलपुर।
२ १८ दिसम्बर, १७४१–जुलाई, १७४३—बंगाल।
३ २० नवम्बर, १७४४–अगस्त, १७४५—भिलसा।
४ १० दिसम्बर, १७४७–९ जुलाई, १७४८—नेवाई।

अध्याय ८

पेशवा बालाजीराव—सफल प्रारम्भ

[१७४०–१७४१]

१ पेशवा पद पर आरोहण, चिमनाजी की मृत्यु। २ नये स्वामी द्वारा कार्यारम्भ।
३ नासिरजंग का विद्रोह। ४ मालवा पर अधिकार।

१ **पेशवा पद पर आरोहण, चिमनाजी की मृत्यु**—रावरखेडी के स्थान पर बाजीराव की मृत्यु के समय उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी (जो नाना साहब के नाम से विख्यात था) और उसका भाई चिमनाजी अप्पा महादोबा पुरन्दरे के साथ कोलाबा में आंग्रे बन्धुओं के झगड़े को निपटाने में व्यस्त थे। उस दुखद घटना से व्यग्र न होकर वे अपना कार्य करते रहे। इसके साथ ही वे १३ दिनों तक अन्त्येष्टि सम्बन्धी क्रियाएँ भी करते रहे। इसके बाद वे २६ मई को पूना वापस आ गये जहाँ पर २८ मई को एक शोक सभा हुई। बालाजी की विधवा माता काशीबाई बाजीराव के शिविर से ३ जून को वापस आयी। इस दौरान में शाहू ने उसको (बालाजी) तुरन्त सतारा आकर पेशवा के वस्त्र ग्रहण करने के लिए बुलाया। वह १३ जून को चला तथा २५ जून (आषाढ सुदी १२) की शुभ प्रभात-वेला में उसको पेशवा पद के वस्त्र पहना दिये गये।[1] उस समय उसकी आयु साढे अठारह वर्ष की थी अर्थात अपने पिता बाजीराव के उस पद पर नियुक्त होने के समय से भी लगभग एक वर्ष कम आयु थी।

महादोबा पुरन्दरे बालाजी का मुतलिक (प्रतिनिधि) नियुक्त किया गया। वह पेशवा के बाहर होने पर उसके कार्यालय का कार्यभार ग्रहण करने के लिए नियुक्त किया गया था। पेशवा के वेतन-व्यय के लिए शाहू ने विभिन्न स्थानों में ३० गाँवों का राजस्व उसको दे दिया और निम्नलिखित विशेष निर्देश दिये

अपने पिता द्वारा विहित परम्परा के अनुसार बाजीराव ने राज्य की निष्ठापूर्वक सेवा की। उसने अनेक साहसिक कार्यों द्वारा मराठा राज्य का विस्तार किया। जब नादिरशाह ने दिल्ली का विनाश किया तब बाजीराव को सम्राट

---

[1] शाहू रोजनिशी—११२ ११३, १३६, नाना रोजनिशी—१, १३३।

की सहायता एवं उसको गद्दी पर पुनः बैठा देने के निमित्त दिल्ली भेजा गया परन्तु दुर्भाग्य से अकस्मात् ही उसका देहान्त हो गया। आप उसके पुत्र हैं। आपको उनके अधूरे कार्य को पूरा करना है तथा मराठा गौरव को अटक की सीमा तक पहुँचाना है।

शायद इस नवयुवक पेशवा के कार्य का मार्ग उनके पिता के मार्ग की अपेक्षा सरलतर था। बाजीराव से उसके मित्र तथा शत्रु सामान्यतया डरते थे लेकिन बालाजी से प्रेम करते थे। तथापि उसको कई विद्रोहियों से संघर्ष करना पड़ा—जैसे बाबूजी नायक, रघुजी भोसले तथा ताराबाई। परन्तु अपने जन्म जात चातुर्य तथा मधुर प्रकृति द्वारा उसने उन सबको परास्त कर दिया।

डफ का यह कथन पूर्णतः असत्य है कि बाजीराव का उत्तराधिकारी नियुक्त करने में शाहू को कुछ संकोच था तथा उसने नाना साहब के आगमन में पेशवा के वस्त्र दिये। बाबूजी नायक जोशी जो एक महाजन तथा शाहू का कृपापात्र था, पेशवा पद के लिए बालाजी के प्रतिस्पर्द्धी के रूप में आया। एक छोटे-से दल ने, विशेषकर नागपुर के रघुजी भोसले ने बाबूजी के स्वत्व का समर्थन किया। बाजीराव की मृत्यु के समय वे दोनों कर्नाटक में त्रिचनापल्ली के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण युद्ध का संचालन कर रहे थे। वहीं पर उनको बाजीराव की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ और वे शीघ्र ही जून में कुछ दिनों के लिए सतारा आ गये। शाहू ने बाबूजी की प्रार्थना को बिलकुल नहीं सुना तथा अविलम्ब बालाजी को पेशवा नियुक्त कर दिया। इसके बाद वे दोनों अपने कार्य को जारी रखने के लिए त्रिचनापल्ली वापस आ गये।

बालाजीराव का जन्म १२ दिसम्बर १७२१ ई० को हुआ था। अपनी नियुक्ति के समय वह उन्नीसवें वर्ष में था परन्तु वह अपनी क्षमता के पर्याप्त प्रमाण दे चुका था। अपने पिता बाजीराव के उदीयमान राजनीतिक चरित्र को उसने ध्यानपूर्वक देखा था तथा यदाकदा उसमें भाग भी लिया था। परन्तु उसके चरित्र पर अपने पिता की अपेक्षा चाचा चिमनाजी के व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव था। सैनिक प्रवृत्तियों के संचालनार्थ उसको अपने पिता की तीव्र गति या कुशल नेतृत्व का कोई भी अंश पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त न हुआ था। वास्तव में अपने पिता के अभियानों में वह उसके साथ कभी नहीं गया था। वह प्रायः अपने चाचा के ही साथ रहा था तथा उसके प्रशासनीय और कूटनीतिक कार्यों को देखा करता था। उसकी प्रकृति मधुर और आकृति स्वभावतः भव्य थी जिसके कारण उसको अपने प्रत्येक उद्योग में सफलता सरलता से प्राप्त हो जाती थी। वाई के प्रसिद्ध महाजन भीकाजी नायक रस्ते की लगभग सप्तवर्षीय कन्या गोपिकाबाई से उसका विवाह ११ जनवरी, १७३० ई० को

हुआ था। इस विवाह म महाराजा शाहू की विशेष रुचि थी। १७३५ ई० म बालाजी पिलाजी जाधव के साथ उत्तर भारत म था तथा अपने पूवजा द्वारा प्रयाजित मराठा प्रसार की नीति को वह आरम्भिक आयु म ही समझता तथा उसकी उन्नति चाहता था। १७३७ ई० मे वह शाहू के साथ उसके दक्षिणा अभियान म गया था जो १७३६ ई० म मिरज के पतन पर समाप्त हुआ था। १७४० ई० के आरम्भ म अपन पिता की अनुपस्थिति म उसने अपन भाई रघुनाथराव के यनापवीत सस्कार का तथा अपन चचेरे भाइ सदाशिवराव के विवाह सस्कार का प्रबन्ध किया था। विशेष अनुग्रह के रूप म राजा शाहू इनम सम्मिलित हुआ था।

अपन सत्ताराहण के तुरत बाद ही इस नवयुवक पशवा को अविलम्ब कुछ अति आवश्यक समस्याआ की ओर अपना ध्यान दना पटा। इनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है। प्रथम, बाजीराव की हार्दिक इच्छा थी कि वह मालवा का सूबदार नियुक्त हो जाय जा भोपाल म निजाम पर उसकी विजय स लगभग उसको प्राप्त हो गया था। किन्तु नादिरशाह के आक्रमण तथा पशवा की आकस्मिक मृत्यु के कारण उसकी यह इच्छा पूण न हो सकी थी। नाना साहब न इस निमित्त प्रयत्न किया तथा सम्राट मे यह अनुदान प्राप्त कर लिया। द्वितीय नादिरशाह के आक्रमण स दिल्ली के दरबार म मराठा का गौरव कुछ कम हा गया था, जिस तुरत पुन स्थापित करना था। तृतीय, निजामुल्मुल्क के हस्तक्षेप से दक्षिण की अवस्था बिगड गयी थी, अत अब उसका पूण रूप स अपकार के अयोग्य बना दना आवश्यक था। चतुथ, सिद्दी, आंग्रे पुतगाली तथा अंग्रेज पश्चिमी समुद्रतट पर मराठा शासन के सुचार सचालन म अब भी विघ्न उपस्थित कर रहे थे, अत उनके साथ किसी भी प्रकार के समझौते की शीघ्र आवश्यकता थी।

आग अध्ययन करने पर हम यह नात होगा कि अपन शासनकाल क २१ वर्षों म पशवा न उपयुक्त उद्देश्या को सदव अपन सम्मुख रखा। उसक शासनकाल को दा स्पष्ट भागा म विभाजित किया जा सकता है— प्रथम, ६ वप का काल जा शाहू की मृत्यु पर समाप्त हुआ, और दूसरा, १२ वप का काल जब वह व्यावहारिक रूप स मराठा शासन का प्रमुख व्यक्ति था और उसन समस्त प्रशासन को सतारा स पूना पहुँचा दिया।

जसे ही बालाजीराव को पेशवा के वस्त्र प्राप्त हुए, उसने उत्तर के अभि यानाथ योजना बनायी, जिसस वह नादिरशाह के आक्रमण के कारण अशान्त परिस्थिति का अध्ययन कर सके। उसका दूसरा उद्देश्य मालवा की सूबदारी

प्राप्त करना था जिसके निमित्त निजामुल्मुल्क ने वचन दिया था। बालाजी तथा चिमनाजी दोनों ने दिसम्बर के आरम्भ में पूना से साथ साथ प्रस्थान किया परन्तु अस्वस्थता के कारण चिमनाजी को शीघ्र वापस लौटने पर विवश होना पड़ा। १७ दिसम्बर को पूना में चिमनाजी अप्पा का देहान्त हो गया। उसकी इस अकाल मृत्यु पर समस्त राष्ट्र शोकग्रस्त हो गया। काशीराज शिवदेव (पानीपत बखर का लेखक) पेशवा को लिखता है— अप्पा की मृत्यु से हुई हानि के परिणाम की कल्पना करने में मैं असमर्थ हूँ। ब्रह्मेन्द्र स्वामी को चिमनाजी की मृत्यु का समाचार भेजते हुए नाना साहब ने इसको अपने ऊपर मूर्च्छाकारक प्रहार कहा। यह बाजीराव की मृत्यु के ८ मास के अंदर ही हुआ था।[२] उसकी मृत्यु वस्तुतः राष्ट्रीय हानि थी क्योंकि बाजीराव की बहुत कुछ आश्चर्यजनक सफलता चिमनाजी के हार्दिक सहयोग तथा उसके मौन ईर्ष्यारहित निःस्वार्थ प्रयास के कारण हुई थी। उस जैसा योग्य तथा उच्च नैतिक चरित्र का भाई पाना कठिन है। उसका स्वास्थ्य बहुत ही खराब था और इसको उसने स्वेच्छा से राष्ट्र की सेवा के निमित्त बलिदान कर दिया।

यहाँ पर नवीन पेशवा द्वारा किये गये एक महत्वपूर्ण समझौते का उल्लेख करना आवश्यक है जो पूर्णतः गुप्त रूप से किया गया था। मराठा राज्य की दोनों शाखाओं— सतारा तथा कोल्हापुर—को एक में संयुक्त कर देने की आवश्यकता को यह पेशवा समझ गया था। शाहू को पुत्र होने की अब कोई आशा न थी तथा उत्तराधिकार का प्रश्न अब पेशवा के ध्यान को आकृष्ट करने लगा। शिवाजी के वंश का एकमात्र जीवित पुरुष कोल्हापुर का सम्भाजी था। वह इस समय शाहू से मिलने सतारा आया और वहाँ २ जून १७४० से ३० मार्च १७४१ ई० तक ठहरा। दोनों चचेरे भाइयों में कुछ अधिक प्रेम न था तथा शाहू किसी भी दशा में सम्भाजी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने के पक्ष में न था। परन्तु नये पेशवा ने सम्भाजी के साथ एक गुप्त समझौता कर लिया जिसके अनुसार सम्भाजी शाहू की मृत्यु के बाद सतारा में उसका उत्तराधिकारी निश्चित हुआ। यद्यपि कई कारणों से जिन पर पेशवा का नियन्त्रण न था यह प्रबन्ध निरर्थक ही रहा तथापि यह अल्पवयस्क पेशवा तथा उसके परामर्शकों की नीति के उत्कर्ष को प्रकट करता है। उन्होंने इस प्रकार उस भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया जो बहुत समय से मराठा राष्ट्र के ऐक्य को हानि पहुँचा रहा था यद्यपि अन्त में यह भी व्यर्थ

---

२ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द ४० पृ० २५, पत्रे यादी, ३६, ३८।

सिद्ध हुआ।[3] अपनी मृत्यु पर शाहू न एक स्पष्ट आा वे द्वारा सम्भाजी को अपना उत्तराधिकारी न मानकर रामराजा का छत्रपति बनाना स्थिर किया।

२ नये स्वामी द्वारा कार्यारम्भ— नया पेशवा अपने काय एव स्वभाव स सैनिक न था अत सैनिक कार्यों का भार उसन अपन अधीन निष्ठापूण एव विश्वस्त व्यक्तियो का सौंप दिया। इस प्रबन्ध म उसको यह भय कभी नहीं हुआ कि सनिक कायकर्ता उसका सत्ता का अपहरण कर लेंगे तथा अपन को स्वतन्त्र घोषित कर देंगे। बालाजी के चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ को आरम्भ से ही सनिक अभियाना का नतृत्व करन की शिक्षा दी गयी थी तथा उन दोनो ने अपने राज्य की सवा के निमित्त पूण सहयाग से काय किया। उनक सयुक्त निरीक्षण म यह सेवा शिक्षण-सस्था बन गयी जहाँ पर अनक नवयुवक सनिक शिक्षा ग्रहण करते तथा राज्य की विभिन्न प्रवृत्तिया म उत्साहपूवक काय करत।

बालाजी की प्रशासनीय योग्यता का मुख्य लक्षण उसके द्वारा स्थापित आय-व्यय का नियन्त्रण था। राज्य के साधना की वृद्धि करन तथा उच्चतम लाभाथ उनका उपयोग करन म इस पशवा न उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। क्लेशप्रद ऋणा के कारण अपन पिता की निबल स्थिति से वह पूण परिचित था अतएव उसन सदव अपन को घार धनाभाव मे बचाय रखा और इसके निमित्त समस्त आर्थिक लेन दन का वह सावधानी मे निरीक्षण करना था। उसकी यात्राआ के सूक्ष्म अध्ययन स प्रकट होता है कि वह अपने भ्रमणा म अपराधा के सम्बन्ध मे उत्तर प्राप्त करना लोगो को मिलन की आज्ञाएँ देता, अपराधिया की भत्सना करता तथा योग्य व्यक्तियो को पुरस्कृत करता। यात्राओ तथा अभियाना म घेरो तथा लडाइया म हम इसको सदव शान्तिपूवक निश्चिन्त होकर काय करते पात है—वह लेखा पत्रा का निरीक्षण करता, सन्धि पत्रा का समाधान करता तथा प्रत्येक प्रकार स राज्य क हिता की रक्षा करता। प्रति दिन निपटान क लिए नयी समस्याएँ उपस्थित हो जाती जिनका सामना वह वीरतापूवक करता। वह अत्यन्त परिश्रमशील सिद्ध हुआ तथा उसके शासनकाल म मराठा राज्य का बृहत्तम प्रसार हो गया। सदाशिव के विपरीत बालाजी को समझौत और मल मिलाप स प्रेम था। वह आवश्यकतानुसार युद्ध स पीछ हटने अथवा झुक जाने को अपने गौरव और हिता की हानि नहीं मानता था। कूटनीतिक चातुय मे वह अद्वितीय था तथा बहुत अच्छा लेखक था। भारत की प्रत्येक दिशा म सुदूर स्थाना तक उसकी दृष्टि सदव भ्रमण किया करती थी। समस्त पेशवाओ मे उसी को यह श्रेय प्राप्त है कि उसके पत्र सर्वाधिक सख्या

---

[3] देखिए पत्रे यादी २४६ २४६ नाना रोज्युमी—१६३ शाहू रोज्युसी—१७८।

बोकिल, गगाधर यशवत, बर्वे-परिवार, चासकर-परिवार तथा मराठा राज्य के अन्य भावी नेताओ को उनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्वय नाना साहेब की देख-रेख मे प्राप्त हुई तथा वे सुख दुख म उसके साथी बन गये।

अनेक नवयुवको ने उत्साहपूर्वक स्वय को दीर्घकालीन प्रयाणो तथा दूरस्थ अभियानो के कष्टो को सहन करने के लिए प्रस्तुत किया। पेशवा के १७४१ ई० के अभियान पर साथ चलने की आज्ञा न देने पर नाना पुरदरे नामक एक अल्पायु बालक को बहुत दुख हुआ। उसके बडे चचेरे भाई महादाजी को भी उस बालक को घर पर रहने के लिए समझाने म बहुत कठिनाई उठानी पडी। यह उत्साह का भाव था जो प्रत्येक नवयुवक आत्मा को राज्य की सेवा करने तथा सत्ता के प्रसार म अपने भाग्य की परीक्षा करने की प्रेरणा देता था।

जसे ही पेशवा ने अपनी नियुक्ति के वस्त्र प्राप्त किये, उसने अपने दूत महादेवभट्ट हिंगने को दिल्ली से बुलाया तथा अगस्त के महीने म पूना म उन दोनो का तथा मल्हारराव होल्कर और रामचन्द्र बाबा का सम्मिलन हुआ। पिलाजी राव जाधव तथा आवजी कावडे भी बुन्देलखण्ड म अपने कार्यक्षेत्र से वापस आ गये थे। ये सब इस पर एकमत थे कि पेशवा को अविलम्ब उत्तर की ओर जाकर स्वय जयसिंह के विचारो को जानकर उसका सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिए क्योकि उस समय उत्तर म वह सर्वाधिक शक्तिशाली राजपूत राजा था। पेशवा ने २३ नवम्बर १७४० ई० को पूना से प्रस्थान किया। उसके साथ उसकी पत्नी गोपिकाबाई भी थी। धौलपुर मे एक सप्ताह तक—१२ मई से १९ मई १७४१ ई० तक—जयसिंह से मिलकर वे ७ जुलाई को पूना वापस आ गये। पेशवा का यह प्रथम अभियान धौलपुर-अभियान के नाम से प्रसिद्ध है। द्वितीय अभियान (१८ दिसम्बर १७४१ से ३० जुलाई १७४३ ई० तक) जो बगाल का अभियान कहा जाता है अधिक महत्त्वपूर्ण था। १७४२ ई० का पेशवा का वर्षाकालीन शिविर बुन्देलखण्ड म ओरछा के स्थान पर था। उसके तृतीय अभियान (२० नवम्बर १७४४ से अगस्त १७४५ ई० तक) को भिलसा का अभियान कहते हैं। उसके चतुर्थ तथा अन्तिम अभियान (१० दिसम्बर, १७४७ से ६ जुलाई, १७४८ ई० तक) को नदाई का अभियान कहते है। उत्तर भारत म केवल इन्ही अभियानो का नेतृत्व स्वय पेशवा ने किया। वह फिर कभी उधर नही गया। उस दिशा म मराठो की स्थिति की उपेक्षा का शायद यही कारण है। इसका अन्तिम परिणाम पानीपत की विपत्ति हुई। अब हम विस्तारपूर्वक इन चारो अभियानो का वर्णन करेंगे।

भोपाल के समीप अपनी पराजय के बाद निजामुल्मुल्क ने बाजीराव के साथ जो सहमति स्थापित की थी, उसको उसने अभी तक कार्यान्वित नही

किया था। अत उनके साथ अब किस प्रकार का व्यवहार किया जाये यह पेशवा का मुख्य ध्येय था। निजाम के मधुर व्यवहार ने उस स्थिति म उसकी अविलम्ब उपस्थिति को आवश्यक बना दिया था। उस समय निजामुल्मुल्क अपने ही पुत्र नासिरजंग के विद्रोह म फँसा हुआ था जिससे मराठा हित को अप्रत्यक्ष लाभ था। अन्यथा निजाम अति भयावह वृत्ति धारण कर सकता था। यहाँ यह अति आवश्यक है कि इस प्रकरण म अधिक विस्तारपूर्वक प्रयत्न किया जाय जिससे कि मराठा तथा निजामुल्मुल्क की तुलनात्मक स्थिति अच्छी तरह समझ म आ जाय।

३ नासिरजंग का विद्रोह—इरिन का कथन है कि निजामुल्मुल्क के एक विवाहिता पत्नी तथा चार पासवानें (रखैल) थी। प्रथम से उसके दो पुत्र गाजीउद्दीन (जन्म लगभग १७१० ई०) तथा नासिरजंग और दो लड़कियाँ था। उसकी पासवानों स उसके चार और पुत्र थे—सलाबतजंग बसालतजंग निजाम अली तथा मीर मुगल। उत्तरकालीन इतिहास म इन सबने महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ प्रस्तुत की। प्रथम दो योग्य तथा वीर पुरुष थे। ज्येष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन का पालन पोषण दिल्ली के शाही दरबार म हुआ था जबकि नासिरजंग का अधिकांश समय अपने पिता के पास दक्षिण मे ही व्यतीत हुआ था। १७३७ ई० म जब सम्राट ने निजामुल्मुल्क को बाजीराव से युद्ध करने के लिए दिल्ली बुलाया तो निजाम ने मराठा पर निगाह रखने तथा उत्तर म बाजीराव के पास सहायक मराठा सेनाओं को न पहुँचने देने के निमित्त नासिरजंग को ही दक्षिण म नियुक्त किया था। चिमनाजी अप्पा ने नासिरजंग के प्रयासों को परास्त कर दिया अर्थात न तो उसे ताप्ती पार करने दी और न भोपाल के युद्ध म अपने पिता की सहायता ही करने दी। तत्पश्चात १७४० ई० के आरम्भिक मासों म नासिरजंग तथा बाजीराव म खुला युद्ध हुआ जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

निजामुल्मुल्क के अनिश्चित आचरण तथा नादिरशाह के साथ षडयन्त्र के कारण सम्राट तथा उसके दरबार को उससे घृणा हो गयी थी। सम्राट की कृपा से वंचित कर दिये जाने का समाचार जसे ही दक्षिण मे नासिरजंग को प्राप्त हुआ उसने अपने पिता के हाथो स सम्पूर्ण सत्ता को हथिया लेने का प्रयत्न किया और इस हेतु स्वय को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। अपने पुत्र की विद्रोह वृत्ति स दिल्ली म निजामुल्मुल्क इतना विचलित हो गया कि एक बडी सेना लेकर वह अगस्त १७४० ई० मे दिल्ली स अकस्मात चल दिया। वह नवम्बर म बुरहानपुर पहुँच गया। इस बीच म वह अनुनय पूर्वक अपने पुत्र को उसके दुष्ट उद्देश्यों से विमुख कर देने के प्रयास भी करता रहा किन्तु परिस्थितिवश वह नासिरजंग से लडने को तैयार हो गया।

प्रभाव डाल रहा था। १८ जनवरी को पेशवा ने अपने स्वामी को इस प्रकार लिखा— निजाम तथा उसके पुत्र नासिरजंग में कलह हो गया। मैंने निजाम का समर्थन किया। नासिरजंग पराजित हो गया और फकीर हो गया। स्वयं निजाम ने मेरे प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि सम्राट ने मालवा का सूबा मुझको (निजाम) दे दिया है और यदि मैं (नाना) उसके प्रति आज्ञाकारी रहने को तैयार हूँ तो वह मुझको अपना सहायक नियुक्त कर देगा। इस प्रकार निजाम से मालवा प्राप्त करने की सारी आशायें भंग हो गयी। तथापि पेशवा ने यही उत्तम समझा कि इस अवसर पर वह मालवा पर अपना अधिकार स्थापित कर ले। निजाम के पारिवारिक गृह युद्ध में उसने कोई भाग न लिया परन्तु यह ध्यान अवश्य रखा कि इस कलह से मराठा हितों की हानि न हो। वहाँ से शीघ्रतापूर्वक वह उत्तर को चला गया।

इस बीच निजामुलमुल्क औरंगाबाद पहुँच गया और अपने पुत्र के दमनार्थ उपाय करने लगा। नासिरजंग ने अपने पिता के विरुद्ध सैनिक कार्य आरम्भ कर दिये तथा स्वयं औरंगाबाद पर प्रयाण कर दिया। खुल्दाबाद तथा दौलताबाद के बीच में पुल मैदान पर २३ जुलाई १७४१ ई० को पिता और पुत्र के बीच में घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में नासिरजंग के सिपाहियों के विरुद्ध निजामुलमुल्क का तोपखाना इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि उसके अधिकांश समर्थक या तो मारे गये अथवा पकड़ लिये गये और वह स्वयं बहुत घायल हुआ। इस विवश अवस्था में सैयद लश्करखाँ ने उसको बन्दी बना लिया और उसके पिता के सुपुर्द कर दिया। नासिरजंग का मुख्य समर्थक शाहनवाजखाँ भाग निकला और पाँच वर्षों तक गुप्त रहा। इस काल को उसने 'मसीरुलउमरा' नामक पुस्तक लिखने में व्यतीत किया। इस पुस्तक में मुगल साम्राज्य के सामन्तों की जीवनियाँ हैं। अन्त में उसको क्षमा प्रदान कर दी गयी और वह अपने पूर्व पद पर पुनः नियुक्त कर दिया गया।

अपने पुत्र पर विजय प्राप्त करने के बाद वृद्ध निजाम ने रणक्षेत्र में ही प्रार्थना की। उसने ईश्वर को उन तीन उपहारों के लिए धन्यवाद दिये जिन्हें उसने उस दिन प्राप्त किया था—अर्थात (१) रणक्षेत्र में विजय। (२) उसके अपने पुत्र की प्राण रक्षा। (३) उस महान वीरता पर उसका हर्ष जो उसके पुत्र ने प्रकट की थी। नासिरजंग पर छह महीनों तक कठोर नियन्त्रण रखा गया। इसके बाद उसकी स्त्रियों तथा रिश्तेदारों की साग्रह प्रार्थनाओं पर निजाम ने उसको क्षमा प्रदान की तथा वह पुनः उसका कृपापात्र बन गया। उस मर्मस्पर्शी दृश्य का वर्णन प्राप्य है जब पिता और पुत्र का मिलन हुआ। उन दोनों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से एक दूसरे का आलिंगन किया तथा उनमें पूर्ण मिलाप हो गया।

सब कठोर परिश्रम भी किया था। निष्ठाहीन तत्त्वों द्वारा प्रस्तुत कठिन परिस्थितियों तथा विभिन्न विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी यह उद्योग लगभग सिद्ध हो गया था। नवाब आसफजाह ने भी इस योजना का समर्थन किया और इसके प्रमाणस्वरूप अपने विश्वस्त प्रतिनिधि सय्यद लश्करखाँ को भेजा। इस प्रकार प्रत्येक विवरण का प्रबन्ध हो जाने के बाद दिवंगत पेशवा ने मालवा की ओर प्रयाण किया। उसने आप (हिंगने) को सवाई जयसिंह से मिलकर प्रत्येक विषय का प्रबन्ध कर रखने के लिए पहले से ही भेज दिया था। परन्तु जैसे ही पेशवा खारगोन के जिले में नर्मदा तट पर पहुँचा, वह अकस्मात बीमार पड़ गया तथा उसका देहान्त हो गया। ईश्वर की इच्छा पूर्ण हो! उसके अल्पवयस्क पुत्र नाना ने वही उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया है। इस कठिन उद्योग के अपूर्ण कार्यक्रम को पूरा करने के लिए वह तथा हम तैयार हैं। इसकी आधारशिला मेरे पूज्य पिता (बालाजी विश्वनाथ) ने रखी थी जिनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे प्रजा की दशा को उन्नत करें। हमारे महान छत्रपति (शाहू) ने उनको पूर्ण हृदय से आशीर्वाद दिया तथा उनके साथ उत्तम सम्मानपूर्वक व्यवहार किया। इस प्रकार उन्होंने महान ख्याति अर्जित की तथा अपने आशीर्वाद की बहुमूल्य पैतृक सम्पत्ति को वह अपने पुत्र (बाजीराव) के लिए छोड़ गये। बाजीराव ने जनोपकारक कार्यक्रम का निष्ठापूर्वक पालन किया—अर्थात धर्म देवताओं तथा ब्राह्मणों और बनारस सदृश पवित्र हिन्दू तीर्थ स्थानों का पुनरुत्थान। जनता के कल्याण के निमित्त उसने इस प्रकार से कार्य किया कि उनकी दशा को सुधार दिया तथा उनकी शुभकामनाएँ प्राप्त कर लीं। दक्षिण में अपने कार्य को समाप्त कर उसका ध्यान उत्तर की ओर गया। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि बनारस के काशी विश्वेश्वर के मन्दिर को उसका पूर्वकालीन गौरव तथा महत्ता प्राप्त हो जाये। स्वर्गीय पेशवा सम्पूर्ण व्यवस्था को ज्यों की त्यों छोड़ गया था—अर्थात पूर्ण अनुशासित सेना, बहुसंख्यक योग्य सरदार, जिन सबकी इच्छा है कि उसी के द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार कार्य करें। हमको आशा है कि बिना किसी विलम्ब के हम अपने पूज्य पूर्वाधिकारियों के उद्देश्यों तथा आदर्शों को पूर्ण कर लेंगे तथा समस्त सकटों पर विजय प्राप्त करेंगे।

इस समय हम अपने पूज्य राजा से मिलने सतारा जा रहे हैं। हमको यह भी आशा है कि दो महीनों के अन्दर ही हम एक लाख की सेना एकत्र कर लेंगे। ऐसा मालूम होता है कि निजामुल्मुल्क हमारी योजना के विरुद्ध है। आप सवाईजी को तथा उनके द्वारा सम्राट् को यह आश्वासन अवश्य दें

कि हम उनकी इच्छाओं का पूर्ण रूप से पालन करेंगे तथा निजाम के स्वत्व प्रतिपादन का दमन कर देंगे जैसा कि सम्राट की भी इच्छा है। स्वर्गीय पेशवा द्वारा रचित योजना की प्रत्येक धारा को हम पूर्ण रूप से श्रद्धापूर्वक कार्यान्वित कर देंगे। उदयपुर के राणा तथा मारवाड़ के अभयसिंह से हम अवश्यमेव मिलना चाहते हैं ताकि सम्राट की इच्छानुकूल योजनाओं के सम्पादनार्थ हम उनकी सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त कर लें। यदि निजामुल्मुल्क व अन्य ममकक्ष सरदार भी यही समझते हैं कि चूंकि अब वीर पेशवा का देहांत हो गया है और उनके लिए मैदान साफ है तो हम उनकी धारणाओं को भ्रमरहित करने के लिए तैयार हैं तथा यह प्रकट कर देंगे कि पेशवा की मृत्यु से वस्तु स्थिति में कोई भेद नहीं पड़ा है। हम निजामुल्मुल्क से या उन अन्य लोगों से अधिक शक्तिशाली हैं जो हमारा विरोध करने वाले हैं। सवाई जी के भ्रातृ तुल्य समर्थन पर हमको विश्वास है तथा उनके सहयोग से हम शीघ्र ही अपनी मनोनीत योजनाओं को कार्यान्वित कर लेंगे। हम सवाईजी का मालवा में स्थायी रूप से मराठा सेना नियुक्त कर देने का निमन्त्रण मिल गया है। हम इस प्रयोजना के समर्थक हैं। इसकी पूर्व कल्पना होते ही हमने विठोजी बूले तथा पिलाजी जाधव को तुरन्त मालवा प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी है। इनके अतिरिक्त मल्हारराव होल्कर या रानोजी सिन्धिया या दोनों शीघ्र ही वहाँ जायेंगे।

वस्तुतः १३ जुलाई १७४० ई० को रानोजी ने महादेवभट्ट के द्वारा निम्नलिखित धमकी भरा पत्र लिखा—"आप लिखते हैं कि आजमुल्लाखाँ शीघ्र मालवा आ रहा है। कृपया ध्यान रखें कि पेशवा के सेवकों के रूप में हम उसके स्वागत के लिए तैयार हैं। ईश्वर की कृपा से हम उसको वह उपहार देंगे जिसका वह पात्र है। परिणाम के प्रति आप निश्चिन्त रहें।[४] २६ फरवरी १७४१ ई० को पेशवा ने हिंगने को लिखा—"मैंने आपको पहले ही यह सूचना भेज दी है कि मैं निजामुल्मुल्क से मिला था। आपने अवश्य ही राजराजेन्द्र सवाई जयसिंह को सूचित कर दिया होगा कि मैं किस प्रकार अपने पिता के सौंपे हुए शाही कार्यों के सम्पादन का प्रयास कर रहा हूँ। सवाईजी सहमत हो गये हैं कि वे हमारे लिये मालवा सूबे की शाही सनदें प्राप्त करेंगे जिनके साथ वहाँ के गढ़ों की सनदें भी होंगी तथा चम्बल के इस ओर के स्थानीय सरदारों पर हमारे प्रभुत्व का स्वीकरण भी होगा। वह इस पर भी सहमत हो गये हैं कि वे हमारे लिये शाही कोष से २० लाख

---

[४] हिंगने दफ्तर संग्रह—नं० १५, १७, १८ तथा १६।

रुपये का नकद चुकारा ले ल और प्रयाग तीर्थ कर का छुटकारा तथा बनारस का अनुदान भी प्राप्त कर लें। आप सवाईजी को हमारी ओर से यह स्पष्ट कर दें कि परस्पर हार्दिक सहयोग मे ही उनका तथा हमारा हित निहित है।"[१]

निजाम के यहा उसका अभ्यागमन जनवरी के आरम्भ म समाप्त हो गया और तब पेशवा ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। उसने ७ मार्च को नर्मदा को पार कर लिया तथा बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा जहां पर उसने नारो शकर को स्थायी मराठा प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। सिन्धिया तथा होल्कर पहले से ही मालवा म कार्य कर रहे थे। ५ जनवरी को मल्हारराव होल्कर ने धार को उसके मुगल रक्षक से छीन लिया। धार मालवा का प्रवेश द्वार था तथा इस स्थान पर अधिकार उस प्रान्त के प्रसरणशील मराठा-साम्राज्य म सर्वथा विलीन होने का उपक्रम सिद्ध हुआ। १६ फरवरी को पेशवा ने हिंगने को लिखा— आपके सुझाव के अनुसार मैंने अपनी सेनाओं को कठोर निर्देश दे दिये हैं कि जयसिंह के प्रदेश को कोई कष्ट न द। आप उनको आश्वासन दीजिए कि मैं उनका बहुत सम्मान करता हूँ। सम्राट से मालवा का पट्टा प्राप्त करने म उनका हार्दिक सहयोग आप अवश्य प्राप्त कर लें। वह हमारे पूजनीय वयोवृद्ध मित्र हैं और हमको विश्वास है कि वह पूरी तरह हमारे हितों की देखरेख करेंगे।

मराठों द्वारा धार पर अधिकार प्राप्त कर लेने से सम्राट को गम्भीरता पूर्वक अपनी भावी योजना का निश्चय करना पड़ा। उसने जयसिंह को बुलाकर अपने मन्त्रियों सहित उससे परामर्श किया। १३ मई को मराठा वकील ने पेशवा को यह वृत्तान्त भेजा— सम्राट ने निश्चय किया है कि मराठा आक्रमण का सशस्त्र प्रतिरोध किया जाय। अभियान का नेतृत्व करने के लिए उसने जयसिंह को नियुक्त किया है। जयसिंह आगरा पहुँच गया है। परिस्थिति का सामना करने के लिए पेशवा तैयार हो गया। उसने तुरन्त आवजी कावड़े तथा गोविन्द हरि को कुछ शीघ्रगामी सेनाओं के साथ भेजा ताकि वे दोआब को इलाहाबाद तक लूट ले। वह स्वयं धोलपुर को गया क्योंकि जयसिंह ने स्वयं पेशवा से मिलकर उसको राजी कर लेने का निश्चय किया था।

पेशवा के मालवा पहुँचने हो जयसिंह ने शाही दरबार म सन्धि स्थापना के विषय म वार्तालाप शुरू कर दिया। महादेवभट्ट हिंगने ने इस विषय का

---

१ पेशवा दफ्तर सेलेक्शन जिल्द ३१ पृ० २ राजवाडे जिल्द ६, पृ० १५२।

बहुत विवेक स प्रबन्ध किया। उसन सम्राट् को यह सुझाया कि यदि गुजरात तथा मालवा के दो प्रान्त विधिपूर्वक फरमान द्वारा पशवा को अविलम्ब दे दिये जायें तो पेशवा निष्ठापूर्वक सम्राट की सेवा करगा परन्तु यदि शस्त्रास्त्र की शरण ली गयी तो शाही दरबार गड़बड़ी म पड़ जायगा। सम्राट उसके इस सुझाव से सहमत हो गया तथा प्रस्ताव किया कि पशवा उस आशय का लिखित प्रार्थना-पत्र पेश करे। इस प्रस्ताव के साथ जयसिंह पशवा स मिलने के लिए आया, और तत्सम्बन्धित वार्तालाप एक सप्ताह तक चलता रहा। इसका स्थान आगरा और धौलपुर के बीच मे एक शिविर था, तथा महादेव भट्ट हिंगन की उपस्थिति मे ये वार्तालाप हुए। पहले पशवा जयसिंह के शिविर म उससे मिला। अगले दिन जयसिंह पेशवा के शिविर म उससे मिलने आया। पशवा ने इस अवसर पर अपूर्व वाक् विजय प्राप्त की।[७] लम्बे-लम्बे वार्तालाप हुए जिनका परिणाम इन तीन धाराओ की एक सहमति हुई—(१) पशवा तथा जयसिंह पूर्ण मित्रता से कार्य करे तथा समस्त दिशाओ म एक दूसरे की सहायता करें। (२) मराठे सम्राट की ओर पूर्ण निष्ठा से व्यवहार करें। (३) छह महीनो के अन्दर ही मालवा का पट्टा मराठो को मिल जाय। अपने उद्देश्य को प्राप्त कर पशवा तुरन्त दक्षिण को वापस हो गया और ७ जुलाई को पूना पहुँच गया।

जयसिंह ने अविलम्ब अपना कार्य पूरा किया तथा निपुणता स अपने वचन का पालन किया। वह बहुत पहले स शस्त्रास्त्र द्वारा मराठो के प्रतिरोध की निरर्थकता को समझता था। उसने धौलपुर से तुरन्त दिल्ली पहुँचकर सम्राट को सारी परिस्थिति से अवगत कराया। सम्राट ने तत्क्षण अपने मन्त्रियो से परामर्श करके एक फरमान जारी किया जिसके द्वारा उसने शाहजादा अहमद को मालवा का सूबेदार तथा पशवा को उसका सहायक नियुक्त किया जो मालवा म उपस्थित रहेगा। ४ जुलाई को यह सम्राट की मुद्रा सहित प्रमाणित कर दिया गया। कुछ विवरण जो अस्पष्ट थे स्पष्ट कर दिये गये तथा बाद म ७ सितम्बर, १७४१ ई० को एक व्याख्या पत्र प्रकाशित किया गया जिसके द्वारा मालवा का समस्त प्रबन्ध पशवा के सुपुर्द कर दिया गया। इसमे दीवानी तथा फौजदारी अधिकार भी शामिल थे। पट्टा केवल मालवा से सम्बन्धित था तथा गुजरात पर लागू नहीं होता था। परन्तु यह प्रान्त पहले स ही मराठा अधिकार म था तथा वैधानिक पट्टे की अनुपस्थिति का कोई असर न था। इस विषय का आरम्भ नवम्बर १७२८ ई० के अन्त पर

[७] राजवाडे जिल्द ६ पृ० १५१, पुरन्दर दफ्तर संग्रह, जिल्द १ पृ० १४६।

अझेरा के रणक्षेत्र पर हुआ था, वह १२ वर्ष के रण तथा विवाद के बाद अन्त हल हो पाया। इसके बाद मालवा तथा बुन्देलखण्ड व्यवहारतः मराठों के अधिकार में आ गये। मालवा के पट्टे की शर्तों में यह स्पष्ट उल्लेख था कि मराठे किसी अन्य शाही प्रदेश में अनधिकृत रूप से प्रवेश न करेंगे, पेशवा दिल्ली में सम्राट की सेवा में ५०० सवारों सहित अपना एक सरदार नियुक्त करेगा तथा आवश्यकता पड़ने पर चार हजार अन्य सैनिक उपस्थित किये जायेंगे, जिनका व्यय सम्राट देगा। मराठे उन समस्त पुराने मुस्लिम दानों का मान करेंगे जो व्यक्तियों तथा धार्मिक संस्थाओं को दिये गये थे तथा वे प्रजा पर कर की वृद्धि न करेंगे।

२१ अप्रैल १७४३ ई० को रानोजी सिंधिया, मल्हारराव होल्कर, यशवन्तराव पवार तथा पिलाजी जाधव ने अपनी सहमति द्वारा इस शाही पट्टे को दृढ़ कर दिया और पेशवा द्वारा पट्टे की शर्तों के यथार्थ पालन के लिए स्वयं को प्रतिभू रूप में प्रस्तुत किया।

नवीन पेशवा के शासनकाल का आरम्भ इस प्रकार महान विजय द्वारा हुआ क्योंकि अन्त में अपने कूटनीतिक उपायों से उसने वह वस्तु प्राप्त कर ली थी जिसको प्राप्त करने का युद्ध द्वारा असफल प्रयास किया गया था।

तिथिक्रम

अध्याय ६

१७२६	अलीवर्दीखा का बगाल के नवाब की सेवा स्वीकार करना ।
१७२६	मुर्शिदकुलीखाँ द्वारा मीरहबीब उडीसा का सूबेदार नियुक्त ।
३० जून, १७२६	मुर्शिदकुलीखाँ की मृत्यु, उसके दामाद शुजाखा का उसका उत्तराधिकारी होना ।
३० मार्च, १७३६	शुजाखाँ की मृत्यु, उसके पुत्र सरफराजखा का उसका उत्तराधिकारी होना ।
वर्षाऋतु, १७४१	बाबूजी नायक का पूना से निष्कासन ।
अक्टूबर, १७४१	रघुजी भोंसले का भास्करराम को बगाल भेजना ।
फरवरी, १७४२	उत्तर को अपने प्रयाण के मार्ग मे पेशवा चादा मे ।
मार्च, १७४२	पेशवा द्वारा गढा तथा मण्डला हस्तगत ।
१५ अप्रल, १७४२	भास्करराम का बर्दवान के समीप शिविर लगाना, अलीवर्दीखा को तग करना और शनै शनै बगाल को विजय करना ।
अप्रल, १७४२	होल्कर तथा पवार द्वारा बाबूजी नायक को मालवा में प्रवेश करने से रोकना ।
६ मई, १७४२	मराठों द्वारा मुर्शिदाबाद पर धावा और उसकी लूट ।
२६ जून, १७४२	पेशवा का ओरछा में पडाव ।
जुलाई, १७४२	पेशवा द्वारा यशवन्तराव पवार को धार वापस देना ।
२७ सितम्बर, १७४२	दुर्गा-पूजा उत्सव मे अलीवर्दीखाँ द्वारा भास्करराम के शिविर पर धावा ।
३० सितम्बर, १७४२	रघुजी का नागपुर से बगाल को प्रस्थान ।
८ नवम्बर, १७४२	पेशवा का ओरछा से बगाल को प्रस्थान ।
जनवरी फरवरी, १७४३	पेशवा की प्रयाग, काशी तथा गया की तीर्थयात्रा ।
मार्च, १७४३	गया मे रघुजी का पेशवा से मिलना ।

३१ मार्च, १७४३	पेशवा तथा अलीवर्दीखाँ का पलासी के समीप मिलन तथा समझौते की स्थापना।
१० अप्रैल, १७४३	पचेट के समीप पेशवा से परास्त होकर रघुजी भोंसले का नागपुर वापस जाना।
२० मई, १७४३	अपनी वापसी यात्रा पर पेशवा का भागीरथी पहुँचना।
३१ अगस्त, १७४३	शाहू द्वारा सतारा मे पेशवा तथा रघुजी का शपथ-पूर्वक अनुरंजन।
जनवरी, १७४४	भास्कराम का नागपुर से बंगाल जाना।
३० मार्च, १७४४	कटवा के समीप मनकारा मे अलीवर्दीखाँ द्वारा भास्करराम तथा २१ अन्य सेनापतियों की हत्या।
फरवरी, १७४५	रघुजी का बंगाल को प्रयाण।
६ मई, १७४५	रघुजी द्वारा कटक हस्तगत, उड़ीसा पर अधिकार तथा दुर्लभराम को बन्दी बनाकर नागपुर भेजना।
२१ दिसम्बर, १७४५	मुर्शिदाबाद के समीप रघुजी परास्त तथा नागपुर को वापस।
जनवरी, १७४७	जानोजी भोंसले का बंगाल को प्रयाण, परास्त होकर वापस।
ग्रीष्म, १७४७	रघुजी का निजाम से औरंगाबाद में तथा शाहू से सतारा मे मिलन।
१७४८	सबाजी भोंसले का बंगाल पर आक्रमण।
मार्च, १७५१	बंगाल की चौथ देकर अलीवर्दीखाँ द्वारा रघुजी के साथ शान्ति स्थापित करना। शिवभट्ट साठे उड़ीसा तथा बंगाल का प्रथम सूबेदार नियुक्त।
२४ अगस्त, १७५२	मीरहबीब की मृत्यु।
१४ फरवरी, १७५५	रघुजी भोंसले की मृत्यु।
१० अप्रैल, १७५६	अलीवर्दीखाँ की मृत्यु।

अध्याय ६

बगाल मे मराठा प्रवेश

[१७४२-१७५२]

१	उडीसा—कष्ट का मूल ।	२	भास्करराम कटवा मे ।
३	रघुजी तथा पेशवा की परस्पर टक्कर ।	४	मेल मिलाप ।
५	मराठा सेनापतियों की हत्या ।	६	बगाल पर चौथ लागू ।

१ उडीसा—कष्ट का मूल—बाह्य समस्याओ म व्यस्त रहते हुए भी पशवा को घरेलू समस्याओ को सुलझाना पडता था। इन समस्याओ मे से एक समस्या बाबूजी नायक से अपने सम्बधो को समाप्त करने की भी थी। यह बाबूजी नायक पेशवा पद के लिए उसका असफल प्रतिस्पर्द्धी रह चुका था और इसी कारण वह उनका कट्टर शत्रु हो गया था। पेशवा उसको अब पूना के बाहर निकालना चाहता था और १७४१ ई० की वर्षाऋतु मे अपने पूना लौटने पर पेशवा को इस ओर सवप्रथम ध्यान देना था। बाबूजी नायक एक धनाढय साहूकार था और उसने पशवा को बहुत-सा ऋण द रखा था। उसके भाई आबाजी का विवाह बाजीराव की बहन से हुआ था। यद्यपि इस प्रकार वह पेशवा परिवार का पुराना निकट सम्बधी था, परतु पूना मे उसकी उपस्थिति अब कष्टप्रद हो गयी थी। उसने पेशवा से अपने ऋण का रुपया तुरत वापस मागा। महादजी पुरदरे ने दूसरे साहूकारो से धन एकत्र करके उसका ऋण चुका दिया। तब उसने पूना को अतिम रूप से छोड दिया। रघुजी भोसल तथा दमाजी गायकवाड उसके मित्र थे, और शाहू का समथन उसे प्राप्त था। शाहू ने उसको बारामती मे भूमि प्रदान की थी और यहाँ पर अपना स्थायी निवास स्थान बनाकर उसने अपने को सरदार के पद से विभूषित किया। किन्तु यहाँ पर भी उसके वशज शातिपूवक न रह सके। पेशवा बाजीराव द्वितीय को अतिम रूप से वहाँ से भी उन लोगो को निकालना पडा जसा आगामी इतिहास से प्रकट होगा।

पेशवा के प्रति रघुजी भोसले की उत्तरोत्तर बढती हुई ईर्ष्या के कारण उत्पन्न हुई उत्तर भारत की जटिल समस्याओ की ओर अब पेशवा को अपना ध्यान गम्भीरतापूवक देना पडा। जून १७४१ ई० मे सतारा मे दोनो की उपस्थिति से कुछ क्षोभजनक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी, जिनका शाहू कोई

निपटारा न कर सका, फलस्वरूप गम्भीर परिणाम उद्भूत हुए। पेशवा ने छत्रपति को समझाया कि न केवल मालवा तथा बुन्देलखण्ड में ही मराठों की स्थिति को सशक्त बनाना आवश्यक है, बल्कि उनके आगे के प्रदेशों में भी इस स्थिति को दृढ़ करना है। उसने अपने परामर्शदाताओं के साथ मन्त्रणा की तथा एक लम्बे और कष्टसाध्य अभियान के निमित्त तैयार हो गया। यह अभियान बहुत कष्टकर सिद्ध हुआ तथा दिसम्बर १७४१ से जून १७४३ ई० तक चलता रहा।

बाजीराव ने चतुर्दिक मराठा प्रसरण की योजना बनायी थी और कई योग्य मराठा सरदार इसमें भाग लेने के लिए अग्रसर हुए थे। १७३८ ई० में रघुजी भोंसले ने शाहू से एक सनद के द्वारा बंगाल का पूरबी क्षेत्र और वहाँ पर चौथ लगान का एकमात्र अधिकार प्राप्त किया था। इस पत्र में स्पष्ट उल्लेख था कि— लखनऊ, मकसूदाबाद, बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद, पटना, ढाका तथा विहार के सूबे रघुजी को उसके कार्यक्षेत्र के रूप में दिये जाते हैं। यह एक मोटा सा सीमा-परिच्छेद था। मानचित्र पर किसी विशेष सीमा या भौगोलिक यथार्थता का इसमें कोई विचार न था। इस प्रकार रघुजी तथा पेशवा में मतभेद आरम्भ हो गया और प्रत्येक ने पूरबी क्षेत्र को प्राप्त करने का प्रयास किया। बुन्देलखण्ड पर पेशवा ने बहुत पहले अधिकार प्राप्त कर लिया था तथा नारोशंकर को वहाँ का प्रबन्धकर्ता नियुक्त किया था। अपने क्षेत्र पर पेशवा की इस अनधिकार चेष्टा से रघुजी काफी नाराज था। १७४१ ई० की वर्षाऋतु व्यतीत करने के लिए जब पेशवा सतारा वापस आया तो रघुजी तुरन्त नागपुर को चल दिया। अब क्योंकि बाजीराव जीवित नहीं था अतः उसने निश्चय किया कि यदि पेशवा ने उसके पूरबी क्षेत्र में प्रवेश किया तो वह उसे सीमा पर ही रोक देगा और वहाँ अपनी सत्ता प्रतिपादित करेगा।

शीघ्र ही पेशवा तथा रघुजी भोंसले में सम्भावित संघर्ष आरम्भ हो गया। त्रिचनापल्ली की विजय से रघुजी को मराठा दरबार में विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया था। कर्नाटक में उसकी उज्ज्वल सफलताओं तथा चाँदासाहब को हस्तगत करने के कारण राजा की कृपा दृष्टि में स्वभावतः उसको उच्च स्थान प्राप्त हो गया था। उसके वापस आने पर विशेष सम्मानों, पुरस्कारों तथा वस्त्रों सहित पुनः दरबार में उसका स्वागत हुआ था। वहाँ से वह नागपुर वापस गया जहाँ बंगाल के कार्यों की ओर उसे अपना ध्यान देना था। अब हमें भी उसी ओर ध्यान देना है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद प्रान्तीय प्रशासनों पर दिल्ली के केन्द्रीय मुगल

शासन का नियन्त्रण बहुत शिथिल हो गया था तथा स्थानीय सूबदार अपनी स्वाधीनता घोषित करने लग थे। निजामुल्मुल्क ने जो काय दक्षिण मे किया, उसी का अनुकरण कर्नाटक तथा बगाल मे किया गया। उस समय बगाल प्रान्त मे आजकल के तीन अलग-अलग सूब—उडीसा, बिहार तथा बगाल—सम्मिलित थे। य सब एक नवाब क अधिकार क्षत्र क अतगत थे, जो मुर्शिदाबाद म निवास करता था। यह मुगल-साम्राज्य का समृद्धतम प्रात था। एक समय पर औरगजब के भारी खर्चीले युद्धा के लिए इसन धन दिया था। उस सम्राट् की मृत्यु के बाद मुर्शिदकुलीखा इस प्रात का सूबेदार नियुक्त हुआ तथा ३० जून, १७२७ ई० तक अपनी मृत्युपयन्त पूण बुद्धिमानी से वहा का शासन किया। शासन म उसका उत्तराधिकारी उसका दामाद शुजाखा हुआ। उसन भी अपने कतव्या का पालन निपुणतापूण किया। वह सम्राट का वार्षिक देय धन का चुकारा यथासमय करता रहा। १३ माच १७३९ ई० को शुजाखा का देहान्त हो गया और उसका पुत्र सरफराजखा उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह अयोग्य था तथा अलीवर्दीखा ने उसको परास्त करके मार डाला।

अलीवर्दीखा तुक था। वह १७२६ ई० मे भारत आया था और बगाल म नौकरी कर रहा था। वह युद्ध तथा कूटनीति दोना म चतुर था और विचारपूवक सैन्य सचालन करता था। वह शीघ्र ही बगाल का मुख्य सनिक अधिकारी हो गया तथा बिहार का शासन उसने अपने लिये प्राप्त कर लिया। अपने कार्यो द्वारा उसने दिल्ली दरबार की शुभ सम्मति प्राप्त कर ली तथा सम्राट न उसको महाबतजग की उपाधि स विभूषित किया। मराठा पत्रा म वह इसी नाम से प्रसिद्ध है। जब सरफराजखा के शासन म अव्यवस्था फैली, तो अलीवर्दीखा ने शीघ्र ही इससे लाभ उठाया। चूकि बिहार मे सेना का पूण नियन्त्रण उसक हाथ मे था, उसन पटना से मुर्शिदाबाद को प्रयाण किया, जहा सरफराजखा उससे लडन आया। १० अप्रल, १७४० ई० को घेरिया नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसम सरफराजखा मारा गया और अलीवर्दीखा ने नवाब के पद पर अधिकार कर लिया। राजधानी म सचित धनराशि पर अधिकार प्राप्त कर उसने सम्राट को दो करोड रुपये दिये तथा उससे अपनी नियुक्ति को स्थिर करा लिया। इस प्रकार सम्राट तथा उसका नया सूबेदार एक-दूसरे के प्रति कुछ समय के लिए अत्यन्त आवश्यक हो गये।

अलीवर्दीखा का राज्यापहरण पुरान नवाब के पक्षपातियो को बिलकुल अच्छा न लगा। बगाल के अग्रेज व्यापारी समृद्ध थे तथा देश म एक स्वतन्त्र सत्ता का रूप धारण कर रहे थ। आर्थिक विषयो का नियन्त्रण उनके हाथ मे था। अलीवर्दीखा ने उनको अनक रियायतें प्रदान करके उनकी सद्भावना

प्राप्त कर ली और अपने पद ग्रहण को सशक्त बना लिया। हम समकालीन अंग्रेजी पत्रों मे उसकी धीरता तथा अच्छे प्रशासन के कारण अलीवर्दीखाँ के शासन की बहुत प्रशसा की हुई मिलती है। परन्तु नवाब के दरबार म एक दूसरा शक्तिशाली दल भी था। इसके नेता मीरहबीब तथा कुछ उच्च पदाधिकारी थे जो अपने उपकारक के पुत्र के प्रति नये नवाब के विश्वासघात को न भूल सके थे।

मीरहबीब शीराज का चतुर ईरानी था। वह बहुत पहले ही भारत आ गया था तथा छोटे छोटे पदो से उन्नति करता हुआ उडीसा का नायब नवाब हुआ था। उसने अपने स्वामी उडीसा के सूबेदार की भक्तिपूवक सेवा की थी। उसका भी नाम मुर्शिदकुलीखा था। वह अत तक अपने स्वामी के प्रति निष्ठावान रहा, तथा अलीवर्दीखाँ द्वारा अपने स्वामी के परास्त कर दिय जाने पर उसने अपने स्वामी के हित मे मराठों का समथन प्राप्त करन का प्रयास किया यद्यपि वह इस प्रयास म असफल रहा। रघुजी उस समय कर्नाटक म था, और उसके नायब भास्करराम की अपने स्वामी की अनुपस्थिति म बगाल मे किसी सैनिक कायवाही को अगीकार करने की इच्छा न थी। मीरहबीब परिस्थिति द्वारा विवश होकर पुन अलीवर्दीखाँ की सेवा म आ गया, यद्यपि उसके हृदय मे इस अपहरणकर्ता के प्रति बराबर घृणा बनी रही।

नागपुर का रघुजी भासले बगाल के इस पूरबी प्रात को अपना विशष क्षेत्र समझता था। १७३८ ई० मे भोपाल म निजामुल्मुल्क के साथ सधि चर्चा के अवसर पर जब बाजीराव ने बगाल के करो के प्रति अपनी माँग प्रस्तुत की थी तो उसने इसके प्रति अपना रोष एव विरोध प्रकट किया था। रघुजी के कर्नाटक अभियान से उसकी ख्याति मे वृद्धि हो गयी थी। १७४१ ई० म नागपुर वापस आने पर उसको बगाल म हुए राजनीतिक परिवतनो की सूचना के साथ मीरहबीब तथा नये नवाब के असन्तुष्ट अधिकारियो द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव प्राप्त हुए। रघुजी को इस प्रात के प्रति नये पेशवा के महत्त्वाकाक्षी विचारो का पूण भय था। अतएव उसने अपनी सेना को पूरब की ओर भेज कर पेशवा की गति को असम्भव कर देने का निश्चय किया। स्वभावत अपनी प्रवृत्तियो के निमित्त एक स्वतन्त्र क्षेत्र प्राप्त करने की उसकी उत्कट इच्छा थी। अत मीरहबीब द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावो को उसने तुरत स्वीकार कर लिया और सतारा म शाहू से अपने जाने की आज्ञा शीघ्र प्राप्त कर ली। ठीक इसी समय पर रघुजी की उदीयमान सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु होकर पेशवा न बगाल के प्रकरण म भाग लेने की योजना की कल्पना की।

नागपुर मे अपने आगमन के तुरन्त पश्चात रघुजी ने अपने विश्वस्त

सहायक भास्करराम के परामश से अपनी योजनाओ का निर्माण किया। भास्करराम चाँदासाहब को त्रिचनापल्ली से अपनी सुरक्षा मे लेकर उसी समय वहा आया था। उडीसा तथा बगाल को जाने के लिए एक प्रबल अभियान तैयार किया गया और लगभग १० हजार सैनिका सहित १७४१ ई० के दशहरा के दिन इसने प्रस्थान किया। इस दल का नता भास्करराम था। भास्करराम स्वय नवम्बर म नागपुर से चला। वह रामगढ होकर बढा तथा उसने पचेट क जिले (राची से ६० माल पूरब) को लूट लिया।

२ **भास्करराम कटवा मे**—जब अलीवर्दीखाँ ने इन मराठा प्रगतियो तथा मीरहबीब की कुप्रवृत्तियो का हाल सुना तो उसे काफी आश्चय हुआ। उस समय नवाब म द गति स कटक स वापस लौट रहा था। प्रबल मराठा दला का प्रतिरोध करन मे अपने को असमथ पाकर वह थोडा सा दल लेकर शीघ्र प्रयाण द्वारा १५ अप्रल, १७४२ ई० को बदवान पहुँच गया। यहाँ पर नगर के बाहर रानी की झील के तट पर उसने अपना पडाव डाला। अगले दिन सुबह उसको यह देखकर बहुत दुख हुआ कि मराठा ने उसको पूणरूप से घेर लिया है। अब उसके लिए भूखा मरने के अलावा और कोई चारा न था। भास्करराम न अपने आधे सैनिका को समीपवर्ती जिलो को लूटने तथा जलाकर भस्म कर दा के काय म लगा दिया। इस असह्य परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए अलीवर्दीखाँ ने अपने प्रतिनिधियो को भास्करराम के पास सधि शर्तों की याचना के लिए भेजा। भास्करराम न दस लाख रुपये की माग की जिसको देन से नवाब ने स्पष्ट इन्कार कर दिया और कुछ विश्वस्त सहायको के परामश पर रात्रि मे थोडे-से चुने हुए सिपाहियो को साथ लेकर गुप्त रूप से कटवा का रवाना हो गया। यह स्थान बदवान से लगभग ३५ मील उत्तर-पूव मे है। इस चाल का पता शीघ्र चल गया तथा खान का पीछा पूण वेग से किया गया। उसका सामान तथा उसके डेरे जला दिये गये और माग म उसे सवथा निस्सहाय घेर लिया गया। एक बार फिर उसने मराठा सरदार के पास अपनी मुक्ति के लिए विनम्र प्राथनाएँ भेजी। इस बार भास्करराम ने मुक्ति धन के रूप म खान से एक करोड रुपय की माग की। पुन शर्तें अस्वीकार कर दी गयी और काफी वीरता से पृष्ठरक्षक रण लडता हुआ खान कटवा पहुँच गया। इसी बीच म एक अ य माग से मीरहबीब घटनास्थल पर आ पहुँचा और भास्करराम के साथ हो गया।

इस समय मई का महीना था और निकटवर्ती वर्षा के लक्षण इतन स्पष्ट थे कि भास्करराम की तुर त नागपुर का वापस लौट जाने की इच्छा हुई।

मीरहबीब ने उसकी इस इच्छा का तीव्र विरोध किया और मुर्शिदाबाद पर आकस्मिक आक्रमण की आकर्षक योजना प्रस्तुत की। उसने वहाँ पर संचित विशाल धनराशि को भी हस्तगत कर लेने का प्रस्ताव रखा। काफी अनुनय-विनय और विचार विमर्श के बाद भास्करराम ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस साहसिक कार्य में स्वयं मीरहबीब सम्मिलित हुआ। ६ मई को अपने थोड़े से सिपाहियों तथा मराठा सवारों के एक चुने हुए दल को लेकर वह नगर के उपनगरों में पहुँच गया तथा शीघ्र ही उसने कोषों को लूट लिया—विशेषकर धनी साहूकारों जगत-सेठ तथा अन्य अधिकारियों को। उसने अपने भाई तथा परिवारीजनों को मुक्त करा लिया जिनको अलीवर्दीखाँ ने बन्दी बना रखा था। वहाँ से लौटकर मीरहबीब कटवा चला आया और पन्त के साथ हो गया। उसके पास लूट का जो धन था उसका अनुमानित मूल्य दो या तीन करोड़ रुपये था।

मीरहबीब की इस प्रगति की सूचना अलीवर्दीखाँ को समय पर मिल गयी। अतः उसने उसका उसी मार्ग से पीछा किया, परन्तु वह मुर्शिदाबाद एक दिन बाद पहुँचा—अर्थात ७ मई को। चूँकि उस समय भागीरथी में बाढ़ आयी हुई थी इसलिए भास्करपन्त उसका पीछा करने के निमित्त नदी को पार न कर सका। आगामी तीन महीनों में मीरहबीब की सहायता से मराठों ने अपना प्रभाव कलकत्ता तथा हुगली के समीप तक स्थापित कर लिया। उन्होंने उड़ीसा को भी पुनः हस्तगत कर लिया। मराठों के आकस्मिक धावों से सुरक्षा हेतु कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों ने अपने कारखानों के चारों ओर जल्दी से एक लम्बी खाई खोद ली जिसका नाम अभी तक मराठा खाई है यद्यपि अब वह पाट दी गयी है। भास्करराम के हिंसात्मक कार्यों से बंगाल की जनता अप्रसन्न हो गयी, जैसा कि बाद में प्रकट होगा।[1]

मुर्शिदाबाद और उसके समीपवर्ती स्थानों की विजय से मदोन्मत्त और लूट से प्राप्त विशाल धनराशि को पाकर भास्करराम का लोभ जाग्रत हो उठा और प्रतिशोध के लिए अलीवर्दीखाँ द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नों और छद्म योजनाओं के प्रति लापरवाह हो गया। मराठा सेना की संख्या बहुत कम थी तथा उसकी टुकड़ियाँ एक दूसरे से काफी दूर दूर थीं। उसका अधिकार विस्तृत क्षेत्र पर था जिसको उसने अपने अधीन कर लिया था। वह रघुजी के पास बराबर अधिक सेना भेजने की माँग करता रहा था। स्थानीय भावनाओं को

---

[1] देखिए कवि गंगाराम कृत महाराष्ट्र पुराण — बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेंट में उसका अंग्रेजी अनुवाद।

प्रमत करने के लिए मराठा सेनापति न दुर्गापूजा के अवसर पर अपनी विजय के उपलक्ष म एक भव्य उत्सव का आयोजन किया। वह पूजा १८ सितम्बर, १७४२ ई० स प्रारम्भ होने वाली थी। २६ सितम्बर इसका मुख्य दिन था। जब भास्करपन्त और उसका दल इस अवसर पर आमोद प्रमोद म लीन थे अलीवर्दीखा ने मराठा शिविर पर अचानक आक्रमण की योजना बनायी। २६ की रात्रि को जब जागरण के बाद मराठे प्रगाढ निद्रा म सो रहे थे नवाब ने गुप्त रूप से रात्रि म ही नदी को पार कर लिया और २७ को प्रभात-वेला म असावधान मराठो पर अचानक टूट पडा तथा अन्धाधुन्ध मारकाट शुरू कर दी। इस अनपेक्षित विनाश से हतबुद्ध होकर प्राण रक्षा के निमित्त मराठे कटवा के अपने शिविर से विभिन्न दिशाओ म भाग निकले। मीरहबीब को भी अपनी प्राण रक्षा क लिए भागना पडा। उसने मराठा का भी कुशलता-पूवक पगडण्डियो अथवा निजी व्यक्तियो की सहायता से भाग जाने मे महायता की। भास्कर राम ने तुरन्त इस विपत्ति की सूचना रघुजी के पास भेज दी तथा अविलम्ब सहायता की प्राथना की। २३ सितम्बर को रघुजी द्वारा अपन मजूमदार को भेजा गया पत्र इस प्रकार है—'इसके साथ सलग्न आपको कइ पत्र मिलेंगे जो भास्करपन्त से प्राप्त हुए हैं। मुझे अविलम्ब उसके सहायताथ जाना है और मैं दशहरा के दिन प्रस्थान कर रहा हूँ। भास्करपन्त न मकसूदाबाद की कष्टसाध्य प्रयोजना को अगीकृत किया है। इसको पूरा करन के लिए उसको अधिक सेना की आवश्यकता है। ये शीघ्र ही उसके पास पहुँचनी है। अत आप इधर उधर भटके हुए समस्त सनिका को अविलम्ब एकत्र करके सना म भर्ती कर लें।'

अलीवर्दीखा के वास्तविक धावे के चार दिन पहले जो पत्र भास्करपन्त ने भेजा था, उससे सिद्ध होता है कि न तो पन्त को अपनी विजय पर कोई गव था और न ही वह असावधान था जैसा कि साधारणतया विश्वास किया जाता है। वह जानता था कि किस सकट का वह निमन्त्रण दे रहा है तथा उसने पहले स ही अपने स्वामी को यह सूचना भेज दी थी कि वह सकटपूण परिस्थिति म पड गया है। अनक कारणवश रघुजी समय पर उसका सहायता न भेज सका—यह स्पष्ट है। तथापि पन्त ने वीरतापूर्वक परिस्थिति का सामना किया तथा अपने दल को सवनाश से बचा लिया और इस प्रकार उसन शत्रु के उद्देश्य को पराम्त कर दिया। पीछा करन वाला से लडता भिडता वह चतुरता-पूवक पचट की ओर भाग गया जहाँ स वह मिदनापुर की ओर भागा। बदवान हुगली तथा हिजली के थानो को उसन छोड दिया तथा बिखरी हुइ मराठा सनाओ का पुन एकत्र किया। पन्त ने राधानगर को लूटा तथा कटवा

पर आक्रमण करने के लिए एक छोटा सा दल भेजा। कटक का सूबदार शेख मासूम मारा गया तथा उस स्थान पर मराठों ने अधिकार कर लिया। परन्तु अलीवर्दीखां शीघ्रतापूर्वक उसको खोजता हुआ वहाँ आ गया और उसने कटक पर पुनः अधिकार कर लिया। वहाँ उड़ीसा की रक्षा का प्रबन्ध कर वह ६ फरवरी, १७४३ ई० को मुर्शिदाबाद वापस आ गया। इस स्थान पर इसका निरूपण आवश्यक है कि रघुजी भास्करपन्त की सहायतार्थ तुरन्त प्रस्थान क्यों न कर सका।

जब पेशवा उत्तर में अपनी स्थिति को सशक्त करने में संलग्न था उसकी रघुजी भोसले से गम्भीर टक्कर हो गयी। इसका मुख्य कारण था पेशवा द्वारा बंगाल की आय पर अपना स्वत्व स्थापित करना। साथ ही पेशवा ने इसी समय पर गढ़ा तथा मण्डला पर अधिकार कर लिया था जिसको रघुजी अपना क्षेत्र मानता था। इस विषय पर रघुजी ने ४ मई १७४२ ई० को सतारा में शाहू के सम्मुख अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना निम्नलिखित प्रबल विरोध प्रकट किया—'नागपुर वापस आने पर मुझको ज्ञात हुआ कि पेशवा ने अनधिकारपूर्वक उस क्षेत्र मे प्रवेश किया है जो मुझको दिया गया है। उसने गढ़ा तथा मण्डला के मेरे थानों पर अधिकार कर लिया है मेरे देश को लूट कर नष्ट कर दिया है तथा शिवनी और छापर के मेरे परगनों का सर्वनाश कर दिया है। अपमान से बचने के लिए मण्डला का राजा जिन्दा जल मरा है। इस पर पेशवा ने बुन्देलखण्ड मे प्रयाण किया है। अब तक मैं बहुत सावधान रहकर सोच-समझकर उसके मार्ग में नहीं आया हूँ। परन्तु अब मेरे धैर्य की परीक्षा मर्यादा के बाहर हो गयी है। कृपया छत्रपति को सूचित कर दें कि मैंने पूर्ण प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लिया है। पेशवा के नायक त्र्यम्बक विश्वनाथ पेठे को मैंने पहले से अपने निरोध में रख छोड़ा है क्योंकि उसने मेरे प्रदेश में हस्तक्षेप किया है।" त्र्यम्बकराव ने कुछ समय तक तो कारागार वास किया किन्तु जब शाहू ने अपने निजी सन्देशवाहक रघुजी के पास उस कार्य के लिए भेजे तो वह छोड़ दिया गया।

३ रघुजी तथा पेशवा की परस्पर टक्कर—पेशवा पूना से १७४२ ई० के अन्त में चला। उसका उद्देश्य रघुजी को बंगाल में पराभूत करने का था। बंगाल मे अपनी प्रयोजित यात्रा के प्रति सम्राट् का समर्थन प्राप्त करने के बाद वह मन्द गति से उत्तर की ओर बढ़ा। २० फरवरी, १७४३ ई० को पेशवा के शिविर का एक लेखक कहता है—"वह पेशवा के साथ बंगाल जा रहा था। यह पत्र चांदा (पूर्वी बरार) के जिले मे वैरागढ़ मे लिखा गया था। अतः यह स्पष्ट है कि पेशवा रघुजी की प्रगति का अवलोकन कर रहा

था। इसके बाद वह नमदा के दक्षिणी तट के साथ साथ चला तथा गढा और मण्डला पर अधिकार करके बुन्देलखण्ड म प्रवेश कर गया। इस बीच म उसन सिन्धिया तथा होल्कर को अभयसिंह तथा अन्य राजपूत राजाओं से कर-सग्रह करने की आज्ञा दी। अप्रल मे ये दोनो सरदार राजस्थान मे थे, जहा वे पेशवा की आज्ञा को कार्यान्वित कर रहे थे। जून मे पेशवा दक्षिण को वापस आना चाहता था, परन्तु नमदा मे बाढ आने के कारण उसन बुन्देलखण्ड मे ही पडाव डालने का निश्चय किया। इस प्रकार ठहर जान के लिए उसके पास अन्य कारण भी थे। पूना से अपने निष्कासन की वेदना तथा उसका प्रतिशोध लेन हेतु बाबूजी नायक गुजरात म घुस आया था। दमाजी गायकवाड से मिलकर १७४२ ई० की ग्रीष्मऋतु म उसन प्रयत्न किया कि वह मालवा से पेशवा के पक्ष का हानि पहुँचाये। परन्तु इस अपकार के प्रयत्न का पता होल्कर तथा पवार को चल गया और उन्हाने गुजरात के माग से मालवा मे बाबूजी के प्रवेश का रोक दिया। हताश होकर बाबूजी को लौटना पडा।

इस प्रकार पेशवा के लिए यह आवश्यक हो गया कि बगाल को जान के पहले वह मालवा तथा बुन्देलखण्ड पर अपन अधिकार को किसी शत्रु के आक्रमण से स्थिर रूप से सुरक्षित कर द। मालवा के पश्चिमी तथा दक्षिणी प्रवेश मार्गो का नियन्त्रण धार स होता था। १७२६ ई० मे सवप्रथम इस पर अधिकार किया गया तथा यह पवारा की सुरक्षा मे सौंप दिया गया था। परन्तु शाहू की इच्छा पर यह आगामी वष मे पुन सम्राट को वापस कर दिया गया था। दस वर्षों तक इस सनिक महत्त्व के स्थान पर सम्राट का अधिकार रहा। परन्तु जब सम्राट ने मालवा को विधिपूवक पेशवा को दे दिया, पेशवा की आज्ञा स होल्कर न ५ जनवरी, १७४१ ई० को उस स्थान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया तथा यशवन्तराव पवार को उसका सरक्षक नियुक्त किया। पवार-बन्धु बहुत दिना स पशवा के अनुकूल न थे क्योंकि उन्हाने डभोई के युद्ध म उसके विरोधी दाभाडे का साथ दिया था। यशवन्तराव ने इस समय पेशवा की निष्ठा केवल इस शत पर स्वीकार की थी कि उसका उसके स्थायी निवास के लिए धार द दिया जायेगा। पशवा ने इस प्राथना को स्वीकार कर लिया और धार का शासन उसको सौंप दिया। उस समय से धार उसके परिवार का निवास स्थान रहा है। यशवन्तराव वीर पुरुष था। उसन सवाइ जयसिंह तथा मारवाड के अभयसिह के बीच म पुरानी कलह का समाधान करके मालवा तथा राजस्थान मे पेशवा के शासन काय का निर्विघ्न करन मे सहायता की थी।

अत पशवा न होल्कर तथा सिन्धिया के साथ उसको स्थिर रूप से मालव

में स्थापित कर लिया जहाँ पर दो तीन मराठा सरदारों का अभी तक शासन था। रघुजी के प्रतिनिधि दिल्ली पूना सतारा तथा अन्य स्थानों पर थे। उनके द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर उसने ३० सितम्बर १७४२ ई० को पेशवा से उसकी स्पष्ट प्रयोजना के विषय में पूछा और उसको सूचित किया कि वह स्वयं दक्षगढ़ होता हुआ भास्करराम की सहायतार्थ बंगाल को जा रहा है। इस बीच में अलीवर्दीखाँ भी अपनी स्थिति को सशक्त कर रहा था क्योंकि उसको रघुजी तथा पेशवा दोनों की ओर से आक्रमण की आशंका थी। उसने सम्राट से इस संकट के निवारणार्थ सैनिक सहायता की प्रार्थना की। उसने सम्राट को चेतावनी दी कि यदि कोई सहायता न पहुँची तो उनको समझ लेना चाहिए कि बंगाल पूर्ण रूप से उसके हाथ से निकल गया है। पेशवा ने अपनी ओर से सम्राट को यह सूचना भेजी कि वह उसकी सहायता के लिए तत्पर है यदि सम्राट मालवा, बुन्देलखण्ड तथा इलाहाबाद की चौथ देना स्वीकार कर ले। सम्राट पेशवा के प्रस्ताव से सहमत हो गया और उससे बिहार तथा बंगाल को जाने का अनुरोध किया जिससे वह भोंसले के आक्रमण का प्रतिरोध करने में अलीवर्दीखाँ को सहायता दे सके। सम्राट ने अलीवर्दीखाँ को भी पेशवा के व्यय को चुकाने की आज्ञा दी। यह खान के लिए बहुत लाभप्रद बात थी क्योंकि इसके कारण दो मुख्य मराठा सरदारों—पेशवा तथा नागपुर के भोंसले—के बीच में वैमनस्य हो गया। अलीवर्दीखाँ ने तुरन्त कुछ धन पेशवा के पास भेज दिया तथा उसको सम्मिलन के लिए निमन्त्रित किया। नवम्बर में पेशवा को सम्राट की यह आज्ञा प्राप्त हुई तथा उसने सावधान तथा निपुण चाल प्रारम्भ की। इसके दो उद्देश्य थे—१ वह विद्रोही भोंसले का दमन करे, तथा २ सम्राट के उत्तरी अधिकृत प्रदेशों से प्रभावोत्पादक व्यवहार करे। भास्करराम की संकटपूर्ण स्थिति से उसने उत्तम लाभ उठाने का यत्न किया। पेशवा ने समस्त आक्रमणशील सरदारों का निराकरण करके सम्राट के अधिकृत प्रदेशों की रक्षा करने का कार्य अंगीकृत किया। गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित प्रयाग से १ फरवरी, १७४३ ई० का एक पत्र यह वर्णन करता है— श्रीमन्त बुन्देलखण्ड से यहाँ पर आ गये हैं। उनका इरादा पटना जाने का है। इलाहाबाद के किले के पास त्रिवेणी में अपने समस्त ७५ हजार सैनिकों के साथ उन्होंने तीर्थ स्नान किया। वहाँ के मुसलमान सूबेदार ने नावों का प्रबन्ध किया था। यह कितना विचित्र है। इसके पहले किसी व्यक्ति ने कभी यह प्रयास न किया था कि एक विशाल समूह सफल तीर्थयात्रा कर ले तथा इस प्रकार जीवन का उच्चतम आनन्द प्राप्त करे। ईश्वर महान् है! इलाहाबाद से पेशवा वाराणसी गया। वहाँ उसकी यात्रा शीघ्रता से

व्यक्तिगत रूप मे हुई थी। वह केवल पवित्र नदी मे स्नान करना चाहता था। प्रसिद्ध मन्दिर के पुन निर्माण के काय से वह समझ-बूझकर दूर रहा।

इसी बीच मे मराठा हित के कुछ शुभचिन्तका ने पशवा तथा रघुजी भासले मे मेल कराने का प्रयास किया। स्पष्ट है कि दो प्रमुख मराठा सरदारो का गाहस्थ कलह के कारण परस्पर युद्धरत होना एक दुखद घटना थी। पेशवा वाराणसी से लगभग ६० मील गया के आगे तक गया जहा रघुजी स्वय उससे मिलने उपस्थित हुआ। चार दिना तक वे साथ रह तथा अपने पारस्परिक भेदा पर उन्हाने बातचीत की, परन्तु इस भेंट का कोई प्रत्यक्ष परिणाम न हुआ।[२]

गया से पेशवा मुर्शिदाबाद गया तथा ३१ माच से एक सप्ताह तक पलासी के समीप अलीवर्दीखा का उससे सम्मिलन हुआ। इस सम्मिलन की तैयारियो का प्रबन्ध पेशवा की ओर से पिलाजी जाधव ने तथा नवाब की की ओर से मुस्तफाखाँ ने पहले स कर रखा था। ये दोनो अपन स्वामियो से पहले मिले तथा समस्त विवरणा का निश्चय कर लिया जिसमे विश्वासघात या धोखे के विरुद्ध धार्मिक शपथ भी शामिल थे। अलीवर्दीखाँ का शिविर लावडा के स्थान पर था जो वतमान बरहामपुर छावनी के दक्षिण मे लगभग ७ मील दूर था। दाना सामन्ता के शिविरा के बीच मे पलासी के समीप भागीरथी के पश्चिमी तट पर लगे हुए एक सुसज्जित डेरे मे यह सम्मिलन हुआ। मल्हारराव होल्कर पिलाजी जाधव तथा कुछ अन्य व्यक्ति इस सम्मिलन के अवसर पर पेशवा के साथ थे। नवाब ने चार हाथी, कुछ घाडे और भैंस पेशवा को उपहार मे दिये। एक सहमति स्थापित की गयी जिसका आशय था कि (१) नवाब २२ लाख रुपये पेशवा को उसके व्यय-स्वरूप दे। (२) बगाल का वार्षिक चौथ वह छत्रपति को दे। (३) दोना मिलकर रघुजी को प्रान्त से बाहर कर दें। इस अन्तिम धारा का पालन उन्हान अविलम्ब आरम्भ कर दिया।

उनकी आगामी प्रगति के विवरण कुछ कुछ परस्पर विरुद्ध हैं तथा उनका यथाथ निश्चय नही हो सकता। इस सगठन से उत्पन्न होने वाले सकट को जानकर रघुजी ने कटवा से अपने शिविर को हटा लिया तथा यह योजना बनायी कि पृष्ठरक्षक रण लडता हुआ वह पीछे हटता जाये, क्योकि अपने

---

[२] देखो पुरन्दरे दफ्तर जिल्द १ पृ० १५२। वद्य द्वारा सगृहीत अप्रकाशित पत्र। 'पेशवा बालाजी बाजीराव तथा शाहू पर लेखक कृत रियासत ग्रन्थ के पृष्ठ ७२ पर इनम से एक पत्र उद्धत है।

अश्वारोही दल की शीघ्र गति पर उसका विश्वास था। पर देखकर कि उसके मित्र नवाब की सेना सर्वथा अनुपयोगी है और रघुजी के शीघ्रगामी अश्वारोही दल का पीछा उससे नहीं हो सकता है, पेशवा उससे अलग हो गया और अकेले ही रघुजी को लड़ाई पर बाध्य करने का प्रयास किया।

पचेट के समीप बेंदु के संकीर्ण दर्रे में १० अप्रैल को पेशवा तथा रघुजी का सामना हुआ। रघुजी की सेना का मुख्य भाग पहले से ही दर्रे में होकर भाग निकला था। केवल सामान सहित थोड़ा दल तथा उन व्यक्तियों पर जो पीछे रह गये थे आक्रमण हुआ तथा वे लूट लिये गये जब वे इस संकीर्ण दर्रे से निकल रहे थे। वास्तव में हानि बहुत कम हुई थी किन्तु इस घटना को जान बूझकर गम्भीर तथा कठोर युद्ध की संज्ञा दी गयी। पचेट से रघुजी नागपुर की ओर मुड़ गया तथा पूना को वापस जाते हुए पेशवा गया की ओर मुड़ गया। २० मई को पेशवा ने भागीरथी पर अपने शिविर से रामचन्द्र बाबा को लिखा— ईश्वर की दया से बंगाल में मेरा अभियान सफल रहा र० की पराजय हुई तथा मेरी सत्ता स्थापित हो गयी। नवाब को मेरी शक्ति का विश्वास था। उससे और सम्राट से मुझको धन के रूप में पर्याप्त लाभ हुआ है। र० ने बंगाल पर आक्रमण किया था, तथा उस प्रान्त में अपनी छावनी स्थापित करने के बाद उसने अपनी शक्ति का प्रतिपादन किया। सम्राट् की इच्छा है कि मैं उसका सामना करूँ तथा उसको निकाल दूँ।[3] स्वयं रघुजी ५ जून को लिखता है

भास्करपन्त की सहायतार्थ मैं गया को गया था। गत वर्ष उसने अलीवर्दीखाँ को परास्त कर दिया था तथा बंगाल में अपनी छावनी डाली थी। पेशवा भी उसी क्षेत्र में आ गया। उसने मेरे पास विश्वसनीय व्यक्ति भेजे ताकि मैं जाकर उससे मिल लूँ। मैं गया को गया तथा उसके साथ मेरे सम्मिलन हुए। वापस लौटकर मैंने अलीवर्दीखाँ के विरुद्ध प्रयाण किया तथा भागीरथी पर मकसूदाबाद के बाहर कटवागंज नामक स्थान पर मैं ठहर गया। समझौते के लिए खान ने मेरे पास सन्देशवाहक भेजे तथा कलह के शान्तिमय निपटारे की प्रतिज्ञा की। इसी बीच में घटनास्थल पर पेशवा पहुँच गया और घोषणा की कि सम्राट की आज्ञा पर वह अलीवर्दीखाँ की सहायतार्थ वहाँ आया है तथा रघु को बाहर निकालने में वह उसके साथ सहयोग करेगा। दोनों ने मेरे विरुद्ध प्रयाण किया। इसके परिणाम क्या हुए—मैं पहले ही लिख चुका हूँ। तब मैं रामगढ़ आया और पेशवा ने अलीवर्दी की सेनाओं को

---

[3] अप्रकाशित पारसनीस संग्रह। र० = रघुजी।

छाडकर पचेट के माग से गया के लिए प्रस्थान किया। निजामुलमुल्क का एक दूत शपराव अलीवर्दीखा के यहां है। उसने मुझको लिखा कि अलीवर्दी की इच्छा समझौत की है तथा उसकी प्राथना है कि मैं भास्करराम को उस काय के निमित्त वापस भेज दू। तदनुसार मैंने भास्करराम को नवाब के पास वापस भेज दिया तथा कुछ मनिका और असैनिको को लेकर मैं वापसी यात्रा पर चल दिया। जब मैंन ब्रॅंदु दर्रे को पार कर लिया, पशवा ने मर असनिका पर आक्रमण किया जो कि पीछे थ। उनम से अनुमानत दो सौ मारे गय। मैं तुरन्त वापम आ गया और पेशवा के आक्रामक दल को मार भगाया। इसके बाद मैं आराम स शनै शन नागपुर पहुँच गया।

पशवा तथा रघुजो क बीच मे इस टक्कर के प्रकरण का उल्लख चिटनिम न अपनी पुस्तक शाहू का जीवन' म सक्षेप म बहुत सुन्दर प्रकार से किया है। २७ अप्रल का लिखे हुए अपने पुत्र बापूजी के नाम एक पत्र म हिंगने ने इसी विपय का वणन किया है। वह कहता है—'पेशवा न यह घोपित किया कि मैं रघुजी स मिलने जा रहा हूँ। परन्तु रास्ते म उसने कई जगहो को लूट लिया और बलपूवक कर सग्रह किया। अत्याचार स बचन के लिए कुछ लोगा न अपनी स्त्रिया सहित आत्महत्या कर ली। जनसाधारण ने इस काय का बहुत विरोध किया। तब यह समाचार आया कि नवाब और पेशवा मे बहुत दर तक वार्तालाप हुआ है। पवित्र शपथें लेकर उन्होंने पारस्परिक मित्रता की प्रतिज्ञा की है। तब पेशवा रघुजी को दण्ड देने के निमित्त रवाना हुआ। इस समाचार से सम्राट अपने हृदय मे बहुत प्रसन्न हुआ। वह पशवा की राजभक्ति का आदर करता है।'[४]

ये ही समस्त विश्वसनीय विवरण हैं जो इस स्मरणीय प्रकरण के सम्बन्ध म प्राप्त हो सकत हैं।

४ **मेल मिलाप**—इस लम्बे वृत्तान्त म पाठक एक ओर पेशवा की समस्त सरदारा पर केन्द्रीय नियन्त्रण स्थापित करने और छत्रपति के नाम म मराठा नीति को कार्यान्वित करने की इच्छा पाता है, तथा दूसरी ओर रघुजी की अपन पहले और बाद के बहुत-से अन्य व्यक्तिया की भाति पेशवा के हस्त-क्षेप मे स्वतन्त्र अपने लिय एक अलग कायक्षेत्र स्थापित करने की इच्छा का अवलोकन करता है। मराठा सरदारा की यह परस्पर विरोधी-वृत्ति उनकी सबस बडी निर्बलता सिद्ध हुई। रघुजी को पता चल गया कि वह पशवा का सामना नही कर सकता तथा उसका हित इसी मे था कि वह पशवा के साथ

---

४ राजवाडे जिल्द ३, पृ० २१७।

समाधान कर ले। इन दोनों की फूट से शाहू को वैसे ही परिणामों का भय था जो डभाई पर पेशवा तथा दाभाडे की टक्कर के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे। उसने दोनों को तुरन्त उपस्थित होने के साग्रह आह्वान भेजे। उसकी नीति का स्वीकृत उद्देश्य भारत के समस्त भागों में मराठा राज्य का प्रसरण था तथा प्रभाव क्षेत्रों का निश्चय इसमें कोई भारी अड़चन न था। दोनों पक्ष यह अच्छी तरह समझते थे कि सम्राट और अलीवर्दीखाँ दोनों उनकी पारस्परिक फूट से लाभ उठा रहे थे। दोनों दलों में अधिक बुद्धिमान लोग भी थे अतः शाहू की उपस्थिति में कर शान्त करने में विलम्ब न हुआ। शीघ्र ही यह सूचना प्राप्त हुई कि पेशवा ने बंगाल पर से अपना स्वत्व छोड़ दिया है तथा वह सहमत हो गया है कि रघुजी को उसके न्यायपूर्ण क्षेत्र में तंग करने से वह दूर रहेगा। सतारा में ३१ अगस्त १७४३ ई० को दोनों ने एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके अनुसार बरार के पूरब का समस्त देश—कटक, बंगाल तथा लखनऊ तक—रघुजी को दे दिया गया। पेशवा ने यह स्वीकार किया कि वह उसमें हस्तक्षेप न करेगा। इस रेखा के पश्चिम का समस्त देश अकेले पेशवा का क्षेत्र हो गया। अजमेर, आगरा, प्रयाग तथा मालवा इसमें शामिल थे।[४]

एक अन्य पत्र में पेशवा के क्षेत्र की निम्न परिभाषा है— समस्त वे प्रदेश जिनको पेशवा ने पहले से प्राप्त कर लिया है, मोकासा तथा जागीरें, कोंकण तथा मालवा का शासन, आगरा, प्रयाग तथा अजमेर से प्राप्त कर, पटना जिला के तीन तालुके, कर्नाटक में रघुजी के क्षेत्र के अन्तर्गत २० हजार की आय के पेशवा को इनाम में दिये गये गाँव—ये सब पेशवा के अन्य स्वतन्त्र क्षेत्र हैं जिनके प्रति रघुजी या कोई अन्य व्यक्ति कोई आपत्ति न करेगा। लखनऊ, बिहार, दक्षिणी बंगाल अर्थात बरार से कटक तक का समस्त प्रदेश रघुजी को दिये जाते हैं जहाँ से वह अपना कर तथा अन्य प्रकार का देय धन प्राप्त करे।

इस प्रकार पेशवा तथा रघुजी ने यह अनुबन्ध कर लिया कि वे एक-दूसरे की सीमाओं का सम्मान करेंगे तथा अपने क्षेत्रों के बाहर अनधिकृत प्रवेश न करेंगे। इन दोनों के परस्पर भी उपहारों के भी नियम बना दिये गये। छत्रपति की उपस्थिति में पेशवा तथा रघुजी के बीच में पूर्ण मेल स्थापित हो गया तथा उन्होंने एक-दूसरे को भोज दिये। शाहू ने उन दोनों को अपने हाथों से उनका चरण स्पर्श करके यह शपथ ग्रहण करने की आज्ञा दी कि वे भविष्य

---

[४] सिलेक्शन्स बरार पृ० ७६, ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार ४८, ४६, नाना फड़नवीस १, १०, राजवाड़े जि० २ पृ० ६८, ६६।

म एक-दूसरे के प्रति कोई शकाएँ न करेग। उन्होंने महाराजा को भोज दिया। जब स्थायी मित्रता के प्रति समस्त आश्वासन प्राप्त हो गये, उनको वहाँ से जाने की आज्ञा दी गयी। विवादग्रस्त गढा तथा मण्डला के जिलो के सम्बन्ध मे भी एक अलग सहमति की रचना की गयी। अत रघुजी तथा पेशवा की प्राचीन प्रतिस्पर्द्धा वतमान समय के लिए समाप्त हो गयी। यह स्वीकार करना पडेगा कि इसके उपरान्त उन दोनो के जीवनकाल मे उनके सम्बन्ध कभी अधिक नही बिगडे और इसका श्रेय उन दोना को ही है।

५ **मराठा सेनापतियों की हत्या**—इस प्रकार १७४३ ई० की वर्षाऋतु म पेशवा तथा सेनासाहब सूबा रघुजी भोसले मे घनिष्ठ मित्रता हो गयी तथा आगामी दशहरा म दोनो अपने अपने पूव निश्चित कार्यों मे अग्रसर हो गये। रघुजी तुरन्त सतारा से नागपुर का गया, तथा उसन भास्करराम को बगाल म अपने अपूण काय का समाप्त करन के निमित्त भेज दिया। सेना तथा सामग्री से पूण सुसज्जित होकर १७४४ ई० के आरम्भ म भास्कर नागपुर से अपनी यात्रा पर चल दिया। इस नवीन आक्रमण क समाचार ने अलीवर्दीखा को अपनी विपत्ति की चेतना के प्रति जाग्रत कर दिया तथा उसे मराठो के विरुद्ध विश्वासघात की एक कायरतापूण योजना स्वीकार करने को प्रेरित किया। सूबेदारी की प्राप्ति के बाद से ही खान अभूतपूव चिन्ताओ कष्टो तथा विपत्तिया से इतना व्यथित हो रहा था कि वतमान सकट का सामना करने के लिए उसन अपन को सवथा निरुपाय पाया। भास्करराम तथा मीरहबीब ने उसको प्रत्येक प्रकार से तग करने म कोई कमी न रखी। भास्कर न चौथ की माँग भेजी तथा इन्कार करन पर भयकर परिणामो की धमकी दी। भास्करराम को परास्त करन के लिए प्रतिशोध की एक गह्य योजना की रचना खान ने अपन उवर मस्तिष्क म की। उसने निश्चय किया कि व्यक्तिगत वार्तालाप का प्रलोभन देकर वह उसके समस्त दल के साथ उसकी हत्या कर दे। इस काय क लिए उसन अपन सेनानायक अफगान मुस्तफाखाँ तथा अपन व्यक्तिगत परामशक जानकीराम को अपने विश्वास म लिया। ये दोना मराठो स बहुत घृणा करते थ। नवाब न मनोरम प्रतिज्ञाओ द्वारा उनको इस षडयन्त्र म सम्मिलित होने के लिए प्रेरित कर लिया। इसको कार्यान्वित करने के लिए सूक्ष्मतम विवरण भी तयार कर लिय गय। उन्होंने निपुणता तथा चतुरता से योजना की रचना की। भास्करराम का शिविर कटवा म था तथा नवाब का अमानीगज म जिनके बीच म लगभग २० मील की दूरी थी। मुस्तफाखाँ न अपने कायकर्ताओ को भास्करराम के पास भेजा तथा सन्धि-क्रम का आरम्भ किया। उसन अपनी अधीनता स्वीकार करते हुए युद्ध के प्रति नवाब की

अनिच्छा को दर्शाया। उसने प्रस्ताव किया कि उन दोनों में खुला सम्मेलन हो, तथा चौथ की मात्रा के विषय में वे दोनों पक्षों को स्वीकार कोई उचित प्रबंध कर लें। भास्करराम को इस मार्ग को अपनाने का लोभ हो गया क्योंकि उसको आशा थी कि बिना रक्तपात के वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा।

भास्करराम तथा नवाब के कार्यकर्ताओं ने सभा के विवरणों पर वार्तालाप किया तथा उनको निश्चित कर लिया। कुरान तथा गंगा जल का उनकी शपथों में बार-बार प्रयोग किया गया। प्रत्येक क्षण पर मीरहबीब भास्करपंत को धोखे के विरुद्ध सचेत करता रहा परन्तु व्यर्थ ही। अमानीगंज तथा कटवा के बीच में मनकारा के मैदान पर एक भव्य सुसज्जित डेरा लगाया गया। यह चारों ओर से कनातों की ऊँची दोहरी दीवारों से बन्द कर दिया गया था। इनके बीच में सशस्त्र सैनिक छिपे हुए थे। वे संकेत प्राप्त होते ही समस्त उपस्थित एवं प्राप्य मराठों को काट डालने हेतु तैयार थे। इस सम्मिलन के लिए शुक्रवार ३० मार्च १७४४ ई० (शक १६६६ की चैत्र वदी १२—सफर २६) का दिन निश्चित हो गया। नवाब मराठों के पहले आकर अपने मंच पर बैठ गया तथा भास्करराम के स्वागत की प्रतीक्षा करने लगा। होते के कई द्वार थे जिन पर सशस्त्र संतरी रक्षकों के रूप में नियुक्त थे। निश्चित समय पर अपने अनुचर वर्ग के साथ भास्करपंत आया। फाटक पर मुस्तफाखाँ तथा जानकीराम ने उनका स्वागत किया। उन्होंने उनके दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया तथा उनको भीतर नवाब के पास ले गये। इस बीच में स्वागत के मधुर वाक्य बोलते रहे। जैसे ही पंत नवाब के मंच के सामने पहुँचा नवाब उठ खड़ा हुआ और जोर से पूछा— कौन भास्करराम कौन है ?' इसके उत्तर में भास्करराम की ओर इशारा किया गया तथा उसका परिचय कराया गया। जैसे ही नवाब ने उच्च स्वर में कहा— इन दुष्टों को काट डालो वैसे ही छिपे हुए मुसलमान अपने स्थानों से बाहर दौड़ आये तथा अंधाधुंध हत्या आरम्भ कर दी। इस जघन्य कार्य के कर्ताओं में भावी इतिहास में कुख्यात मीरजाफरखाँ तथा मीरकासिमखाँ भी थे। यद्यपि मराठा सरदार समान रूप से सशस्त्र थे परन्तु आकस्मिक आक्रमण से वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। इससे पहले कि आत्मरक्षा में वे अपनी तलवारें निकाल सकें सबके सब काट डाले गये। मीरकासिम ने स्वयं भास्करपंत का काम [illegible] । समस्त स्थान कटे हुए शवों के ढेरों से भर गया। नवाब अपने आसन से [illegible] देखता रहा। मुसलमानों ने [illegible] शिविरों को [illegible] बाहर [illegible] के [illegible] को [illegible] रोक लिया [illegible] थे अपने [illegible]

की सहायता न कर सकें। २२ सरदार मारे गये। इनम से २० हिदू तथा २ मुसलमान थे। हिदुआ म ३ ब्राह्मण तथा १७ मराठे थे।

इस भयावह घटना का समाचार रघुजी गायकवाड को पहुँचा जा मराठा शिविर की रक्षा कर रहा था। शिविर की रक्षा करने तथा उसके वासियो को इस काय के लिए समथ करने म उसने व्युत्पन्न मति स काय किया ताकि वे जितनी सम्पत्ति ले जा सकें उसको लेकर भाग निकलें। गायकवाड पीछा करन वालो से वचकर निकल गया तथा भास्करराम की सेना के नष्टप्राय शेष भाग को लेकर नागपुर पहुँच गया, तथा मराठा सरदारो पर इस कायरतापूण आक्रमण के स्पष्ट विवरण उसने रघुजी भासले का दिये। नवाव अमानीगज से मुर्शिदाबाद को वापस गया और बहुत आमोद प्रमोद से उसने अपना विजयोत्सव मनाया। अपने प्राणघातक शत्रुआ से इस प्रकार छुटकारा पा जान स वह वहुत खुश था। जब इस घटना का समाचार प्राप्त हुआ, सारे महाराष्ट्र म क्रोध की जो लहर उठी उसकी कल्पना ही करना उत्तम है। इस प्रहार म रघुजी कुछ समय तक अचेत हो गया, परतु शीघ्र ही चेतना प्राप्त कर उसन प्रतिशोध के शीघ्र प्रभावशाली उपाय निश्चित कर लिये। इस विषय म अपन पुत्रा भास्कर के भाई कान्हेरराम तथा उसके विशाल परिवार मे उसन चितापूण गम्भीर वार्तालाप किया था।[६]

अनक कारणा स मराठा सरदारा की वीभत्स हत्या का बदला लेने के लिए तुरत कोई कायवाही न की जा सकी। सनिक, धन तथा सामग्री का सग्रह आसानी स न किया जा सका जो गम्भीर उद्योग के लिए अत्यावश्यक थ। यद्यपि रघुजी न एक क्षण भी व्यथ के तक वितक म व्यतीत न किया फिर भी वह कम से कम एक वष तक उचित अभियान सगठित न कर सका। मीरहवीव उसक पास ही था, तथा वह निरतर प्ररणा तथा परामश देता रहा। इस बीच मे मुस्तफाखाँ तथा अलीवर्दीखाँ मे एक-दूसरे के प्रति घोर

---

६ भास्करराम की पत्नी काशाबाई उफ ताईबाई जिसको कुछ महीन का गभ था कटवा के शिविर म पीछे छोड दी गयी थी। पठान जाति की एक मुस्लिम महिला ने उसकी प्राण रक्षा की। तुरत एक पालकी का प्रबध किया गया जिसमे वह गुप्त रूप से वाराणसी पहुँचा दी गयी। यहा उसके एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम काशीराव भास्कर रखा गया। भास्कर का भाई कान्हेरराम दुख से अत्यत व्याकुल हो गया, जिसको शान्त करने का पूरा प्रयास रघुजी तथा उसके पुत्रा न किया। ताईबाई को उचित व्यवस्था सहित बरार की सूबेदारी दी गयी। कान्हेरराम के पुत्र गानूराव ने नागपुर राज्य की सेवा गौरवपूवक की।

वमनस्य हो गया, तथा मुस्तफाखाँ ने रघुजी से प्रार्थना की कि वह शीघ्र प्रयाण करे और दुष्ट नवाब का दमन कर दे।

मीरजाफर ने भी नवाब से विद्रोह कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त बंगाल में पुनः अशान्ति तथा गड़बड़ उत्पन्न हो गयी। फरवरी १७४५ ई० में रघुजी नागपुर से चला तथा उसने अपनी प्रगति की सूचना इस प्रकार भेजी— 'नागपुर से चलकर मैं सीधा कटक पहुँचा तथा दो मास के निरन्तर घेरे तथा सतत गोलाबारी के बाद मैंने ६ मई को उस स्थान पर अपना अधिकार कर लिया। अब मैं मकसूदाबाद की ओर जा रहा हूँ। नवाब के विश्वासघाती मन्त्री जानकीराम के पुत्र दुर्लभराम को मैंने पकड़ लिया है।' यह दुर्लभराम बन्दी बनाकर नागपुर भेज दिया गया था जहाँ पर तीन लाख रुपये मुक्ति धन के लेकर उसे जनवरी १७४७ ई० में छोड़ दिया गया।

६ बंगाल पर चौथ लागू—रघुजी ने अपने २२ वीर सरदारों की हत्या (मुण्ड-कटाई) के प्रति तीन करोड़ रुपये का दण्ड अलीवर्दीखाँ से तलब किया। जब रघुजी मकसूदाबाद के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था मुस्तफाखाँ तथा अलीवर्दीखाँ में खुला युद्ध हो गया। जून १७४५ ई० में आरा के समीप जगदीशपुर के युद्ध में अलीवर्दीखाँ ने मुस्तफाखाँ को मार डाला। वर्षा ऋतु में रघुजी का शिविर वीरभूमि में था। वर्षा के बाद उसमें तथा नवाब में धावक युद्ध आरम्भ हो गया। २१ दिसम्बर को मुर्शिदाबाद के समीप रघुजी की पराजय हुई और वह शीघ्र नागपुर वापस आ गया। अपने तीन हजार सैनिक वह मीरहबीब की सहायता के लिए वहीं छोड़ गया था।* उड़ीसा मीरहबीब के अधिकार में रहा। सम्राट की स्वीकृति के अनुसार पेशवा ने भी अपने कार्यकर्ताओं को अलीवर्दीखाँ से चौथ माँगने के लिए भेजा। इस प्रकार नवाब दो शत्रुओं—भोसले तथा पेशवा—के बीच में आ गया। तो भी हत्या के प्रति दण्ड का वसूल करना बहुत समय तक स्थगित रहा क्योंकि रघुजी भारी आर्थिक संकट में था। १७४६ ई० के अन्त के समीप तक उसकी तैयारी पूरी हो गयी और उसने अपने पुत्र जानोजी को नवाब के विरुद्ध भेज दिया। जानोजी जनवरी १७४७ ई० में कटक पहुँचा जहाँ मीरहबीब उसके साथ हो गया। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने नवाब को बर्दवान के समीप परास्त कर दिया। परन्तु इसके ठीक बाद ही नवाब ने जानोजी को परास्त किया और वह नागपुर को वापस चला गया।

---

* पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २०, पृ० २६।

भोसले के भय से मुक्ति प्राप्त करने के अपने समस्त उपायो से भी नवाब की दशा मे कोई सुधार न हो सका। मीरजाफर तथा अन्य अधिकारियो ने नवाब की हत्या करने का षडयन्त्र रचा किन्तु वे सफल न हुए। रघुजी भी नाना प्रकार के कष्टो म उलझ रहन के कारण बहुत दिना तक बगाल की ओर ध्यान न द सका। निजामुल्मुल्क तथा शाहू दोना ही मृत्यु के समीप थ और रघुजी का ध्यान इस समय उन्ही मे लगा हुआ था। १७४७ ई० म शाहू न उसको सतारा बुलाया। वह उसके पुत्र मुधाजी को गोद लेना चाहता था तथा रघुजी को इस आह्वान पर जाना जरूरी था। इस बीच मे जानाजी को, जा बगाल म अभियान पर था, नागपुर वापस लौटना पडा क्योकि उसकी माता का देहान्त हो गया था। अन रघुजी ने अपने तृतीय पुत्र सबाजी को बगाल भेज दिया। वह मीरहबीब स मिला तथा दोना न यथाशक्ति नवाब को तग करना शुरू कर दिया। नवाब के लिए परिस्थिति इतनी असह्य हा गयी कि उसकी चतुर पत्नी ने मराठा म समझौता कर लेने का उमसे आग्रह किया। उसन उसके परामश को स्वीकार कर लिया तथा मीरजाफर को मीरहबीब तथा जानोजी स स्वय मिलकर शान्ति की शर्तों का निश्चय करने के लिए भेजा। दीघकालीन बातचीत माच १७५१ ई० म समाप्त हुई जिसके फल स्वरूप एक गम्भीर सन्धि-पत्र की रचना हुइ जिसमें निम्नलिखित शर्तें थी

१ मुर्शिदाबाद के नायब सूबेदार के रूप मे मीरहबीब उडीसा के शासन पर स्थिर कर दिया जाये।

२ नागपुर के भासले को नवाब के द्वारा बगाल और बिहार की चौथ के १२ लाख रुपये वार्षिक दिये जायें।

३ यदि यह धन समय पर मिलता रहेगा, तो भासले लाग अपने अभि याना द्वारा इन दोना प्रान्ता का पीडित न करेंगे।

४ कटक का जिला—अर्थात सुवण रेखा नदी तक का प्रदेश—भासले की सम्पत्ति माना जायेगा।

चौथ के शष धन के लिए नवाब ने तुरन्त ३२ लाख रुपये भासले को दिये। अविलम्ब शान्तिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये। जानोजी नागपुर को वापस आ गया उसन अपनी समस्त सना हटा ली, तथा शिवभट्ट साठे को उडीसा के प्रबन्ध के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। साठे न अपन कतव्य का पालन सन्तोषजनक ढग से किया तथा बहुत समय तक उसन प्रान्त म निपुणता म शासन स्थिर रखा। यद्यपि भास्करराम तथा उसके सहकारिया की हत्या के प्रति दण्ड का कुछ भी धन प्राप्त न हुआ किन्तु उस सनापति के अभियान का मुख्य उद्देश्य—बगाल और बिहार पर चौथ लगाना—सिद्ध

तिथिक्रम

अध्याय १०

१७२७	जयसिंह के पुत्र माधवसिंह का जन्म ।
१२ जनवरी, १७४२	सम्भाजी आग्रे की मृत्यु ।
नवम्बर, १७४२	ओरछा के बीरसिंह देव द्वारा जोतीबा सिंधिया तथा उसके मित्रों की हत्या ।
नवम्बर, १७४२	नारोशंकर द्वारा ओरछा भूमिसात्, राजधानी झांसी में स्थापित ।
१७४३	तुलाजी आग्रे सरखेल नियुक्त ।
२३ सितम्बर, १७४३	सवाई जयसिंह की मृत्यु ।
फरवरी, १७४४	महादेव भट्ट हिंगने की दिल्ली में मृत्यु ।
दिसम्बर, १७४४—जून, १७४५	भिलसा को पेशवा का अभियान ।
१५ जनवरी, १७४५	तुलाजी द्वारा गोवलकोट तथा अजनवेल अधिकृत ।
११ मार्च, १७४५	रानोजी सिंधिया का भिलसा पर अधिकार ।
३ जुलाई १७४५	रानोजी सिंधिया की मृत्यु ।
१७४५	जयपुर का उत्तराधिकार युद्ध आरम्भ ।
६ फरवरी, १७४७	जयपुर के मन्त्री राजमल की मृत्यु ।
१ २ मार्च, १७४७	राजमहल का रण, माधवसिंह पर ईश्वरीसिंह की विजय ।
३ मई, १७४७	सतारा में तुलाजी आग्रे का शाहू से मिलन ।
१७४७	नादिरशाह का वध, अहमदशाह अब्दाली—उसका उत्तराधिकारी ।
१५ जनवरी, १७४८	चौल के राजकोट पर पेशवा का अधिकार ।
जनवरी मार्च, १७४८	मुदागढ़ का युद्ध, तुलाजी आग्रे परास्त ।
३ मार्च, १७४८	मनुपुर का युद्ध, अहमदशाह अब्दाली परास्त ।
१ अप्रैल, १७४८	तुलाजी द्वारा मुदागढ़ पुन हस्तगत ।
२१ मई, १७४८	पेशवा तथा माधवसिंह में नेवाई नामक स्थान पर एक सप्ताह का मिलन ।

अध्याय १०

अधिक सफलताओ की ओर

[१७४४–१७४७]

१ बुन्देलखण्ड का दृढ़ीकरण—झांसी । २ दो उल्लेखनीय मृत्युएं ।
३ राजपूत युद्ध । ४ सामाजिक सम्पर्क ।
५ आंग्रे-बन्धु—मानाजी तथा तुलाजी । ६ पिलाजी जाधव ।

१ बुन्देलखण्ड का दृढ़ीकरण—झांसी—मालवा तथा बुन्देलखण्ड पर मराठा अधिकार को पुष्ट करने लिए बालाजीराव ने तीन वीर मराठा सरदारों—होल्कर सिन्धिया तथा पवार—को स्थायी रूप से नर्मदा तथा यमुना के बीच के प्रदेश की रक्षार्थ नियुक्त कर दिया था, बुन्देलखण्ड से पश्चिम मे राजपूतों पर नियन्त्रण रखा जा सकता था उत्तर की ओर दोआब तथा अवध म किसी भी क्षण प्रवेश सम्भव था तथा पूरब म वाराणसी पटना तथा बगाल तक धावे बोल जा सकते थे। बुन्देलखण्ड म स्थायी रूप से नियुक्त किसी भी सेना को आवश्यकतानुसार कहीं भी शीघ्रता से भेजा जा सकता था। उक्त प्रबन्ध स स्पष्ट होता है कि पेशवा अच्छी तरह समझ गया था कि उत्तर मे एक शक्तिशाली आधार का निर्माण आवश्यक है, तथा उसने जान बूझकर एक वर्ष स भी अधिक समय इस प्रबन्ध को पूरा करने मे व्यतीत किया। ओरछा के केन्द्रीय स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्न किये, गये क्योकि रण कौशल की दृष्टि से समीपवर्ती प्रदेशों पर नियन्त्रण रखने हेतु यह स्थान उपयुक्त था। इस समय ओरछा एक रेलवे स्टेशन है जो झांसी से बांदा जाने वाले रेल पथ पर झांसी से लगभग ६ मील पूरब म है। चन्देरी का प्रसिद्ध प्राचीन गढ़ यहा से ३० मील दक्षिण पश्चिम म है, तथा ग्वालियर लगभग ५० मील उत्तर म है। जैतपुर तथा कालिंजर इसके ६० मील पूरब की ओर हैं। ये सब थोडे बहुत दुर्गीकृत स्थान हैं, जिन पर मराठों ने अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। दक्षिण मे बुन्देलखण्ड मे प्रवेश करने के लिए दो राजमार्ग थे—एक मार्ग नर्मदा को पार करके उज्जैन के रास्ते से वर्तमान सिरोंज भिलसा रेलपथ के साथ साथ जाता है, तथा दूसरा मार्ग नर्मदा के साथ-साथ पूरब को जाता है, जो इस नदी को गढा के स्थान पर पार कर सीधे बुन्देलखण्ड म प्रवेश करता है। यह स्मरण होगा कि जब

वह सबल तथा समर्थ शासक सिद्ध हुआ और १७५६ ई० तक इस स्थान पर नियुक्त रहा। उसने शीघ्र ही समीपवर्ती स्थान चर्खी (चरखेरी) का विजय कर लिया। यहाँ पर वीरसिंह देव के कुछ सम्बन्धी रहते थे। वीरसिंह देव ने अपना निवास स्थान टेहरी मे बना लिया, क्योंकि ओरछा पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था। वहा पर यह परिवार अब तक शासन करता था।

नारोशंकर ने झाँसी के गढ के नीचे एक नगर बसाया और दक्षिण के बहुत से ब्राह्मणों तथा अन्य परिवारो को वहाँ पर बसने का निमन्त्रण दिया। अत बुन्देलखण्ड मे झाँसी वास्तव मे मराठो का एक उपनिवेश बन गया तथा मराठा इतिहास मे इसका नाम अमर हो गया।[1]

१७४३ ई० का वर्ष नवीन पेशवा के चरित मे एक स्मरणीय वर्ष सिद्ध हुआ। इसके एक वर्ष पूर्व वह सवाई जयसिंह से मिला था तथा उसके द्वारा मालवा का शाही पट्टा प्राप्त किया था। इसके बाद उसने बगाल तथा बिहार मे प्रवेश किया जिसका वर्णन पहले हो चुका है। उसने रघुजी भोसले तथा अलीवर्दीखाँ के साथ अपने झगडो का निपटारा कर लिया तथा इस प्रकार उसने पूरब मे मराठा शक्ति के विस्तार को निश्चित कर दिया। आरम्भ से ही उसकी हार्दिक इच्छा थी कि बुन्देलखण्ड को अधीन कर ले। वह और भी अधिक उत्तर मे ठहरता, यदि शाहू उसको अकस्मात सतारा न बुला लेता। शाहू उस समय बहुत बीमार हो गया था। सतारा पहुँचकर पेशवा चिन्तामुक्त हो गया क्योकि उसने देखा कि शाहू अच्छा हो गया है। जुलाई तथा अगस्त के महीने उसने राजधानी मे ही व्यतीत किये। इस समय वह अपने तथा रघुजी भोसले के बीच स्थायी बर शान्ति के उपायो मे व्यस्त था। २ अगस्त को पिलाजी जाधव रामचन्द्र बाबा को लिखता है—"पेशवा पर रानी सगुणाबाई की कृपा फिर से हो गयी है, जो रघुजी के प्रति उसके व्यवहार के कारण उससे रुष्ट थी। इस समय पहली ही बार मराठा सरदारो ने अपना वर्षाकालीन शिविर उत्तर मे बनाया, और वर्षाऋतु घर पर व्यतीत करने के साधारण मराठा व्यवहार को तोड दिया। महादोबा पुरन्दरे ने पेशवा से होल्कर तथा सिन्धिया को परिस्थिति की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए

---

[1] नारोशंकर के बाद निम्नलिखित मराठा अधिकारियो ने इस स्थान पर शासन किया—महादजी गोविन्द काकिर्डे (१७५६ १७६० ई०) बाबूराव कान्हेरे कोल्हटकर (१७६१ १७६५ ई०), विश्वासराव लक्ष्मण (नारा शंकर का भतीजा) (१७६६ १७६९ ई०) रघुनाथ हरि नेवलकर (१७६९ ई० से)। इस परिवार मे यह स्थान पैतृक हो गया। उसकी अन्तिम उत्तराधिकारिणी रानी लक्ष्मीबाई थी जो प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध की नेत्री थी।

उत्तर में ही ठहरे रहने की आज्ञा जारी करने की प्रार्थना की। पेशवा ने महादोबा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा १७४३ ई० के पश्चात ये दोनों सरदार अपने समस्त सैनिक अनुचरों सहित मालवा तथा बुन्देलखण्ड में स्थायी रूप से निवास करने लगे।[2]

२ उल्लेखनीय घटनाएँ—पेशवा उत्तर में अपने कार्य को समाप्त कर देने का इच्छुक था परन्तु एक वर्ष से भी अधिक समय तक वह अपने को दक्षिण तथा निजाम के कार्यों से मुक्त न कर सका। बुन्देलों ने विद्रोह कर दिया था तथा सिंधिया और होल्कर ने उनके विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया। भिलसा कुछ समय से मराठों के अधिकार में था, उसको अब भोपाल के नवाब यारमुहम्मदखाँ ने छीन लिया। रानोजी सिंधिया ने कठोर प्रयास के बाद इसको पुनः ११ मार्च १७४५ ई० को अपने अधिकार में कर लिया। भिलसा मालवा का केन्द्र है तथा अब तक सिंधिया की सीमा चौकी रहा।

१७४४ ई० के अन्त के समीप पेशवा पुनः अपनी उत्तर की यात्रा पर चला। वह आकर भिलसा में ठहरा। उसको न केवल बाह्य शत्रुओं का सामना करना था अपितु उन कलहों तथा आन्तरिक ईर्ष्याओं को भी दूर करना था, जो तीन मुख्य सरदारों—सिंधिया, होल्कर तथा पवार—में तथा कुछ छोटे अधीन सरदारों में घर कर रही थीं। वे न्यूनाधिक व्यक्तिगत लाभ पर तुले हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि घोर पारस्परिक संघर्ष फैल गया जिससे जनहित की हानि हुई।

पेशवा ने सर्वप्रथम मालवा के मामलों का निपटारा किया और तब अपना ध्यान बुन्देलखण्ड की ओर दिया। यहाँ पर अनेक सरदारों ने—उदाहरणार्थ दतिया, चन्देरी, जैतपुर, कालिंजर, पन्ना तथा अन्य—वर्तमान मराठा प्रवेश के विरुद्ध घोर विरोध उपस्थित किया। विरोधियों को परास्त करने में वर्षों का श्रम तथा विपुल व्यय आवश्यक था। उनकी आन्तरिक ईर्ष्याएँ उनकी महत्तम निर्बलता सिद्ध हुई तथा मराठों ने इससे पूर्ण लाभ उठाया।[3] पेशवा बहुत दिनों तक उत्तर में न ठहर सकता था। वह वर्षाऋतु व्यतीत करने पूना आया तथा कार्यभार रानोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर पर छोड़ गया। पेशवा के कृत्यों के प्रति सम्राट के विचारों का वर्णन दामोदर

---

२ पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द २१, पृ० ६।

३ उदाहरण के लिए देखिए काव्येतिहास संग्रह—पत्रे यादी, सं० ५०, ५७ तथा ५८ में अर्जुन ढरे का प्रकरण।

महादेव हिंगन न २३ जून, १७४५ ई० के एक पत्र म इस प्रकार किया है—"सम्राट न मुझसे कहा कि हाथिया, घोडा तथा आभूपणा के उसके पुरस्कारा को पशवा तक पहुचा दू। बुदलखण्ड मे मैंने ये पुरस्कार उसको दिये जिनको उचित सम्मान सहित उसन ग्रहण किया। इस विशेप सम्मान पर जो सम्राट से उसको प्राप्त हुआ था, पेशवा बहुत प्रसन्न हुआ। बुदेलखण्ड के कार्यों को निपटा क बाद उसने दक्षिण को प्रस्थान किया है तथा मैं उसके साथ जा रहा हूँ।[४]

इस समय रामचन्द्र बाबा सुक्तानकर तथा गगाधर यशवन्त चन्द्राचूड क्रमश सिन्धिया तथा होल्कर के पास पेशवा के प्रतिनिधि का काय करत थ तथा मगठा राज्य के उत्तम हिता की रक्षा के लिए पशवा की आज्ञापालन का ध्यान रखत थ। दोना ही योग्य व्यक्ति थे और उन्होन बाजीराव के समय से ही निष्ठापूवक काय किया था। रामचन्द्र बाबा विशेप रूप स करो तथा राजस्व के सग्रह म निपुण था, तथा अपन आर्थिक और कूटनीति के उपाया से उत्तर की जनता म मराठा शासन के प्रति भय तथा मान उत्पन्न कर सकता था। गगाधर यशवन्त उसस भिन्न प्रकार का व्यक्ति था, उसम एक वीर सनिक के गुण थे तथा उसने निष्ठा और भक्तिपूवक होल्कर की सेवा की। इन दोना व्यक्तिया ने बहुत दिना तक उत्तर मे पशवा की नीति को कार्यान्वित किया।

रानोजी सिन्धिया तथा रामचन्द्र बाबा की अच्छी बनती थी तथा उनम एक दूसर क प्रति प्रेमभाव रहा। ३ जुलाई, १७४५ ई० का भोपाल से लगभग ३० मील उत्तर म शुजालपुर के स्थान पर रानोजी का अकस्मात देहान्त हो गया। उसने वीरता तथा ईमानदारी से बहुत दिना तक मराठा राज्य की सेवा की थी। प्रथम पशवा बालाजी विश्वनाथ क अधीन उसने अपना जीवन आरम्भ किया था। वह केवल वतमान सिन्धिया वश का ही सस्थापक नहीं है, अपितु मालवा तथा बुदेलखण्ड म मराठा शक्ति की स्थापना म वह बाजीराव का मुख्य सहायक था। रानोजी के चार पुत्र थ, जो समान रूप से वीर तथा योग्य थे—जयप्पा, दत्ताजी, तुकोजी तथा महादजी। इन सब ने बाद के इतिहास म गौरव प्राप्त किया। प्रथम तीन की माँ का नाम मीनाबाई उफ निम्बाबाई था, तथा महादजी की माता थी चिमाबाई। रानोजी क एक पाँचवाँ पुत्र जोतीबा भी था जो अपन पिता के जीवनकाल म ही ओरछा के स्थान पर मार डाला गया था। रानोजी की मृत्यु के बाद जयप्पा अपन

---

[४] राजवाडे, खण्ड ६, पृ० १७४।

उत्तर म ही ठहरे रहने की आज्ञा जारी करने की प्रार्थना की। पेशवा न महादजी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा १७४३ ई० क पश्चात ये दोनो सरदार अपनी समस्त शक्ति अनुसार सहित मालवा तथा बुन्देलखण्ड म स्थायी रूप स निवास करने लगे।[२]

२ उल्लेखनीय मृत्युएँ—पेशवा उत्तर म अपने कार्य को समाप्त कर देने का इच्छुक था परन्तु एक वर्ष से भी अधिक समय तक वह अपने का कर्नाटक तथा निजाम के कार्यों स मुक्त न कर सका। बुन्देलो न विद्रोह कर दिया था तथा सिन्धिया और होल्कर न उनके विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा करने क लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया। भिलसा कुछ समय स मराठा क अधिकार म था उसको अब भोपाल क नवाब यारमुहम्मदखाँ न छीन लिया। रानोजी सिन्धिया ने कठोर प्रयास के बाद इसको पुन ११ मार्च १७४५ ई० को अपने अधिकार म कर लिया। भिलसा मालवा का केन्द्र है तथा अब तक सिन्धिया की सीमा चौकी रहा।

१७४४ ई० के अन्त के समीप पेशवा पुन अपनी उत्तर की यात्रा पर चला। वह आकर भिलसा म ठहरा। उसको न केवल बाह्य शत्रुओ का सामना करना था अपितु उन कलहो तथा आन्तरिक ईर्ष्याओ को भी दूर करना था, जो तीन मुख्य सरदारों—सिन्धिया होल्कर तथा पवार—म तथा कुछ छोटे अधीन सरदारों म घर कर रही थी। व न्यूनाधिक व्यक्तिगत लाभ पर तुले हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि घोर पारस्परिक संघर्ष चल गया जिसस जनहित की हानि हुई।

पेशवा ने सर्वप्रथम मालवा के मामलो का निपटारा किया और तब अपना ध्यान बुन्देलखण्ड की ओर दिया। यहाँ पर अनेक सरदारों न—उदाहरणार्थ दतिया चन्देरी जतपुर, कालिंजर पन्ना तथा अन्य—वर्तमान मराठा प्रवेश क विरुद्ध घोर विरोध उपस्थित किया। विरोधियों को परास्त करने म वर्षों का श्रम तथा विपुल व्यय आवश्यक था। उनकी आन्तरिक ईर्ष्याएँ उनकी महत्तम निर्बलता सिद्ध हुई तथा मराठो न इससे पूर्ण लाभ उठाया।[३] पेशवा बहुत दिनो तक उत्तर मे न ठहर सकता था। वह वर्षाऋतु व्यतीत करने पूना आया तथा कार्यभार रानोजी सिन्धिया और मल्हारराव होल्कर पर छोड गया। पेशवा के कृत्यो के प्रति सम्राट के विचारो का वर्णन दामोदर

---

२ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २१, पृ० ९।

३ उदाहरण के लिए देखिए काव्येतिहास संग्रह—पत्रे यादी, स० ५०, ५७ तथा ५८ म अर्जुन डफ्रे का प्रकरण।

महादेव हिंगन ने २३ जून, १७४५ ई० के एक पत्र में इस प्रकार किया है—
सम्राट ने मुझसे कहा कि हाथियों, घोड़ों तथा आभूषणों के उसके पुरस्कारों को पेशवा तक पहुँचा दूं। बुन्देलखण्ड में मैंने ये पुरस्कार उसको दिये जिनको उचित सम्मान सहित उसने ग्रहण किया। इस विशेष सम्मान पर जो सम्राट से उसको प्राप्त हुआ था, पेशवा बहुत प्रसन्न हुआ। बुन्देलखण्ड के कार्यों को निपटाने के बाद उसने दक्षिण को प्रस्थान किया है तथा मैं उसके साथ जा रहा हूँ।[४]

इस समय रामचन्द्र बाबा सुक्तानकर तथा गंगाधर यशवन्त चन्द्रचूड़ क्रमश सिन्धिया तथा होल्कर के पास पेशवा के प्रतिनिधि का कार्य करते थे तथा मराठा राज्य के उत्तम हितों की रक्षा के लिए पेशवा की आज्ञापालन का ध्यान रखते थे। दोनों ही योग्य व्यक्ति थे और उन्होंने बाजीराव के समय से ही निष्ठापूर्वक कार्य किया था। रामचन्द्र बाबा विशेष रूप से करों तथा राजस्व के संग्रह में निपुण था, तथा अपने आर्थिक और कूटनीति के उपायों से उत्तर की जनता में मराठा शासन के प्रति भय तथा मान उत्पन्न कर सकता था। गंगाधर यशवन्त उससे भिन्न प्रकार का व्यक्ति था, उसमें एक वीर सैनिक के गुण थे तथा उसने निष्ठा और भक्तिपूर्वक होल्कर की सेवा की। इन दोनों व्यक्तियों ने बहुत दिनों तक उत्तर में पेशवा की नीति को कार्यान्वित किया।

रानोजी सिन्धिया तथा रामचन्द्र बाबा की अच्छी बनती थी तथा उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेमभाव रहा। ३ जुलाई १७४५ ई० को भोपाल से लगभग ३० मील उत्तर में शुजालपुर के स्थान पर रानोजी का अकस्मात देहान्त हो गया। उसने वीरता तथा ईमानदारी से बहुत दिनों तक मराठा राज्य की सेवा की थी। प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ के अधीन उसने अपना जीवन आरम्भ किया था। वह केवल वर्तमान सिन्धिया वंश का ही संस्थापक नहीं है, अपितु मालवा तथा बुन्देलखण्ड में मराठा शक्ति की स्थापना में वह बाजीराव का मुख्य सहायक था। रानोजी के चार पुत्र थे, जो समान रूप से वीर तथा योग्य थे—जयप्पा, दत्ताजी, तुकोजी तथा महादजी। इन सब ने बाद के इतिहास में गौरव प्राप्त किया। प्रथम तीन की माँ का नाम मीनाबाई उर्फ निम्बाबाई था तथा महादजी की माता थी चिमाबाई। रानोजी के एक पाँचवाँ पुत्र ज्योतिबा भी था जो अपने पिता के जीवनकाल में ही ओरछा के स्थान पर मार डाला गया था। रानोजी की मृत्यु के बाद जयप्पा अपने

४ राजवाडे खण्ड ६, पृ० १७४।

परिवार का मुख्य पुरुष हुआ। रामचन्द्र बाबा के साथ उसके सम्बन्धों में शीघ्र ही तनाव उपस्थित हो गया जैसा कि आगे प्रकट होगा।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण मृत्यु का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। यह है महादेवभट्ट हिंगने की मृत्यु जो दिल्ली के दरबार में प्रथम मराठा राजदूत था। वह गौरव प्राप्त कूटनीतिज्ञ था। दुर्घटनावश १ फरवरी १७४४ ई० को उसका देहान्त हो गया। वह नासिक में पुरोहित का कार्य करता था किन्तु १७१८ ई० में बालाजी विश्वनाथ के दिल्ली के प्रथम अभियान में यह उसके साथ हो गया था। वहां पर मराठा हितों की देखरेख करने के लिए वह स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया गया। २५ वर्षों तक उसने अपने कठिन कर्तव्यों का पालन साहस तथा सन्तोषपूर्वक किया। उसने मुगल दरबार में एक परम्परा तथा कूटनीतिक प्रसिद्धि स्थापित कर दी जो उसकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक बनी रही। पीढ़ियों तक उसका परिवार मराठा राज्य की सेवा करता रहा। उन्होंने अपने राजदूत के कार्यों के साथ साथ महाजनों का सफल धन्धा भी आरम्भ कर दिया था। महादेव की मृत्यु विचित्र प्रकार से हुई। दिल्ली के मीरबख्शी मन्सूरअलीखां से वह मिलने गया था। राजनीति के एक मार्मिक विषय पर बातचीत करते हुए वह बिगड़ गया और गालियाँ देने लगा। इस पर बख्शी बहुत क्रोधित हो गया और बख्शी के अंगरक्षकों ने उसको मार डाला तथा शव के टुकड़े कर दिये। उसका पुत्र बापूजी इस तुमुल में घायल हो गया। महादेवभट्ट के पुत्रों—बापूजी दामोदर (दादा) पुरुषोत्तम (नाना) तथा देवराव (तात्या)—ने बाद के इतिहास में योग्यता तथा सूक्ष्म दृष्टि के निमित्त प्रसिद्धि प्राप्त की।

बुन्देलखण्ड का प्रबन्ध किसी प्रकार सुकर कार्य न था। जैतपुर का गढ़ यहाँ की प्रगति में बाधक बना रहा तथा इसके निमित्त घोर संघर्ष भी हुआ। सिन्धिया तथा होल्कर ने इस पर घेरा डाला तथा ५ मई १७४६ ई० को इसको हस्तगत कर लिया। उन्होंने यह सूचना भेजी बुन्देलों ने जैतपुर में बहुत गोला बारूद जमा कर लिया था। हमारे एक हजार आदमी मारे गये तथा लगभग चार हजार घायल हुए। दतिया के सरदार को अधीन करने में बहुत समय लग गया। अन्तरी पर २४ जनवरी १७४७ ई० को अधिकार प्राप्त हो गया। मराठा सरदारों की यह योजना थी कि बुन्देले कोई शक्तिशाली संघ न बना सकें। अतः प्रत्येक से अलग अलग युद्ध किया गया और उसे अधीनस्थ किया गया। इस घोर अभियान में रामचन्द्र बाबा की विलक्षण बुद्धि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। परन्तु रानोजी की मृत्यु के बाद रामचन्द्र बाबा तथा जयप्पा में वैमनस्य हो गया तथा कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत हुआ कि

इसके कारण मराठा हितो को बहुत हानि पहुँचेगी। जस ही पेशवा को इस दुखद स्थिति का पता चला उसन रामचन्द्र बाबा तथा जयप्पा दोनो को पूना बुलाया तथा उनमे मेल मिलाप करा दिया।

२ राजपूत युद्ध—दो प्रमुख व्यक्ति राजा शाहू तथा सवाई जयसिंह साथ ही साथ परस्पर सम्मान तथा मित्रता के भाव म युवावस्था को प्राप्त हुए थे। उनके द्वारा व प्रेममय सम्बन्ध उत्पन्न हुए जो राजपूत तथा मराठो मे बहुत दिनो तक वर्तमान रहे और जिन्होंने प्रथम दो पेशवाओ के शासनकाल म उत्तर की ओर मराठा सत्ता के प्रसरण म अत्यधिक सहायता प्रदान की। बाजीराव की मृत्यु के पश्चात शीघ्र ही राजपूतो तथा मराठो के सम्बन्ध विपरीत भाव धारण करने लगे। पाठक को उन राजपूत शासको को अपने ध्यान म रखना चाहिए जो शाहू के समकालीन थे और जिनका वर्णन पहले के एक अध्याय म हुआ है। कुछ समय तक राजपूतो तथा मराठो न एक साथ मिलकर काय किया तथा औरगजेब के धार्मिक अत्याचारो का विरोध किया। इसका वर्णन पहले हो चुका है कि १७१० ई० म राजपूत शासको न किस प्रकार पुष्कर झील पर दो वर्ष तक अपना सम्मेलन किया था, तथा हिन्दू रक्त की पितृगत शुद्धता को सुरक्षित रखने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सहमति को स्थापित कर लिया था—अर्थात कोई राजपूत अपनी कन्या किसी मुसलमान को विवाह म न दे और यदि किसी राजा के एक से अधिक पुरुष सन्तान हो, तो उत्तराधिकारी निश्चित करने म प्राथमिकता उस पुत्र को दी जाय जिसकी माता उदयपुर की कन्या हो। यह नियम सिद्धान्त रूप से उत्कृष्ट था परन्तु व्यवहार रूप म विपत्तिकारक सिद्ध हुआ। जयपुर राज्य के विषय म इसका अच्छा उदाहरण प्राप्त होता है।

जयपुर का प्रसिद्ध शासक सवाई जयसिंह बहुत समय तक राजस्थान का एक महान व्यक्ति रहा। उसन अपना नयी राजधानी का निर्माण किया। वह महान समाज-सुधारक तथा विद्वानो का आश्रयदाता था। २३ सितम्बर, १७४३ ई० को ५५ वर्ष की आयु म उसका देहान्त हो गया। उसन अपने पीछे दो पुत्र छोडे—ईश्वरीसिंह और माधवसिंह। ईश्वरीसिंह उम्र मे बडा था और माधवसिंह छोटा। माधवसिंह न, जिसकी माता उदयपुर की राजकन्या थी पुष्कर की सहमति क अनुसार राज्य पर अपना स्वत्व प्रस्तुत किया। उसका जन्म १७२७ ई० म हुआ था और उदयपुर के राणा सग्रामसिंह न रामपुर का परगना उसकी जागीर म दिया था तथा इसका प्रबन्ध सवाई जयसिंह को सौंप दिया था जिसमे जयपुर की गद्दी पर उसका भावी स्वत्व सिद्ध किया जा सके। माधवसिंह न अपनी अधिकाश शैशव तथा युवावस्था अपनी माता के साथ

उदयपुर के भानजे का थी। कुछ काल बाद ज्यों ही सवाई जयसिंह का देहान्त हुआ ईश्वरीसिंह ने गद्दी पर अधिकार कर लिया तथा अपने उत्तराधिकार के प्रति सम्राट से मान्यता प्राप्त कर ली। परन्तु उदयपुर के राणा जगतसिंह ने गम्भीर संघर्ष की सम्भावना होते हुए भी माधवसिंह के स्वत्व का समर्थन किया। इस प्रकार गृह युद्ध आरम्भ हो गया जो छः सात वर्षों तक चलता रहा।

१७४३ ई० में अपने पिता की मृत्यु के बाद ज्यों ही ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठा उदयपुर के जगतसिंह ने अपनी सेना एकत्र की तथा माधवसिंह को साथ लेकर जयपुर पर चढ़ आया। ईश्वरीसिंह उदयपुर की सेना से लड़ने के लिए बाहर आ गया। लगभग दो महीने तक दोनों सेनायें जहाजपुर के मैदान पर सम्मुख उपस्थित रहीं और वे शान्तिपूर्वक वार्तालाप करती रहीं। जिसके परिणामस्वरूप ईश्वरीसिंह कुछ और परगने माधवसिंह को देने के लिए सहमत हो गया। परन्तु माधवसिंह ने राज्य का आधा भाग माँगा। इस बीच में ईश्वरीसिंह ने सिंधिया तथा होल्कर की सहानुभूति प्राप्त कर ली तथा १७४५ ई० में माधवसिंह को पराजित कर दिया। तत्पश्चात माधवसिंह ने पेशवा का समर्थन प्राप्त करने हेतु अपने प्रतिनिधियों को पूना भेजा। इस बीच में रानोजी सिंधिया का देहान्त हो गया तथा उसके पुत्र जयप्पा और मल्हारराव होल्कर में नीति सम्बन्धी गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये। माधवसिंह के प्रतिनिधि मल्हारराव की सशस्त्र सहायता प्राप्त करने में सफल हुए, किन्तु जयप्पा ने ईश्वरीसिंह के पक्ष का ही समर्थन किया। सिंधिया तथा होल्कर दोनों को प्रतिद्वन्द्वी राजपूत दलों ने भारी घूस दी तथा वे दोनों व्यक्तिगत लोभ के वशीभूत हो गये। इस संकटकाल में जयपुर के योग्य मंत्री अयामल खत्री का देहान्त ६ फरवरी १७४७ ई० को हो गया। जनसाधारण उसको राजमल या मल्लजी कहते थे। यह ऐसी घटना थी जिसके कारण जयपुर के कार्यों में घोर सम्भ्रम उत्पन्न हो गया। ईश्वरीसिंह की सेना ने माधवसिंह तथा उसके मित्र उदयपुर के राणा के विरुद्ध प्रयाण किया। दो दिनों तक पहली तथा दूसरी मार्च १७४७ ई० को देवली के समीप बनास नदी के तट पर राजमहल नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ, जिसमें ईश्वरीसिंह ने निर्णायक विजय प्राप्त की तथा मराठों को बहुत सा लूट का माल मिला। राणा जगतसिंह ने नम्रता से शान्ति की याचना की। विपत्तिग्रस्त होने पर ईश्वरीसिंह ने अपने वकीलों को पूना भेजकर पेशवा से उसके पक्ष का समर्थन करने का आग्रह किया तथा बदले में बहुत-सा धन देने को सहमत हो गया। ७ मार्च १७४७ ई० को पेशवा पूना से रामचन्द्र बाबा को लिखता है— उदयपुर के राणा के वकील यहाँ आये हैं। उनका आग्रह है कि ईश्वरीसिंह तथा माधवसिंह दोनों ही समान रूप से सवाई

जयसिंह के पुत्र हैं, तथा उनके प्रति न्यायपूर्वक व्यवहार होना चाहिए। ईश्वरीसिंह को अपने वचन का पालन करना चाहिए तथा २४ लाख की आय के परगने माधवसिंह को दे देने चाहिए। आप अवश्य इस स्वत्व का समर्थन करें और राणा से (मेरे लिये) १५ लाख या अधिक धन प्राप्त करें जिसको देने के लिए उनके वकील सहमत हैं।"[५]

रामचन्द्र बाबा ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया— 'माधवसिंह के प्रस्ताव में कोई सार नहीं है। हमको किसी भाँति उससे धन नहीं प्राप्त हो सकता। यहाँ पर लोग अच्छी तरह जानते हैं कि हमने अब तक ईश्वरीसिंह का समर्थन किया है। इस समय अपना पक्ष बदल देना निन्दा का कारण होगा।' इससे स्पष्ट था कि सिंधिया तथा होल्कर में संघर्ष था जिससे पेशवा को भ्रम हो गया। ईश्वरीसिंह के क्रोध की तो कोई सीमा ही न थी। उसने अपना जोरदार विरोध-पत्र पेशवा को भेजा। होल्कर झुकना नहीं चाहता था। वह बराबर माधवसिंह का समर्थन करता रहा जिसका मन्त्री कनीराम १७४७ ई० के अन्त के समीप पूना को गया। स्थिति इतनी दुःखद हो गयी कि पेशवा ने तुरन्त उत्तर की ओर प्रस्थान करके स्वयं घटना स्थल पर झगड़े को सुलझाने का निश्चय किया। यह पेशवा का 'नेवाई का अभियान' कहा जाता है क्योंकि माधवसिंह यहाँ पर आकर उससे मिला था।

१७४७ ई० में उत्तर में गम्भीर घटनाएँ घटीं। ईरान में नादिरशाह का वध हो गया तथा उसके पद तथा सत्ता का अपहरण अहमदशाह अब्दाली ने कर लिया। अब भावी मराठा इतिहास का सम्पर्क इससे हुआ। नादिरशाह द्वारा विजित भारतीय प्रदेशों पर अहमदशाह ने अपना स्वत्व उपस्थित किया तथा सम्राट को धमकी दी कि यदि उसका स्वत्व शीघ्र स्वीकार न किया गया तो वह तुरन्त आक्रमण करेगा। इस घोर आवश्यकता में सम्राट ने सहायता के निमित्त शाहू को साग्रह प्रार्थनाएँ भेजीं। उसने पेशवा को आज्ञा दी कि वह अविलम्ब दिल्ली आये तथा सम्राट का उसके कष्टों से उद्धार करे। उसने १० दिसम्बर को प्रस्थान किया परन्तु उसके दिल्ली पहुँचने के पहले ही[६] ३ मार्च १७४८ ई० को मनुपुर नामक स्थान पर सम्राट की सेनाओं तथा अब्दाली में युद्ध हुआ, जिसमें अब्दाली परास्त हुआ। फिर भी पेशवा के दिल्ली पहुँचने पर सम्राट ने सप्रेम उसका स्वागत किया। इस विवरण से राजा शाहू अति प्रसन्न हुआ।[७]

---

५ ऐतिहासिक पत्रव्यवहार ६८।
६ पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द २७, पृ० २९ ३०।
७ वही, जिल्द २, पृ० ९।

इस समय ईश्वरीसिंह की कलह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी। सम्राट के बुलाने पर ईश्वरीसिंह मुगल सेना में सम्मिलित होने गया, परन्तु युद्ध प्रारम्भ होते ही रणक्षेत्र से भाग निकलने के कारण उसका अपमान किया गया। पेशवा के पास बहुत बड़ी सेना थी। वह दिल्ली से जयपुर को गया ताकि दोनों प्रार्थियों पर दबाव डालकर उनमें युक्तियुक्त सहमति स्थापित कर दे। ईश्वरीसिंह वीर परन्तु घमण्डी स्वभाव का था। वह क्रोधवश अलग ही रहा। परन्तु माधवसिंह पेशवा से मिलने आया तथा जयपुर के दक्षिण में ३६ मील पर नवाई नामक स्थान पर पेशवा ने सप्रेम उसका स्वागत किया। २१ मई १७४८ ई० से एक सप्ताह तक उनका वार्तालाप होता रहा। माधवसिंह तथा ईश्वरीसिंह के बीच में एक व्यावहारिक समझौता तैयार हो गया। पेशवा के दबाव पर ईश्वरीसिंह इस बात पर सहमत हो गया कि वह चार जिले अपने भाई को देगा तथा मल्हारराव होल्कर इसका प्रतिभू बना कि दोनों भाई शर्तों का पालन करेंगे। पेशवा को नजर के तीन लाख रुपये दिये गये और वह ६ जुलाई को पूना वापस पहुँच गया। इस बीच में चूंकि ईश्वरीसिंह अपने वचन का पालन करना नहीं चाहता था मल्हारराव होल्कर ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया, तथा १० जुलाई १७४८ ई० को शर्तों की पूर्ति करने पर उसको विवश कर दिया।[८]

सम्राट मुहम्मदशाह अपनी मृत्यु के निकट पहुँच रहा था। साम्राज्य की सत्ता तथा उसके गौरव की जो कुछ भी आभा दिल्ली में शेष रह गयी थी वह भी उसके साथ ही विदा होने वाली थी। पठानों की शक्ति का उदय हो रहा था जो मुगलों पर अन्तिम प्रहार करने को थे। वजीर सफदरजंग में इतनी शक्ति न थी कि वह परिस्थिति को सँभाल सके। दक्षिण में उसी प्रकार से राजा शाहू अपनी अन्तिम श्वासें ले रहा था जिससे उन सबको बहुत चिन्ता हो रही थी जो अब तक मराठा सत्ता को बनाये हुए थे।

जयप्पा का मल्हारराव से खुला मतभेद था और उन दोनों के कारण राजपूतों की मित्रता हाथ से जाती रही जिसका उनको पानीपत में भारी मूल्य चुकाना पड़ा। इस परिस्थिति का ताड़ लेना पेशवा को थी। उसने नेवाई से रामचन्द्र बाबा को कठोर चेतावनी भेजी। उसने स्पष्ट विरोध की निन्दा की जो सिंधिया तथा होल्कर में हो गया था और जिससे मराठों के शत्रु लाभ उठा रहे थे।[९] पेशवा ने उन दोनों को पुनः पूना बुलाया ताकि उनमें समझौता

---

८ राजवाड़े भाग ६, पृ० १९० १९१, ५९१।

९ यह एक लम्बा अप्रकाशित पत्र है जो स्वर्गीय पारसनीस से प्राप्त हुआ था और जो रियासत मध्य विभाग खण्ड २ के पृष्ठ ७० ७३ पर मुद्रित है।

करा द, परन्तु कागजी उपदेश या भावुक प्रार्थना से उनका घोर मतभेद दूर न हो सका। सरदारो म परस्पर हार्दिक सहयोग का अभाव ही पानीपत मे मराठा विपत्ति का मूल कारण है।

इस स्थल पर यह उपयुक्त होगा कि ईश्वरीसिंह प्रकरण को समाप्त कर दिया जाये यद्यपि शाहू की मृत्यु के बाद के काल से कुछ अश तक इसका सम्बन्ध है। १७४६ ई० का वर्ष उत्तर म शातिपूर्वक व्यतीत हो गया। सिन्धिया तथा होल्कर दक्षिण म थ, तथा वजीर सफदरजग नये सम्राट अहमद-शाह के साथ अपनी स्थिति को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था। मराठा वकीलो न प्रतिज्ञात धन के चुकारे क निमित्त ईश्वरीसिंह पर दबाव डाला, और चूकि यह चुकारा नही हो रहा था अत पेशवा न १७५० ई० की वर्षा-ऋतु म सिन्धिया तथा होल्कर को उत्तर की ओर भेज दिया। उनको आशा थी कि व ईश्वरीसिंह से बलपूर्वक कर प्राप्त कर लें। इस समय ईश्वरीसिंह क पुराने मित्रो ने उसका साथ छोड दिया था और वह पूर्णतया निराश हो गया था। क्रोधवश उसन अगस्त १७५० ई० मे अपने मन्त्री केशोदास को विष दे दिया, तथा अपन तोपखाने के अधिकारी शिवनाथ पर नृशस अत्याचार किये। इस प्रकार वह सबकी निन्दा का पात्र हो गया। राज्य म ऐसा कोई व्यक्ति न था जो परिस्थिति का नियन्त्रण कर सके। इसी बीच म मल्हारराव होल्कर अपन दल बल सहित नवम्बर म जयपुर के पास आ धमका तथा ईश्वरीसिंह पर चुकारे के निमित्त दबाव डाला। ईश्वरीसिंह केवल एक या दो लाख रुपये दे सकता था, यह जानकर मल्हारराव के क्रोध का वारापार न रहा। वह केशोदास की मृत्यु का बदला चाहता था। ईश्वरीसिंह के अधिकारी दण्ड के भय से मल्हारराव से मिलन का साहस न कर सके। ईश्वरीसिंह कुछ भी निश्चय न कर सका। यह सुनकर कि मल्हारराव वेग से प्रयाण कर रहा है ईश्वरीसिंह न एक काला साप तथा कुछ घोर विष लाने की आज्ञा दी। अर्द्ध रात्रि म उसने विष पान के साथ-साथ अपने आपको काले साँप से कटवा भी लिया और इस प्रकार सवेरा होन से पहले ही उसका देहान्त हो गया। उसकी तीनो स्त्रियाँ तथा एक पासवान ने उसी प्रकार विष खा लिया और मर गयी (दिसम्बर १४)। इन चार स्त्रियो तथा बीस अन्य बाँदियो ने अपने को उसी की चिता पर भस्म कर दिया। नगर व्याकुल हो उठा। माधवसिंह ने आकर स्थिति को सँभाला और होल्कर को शान्त किया। जयप्पा सिन्धिया ठीक उस समय आ उपस्थित हुआ जब माधवसिंह ने मित्र मराठो के विरुद्ध एक षडयन्त्र रचा। ऊपर से मित्रता दिखाकर उसन जयप्पा और मल्हारराव को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया तथा उनको विष मिश्रित भोजन परोस

लिया। जयप्पा समय पर इस दुरभिसन्धि का ज्ञान हो गया तथा तदन्तर लोग मृत्यु से बच गये। इस समय शिकार में ही उनको बचाया था। मराठों का नाश कर देने के लिए अब दूसरा एक और षड्यन्त्र रचा गया। जयप्पा के साथ ५ हजार मराठों को नगर देखने आने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। नगर प्रवेश के बाद पूर्व रचित योजना के अनुसार नगर के फाटक अकस्मात् बन्द कर दिये गये तथा मराठों का जन-संहार आरम्भ हुआ। यह १० जनवरी १७५१ ई० को १२ घण्टों तक मध्याह्न से मध्य रात्रि तक होता रहा। लगभग ३ हजार मराठों की हत्या की गयी और एक हजार घायल हो गये। इनमें जयप्पा के २५ प्रमुख सेनाधिकारी १०० ब्राह्मण तथा कुछ स्त्रियाँ और बच्चे थे। कुछ ने परकोटे को लाँघकर भाग निकलने का प्रयास किया, परन्तु इस प्रयास में उनको भारी चोटें आयीं। राजपूतों को लूट में एक हजार अच्छे घोड़े सोने के गहने मोती और अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं। दो दिन बाद नगर से कुछ मील दूर मराठों ने अपना एक शिविर बना लिया और संगठित हो गये। तब माधवसिंह ने संधि प्रस्ताव प्रारम्भ किये, परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुआ।[१९]

इन भयानक घटनाओं के बाद राजपूतों तथा मराठों में तीव्र विरोध उत्पन्न हो गया। परन्तु इसके बाद एक और घटना घटित हुई जिसके कारण जयप्पा तथा मल्हारराव जयपुर नगर से कठोर बदला न ले सके। इस समय गंगा के दोआब के पठानों ने सफदरजंग के लिए भय उत्पन्न कर दिया था, जिसका वर्णन बाद में किया जायगा। सफदरजंग ने मराठा सहायता के लिए साग्रह प्रार्थनाएँ तथा मर्मस्पर्शी योजनाएँ भेजीं जिनका अनुकूल प्रत्युत्तर जयप्पा और मल्हारराव ने दिया। इस समय वे दोनों प्रेम भाव से कार्य कर रहे थे। वे जयपुर से सीधे दोआब को गये तथा इस प्रकार जयपुर का कार्य पृष्ठभूमि में पड़ गया। जयपुर का प्रकरण समाप्त हो गया परन्तु घोर विद्वेष बना रहा। उस मित्रता का स्थान जो दक्षिणी आक्रान्ताओं तथा राजपूत राजाओं में विद्यमान थी शत्रुता तथा कटुता ने ग्रहण कर लिया।

नेवाई से वापस होते हुए पेशवा धार में ठहरा और उसने यह स्थान माण्डवगढ़ तथा समीपवर्ती सोनगढ़ के साथ पुनः यशवन्त पवार को विधिवत वापस दे दिया। इसके पश्चात यशवन्तराव ने पेशवा के प्रति पूर्ण निष्ठा रखी तथा पानीपत में अपने प्राणों की बलि दे दी। इस प्रकार अपने पूज्य राजा शाहू के जीवनकाल में ही उत्तर में मराठा सत्ता एक प्रकार से सुदृढ़ हो गयी।

---

[१९] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २ पृ० ३१ तथा पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द २७, पृ० ६४ ६५।

४ सामाजिक सम्पर्क—महाराष्ट्र तथा भारतीय महाद्वीप के अन्य भागों मे सांस्कृतिक विनिमय अवश्य ही विशाल पमाने पर हुआ होगा, तथा यह विशेष अनुसंधान का रोचक और उपयोगी क्षेत्र है। इस प्रकार के विनिमय का आरम्भ शिवाजी के समय मे हुआ था तथा अविराम गति से यह अर्द्ध शताब्दी तक—विशेषकर औरंगजेब के दक्षिण पर आक्रमण के समय मे तथा प्रथम पेशवा के अभियान मे जो दिल्ली पर १७१८ ई० मे हुआ—बिना विघ्न-बाधा के होता रहा। इसके बाद पेशवा बाजीराव बीसवर्षीय उत्तेजनापूर्ण शासनकाल मे इसको बहुत अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। बाजीराव ने सवाई जयसिंह के दरबार के साथ विशेष सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये। जयसिंह ने एक अश्वमेध यज्ञ किया जिसके लिए उसने भारत के समस्त भागों से विद्वान पण्डितों को बुलाया। स्वयं जयसिंह का गुरु रत्नाकर भट्ट महाशब्दे पठन निवासी महाराष्ट्र पण्डित था। रत्नाकर का भाई प्रभाकर भट्ट तथा प्रभाकर का पुत्र व्रजनाथ जयसिंह के पारिवारिक पुरोहित थे। इन सब के प्रयासों के फलस्वरूप मार्च १७३६ ई० मे जयपुर मे बाजीराव का प्रसिद्ध आगमन हुआ। जयसिंह का मन्त्री दीनानाथ सतारा को गया। जयसिंह द्वारा सतारा को प्रेषित दीपसिंह का दूत मण्डल इसमे भारी संयोजक तत्त्व सिद्ध हुआ जिसका वर्णन पहले हो चुका है। यही प्रभाव पेशवा की माता की स्मरणीय तीर्थयात्रा का हुआ। हरिकवि नामक एक कन्नड पण्डित बहुत दिनों तक जयसिंह का महान्यायाधीश रहा। इस प्रकार का सामान्य जीवन तथा विचार विनिमय मुगल-मराठा संघर्ष के साथ-साथ उन्नति करता रहा, जिसका सफल संचालन बाजीराव ने परिश्रमपूर्वक किया था। यह ऐसा विषय है जिसका सावधानीपूर्वक तथा स्वतन्त्र निरूपण होना चाहिए कि किस प्रकार भारत के कई नगर—सतारा पूना, भागानगर बुरहानपुर जयपुर वाराणसी, दिल्ली, तंजौर तथा अन्य स्थान—सामाजिक जीवन तथा व्यापार के विनिमय द्वारा परस्पर सम्बद्ध हो गये।

इस सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क को नाना साहब के शासनकाल मे नवीन बल प्राप्त हुआ क्योंकि इस समय अनेक मराठा परिवार स्थायी रूप से मालवा तथा बुन्देलखण्ड में बस गये थे। सहस्रों व्यक्तियों को सैनिक, कूटनीतिक तथा धार्मिक उद्देश्यों के कारण अपने घरों को त्यागना पड़ा तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना पड़ा जैसा कि कर्तव्य तथा उपयोगिता के लिए आवश्यक हुआ। इन बारम्बार की तथा शीघ्र होने वाली प्रगतियों ने अवश्य ही सामाजिक जीवन पर अपना भारी प्रभाव डाला होगा। महाराष्ट्र की दरिद्रता इसके कारण बहुत कम हो गयी। लोक जीवन विस्तीर्ण तथा समृद्ध

हो गया। बाह्य जगत से स्पर्श के द्वारा इनकी भाषा, वेष, भोजन तथा आचरण में अनजाने ही परिवर्तन हो गये। उत्तरी शैली के अनुसार महाराष्ट्र में निवास तथा धार्मिक कार्यों के लिए विशाल भवनों तथा राजमहलों का निर्माण हुआ जिनमें सुरुचि वाटिकाएँ लगायी गयीं। नये फल और फूल बाहर से लाये गये तथा लगाये गये। दक्षिणी ब्राह्मणों ने सैनिक शिक्षण को अपना लिया तथा इच्छापूर्वक युद्ध तथा कूटनीति के नवीन जीवन को ग्रहण कर लिया और अपने पूर्वजों के समय के अनुपयुक्त धार्मिक धंधों को त्याग दिया। स्वयं तृतीय पेशवा को दक्षिण के सरल तथा कर्कश जीवन की तुलना में उत्तर के जीवन के विचित्र ढंगों और विभिन्न आनन्दों से मोह हो गया। इस पेशवा ने अपने मित्र नाना पुरन्दरे को बुन्देलखण्ड से २२ दिसम्बर, १७४२ ई० को उच्च संस्कृत शैली में एक पत्र लिखा जो महाराष्ट्र में शीघ्र प्रवेश कर रहे इस सामाजिक परिवर्तन तथा विचारों के पलटने को प्रतिबिम्बित करता है। वह पत्र यहाँ पर सार रूप में दिया जा रहा है

यहाँ आप प्राचीन आर्य संस्कृति को प्रत्यक्ष देखेंगे। हिन्दू राजाओं को संस्कृत का अच्छा ज्ञान है। मदिरापान तथा विषय भोग के आनन्दों के प्रति उनको आसक्ति न होकर घृणा है। संगीत तथा नृत्य उनको प्रिय हैं। केवल वे ही वास्तविक भोग का आनन्द लेते हैं। उनको अपने धर्म के प्रति भक्ति है और वे ब्राह्मणों का मान करते हैं। जीवन यहाँ पर समृद्ध तथा पूर्ण है। यहाँ पर बड़े-बड़े उद्यान हैं जिनमें नाना प्रकार के फूल तथा कमल खिलते हैं। इन प्रदेशों की नदियों में स्वस्थ मधुर जल है जो भूमि तथा जनता को समृद्ध करता है। इनकी अपेक्षा हमारी दक्षिण की नदियाँ केवल छोटी पतली जल धाराएँ हैं। यहाँ के लोग धनी हैं और उनका रंग गोरा है। उनकी आय उनके व्यय की अपेक्षा अधिक है। मेरी इच्छा होती है कि आप यहाँ पर मेरे साथ होते और इस सुमधुर जीवन का भोग तथा अनुभव करते। मुझे आशा है कि आप शीघ्र अवसर पाकर इन प्रदेशों का दर्शन आयेंगे तथा जीवन के उन आनन्दों का भोग करेंगे जिनसे हम अपने देश में अपरिचित रहे हैं। राजनीति के विषय में मेरे पूज्य पिता तथा पितामह ने २४ वर्षों से उत्तर से दक्षिण को जो सोने की नदी बहा रखी है इस समय भी बह रहा है और हमारी सेनाओं के नेताओं तथा हमारे थानों के रक्षकों की सेवा कर रहा है परन्तु इससे हमारी पिपासा बढ़ती ही जा रही है। रघुजी तथा फतहसिंह भोसले एक ऐसी ही स्वर्ण नदी दक्षिण में बहाकर हमारे मराठा देश में लाये थे, परन्तु वह अपनी लम्बी यात्रा में प्रायः लुप्त हो गयी। सौभाग्यवश इस वर्ष हमारी सेनाओं ने इस स्वर्ण नदी को पुनः प्रवाहित किया है परन्तु जब यह पूना के

शुष्क प्रदेश म प्रवेश करगी मुझे भय है कि यह भी घर पहुँचने के पहले लुप्त हो जायगी। जब इन दोनो नदिया का सगम अबाध रूप म पूना म होगा, जिन नदिया म से एक उत्तर से आ रही हो तथा दूसरी दक्षिण से जैसे कि शक्तिशाली सागर क्षुद्र कूप से मिलने आया हो, तभी हम अपन पीडक ऋणा मे मुक्त होग तथा इस जगत म और आगामी जगत म मुक्ति को प्राप्त होग। भागीरथी नदी न सागर से मिलन करन के लिए अपना जन्म ग्रहण किया, परन्तु वह उस उपत्यका को उवरा बना देती है जिसमे होकर बहती है तथा अपन माग मे लोगो की स्थिति को उन्नत कर देती है। इसी प्रकार अधिकाश नदियाँ सागर की ओर प्रवाह करती हैं, परन्तु कावेरी की भाँति वे उस प्रदेश को लाभ पहुँचाती हैं जिनमे से होकर वे निकलती हैं। इस धन रूपी नदी को भी अवश्यमेव जनता के हित की अत्यधिक सेवा करनी चाहिए। आप जसे व्यक्ति इस दिशा मे अपने मन को प्रवृत्त कर दें तथा यथासम्भव प्रयत्न करें कि हमारे मराठा देश के दुःख दूर हो जायें।[11]

उस प्रकाशित सामग्री का अध्ययन करन पर जिसका सम्बन्ध इस पेशवा की प्रवृत्तिया से है, इस सामाजिक क्रान्ति के कुछ अन्य लक्षण स्पष्ट हो जात है। सैनिक वत्ति से जीवन म नतिक तत्त्व का विकास शायद मुश्किल से ही होता है। यह आवश्यक है कि इसकी सफलताओ के साथ साथ अनेक वे दुगुण तथा दोष भी प्रवेश कर जायें जो उस समय विशेष रूप स उत्तर मे प्रचलित थ। ११ जून, १७८४ ई० को दामोदरपन्त हिंगने को पेशवा लिखता है—'जब आप उत्तर को जा रहे थे मैंने आपसे कहा था कि लगभग दसवर्षीय आयु की दो सुन्दर हिन्दू कन्याओ को मेरे पास भेज दें। कृपया इस काय को न भूलें तथा यथासम्भव शीघ्र ही इन कन्याओ को मेरे पास भेज दें। केवल हिन्दू लडकिया के मागने से सम्भवत पेशवा का यह अभिप्राय था कि वह कष्ट न उपस्थित होने पाये जो पूना म मुसलमान मस्तानी की उपस्थिति से उसके परिवार मे उपस्थित हो गया था। इसी प्रकार की अनेक प्राथनाएँ दक्षिण से उत्तर को भेजी गयी कि कन्याए मोल ले ली जायें, सगीत तथा नृत्य म उनको शिक्षा दी जाये और वे पूना तथा अन्य स्थानो को भेज दी जायें। उपभोग तथा भोग विलास के लिए नाना प्रकार की वस्तुओ की माँग सदव दक्षिण से हुआ करती थी—उदाहरणाथ, पेशावर का इत्र, घोडो के लिए लाहौर की जीनें इत्यादि। अनेक व्यक्ति उन पदार्थों के निमित्त विशेष प्राथनाएँ भेजते थ जो दक्षिण म अप्राप्य थी।

---

[11] राजवाडे, खण्ड ६, पृ० १६०।

मराठा सत्ता के प्रसरण के इस समय मे दक्षिण से उत्तर की तीर्थयात्रा भी हुआ करती थी। यात्रियो को मार्ग मे सुरक्षा की भी आवश्यकता होती थी तथा वे सेनाओं की सतत प्रगति से लाभ उठाते थे, जो मातृभूमि से सैनिक कामवश आया जाया करती थीं। इस प्रकार यह रिवाज हो गया कि स्त्रियाँ भी सैनिक अभियान के साथ जायें यद्यपि उनकी उपस्थिति से कार्यवाही मे विघ्न बाधा उपस्थित होती, जैसा कि पानीपत मे हुआ। पेशवा की माता काशीबाई ने चार वर्षों तक उत्तर मे अपनी प्रसिद्ध तीर्थयात्रा की थी। मथुरा, प्रयाग अयोध्या, वाराणसी तथा अन्य हिन्दू तीर्थस्थानो पर मुसलमान साधारणत गौरव के लिए अधिकार रखते थे यद्यपि उनको भक्तो पर लगे हुए करो से आय भी होती थी। बापूजी नायक के साथ काशीबाई कर्नाटक को गयी तथा दक्षिण के मन्दिरो के दर्शन किये। इसके बाद मई १७४२ ई० मे वह पूना को वापस आयी। इसके तुरन्त बाद ही वह वाराणसी को गयी, जब पेशवा का शिविर बुन्देलखण्ड मे था। वाराणसी मे वह लगभग ४ वर्ष तक रही जिससे मराठा प्रतिनिधियो को प्राय कष्ट हुआ। उसका भाई कृष्णराव जोशी चास्कर जो इसके कार्यों का प्रबन्ध करता था क्रोधी तथा विचित्र प्रकृति का पुरुष था। वह अपने को पेशवा का कृपापात्र बताता तथा उसने इस प्रकार कष्ट तथा उपद्रव उपस्थित कर दिया जो कुछ समय तक विभिन्न तीर्थस्थानो के मुसलमान शासको के लिए असह्य हो गया। अवध के शासक के रूप मे सफदरजंग को, जो इन स्थानो का नियन्त्रण करता था, यह सूचना प्राप्त हुई कि काशीबाई ने अपने पुत्र पेशवा से झगड़ा हो जाने के बाद चिढ़कर अपना घर छोड़ दिया है। तीर्थयात्रा समाप्त करने के बाद भी उसकी इच्छा घर वापस आने की न थी, तथा उसको इस बात पर राजी करने मे बहुत कठिनाई हुई कि वह पूना वापस चला जाय जैसा कि उसने मई १७४७ ई० मे किया।[१२]

बाजीराव के शासनकाल से ब्राह्मण अपने वंश के नाम के आगे पन्त (पण्डित) शब्द जोड़ देते थे परन्तु अब उसका स्थान राव शब्द ने ले लिया। इसका अर्थ था कि पौरोहित्य कार्य छोड़कर उन्होंने सैनिक-जीवन अंगीकृत कर लिया है। महाराष्ट्र के अधिकांश नवयुवको ने अब इस जीवन को स्वीकृत कर लिया था। उनके निर्माण-काल मे किस प्रकार की शिक्षा इन उदीयमान नेताओं को प्राप्त हुई यह प्रश्न है जिसका यथार्थ उत्तर जिज्ञासुजन प्राप्त करना चाहेंगे। अंग्रेजी शासन के समान उस समय विद्यालय न थे। कुछ

[१२] पेशवा दफ्तर सलेक्शन जिल्द २ पृ० १?२ जिल्द १८ पृ० १३४ १६० १५२ १५८ जिल्द २० पृ० ४८ जिल्द २७ पृ० २७ जिल्द ४० पृ० ३७ ४२ ४४ ४७ ४९ ५०। राजवाड़े खण्ड ६ पृ० १९३ १९६ १७१।

स्थाना पर पाठशालाएँ या निजी कक्षाएँ थी जहाँ पर वेद तथा संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। परंतु इन पाठशालाओं मे केवल उच्च-वर्ग के थोडे-से नवयुवक अध्ययन के लिए आते थे। उस समय शिक्षा को सार्वजनिक कर्तव्य न माना जाता था। यह सर्वथा व्यक्तिगत उपक्रम पर निर्भर थी। प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यकता के अनुसार अपना प्रबंध करता था। बालबोध तथा मोडी अक्षरा का लिखना और पढना, अंकगणित एवं लेखा तथा संस्कृत भाषा का कामचलाऊ ज्ञान, ये विषय साधारणजन तथा बालको और कभी-कभी बालिकाओ को भी पढाये जाते थे। महान् शिवाजी को भी कुछ अधिक साहित्यिक शिक्षा प्राप्त न हुई थी, परंतु उसने अपने पुत्र शम्भाजी को ऐसी शिक्षा दिलायी कि उसको संस्कृत पर पूर्ण अधिकार हो गया।

अधिकांश उच्चपदस्थ परिवारो के पास एक कर्मकाण्डी पुरोहित, एक पौराणिक तथा लेखा-कार्यालय के कुछ कर्मचारी होते थे। यही परिवार के बच्चो के अध्यापक होते थे। पुरोहित वेद का उच्चारण सिखाता था। पौराणिक परिवार की महिलाओ तथा बालको को रामायण, महाभारत तथा पुराण ग्रंथ सुनाता और उनकी व्याख्या करता था तथा इनके अतिरिक्त वह संस्कृत का व्याकरण भी सिखाता था। परिवार की विधवाएँ अपना समय प्राय संस्कृत दर्शनशास्त्र के अध्ययन मे व्यतीत करती थी। सगुणाबाई पेशवा एक धार्मिक विधवा थी। उसके पास दुष्प्राप्य संस्कृत ग्रंथो की नाना प्रकार के विषय पर हस्तलिखित प्रतियां थी। मुख्य कर्णिक (लेखक) सम्भवतया लोकभाषा मे लिखना तथा पढना और हिसाब रखना सिखाता था। पेशवाओ के पास अपने राजभवन म एक बडा लेखा कार्यालय होता था जिसको फड कहते थे।[13] यहाँ पर बहुत बडी संख्या मे शिष्य रख लिये जाते थे। यह फड मुख्य प्रशिक्षण संस्था बन गया जहाँ पर लेखा-कार्यालय कूटनीति तथा कर्णिक विभागो के भावी अधिकारी तैयार किये जाते थे। ये ही सदस्य अपने बाद के जीवन मे अपनी क्षमतानुसार विशिष्टता प्राप्त करते थे। यह फड या सचिवालय इस प्रकार अपूर्व महत्त्व की संस्था थी जो मराठा प्रशासन के विभिन्न विभागों के लिए कार्यकर्ता तैयार करती। इस फड शिक्षा के साथ-साथ गृह शिक्षा भी आवश्यक थी जो उनको अपने परिवारो के प्रौढ व्यक्तियो के निरीक्षण मे प्राप्त हो जाती थी। उस समय समस्त प्रशिक्षण का सर्वोपरि व्यावहारिक आधार था जीवन—

---

[13] इससे 'फडनिस' शब्द की उत्पत्ति है—वह व्यक्ति जो फड का उपयोग करता है। नाना फडनिस को अपना आरम्भिक शिक्षण इसी कार्यालय म प्राप्त हुआ था। उसके वंश का नाम भानु था। फड फारसी शब्द 'फर्द' का स्थानीय अपभ्रंश है जिसका अर्थ है सूची या कागज का टुकडा।

घर में और घर के बाहर। ओंकारेश्वर तथा त्र्यम्बक विश्वविद्यालयों के अनुरूप मराठों के पास कोई संस्थाएँ न थीं जिन पर वे गर्व कर सकते हों।

कुछ पत्र प्राप्य हैं—यथा वह शिक्षा उपदेश जो नागपुरकर माधवराव को उनकी माता [illegible]बाई ने दिया था या वह नीति-संग्रह जिसको माधवराव पेशवा तथा नागपुर की लक्ष्मीबाई ने सम्पादित किया।[१४] इन पत्रों से शिक्षा का परम्परागत रूप प्रकट होता है जिसे प्राप्त करना भी एक साधारण मराठा से आशा की जाती थी। इस सम्बन्ध में एक विशेष पत्र का यहाँ उद्धृत कर देना चाहिए जो मई १७४८ ई० में उदयपुर से नानासाहब ने अपने छोटे भाई रघुनाथराव को लिखा था। इसको लिखे जाने के दो मुख्य कारण थे—एक जिससे स्पष्ट हो जाय कि उस समय में किस प्रकार की शिक्षा सम्बन्धी सुधारों आदेशित होती थी दूसरे उन दुष्प्रवृत्तियों का पता चल जाय जिनका शिकार राघोबा अपने जीवन के आरम्भ से हो रहा था।

मुझे आशा है ये विभिन्न आदेश तुम्हें अच्छी तरह याद होंगे जो मैंने गत बार तुम्हें विदाई के समय दिये थे। यह कभी न भूलो कि विदुर नीति की आवृत्ति नित्य होनी चाहिए तथा चाणक्य-संग्रह और दूसरे उन भागों की भी जिनको तुमने पढ़ा है। शास्त्रियों से प्रत्येक दिन तुम्हें और अधिक शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। अवकाश मिलने पर विराट पर्व से आरम्भ कर समस्त महाभारत पढ़ो किन्तु लगातार पाठ में समय नष्ट न करो। तोलों तथा मापों की गणना को कण्ठस्थ रखने का अभ्यास डालो। प्रिय भाऊ की पूर्ण आज्ञापालन में कभी भूल नहीं करनी चाहिए तथा प्रत्येक विषय में उसकी सद्भावना प्राप्त करनी चाहिए। जो कुछ भी वह तुम्हें आज्ञा दे तुरन्त ही तुम उसका पालन करो। तुम खाना उसी के साथ खाओ और तुम्हारी अश्वशाला भी उससे अलग नहीं होनी चाहिए। कभी-कभी तुम अपना कुछ समय बाई ताई तथा अनुबाई की संगति में अवश्य व्यतीत करो। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है अतः तुम कभी भी औषधि-सेवन करना मत भूलो। जब तुम्हारी इच्छा हो कि घोड़े पर सवार होकर घूमने जायें तब तुम भाऊ के साथ जाओ। यदि तुम्हें सतारा जाने की आज्ञा प्राप्त हो तो तुम अवश्यमेव भाऊ की अनुमति प्राप्त कर लो तथा उनकी स्वीकृति से अपने साथ चिमनगिरि या गंगाधर भट्ट को ले जाओ। जब तुम सतारा पहुँचो तब तुम अपनी ओर से रानियों के यहाँ मिलने मत जाना जब तक कि वे स्वयं तुम्हें न बुलायें या गोविन्दराव चिटनिस

---

[१४] पत्रे यादी, १८३ ३९३ ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, ४३२ राजवाडे, खण्ड १, पृ० ९६।

तुम्ह जाने का परामश न दें। तुम्ह अपन पद तथा आयु के अनुकूल उचित वस्त्र पहनन चाहिए। पूजा, ध्यान तथा प्राथना के विषय म जो कुछ आवश्यक हो, शान्तिपूवक तथा एकान्त म करना चाहिए। जब इसम लग हो तब पूण रूप से एकाग्रचित्त हो तथा किसी अन्य काय की बातचीत न करो। जो कुछ भी थोडी सी प्राथना आदि करो उसको नियमपूवक तथा आडम्बररहित होकर करो। शिक्षा ग्रहण की इच्छा सदव तीव्र रहनी चाहिए आज्ञापालन क निमित्त तथा ज्यष्ठ पुरुषो की शुभ सम्मति प्राप्त करन के निमित्त सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। सदैव सावधान रहो तथा बडो से उनकी इच्छानुसार ज्ञान प्राप्त करके अपन मस्तिष्क को विकसित करो। सदैव विनम्र शिष्यत्व का भाव प्रकट करो। तुम्हारा छोटा भाइ जनादन तुमस अधिक परिश्रम करता है और अधिक पढता है तथा इस प्रकार वह तुमसे आग निकल जायेगा। और फिर तुम्ह जीवन मे सम्मान किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ?

उस समय प्रचलित शिक्षा प्रणाली के विषय म हमको एक अन्य पत्र से कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त होता है। इस पत्र को १७ अप्रल १७६० ई० को सदाशिवराव भाऊ ने बजाबा पुरन्दरे को लिखा था। "आप प्राय मुझको पत्र लिखते रह तथा अपन समाचार भेजते रहे। अब हम नमदा पर पहुँच गय ह तथा आग बढ रह है। आप पढना लिखना तथा घोडे पर सवारी करना अवश्य सीखें और आवश्यकतानुसार पूना भी जाया कर। अपना समय खेलने मे नष्ट न कर। दादी आपको बहुत लाड प्यार करगी तथा पढने लिखने से आपको दूर रखकर बिगाड देगी। अत आप पढने लिखने तथा घोड की सवारी पर अवश्य ध्यान द।"[१५]

५ आग्रे-बन्धु—मानाजी तथा तुलाजी—कोलाबा म आंग्रे-बन्धुओ का कलह पशवा क लिए तथा सामान्यत शाहू क दरबार के लिए कष्ट का स्थायी कारण सिद्ध हुई। सम्भाजी आग्रे सरखेल का देहान्त १२ जनवरी, १७४२ ई० को हुआ और पुन उसके पद के उत्तराधिकार क विषय म विवाद उत्पन्न हो गया। सरखेल की उपाधि के साथ वह विजयदुग म नियुक्त था और उसका भाई मानाजी कोलाबा म वजारत माब के पद पर स्थित था। इस प्रकार आग्रे सम्पत्ति का विभाजन दो भागो म हो गया था। जस ही सम्भाजी की

---

[१५] पशवा दफ्तर सग्रह जिल्द २१, पृ० २ जिल्द १८ पृ० १३४ १४०, १५२, १५८ जिल्द २०, पृ० २८ जिल्द २७, पृ० २७ जिल्द ४०, पृ० ३७ ४२ ४४ ५०। राजवाडे खण्ड ६, पृ० १६३, १६६।

मृत्यु हुई मानाजी सतारा को गया तथा शाहू से प्रार्थना की कि सरखेल के पद पर केवल उसकी नियुक्ति न्यायसंगत है क्योंकि वही कान्होजी के परिवार का सबसे बड़ा जीवित सदस्य था। शाहू की मन में यह उत्कट इच्छा रही थी कि अजनवेल तथा गोवलकोट के दो महत्वपूर्ण स्थानों को सिद्दी से अधिकार से पुन प्राप्त कर ले। १७३३ ई० के युद्ध में पेशवा बाजीराव भी इनको हस्तगत करने में सफल नहीं हुआ था और वे इस समय भी जजीरा राज्य के बाहरी थाने थे। शाहू को मानाजी तथा उसके भाई तुलाजी में से एक को सरखेल नियुक्त करना था अत उसने स्पष्ट कह दिया कि सरखेल का पद वह उसको देगा जो उन दोनों स्थानों को हस्तगत कर सकेगा। तुलाजी ने तुरन्त इस उद्योग का स्वीकार कर लिया, प्रतिनिधि के मुतालिक यमाजी शिवदेव ने उसकी जिम्मेदारी ली और शाहू ने सरखेल का गौरवान्वित पद १७४३ ई० में किसी समय पर तुलाजी को दे दिया तथा धन और सेना द्वारा उसको सहायता दी। परिणामत तुलाजी ने अत्यन्त वीरतापूर्वक २५ जनवरी १७४५ ई० को अजनवेल तथा गोवलकोट पर अधिकार प्राप्त कर लिया, तथा यह शुभ सन्देश तुरन्त छत्रपति को भेज दिया।[१६]

तत्पश्चात तुलाजी सतारा को गया तथा ३ मई १७४७ ई० को महाराजा के दर्शन किये। उसका बहुत आदर सम्मान किया गया। बाह्य रूप से यह भेंट प्रेमपूर्वक समाप्त हो गयी परन्तु पेशवा के विरुद्ध तुलाजी की शिकायतें उसके मन से दूर न हुई क्योंकि राजा अपनी वृद्धावस्था की अन्तिम अवस्था में था और राज्यकार्य के संचालन के लिए वह शक्तिहीन या असमर्थ हो गया था। तुलाजी गर्वशील व्यक्ति था तथा पेशवा के सामने लेश-मात्र भी झुकना नहीं चाहता था। पनवेल के समीप माणिकगढ के विषय में विवाद ने विकराल रूप धारण कर लिया। यह गढ़ मानाजी आंग्रे का था तथा पेशवा की प्रेरणा पर २८ मई १७४८ ई० को रामजी महादेव ने इस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। मानाजी तुरन्त सतारा को आया तथा रानी सगुणाबाई के प्रभाव द्वारा उसने अपना काम सिद्ध कर लिया। तूफान इतना विशाल तथा विनाशक हो गया कि पेशवा को झुकना पडा तथा तीन महीनों के वाद विवाद के बाद वह गढ मानाजी को वापस देना पडा। इस बीच में तुलाजी ने पेशवा के प्रदेश में खुली लूटमार आरम्भ कर दी। १७४७ ई० के

---

[१६] वैद्य सिलेक्शन (संग्रह) का अप्रकाशित पत्र। इस सफलता पर शाहू बहुत प्रसन्न हुआ और उन जगहों के नाम उसने गोपालगढ (अजनवेल) तथा गोविन्दगढ (गोवलकोट) रख दिये परन्तु ये नवीन नाम प्रचलित न हो सके। इस समय तक उन स्थानों के प्राचीन नाम ही प्रचलित हैं।

अत मे उसने मुदागढ पर अधिकार कर लिया। यह गढ विशालगढ से कुछ हटकर दक्षिण मे कजिर्दा दर्रे के प्रवेश स्थान पर सह्याद्रि पवतमाला की चोटी पर स्थित था। चूकि इस क्षेत्र म प्रतिनिधि, बावडा के अमात्य, वाडी के सामन्त तथा पेशवा के अपने-अपन अधिकार क्षेत्र थे, और उस सबको तुलाजी के आक्रमण से यूनाधिक हानि हुई थी अत उन सब न अपने साधना को सयुक्त कर लिया तथा तुलाजी के विरुद्ध जनवरी से माच १७४८ ई० तक घोर युद्ध किया। पेशवा द्वारा नियुक्त मुदागढ के रक्षक नारो रायजी ठाकुर गोडे ने वीरतापूवक आक्रमण का नेतृत्व किया तथा १ अप्रल को उस गढ पर अधिकार कर लिया।

यह दुख का विषय है कि दोना आग्रे-बधु—तुलाजी तथा मानाजी—एक होकर काय न कर सके अयथा वे अजेय सिद्ध होते क्योकि वे दोनो जल तथा थल के वीर तथा योग्य नायक थे। वे एक दूसरे के घोर शत्रु हो गये थे। अत मानाजी ने चाल के पुतगालिया के यहाँ शरण ली। उस समय चौल का राजकोट कहते थे। कही ऐसा न हो कि मानाजी कष्ट पहुँचाये, पेशवा ने तुरत रायजी महादेव को आज्ञा दी कि वह राजकोट के विरुद्ध प्रयाण करे। उसन अपना काय भलीभाति किया तथा १५ जनवरी, १७४८ ई० को राजकोट पर अधिकार कर लिया। पेशवा की आज्ञा से राजकोट और उसकी मस्जिद दोनो भूमिसात् कर दिये गये तथा पुतगालिया के अधिकार से निकलकर चौल पेशवा के अधिकार मे आ गया। मानाजी को अब कोई वाह्य समथन प्राप्त न हो सका तथा उसे पेशवा की सदभावना के वशीभूत होना पड़ा।

६ **पिलाजी जाधव**—इतिहास ने उन श्रेष्ठ सेवाओ के प्रति न्याय नही किया है जो प्रथम तीन पेशवाओ के शासनकाल म युद्ध तथा कूटनीति दोना मे मराठा राज्य के हित म पिलाजी जाधव ने की हैं। वाघोली के इस सरदार के निष्ठापूण समथन तथा भक्तिपूण सहयोग के कारण ही बहुत अश तक मराठा राज्य के प्रसरण मे प्रथम सफलताएँ प्राप्त हुइ। शाहू की गम्भीर नीति निस्सन्देह पिलाजी के विचारो से उत्तेजित हुई थी। इन विचारो मे तथा दाभाडे चद्रसेन जाधव तथा अन्य व्यक्तियो के विचारो मे भारी भेद है। ये व्यक्ति भी शाहू के दरबार मे उससे कम प्रसिद्ध न थे। अपनी अनुरजक प्रकृति तथा मानुषी स्वभाव के अपने गम्भीर ज्ञान द्वारा पिलाजी ने चतुरता तथा सफलतापूवक उन अनक कठिन परिस्थितियो पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया था जो बाजीराव तथा मुगल सरदारा मे विरोध के कारण उत्पन्न हो गयी थी। ३० वर्षों स भी अधिक समय तक उसने विश्वस्त मराठा राजदूत

के रूप में काम किया। कभी निज़ामुल्मुल्क के साथ, कभी अलीवर्दीखाँ के साथ, कभी मुगल दरबार के अन्य सामन्तों के साथ उसको शान्ति के प्रश्न पर विचार विनिमय करना पड़ता था। होल्कर तथा सिंधिया सदृश कुछ अन्य वयस्क पुरुषों के शीघ्र उदय से यह कार्य हल्का होने लगा जो यह अनुभवी वयोवृद्ध कार्यकर्ता शाहू के आरम्भिक जीवन चरित्र में संकट के समयों में करता था। अपने जीवन के अन्त के समीप पिराजी रुग्ण रहता था तथा १७४२ ई० में किसी समय पर उसका देहान्त हो गया।

तिथिक्रम

अध्याय ११

१७३२	त्रिचनापल्ली के राजा की मत्यु ।
१७३६	चादासाहब का त्रिचनापल्ली पर अधिकार ।
१७३७	कर्नाटक मे शाहू का अभियान ।
१७३९	शाहू द्वारा फतेहसिंह तथा रघुजी भोसले कर्नाटक में चौथ सग्रहाय तथा चांदासाहब के विरुद्ध तजौर के राजा की रक्षाय प्रेषित ।
अप्रल, १७४०	फतेहसिंह तथा रघुजी का अर्काट पहुँचना ।
२० मई, १७४०	मराठों के विरुद्ध युद्ध मे दोस्तअली की मृत्यु । उसके पुत्र सफदरअली का वेल्लौर मे शरण लेना ।
२५ मई, १७४०	नवाब की महिलाएँ तथा बहुमूल्य सामान पाडुचेरी मे सुरक्षित ।
जून, १७४०	रघुजी का पाडुचेरी पहुँचना ।
१६ नवम्बर, १७४०	रघुजी तथा सफदरअली मे गुप्त समझौता ।
दिसम्बर, १७४०	रघुजी द्वारा त्रिचनापल्ली का अवरोध ।
१६ जनवरी, १७४१	तजौर के प्रतापसिंह का रघुजी की सहायता धन द्वारा प्राप्त करना ।
फरवरी, १७४१	चादासाहब के भाई बडासाहब की मराठो के विरुद्ध युद्ध में मृत्यु ।
१४ माच, १७४१	त्रिचनापल्ली का रघुजी के प्रति आत्मसमपण । चांदासाहब तथा उसका पुत्र आबिदअली बन्दियों के रूप मे नागपुर को प्रेषित । मुरारराव घोरपडे की त्रिचनापल्ली के कायभार पर नियुक्ति ।
अगस्त, १७४२	सफ्दरअली की हत्या ।
आरम्भिक मास, १७४३	निजामुलमुल्क का कर्नाटक पर आक्रमण ।
२० अगस्त, १७४३	मुरारराव से त्रिचनापल्ली को निजाम द्वारा छीन लेना ।
सितम्बर, १७४४	चांदासाहब का सतारा को स्थानान्तर ।

दिसम्बर, १७४४ — बाबूजी नायक का कर्नाटक के लिए प्रस्थान।

१५ फरवरी, १७४५ — मुजफ्फरजंग तथा अनवरुद्दीन द्वारा बासवपत्तन के समीप बाबूजी नायक परास्त।

१७४६ — बाबूजी नायक कर्नाटक में पुनः असफल।

५ दिसम्बर १७४६ — सदाशिवराव का कर्नाटक के लिए प्रस्थान।

मई १७४७ — सदाशिवराव की कर्नाटक से सफल वापसी।

२१ मई, १७४८ — निजामुलमुल्क की मृत्यु।

जून, १७४८ — चाँदसाहब का सतारा से पलायन तथा कर्नाटक को वापसी।

अध्याय ११

त्रिचनापल्ली के निमित्त सघर्ष

[१७४०-१७४८]

१ चादासाहब का उदय। २ रघुजी भोंसले का त्रिचनापल्ली पर अधिकार।
३ चादासाहब बधन मे। ४ त्रिचनापल्ली अपहृत।
५ बाबूजी नायक तथा पेशवा।

१ **चादासाहब का उदय**—भारत का वह भाग जिसको इतिहास म कर्नाटक या कनड कहत है, वह प्रदेश है जहा के निवासी कनड भाषा बोलते है। उत्तर म इसकी सीमा कृष्णा नदी है, तथा दक्षिण म भारतीय प्रायद्वीप के आरपार समुद्र स समुद्र तक यह फला हुआ है। महाराष्ट्र के समान ही इसके पश्चिम म सह्याद्रि पवनमाला है तथा इसके पूरव म पूरबी घाट हैं जिसकी पहाडियाँ कुछ नीची है। इस रेखा के ऊपर की भूमि को बालाघाट कहते हैं और जो इसक नीचे है उनको पीनेघाट कहत हैं।

कनाटक के क्षत्र को औरगजेब न बीजापुर तथा हैदराबाद के सूबो म बाट दिया था और जब उस सम्राट की मृत्यु के बाद निजामुलमुल्क दक्षिण म स्वतन्त्र हो गया उसन इस समस्त कर्नाटक क्षत्र पर अपन मुगल दाय के रूप म अपना स्वत्व स्थापित किया। कुछ स्थानीय नवाबो ने इसे आपस मे बाँट रखा था जो आरम्भ मे औरगजेब द्वारा नियुक्त सूबेदार थे। इनम स पाच नवाब अपक्षाकृत अधिक शक्तिशाली थ—अर्थात अर्काट, शिरा कडप्पा कनूल तथा सावनूर क नवाब। इनके अतिरिक्त शिवाजी के पिता शाहजी को बीजापुर क शासको से यहाँ एक जागीर मिली हुई थी। इसम पाच परगन थ—बगलौर होस्कट कोलार बालापुर तथा शिरा। य उसक पुत्रो को दाय रूप म प्राप्त हुए तथा तजौर क राज्य के रूप मे वतमान रहे। यहा के शासको क साथ सतारा के छत्रपतियो का सदव प्रेममय बधुत्व रहा और जब कभी भी उनको सहायता की आवश्यकता पडी, वे यह सहायता देत थे। इनके अतिरिक्त कुछ और प्राचीन छोटे छोटे राज्य थ जो यूनाधिक स्वतत्र थ—यथा मसूर कन्नूर चीतलदुग, रायदुग तथा हरपनहल्ली के राज्य। १७२६

तथा १७२७ ई० म पेशवा बाजीराव यहा मराठा के अधिकार चौथ को बल पूवक ग्रहण करने के लिए आया था। शाहू की सदव इस क्षेत्र मे मराठा शासन स्थापित करने की इच्छा रही थी।

१७३७ ई० म वह स्वय कर्नाटक का एक अभियान पर गया, परन्तु क्योंकि उसमे सेनाओ के नेतृत्व की कोई क्षमता न थी और न उसम सफलता के लिए आवश्यक व्यक्तिगत वीरता ही थी, अत वह दो वर्षों म कवल मिरज तक पहुँच सका। १७३६ ई० मे उसने फतहसिह तथा रघुजी भासले को दक्षिण के राज्यो स बलपूवक चाथ सग्रह हेतु भेजा। उसकी शत यह थी कि आय के आधे भाग को व अपन व्यय म ले ल तथा आधे भाग का सतारा के राजकोष म जमा कर द। स्पष्ट निर्देश ये है

'चूकि आप राज्य के विश्वस्त सवक है राजा का कोई सन्देह नही है कि इस उद्योग म आप सफलता प्राप्त करेंग। तजौर म महाराजा क भाइ को त्रिचनापल्ली का चादासाहब तग कर रहा है। फतहसिह भासल को आज्ञा दी जाती है कि वह तजौर के राजा से मिल तथा चादासाहब का दण्ड द।'[1]

नवाब दोस्तअली कर्नाटक का मुगल सूबेदार था। उसकी राजधानी अर्काट थी। १७३२ ई० क बाद नवाब क प्रशासन म उसका दामाद हुसन दोस्तखाँ जिसको जनसाधारण चादासाहब कहते थ प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। उसने राजस्व म सुधार किये तथा पाण्डुचेरी क फ्रासीसियो की सहायता से अपनी सेना का उन्नत कर लिया। परिणामस्वरूप उसकी शक्ति समस्त दिशाओ म शीघ्र ही बढ गयी। त्रिचनापल्ली म एक हिन्दू राजा का राज्य था। चादा साहब न उसका दमन करके उस समृद्ध और शक्तिशाली स्थान को प्राप्त कर लिया जहाँ पर वह स्वय १७३६ ई० स रहन लगा।[2]

त्रिचनापल्ली पर चादासाहब के इस आक्रमण की कथा उसक चरित्र का एक विचित्र उदाहरण है। मद्रास इन ओल्डन टाइम्स नामक अग्रेजी पुस्तक म इसका वणन इस प्रकार है

१७३२ ई० म त्रिचनापल्ली क राजा का देहान्त बिना सन्तान क हो गया। उसकी द्वितीय तथा तृतीय रानियाँ उसक शव के साथ सती हो गयी परन्तु प्रथम रानी मीनाक्षी मृतक राजा की इच्छानुसार शासन की उत्तरा धिकारिणी हुई। इसक बाद रानी तथा राजवश क एक कुमार म सघर्ष

---

[1] ऐतिहासिक पत्रव्यवहार २६ राजवाडे खण्ड ६ पृ० १४६ नागपुर नगर।

[2] चक्रमवार कृत हिस्ट्री आव तजौर, पृ० २६५ तव कृत 'वस्टिजज आँव ओल्ड मद्रास पृ० २७८।

प्रारम्भ हो गयी। अर्काट के नवाब दोस्तअली को इस गड़बड़ी से लाभ उठा कर त्रिचनापल्ली के राज्य को अपने अधीन कर लेने का उद्यत किया गया। परिणामस्वरूप उसने अपने पुत्र सफदरअली तथा दामाद चाँदासाहब को एक सेना सहित किसी प्राप्य अवसर को ग्रहण कर राजधानी पर अधिकार करने हेतु भेजा।

परिणाम अत्यन्त दुखद हुआ। चाँदासाहब की उन्नति केवल उसके वैवाहिक सम्बन्धों के कारण हुई थी। उसने सौभाग्यवश रानी के प्रेम को अपने प्रति जाग्रत कर लिया तथा प्रेमासक्त महिला को इस बात पर राजी कर लिया कि वह उसको कुछ सैनिकों के साथ त्रिचनापल्ली नगर में प्रवेश की आज्ञा दे दे। इसके पूर्व उसने कुरान पर शपथ ग्रहण की थी कि वह किसी प्रकार अपने आचरण द्वारा उसके हित की हानि न करेगा। परन्तु मध्य आयु की रानियों के प्रेम प्रयास सदैव भाग्यशाली नहीं होते हैं। चाँदासाहब रानी के प्रति निर्दयी सिद्ध हुआ। अपने स्थान पर रहकर उसने रानी के हृदय को चूर्ण कर दिया। उसने त्रिचनापल्ली नगर पर अधिकार कर लिया तथा उस महिला को कारागार में डाल दिया। दुख के कारण उसका देहान्त हो गया तथा त्रिचनापल्ली का राज्य विश्वासघातक चाँदा की सत्ता के अन्तर्गत हो गया।

२ रघुजी भोंसले का त्रिचनापल्ली पर अधिकार—चाँदासाहब ने त्रिचनापल्ली की विजय के बाद अपनी लोभ-दृष्टि तंजौर तथा मदुरा पर डाली। अति संकटग्रस्त होकर तंजौर के राजा प्रतापसिंह ने शाहू की रक्षा का आश्रय लिया। चाँदासाहब की महत्त्वाकांक्षा तथा धृष्टता इतनी असाधारण सिद्ध हुई कि वह नवाब दोस्तअली तथा उसके समस्त परिवार का भी शत्रु हो गया। अतः जब चाँदासाहब के आक्रमण की दुखद कथा पूना पहुँची, शाहू ने फतहसिंह भोंसले तथा रघुजी को बड़ी सेना सहित चाँदासाहब को त्रिचनापल्ली से बाहर निकालकर प्रतापसिंह की स्थिति को सुरक्षित बना देने हेतु भेजा। अप्रैल १७४० ई० में ये सेनाएँ अर्काट पहुँच गयीं। नवाब दोस्तअली ने दामलचेरी की घाटी में उनसे युद्ध किया। मराठों ने प्रस्ताव किया कि वे अपनी माँगों का सन्धि-वार्तालाप द्वारा निपटारा कर लें परन्तु चूँकि नवाब ने समझौता अस्वीकृत कर दिया, अतः दस हजार मराठी सेना उस पर टूट पड़ी और उसको घेरे में ले लिया। घोर तथा दीर्घकालीन युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमें दोस्तअली, उसका पुत्र हसनअली तथा कई प्रमुख नायक मारे गये। नवाब की सेना तितर बितर कर दी गयी तथा उसका दीवान मीरअसद पकड़ लिया गया। यह घटना २० मई, १७४० ई० को घटित हुई।

इस मराठा सफलता से दक्षिण के वायुमण्डल म बिजली सी कौंध गयी। बाजाराव ने उत्तर भारत को पहल ही अधीन कर लिया था और अब यह विश्वास फल गया कि रघजी ने उसी प्रकार दक्षिण भारत को भी विजय कर लिया है। मतक नवाब के पुत्र सफदरअली ने जा अपन पिता की सहायता करन आ रहा था अपने पिता क बारे म सुना ता वल्लौर के गढ म शरण ले ली। चादासाहब शाति पूवक त्रिचनापल्ली म प्रतीक्षा कर रहा था और उसकी निगाह घटनाक्रम पर थी। इस भय स कि मतक नवाब की महिलाए तथा उनकी समस्त बहुमूल्य सम्पत्ति मराठा क हाथ लग जायेंग सफदरअली तथा चादासाहब दाना न उन्ह तुरत फ्रासीसियो की रक्षा म पाण्डुचेरी को भेज दिया (२५ मइ)। वहां का फ्रासीसी सूबेदार ड्यूमा कुछ समय के लिए सशय म पड गया कि वह इस सकट को स्वीकार करके सम्भव मराठा प्रति शोध का सहन करे या नही। परन्तु नवाब स फ्रासीसियो की मित्रता के बधन दृढ थ अत ड्यूमा न महिलाओ तथा नवाब की सम्पत्ति की रक्षा का भार ग्रहण कर लिया। दामलचेरी स मराठ शीघ्र ही अर्काट पहुच गय तथा बिना कठिनाइ क उस स्थान पर अधिकार कर लिया। परन्तु यह देखकर उनको अत्यन्त निराशा हुई कि उस स्थान का सचित धन पहल स ही वहा स हटा लिया गया है। रघुजी न अविलम्ब एक धमकी भरा पत्र ड्यूमा को लिखा। उसन अभिमानपूर्ण तथा दृढ उत्तर दिया और लिखा कि उसक अनुसार फ्रास के राजा क अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उसका स्वामी नही है तथा उसी की आज्ञा का पालन उसको करना चाहिए। उसी समय पर उसन रघुजी को फ्रास की उत्तम शराब (शम्पन) की कुछ बोतल भेट म दी। किवदन्ती क अनुसार रघुजी की पत्नी इनस इतनी प्रसन्न हुई कि उसन इस विदेशी अमृत (मदिरा) की कुछ और बोतल मांगी तथा रघुजी का क्रोध शात हो गया। इस घटना को जब शाहू न सुना तो रघुजी की सच्चाई म उसका विश्वास डगमगा गया।[१]

दास्तअली की मृत्यु क बाद नवाब का पद स्वय प्राप्त करन की इच्छा स उत्तेजित होकर चादसाहब न त्रिचनापल्ली म अपन का शिविरस्थ कर लिया तथा अर्काट क विरुद्ध प्रयाण करन का तयार हो गया। इस परिस्थिति म चादसाहब क आक्रमण क विरुद्ध सफदरअली न रघुजी स सहायता की

[१] पाण्डुचेरी पर रघुजी क आक्रमण की इस घटना का रोचक वृत्तान्त प्राप्य है। देखो सरदेसाई कृत ब्रिटिश रियासत खण्ड १ पृ० ४०६ तथा सर हन ...निर्मित नग मद्रास खण्ड ८ पृ० ४४३६। इस मराठा अभियान क विवरण राजवाडे खण्ड ६ म पुरन्दर दफ्तर म है।

प्राथना की। १६ नवम्बर, १७४० ई० को उन दोना के बीच मे गुप्त सहमति हो गयी जिसके अनुसार निश्चय हुआ कि यदि रघुजी त्रिचनापल्ली पर अधिकार प्राप्त करने तथा चाँदासाहब को बन्दी बना लेने म सफल हो जाय तथा नवाब के रूप मे सफदरअली की स्थिति को सुरक्षित बना दे तो सफदरअली थोडा थोडा करके रघुजी को एक करोड रुपये दे देगा। इस पर भी सहमति हो गयी कि तजौर के राजा की समस्त बाह्य विघ्न बाधाओ से रक्षा की जायगी।

इस गुप्त सहमति का समाचार सुनकर चाँदासाहब भयभीत हो गया। उसने तुरन्त ड्यूमा मे सहायता के लिए सविनय याचना की। वास्तव मे यह प्रथम उदाहरण है जबकि यूरोपीय शक्तियो न भारतीय राजनीति मे स्पष्ट हस्तक्षेप किया। रघुजी ने हिन्दू पालीगरा से मिलकर एक सामान्य पक्ष स्थापित कर लिया तथा तजौर का राजा प्रतापसिंह भी उससे आकर मिल गया। जितनी भी सेना वह एकत्र कर सकता था उस वह अपन साथ लाया था। प्रतापसिंह के दो प्रतिनिधि तीमाजी रगनाथ तथा गगप्पा रघुजी से मिल तथा १६ जनवरी १७४१ ई० को उन्होने इस आशय का सविद उसके साथ स्थापित किया— त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया जाय और चादासाहब को भगा दिया जाये, तो प्रतापसिंह तुरत १५ लाख रुपये नकद देगा। इनमे से तीन लाख रुपये राजा शाहू के व्यक्तिगत रूप से नजर के होग दो लाख उसकी रानियो के नजर के हागे, दो लाख फतेहसिंह तथा रघुजी क हागे तथा ८ लाख सेना के व्यय के हाग।

दिसम्बर १७४० ई० म रघुजी ने त्रिचनापल्ली पर घरा डाल दिया। हिन्दू पोलीगरो तथा हिन्दू राजाओ ने उसका साथ दिया। चादासाहब न यथाशक्ति उस स्थान की रक्षा का प्रयत्न किया, परन्तु सामग्री खत्म हा जाने के कारण वह देर तक सामना न कर सका। उसने अपन भाई बडासाहब को साग्रह मदुरा से बुलाया, जिसका मराठा को पता चल गया। उन्हाने बडासाहब को मार डालने के बाद उसकी समस्त सेना को नष्ट कर दिया। इस प्रकार चान्दासाहब सवथा निस्सहाय हो गया इस स्थान को १४ माच को (रामनवमी) उसन रघुजी को समर्पित कर दिया। मराठा की यह भारी सफलता थी। मुरारराव घोरपडे को अविलम्ब इस नवीन प्राप्ति के काय भार पर नियुक्त कर दिया गया तथा उसको आज्ञा दी गयी कि किन्ही भी परिस्थितिया मे वह इसकी रक्षा करे। चादासाहब कद कर लिया गया।

३ चाँदासाहब बन्धन मे—मुरारराव घोरपडे वीर तथा चतुर सनिक था। उस क्षेत्र के आन्तरिक कार्यों से भी वह परिचित था। उसने शाहू से

प्रार्थना की कि वह उसको सेनापति का पद प्रदान कर दे, परन्तु शाहू ने प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसकी इच्छा न थी कि वह दाभाडे से उस पद को छीन ले यद्यपि दाभाडे उस स्थान के सर्वथा अयोग्य था। ये पितृगत पद अब अपना पूर्व उद्देश्य खो चुके थे। तिचनापल्ली में रघुजी को धन की बडी आवश्यकता थी तथा इस अभिप्राय से उसने चाँदासाहब तथा उसके पुत्र आबिदअली से भारी मुक्तिधन माँगा। ये दोनों उसके पास बन्दी थे। वे उस धन को देने में असमर्थ थे। यह जानकर कि इस छली राजनीतिज्ञ को स्वतन्त्र छोड देना जिससे कि वह अपने अनन्त षड्यन्त्रों को जारी रख विपत्तिजनक था रघुजी ने बन्दियों को अपने योग्य नायक भास्करराम के कठोर रक्षण में तुरन्त नागपुर भेज दिया। चाँदासाहब का परिवार इस दुर्गति से बच गया क्योंकि वे सब पहले से ही पाण्डुचेरी में फ्रांसीसी सुरक्षा में पहुँच गये थे।

दक्षिण में चाँदासाहब के कारावास के विषय पर मौलिक पत्र-व्यवहार के नवीन अन्वेषण से हम इस बात के लिए समर्थ हो जाते हैं कि यथार्थ रूप से हम इसके विवरणों का निश्चय कर सकें।[४] भास्करराम पिता तथा पुत्र को सतारा न ले जाकर सीधे बरार ले गया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य उसने इसलिए किया कि अन्य कोई व्यक्ति मुक्तिधन में हिस्सा न माँग सके जिसके निमित्त बन्दी पर सतत दबाव डाला जा रहा था। चाँदासाहब के पास धन न था। अतः लगभग सात वर्षों तक उसको बन्दी का जीवन भुगतना पडा। उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा के अतिरिक्त बाह्य जगत से उसके सम्पर्क पर लेशमात्र भी प्रतिबन्ध न था। वास्तव में प्रत्येक सुविधा उसको इस हेतु दी गयी कि वह दण्ड का धन प्राप्त करने में समर्थ हो जाये। पाण्डुचेरी के फ्रांसीसियों से, शाहू के दरबार से तथा निजामुल्मुल्क के दरबार से उसने इस विषय पर स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत की। इस प्रकार चाँदासाहब कुछ समय तक कई साहूकारों के हाथों में मूल्यवान निक्षेप बना रहा। ऐसा मालूम होता है कि उसने अपने प्रथम तीन वर्ष बरार में व्यतीत किये परन्तु वास्तविक स्थान का उल्लेख नहीं है। सितम्बर १७४४ में रघुजी साढे सात लाख रुपया—साढे चार लाख चाँदासाहब के लिए तथा तीन लाख आबिदअली के लिए—स्वीकार कर लेने पर सहमत हो गया। सतारा के साहूकारों ने यह धन रघुजी को देकर बन्दियों को अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार १७४४ ई० के अन्त के समीप वे सतारा के गढ़ को भेज दिये गये। वह

---

४ वद्य पारिवारिक पत्र—माडर्न रिव्यू, दिसम्बर १९४३।

पाण्डुचेरी को सदैव इस ऋण के चुकारा के लिए लिखता रहा और निक्षेप के रूप म उसने व आभूषण भी उपस्थित किये जिनको उसने फ्रांसीसी सुरक्षा मे रख दिया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांसीसी सूबेदार डूप्ले स उसे कुछ भी धन प्राप्त नही हुआ। तब उसने पशवा से मित्रता की तथा उसके माध्यम द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का यत्न किया। २१ मई १७४८ ई० को निजामुल्मुल्क के देहान्त पर दक्षिण म हलचल मच गयी तथा आगामी मास के आरम्भ मे ही वह सतारा से भाग निकला। वह सीधे दक्षिण को गया तथा माग म सेना एकत्र करता रहा। सम्भवतया सतारा के साहूकारो को वह धन कभी पुन प्राप्त नही हुआ जो उन्होने ऋण म दिया था क्योकि उसके पलायन के बहुत दिनो बाद तक वे चाँदासाहब से अपना धन वापस मागते रहे।[५]

केवल यह आग्रह करने के अतिरिक्त कि त्रिचनापल्ली का स्थायी रूप से मराठा शासन म सम्मिलित कर दिया जाये, शाहू को व्यक्तिगत रूप से चाँदा साहब से कुछ लेना देना न था। रघुजी तथा फतेहसिंह को उनके काय सम्पादन द्वारा मराठो की सावजनिक सम्मति में उच्च स्थान प्राप्त हो गया था। 'इसके कारण बहुत धन प्राप्त हुआ। भारी प्रशसा-वचनो क साथ शाहू ने सतारा मे इन दोनो नेताओ का स्वागत किया। शाहू बहुत प्रसन्न था कि उसका चचेरा भाई तजौर का प्रतापसिंह अपने शत्रुओ के सकट से मुक्त हो गया है, तथा ठेठ कटक की सीमा तक बरार तथा गोडवाना उसने रघुजी को दे दिया।'

४ त्रिचनापल्ली अपहृत—१७४१ ई० म त्रिचनापल्ली के अपहरण से निजामुल्मुल्क बहुत रुष्ट हुआ क्योकि उस प्रदेश को वह अपनी सुरक्षित भूमि समझता था। भोपाल की विपत्ति के समय से यह सामन्त अपनी शक्ति तथा गौरव को नष्ट कर रहा था। जब रघुजी चाँदासाहब के मदन म व्यस्त था, निजामुल्मुल्क अपने पुत्र नासिरजग से युद्ध कर रहा था। जुलाई १७४१ ई० मे नासिरजग के दमन के साथ ही पशवा तथा रघुजी भासले मे एक प्रकार की कटु ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। इससे कुछ हद तक निजाम की चिन्ताए कम हो गयी। कर्नाटक से अपने एक प्रतिस्पर्द्धी चाँदासाहब को हटा दिये जाने से उसे गुप्त सन्तोष भी हुआ परन्तु निजाम इस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ कि मुरारराव घोरपडे तथा प्रतापसिंह क्रमश त्रिचनापल्ली तथा तजौर म दृढता पूवक स्थिर हो गये थे। परिणामस्वरूप १७४३ ई० के आरम्भिक मासो मे जब पेशवा तथा रघुजी बगाल मे एक दूसरे के विरोधी हो गये, निजाम ने उनकी अनुपस्थिति मे कर्नाटक म मराठो द्वारा किये गये सुधारो को नष्ट

[५] श्री सी० एम० श्रीनिवासाचारी कृत चाँदासाहब पर लेख (१९४२)।

करना प्रारम्भ कर दिया। उस क्षेत्र के नवाब निजामुलमुल्क की सत्ता को स्वीकार करते थे। दोस्तअली ने निजाम को कभी कर न दिया था। निजाम ने अब यह कर उसके पुत्र सफदरअली से माँगा। परन्तु अक्टूबर १७४२ ई० म उसके चचेरे भाई मुतजाअली ने सफदरअली की हत्या कर दी तथा नवाब के पद को हस्तगत कर लिया। इस गडबडी के बीच जनवरी १७४३ ई० म एक विशाल सेना सहित निजामुलमुल्क ने गोलकुण्डा स प्रस्थान किया तथा त्रिचनापल्ली को पुन हस्तगत करने के उद्देश्य से वह कर्नाटक पर टूट पडा।

उस स्थान के सरक्षक मुरारराव घोरपडे को जब इस विपत्ति का ज्ञान हुआ तो उसने शाहू से सहायता की प्रार्थना की। परन्तु उस समय समस्त मराठा सेनाएँ स्वय पेशवा के नेतृत्व म बुन्देलखण्ड तथा बगाल मे व्यस्त थी तथा मुरारराव को कोई सहायता नही भेजी जा सकती थी। मार्च में निजामुलमुल्क अर्काट पहुँचा। उसके पास ८० हजार सवारो तथा २ लाख पैदलो की सेना थी। बेचारा नवाब उसका सामना न कर सकता था। निजाम ने अर्काट पर अधिकार कर लिया तथा अपने ही व्यक्ति अनवरुद्दीनखाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर लिया।[१] इसी समय उसने मुरारराव को भी त्रिचनापल्ली का समर्पण करने की आज्ञा दी। मुरारराव इस माँग का प्रतिरोध न कर सका तथा उसने चार महीने सधि प्रस्तावो मे व्यतीत कर दिये। इसके अन्त पर निजाम ने उसको गुट्टी का स्थान दे दिया तथा २९ अगस्त, १७४३ ई० को त्रिचनापल्ली का अधिकार प्राप्त कर लिया।*

निजामुलमुल्क त्रिचनापल्ली से वापस लौटकर कुछ समय के लिए अर्काट म ठहरा। यहाँ पर दक्षिण के अधिपति के रूप म अग्रज तथा फ्रासीसी व्यापारियो की ओर स उसको भेंटें प्राप्त हुइ। उसकी विशाल सेना न चारो ओर के प्रदेशो को अधीन कर लिया जिसस यूरोपीय व्यापारियो का बडी हानि पहुँची। आगामी वर्ष म निजामुलमुल्क ने अपने पोते मुजफ्फरजग को पूरवी कर्नाटक के शासन के निमित्त अदोनी म नियुक्त कर लिया और स्वय फरवरी १७४४ ई० म गोलकुण्डा वापस आ गया।

५ बाबूजी नायक तथा पेशवा—त्रिचनापल्ली के पतन का समाचार सुनकर राजा शाहू को दुख हुआ। उस समय उसके पास केवल दो ही

---

१ यह अनवरुद्दीन अनुभवी एव योग्य सामन्त था तथा निजाम का मित्र था। १७२२ ई० म वह दक्षिण को निजामुलमुल्क के साथ आया था तथा हैदराबाद के सूबे का सूबेदार नियुक्त कर लिया गया था। इस कार्य को वह १७२५ ई० म निपुणतापूर्वक कर रहा था।

* पारसनीस कृत इतिहास-सग्रह—ऐतिहासिक स्थल त्रिचनापल्ली।

व्यक्ति थे—फतहसिंह भोसले और बाबूजी नायक। ये दोनों किसी उद्योग को अंगीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि पेशवा उनसे सहयोग करने के पक्ष में न था। बाबूजी नायक आगे आया तथा शाहू ने बिना सोचे-समझे निजाम के विरुद्ध प्रयाण की उसे आज्ञा दे दी। परन्तु लगभग दो वर्षों के सतत अभियान के बाद नायक की पराजय हुई जिससे नायक तथा पेशवा का घोर विद्वेष अधिक स्पष्ट हो गया। इस विषय पर बहुत से साहित्य की रचना हुई है जिसको एक जिज्ञासु छात्र देख सकता है।[८]

१७४४ ई० के अन्त के समीप बाबूजी नायक त्रिचनापल्ली को निजाम से पुनः छीन लेने के लिए सतारा से रवाना हुआ। नवाबों तथा जागीरदारों की अधिकांश सेना सहित मुजफ्फरजंग तथा अनवरुद्दीन ने बासवपत्तन के समीप इसका लगभग १५ फरवरी, १७४५ ई० को सामना किया तथा उसको पराजित कर दिया। निराश होकर बाबूजी नायक सतारा वापस लौट आया। १७४६ ई० में त्रिचनापल्ली को जीत लेने के अपने अन्तिम प्रयास में वह पुनः दयनीय रूप से असफल रहा। उसने बहुत ऋण भी कर लिया था जिसको वह चुका न सकता था अतः उसको बहुत अपमान तथा क्लेश सहन करना पड़ा। उसने इसका कारण शाहू तथा उसके पेशवा का उसके हितों से विद्वेष बताया। उसने आमरण अनशन की धमकी दी तथा विष खाने को तैयार हो गया किन्तु समय पर इसका पता चल जाने के कारण उसकी प्राण रक्षा हो गयी।

अन्त में पेशवा की मौन कूटनीति की विजय हुई। उसने निजाम के मन्त्री सय्यद लशकरखाँ को अपनी ओर मिला लिया तथा उसके जरिए बाबूजी नायक द्वारा निजाम के दरबार या कर्नाटक में अपनी स्थिति को सुधारने हेतु किये गये प्रयासों को व्यर्थ कर दिया। इस विषय में शाहू विवश था, और अन्त में समस्त कार्य को उसने पेशवा के विवेक पर छोड़ दिया। इस पर पेशवा ने एक सेना सुसज्जित की, तथा उसको अपने चचेरे भाई सदाशिव के अधीन

---

[८] कर्नाटक की राजनीति का जटिल जाल निम्नलिखित पत्रों में सुवर्णित है पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द ४०, पृ० ३२ ३५ ४५, ४८, ५२ ५३ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २८ पृ० १७ १७अ २० ३४ ३६ ४४ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २५ पृ० १० ७२, पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २६ पृ० १२ २९, पत्रे यादी, ४५ ४८, ५२ ५३, ५४ (दिनांक १८ ९ १७४४ ई०), ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, ५३ ५६, ५८, ५९, ६५, पुरन्दरे दफ्तर संग्रह जिल्द १, पृ० १५५, १६२, १६६।

५ दिसम्बर, १७४६ ई० को कर्नाटक भेज दिया। महादोबा पुरन्दरे तथा सखाराम भाऊ उसके साथ उसके परामर्शदाता के रूप में थे।

सदाशिवराव अधिक सूझ-बूझ वाला था तथा उसने अपने कार्य को निपुणतापूर्वक किया। उसने शीघ्र ही पश्चिमी कर्नाटक में मराठा शासन स्थापित कर लिया तथा मई में बासवपत्तन से वापस आ गया। इस स्वतन्त्र अभियान के नेतृत्व में उसने प्रथम बहुमूल्य अनुभव अवश्य प्राप्त कर लिया, परन्तु त्रिचनापल्ली कभी पुनः मराठा अधिकार में वापस न आया।

तिथिक्रम[1]
अध्याय १२

१७२१	सतारा गढ़ के नीचे शाहूनगर मे शाहू द्वारा राज महल का निर्माण। १८७४ ई० में यह महल जला दिया गया।
१७२७	रानी सगुणाबाई का शाहू के पुत्र को जन्म देना और उसका तीन वर्ष की आयु में देहान्त हो जाना।
२६ नवम्बर, १७३४	चफल के गंगाधर स्वामी की मृत्यु।
२४ दिसम्बर, १७४०	शाहू की प्रेयसी वीरुबाई की मृत्यु।
६ जनवरी, १७४३	जीवाजी खंडो चिटनिस की मृत्यु।
२५ नवम्बर, १७४६	श्रीपतराव प्रतिनिधि की मृत्यु।
१७ दिसम्बर १७४६	जगजीवन प्रतिनिधि नियुक्त।
१७४६	कोल्हापुर के सम्भाजी का छह मास तक सतारा में निवास।
फरवरी-अप्रल, १७४७	बालाजीराव पद से अलग।
मई, १७४७	रघुजी भोसले सतारा मे।
२५ अप्रल, १७४८	सम्राट मुहम्मदशाह की मृत्यु।
२१ मई, १७४८	निजामुल्मुल्क की मृत्यु।
२५ अगस्त, १७४८	रानी सगुणाबाई की मृत्यु।
अगस्त, १७४९	शाहू की दशा चिन्ताजनक।
१० अक्टूबर, १७४९	शाहू द्वारा रामराजा उसका उत्तराधिकारी नियुक्त।
१५ दिसम्बर, १७४९	शाहू की मृत्यु, सकवारबाई सती।

---

[1] विद्यार्थियों को ध्यान में रखना चाहिए कि विभिन्न लेखकों द्वारा दी हुई घटनाओं की तिथियों में प्राय ११ दिनों की गडबड है। इस शताब्दी के मध्य भाग के करीब कुछ लेखक नवीन शैली का उपयोग करते हैं तथा कुछ प्राचीन शैली का।

अध्याय १२

वैभवशाली शासनकाल का अन्त

१ शाहू के अन्तिम दिन।	२ उत्तराधिकारी की खोज।
३ अंतिम निश्चय।	४ शाहू की मृत्यु।
५ शाहू की संतान।	६ समकालीन सम्मति।
७ चरित्र निरूपण।	८ शाहू की उदारता।

९ शाहूनगर।

१ शाहू के अंतिम दिन—१७४३ ई० से शाहू का स्वास्थ्य तीव्र गति से गिरता जा रहा था। उस वर्ष उसके जीवन की कुछ दिनों तक तो आशा ही न रही थी तथा उत्तर में अति महत्त्वपूर्ण कार्यों को अधूरा छोड़कर ही पेशवा को अविलम्ब सतारा बुला लिया गया था। सौभाग्यवश राजा कुछ समय के लिए स्वस्थ हो गया यद्यपि उसकी निर्बलता बढ़ती गयी। इस बात से उसके मन को अत्यधिक दुःख होता था कि उसका स्थान ग्रहण करने के लिए उसके कोई पुत्र न था।

१७४८ ई० में भारतीय राजनीति में एक बड़ी रिक्तता उपस्थित हो गयी। सम्राट मुहम्मदशाह का देहान्त २५ अप्रैल को हो गया तथा उसके तुरंत बाद २१ मई को निजामुल्मुल्क का देहान्त हो गया। उदीयमान पठान राजा अहमदशाह अब्दाली का रंगमंच पर प्रादुर्भाव हुआ। सिंधिया तथा होल्कर में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न हो गया, जिसके कारण उन्हें राजपूतों की मित्रता खोनी पड़ी। जब उत्तर में ये घटनाएँ घट रही थी, १५ दिसम्बर १७४९ ई० को राजा शाहू का देहान्त हो गया। मराठा राजगद्दी पर शाहू का उत्तराधिकारी सर्वथा निर्बल सिद्ध हुआ। क्योंकि मराठा राज्य की सर्वोपरि सत्ता पेशवा के हाथों में थी अतएव मराठा शक्ति तथा गौरव के अंतिम ह्रास के उत्तरदायित्व से वह मुक्त नहीं किया जा सकता।

शाहू के अन्तिम वर्ष कई कारणों से दुःखपूर्ण हो गये थे। उसकी दोनों रानियाँ—बड़ी सकवारबाई तथा छोटी सगुणाबाई—ने प्रशासन में हस्तक्षेप शुरू कर दिया तथा सतत षड्यन्त्र किये, जिनके कारण उनका पति चिन्तितावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसको छोटी रानी से अधिक प्रेम था क्योंकि

उसका हृदय कोमल था और बाहर से वह इतना क्रोधी भी न थी। शाहू की गृहस्थी पर बहुत दिनों तक उसकी पासवान वीरुबाई का सन्तापजनक नियन्त्रण रहा। वह योग्य महिला थी और अत्यन्त सावधानी तथा प्रेम से राजा की व्यक्तिगत सुविधाओं का ध्यान रखती थी तथा दोनों रानियों पर उसका स्वस्थ नियन्त्रण था। २४ दिसम्बर १७४० ई० को वीरुबाई की मृत्यु के कारण राजकीय गृहस्थी के प्रबन्ध में शीघ्र ही शिथिलता आ गयी। शनैः शनैः शाहू इतना निर्बल तथा विवश हो गया कि वह पेशवा को अपने पास से हटने नहीं देता था क्योंकि उसको किसी भी समय अकस्मात् किसी अदृष्ट विपत्ति के टूट पड़ने का भय था। स्वयं राजा की अस्वस्थता, उसकी दोनों रानियों के षड्यन्त्र, शक्ति प्राप्ति के निमित्त ताराबाई के स्वतन्त्र प्रयास, कुछ शक्तिशाली सामन्तों के स्वार्थी वैरभाव—उदाहरणार्थ रघुजी भोंसले, मुरारराव घोरपडे, आंग्रे बन्धु आदि—तथा अन्य विषयों से पेशवा को निपटना पड़ा, किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस परिस्थिति में जनहित को सुरक्षित रखने के निमित्त उसने यथासम्भव प्रयास किया। सिंधिया, होल्कर, पुरन्दरे-परिवार तथा चिटनिस सदृश अपने समर्थकों के परामर्श तथा सहयोग द्वारा उसने यह कार्य किया। अब हमको यह पुनरीक्षण करना है कि अंतिम स्थिति किस प्रकार विकसित हुई।[2]

२१ अक्टूबर १७४६ ई० को पेशवा ने रामचन्द्र बाबा को लिखा—अपरिहार्य रूप से मुझको दरबार में ठहरना पड़ा। महाराजा के ऋण, रानियों की ओर से अत्यधिक धन की माँग तथा उनके सतत संघर्ष—इन सब ने राजा के ध्यान को इतना व्यस्त कर लिया है कि मेरे द्वारा प्रस्तुत राज्यकार्य पर विचार करने के लिए भी उसके पास समय नहीं है। मेरी उत्तर जाने की बहुत इच्छा है परन्तु यह सम्भव नहीं दीखता। अब मुझे पूना जाने की छुट्टी मिली है क्योंकि मेरे पास कोंकण के कुछ आवश्यक कार्य इकट्ठे हो गये हैं।[3]

२५ नवम्बर १७४६ ई० को शाहू के मित्र तथा जीवनसखा प्रतिनिधि श्रीपतराव का देहान्त हो गया। यद्यपि राजनीति में वह शून्य था, किन्तु व्यक्तिगत जीवन में वह शाहू का ३० वर्ष से भी पुराना साथी था। उसी

---

[2] पुरन्दरे दफ्तर संग्रह खण्ड १ पृ० १५९। इसके परिशिष्ट को भी देखो। महाराजा केवल नाना साहब को ही अपना समर्थक तथा प्रतिनिधि मानता था। जो उसके कष्टों से उसका उद्धार कर सकता था।

[3] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १८ पृ० ८५ ८६।

समय से शाहू गम्भीरतापूर्वक अनुभव करने लगा कि वह अपने मित्र का शीघ्र अनुकरण करेगा। महाराजा ने उसके छोटे भाई जगजीवन उर्फ दादोबा को रिक्त स्थान पर नियुक्त कर दिया (१७ दिसम्बर १७४६ ई०)। पूज्य रामदास द्वारा स्थापित चफल के पवित्र स्थान के प्रति शाहू को बहुत प्रेम तथा सम्मान था। एक धार्मिक व्यक्ति गंगाधर स्वामी इस संस्था का बहुत दिनों से अधिकारी था। २६ नवम्बर १७३४ ई० को उसका देहान्त हो जाने पर वहाँ के उत्तराधिकार के विषय पर विवाद उपस्थित हो गया जिसको शाहू ने स्वयं वहाँ जाकर शान्त किया। उसने मृतक के पुत्र लक्ष्मण बाबा को उस पवित्र स्थान का प्रधान नियुक्त कर दिया। शाहू के वंश परम्परागत सचिव जीवाजी खंडेराव चिटनिस का देहान्त ६ जनवरी १७४३ ई० को हो गया। शाहू का एक अन्य भक्त सेवक नाराराम सौभाग्यवश उससे एक वर्ष अधिक जीवित रहा। मन्हारी नामक एक हाथी शाहू का कृपापात्र था। वह विशाल काय सुन्दर पशु था तथा मदावस्था में भी वश्य था। एक रात्रि को वह खुल गया और नगर के एक कुएं मे गिरकर मर गया। इस घटना से शाहू को अपने भविष्य के प्रति घोर निराशा हो गयी। उसका दरबार एक निजी परिवार के सदृश था, किन्तु इन घटनाओं के कारण उसको जीवन में कोई आनन्द न रह गया। २ अगस्त, १७४६ ई० को महादाजी पुरन्दरे शाहू की वर्तमान दशा का वर्णन इस प्रकार करता है—"गत कुछ दिनों से महाराजा को तीसरे पहर हल्का सा ज्वर हो आता है। उसके पेट पर लेप लगाया जाता है। प्रत्येक दिन कोई न कोई शिकायत उसके पास महलों से (दोनों रानियों से) पहुँचती है। जब भी इस प्रकार की शिकायत आती है वह दुख से कातर हो चिल्ला उठता है—'ईश्वर को मेरे ऊपर तरस क्यों नहीं आता? वह मेरे जीवन को समाप्त क्यों नहीं कर देता?' इस दशा में वह औषधि का भी सेवन नहीं करता तथा अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करता है। चिल्लाकर वह प्रायः अपनी भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त करता है—'ये दोनों रानियाँ मुझको भूखा मार डालेंगी।' अभी हाल में साहूकार अधीर हो उठे हैं कि कहीं राजा की मृत्यु न हो जाय और वे अपने ऋण का धन न खो बैठें। अतः वे अपने ऋण की वापसी के लिए तरह तरह के साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। ये लक्षण राज्य के लिए शुभ नहीं हैं। ईश्वर जाने इनका परिणाम क्या होगा?[४]

राजदरबार में भी सदैव एक ऐसा दल उपस्थित रहा जो उन समस्त

---

[४] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द ८, पृ० ६०, ६३।

उपायों का विरोध करता जिनका प्रस्ताव परिस्थिति की रक्षा के लिए पेशवा करता। जिस समय शाहू अत्यन्त क्रोध की अवस्था में होता, तब पेशवा के विरोधी उसके विरुद्ध नाना प्रकार की कड़वी शिकायतें राजा से करते तथा उसकी प्रवृत्तियों को कुचेष्टापूर्ण बताते। इन बार बार की शिकायतों से शाहू को घृणा हो गयी तथा अपनी इच्छा के विरुद्ध वह एक बार विरोधी दल के प्रभाव में आ गया। १७४७ ई० के आरम्भिक मासों में पेशवा को उसके पद से अलग कर शाहू ने इस बात की परीक्षा ली कि राज्यकार्य का संचालन किस प्रकार होता है। पेशवा इच्छापूर्वक सहमत हो गया। उसने त्यागपत्र दे दिया और कुछ समय तक राज्यकार्य से दूर रहा। किन्तु वह घटनाचक्र का निरीक्षण बराबर करता रहा। परम्परानुसार पेशवा सतारा के पास एक डेरे में वास करता रहा तथा राजा से आह्वान प्राप्त करने की प्रतीक्षा में रहा। शाहू ने गोविन्दराव चिटनिस द्वारा उसको सन्देश भेजा कि उसके पद का अपहरण कर लिया गया है तथा अब इसकी आवश्यकता नहीं है कि वह राजा की सेवा में उपस्थित हो। विद्रोह करने के स्थान पर पेशवा ने राजा की आज्ञा को शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया और अपने पदसूचक समस्त चिह्न वापस कर दिये। यह समाचार शीघ्र ही जनता में फैल गया। प्रशासन को भंग होते देख कर अधिकारी तथा साहूकार सर्वथा पस्त हो गये क्योंकि बाह्य जगत के लिए पेशवा की ही बात मानी जाती थी। गड़बड़ी के प्रत्यक्ष लक्षण प्रकट हो गये और एक क्षण में विश्वास तथा विश्रम्भ का लोप हो गया। पेशवा ने तत्सम्बन्ध में एक सामयिक चेतावनी राजा को भेजी।

दो ही महीनों में समस्त अधिकारियों तथा जनता को विश्वास हो गया कि राज्य का एकमात्र निष्ठापूर्ण तथा सच्चा सेवक केवल पेशवा ही था तथा उसके बिना प्रशासन नहीं चल सकता। १३ अप्रैल १७४७ ई० को उसको विधिवत् अपने पद के वस्त्र तथा अधिकार सहित अपना कार्य पूर्ववत् आरम्भ करने की आज्ञा दी गयी। पेशवा कितना सावधान था यह एक टिप्पणी से सुस्पष्ट है जो उसने स्पष्टतया राजा की जानकारी के लिए गोविन्दराव चिटनिस को लिखी। इसमें विवादग्रस्त प्रश्नों का स्पष्ट संकेत है

यह सुनकर मुझको दुःख हुआ कि आप राजा के दर्शन न कर गये तथा उनसे वस्तुस्थिति की व्याख्या न कर सके। दोनों रानियों की मौतों का अनिवार्य निराकरण मैंने कर लिया है। मुझको निश्चय लगता है कि अब के बाद स्वामी मेरा उपस्थित नहीं करना। इससे मैं डर भी नहीं सकता। महाराजा के स्वास्थ्य-सम्बन्ध आज्ञा के विषय में मैं अपना सब यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा और यदि मुझे बाहर जाने की अनुमति प्राप्त हो सकी तो सम्भवतः मैं

महाराजा को उस चिन्ता से मुक्त कर सकूगा। राजा के सन्निकट मेरे सदैव उपस्थित रहने से परिस्थिति म कोई सुधार नही हो सकता। यह कहना कि मैं पहले ऋणो का चुकारा कर दू और फिर यहा से प्रयाण करूँ अशक्य प्रस्ताव है जिसको कार्यान्वित करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। मुझको कम से कम दो मास का समय चाहिए कि इधर उधर जाऊँ आऊँ तथा कुछ प्रबन्ध करू।

बाबूजी नायक की शिकायत के विषय म कोई भी शर्त जिसकी आवश्यकता हो मैं लिखकर देने को तैयार हूँ कि मैं उस क्षेत्र म अनधिकारपूर्वक प्रवेश न करूगा जो उसको विशेष रूप से दे दिया गया है। इस समय सदाशिवराव भाऊ दक्षिण म है और निजाम उस दिशा म हमारे कार्यो म विघ्नबाधा उपस्थित कर रहा है। प्रथम मुझको यहा से चला जाने दो तथा पिलाजी जाधव के साथ भाऊ के लिए सहायक सेनाएँ भेज देने दो और तब मै राजा की प्रत्येक इच्छा को कार्यान्वित करने के लिए अविलम्ब वापस आ जाऊँगा।

'यह समाचार कि मैं अधिकारच्युत कर दिया गया हूँ काफी फैल गया है। इससे निजाम तथा अन्य शत्रुओ को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। अशुभ परिणामो को रोकने के लिए अविलम्ब उपायो की आवश्यकता है।

यदि इन समस्त स्पष्ट कारणो के होते हुए भी महाराजा मुझको जाने को आना नही देते है तो मैं समझूगा कि मराठा राज्य पर ईश्वर का कोप है तथा मैं पूर्णतया अपने को भाग्य की इच्छा पर छोड दूगा।

कृपया यह सब महाराज को स्पष्ट कर दें तथा उत्तर देने की कृपा करे।

इस टिप्पणी से वह संघर्ष स्पष्ट हो जाता है जो राजा तथा पेशवा के बीच म विद्यमान था।[५]

इस समय शाहू ने जल्दी से रघुजी भोसले को नागपुर से बुलाया। उसका विचार था कि राज्य का प्रबन्ध पेशवा के स्थान पर उसके सुपुर्द कर दे। रघुजी मई १७४७ ई० म अपने पुत्र मुधोजी सहित आया। शाहू की इच्छा थी कि वह अपने उत्तराधिकारी के रूप मे मुधोजी को गोद ले ले। मुधोजी की माता शाहू की रानी सगुणाबाई की बहन थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार रघुजी बहुत ही थोडे समय के लिए वहा ठहरा। वह इस बात को उपयुक्त न समझता था कि मराठा राज्य के कार्यों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व

---

५ ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, ६५ तथा ५६। राजा के ऋणो का विवरण पुरन्दरे दफ्तर सग्रह (जिल्द १, पृ० २१४ २१८) म है।

सँभाले क्योंकि सतारा की अपेक्षा नागपुर का उसका अपना स्वतन्त्र क्षेत्र उसकी योग्यता के लिए अधिक लाभदायक प्रदेश था। सतारा में उसको लाभ की अपेक्षा सर्वथा हानि की ही सम्भावना थी। रघुजी का पेशवा से एक गुप्त समझौता भी था। जिसके अनुसार वह सतारा के कार्यों में हस्तक्षेप न कर सकता था और न यह रघुजी की इच्छा ही थी कि मराठा राज्य के उत्तराधिकार को वह अपने पुत्र मुधोजी के लिए प्राप्त कर ले।[६] शाहू जानता था कि उसकी मृत्यु सन्निकट है और एक धर्मभीरु हिन्दू की भाँति उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह मृत्यु से पूर्व ही ऋणमुक्त हो जाय क्योंकि अन्यथा उसको सतत नरक भोगना पड़ेगा। अतः शाहू ने पेशवा को उसके पद पर पुनः स्थापित कर दिया और स्वयं उसके डेरे में गया तथा उसके साथ पूर्ण मेल कर लिया। यह अप्रैल १७४७ ई० में हुआ।[७]

७ उत्तराधिकारी की खोज—जब पेशवा पर शाहू की कृपा न रही तो प्रत्येक दिशा में उसके बहुसंख्यक विरोधी अकस्मात् प्रकट हो गये जिनके कारण राज्यकार्य में गड़बड़ी पड़ गया। आंग्रे-बन्धुओं ने कोंकण में नवीन संकट उपस्थित कर दिये। कोल्हापुर के सम्भाजी तथा उसकी रानी जीजाबाई ने मुरारराव घोरपड़े को निमन्त्रण दिया तथा शाहू के प्रदेश पर आक्रमण की योजना बनायी। यह कर्नाटक में सदाशिवराव भाऊ के हस्तक्षेप का बदला था। निजामुल्मुल्क तथा उसके पुत्रों ने इस बिगड़ती हुई परिस्थिति से अविलम्ब लाभ उठाया। इसी समय दिल्ली पर अब्दाली का आक्रमण पेशवा के लिए एक अन्य विह्वलता का कारण बन गया। स्पष्ट है कि मराठा राज्य की समृद्धि में एक नष्टावस्था उत्पन्न हो गयी।

कोल्हापुर के सम्भाजी को पेशवा सरलता से प्रसन्न कर सका। वह १७४६ ई० में सतारा आया तथा वहाँ पर ६ मास तक ठहरा। इस अवसर पर पेशवा ने उसको आश्वासन दिया कि शाहू की मृत्यु के बाद वह उसके (सम्भाजी के) उत्तराधिकार का समर्थन करेगा। इस गुप्त समझौते का समर्थन रानी सकवारबाई ने भी किया। तब इस बात का किसी को भी पता न था कि ताराबाई एक दूसरी ही चाल चलेगी तथा रामराजा को उत्तराधिकारी के रूप में खड़ा कर देगी जिसके अस्तित्व का उस समय तक किसी को भी भान न था। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि सती के समय अपनी चिता से सकवारबाई

---

[६] वद पत्रों में उल्लेख है कि मुधोजी इस समय सतारा में उपस्थित था। पेशवा रघुजी के मध्य हुई सन्धि के लिए देखो नागपुर दफ्तर पृ० ६३ ६४।

[७] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २१ पृ० १३७, ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, ६१।

ने घोषणा की थी कि 'रामराजा छलिया है। केवल सम्भाजी ही सतारा की गद्दी का न्यायोचित अधिकारी है।" इस प्रकार नाना साहब ने लगभग अपने समस्त विरोधियों को शान्त करके १७४७ ई० के अन्त में नवाई के अभियान पर प्रस्थान किया। मई १७४८ ई० में निजामुल्मुल्क के देहान्त के तुरन्त बाद ही उसने व्यक्तिगत सम्मिलन में नासिरजंग से भी मित्रवत व्यवहार स्थापित कर लिया। मुजफ्फरजंग से व्यक्तिगत रूप से मिलकर उसने वैर शान्ति कर ली।

मरणासन्न शाहू शनै शनै चिडचिडा तथा रूखा हो गया। उसका व्यक्तिगत सेवक नागाराम मेघश्याम लिखता है—'प्रतिदिन राजा का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। अपने समीप बहुत से व्यक्तियों का उपस्थित होना वह सहन नहीं कर सकता। केवल रानी साहब ही सदैव उसके पास रहती हैं। मुखानन्द (विदूषक) भी अलग रखा जाता है। वीरूबाई के स्मारक के रूप में माहुली में उसने एक स्थायी भवन का निर्माण आरम्भ किया है। वह प्राय प्रतापगढ तथा जजूरी को जाने की चर्चा किया करता है।'

पुरन्दर सम्भवत जजूरी में पेशवा को १७४८ ई० में इस प्रकार लिखता है— कुछ दिनों से छोटी रानी ज्वर तथा सिर के दर्द से पीडित है। वह बातचीत नहीं कर सकती तथा बहुत दुर्बल हो गयी है। वैद्य लोग कहते हैं कि उसका रोग जल्दी अच्छा नहीं हो सकता। यदि उसकी दशा नहीं सँभली, तो महाराजा को यहाँ आना होगा। उसमें अब बिलकुल शक्ति नहीं रह गयी है।[८]

२३ जून का समाचार है— महाराजा कुछ दिन के लिए मढे में ठहरा। वह गाँव गाँव घूमता फिरता है किन्तु उसको कहीं आराम नहीं मिलता। वह झोपडी में रहना पसन्द करता है। वर्षा से उसको अधिक कष्ट हो रहा है। उसके अधिकांश सेवकों ने अपने लिए उसी प्रकार की झोपडियाँ बना ली हैं। राजा की सुविधा के विचार से केवल देवराव नित्य उसके साथ रहता है। उसके श्वसुर (सकवारबाई के पिता) रामोजी शिर्के का देहान्त २१ जून १७४८ ई० को हो गया। ऐसा मालूम होता है कि पूरी वर्षाऋतु राजा उसी झोपडी में काटेगा। उसका शिकार का शौक यथापूर्व बना हुआ है। रानी सतारा के महल में रहती है और नित्य दो बार उससे मिलने आती है।

इस प्रकार राजा हिन्दू जीवन-व्यवस्था के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम में रहना चाहता था और उस अपने अंतिम समय में राजमहल के जीवन से,

---

८ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १८ पृ० ८८, १५२।

उसके मददगारों ने उसके बागदुर्ग से पूना ले लिया था। इस अन्तिम लड़ाई में उसका निकटवर्ती सचिव गोविन्दराव चिटनिस तथा उसके घनिष्ठ सहायक देवराव मेघश्याम तथा यशवन्तराव पोतनिस सब उसके साथ उपस्थित रहते थे। जब कभी आवश्यकता होती पेशवा को पूना से बुला लिया जाता। अन्त में दोनों रानी सगुणाबाई भी अचानक मर गयी। इनके दो उद्देश्य थे— प्रथम राज्य-उत्तराधिकार और द्वितीय मराठों के विस्तार में इस का अनुभव को बतलाना। परन्तु वहीं पर उसकी दशा बिगड़ गयी तथा २५ अगस्त १७४८ ई० को उसका देहान्त हो गया। स्वयं महाराजा शव के साथ माहुली गया जहाँ पर अगले दिन दाह-संस्कार हुआ।

इस प्रकार शाहू के जीवित रहने तक अन्तिम समय पूना से दूर रहा तथा सतारा उस अवसर के ... का कष्ट पड़ा ... तथा विचार ... उसके अन्तिम क्षण तक विद्यमान रही।[६]

अगस्त १७४९ ई० में उसकी दशा चिन्ताजनक हो गयी। और उसके अधिकार के प्रश्न पर उत्पन्न होने का भय विद्यमान था अतः शान्ति की सुरक्षा हेतु शाहू ने पूना से पेशवा को समस्त सेना सहित पेशवा को बुला लिया। सिंहासन तथा अधिकार के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में योजनाएँ प्रस्तुत की गयीं तथा राजा और अन्य पुरुषों ने उन पर विचार किया। उनके परिणाम को संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है।[७]

सगुणाबाई के गर्भ से १७२० ई० में शाहू के एक पुत्र हुआ था परन्तु तीन वर्ष की आयु में ही उसका देहान्त हो गया। इसके बाद उसके कई लड़कियाँ तो हुई परन्तु कोई पुत्र न हुआ। उसने उत्तर के राजपूत परिवारों में से एक उत्तराधिकारी को गोद लेने का प्रयत्न किया तथा उदयपुर के राणा जगतसिंह के भाई नाथजी को वह सतारा ले भी आया परन्तु नाथजी बागोर की जागीर का उत्तराधिकारी हो गया तथा शाहू की योजना असफल हो गयी। जयपुर के पत्रों से पता चलता है कि उसने सवाई जयसिंह के द्वारा

---

[६] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द ८ पृ० ६० ६३।

[७] इस विषय पर बहुत सा साहित्य है। चिटनिस बखर सम्पूर्ण तथा विश्वसनीय है तथा एक दूसरा बखर इसका उपयोगी परिपूरक है जिसका प्रकाशन पारसनीस कृत भारतवर्ष में हुआ है और जो गोविन्दराव चिटनिस के नाम से प्रसिद्ध है। शेडगाँव बखर प्रतिनिधि और अमात्य की बखर इतिहास संग्रह पेशवा दफ्तर संग्रह खाबडा दफ्तर संग्रह पेशवाओं की दिनचर्याओं तथा शकावलियों में शाहू के अन्तिम दिनों पर प्रसंगोचित सामग्री प्राप्य है।

किसी अन्य राजपूत उत्तराधिकारी को गोद लेने का भी प्रयत्न किया था। शाहू न कोल्हापुर के सम्भाजी के अधिकार को उचित मान अवश्य दिया था ताकि वह सतारा राज्य का उत्तराधिकारी हो और वश की दोनो शाखाएँ मिला दी जायें परन्तु शाहू को सम्भाजी मे किसी विशेष योग्यता या विवक शक्ति का परिचय कभी नही मिला। उसकी आयु भी अधिक हो गयी थी तथा उसके भी कोई पुत्र न था जिससे कुछ वर्षों के बाद उसे भी किसी उत्तराधिकारी को गोद लेना पड़ता। अतएव शाहू ने सम्भाजी के इस प्रस्ताव का समर्थन करने से इन्कार कर दिया कि मराठा शासन का प्रधान पद उसको दे दिया जाय। उसने सुना था कि विठाजी तथा शरीफजी भोसले के अनेक वशज हैं जो विभिन्न स्थानो मे रहते है। उसका विचार था कि इनमे से किसी उपयुक्त बालक को वह चुन लेगा, तथा इस काय के निमित्त पूछताछ के लिए उसने विश्वस्त व्यक्तियो को भेजा। उसके घनिष्ठ परामर्शदाता गोविन्दराव चिटनिस, यशवन्तराव पोटनिस, देवराव मेघश्याम तथा अन्य व्यक्तियो द्वारा जो उसके निकट सम्पर्क मे थे यह खोज करायी गयी।

उस समय सतारा के गढ मे वृद्धा रानी ताराबाई रह रही थी। नाम मात्र के लिए वह बन्दी थी, अन्यथा वह सम्मानित पुरानी सम्बन्धी थी। जब उसने सुना कि शाहू किसी बालक को गोद लेन के निमित्त खोज कर रहा है तो उसने राजा को सन्देश भेजा कि उसके एक पोता है जो उसके पुत्र शिवाजी का पुत्र है, जिसका पालन पोषण सम्भाजी द्वारा उसके प्राण हरण के डर से गुप्त रूप से पनगाँव मे हुआ है। यह स्पष्ट था कि यदि वास्तव मे इस प्रकार का पुत्र प्राप्य हो सके, तो अवश्य ही वह न्यायोचित उत्तराधिकारी होगा, क्योकि वह दूरस्थ परिवारो के बालको की अपेक्षा शाहू का निकट सम्बन्धी होता। शाहू न अपने चिटनिस गोविन्दराव को ताराबाई के पास भेजा तथा उसका बयान लिखवाकर ले लिया। तब उसने भगवन्तराव अमात्य को सतारा बुलाया जो शिवाजी के मृत्यूत्तरजात पुत्र रामराजा के पालन पोषण के विषय मे पूर्ण जानकारी रखता था।[11]

भगवन्तराव को आदेश हुआ कि माहुली के स्थान पर कृष्णा के पवित्र जल मे धर्मपूर्वक शपथ ग्रहण कर वह इस कहानी की सत्यता को प्रमाणित करे। जब यह काम हो गया, शाहू का स्वाभाविक सन्देह दूर हो गया। परन्तु उसकी रानी सकवारबाई ने स्पष्ट कह दिया कि यह समस्त व्यापार छल है

---

[11] उसका मूल नाम राजाराम था, परन्तु चूंकि ताराबाई हिन्दू प्रथा के अनुसार अपने पति का नाम न ले सकती थी, उसने शब्दो को परस्पर बदल दिया और इस प्रकार बालक का नाम रामराजा हो गया।

जिसको दुष्टा ताराबाई ने गढ़ा है जिससे अपने हाथ में सत्ता प्राप्त करने की उसकी महत्त्वाकांक्षा तथा उसका गर्व तृप्त हो जाये। सकवारबाई ने शाहू से यह भी साफ कर दिया कि वह किसी अन्य बालक को गोद ले लेगी तथा ताराबाई की योजना को भंग कर देगी। उसके प्रतिनिधि तथा उसके मुत निक यमाजी शिवदेव को अपने विश्वास में ले लिया तथा पेशवा के साथ साथ गोविन्दराव और यशवन्तराव सदृश शाहू के परामर्शकों के विरुद्ध उसने षड्यन्त्र आरम्भ कर दिये। इस उद्देश्य से वह सेना में भरती करने लगी तथा अपने अनुचारी वर्ग को बढ़ाने लगी। वह आवश्यक होने पर सशस्त्र युद्ध की तैयारी करने लगी। शाहू ने अपनी स्थिति के लिए विपत्ति को समझ लिया तथा पूना में पेशवा को विश्वस्त व्यक्तियों की प्रबल सेना एकत्र करने तथा अविलम्ब सतारा आकर स्थिति की रक्षा करने हेतु शीघ्र आज्ञा भेजी। २१ अगस्त को अपने भाई जनार्दन तथा अपने विश्वस्त सरदारों होल्कर तथा सिंधिया को साथ लेकर पेशवा पूना के लिए चल पड़ा। इस समय वह सतारा में पूरे ८ मास तक ठहरा। दिसम्बर में शाहू की मृत्यु के पश्चात उसने आवश्यक क्रिया कर्म किये रामराजा को लाकर गद्दी पर बिठा दिया तथा इस प्रकार से उस स्थिति को सँभाल लिया जो उत्तराधिकार युद्ध का रूप धारण कर सकती थी। यह स्पष्ट है कि पेशवा के लिए यह अपूर्व चिन्ता का समय था।

शाहू ने गोविन्दराव चिटनिस को समस्त प्रमुख नेताओं के पास भेजा—यथा मल्लेश्वर, फतहसिंह भासले, प्रतिनिधि तथा अन्य—और उनसे उनका परामर्श माँगा कि वे उससे अच्छी योजना या सुझाव दे सकते हैं या नहीं, तथा बहिरंग पुरुषों में से कोई भी पेशवा के विरोध में शासन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए तयार है या नहीं। प्रत्येक ने यही उत्तर दिया कि पेशवा के अलावा अन्य किसी व्यक्ति में शक्ति तथा योग्यता नहीं है जो इस परिस्थिति को सँभाल ले तथा मराठा राज्य का हित-साधन कर सके। गोविन्दराव चिटनिस ने सचाई से विभिन्न व्यक्तियों की सम्मतियों से शाहू को सूचित कर दिया। इस महत्त्वपूर्ण विषय पर ये सम्मतियाँ निष्पक्ष राष्ट्रीय नेताओं की थी। शाहू ने रानी के समक्ष परिस्थिति के विवरणों को स्पष्ट कर दिया जिनका आधार जनमत तथा जनहित था। परन्तु वह अन्त तक अडिग रही, यद्यपि उसको यह पूरा बोध हो गया था कि पेशवा तथा शाहू की इच्छाओं के विरुद्ध उसका कोई भी उद्योग सफल नहीं हो सकता, तथा वह अकेली राज्यकार्य का सचालन नहीं कर सकती। अत उसने तुरन्त कोल्हापुर से सम्भाजी को बुला लिया, तथा शासन का भार सँभालने का प्रबन्ध कर लिया। जब शाहू को ज्ञात हुआ कि सम्भाजी सतारा पर अधिकार करने आ रहा है, उसने तुरन्त बापूजी खण्डो चिटनिस को सशस्त्र सेना देकर भेजा ताकि वह सम्भाजी को आगे बढने से रोक दे। सम्भाजी बुद्धिपूर्वक वापस हो गया तथा इस प्रकार सौभाग्यवश गृहयुद्ध टल गया।

३ अन्तिम निश्चय—यद्यपि शाहू अपने शरीर से निर्बल हो गया था परन्तु सौभाग्यवश उसकी मानसिक शक्तियाँ वैसी की वैसी ही बनी रही। उसको स्पष्ट हो गया कि यदि वह रामराजा को बुलाकर अपनी उपस्थिति में गोद लेने का संस्कार पूरा कर देता है तो सकवारबाई निश्चय ही सकट उपस्थित कर देगी तथा इसका परिणाम गम्भीर अनर्थ या रक्तपात भी हो सकता है। अत उसने अपने हाथ से दो छोटी आज्ञाएँ जारी की जिनमें उसने पेशवा को उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ विशेष उपक्रम करने के आदेश दिये। ये दोनों आज्ञापत्र अपने मूलरूप में प्रकाशित हो चुके हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे शाहू के ही हाथ के लिखे हुए हैं तथा इस जटिल समस्या के उसके अपने वास्तविक हल को प्रकट करते हैं जो तीन वर्षों से भी अधिक समय से हलचल उपस्थित कर रही थी। अन्त साक्षी से ऐसा ज्ञात होता है कि ये दोनों पत्र १ अक्टूबर १७४६ ई० के लगभग या सम्भवत १० अक्टूबर को उस वर्ष के दशहरे के दिन लिखे गये। इन पर कोई तिथि नहीं है।

प्रतिरूप सं० १

बालाजी प्रधान पण्डित को इसके द्वारा आज्ञा दी जाती है—आपको सेना एकत्र करनी चाहिए। कई अन्य व्यक्तियों को भी यही कहा गया, परन्तु वे (उत्तरदायित्व) स्वीकार नहीं करते हैं। मैं इस पत्र को पहले न लिख सका। अब मुझे स्वस्थ होने की कोई आशा नहीं है। राज्य के हितों की रक्षा होनी चाहिए और आपको उपाय करना चाहिए कि उत्तराधिकार बना रहे। कोल्हापुर को बीच में न लाइए। मैंने चिटनिस को सब कुछ समझा दिया है। आप उस व्यक्ति की आज्ञाधीन राज्यकार्य करते रहें जो गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। मुझको चिटनिस में पूरा विश्वास है। आप उसके सहयोग से कार्य करें। चाहे जो कोई छत्रपति हो, वह आपके प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करेगा।"

प्रतिरूप सं० २

'बालाजी पण्डित प्रधान को आज्ञा दी जाती है—मुझको विश्वास है कि आप राज्य के उत्तरदायित्व को निभायेंगे। मुझको स्वयं इसका विश्वास था तथा चिटनिस ने मेरे विचारों को पुष्ट कर दिया। मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ तथा अपना हाथ आपके सिर पर रखता हूँ। चाहे जो कोई छत्रपति हो आप मन्त्री बने रहेंगे। यदि वह आपको मन्त्री नहीं रहने देता है तो मैं उसको शाप देता हूँ। आप उसकी आज्ञानुसार सेवाकार्य करते रहें और राज्य को बनाये रखें। अधिक क्या लिखूँ? आप स्वयं बुद्धिमान हैं।[१२]

इस निश्चय के बाद शाहू दो महीनों से कुछ ही अधिक अर्थात् १० अक्टूबर से १५ दिसम्बर तक जीवित रहा। इससे स्पष्ट है कि वह इस श्रेय का पात्र है कि उस समय की परिस्थिति में मराठा राज्य के भविष्य के निमित्त उसने यथाशक्य उत्तम प्रबन्ध कर दिया। पेशवा की वृत्ति भी पूर्ण तथा स्पष्ट है। उसका एकमात्र कार्य यह था कि अपने मृत्यु-मुख स्वामी की इच्छाओं को कार्यान्वित करे। यह अन्याय होगा यदि उसके विरुद्ध यह आरोप लगाया जाय कि उसने जानबूझकर अयोग्य उत्तराधिकारी को प्रस्तुत किया तथा इस प्रकार छत्रपति की शक्ति का अपहरण कर लिया। उस समय के किसी अन्य साधारण मराठे की अपेक्षा या स्वयं शाहू के पुत्र की अपेक्षा जैसा कि वह होता, रामराजा अधिक अयोग्य न था। उस समय पेशवा को या किसी अन्य व्यक्ति को उस मनुष्य के विषय में कुछ ज्ञान न था।

४ शाहू की मृत्यु—चिटनिस तथा अन्य बखरों में शाहू की मृत्यु का

---

[१२] इतिहास संग्रह ऐतिहासिक स्फुट लेख ४५।

उल्लेख इस प्रकार है—"१५ दिसम्बर, १७४९ ई० को शाहूनगर के रंगमहल नामक अपने महल में शाहू के प्राण निकल गये।"[११] उस समय सबको बहुत दुख हुआ। वह आबाल वृद्ध, नर नारी, अधिकारी तथा सेवक, छोटा और बड़ा सब का पिता तथा रक्षक था। ऐसा राजा कभी न हुआ था। उसके शासन में अपराधियों से भी कठोर व्यवहार न किया जाता था। उसका कोई शत्रु न था। चारों ओर अभूतपूर्व विलाप तथा क्रन्दन सुनायी पड़ता था। शाहू की चाची ताराबाई गढ़ से शाहू का अंतिम दर्शन करने के उद्देश्य से नीचे उतर आयी। गोविन्दराव चिटनिस ने जाकर उससे बातचीत की। उसने गोविन्दराव को परामर्श दिया कि ऐसा प्रबन्ध किया जाये कि सकवार बाई सती हो जाय अन्यथा यदि वह जीवित रहेगी तो राज्य के लिए कष्ट उपस्थित कर देगी। साथ ही सम्भाजी को कोल्हापुर से बुलाया जाये। मेरे एक अल्पवयस्क पोता है जिसका पालन-पोषण पनगाँव में हुआ है। उसको लाना चाहिए तथा गद्दी पर बठाना चाहिए।

चिटनिस ने इस प्रस्ताव से पेशवा को सूचित किया। उसने प्रतिनिधि, फतहसिंह भोसले तथा अन्य व्यक्तियों से परामर्श किया। उन सब ने एक स्वर से ताराबाई के सुझाव का समर्थन किया कि सकवारबाई सती हो जाये। उसके भाई कान्होजी शिर्के को बुलाया गया। उसने जाकर यह प्रस्ताव अपनी बहन को बताया। काफी बहस करने के बाद उसने निर्णय किया कि यदि वह इन्कार करती है और अपने पति के बाद जीवित रहती है तो उसको पेशवा के हाथों अकथनीय यातनाओं को सहन करना पड़ेगा जो इतना शक्तिशाली है कि शीघ्र ही परिस्थिति पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेगा। भाई ने लौटकर उसकी स्वीकृति प्रकट कर दी। सब तैयारियाँ की गयी। सकवारबाई के साथ शाहू की दो पासबानों लक्ष्मी तथा सखू ने भी उसी चिता पर अपने को भस्म कर दिया। बाद में श्मशान में शाहू की मूर्ति स्थापित की गयी जो अब तक विद्यमान है।

इसका कोई प्रमाण नहीं है कि सकवारबाई को पेशवा ने सती होने पर विवश कर दिया था। शाहू की मृत्यु पर पेशवा ने तुरन्त सकवारबाई के पक्षपातियों—अर्थात प्रतिनिधि तथा उसके मुतालिक यमाजी शिवदेव—को पकड़ लिया था। जब उसने देखा कि वह पेशवा के हाथों से शक्ति के अपहरण का प्रबन्ध नहीं कर सकती, उसने मृत्यु ही श्रेष्ठ समझी। पेशवा को कोई आव

---

[११] शुक्रवार प्रभात ८ बजे। शक संवत १६७१ की मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया शुक्ल। शाहू की आयु उस समय ६७ वर्ष ७ महीने थी।

श्यकता न थी कि वह उस माग के अपनाने म उमको विवश करे क्योंकि जीवित रहने पर अपराधावस्था म वह सुविधापूवक उसका नियन्त्रण कर सकता था। उस समय सती की प्रथा का उच्च समाज पर बडा प्रभाव था। हम देखत हैं कि का्होजी आग्रे, रघुजो भोसल तथा अय कई प्रमुख मराठा सरदारो की मत्यु पर उनकी अनेक स्त्रिया तथा पासवानें अपन पतियो की चिताओ पर सती हो गयी। यह काय मता के प्रति सम्मान का सूचक था। सकवारबाइ सदृश वृद्ध महिला का, जो धमात्मा राजा की उस समय एकमात्र जीवित रानी थी, यह कतव्य था कि युग-सम्मानित प्रथा का अनुसरण कर। इस प्रथा के गुण दोषो का निणय उस समय प्रचलित नतिक मापदण्ड क अनुसार ही होना चाहिए।

५ शाहू की सन्तान—शाहू की माता येसूबाई के शम्भाजी से दो बच्चे हुए थ। भवानीबाई नामक एक बडी कया था जिसका विवाह ताला क शकरजी महादिक से हुआ था और जो सती हो गयी थी। सम्भाजी की एक पासबान भी थी जिसे उसके पुत्र मदनसिंह के साथ जुलिफकारखाँ रायगढ के पतन पर बन्दी बनाकर सम्राट के शिविर म ले गया था। शाहू क कुल चार विवाहिता स्त्रियाँ थी—अम्बिकाबाई शिन्दे साविश्रीबाई जाधव सकवारबाई शिर्के तथा सगुणाबाई मोहिते। वीरबाई नामक उसकी एक पासवान भी थी जिसका बहुत सम्मान होता था और जो उसके अन्त पुर की अध्यक्षा थी। प्रथम दो के साथ उसका विवाह लगभग १७०३ ई० में सम्राट क शिविर म हुआ था। अम्बिकाबाई विवाह के कुछ दिनो बाद ही मर गयी थी तथा दूसरी पत्नी उसके साथ दिल्ली भेजी गयी थी जहाँ स वह १७१९ ई० म दक्षिण को वापस आयी। घर वापस आने पर पुरन्दरगढ के नीचे दक्षिण म शाहू ने दो और विवाह किय। इनमे सकवारबाइ बडी थी तथा सगुणाबाई छोटी। इसके अतिरिक्त उसके दो और पासवानें थी—बडी लक्ष्मीबाई तथा छोटी सखू। सगुणाबाई स १७२७ ई० म शाहू के एक पुत्र हुआ था जो ३ वष की आयु मे मर गया। सकवारबाई के एक कया थी गजराबाइ जिसका विवाह वडगाँव के मल्हारराव बाडे के साथ हुआ था। सगुणाबाई के एक कया भी थी—राजसबाई—जिसका विवाह निम्बालकर परिवार म हुआ था। शाहू के लक्ष्मीबाई स दो अवध पुत्र भी थ—यसाजी तथा कुसाजी। उनको शिरोल की जागीर दी गयी और व शिरोलकर के नाम स प्रसिद्ध हुए। यसाजी क बालगोपालजी नामक एक पुत्र हुआ। शाहू की मत्यु के बाद रामराजा को महल म चार कयाएँ मिली—सन्तूबाई गजराबाई लक्ष्मीबाई तथा गुणवन्ता

थाई जो अपने को शाहू की कन्याएँ कहती थी। रामराजा ने उनको जून १७५० ई० मे निकाल दिया।[१४]

६ समकालीन सम्मति—मल्हार रामराव चिटनिस लिखता है—"अपनी दयालु तथा उपकारी प्रकृति के कारण शाहू ने अपनी समस्त प्रजा के प्रेम को जीत लिया। प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि अपने स्वामी का पूर्ण अनुग्रह केवल उसी को प्राप्त है। जो कुछ भी सेवा राज्य के प्रति की जाती वह खुनकर उसका पुरस्कार इनामो वृत्तियो या उपहारो के रूप मे देता। अपने अधिकारियो तथा सेवको के अवगुणो को वह सावधानी से गुप्त रखता, तथा उनके गुणो और विशेष क्षमताओ का वह उत्तम उपयोग करता। वह इससे भलीभाँति परिचित था कि उसके पिता सम्भाजी ने अपने निर्दय आचरण द्वारा योग्य सेवको को कठोर दण्ड देकर राज्य के हितो को हानि पहुँचायी थी। इन सेवको को महान शिवाजी ने बहुत उपक्रम से तयार किया था। इस प्रकार के कठोर उपायो से शाहू अपनी नीति मे सर्वदा दूर रहा और उसने सदा कोमल तथा अनुरंजक उपायो का उपयोग किया ताकि अपनी प्रजा के मन को जीत ले। हिन्दू देवताओ तथा ब्राह्मणो का वह अद्भुत आदर करता था। अपने समय को गुणवान तथा योग्य सेवकों की संगति मे व्यतीत करता तथा चचल और नीच मनुष्यो से वह सदैव अलग रहता। उसने सावधानी से वे इनाम तथा दान जारी रखे जिनका उपयोग पहले से मन्दिरो तथा अन्य धार्मिक कार्यों के लिए होता था। गुणवान पुरुषो को उसने एकत्र कर लिया तथा मराठा राज्य की उत्तम सेवा मे उनको लगा दिया। दरिद्रतम व्यक्ति को भी उसके पास स्वतन्त्र प्रवेश प्राप्त था तथा वह शीघ्र ही पक्षपातहीन न्याय प्राप्त करता। नीचतम प्रार्थी की भी उसने कभी उपेक्षा न की। अपने दौरो पर भी वह अपनी पालकी या घोडे को रोककर दुखी जन की प्रार्थनाएँ सुनता। कठोर तथा निर्दय दण्डो से उसको घृणा थी। हत्या के अभियोगो मे भी उसका दयालु हृदय कठोर प्रकार का प्राणदण्ड जैसे किसी ऊँचे स्थान से ढकेल देना, देने मे घबरा उठता।

इसका उल्लेख है कि शाहू की मृत्यु का समाचार सुनकर निजामुल्मुल्क के पोते मुजफ्फरजंग ने कहा था कि 'मराठा दरबार मे शाहू तथा मुगल दरबार मे निजामुल्मुल्क केवल ये ही दो महापुरुष हैं जिनके सदृश व्यक्ति मिलना अति कठिन है। अपने राज्य के हितो का उसने सावधानी से ध्यान रखा। उसके समान कोई नही हुआ। उसे अजातशत्रु की उपाधि देना न्यायसंगत होगा।

---

[१४] पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द ६, पृ० ६६, ६७, ६६।

'उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति को चुनकर शाहू ने अपने सैनिकों की योग्यता को प्रोत्साहित किया, तथा उनको अपना प्रबन्ध के लिए पर्याप्त धन देकर उत्तर भारत की समस्त दिशाओं में मराठा राज्य का विस्तार कर लिया तथा इस प्रकार उसने अपने पितामह शिवाजी की हार्दिक इच्छाओं को पूर्ण कर लिया।"

शाहू के चरित्र का एक विचित्र गुण यह था कि दूसरों को सुखी बनाने में वह उल्लास सुख का अनुभव करता था। इन व्यक्तियों में स्वयं उसके आश्रित या उसके प्रजाजन ही न थे परन्तु ऐसे व्यक्ति भी थे जो जाति धर्म या शासन के अनुसार विरोधी थे। वह स्वयं साधु जैसा सरल तथा मितव्ययी जीवन व्यतीत करता था परन्तु अपनी प्रजा को नाना प्रकार के व्यापारों तथा धन्धों में सुखी देखकर उसे अत्यन्त हर्ष होता था। इस विषय में तो उसको वास्तव में साधु कहा जा सकता है। जब उस पर वार करने के लिए हत्यारे भी उसके सम्मुख आते तो वह उनको बिना दण्ड दिये छोड़ देता तथा इस प्रकार उसने जनता के मन में अपने व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की सच्ची भावना उत्पन्न कर दी।[15]

७ चरित्र निरूपण—व्यक्तिगत रूप से शाहू न तो चतुर राजनीतिज्ञ था और न ही योग्य सेनाधिकारी, परन्तु उसकी जन्मजात सामान्य बुद्धि तथा उसके सहानुभूतिपूर्ण हृदय ने उसको इस कार्य के लिए समर्थ बना दिया था कि वह अन्य व्यक्तियों में इन गुणों को पहचान ले तथा अपनी सेवा के निमित्त उनका उपयोग करे। वह मनुष्य की योग्यता को ठीक ठीक जान लेता था तथा बिना ईर्ष्या या हस्तक्षेप के उनको स्वतन्त्र अवसर देता था। विशेषकर वह प्रजा के हितों को उन्नत करता, अनुर्वर भूमि पर खेती कराता, बाग-बगीचे लगाने में प्रोत्साहन देता, दरिद्रजन के कष्टों का निवारण करता तथा कष्टप्रद करों को हटा देता। उसने अपने बहनोई शंकरजी महाडिक को लिखा—"अपने प्रदेश का आपका प्रबन्ध विचित्र रूप से कठोर है। नर्मदा तथा रामेश्वर के बीच में ऐसा प्रबन्ध कहीं और देखने में नहीं आता है। क्या वह रयत आपकी है जो इस प्रकार स्वच्छन्दता से लूटी जाती है?[16]

शाहू अपने को जनता में से एक समझता था। वह स्वतन्त्रतापूर्वक उनसे मिलता जुलता, उनके हर्षों में सम्मिलित होता तथा उनके दुखों में उनका

---

१५ पत्रे यादी ३६ ३८, राजवाडे, खण्ड ६, पृ० १६ ८७, ८६ रमल पृ० १२० १३६।

१६ इतिहास संग्रह पेशवा दफ्तर पृ० २७५ २८६ *ऐतिहासिक टिप्पणियाँ* जिल्द २ पृ० ५ चिटनिस बखर, पृ० ८८।

साथ देना। त्योहारों, उत्सवों, भोजों, विवाह आदि अवसरों में वह बाह्यजन के साथ सक्रिय भाग लेता तथा ध्यान से उनकी दशा देखता। धनी और निर्धन समान रूप से उसको विवाहों तथा अन्य उत्सवों में निमन्त्रण देते और वह आनन्दपूर्वक उनमें सम्मिलित होता, उनके लिए धन व्यय करता तथा आवश्यकतानुसार उनकी सहायता देता।

कई समकालीन लेखक उसको उचित ही पुण्य श्लोक कहते हैं। वह योग्य अधिकारियों को नियुक्त करता तथा उनका विश्वास करता, किन्तु उनके दुराचरण के प्रति वह उनको दण्ड देने में शिथिलता भी नहीं करता था। जन साधारण के समक्ष वह साधारण वेशभूषा में ही उपस्थित होता अर्थात् सरल श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, नंगे सिर, श्वेत नट कंधों पर शोभा देता हुआ। वह घोड़े पर चढ़कर या कभी-कभी पालकी में इधर उधर घूमने जाता था। थोड़े से ही अनुचर उसके साथ होते, परन्तु उसका सचिव तथा उसके दफ्तर (लिपिक) सदैव उसके पास होते। उसका नित्य का कार्य स्थायी था। नियमपूर्वक वह नित्य प्रातःकाल शिकार खेलने जाता जो उसका एकमात्र व्यायाम तथा मनोरंजन था। नाश्ते (जलपान) के बाद वह कार्यालय में अपना कार्य करता, प्रत्येक विषय का निर्णय करता जो उसके सामने आता तथा प्रत्येक प्रार्थना को सुनता जो उससे की जाती। वह कार्य संध्या तक होता रहता, रात्रि प्रकाश के देवता को प्रथम प्रणाम करने के बाद पूर्ण दरबार लगता। यह हिसाब लगाया गया है कि वह कम से कम ५०० विषयों या अभियोगों पर नित्य आज्ञाएँ देता था। दिन के कार्य थोड़े से नृत्य तथा संगीत के बाद समाप्त हो जाते थे। अपनी मृत्यु के तीन वर्ष पहले तक वह कभी अधिक बीमार न हुआ। धूप, वायु तथा वर्षा की वह चिन्ता नहीं करता था तथा अपने सिर को शिकार के अवसर पर भी नंगा रखता था।

परन्तु शाहू के चरित्र में कुछ विचित्र गुण भी थे। उसका पालन पोषण मुगल शिविर के मुसलमानी वातावरण के बीच में हुआ था जबकि वह जीवन की अत्यन्त प्रभाव ग्रहणशील अवस्था में था। अतः स्वभावतः हिन्दू आचरण की अपेक्षा उसको मुस्लिम आचरण अधिक पसन्द था। पहले तो उसको इस हिन्दू आचरण का ज्ञान ही न था, यद्यपि अपने बाद के जीवन में वह इसको सीख गया था। उसका अन्तःपुर बहुत बड़ा था जो पासवानों, दासियों तथा उनकी रक्षा के निमित्त हिजड़ों से भरा रहता था।[१७] तथापि उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त शुद्ध था—यह औरंगजेब के कठोर स्वभाव के अनुरूप था। वह हुक्का अवश्य पीता था। इसी प्रकार वन्य पशुओं का शिकार करने तथा

[१७] उस समय उसके दरबार में बसवन्त खोजा एक सुपरिचित व्यक्ति था।

चिडिया को मारने का उसे शौक था। इस कार्य के निमित्त वह नित्य घोडे पर चढकर बाहर जंगलों में जाता। इस प्रकार उसको ताजा हवा मिल जाती तथा व्यायाम हो जाता। वर्षा ऋतु में वह मछली का शिकार करता और इस प्रकार में आनन्द प्राप्त करता। उसके जीवन में कोई व्यक्तिगत या गुप्त बात न थी। कोई भी किसी समय उससे मिल सकता था। उसके अपने मण्डल में गाने वाले, कलाम वाले, कवि तथा नाटक करने वाले थे। उसके पास अच्छे सधे हुए कुत्ते भी थे और वह उनकी संतति का विशेष ध्यान रखता था।[१८] इनके समान ही उसको उच्च जाति के सुशिक्षित घोडे तथा चिडिया का शौक था। वह उनकी जातियों तथा रूपों और लक्षणों को भलीभांति जानता था। सामग्रियाँ इत्र चाकू तलवारें तम्बाकू बारूद सदृश नाना प्रकार की दुर्लभ वस्तुओं के भी खरीदने की आज्ञाएँ उसने काहाजी आंग्र के द्वारा यूरोपीय व्यापारियों को दीं।[१९] हाथी दांत का वह बहुत मूल्य देता था। उसको अच्छे बागों का भी बहुत शौक था। विभिन्न स्थानों से लाये हुए दुर्लभ फल फूलों के पेडों के लगाने की उसने आज्ञा दी। इस प्रकार के लिखित पत्र बहुधा मिलते है— आपको आज्ञा हुई है कि प्रत्येक वर्ष २० हजार शिवपुरी आमों के बीज बोयें। मुझको विवरण सहित वर्णन मिलना चाहिए कि वहाँ पर कब और किस प्रकार के वृक्ष लगाये गये हैं तथा वास्तविक परिणाम क्या रहा है। पूना जिले में आम के बाग नहीं है। इसकी ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।'

शाहू के दयालु हृदय की यह मोहक शक्ति उसके समस्त जीवन में दृष्टिगत होती रही। हृदय के शासन में कुछ ही इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति शाहू के व्यक्तित्व के सन्निकट पहुँच सकते हैं। इस विषय में स्वयं उसकी मुद्रा का स्वीकृत वाक्य सुस्पष्ट है 'मेरे सदृश तुच्छ व्यक्ति भी अन्त में सर्वव्यापक ईश्वर की शक्ति का एक भाग है।[२०] शाहू की उदार निःस्वार्थ नीति ने ही मराठा शक्ति को इस प्रकार शीघ्र प्रसरण की सामर्थ्य प्रदान की।

---

[१८] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १८ पृ० ७० ७१ १६। पूर्ण विवरण के लिए देखिए पेशवा दफ्तर संग्रह, ८ तथा १६।

[१९] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द ८ पृ० ५१ ५२ ५६ ५५ जिल्द १८ पृ० १७ २१। इतिहास संग्रह पेशवा दफ्तर, पृ० २७५ २८८।

[२०] वर्धिष्णुर्विक्रमो विष्णो सा मूर्तिरिव वामनी।
शम्भुसूनोरसौ मुद्रा शिवराजस्य राजते॥
(राजवाडे खण्ड २०, पृ० ६० १६४)

इन्दापी कस्बे का एक उपाख्यान उद्धरण योग्य है। पेशवा की सेना में वह एक छोटे से पद पर था। उसको निमन्त्रण प्राप्त

८ शाहू की उदारता—मनुष्य जीवन के समस्त निर्माणकाल म १७ वष तक मुगल शिविर म शाहू के ब दी जीवन की वेदना की कल्पना कुछ ही मनुष्य कर सकते है। इसका परिणाम यह हुआ कि जब वह गद्दी पर बैठा तो उसकी यह इच्छा कभी न हुई कि अपन पिता तथा पितामह के समान वह रणक्षत्र म गौरव प्राप्त कर। इसक साथ ही साथ उसन समस्त सत्ता का भार पशवा के हाथा म सौंप दिया जिसक कारण लोग बिना साच समझ यह विश्वास करने लग कि शाहू क चरित्र म अनक प्रकार के दाप ह वह मनुष्य का नही पहचानता वह शक्ति का उपयाग करन के लिए तथा मनुष्या पर शासन करन के लिए सीमा म अधिक कोमल है, वह भारतीय राजनीति का नही जानता, उसम वह कठारता नही है जा एक विशाल वद्धमान राज्य के जटिल कार्यों के प्रब ध म आवश्यक होती है। पर तु क्या इस प्रकार का निणय उस प्रमाण के आधार पर उचित कहा जा सकता है जा इस समय पर्याप्त मात्रा म हमारे पास है? पूव पृष्ठा म शाहू की प्रयत्नशील जीवन कथा का पूण वणन हा चुका है। केवल एक ही तथ्य कि उसन बाजीराव के महान गुणा को पहचान लिया तथा उनके विकास क लिए उसका स्वत त्र अवसर दिया उस सकीण विचार का सवथा असत्य सिद्ध कर देता है। सम्राट स मेलमिलाप करक उसने मराठा सत्ता क प्रसरण का सुनिश्चित कर दिया।

हुआ कि वह स्वय शाहू का मुजरा करन जाय। वह विशाल तथा भव्य रूप से सुसज्जित अनुचर-वग लकर ढोल बजाता हुआ ठेठ राजा क महल तक गया। यह साधारण प्रथा के विरुद्ध था—जा यह थी कि बहुत दूर स व्यक्ति पैदल जाये तथा समस्त बाज ब द कर द। शाहू के विविध अधिकारी ने सुझाव दिया कि इस धृष्ट सरदार का बलपूवक राक दिया जाय। इसका परिणाम सम्भवत कोई शाचनीय घटना हा सकती थी। शाहू न कहा—'कोइ बात नही। उसको इच्छानुसार आने दो। मै इसका स्वय समझ लूगा।' तब शाहू आया तथा दरबार म अपनी जगह बठ गया। उसक साथ उसका प्यारा कुत्ता भी था जिसक सिर पर उसन अपनी पगडी रख दी। इ द्राजी पदल सगव प्रणाम करता हुआ ठीक महाराजा क सम्मुख आ गया। शाहू ने शातिपूवक कहा—"आइए कदमराजे, आप वास्तव म वीर पुरुष हैं।' और उस अपने पास ही के एक आसन पर बैठा लिया। इ द्रोजी तुर त उस विचित्र ढग का ताड गया जिसम व शब्द कहे गय थ तथा उसन वह ढग भी देख लिया जिसम कुत्ता गद्दी के पास हा पगडी पहन बठा हुआ था। उसका घोर दु ख हुआ, और उठकर उसन अपनी अशिष्टता क प्रति बारम्बार क्षमा याचना की। इस प्रकार उसन एक शिक्षा ग्रहण की जिसका वह आजन्म न भूला। (हमत निर्ल १, पृ० १२६)

सामान्य हिन्दू मुसलमान के हित में सम्राट जहाँगीर तथा अन्य राजपूत राजाओं के साथ उसने स्थायी मैत्री स्थापित कर ली। उत्तर तथा दक्षिण के बीच में लगभग एक शताब्दी तक भारी सांस्कृतिक विनिमय होता रहा जिसका कर्ता निस्सन्देह शाहू है।

निश्छल त्याग तथा सबके प्रति सद्भावना द्वारा प्रेरित नम्र अनुनय विनय की नीति द्वारा शाहू उज्ज्वल परिणामों को प्राप्त करने में सफल हो गया। उस समय से जबकि वह मराठों की गद्दी पर आसीन हुआ उसने इस नीति को अपने जीवन का सिद्धान्त बना लिया जिसने उसको यह सामर्थ्य दी कि अपनी मृत्यु शय्या पर भी वह यह कह सके कि उसने किसी के प्रति अन्याय नहीं किया। जब औरंगजेब की मृत्यु पर शाहू मराठा राजगद्दी पर बैठा उस समय दक्षिण में वास्तव में कोई राज्य या नियमित शासन विद्यमान न था। मराठा नेता अपने लुटेरे गुण्डों सहित समस्त देश में घूम रहे थे तथा निरासरा के मुगल साम्राज्य पर चढ़ते थे उसे लूट रहे थे। उन्होंने सैनिक शिक्षण प्राप्त किया था उनके पास युद्ध का गम्भीर अनुभव था तथा वे अपनी शक्तियों का व्यय एक दूसरे का गला काटने में करते थे। इनको किस प्रकार शान्त किया जाय? जब तक उनको अपने घर से दूर उपयुक्त कार्य प्राप्त न होगा वे निश्चय ही गृहयुद्ध में एक दूसरे का नाश कर देंगे जिसको ताराबाई ने पहले से ही आरम्भ कर रखा था। यह समस्या थी जो शाहू तथा उसके दूरदर्शी मन्त्री बालाजी विश्वनाथ के सम्मुख उपस्थित थी। शाहू ने इन नेताओं को एकत्र किया तथा सम्भवतः उसने उनको इस प्रकार सम्बोधित किया—

देखिए! न आपके पास धन है, और न हमारे पास। आपका एकमात्र धन आपके पुष्ट शरीर है। परन्तु यदि आप परिस्थिति को ठीक-ठीक समझें तो आप अपने लिये लाभदायक क्षेत्र निर्माण कर सकते हैं तथा उसके साथ साथ मराठा राज्य की स्थापना में आप सहज योग भी दे सकते हैं। समस्त मुगल प्रदेश आपका है यदि आप जाकर उसको हस्तगत कर लें। आप धन उधार ले लें अपनी युद्ध सामग्री बना लें आप चाहें जहाँ भ्रमण करें अपने थाने बनायें वहाँ बस जायें दूसरों को बसा लें अपने महल तथा अपनी राजधानियाँ बनायें समस्त शत्रुओं से उनकी दृढ़तापूर्वक रक्षा करें अपने ही धनागार तथा व्यापारिक उद्योग स्थापित कर लें कृषि की वृद्धि करें विदेशी बाजारों पर अधिकार कर लें, परन्तु ये समस्त कार्य आप अपनी सहायता के भाव से तथा समस्त जन के प्रति सद्भावना से करें। किसी को अकारण हानि न पहुँचायें, और जहाँ कहीं आप जायें आप ध्यान रखें कि आपका स्वागत

किया जाय। इस प्रकार हमारा राष्ट्र उन्नति करेगा।" यह उपाय है जिसको शाहू ने स्वयं अपने जीवन में मूर्तिमान कर दिया तथा जिसकी शिक्षा उसने अपने राष्ट्र को दी।

शाहू के उपदेश को हार्दिक समर्थन प्राप्त हुआ तथा वह कार्यान्वित किया गया। दाभाडे ने गुजरात में कार्य किया। रघुजी भोसले ने नागपुर में अपने को स्थापित कर लिया। पवार धार तथा देवास में बस गये, होल्कर इन्दौर में सिन्धिया उज्जैन में, तथा बाद में इसी प्रकार बुन्देलखण्ड में भी उपनिवेश स्थापित किये गये। इस प्रकार समस्त मराठा उपनिवेश मराठा जातियाँ तथा मराठा संस्कृति, जो आज हम महाराष्ट्र के बाहर देखते हैं वे सब शाहू तथा उसके पेशवाओं द्वारा स्थापित किये गये थे। यह किसी प्रकार अकस्मात् होने वाला अविचारित विकास न था, अपितु यह लोक-कल्याणकारक अहिंसक सिद्धान्तों की पूर्व विचारित योजना थी जो उस समय की राजनीति में प्रयुक्त की गयी। शाहू ने केवल वह कार्य प्रचलित रखा जिसका आरम्भ शिवाजी ने किया था तथा जिसमें कुछ समय तक अपूर्व-दृष्ट परिस्थितियों ने विघ्न बाधा उपस्थित कर रखी थी। हिन्दुओं तथा उनके धर्म का भारत में कोई स्थान न था न उनका कोई समर्थक था। ईश्वर ने शिवाजी के रूप में देश को एक समर्थक दिया। जैसे ही उपयुक्त समय प्राप्त हुआ शाहू ने अपने को अवसरानुकूल सिद्ध कर दिया, उसने संकेत ग्रहण कर लिया तथा शिवाजी की नीति के उन तत्त्वों को छोड़कर जिनके प्रति वह अपने को अयोग्य समझता था, उसने परम्परागत मराठा प्रवृत्तियों को एक नवीन प्रवाह में बदल दिया जहाँ पर हिन्दू हितों की रक्षा हो गयी। यह कार्य घृणा की नीति द्वारा सम्पादित नहीं किया गया बल्कि सद्भावना की दृष्टि से हुआ जो कि समान मात्रा में मुसलमानों को भी प्राप्त थी। अनेक बार बाजीराव ने प्रस्ताव किया कि वह महाराष्ट्र में आसफजाह के शासन का अन्त कर दे परन्तु शाहू ने उसको रोक दिया। ९ फरवरी १७४० ई० को नासिरजंग पर अपनी विजय का समाचार भेजते हुए बाजीराव ने अपने पुत्र को लिखा—'इस समय मैं इस स्थिति में हूँ कि मुगलों का सम्पूर्ण नाश कर दूँ यदि महाराजा अपने समस्त सरदारों को केवल यह आज्ञा दे दें कि वे मेरी सहायता के लिए अविलम्ब उपस्थित हो जायें। यदि वह मेरी प्रार्थना का उत्तर नहीं देगा मैं इस कार्य को केवल सन्धि-वार्ता द्वारा लाभदायक शान्ति स्थापित कर समाप्त कर दूँगा।'[२१]

शाहू की कृपालु मनोवृत्ति इस प्रकार के वाक्यों में पूर्णतया स्पष्ट हो जा

---

[२१] शिवचरित्र साहित्य, जिल्द ७, पृ० ७।

उसने अपने सहायकों के नाम ये [illegible] लिखे थे— आप छत्रपति के पुराने सेवक हैं आपने निष्ठापूर्ण निःस्वार्थ सेवा की है तथा रायगढ़ के समय से (अर्थात् जब से रायगढ़ मराठा राजधानी बना) आपने कठोर परिश्रम किया है। अतः यह मेरा परम कर्तव्य है कि आपके तथा आपके परिवार के कल्याण का ध्यान रखूँ आदि, आदि। इस प्रकार के पत्र निस्सन्देह हृदय को राजा के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा से भर देते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है शाहू मुस्लिम प्रथाओं का उतना ही आदर करता था जितना कि अपनी प्रथाओं का। उसने सतारा में [illegible] पूजन की प्रथा आरम्भ की जिसके निमित्त वह सम्राट के शिविर से अपने साथ गालिब की उपाधि से विभूषित एक [illegible] को लाया था। उस सनद में जिसके द्वारा इस गालिब को एक इनाम दिया गया था यह वर्णन है—

उच्च सत्कार प्राप्त मुस्लिम धर्मावलम्बी आप सब [illegible] चुने हुए सरदार हैं। अतः आपको सरदेशमुख की उपाधि सहित सतारा के गढ़ पर अधिकार देता हूँ जहाँ पर सिंहासन रखा। बेगम जीनतुन्निसा आपको पुत्र की भाँति मानती थी। यह गालिब अपने साथ सम्राट का सोने का हाथ लाया था जो बेगम ने उसको दिया था। शाहू आजीवन श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा करता रहा। गालिब लोग अब भी सतारा में रहते हैं। मुसलमान तथा हिंदू साधुओं के बीच में शाहू कोई भेदभाव न रखता था। ब्रह्मेन्द्र स्वामी, कांचेश्वर बावा, ठाकुरदास बावा, रामदासी साधुओं, गोसाइयों तथा अन्य साधुओं का वह समान रूप से आदर सत्कार करता था। बिना भेदभाव के वह सब को इनाम तथा उपहार देता था। उसका आश्रय ईसाइयों को भी प्राप्त था। बसई के पतन के बाद उसने ईसाई पादरियों तथा उनके पूजा स्थानों का पूर्ण ध्यान रखा। समस्त धर्मों के प्रति समान सम्मान उसके रक्त में व्याप्त था। औरंगजेब की पुत्री जीनतुन्निसा उसके साथ अपने पुत्र के समान व्यवहार करती थी तथा वह भी सदैव अपनी माता की भाँति उसका सम्मान करता था।

तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि शाहू सर्वथा निष्कलंक शासक था। उसकी अपनी निर्बलताएँ तथा अपने अवगुण थे। उसकी ढिलमिल नीति तथा कुप्रबन्ध के कारण उसके अनेक अभियान—यथा जंजीरा का अभियान—निष्फल रहे जहाँ कठोरता तथा अविलम्ब कार्य की आवश्यकता थी। उसकी नीति में एक अन्य अवगुण यह भी था कि उसका प्रशासन प्रगतिशील न था। समस्त मराठा प्रशासन में उसकी अपरिवर्तनशीलता व्याप्त थी।

९. शाहूनगर—शाहू की राजधानी सतारा एक गढ़ का नाम था न कि उस नगर का जो अब उस पहाड़ी के नीचे बसा हुआ है। शाहू ने सर्वप्रथम

१७२१ ई० म वहा पर गढ के नीचे निवास किया तथा अपने दरबारियो को आना दी कि वे भी अपन मकान उसके मकान के समीप बना लें। इस प्रकार शीघ्र ही एक नगर बस गया जिसका नाम उसने अपने नाम पर शाहूनगर रखा। १७०८ ई० मे जब उसका राज्याभिषेक हुआ, तब वह उस गढ म ही राजसिंहासन पर आसीन हुआ था। इस सिंहासन को लगभग १७२१ ई० म वह इस गढ से हटाकर इस नवीन शीघ्र उन्नति करने वाले नगर मे अपने रग महल नामक राजभवन को ले आया। शाहू का यह महल १८७४ ई० मे जला दिया गया तथा इसके स्थान पर अब केवल पुराना कुआ है जिसको "सिंहासन कूप" कहते है। अन्य प्राचीन भवन जो आज तक खडे हुए है उनको शाहू के सौ वर्ष पीछे महाराजा प्रतापसिंह ने बनवाया था। पूना के मोहल्ला की भांति प्राचीन नगर के विभिन्न मोहल्ला के नाम सप्ताह के दिनो के नाम पर है। इनके अतिरिक्त ये मोहल्ले और भी है—यादा गोपाल पेठ, वेंकटपुरा (वेंकट राव घारपडे के नाम पर जिसने बाजीराव की बहन अनुबाई स विवाह किया था), चिमनपुरा (चिमनाजी दामोदर मोघे के नाम पर), दुर्गापुरा राजसपुरा, रघुनाथपुरा आदि। शाहू ने इस नये नगर के लिए अच्छे पीने के पानी का भी प्रबन्ध किया था, जो महादारा तथा यवतेश्वर की पहाडिया स नलो म आता था। कृष्णेश्वर का मंदिर इस समय भी दशको का चास के कृष्णराव जोशी का स्मरण दिलाता है। वह बाजीराव की पत्नी काशीबाई का भाई था। नगर म शाहू ने एक टकसाल भी बनवायी थी। इसका प्रबन्ध महाजनो के एक प्रसिद्ध मण्डल को सौपा गया था जिसका अध्यक्ष तानशट भुर्के था।

शाहू की प्रगतियो का अधिक विस्तार म वर्णन स्थानाभाव के कारण यहा नही दिया जा सकता, परन्तु इनका पर्याप्त वर्णन मराठी पुस्तको म है।

तिथिक्रम

अध्याय १३

४ जनवरी, १७५०	रामराजा का अभिषेक तथा विवाह ।
मार्च, १७५०	ताराबाई का सिंहगढ जाना ।
१ अप्रैल, १७५०	रघुजी भोंसले का सतारा आना ।
१८ अप्रैल, १७५०	पेशवा का सतारा से पूना जाना ।
२६ अप्रैल, १७५०	सदाशिवराव का पार्वतीबाई से विवाह ।
जून, १७५०	ताराबाई का सिंहगढ़ से पूना आना ।
१४ जून, १७५०	चिमनाजी नारायण सचिव बन्धन में ।
६ जुलाई, १७५०	सिंहगढ़ का उससे हस्तान्तरण ।
२४ जुलाई, १७५०	सचिव मुक्त ।
अगस्त, १७५०	रामराजा पूना मे रघुजी भोंसले के साथ, विशाल सम्मेलन आयोजित तथा अनेक प्रस्ताव स्वीकृत ।
८ सितम्बर, १७५०	रघुजी का नागपुर जाना ।
२५ सितम्बर, १७५०	सदाशिवराव का सगोला को प्रतिनिधि से छीन लेना तथा वैधानिक नियम निर्माण करना ।
२६ अक्टूबर, १७५०	ताराबाई सतारा को वापस ।
१७ नवम्बर, १७५०	रामराजा सतारा को वापस ।
२२ नवम्बर, १७५०	रामराजा ताराबाई के निरोध मे ।
आरम्भिक मास १७५१	पेशवा कर्नाटक मे, पेशवा के विरुद्ध ताराबाई की प्रगतियाँ ।
१६ जुलाई, १७५१	ताराबाई द्वारा आनन्दराव जाधव तथा सतारा के अन्य रक्षकों का वध करना ।
१४ सितम्बर, १७५२	जेजूरी में ताराबाई तथा पेशवा के बीच में मेल ।
१८ दिसम्बर, १७६०	कोल्हापुर के सम्भाजी की मृत्यु ।
२३ जून, १७६१	पेशवा नाना साहब की मृत्यु ।
९ दिसम्बर, १७६१	ताराबाई की मृत्यु ।
२२ सितम्बर, १७६२	जीजाबाई का शिवाजी को गोद लेना ।
२३ मार्च, १७६३	रामराजा का विधिपूर्वक अभिषेक ।
१७ फरवरी १७७३	जीजाबाई की मृत्यु ।

अध्याय १३

राजतन्त्र को खतरा

[१७५० १७६१]

१ रामराजा प्रतिष्ठापित।

२ सगोला मे वधानिक क्रान्ति।

३ रामराजा निरोध में।

४ ताराबाई से मेल।

५ कोल्हापुर का सम्भाजी।

६ पेशवा के उद्देश्य तथा उसकी निबलताएँ।

सरदारा को यह विश्वास दिला दिया कि रामराजा उसी का पौत्र है, और इस प्रकार यह नवयुवक असंदिग्ध रूप से ताराबाई का पौत्र मान लिया गया।

बृहस्पतिवार, ४ जनवरी, १७५० ई० पौष शुक्ला प्रतिपदा शक संवत १६७१ को उसे नगर के बाहर अपने निवास स्थान से एक जलूस में सुन्दरता से सजे हुए नगर में होकर लाया गया तथा शाहूनगर में तीसरे पहर देर से वह सिंहासनारूढ़ हुआ। चूँकि अभिषेक के लिए प्रतिनिधि की उपस्थिति आवश्यक थी और जगजीवन प्रतिनिधि कारागार में था अत विशालगढ़ के कृष्णाजी पंत का पुत्र भवनराव सतारा लाया गया और ताराबाई ने उसको प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। भगवन्तराव अमात्य को भी इस अवसर पर सतारा बुलाया गया तथा उसको उसके पद-वस्त्र दिये गये। रामराजा के उत्तराधिकार के समर्थन में भगवन्तराव का मुख्य हाथ था। ८ फरवरी को तुकाबाई (शिर्के) तथा कानजी मोहित की पुत्री सगुणाबाई से उसका विवाह हुआ।[1]

ताराबाई रामराजा को सदैव बच्चे की तरह रखती थी यह नियन्त्रण उसके लिए अति दुःखद हो गया। आरम्भ से ही उसने उसके समस्त कार्यों पर कठोर नियन्त्रण रखा और उसको पेशवा के साथ मिलने जुलने तक से रोक दिया ताकि वह प्रशासन में अपने महत्त्व को स्थिर रख सके तथा पेशवा के प्रबल प्रभाव का नाश कर दे। कुछ समय तक गुप्त रूप से वह यह चाल चलती रही और अपने हाथों में शक्ति संचय का प्रयत्न करती रही। उसने इस बीच रामराजा को प्रशासन का अनुभव प्राप्त करने अथवा स्वतन्त्र रूप से सत्ता का उपयोग करने का कोई भी अवसर नहीं दिया। चूँकि उस समय वह लगभग ७५ वर्ष की थी मराठा राज्य का उत्तम हित-साधन केवल इसी में था कि राजा पेशवा के साथ एक होकर उसके परामर्श से कार्य करे। रामराजा की भी स्वभावत यही इच्छा थी कि वह अपनी दादी के विरुद्ध पेशवा का समर्थन करे परन्तु इस प्रकार के आचरण से वह महिला और भी क्रुद्ध हो गयी। परिणामत वे दोनों शीघ्र ही एक-दूसरे के घोर विरोधी हो गये। ताराबाई उससे घृणा करने लगी तथा उसको खुलेआम गालियाँ देने लगी जिससे वह और भी अधिक उत्तेजित हो गया। फरवरी १७५० ई० में पुरन्दरे लिखता है— यदि राजा उसके साथ अकेला कुछ समय तक रह जाये तो निश्चय ही वह स्वयं अपनी इच्छानुसार उसको कारागार में बन्द कर देता। परन्तु

---

[1] नाना रोजनिशी खण्ड १ पृ० १२५ १२६, इतिहास संग्रह—पेशवा दफ्तर, पृ० ३।

वस्तुस्थिति ने विपरीत रूप धारण किया। कुछ ही महीनों मे ताराबाई ने रामराजा को सतारा के गढ म बंद कर दिया तथा उस पर कडा पहरा लगा दिया।

इस समय पेशवा परिस्थिति का अवलोकन शान्तिपूर्वक कर रहा था। उसने शीघ्र ही समस्त प्रशासन को पूना स्थानान्तरित करके, छत्रपति तथा उसकी दादी को सतारा म स्वतन्त्रतापूर्वक काय करने के लिए छोड देने का निश्चय किया। चिमनाजी नारायण सचिव तथा प्रतिनिधि का मुतलिक यमाजी शिवदेव ताराबाई के मुख्य समथक थे, तथा पेशवा की प्रत्येक प्रगति का विरोध करते थे। माच के आरम्भ म ताराबाई के पति की वर्षी आ गयी[२] जो सिंहगढ म हुआ करती थी, जहाँ पर उसका देहान्त हुआ था। अत उस अवसर पर उपस्थित होने के बहाने से ताराबाई सतारा से चल दी तथा उस गढ म जाकर ठहर गयी और वहाँ से पेशवा के विरुद्ध नवीन षड्यन्त्र आरम्भ कर दिये।

२६ दिसम्बर १७४६ ई० से १८ अप्रैल १७५० ई० तक पेशवा सतारा म ठहरा। इस बीच उसने नवीन छत्रपति की सत्ता को स्थिर करने तथा उत्तम राजहित म उसको अपने कर्तव्य पालन की शिक्षा देने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। राजपरिवार के गार्हस्थ्य कार्यों म इस समय वह इतना उलझ गया था कि महत्त्वपूर्ण बाह्य कार्यों की ओर अपना ध्यान न दे सका। अत उसने अपने विश्वस्त कार्यकर्ताओं को रघुजी भोसले के पास भेजा तथा उसको यथा सम्भव वेग से सतारा आने का निमन्त्रण दिया क्योंकि परिस्थिति का सँभालने के लिए उत्तरदायी पद पर स्थित वह अत्यन्त उपयुक्त पुरुष था। रघुजी वहाँ अप्रैल के आरम्भ म पहुँचा तथा दोनों ने एक या दो सप्ताह तक साथ साथ स्थिति का अवलोकन किया। पेशवा ने रघुजी से आग्रह किया कि वह सतारा म ठहर जाये तथा यथाशक्ति रामराजा को अपने कर्तव्य-पालन के योग्य बनाने का प्रयत्न करे। रघुजी सतारा म ८ जुलाई तक ठहरा रहा लेकिन पेशवा १८ अप्रैल को पूना चला गया। वहा पर उसकी उपस्थिति आवश्यक थी क्योंकि उसके पुत्र विश्वासराव का यज्ञोपवीत संस्कार होने वाला था तथा सदाशिवराव का विवाह जिसकी पहली पत्नी का हाल ही मे देहान्त हो गया था। पेशवा दीक्षित को लिखता है— मैं सात महीनों से सतारा मे ठहरा हुआ हूँ। नवीन छत्रपति से सतत वाग्युद्ध हो रहा है। वह सर्वथा शक्तिहीन है। वह अपना निश्चय नही कर सकता। वह अपनी ओर से कोई उपक्रम

---

[२] फाल्गुन वदी ६=३ माच, १७०० ई०।

नहीं कर सकता। मैं चाहता हूँ कि आप अपनी ओर से कुछ उपाय बतायें जिससे मैं स्वामी की सद्भावना प्राप्त कर लूँ तथा स्वतन्त्र रूप से राज्य के आवश्यक कार्यों की ओर अपना ध्यान दे सकूँ।

इस प्रकार सतारा में छत्रपति के कार्यों में भारी अड़चन उत्पन्न हो गयी। जब ताराबाई को मालूम हुआ कि उसके उद्देश्य पूर्ति के लिए रामराजा का प्रयोग नहीं हो सकता तो उसने उसकी कठोर निन्दा की और घोषित कर दिया कि वह वंचक है तथा वास्तव में अपने पिता का पुत्र नहीं है यद्यपि स्वयं उसने पहले उसको औरस घोषित किया था। इस विनाशकर प्रहार से रामराजा की क्या दशा हुई होगी—इसकी कल्पना करना ही उचित है। अनेक माननीय मराठा सज्जन तथा परिवार जिनको अपने वंश की शुद्धता तथा उसके रक्षण की सदैव चिन्ता रहती थी, ताराबाई द्वारा रामराजा के इस स्पष्ट परित्याग पर अत्यन्त दुखी हुए। उच्च सम्मानित मराठा सामन्त बुरहानजी मोहिते को इस घटनाचक्र पर अत्यन्त क्रोध हुआ। वह नागपुर में बहुत दिनों से रघुजी भोसले के साथ रहता था तथा हाल ही में उसने अपनी पुत्री का ब्याह रामराजा से किया था।[१] सैकड़ों मराठा सामन्त बुरहानजी के घर पर इकट्ठा हो गये और उन्होंने वहाँ धरना देकर आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। उन्होंने वृद्धा दादी ताराबाई की बहुत-बहुत निन्दा की और कहा—"उसी ने हमसे कहा था कि अपनी कन्याओं का विवाह इस राजा से कर दें, और अब वह यह कहती है कि वह अपने पिता का औरस पुत्र नहीं है। कितनी लज्जा की बात है! बुरहानजी आप हम सबको पहले मार डाले और फिर इन नवविवाहिता कन्याओं को मार डालें। इस प्रकार विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी। शान्ति स्थिर रखने के लिए सेना से रक्षक बुलाये गये। ऐसा आभास होने लगा कि बुरहानजी बाबा कोई कठोर निर्णय का निश्चय करेगा और एक या दो दिन में ही आत्महत्या कर लेगा। जब सतारा में इस प्रकार की स्थिति हो गयी तो पेशवा वहाँ से पूना को चला गया। वह इस सामाजिक कष्ट के निवारण का कोई मार्ग न ढूँढ सका जो धर्मात्मा राजा शाहू के देहान्त के कुछ दिन बाद ही शाहूनगर की राजधानी में उपस्थित हो गया था जिसकी उसे कोई आशंका भी न थी।

२. सँगोला में वैधानिक क्रान्ति—पेशवा ने तब ताराबाई से आग्रहपूर्वक पूना आने की प्रार्थना की। वह सहमत हो गयी तथा जून में सिंहगढ़ से पूना

---

[१] बुरहानजी की एक बहन शाहू की स्वर्गीय रानी सगुणाबाई थी तथा दूसरी रघुजी भोसले की पत्नी तथा मुधोजी की माता थी।

पहुँच गयी। उसके साथ उसके पक्षपाती भगवन्तराव अमात्य तथा चिमनाजी नारायण सचिव भी थे। पेशवा ने महाराजा से भी सतारा से पूना आने की प्रार्थना की और वह अगस्त में वहाँ आ गया। इस प्रकार नाना प्रकार की मति तथा विचार के नेता पूना में एकत्र हो गये। रघुजी भोसले तथा सरलश्कर सोमवंशी भी वहां थे। उत्तर से सिन्धिया तथा होल्कर भी आये थे। सदाशिवराव भाऊ रामचन्द्र बाबा, महादोबा पुरन्दरे सखाराम बापू जो पेशवा के दल का उस समय उदीयमान कूटनीतिज्ञ था—ये सब तथा अन्य व्यक्ति कई सप्ताह तक निष्कपट स्पष्ट वार्तालाप करते रहे। पेशवा ने यथाशक्ति कोई कामचलाऊ समझौता कराने का प्रयास किया जिससे प्रशासन अविघ्न रूप से स्थापित हो जाये तथा मराठा सत्ता का तीव्र प्रसार सुनिश्चित हो जाय। इस प्रकार का सम्मेलन मराठा इतिहास में अपने महत्त्व तथा विचारों की विभिन्नता दोनों दृष्टियों से अपूर्व था। अन्त में पेशवा ने निश्चित किया कि समस्त कार्यालयों को सतारा से हटाकर पूना ले आये तथा छत्रपति और ताराबाई को सतारा में अकेला छोड दे। पेशवा ने दृढतापूर्वक सभा के मन पर यह अंकित कर दिया कि राज्य के हित में यह आवश्यक है कि समस्त कार्यवाहक शक्ति उसके हाथों में रहे। उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह प्रतिनिधि या सचिव या किसी अन्य व्यक्ति की ओर से प्रशासन में हस्तक्षेप सहन न करेगा। चूंकि उस समय सिंहगढ़ पर सचिव का अधिकार था तथा वह पेशवा के विरुद्ध षडयन्त्र का केन्द्र बन सकता था, इसलिए उसने यह स्पष्ट माँग रखी कि सचिव के अधिकार से यह गढ उसके अधिकार में आ जाय। इस प्रस्ताव की लिखित स्वीकृति छत्रपति ने दे दी तथा ताराबाई इसके कारण और अधिक क्रुद्ध हो गयी। सचिव ने गढ को समर्पित करने से इन्कार कर दिया। अतः वह तुरन्त बन्दी बना लिया गया (१४ जून) तथा एक सेना गढ पर बलपूर्वक अधिकार करने के लिए भेज दी गयी। गढ ने ६ जुलाई को आत्मसमर्पण कर दिया। २४ जुलाई को सचिव को मुक्त कर दिया गया[४] और क्षति का पर्याप्त निस्तार लेकर उसे घर जाने की आज्ञा दे दी गयी।

यह समय मराठा राज्य के लिए संकटपूर्ण था। समस्त भारत की आँखें पूना पर लगी हुई थी। सबको यह देखने की उत्कण्ठा थी कि शाहू की मृत्यु के पश्चात उपस्थित संकट का अन्त किस प्रकार होता है। पेशवा का यह निश्चय था कि उसको पूर्ण सत्ता प्राप्त हो जाय। रघुजी भोसले ने हृदय से उसका

४ नाना साहब रोजनिशी खण्ड १, पृ० ४३, पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द ६, पृ० ६३।

समर्थन किया तथा मराठा राज्य के भावी प्रशासन के लिए सगठित प्रबन्ध निश्चय करके ८ सितम्बर को वह नागपुर अपने राज्य को चला गया।

यह सर्वविदित था कि सचिव की भांति प्रतिनिधि भी ताराबाई का पक्ष पाती है। दादोबा प्रतिनिधि म व्यक्तिगत रूप स कोई योग्यता न था परन्तु उसका मुतलिक यमाजी शिवदेव चतुर तथा षड्यन्त्रकारी था। दादोबा पुरन्दर के गढ म बन्द था, परन्तु वहाड तथा पण्ढरपुर के बीच के महत्वपूर्ण प्रदेश पर उसका अधिकार था। यह प्रदेश सतारा के समीप पूरब की ओर सुलभ क्षेत्र था जहाँ स मुतलिक पेशवा के विरुद्ध कुचेष्टा कर सकता था। सगोला पण्ढरपुर के समीप छोटा-सा दुर्गीकृत स्थान था जिस पर प्रतिनिधि का अधिकार था। जिस प्रकार पेशवा न सचिव स सिंहगढ़ को माँगा था उसी प्रकार उसन प्रतिनिधि से इस स्थान को माँगा। पेशवा ने प्रतिनिधि तथा उसके मुतलिक को पूना म अपने महत्वपूर्ण सम्मेलन म बुलाया था और वहाँ पर उनको अधिकारपूर्वक वे शर्तें बता दी थी जिन पर वह उन्हे मुक्त करने को तयार था, तथा उनको धमकी दी थी कि यदि वे आगा पीछा करेंगे तो वह उन्हे उनके पृथक स्थानो से निकाल देगा। जसे ही रघुजी नागपुर को रवाना हुआ, पेशवा ने सदाशिवराव भाऊ तथा रामचन्द्र बाबा को पर्याप्त सेना सहित रामराजा की अध्यक्षता म यमाजी शिवदेव स सगोला छीनकर अपना अधिकार कर लेने के लिए भेजा। शिवदेव न प्रतिरोध उपस्थित किया और दो सप्ताहो का अल्प सघर्ष भी हुआ किन्तु पेशवा के तोपखाने से वह परास्त हो गया तथा दशहरा के दिन २५ सितम्बर को, उसन सगोला को सदाशिवराव के हाथो म सौंप दिया। मगलवेढा के समीपवर्ती स्थान पर भी अधिकार कर लिया गया तथा भविष्य म रक्षा के निमित्त यह स्थान विश्वस्त पटवर्धनो के सुपुर्द कर दिया गया। इस प्रकार प्रतिनिधि का विरोध शान्त कर दिया गया।

सगोला उस समझौते के लिए प्रसिद्ध हो गया है जिसकी रूपरेखा छत्रपति की आज्ञा से मराठा राज्य की भावी व्यवस्था के लिए यहाँ पर तयार की गयी। रामचन्द्र बाबा के मस्तिष्क स इस योजना का उदय हुआ था तथा सदाशिवराव के बाहु बल द्वारा यह कार्यान्वित हुई। इस प्रकार शान्तिपूर्वक सम्पूर्ण क्रान्ति सम्पादित हो गयी तथा छत्रपति से हटकर समस्त सत्ता पेशवा को प्राप्त हो गयी। शाहू की मृत्यु के ६ मास के भीतर ही छत्रपति पेशवा के हाथ का खिलौना बन गया। इस नवीन व्यवस्था का सार निम्नलिखित है। अष्टप्रधान की प्रथा पहले से ही लुप्त हो गयी थी तथा शाहू के अन्तिम वर्षों से ही प्रधानमन्त्री (पेशवा) सर्वोपरि सत्ता का उपभोग करने लगा था। अन्य मन्त्री जो इस समय विद्यमान थे, वे केवल प्रतिनिधि, सचिव तथा सेनापति

थ। शिवाजी की प्रथा क चार अन्य मन्त्री महत्त्वहीन हो गय थ। इनके बाद सचिव पूण रूप स नि मत्व हो गया। प्रतिनिधि की समस्त हानिकारक शक्ति को छीनन क लिए भवनराव अव सगोला बुलाया गया तथा छत्रपति द्वारा वह विधिवत प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। यमाजी शिवदव न पशवा के विरुद्ध युद्ध किया था अत वह भी अपना अधिकार खो बठा और उसका भतीजा वासुदव अनन्त मुतलिक नियुक्त हुआ क्योंकि वह पशवा के अधिक अनुकूल था। सनापति यशवन्तराव दाभाडे अपने अनिवाय अवगुणो के कारण अयोग्य सिद्ध हो गया था अत उसको निर्वाह के लिए नकद भत्ता द दिया गया और गुजरात क सूब को पशवा तथा गायकवाड न आपस म आधा-आधा बाट लिया।

बाबूजी नायक जोशी पशवा के लिए एक अन्य काटा था जो कर्नाटक पर अपना पूण अधिकार प्रकट करता था। भविष्य म इस प्रकार के समस्त स्वत्व प्रतिपादना स वह वचित कर दिया गया तथा कर्नाटक के सूब का प्रबन्ध स्वय पशवा न ग्रहण कर लिया।

सतारा मे रामराजा की स्थिति भी निश्चित कर दी गयी। गोविन्दराव चिटनिस महाराजा का मुख्य प्रब धक नियुक्त किया गया। उसका भतीजा बापूजी खान्देराव महाराजा की सेना का मुख्य अधिकारी नियुक्त हुआ तथा सुव्यवस्था स्थापित रखने म उसको मन्द दन के लिए त्र्यम्बक सदाशिव उफ नाना पुरन्दरे पशवा क प्रतिनिधि क रूप म नियुक्त किया गया। यशवन्तराव पोटनिस तथा दवराव लापाम छत्रपति के व्यक्तिगत साथी तथा परामशक नियुक्त हुए। सगोला म अन्य अनक छोटी नियुक्तिया भी की गयी, किन्तु उनक विवरण की यहाँ कोइ आवश्यकता नहा है। रामराजा की बहन दरियाबाई को आशा थी कि रामराजा को सिंहासन पर बठन म किसी भी प्रकार से उसन जो भाग लिया है उसका कुछ ठोस पुरस्कार उसको भी मिलगा। अत उसका पति निम्बाजी नायक निम्बालकर अप्पाजी सामवशी के स्थान पर सरलशकर नियुक्त किया गया। सामवशी अपन पद स हटा दिया गया। फतेहसिंह भोसल का प्रबन्ध अस्तव्यस्त हो रहा था अत पशवा का एक विश्वस्त आश्रित व्यक्ति त्र्यम्बक हरि पटवधन अक्कलकोट म फतहसिंह भोसले का मुख्य प्रबन्धक नियुक्त कर दिया गया।

इस प्रकार भाऊ साहब तथा रामचन्द्र बाबा न साथ मिलकर बलपूवक शीघ्र ही उस असह्य परिस्थिति का अन्त कर दिया जो अकस्मात उत्पन्न हो गयी थी, तथा छत्रपति की आज्ञा स नवीन व्यवस्था की रचना की। रामराजा द्वारा पशवा की नीति क साथ हार्दिक सहयोग तथा सम्पूण सामजस्य से ताराबाई बहुत रुष्ट हो गयी। सत्ता का मूल स्थान छत्रपति ही था अत

ताराबाई ने निश्चय किया कि उसको अपने नियन्त्रण में रखे। पेशवा को विफल करने के अभिप्राय से वह अक्टूबर के मध्य में पूना से चल पड़ी। शम्भु महादेव का दर्शन करने के बाद वह २९ अक्टूबर को सतारा पहुँच गयी। इस बीच में उसने अपने पक्षपाती दल तथा सुसज्जित सेना का सगठन कर लिया था। पूना से उसने सतारा गढ़ के संरक्षक शेख मीरा को लिखा कि वह पर्याप्त सामग्री का संचय कर ले तथा उसकी रक्षा के निमित्त तैयार हो जाय। अपने आगमन पर उसने समस्त अधिकारियों तथा रक्षकों को इस बात पर विवश कर दिया कि वे उसके प्रति व्यक्तिगत रूप से निष्ठा तथा आज्ञाकारिता की शपथ ग्रहण करें। कुछ को धन दिया गया तथा कुछ को अन्य प्रलोभन दिये गये। इस प्रकार वे सब राजी कर लिये गये। नीचे के राजमहल से वह रामराजा की नाना रानियों को तथा मूल्यवान सम्पत्ति को गढ़ में ले आयी। अक्टूबर में रामराजा सगोला में था। नवम्बर के आरम्भ में सदाशिवराव से विदा लेकर तथा मार्ग में शम्भु महादेव का दर्शन करता हुआ १७ नवम्बर को वह सतारा पहुँचा और नगर के अन्दर अपने राजमहल में ठहर गया। सदाशिवराव ने उसको अच्छी तरह समझा दिया था कि वह अपने अधिकार का प्रयोग करे तथा अपनी राजधानी से अपनी दादी की हरकतों पर नियन्त्रण रखे। परन्तु वह यह कार्य न कर सका।

३. *रामराजा निरोध में*—२२ नवम्बर को चम्पा षष्ठी थी और इस दिन भोंसले परिवार के इष्टदेव की पूजा होती थी। यद्यपि महाराजा को पहले से सचेत कर दिया गया था परन्तु वह बिना रक्षक दल साथ लिये गढ़ पर धर्म-कार्य निमित्त चढ़ गया। उसको आशा थी कि वह वृद्धा की शंकाओं को दूर कर देगा। परन्तु सर्वप्रथम सम्मिलन में ही जो व्यक्तिगत रूप से हुआ ताराबाई ने पेशवा का समर्थन करने के कारण उसकी भर्त्सना की और उसको उपदेश दिया कि वह केवल उसी को अपना मार्गदर्शक माने। रामराजा को यह उपदेश नहीं भाया तथा जब वह तीसरे पहर घोड़े पर बैठकर तथा पालकियों में अपनी रानियों को साथ लेकर गढ़ से उतरने लगा तो द्वाररक्षकों ने जिनको पूर्व-सूचना प्राप्त हो गयी थी उसको बन्दी बना लिया तथा उसको ताराबाई के पास ले गये जिसने उस पर कड़ा पहरा लगा दिया। बापूजी चिटनिस तथा अन्य व्यक्तियों ने जो नीचे नगर में थे, इस स्थिति की सूचना पाते ही उसकी मुक्ति प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया परन्तु जब सभी फाटक बाहरी लोगों के लिए बन्द हो गये तो यह असम्भव हो गया कि बिना किसी नियमित घेरे अथवा गोलाबारी के बन्दी को मुक्त किया जा सके।

मराठों को यह अत्यन्त दुर्गति थी। इससे ताराबाई को यह सामर्थ्य

प्राप्त हो गयी कि वह आज्ञाएँ जारी कर सके तथा प्रशासन को अपने हाथों में ग्रहण कर अपनी सत्ता का तुरन्त उपयोग कर सके। उसने अपने सम्मुख दादाजी प्रतिनिधि तथा मुतलिक बन्धुओं अन्ताजी और यमाजी शिवदेव को बुलाया। यमाजी के साथ उसका पुत्र गामाजी भी था जिसने समीपवर्ती जिलों से उसकी सहायतार्थ धन जन का संग्रह किया था। इस पर पेशवा शान्त रहा और उसने कोई रोष प्रकट न किया बल्कि आश्चर्यजनक रूप में नम्र वृत्ति धारण कर ली। उसने पुरन्दर को लिखा— मेरी लेशमात्र भी इच्छा नहीं है कि अपनी स्वामिनी राजमहिषी का विरोध करूँ। आप अवश्य उसकी कृपा की याचना करें तथा उसको यह समझायें कि हमारे शत्रु किस प्रकार इस स्थिति से लाभ उठायेंगे जबकि ये अशुभ समाचार दूरस्थ दिल्ली तक पहुँचेंगे। आप इसका भी पता अवश्य लगायें कि छत्रपति का निरोध नाममात्र के लिए प्रदर्शन के रूप में है या यह उसके लिए हानिकारक है तथा कहाँ तक इसकी सम्भावना है कि वे एक दूसरे का साथ देकर हमारे विरुद्ध कार्य करेंगे। मुझको इसकी भी सूचना मिलनी चाहिए कि कौन से व्यक्ति उनके विश्वास में है तथा कौन उनके विरोधी है। दरियाबाई की इस विषय में क्या वृत्ति है ?'

पुरन्दर ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—'ताराबाई के आदमी रामराजा पर कठोर पहरा लगाये हुए हैं। वह मेरे पास करुणाजनक प्रार्थनाएँ भेजता है कि उसको मुक्त करा लूँ। पेशवा ने पुरन्दर को कहा कि ताराबाई से अनुनय करे कि वह अधिक नम्र वृत्ति धारण करे। "यदि वह इस पर उतारू ही है कि वह महाराजा को कठोर कारागार में ही रखे और प्रशासन को स्वयं चलाये, तो समस्त मराठा राज को जनता में अपमान होगा। महारानी के लिए यह किसी प्रकार सम्भव नहीं है कि गढ़ पर अपने सुखद निवास से वह राजनीतिक कार्यों का निरीक्षण करे जो दिल्ली से रामेश्वर तक के विशाल क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह मेरे लिए असम्भव नहीं है कि मैं उसको पुनः कैद में डाल दूँ परन्तु मैं यह दुखदायी उपाय नहीं करना चाहता हूँ क्योंकि मुझको यह स्मरण है कि हम तीन पीढ़ियों से छत्रपति के सेवक हैं। मेरी ओर से कोई भी निग्रहात्मक उपाय स्वामी के विरुद्ध विद्रोह की भाँति मालूम होगे। मैं इस उपाय से कितनी ही हानि सहकर भी दूर रहना चाहता हूँ। मैं सुविधापूर्वक गढ़रक्षकों के परिवारों को निरोध में डाल सकता हूँ तथा उनको तंग कर सकता हूँ ताकि उनको अपने विश्वासघात का दण्ड मिल जाये। मैं गढ़ पर घेरा भी डाल सकता हूँ तथा समस्त बाह्य जगत से संचार को बन्द कर सकता हूँ। परन्तु मैं इससे दूर हूँ। मधुर भाषा द्वारा आप महिला को उचित मार्ग पर ले आयें। कृपया महाराजा को यह आश्वासन दें कि उनके कल्याण

के निमित्त हमको बहुत ही अधिक चिन्ता है। उसको कह दें कि वह कुछ समय के लिए महारानी की इच्छावश हो जाय और महारानी को आश्वासन दे कि वह चाहे जो कुछ करे मैं तो सदैव उसका अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक ही रहूँगा। आप शान्तिपूर्वक यह प्रबन्ध अवश्य करें कि महाराजा हमारे विचारों से पूर्णतया सहमत हो जाय। किसी भी कारणवश आप उन पुरोहितों तथा संरक्षकों से कृपा की याचना न करें जो ताराबाई के वेतनभोगी हैं।

पेशवा के इन नम्र शब्दों का अर्थ ताराबाई ने गलत लगाया जिसके कारण उसकी शत्रुवत वृत्ति और भी कठोर हो गयी। इस वाद विवाद तथा शब्दों के विनिमय में कई मास व्यतीत हो गये। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी था जिससे पेशवा को यह इच्छा न हुई कि वह ताराबाई के विरुद्ध कठोर उपायों का उपयोग करे। कर्नाटक में इस समय हलचल मची हुई थी। १७५० ई० के अन्तिम मासों में नासिरजंग ने उस क्षेत्र में प्रबल अभियान का नेतृत्व किया था जिसके कारण पेशवा स्वयं वहाँ जाने पर विवश हो गया। अतः वह यह नहीं चाहता था कि वह दो कठिन कार्यों में एक साथ अपना हाथ डाले।

जब रामराजा गढ़ में कठोर कारागार में था, उसकी समस्त सम्पत्ति आभूषण बहुमूल्य वर्तन तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ नाच महल में थीं। पेशवा ने आज्ञा दी कि वे सब राजधानी में एकत्र की जायें उनकी सूची तैयार की जाय तथा उन्हें पुरन्दर में सुरक्षित रखा जाय। इसके दो उद्देश्य थे—प्रथम कि ताराबाई उनका अपहरण न कर ले तथा वे महाराजा को उचित समय पर वापस दे दिये जायें। द्वितीय कि वह उस कलंक से बचा रहे जो शायद पेशवा के नाम पर लग जाय कि उसने राजा के समस्त बहुमूल्य पदार्थों का अपहरण कर लिया है।[८]

जनवरी १७५१ ई० में पेशवा तथा उसके चचेरे भाई सदाशिवराव ने कर्नाटक के लिए प्रस्थान किया ताकि नासिरजंग की प्रगतियों पर ध्यान रखें। सतारा के कार्यों के प्रबन्ध के लिए उसने विश्वस्त कारकूनों के अधीन पर्याप्त सेना नियुक्त कर दी थी। सतारा से पुरन्दर पेशवा को नित्य समाचार भेजा करता था। कई वक्तव्य विशेष उपायों के प्रस्ताव भी भेजता यथा ताराबाई के विरुद्ध शक्ति का उपयोग किया जाय जिससे वह अधीन हो जाय या उसको अलग कैद किया जाय तथा जिस प्रकार सम्भव हो सके उस प्रकार प्रशासन का संचालन किया जाय या कोल्हापुर से सम्भाजी

[८] पुरन्दर दफ्तर संग्रह जि० १ पृ० २२५ ३६८ में रामराजा के कार्यों का विस्तृत वर्णन है। पेशवा दफ्तर संग्रह जि० ६ पृ० १८७ १९३, राजवाड़े संग्रह भाग ६ पृ० २०३ ५५३।

को लाया जाय जो ताराबाई तथा रामराजा दोना की शक्ति का विरोध करे। पशवा ने धयपूवक अच्छी परिस्थिति की प्रतीक्षा की तथा अपनी अनुपस्थिति के काल म उसने कोई कठोर उपाय न किये।

४ ताराबाई से मेल—अपन स्वामी तथा प्रभु छत्रपति का निरोध म रखन के कारण समस्त मराठा जाति ने एक स्वर से ताराबाई की निन्दा की। समयान्तर म रामराजा क प्रति उसकी घणा इतनी तीव्र हो गया कि वह क्रोध की दशा म उसके प्रति कटु शब्दा तथा गन्दी भाषा का उपयोग भी करन लगी। प्रतिक्षण वह यही कहती कि राजा उसक पुत्र शिवाजी का पुत्र नहा है बल्कि वचक है। राजा के लिए यह भारी घातक प्रहार था। तथ्य कुछ भी हो स्वय रामराजा को अपने जन्म के विषय म कुछ पता न था तथा अपनी दादी की कठोर वृत्ति के प्रति वह उत्तरदायी न था। केवल वही उसकी भाग्य विधाता थी क्योंकि वही उसको अधकार स प्रकाश म लायी थी। शाहू की मृत्यु के पश्चात उसके व्यवहार पर समस्त नतिक नियत्रणा का लोप हो गया था तथा वह क्रूर और अनियम्य हो गयी थी। इस बीच म उसका मित्र दमाजी गायकवाड दाभाडे परिवार के साथ पशवा के विरुद्ध गरजता हुआ आया तथा उसके प्रदेश का नाश करन लगा। परन्तु वह सतारा के पास रोक दिया गया तथा पूण रूप स अधीन कर लिया गया। दमाजी का यह पराजय महिला की समस्त योजनाओ तथा उपायो के लिए घातक सिद्ध हुई और इसस वह और भी अधिक क्रुद्ध हो गयी। रामराजा की स्थिति का समाचार प्राप्त करन का प्रयास करन के कारण उसन सतारा गढ के रक्षक आनन्दराव जाधव का वध करा दिया (१६ जुलाई १७५१ ई०)। इसी प्रकार उसके रक्षको तथा सवको का वध किया गया या उनको अकथनीय यातनाओ को सहन करना पडा। जब उसको मालूम हुआ कि दादोबा प्रतिनिधि उसके कार्यों का प्रबन्ध करन म समथ नही है, तो उसन प्रतिनिधि का स्थान बाबूजी नायक जोशी को देने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उसन दादोबा तथा बाबूजी के बीच मे अनावश्यक खुला युद्ध करा दिया। उसन निजाम के दरबार से नीच षडयन्त्र आरम्भ कर दिया तथा पेशवा का पन्त उसन उसके मन्त्री रामदास पन्त को देने का वचन दिया। यह समझना कठिन है कि इस समस्त प्रवृत्ति के द्वारा वह मराठा राज्य की किस प्रकार सेवा कर रही थी। परन्तु पशवा न अपन धय तथा साहस द्वारा समस्त विरोध को पराजित कर दिया तथा समस्त दिशाओ म उसको इस प्रकार विफल कर दिया कि एक वष के निष्फल सघष के बाद उसको मालूम हुआ कि उसके पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही है कि वह पेशवा से सन्धि कर

ले तथा उससे उचित शर्तें प्राप्त करने का प्रयत्न करे। जून १७५१ ई० में उसने अपने दो कार्यकर्ताओं—चिंतो अनंत तथा मोरो शिवदेव—को पेशवा से शांति का प्रस्ताव करने भेजा। पेशवा की प्रथम माँग यह थी कि रामराजा को मुक्त कर दिया जाय। यद्यपि यह कार्य पूर्णतया सफल न हो सका परन्तु ताराबाई इस बात पर तैयार हो गयी कि वह रामराजा सहित गढ़ से उतर आयेगी तथा नीचे नगर में निवास करेगी। बाद में वह पूना जाकर पेशवा से मिली परन्तु उसने इस विचार का घोर विरोध किया कि वह रामराजा को मुक्त कर दे या कोई अधिकार उसको दे दे। अन्त में, जब पेशवा ने प्रशासन में व्यवहार रूप से स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त कर लिया, उसने राजा तथा उसकी दादी दोनों को अपने शक्तिशाली योग्य तथा विश्वस्त अधिकारी त्र्यम्बकराव पेठे के अधीन सतारा को वापस भेज दिया। उसको आज्ञा थी कि दोनों पर कठोर नियन्त्रण रखे। इस प्रकार सितम्बर १७५१ ई० में काफी जोड़ तोड़ के बाद शांति की स्थापना हुई जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे की चाल को भलीभांति समझते थे। जब निजाम ने उस वर्ष के अंतिम मासों में पेशवा के प्रदेश पर आक्रमण किया ताराबाई ने दादोबा प्रतिनिधि को आज्ञा दी कि वह जाकर पेशवा की सहायता करे। पेशवा ने प्रतिनिधि को सब सवार वापस भेज दिया क्योंकि उसके पास कोई सेना न थी। पेशवा ने कूटनीतिपूर्ण भाषा में उत्तर दिया कि देवों के केवल आशीर्वाद से ही वह निजाम द्वारा उत्पन्न संकट के निराकरण में समर्थ हो जायगा।[१] चूँकि ताराबाई ने दादोबा से उसका प्रतिनिधि का पद छीन लिया था और उस पद को बाबूजी नायक को दे दिया था अतः दादोबा तथा उसका मुतालिक यमाजी दोनों ताराबाई के विरुद्ध पेशवा के मित्र हो गये।[२]

ताराबाई तथा पेशवा के बीच में बैर शांति की पुष्टि बाद में शपथ द्वारा हो गया जो उन दोनों ने १४ सितम्बर १७५२ ई० को जजूरी के देवता के सम्मुख ग्रहण की। इस सम्मिलन के अवसर पर ताराबाई ने गम्भीरतापूर्वक घोषित किया कि रामराजा वास्तव में अपने पिता का पुत्र नहीं है और उसके आगमन से छत्रपति का वंश कलंकित हो गया है इस कारण से उसका निराकरण कर दिया जाय तथा कोल्हापुर से सम्भाजी को सतारा की

---

१ राजवाड़े संग्रह खण्ड ६ पृ० २८५ २८६, शाहू रोजनिशी पृ० ११८।

२ शाहू रोजनिशी खण्ड ६ पृ० २३४ २४३ २४४, पेशवा दफ्तर संग्रह खण्ड ६ पृ० २१० २१५ पत्र यादी ११४।

राजगद्दी पर बैठाया जाय।[८] जेजूरी म ताराबाई तथा पेशवा के बीच म लिखित सहमति स्थापित हो गयी जिसम निम्नलिखित शब्द है—"यह राजा झूठा है जिसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है। परन्तु उसका वध न करना चाहिए। फतहसिंह बाबा या यसाजी कुशाजी की भाति ही उसके साथ अनौरस पुत्र का व्यवहार होना चाहिए तथा जीवन की समस्त आवश्यकताएँ उसको प्राप्त होनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो उसका निरोध म रखा जाये, पर तु उसका वध न किया जाये। समयान्तर मे ताराबाई तथा पशवा क बीच म पूण रूप स वर शान्ति हो गयी, तथा उसके जीवन क अन्तिम चार वर्षों म उन दोना मे पूण प्रेम था। उसने १४ जनवरी, १७६१ ई० को पानीपत म होन वाली राष्ट्रीय विपत्ति देखी तथा उसके दस मास बाद सतारा मे ६ दिसम्बर, १७६१ ई० (=बृहस्पतिवार ११ जमादी उलन्वल) को उसका देहान्त हो गया।

ताराबाई द्वारा सत्ता के अपहरण-काल म रामराजा का अति दुखित जीवन व्यतीत करना पड़ा था। उसकी मृत्यु तक वह निरोध म रहा। उसक बाद पेशवा माधवराव प्रथम ने २३ माच १७६३ ई० को शाहूनगर म रामराजा का विधिपूवक अभिषेक किया।[९] इसके बाद उसकी दशा तो काफी सुधर गयी, परन्तु छत्रपति क रूप म वह अपनी सत्ता का प्रयोग कभी न कर सका। इस काय क लिए न तो उसको कभी कोई शिक्षा मिली थी और न उसमे इस काय की योग्यता ही थी।

यह समझ म नही आता कि पशवा क प्रति अपन विरोध द्वारा ताराबाई किस प्रकार मराठा राज्य की दशा को उन्नत कर सकती थी। पशवा को यह श्रेय है कि अति उत्तेजना की दशा म भी उसन आश्चयकारी शान्ति धारण की तथा वृद्धा और पूजनीया महिला के विरोध म उसने कोई कायवाही न की तथा जिसके कारण उसका अपन बहुमूल्य समय के तीन मूल्यवान वष नष्ट करन पड़े। उसकी उत्कट इच्छा थी कि इस समय का उपयोग वह उत्तर भारत म कर। इसका परिणाम हुआ—कुप्रबन्ध अन्त कलह तथा प्रमाद, जो पानीपत की विपत्ति के पूव सकेत थ। यह दुख की बात है कि ताराबाई सदृश योग्य महिला न जिसन युवावस्था म औरंगजेब के विरुद्ध सघष म अपूव सफलता प्राप्त की थी, अपन बाद के जीवन का सवथा दुरुपयोग किया।

---

[८] राजवाडे सग्रह, खण्ड ६, पृ० २५७ ट्रीटीज एण्ड इगजमटस, पृ० ४५, इतिहास सग्रह—पशवा दफ्तर, पृ० ७, न० ८।

[९] शाहू रोजनिशी—६६।

उत्तराधिकार प्रश्न को हल करना चाहता था। परन्तु पूरी जाँच के बाद पुत्र के जन्म का वृत्तान्त असत्य पाया गया, तथा बाद में व्यक्तिगत रूप से पेशवा माधवराव से मिलने पर स्वयं जीजाबाई ने भी इसे स्वीकार कर लिया। उस समय अपनी व्यक्तिगत स्थिति के सम्बन्ध में उसके सम्मुख घोर संकट उपस्थित था तथा कोल्हापुर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर वह और कोई कष्ट उठाना न चाहता था, अतः उसने जीजाबाई को किसी ग्राह्य बालक को गोद लेकर उसे कोल्हापुर का छत्रपति बना देने की आज्ञा प्रदान कर दी। फलस्वरूप उसने १७६२ ई० के दशहरा के दिन (२७ सितम्बर) खानवत शाखा से एक बालक को गोद ले लिया तथा उसका नाम शिवाजी रखा। १७ फरवरी, १७७३ ई० को अपनी मृत्यु तक जीजाबाई उस राज्य का कार्य-संचालन करती रही।

६. **पेशवा के उद्देश्य तथा उसकी निर्बलताएँ**—पेशवा बालाजीराव के शासन का द्वितीय अर्द्धभाग (१७४९-१७६१ ई०) अनेक कारणों से भारत के इतिहास में स्मरणीय है। इसी काल में भारतीय क्षितिज पर ब्रिटिश सत्ता का उदय हुआ जिसने भारत पर प्रभुत्व स्थापना के निमित्त हुए संघर्ष में मराठों का विरोध किया। जबकि नवीन छत्रपति सतारा में गद्दी पर प्रतिष्ठापित हो गया, पेशवा ने तीन मुख्य उद्देश्य अपने सम्मुख रखे—निजाम का दमन करना, कर्नाटक क्षेत्र को अधीन करना तथा दिल्ली के दरबार में मराठा प्रभाव स्थापित करना। ताराबाई की समझौता न करने की वृत्ति तथा रामराजा की अयोग्यता के कारण मराठा राज्य के उत्तम हित के विचार से पेशवा राज्य के प्रशासनीय विभागों को पूना हटा लाया। यहाँ पर तीन योग्य व्यक्ति उपलब्ध थे—उसका अपना चचेरा भाई सदाशिवराव जो निर्भीक कार्य-अधिकारी था, रामचन्द्र बाबा सुखतनकर जो उच्च श्रेणी का धनाधिकारी तथा कूटनीतिज्ञ था और महादोबा पुरन्दरे जो मराठा राज्य का निस्वार्थ तथा दूरदर्शी सेवक था। इन सब ने निष्ठापूर्वक उसकी सेवा की।

शाहू की मृत्यु के बाद सतारा तथा पूना के बीच के प्रदेश में अव्यवस्था तथा कुशासन की घोर दशा व्याप्त हो गयी थी। चोरियाँ, डकैतियाँ तथा हत्याएँ इस मात्रा में होने लगी कि जीवन तथा सम्पत्ति कुछ समय तक अरक्षित हो गये। ये ताराबाई द्वारा प्रशासन में अकारण हस्तक्षेप के स्पष्ट परिणाम थे। यह अव्यवस्था उस समय और भी अधिक बढ़ गयी जब स्वयं छत्रपति को घोर नियन्त्रण में डाल दिया गया। उसके पास अपनी कोई सम्पत्ति न थी तथा उसके जीवन के प्रति प्रत्येक क्षण संकट उपस्थित था। छत्रपति के परिवार में गड़बड़ी की यह प्रतिक्रिया शीघ्र ही जनसाधारण में प्रकट हो गयी। इसकी एकमात्र औषधि यही थी कि उस वृद्धा को बन्धन में

डाल दिया जाता जैसा कि शाहू के समय में हुआ था और छत्रपति को उसके स्थान पर पुनः स्थापित कर दिया जाता। परन्तु पेशवा ने इस प्रकार का उपाय करने से इन्कार कर दिया तथा इस प्रकार उसमें तथा महादोबा पुरन्दरे में मतभेद उत्पन्न हो गया।[10]

यह पेशवा की परीक्षा का समय था कि जब ताराबाई ने शत्रुता वृत्ति धारण की उसमें तथा महादोबा पुरन्दरे में मतभेद उत्पन्न हो गया। सदाशिवराव तथा रामचन्द्र बाबा ने सतारा में कुछ साहसी तथा कठोर उपाय करके परिस्थिति की रक्षा कर ली थी परन्तु पेशवा ने इस कार्य को अपने अधिकारों पर आक्रमण माना। सतारा में सदाशिवराव के कार्य का उसने घोर विरोध किया तथा इस विषय पर दोनों भाइयों में स्पष्ट मनमुटाव हो गया। इस परिस्थिति में महादोबा शान्तिपूर्वक समस्त राज्यकार्य से हट गया तथा सासवड़ में अपने घर को वापस चला गया और इस प्रकार उसने अपनी क्षमतानुसार इस तनाव को कम कर दिया।

पर सदाशिवराव ने विपरीत कार्यपद्धति का आश्रय लिया जिसमें रामचन्द्र बाबा ने प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता प्रदान की। उसने पेशवा द्वारा समादृत दयालु पद्धति का अनुमोदन न करते हुए प्रशासन के संचालन हेतु पेशवा से पूर्ण अधिकार माँगा। अपनी शक्ति को किसी कारण भी समर्पित करने से पेशवा ने इन्कार कर दिया। इस पर सदाशिवराव ने त्यागपत्र देने की धमकी दी और कहा कि वह कोल्हापुर के राजा सम्भाजी के यहाँ नौकरी कर लेगा। सम्भाजी ने उसको पत्र लिखकर अपने पेशवा का स्थान उसको देने का प्रस्ताव किया था। इसके साथ वह उसे पाँच हजार की जागीर और भीमगढ़, पारगढ़ तथा वल्लभगढ़ के अपने तीन प्रसिद्ध गढ़ों पर अधिकार भी देने को तैयार था। ये सब गढ़ कोल्हापुर तथा बेलगाम की सीमा पर थे।[11] सौभाग्यवश कलह का समाधान शीघ्र हो गया और कोई अनिष्ट घटना न घटित हुई। ये बातें १७५० ई० के अन्तिम मासों में तब हुई जब सदाशिवराव अपने सँगोला के अभियान के बाद पेशवा से मिला।

अपने पिता बाजीराव के विपरीत पेशवा बालाजीराव में एक भयंकर अवगुण था। वह सैनिक न था तथा स्वयं सैनिक अभियानों का संचालन न

---

[10] पुरन्दरे दफ्तर संग्रह, खण्ड १ पृ० २२४ २२५ २६७ २७५, ३४५, ३५४ पुरन्दरे डायरी पृ० ७१ ८१, ८३, पेशवा दफ्तर संग्रह, २३ ४३ पत्र यादी १०३।

[11] पुरन्दरे डायरी, पृ० ६०, पत्रे यादी ७२।

कर सकता था। इस अवगुण को ढकने के लिए उसको प्राय अन्य व्यक्तियो का आश्रय लेना पडता था जिनके कारण वह महान सकटो म फँस जाता था। इससे सिन्धिया तथा होल्कर प्रबल हो गये तथा व्यवहारत स्वतन्त्र हो गये। अत पेशवा न अपनी जाति तथा विश्वास के नवयुवक तैयार किये—यथा, त्र्यम्बकराव पठे, गोपालराव पटवधन विसाजी कृष्ण बिनिवले बलवन्तराव महेनडल तथा अन्य व्यक्ति। परन्तु इनमे से किसी को भी वह उत्तर म नही भेज सकता था जहाँ दो शक्तिशाली सामन्तो सिन्धिया तथा होल्कर, पर उसका नियन्त्रण आवश्यक था। रामचन्द्र बाबा उस समय के सावजनिक सवको म सर्वाधिक धनिक था, अत वह स्वयमेव एक सत्ता बन गया। पेशवा के प्रतिनिधि के रूप म उसने सिन्धिया परिवार के कार्यों का नियन्त्रण तथा निरीक्षण करते हुए अत्यधिक धन का सग्रह कर लिया। जयप्पा को रामचन्द्र बाबा के लोभ के कारण उससे घृणा हो गयी थी, अत उसन रामचन्द्र बाबा को दक्षिण वापस बुला लेन के लिए पेशवा को विवश कर दिया। ठीक इसी समय शाहू का देहान्त हो गया। बाबा ने सदाशिवराव को कई लाख रुपये दिये तथा सगोला के समझौत को कार्यान्वित करन म उसका मागदर्शन किया। रामचन्द्र बाबा का देहान्त पूना मे ४ अक्टूबर, १७५४ ई० को हो गया। उसने पूना म एक घर बनवाया था जिसमे कहा जाता है कि सात मजिलें थी। उस समय वह अपन ढग का प्रथम मकान था।

तिथिक्रम

अध्याय १४

२२ नवम्बर, १७५०	उमाबाई दाभाडे का आलन्दी मे पेशवा से मिलना।
५ दिसम्बर, १७५०	नासिरजग की हत्या।
३१ जनवरी, १७५१	मुजफ्फरजग की हत्या।
३१ जनवरी, १७५१	पेशवा तथा सदाशिवराव का कर्नाटक जाना।
जनवरी मार्च, १७५१	दमाजी गायकवाड का पेशवा के प्रदेश पर धावा।
१८ फरवरी, १७५१	पेशवा की सेना की खानदेश में बहादुरपुरा के स्थान पर पराजय।
१० मार्च, १७५१	दमाजी पूना के समीप।
१५ मार्च, १७५१	दमाजी येन्या के समीप परास्त।
२१ ३० मार्च, १७५१	दमाजी तथा पेशवा मे सतारा के पास मुठभेड़ें।
२६ मार्च, १७५१	पेशवा पनगल मे।
१२ अप्रल, १७५१	पेशवा का सतारा को प्रस्थान।
२४ अप्रैल, १७५१	पेशवा सतारा में, दमाजी से गुजरात का आधा भाग मांगना।
३० अप्रल, १७५१	पेशवा का दमाजी के शिविर पर धावा, दमाजी बन्दी।
११ मई, १७५१	दमाजी पूना मे बन्दी।
२२ मई, १७५१	पेशवा का पूना पहुँचना।
२२ अक्टूबर, १७५१	रघुनाथराव का गुजरात को प्रस्थान।
१४ नवम्बर, १७५१	दमाजी का लोहगढ़ को स्थानान्तरण।
३० मार्च, १७५२	दमाजी आधा गुजरात देने को तयार।
२३ जून, १७५२	दमाजी का पूना मे उच्च आदर।
२५ अप्रल, १७५३	अहमदाबाद अधिकृत—पुन हाथ से निकल जाना।
२३ नवम्बर १७५३	उमाबाई दाभाडे की मत्यु।
१८ मई, १७५४	यशवन्तराव दाभाडे की मत्यु।
११ अक्टूबर १७५७	अहमदाबाद पर पुन अधिकार।
४ मार्च, १७५९	सूरत पर अंग्रेजों का अधिकार।
१८०३	भड़ौंच पर अंग्रेजों का अधिकार।

अध्याय १४

गुजरात मे दमाजी गायकवाड

[१७४९-१७५९]

१ पेशवा पर दमाजी का आक्रमण। २ पेशवा का उत्तर।
३ पेशवा की विजय। ४ अहमदाबाद पर अधिकार।
५ सूरत तथा भडौंच।

१ **पेशवा पर दमाजी का आक्रमण**—१७५० तथा १७५१ इ० के वर्ष महाराष्ट्र तथा साधारणतया दक्षिण के लिए अपूर्व हलचल के वर्ष थे। पेशवा तथा ताराबाई के बीच म सत्ता के निमित्त घोर सघर्ष आरम्भ हो गया, तथा उसी प्रकार पडोस का हैदराबाद राज्य घरेलू सकटो म पूर्णतया फँस गया। नासिरजग तथा मुजफ्फरजग ने कर्नाटक पर आक्रमण किया तथा शीघ्र ही एक दूसरे के बाद दोनो की हत्या कर दी गयी, प्रथम की ५ दिसम्बर १७५० ई० को और दूसरे की आगामी ३१ जनवरी को। अब पेशवा को अवसर था कि वह उस राज्य के कार्यों मे हस्तक्षेप करे तथा वहा पर अपनी प्रभुता की स्थापना करे। इस अभिप्राय से वह तथा उसका भाई सदाशिवराव विशाल सेना सहित जनवरी के आरम्भ म पूना से दक्षिणी प्रदेशो को अधीन करने के निमित्त रवाना हुए। फतहसिह तथा रघुजी भोसले मार्ग म उनके साथ हो लिये।

इसी बीच म एक ओर पेशवा तथा दूसरी ओर दाभाडे और गायकवाड म बहुत दिनो स कलह चल रही थी। पेशवा ने गुजरात के प्रदेश मे अपना आधा हिस्सा मांगा। इस अधिकार का दोनो ने तीव्र विरोध किया। प्रतिनिधि तथा सचिव के बाद अब अष्टप्रधान के एक प्राचीन सदस्य सेनापति की बारी थी कि वह विनम्र किया जाये। दाभाडे के अपने घर मे फूट थी, तथा दमाजी गायकवाड को उन दोनो मे से किसी का समर्थन करने की कोई विशेष चिन्ता न थी। अत उसने इस समय उनका साथ देना ही लाभप्रद समझा जो सम्मिलित रूप से पेशवा की गुजरात म आधा हिस्सा देने की माग का प्रतिरोध कर रहे थे। १७५० ई० की वर्षाऋतु म पूना मे प्रसिद्ध वृहद सम्मेलन के अवसर पर पेशवा ने उमाबाइ दाभाडे से उसकी मांग को स्वीकार कर लेने

का आग्रह किया। विवश होकर वह उसके विरुद्ध ताराबाई के पास गयी। दोनों महिलाओं ने एक होकर पेशवा के दमन के उपाय आरम्भ कर दिये तथा यह पुकार मचायी कि छत्रपति के राज्य का अपहरण ब्राह्मणों ने कर लिया है। उन्होंने इस विषय पर लिखित रूप से सबल प्रार्थनाएँ अधिकांश मराठों से की तथा काफी अनुनय विनय के द्वारा अपने पक्ष का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए दमाजी को राजी कर लिया। उमाबाई ने अपने प्रतिनिधि यादो महादेव को पेशवा के सम्मुख अपने पक्ष को स्थापित करने के निमित्त भेजा। अपने कार्य में असफल होकर यादो महादेव बिना साधारण सत्कार स्वीकार किये ही वापस लौट आया। इस पर स्वयं उमाबाई २२ नवम्बर को आलन्दी नामक स्थान पर पेशवा से मिली। यह देखकर कि पेशवा अपनी माँग को न छोड़ेगा उमाबाई तथा उसकी पुत्र वधू अम्बिकाबाई दोनों ने विवश होकर गुजरात का आधा भाग देने की लिखित स्वीकृति दे दी।

यह विपत्ति का आरम्भ सिद्ध हुआ। ताराबाई तथा उमाबाई ने अपनी योजनाओं को परिपक्व कर लिया। ताराबाई ने सतारा में छत्रपति पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया तथा दमाजी गायकवाड को निमन्त्रण दिया कि जैसे ही जनवरी १७५१ ई० के आरम्भ में पेशवा अपने कर्नाटक के अभियान पर पूना से प्रस्थान करे, वह पूना पर आक्रमण कर दे। इस प्रकार दमाजी के आकस्मिक प्रवेश के कारण महाराष्ट्र में तीन महीनों तक भयानक विप्लव मचा रहा।

साधारण मुठभेड़ों तथा लूटमार के धावों के अतिरिक्त गायकवाड तथा पेशवा की सेनाओं में दो भारी लड़ाइयाँ भी हुई—प्रथम १८ फरवरी को खानदेश में बहादुरपुरा के स्थान पर और दूसरी १५ मार्च को सतारा के समीप वेण्या नदी पर। प्रथम युद्ध में दमाजी ने पेशवा की सेना को परास्त कर दिया परन्तु द्वितीय युद्ध में स्वयं उसकी घोर पराजय हुई। पेशवा को इस महान विप्लव का समाचार उस समय प्राप्त हुआ जब वह रायचूर के समीप कृष्णा नदी के तट पर था। वहाँ से वह शीघ्रतापूर्वक सतारा को चल दिया जहाँ वह २४ अप्रैल को पहुँचा। ३० अप्रैल को उसने सतारा के समीप दमाजी के शिविर पर आक्रमण किया और उसको पूरी तरह लूट लिया तथा दमाजी को बन्दी बना लिया। इस संक्षिप्त वर्णन को सविस्तार समझने की आवश्यकता है।

पेशवा ने अपने कुछ विश्वस्त अधिकारियों को खानदेश में नियुक्त कर रखा था ताकि वे दमाजी का सामना करें जिसके पास लगभग १५ हजार सेना थी। भविष्य में विख्यात झाँसी की रानी का एक पूर्वज हरि दामोदर नेवल

कर प्रथम पुरुष था जिसने दमाजी के विरोध का साहस किया। जब ही दमाजी के विनाशक आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ, बलवन्तराव मेहनडले, बापूजी भामराव तथा महीपतराव कावडे ने शीघ्र ही पूना में खानदेश में प्रवेश किया। ताप्ती के तट पर दोनों विरोधी सेनाएँ डट गयीं—गायकवाड की उत्तरी तट पर तथा पेशवा की दक्षिणी तट पर। कुछ समय तक किसी को भी एक-दूसरे पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। तभी दमाजी ने नदी पार कर जामलनेर से लगभग १० मील पर बहादुरपुरा के स्थान पर पेशवा की सेना पर आक्रमण कर दिया तथा घोर युद्ध के बाद उसको उखाड़ दिया। दमाजी ने उस हाथी को पकड़ लिया जिस पर पेशवा का झण्डा लगा हुआ था। यहाँ उसको बहुत-सा लूट का माल भी प्राप्त हुआ। इसके बाद गायकवाड पूना पर चढ़ गया। और मार्ग के समस्त प्रदेश का विनाश करता गया। तलगाँव से आकर दाभाडे उसके साथ हो गया। १० मार्च को गायकवाड निम्बगाँव दाबगी पहुँच गया। त्र्यम्बकराव पेठे उससे लड़ने पूना के बाहर आया।

पूना भयाकुल हो उठा। सरकारी सम्पत्ति सिंहगढ को हटा दी गयी तथा नगर निवासी अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ तथा अन्य सम्पत्ति को लेकर भाग गये। जब वयोवृद्ध पिलाजी जाधव ने सुना कि गायकवाड पूना को लूटने आ रहा है तो अपने गाँव वाडी से बाहर दमाजी से मिलकर उसने उससे निरपराध नगर पर आक्रमण न करने की प्रार्थना की। पेशवा के कुछ शुभचिंतक भी दमाजी से मिले तथा उन्होंने अपने वार्तालाप का वृत्तान्त इस प्रकार दिया—'हम दमाजी से मिले तथा उसको पूजनीया माता (राधाबाई) का पत्र दिया। उसने पत्र को पढ़ा परन्तु कोई उत्तर न दिया। तब हमने उसका अनुरंजन के कुछ शब्द कहे जिस पर वह बोला— यह मित्रता का समय नहीं है। आप मेरे शिविर से चले जायें। मैं विवाह करने आया हूँ तथा वधुओं की खोज में हूँ। सत्कार के लिए अभी समय है। उसने इस प्रकार की गर्वयुक्त भाषा का प्रयोग करते हुए आगे कहा— पूजनीया माता सिंहगढ को भाग गयी हैं लेकिन अब उनको ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी कि उन्होंने मुझे पत्र लिखा। मैं जानता हूँ कि आप लोग समाचार लेने आये हैं। जो आपने देखा है वह कह जायें। *माता को कहो हमने तोरण तैयार कर लिया है।* आपके सैनिकों को दम तोड़ना होगा। तब हम वापस आ गये। दमाजी ने अपनी सेना के पाँच विभाग किये हैं और वह सतारा की ओर जा रहा है।' पिलाजी जाधव ने उसको फिर लिखा कि वह सतारा पर आक्रमण न करे अन्यथा उसको दुःख भोगना पड़ेगा। उसने यह भी लिखा—'यदि आप मेरा विश्वास

करते हैं, तो मैं आप तथा पेशवा में शांति संधि करा दूंगा।' दमाजी ने उत्तर दिया---मैंने ताराबाई को अपना पवित्र वचन दिया है। मैं उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। मुतलिक रामाजी मेरे पास ताराबाई का पत्र लेकर आया है।' दमाजी की इस अशिष्ट भाषा से पेशवा चिढ़ गया तथा इसका उसके तथा दमाजी के भावी सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

कुछ समय तक निस्सन्देह दमाजी ने भारी हलचल उत्पन्न कर दी। दमाजी के साथ सहयोग के लिए ताराबाई ने मावला की एक सेना एकत्र की। परन्तु त्र्यम्बक सदाशिव उर्फ नाना पुरन्दरे अपनी सेना सहित सतारा से चल दिया तथा जेजूरी के समीप पूना की सेना के साथ हो गया। अनेक अन्य सरदार शीघ्र ही आ पहुँचे तथा पेशवा की सेना बहुत बड़ी हो गयी। दमाजी सीधे सतारा को आया तथा उसने अपना शिविर वेण्या नदी पर वर्ये तथा म्हस्वे गावों में लगाया। पूना की सेना शीघ्र आ गयी और उसने अपना शिविर लगभग दस मील पूरब में कृष्णा के बायें तट पर वडुथ नामक गाँव में लगाया। १३ मार्च को नाना पुरन्दरे ने असावधानी से दमाजी के शिविर पर आक्रमण किया और खदेड़े जाने पर लिम्ब नामक स्थान को पीछे हट आया। परन्तु यह रूप अल्पकालीन ही था। मेहनडले, पेठे तथा अन्य वीर नवयुवक नायकों ने, जो वडुथ में पीछे थे, १५ मार्च को एक साथ दमाजी पर घोर आक्रमण किया तथा सम्पूर्ण विजय प्राप्त की। उन्होंने बहुत सी सामग्री तथा सामान हस्तगत कर लिया। दमाजी तथा दाभाडे जो कुछ भी बन सका बचा ले गये तथा नगर के पश्चिम में महरदरा की घाटी में शरण ली। वेण्या के इस युद्ध से अभियान के भाग्य का निर्णय हो गया। २१ मार्च को दमाजी ने अपने साधनों का पुनः संगठन किया। ताराबाई की ओर से भी कुछ सहायता आ गयी। हल्की-सी लड़ाई हुई परन्तु उसका कुछ निश्चित परिणाम न हुआ।

अब पेशवा का शिविर वेण्या नदी पर वहाँ तक बढ़ आया जहाँ पहले दमाजी की सेना ठहरी हुई थी। दाभाडे की स्थिति अत्यन्त करुणाजनक हो गयी थी। उसके पास न धन था न सामग्री। जो कुछ भी थोड़ा बहुत अपनी इच्छा से दमाजी उसको दे सकता था उसको उस पर सन्तोष करना पड़ा। ३० मार्च को पवाई के मैदान में एक दूसरी लड़ाई हुई जिसमें पुनः गायकवाड़ की हार हुई। उसके दो पुत्रों तथा दामाद ने गढ़ में ताराबाई के पास शरण ली।

२ पेशवा का उत्तर---१५ मार्च के वेण्या के युद्ध का समाचार पेशवा को कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के संगम के समीप पनगल के निकट निजामकोण्डा

नामक स्थान पर २६ तारीख का प्राप्त हुआ। वहाँ पर उसन अपनी शक्ति का भव्य प्रदर्शन किया। इस समय उसके साथ अधिकाश योग्य मराठा सरदार थ जिनम रामचन्द्र जाधव, उदाजी चह्वाण मुरारराव घोरपडे (अपने चार भाइया सहित) फतहसिंह तथा रघुजी भासल भी सम्मिलित थ। यदि गायकवाड क प्रकरण के कारण उसे अकस्मात सतारा न वापस लौटना पडता, तो वह निजाम का सत्ता का अन्त कर दता जा उस समय अत्यन्त अव्यवस्थित थी। इसके कारण थ—नासिरजग तथा मुजफ्फरजग की हत्याएँ तथा हैदराबाद राज्य के साधना का सगठन करन के लिए शक्तिशाली व्यक्तित्व का अभाव जा कि शीघ्र हा फ्रासीसी सनापति बुसी के रूप म प्रकट हुआ। पशवा की शक्ति का प्रदर्शन मात्र ही पर्याप्त था कि हैदराबाद स त्रिचनापल्ली तक का समस्त प्रदश मराठा प्रभुत्व स्वीकार कर ले और शीघ्र ही कर को चुका दे।

पशवा ने इस मराठा समुदाय का भव्य सत्कार किया। उसन पुरस्कारा द्वारा उनका सम्मान किया। उसन उनकी सहानुभूति का उस माग के लिए भी प्राप्त कर लिया जिसका अनुसरण वह मराठा शक्ति के शत्रुओ को समूल नष्ट कर दने क उद्देश्य स कर रहा था। इस अभियान की कायवाही का पूण करन के लिए सदाशिवराव का वहाँ छाडकर पशवा स्वय छाट स छोटे माग द्वारा सतारा को वापस आ गया। १२ अप्रैल का वह लिखता है— हैदराबाद क कायकर्ताओ स लाभदायक शान्ति स्थापित करने के बाद मैं यथाशीघ्र सतारा को वापस आ रहा हूँ। रघुजी भासले की इच्छा थी कि वह मेरे साथ आय परन्तु चूकि उसको चाँदा दवगढ म अन्य आवश्यक काय था तथा अब मुझको उसकी सहायता की अधिक आवश्यकता भी न थी, अत मैंने उसको अनुमति दे दी कि वह अपन प्रान्त का वापस चला जाय।' २४ अप्रल को १२ दिना म ही पशवा सतारा पहुच गया। वहाँ उसकी सेना ने गायकवाड का पूण रूप से घेर लिया था जिसस उसको बाहर से कोइ भी आवश्यक सहायता न पहुँच सके।

यहाँ यह मानना पडगा कि पशवा का यह निणय बिलकुल ठीक था कि सतारा म परिस्थिति पर काबू रखन का सर्वोत्तम उपाय यही था कि निजाम के दरबार म वह प्रभुता प्राप्त कर ले, और सतारा पहुँचन के पहल उसने यह काय कर भी लिया था। वह पुरन्दरे का लिखता है— यदि दुर्भाग्यवश मैं इस प्रदश म अपनी स्थिति का नष्ट कर दता तो मरे लिये कहाँ स्थान हो सकता था? सौभाग्यवश मुझ को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है तथा सतारा क प्रकरण को समाप्त करन के लिए अब आपका बाद जल्दी ही

दिया। दाभाडे-बन्धु भी उसी प्रकार उमाबाई सहित एकत्र कर लिये गये। जब वे सब इस प्रकार निरोध म ले लिए गये, तो पेशवा न उनस आधा गुजरात उसको समर्पित करने के लिए कहा। उन्होने परवशता की अवस्था म अनिच्छा पूर्वक स्वीकृतिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। तत्पश्चात ११ मई को वे पूना भेज दिये गये जहाँ आवजी कावडे के घर पर उन्हे कठोर पहरे पर रखा गया। अगर उन्होने पहल ही गुजरात के उन जिलो को पेशवा को हस्तगत कर दिया होता जिनको वह मागता था तो वे पहले ही मुक्त हो गये होते। दमाजी के दो पुत्र फतेहसिंह तथा मानाजी ताराबाई के साथ सतारा के गढ मे थे। अपने प्रतिज्ञात वचन के विरुद्ध दमाजी को पकड लेने मे पेशवा के आचरण की सर्वत्र कठोर तथा व्यापक निन्दा की गयी। परन्तु यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वय दमाजी ने पूना पर अपने अकारण आक्रमण द्वारा पेशवा के क्रोध को उत्तेजित किया था जबकि पेशवा कर्नाटक म होने के कारण वहाँ से अनुपस्थित था।

दाभाडे तथा गायकवाड-परिवारो को पूना भेज देने के बाद पेशवा सतारा म ही ठहरा रहा। वह ताराबाई से अपने भावी कार्यक्रमो के विषय म वार्तालाप करना चाहता था। परन्तु उसने स्पष्ट इन्कार कर दिया कि वह न तो गढ से नीचे उतरेगी और न रामराजा को उसके सुपुर्द करेगी। पेशवा ने बुद्धिमानी से उसके विरुद्ध समस्त दमनकारी उपायो का त्याग कर दिया। उसने एक शक्तिशाली दल सतारा मे उसकी गतिविधि पर ध्यान रखने के निमित्त नियुक्त कर दिया और स्वय २२ मई को पूना वापस आ गया। वह अच्छी तरह जानता था कि सतारा को अधीन करना सरल नही है क्योकि गढ म पर्याप्त सामग्री थी जो एक दीर्घकालीन घेरे को भी सहन करने के लिए पूर्ण थी। दाभाडे तथा गायकवाड परिवारो को बन्दी बना लेने से ताराबाई के मुख्य समर्थको का अन्त हो गया था, और स्वय उसके भक्त अनुचरो की समझ म आ गया था कि अब उसके पक्ष के लिए कोई आशा नही रह गयी है। इसके बाद पेशवा ने उसको उसके भाग्य पर छोड दिया।

इस प्रकार ताराबाई तथा रामराजा दोनो एक साथ अपनी समस्त शक्ति तथा प्रभाव से हाथ धो बैठे। परन्तु दमाजी तथा दाभाडे ने पूना म कठोर नियन्त्रण होते हुए भी अपने षड्यन्त्रो का त्याग नही किया। वे ताराबाई के साथ जो सतारा मे थी, गुप्त रूप से अपनी योजनाए बनाते रहे। जब इसका पता लगा तो उनका निरोध लगभग १९ जुलाई से अन्त तक अति कठोर कर दिया गया। १४ नवम्बर को वे दमाजी के सहायक रामचन्द्र बसवन्त सहित पूना से हटाकर लोहगढ पहुँचा दिये गये।

प्रेमपूर्वक उसका स्वागत किया गया। स्वय पेशवा आगे बढकर उससे मिलने आया।[2] इस अभ्यागमन का परिणाम यह हुआ कि गुजरात की राजधानी अहमदाबाद को हस्तगत करने के लिए एक सहमत योजना तयार की गयी। यह स्थान इस समय तक ह्रासमान मुगल सत्ता के एक प्रतिनिधि के अधिकार मे था।

दाभाडे के साथ समझौता करने म पेशवा को देर न लगी। उसको विवश होकर उन शर्तों को स्वीकार करना पडा जो उसको दी गयी। इस प्रकार उसको अपने दुर्भाग्य से समझौता करना पडा जिसके वश म वह फँस गया था। उमाबाई वृद्ध तथा श्रान्त हो गयी थी तथा पेशवा ने उसके दुख को दूर करने का यथाशक्ति प्रयास किया। वह सितम्बर १७५३ ई० म तलेगाव से पूना को चिकित्सार्थ लायी गयी तथा वहाँ पर अगली २८ नवम्बर को उसका देहान्त हो गया। आगामी वर्ष कर्नाटक से वापस आते समय १८ मई, १७५४ ई० को मिरज के समीप उसके पुत्र यशवन्तराव का देहान्त हो गया जहा वह पेशवा के साथ गया था। यशवन्तराव का पुत्र त्र्यम्बकराव द्वितीय अगला सेनापति हुआ। अब यह उपाधि नाममात्र की थी। इस त्र्यम्बकराव का देहान्त वेरुल के समीप १७६६ ई० म हुआ। दाभाडे सेनापति के वशज इस समय भी तलेगाव म अपनी पैतृक सम्पत्ति के अल्प अवशेषो पर जीवन निर्वाह कर रहे है।

४ अहमदाबाद पर अधिकार—दमाजी गायकवाड तथा पेशवा म अब पूर्णतया वह शान्ति हो गयी थी। उन्होने सम्मिलित रूप से अहमदाबाद को विजय करने का कार्य आरम्भ किया। अहमदाबाद वास्तव म गुजरात की राजधानी था। पेशवा ने इस साहसिक कार्य पर गुजरात जाने के लिए रघुनाथराव को नियुक्त किया। उसने जनवरी १७५३ ई० म वहा के लिए प्रस्थान किया। दमाजी खानदेश म उसके साथ हो गया। वे सीधे अहमदाबाद को गये तथा नगर पर घेरा डाल दिया। जवाँमर्दखाँ बाबी तथा उसके सहायक कमालुद्दीनखा ने यथाशक्ति नगर की रक्षा का प्रयास किया किन्तु वे परास्त हो गये तथा २५ अप्रैल १७५३ ई० को उन्होने नगर को रघुनाथराव को समर्पित कर दिया। इसमे द्वारका तक काठियावाड का समस्त प्रदेश सम्मिलित था। इस स्थान पर स्थित कृष्ण के प्रसिद्ध मन्दिर पर मराठो का अधिकार हो गया तथा यह अब तक उनके अधिकार म था।

अहमदाबाद का प्रकरण यही पर समाप्त नही हो जाता। पालनपुर तथा

---

२ राजवाडे सग्रह खण्ड ३, पृ० ३९३ ३९५, पुरन्दर डायरी, पृ० ७९।

खम्भात (कैम्बे) के मुसलमान नवाबों ने १७५७ ई० के आरम्भ में इस पर अधिकार कर लिया। परन्तु पेशवा ने तुरंत उपाय किया और ११ अक्टूबर, १७५७ ई० को पुनः इस नगर को प्राप्त कर लिया। उस समय से अहमदाबाद तब तक मराठा अधिकार में रहा जब तक कि ? दिसम्बर १८१७ ई० को आंग्ल मराठा युद्ध में इस पर अंग्रेजों का अधिकार न हो गया। इस प्रदेश का आधा भाग पेशवा को मिला था तथा आधा गायकवाड़ को।

५ सूरत तथा भड़ौंच—गुजरात का दूसरा प्रसिद्ध नगर सूरत था। इसका अपना लम्बा तथा चित्रित इतिहास था। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेज व्यापारियों ने पश्चिमी तट के इस श्रेष्ठ बन्दरगाह पर शनैः शनैः अपना नियन्त्रण स्थापित किया उस समय यह मुगल साम्राज्य का महत्त्वशाली अधिकृत प्रदेश था। बहुत पहले शिवाजी की लोभमय दृष्टि इसकी ओर आकृष्ट हुई थी। औरंगजेब को इसकी चिन्ता केवल इस कारण थी कि मक्का को जाने तथा वहाँ से आने वाले मुसलमान यात्री यहाँ से नाव में उठते थे या उससे उतरते थे। इस कारण से उसने इसका प्रबन्ध जंजीरा के सिद्दी के सुपुर्द कर दिया था क्योंकि वह निपुण समुद्री नायक था। इस प्रकार सूरत का शासन जंजीरा से उनके एक नाविक अधिकारी द्वारा होता था।

पेशवा नाना साहब के समय में सूरत का शासक सिद्दी मसूद था जो मराठों का शत्रु था और उस स्थान के विरुद्ध पेशवा के आक्रमण से उस नगर की रक्षा यथाशक्ति करता था। उसने अंग्रेज व्यापारियों का समर्थन प्राप्त कर लिया था जो नाविक रक्षा के प्रति प्रायः मुखापेक्षी रहते थे। उसके अतिरिक्त वहाँ एक मुगल शासक भी रहता था जिसका अधिकार नाममात्र का था। इस प्रकार इस लाभदायक नाविक स्थान पर अधिकार के निमित्त वर्षों से चार शक्तियों में स्पर्द्धा चल रही थी—मराठे, सिद्दी, मुगल शासक मियाँ अच्छन तथा अंग्रेज व्यापारी। अंग्रेजों ने तुलाजी आंग्रे के सर्वनाश तथा १७५६ ई० में घेरिया या विजयदुर्ग पर अधिकार प्राप्ति द्वारा अपनी सत्ता को अभी हाल ही में घोषित किया था। प्रथम षड्यन्त्र द्वारा जिसकी वे कल्पना कर सकते थे अंग्रेजों ने सूरत पर अधिकार प्राप्त करने का यत्न किया। उन्होंने चारों दलों के बीच में ४ मार्च, १७५६ ई० को एक सन्धिपत्र की रचना की जिसको इसी कारण 'चौथिया' कहते हैं। इस उपाय से सर्वप्रथम उन्होंने मराठों की मित्रता प्राप्त की तथा सिद्दी मसूद का दमन कर दिया। तत्पश्चात उन्होंने दिल्ली के सम्राट से १ सितम्बर १७५६ ई० को एक फरमान प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लिया जिसके द्वारा उनको उस स्थान का शासक पद प्राप्त हो गया। परिणामस्वरूप स्थानीय मुगल शासक मियाँ अच्छन की शक्ति

नष्ट हो गयी। इस समय पानीपत की विपत्ति के कारण सूरत पर अधिकार के निमित्त एकमात्र शक्तिशाली प्रतिस्पर्द्धी मराठे सघष के अयोग्य हो गये थे अत अग्रेजो की महत्त्वाकाक्षा पुन सक्रिय हो गयी। उचित समय पर अग्रेजा ने सूरत पर अपन नियन्त्रण को पुष्ट कर लिया तथा मराठा के अधिकार से वह बन्दरगाह सवदा क लिए निकल गया।[३]

सूरत का सिद्दी समस्त भूतकाल मे अग्रेजा का घनिष्ठ मित्र रहा था, परन्तु जिस क्षण उनके स्वाथा की सिद्दी के स्वार्थों स टक्कर हुई वे दिल्ली से सिद्दी के विरुद्ध एक नया फरमान ले आय तथा उसको बिना किसी चिन्ता के हटा दिया। भडोच पर बाद म प्रथम मराठा युद्ध मे महादजी सिन्धिया ने अधिकार कर लिया था, परन्तु १८०३ ई० के युद्ध म वह दौलतराव के हाथ से निकल गया। केवल खम्भात (कम्बे) अपने नवाब के शासन म अपनी स्वनियन्त्रित स्थिति का बनाये रख सका। उसका स्थान गायकवाड के बडौदा राज्य के हा समान था।

यह उन चार महत्त्वशाली नगरो तथा बन्दगाहा के उत्थान पतन का इतिहास है जो गुजरात की उवरक भूमि को अपने नियन्त्रण म रखत हैं।

---

३ पेशवा दफ्तर सग्रह, जिल्द २४, पृ० २३५ २४१। विशेष अध्ययन के लिए न० २३४, तथा पेशवा दफ्तर सग्रह, जिल्द २५, पृ० १८४ देखिए।

तिथिक्रम

अध्याय १५

८ फरवरी, १७२०	बुसी का जन्म।
२१ मई, १७४८	७७ वर्ष की आयु मे निजामुल्मुल्क की मृत्यु।
५ दिसम्बर, १७५०	नासिरजग की हत्या।
दिसम्बर, १७५०	मुजफ्फरजग पाण्डुचेरी मे नवाब घोषित।
७ जनवरी, १७५१	मुजफ्फरजग का पाण्डुचेरी से चलना।
३१ जनवरी, १७५१	मुजफ्फरजग का वध, बुसी द्वारा सलाबतजग नवाब घोषित।
फरवरी, १७५१	पेशवा का पनगल में गाजीउद्दीन को दिल्ली से लाने का प्रयत्न।
२३ मार्च, १७५१	पेशवा तथा सलाबतजग मे शान्ति की शर्तें, रामदास पन्त का पेशवा के विरुद्ध गुप्त षडयन्त्र।
२२ अप्रल, १७५१	औरगाबाद के समीप पेशवा के कोष पर रामदास पन्त का अधिकार।
वर्षाऋतु १७५१	जानोजी निम्बालकर द्वारा पूना मे शान्ति प्रस्ताव।
१५ नवम्बर, १७५१	पेशवा के विरुद्ध बुसी का आक्रमण प्रारम्भ।
२० नवम्बर, १७५१	पार्नेर का युद्ध, चिमनाजी बापूजी का वध।
२१ नवम्बर, १७५१	ग्रहण की रात्रि मे कुकडी नदी पर पेशवा के शिविर पर अचानक धावा।
२७ नवम्बर, १७५१	माल्थन का युद्ध, मुगलों की पराजय।
२ दिसम्बर, १७५१	पेशवा द्वारा त्रिम्बक गढ़ हस्तगत।
दिसम्बर, १७५१	रघुजी भोंसले द्वारा निजाम के प्रदेश का नाश।
६ जनवरी, १७५२	सिंगवा की सन्धि निश्चित, त्रिम्बक गढ़ निजाम को वापस।
अप्रल, १७५२	गाजीउद्दीन दिल्ली से दक्षिण को रवाना।
७ अप्रल, १७५२	रामदास पन्त की हत्या।
३ जून, १७५२	चाँदासाहब की हत्या।
२८ सितम्बर, १७५२	गाजीउद्दीन का औरगाबाद के समीप पहुँचना।

१६ अक्टूबर, १७५२	गाजीउद्दीन की विष द्वारा हत्या।
२४ नवम्बर, १७५२	भल्की की संधि, बागलान तथा बरार का कुछ भाग मराठा अधिकार में।
नवम्बर, १७५२	मुजफ्फरखाँ गर्दी का मराठा सेवा मे प्रवेश।
८ जनवरी, १७५३	पेशवा द्वारा कर्नाटक पर उसका प्रथम अभियान प्रारम्भ।
२० मार्च, १७५३	होसी होन्नूर पर अधिकार।
१४ मई, १७५३	धारवाड़ पर अधिकार।
जून, १७५३	पूना जाते हुए पेशवा का कोल्हापुर में आगमन।
१७५४	हरिहर तक पेशवा का द्वितीय अभियान।
२४ अक्टूबर, १७५४	बेदनूर के अपने तृतीय अभियान पर पेशवा का प्रस्थान।
नवम्बर, १७५४	पेशवा द्वारा त्रिम्बकेश्वर के मंदिर का उद्धार, मस्जिद भूमिसात।
आरम्भिक मास, १७५५	मुजफ्फरखाँ का पुरंदरे से झगड़ा, पेशवा की सेवा का त्याग तथा सावनूर में उसका विद्रोह।
मार्च, १७५६	पेशवा सावनूर के सम्मुख।
१२ मार्च, १७५६	मुजफ्फरखाँ की मराठों पर झपट।
अप्रैल, १७५६	सावनूर के सम्मुख घोर युद्ध।
१८ मई, १७५६	सावनूर समर्पित, मुजफ्फरखाँ का पलायन, मुरार राव घोरपड़े पेशवा की सेवा करने पर सहमत।
१८ मई, १७५६	सलाबतजंग द्वारा बुसी का निष्कासन।
जून अक्टूबर, १७५६	सलाबतजंग के विरुद्ध चारमीनार पर बुसी का साहसपूर्ण प्रतिरोध।
जुलाई, १७५६	पेशवा विजयी होकर पूना को वापस।
१६ नवम्बर, १७५६	सलाबतजंग द्वारा बुसी पुन सेवा मे प्रतिष्ठापित।
१ जनवरी, १७५७	श्रीरंगपट्टन को पेशवा का अभियान।
मई, १७५७	पेशवा का मैसूर से कर प्राप्त करना तथा पूना को वापस आना।
१७५७	इब्राहीमखाँ गर्दी निजामअली की सेवा मे।
१७५७	शाहनवाजखाँ का दौलताबाद पर अधिकार।
वर्षा ऋतु, १७५७	मराठों के विरुद्ध निजामअली का आक्रमण प्रारम्भ।
२७ अगस्त, १७५७	पेशवा का पूना से औरंगाबाद के विरुद्ध प्रयाण।

२४ सितम्बर, १७५७	कडप्पा के नवाब का बलवन्तराव मेहेनडले के विरुद्ध लडते हुए मारा जाना, कडप्पा पर अधिकार।
नवम्बर, १७५७	निजामअली तथा मराठों के बीच मे औरगाबाद के चारों ओर शत्रुवत कार्यवाही का आरम्भ।
१२ १६ दिसम्बर, १७५७	सिन्दखेड के सामने घोर युद्ध।
१७ दिसम्बर, १७५७	निजामअली द्वारा पराजय स्वीकृत तथा शान्ति की शर्तों की प्रार्थना।
२६ दिसम्बर, १७५७	साखरखेर्डा मे शान्ति सन्धि प्रमाणीकृत।
१७५८ ६०	पूरबी तट क्षेत्र मराठों द्वारा विजित।
१७५८	सलाबतजग द्वारा शाहनवाजखाँ पदच्युत तथा हैदरजग उसका मन्त्री नियुक्त।
११ मई, १७५८	हैदरजग, शाहनवाजखा तथा उसके पुत्रों की हत्या।
१८ जून, १७५८	अपने उच्च अधिकारी लली की आज्ञा पर बुसी का अन्तिम रूप से हैदराबाद छोडना।
अक्टूबर, १७५६	निजामअली द्वारा इब्राहीमखाँ गर्दी का निष्कासन और उसका तुरन्त पेशवा की सेवा स्वीकार कर लेना।
२८ अक्टूबर, १७५६	मुजफ्फरखाँ द्वारा सदाशिवराव की हत्या का प्रयास तथा उसको प्राणदण्ड।
६ नवम्बर, १७५६	कवि जग के माध्यम से अहमदनगर के गढ़ पर पेशवा का अधिकार।
दिसम्बर, १७५६	पेशवा तथा निजाम के बीच युद्धारम्भ।
जनवरी, १७६०	मराठों का उदगीर के समीप निजामअली पर आक्रमण।
२२ जनवरी, १७६०	वाण्डीवाश के युद्ध में बुसी का बन्दी होना तथा यूरोप को भेज दिया जाना।
२६ जनवरी, १७६०	उदगीर के समीप घोर युद्ध, मुगलों की पूर्ण पराजय।
३ फरवरी, १७६०	उदगीर की सन्धि, निजामअली पर कठोर शर्तें लागू।
७ जुलाई १७६२	निजामअली द्वारा सलाबतजग निरोध मे।
१६ सितम्बर, १७६३	सलाबतजग का वध।
१७ मार्च, १७८३	बुसी भारत को पुन एक बार वापस।
७ जनवरी, १७८५	बुसी का भारत मे देहान्त।

अध्याय १५

मराठा-निजाम सघर्ष

[१७५१-१७६१]

१ बुसी घटनास्थल पर—कर्नाटक मे आसफजाह का अभियान तथा १७४३ ई० म त्रिचनापल्ली पर उसका अधिकार—ये उसकी अन्तिम महान सफलताएँ सिद्ध हुइ। इसके तुरन्त बाद उसका स्वास्थ्य बिगडने लगा तथा ७७ वष की आयु म २१ मई १७४८ ई० का बुरहानपुर म उसका देहान्त हो गया। अपनी मृत्यु के पहले उसन एक पत्र तयार किया था जिसम अन्य बाता के साथ-साथ उसन अपन पुत्र को साग्रह चेतावनी दी थी कि वह मराठा का मित्र होकर रह तथा उनके विरुद्ध युद्ध से दूर रहे। पेशवा के प्रति उसने मित्रता के भाव प्रकट किये थ। अपनी मृत्यु के कुछ वष पूव से उसने यह ध्यान रखा था कि मराठे उससे किसी प्रकार रुष्ट न होने पावें। परन्तु उसक पुत्र नासिरजग की प्रकृति अशान्त थी। मराठो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करके उसन अपने पिता की मृत्यु से लाभ उठाने का प्रयत्न किया।[1] नासिरजग ने दिल्ली के मामला मे भी हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया परन्तु परिस्थितियो द्वारा वह उत्तर तथा दक्षिण दोना दिशाआ म अपनी महत्त्वाकाक्षाओ को नियन्त्रित करने के लिए बाध्य कर दिया गया। नासिरजग की आक्रामक प्रवृत्तिया पर अकुश रखने मे पेशवा का काफी योग था।

---

[1] राजवाडे सग्रह खण्ड ३, पृ० ३७२ राजवाडे सग्रह खण्ड ६, पृ० १८५, १८६, पेशवा दफ्तर सग्रह २३-२५, हिंगने दफ्तर सग्रह, खण्ड १, पृ० ३४, ३८ तथा ४०।

आसफजाह की कन्या के पुत्र मुजफ्फरजंग तथा चाँदासाहब ने मिलकर नासिरजंग के विरुद्ध एक सामान्य पक्ष स्थापित कर लिया, तथा पाण्डुचेरी के फ्रांसीसियों का समर्थन प्राप्त करने के बाद उन्होंने कर्नाटक में अपनी स्थिति को पुष्ट करने का यत्न किया। इस दिशा से आने वाली विपत्ति का ज्ञान प्राप्त कर नासिरजंग ने भी अपने कई मित्र बना लिये। इनमें फोर्ट सेन्ट जार्ज के अंग्रेज व्यापारी भी शामिल थे। अन्त विशाल सेनाएँ लेकर उसने १७५० ई० में कर्नाटक में प्रवेश किया। अर्काट के समीप दोनों दल एक दूसरे के सामने आ गये। ५ दिसम्बर, १७५० ई० को उसके पठान मित्रों ने अकस्मात नासिरजंग की हत्या कर दी। ये उसके प्रति विश्वासघाती सिद्ध हुए तथा उन्होंने मुजफ्फरजंग को मसनद पर बैठा लिया। मुजफ्फरजंग पाण्डुचेरी को गया जहाँ पर डूप्ले ने उसका स्वागत निजाम राज्य के मुख्य व्यक्ति के रूप में किया। फ्रांसीसी दल की एक शक्तिशाली सेना को अपने साथ लेकर मुजफ्फरजंग ७ जनवरी, १७५१ ई० को पाण्डुचेरी से दक्षिण में अपनी राजधानी के लिए चला। इस फ्रेंच सेना का नायक उदीयमान बुसी (जन्म ८ फरवरी, १७२० ई०) था। अर्काट से चलने के बाद जब वह कडप्पा की ओर बढ़ रहा था, कुछ पठानों तथा फ्रांसीसी सहायकों के बीच में कडप्पा से लगभग २५ मील दक्षिण में राचोटी (लक्की रेड्डी-पल्ली) के मैदान में अनपेक्षित युद्ध हो गया। इस युद्ध में पठान आक्रान्ताओं द्वारा चलायी हुई एक गोली से ३१ जनवरी को मुजफ्फरजंग अकस्मात मर गया। इस संकटाकुल अवसर पर बुसी ने असाधारण योग्यता का परिचय दिया। उसने सलाबतजंग को यथोचित नवाब घोषित कर दिया तथा उसके साथ हैदराबाद की ओर आगे बढ़ गया।[१] इन उपायों में एक चतुर ब्राह्मण कूटनीतिज्ञ रामदास पन्त ने बुसी का मार्गदर्शन किया जो नासिरजंग की सेवा में था तथा जिसको बुसी ने अपनी ओर मिला लिया था। डूप्ले ने उसको राजा रघुनाथदास की उपाधि दी। बुसी के मुसलमान सचिव एवं दुभाषिये हैदरजंग ने भी इस समय उसकी निष्ठापूर्वक सेवा की। वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ था तथा फ्रांसीसी भाषा का अच्छा ज्ञाता था। इन दो व्यक्तियों की सहायता से बुसी ने अत्यन्त योग्यता से हैदराबाद राज्य की स्थिति सँभाल ली तथा शीघ्र ही अपने को आत्मनिर्भर बना लिया। रामदास पन्त सलाबतजंग का दीवान नियुक्त किया गया।

आसफजाही राज्य की दशा में इन परिवर्तनों के कारण पेशवा का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ तथा उसके मन में मराठा सत्ता के लाभार्थ इन परिवर्तनों

---

१ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २५ पृ० १०४ १०६ ११०।

का सर्वोत्तम उपयोग करने की इच्छा उत्पन्न हुइ। यद्यपि पशवा उस समय ताराबाई के साथ घोर सक्ट म उलझा हुआ था, परन्तु वह १७५१ ई० के आरम्भ म पूना स चल दिया और औरगाबाद की ओर बढा। माग म ही उसन उत्तर गोदावरी प्रदश का अपन अधीन कर लिया। परतु जस ही उसका ज्ञात हुआ कि मुजफ्फरजग का बध हा गया है और सलाबतजग औरस तथा न्यायोचित उत्तराधिकारी के रूप मे दक्षिण मे अपन पिता क अधिकृत प्रदेशा पर अपना स्वत्व स्थापित करने के लिए हैदराबाद की आर आ रहा है पशवा उसस युद्ध करने क लिए शीघ्र ही दक्षिण की ओर मुड गया। इस बीच म उमन दिल्ली से मृतक आसफजाह के ज्यष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन का बुलान का प्रबध कर लिया था। परतु सलाबतजग का विरोध करना तथा बुसी के याग्य नतृत्व म सुशिक्षित फ्रासीसी सना के विरुद्ध युद्ध म फँस जाना उसने विपत्तिकारक समझा। अत उसन निजाम की सेवा म लग हुए जानोजी निम्बालकर की सहायता से सलाबतजग के साथ शातिमय समझौता करन का प्रब ध किया। फरवरी के अ त म पेशवा पनगल म ठहरा जहा से वह सधि शर्तों के निमित्त बुसी तथा सलाबतजग से बातचीत करता रहा। इनका शिविर लगभग १८ मील दक्षिण म लगा हुआ था। बुसी का उस समय दक्षिण की राजनीतिक गतिविधिया का पूण परिचय न था और न ही सनिक परिस्थितिया पर पूण निय त्रण होने के कारण पेशवा के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करन की उसकी इच्छा थी। अत मराठा के शान्ति प्रस्ताव को उसने उत्सुकतापूवक स्वीकार कर लिया। वार्तालाप को समाप्त करन तथा दोना पक्षा को स्वीकाय हल को ढूढने म दा सप्ताह लग गये। २३ माच, १७५१ ई० को पेशवा लिखता है— हमने सलाबतजग के साथ मत्री सम्ब ध स्थापित कर लिया ह।' सलाबतजग पशवा को उत्तराधिकार के झगडे म हस्तक्षेप न करन का शत पर १७ लाख रुपय देन पर सहमत हो गया। इनम से दो लाख रुपय नक्द दे दिये गये तथा शेष के लिए सेठ लागा ने जमानत दे दी। पेशवा न औरगाबाद तथा बुरहानपुर के बीच म निजाम के खानदेश प्रदेश पर अधिकार करने की अपनी पूव आनाआ को स्थगित कर दिया क्योंकि इसके लिए पेशवा को ३ लाख रुपय अधिक प्राप्त हो गय थ।

सयद लशकरखाँ तथा शाहनवाजखाँ सलाबतजग के दो पुरान अधिकारी थ। इ होन याग्यतापूवक आसफजाह की सवा की थी तथा इस समय भी उनका प्रभाव तथा शक्ति थी। पशवा न इन साम तो को अपनी ओर मिला लिया तथा उनके द्वारा निजाम क दरबार मे अपना प्रभाव स्थापित करने का

तीन महीनों में कठोर अनुशासन तथा सतत सतर्कता के बाद बुसी ने सलावतजंग की स्थिति को स्वस्थ आधार पर रख दिया। औरंगाबाद नगर के एक कोने में एक उपयुक्त स्थान को अपना शिविर बनाने के लिए उसने चुन लिया तथा उसको भलीभांति परकोटे में घेर दिया। उसने अपनी नव संगठित सेना को शीघ्र ही प्रशिक्षित कर लिया। वह उनको पर्याप्त तथा नियमपूर्वक वेतन देता था तथा इस प्रकार उसकी सेना ने वह अपूर्व सैनिक क्षमता प्राप्त कर ली जो देशी सेनाओं को अज्ञात थी। उसके चतुर्मुखी कठोर अनुशासन का फलदायी प्रभाव प्रशासन पर पड़ने लगा, तथा स्वयं सलावत भी उसके सामने कांपने लगा। इस प्रकार राज्य के अन्य अधिकारियों के षड्यन्त्र समाप्त हो गये। उसके व्यय के लिए बुसी को उत्तर-पूरब के कुछ जिले दे दिये गये जो उत्तरी सरकार के नाम से प्रसिद्ध हो गये और जिनका समस्त प्रबन्ध फ्रांसीसी कार्यकर्ताओं द्वारा होने लगा।

नवम्बर १७५१ ई० में मराठों के साथ आशंकित युद्ध का आरम्भ हो गया। पेशवा पूना से पहले ही चल चुका था और अक्टूबर में वह अहमदनगर की ओर प्रयाण कर रहा था। १५ नवम्बर को बुसी ने औरंगाबाद से चलकर गोदावरी को पार किया तथा मराठा प्रदेश को लूटने लगी। पेशवा ने गनीमीकावा का आश्रय लिया, तथा अपने ही गांवों को उसने जला दिया और लूट लिया जिससे कि शत्रु को आवश्यक खाद्य-सामग्री न मिल सके। शत्रु का मुख्य बल उसका तोपखाना था, किन्तु मराठे सावधानी से उसकी मार से बाहर रहते थे। बुसी की यह उत्कट इच्छा थी कि वह अपनी तोपों से पूना को उड़ा दे परन्तु वह वहाँ तक पहुँच ही न सका। २० नवम्बर को पार्नेर के समीप घोर युद्ध हुआ जिसमें पेशवा का एक वीर अधिकारी चिमनाजी बापूजी मारा गया तथा शमशेर बहादुर की घोड़ी को भाले का घाव लगा। अगले सायंकाल २१ नवम्बर को जबकि पेशवा चन्द्रग्रहण के कारण कुकड़ी नदी पर धार्मिक कृत्यों में व्यस्त था अकस्मात तोपों के गोले गिरे जिससे हलचल मच गयी। अपनी प्राणरक्षा के निमित्त पेशवा भाग निकला तथा उसकी पूजा की सामग्री मुसलमानों ने हस्तगत कर ली। २७ नवम्बर को माल्थन के समीप रक्तरंजित युद्ध हुआ जिसमें सैयद लशकरखाँ की पराजय हुई। उसका बहुत-सा सामान लूट लिया गया। इस युद्ध को 'घोड नदी का युद्ध' कहते हैं। शिकारपुर तथा तलेगाँव (ढमढेरा) के समीपवर्ती गाँवों को मुसलमानों ने लूट लिया और नष्ट कर दिया। इसी समय रघुजी भोंसले आ गया और पेशवा के साथ हो गया। आने के पहले ही औरंगाबाद तथा गोदावरी के बीच में अनेक महत्वशाली स्थानों पर उसने अधिकार कर लिया

था। मराठों के द्वारा बाध्य किये जाने पर मुगल लोग पड़गाँव या बहादुरगढ़ को पीछे हट गये।

इस प्रकार दो महीनों के लगातार युद्ध से बुसी को विश्वास हो गया कि उसमें मराठा गनीमीकावा का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य नहीं है। इसलिए उसने समय प्राप्त करने के निमित्त किसी प्रकार से शान्ति स्थापित करने का प्रस्ताव किया। अतः पारगाँव के समीप सिंग्वा के स्थान पर दोनों पक्षों के राजदूत एकत्र हुए। पेशवा ने निम्बक गढ़ पर अधिकार कर लिया था। सलाबतजंग ने आग्रह किया कि वह उसको वापस दे दिया जाये। पेशवा ने इसे स्वीकार कर लिया तथा ६ जनवरी, १७५२ ई० को दोनों ओर से यथा पूर्व स्थिति की पुनः स्थापना स्वीकृत हो गयी। इस संधि को 'सिंग्वा की संधि' कहते हैं। कोन्हेर निम्बक एकबोटे को इस अल्पकालीन युद्ध में विशिष्ट सेवा के लिए 'फकड़े' की उपाधि से विभूषित किया गया।

यह युद्ध दोनों राज्यों की कलह का अंतिम हल प्रस्तुत न कर सका और न इससे संघर्ष का कारण—दक्षिण की राजनीति में निर्णय अधिकार का निश्चय—ही दूर हुआ। आसफजाही राज्य के समर्थन में बुसी के आगमन पर निस्सन्देह पेशवा को रोष हुआ। अब उसने गाजीउद्दीन को दिल्ली से वहाँ आने के लिए साग्रह निमन्त्रण दिया। सिंधिया तथा होल्कर का साथ लेकर अप्रैल १७५२ ई० में खान दिल्ली से चला और २८ सितम्बर को औरंगाबाद पहुँच गया। परन्तु उसके वास्तविक आगमन से पहले ही केवल इस समाचार से कि गाजीउद्दीन दिल्ली से चल चुका है, सलाबतजंग भयाकुल हो उठा क्योंकि दोनों भाइयों के बीच में गृहयुद्ध सन्निकट प्रतीत होता था। बुसी के परामर्श से उसने औरंगाबाद छोड़ दिया और दूरस्थ हैदराबाद में अपना अड्डा जमाया। बुसी के सिपाहियों को बहुत दिनों से उनका वेतन नहीं मिला था इसलिए वे बहुत शोर मचा रहे थे। जबकि उनकी छावनी तुलजापुर से लगभग ४० मील पूरब में भल्की नामक स्थान पर थी सेना ने विद्रोह कर दिया। सेना ने अपने वेतन अधिकारी रामदास पंत पर आक्रमण किया तथा उसको मार डाला (७ अप्रैल, १७५२ ई०)। अन्य दो प्रमुख अधिकारी सैयद लशकरखाँ तथा शाहनवाजखाँ बुसी के उद्धत और कठोर व्यवहार के कारण पहले से ही उसके प्रति विरक्त थे। पेशवा ने शीघ्र ही इस अवसर से लाभ उठाना चाहा तथा उसने सिंधियाँ और होल्कर को यथाशीघ्र गाजीउद्दीन को घटनास्थल पर पहुँचा देने के लिए कहा। औरंगाबाद के समीप उसका स्वागत करने के लिए उसने स्वयं प्रस्थान किया। बुसी तथा सलाबतजंग भी उस नगर की ओर लौटे।

पेशवा तथा गाजीउद्दीन अक्टूबर के आरम्भ म एक दूसरे से मिले तथा उन्होंने अपनी योजनाओं को सगठित किया। परन्तु इसके पहले कि वे कार्यान्वित हो सकें अकस्मात विष द्वारा गाजीउद्दीन की हत्या कर दी गयी। यह विष उसको उस भोज म दिया गया जिसके लिए निजामअली की माता ने उसको निमन्त्रण दिया था (१६ अक्टूबर १७५२ ई०)। इस प्रकार समस्त योजना सहसा उलट गयी तथा वस्तु स्थिति यथापूर्व हो गयी। मराठा की विशाल सेना अपने अधिकाश नायकों सहित अब औरंगाबाद के समीप एकत्र हो गयी। उसने सलाबतजग को घेरकर आज्ञापालन हेतु विवश करने का प्रयास किया। वह तथा बुसी हैदराबाद की ओर चल पडे। मराठा ने उनका पीछा किया तथा मुगलो के पृष्ठभाग को तग करते रहे। जब वह भल्की के पास पहुँचा तो उसने देखा कि मराठा ने उसको पूरी तरह घेर लिया है तथा इस अवसर पर उनके पास तोपें भी हैं। बुसी के पास उसकी पूरी सेना भी न थी, और न वह इस प्रकार की घटना के लिए तैयार ही था। चार दिनो तक मराठो ने अपने शत्रुओं को इस प्रकार तग किया कि उसके बहुत से सैनिक भूख तथा मराठा तोपखाने की मार के कारण मर गये। अब बुसी के द्वारा सलाबतजग ने शर्तों के लिए प्राथना की। मराठो का हठ था कि जो कुछ गाजीउद्दीन ने उनको देने को कहा है उससे कुछ भी कम वे स्वीकार न करेंगे। यह शर्त स्वीकार कर ली गयी और इसका परिणाम भल्की की सन्धि पत्र हुआ। २४ नवम्बर १७५२ ई० को वस्त्रों तथा उपहारो की भेंटो तथा विधिवत आगमनो के विनिमय द्वारा यह सन्धि पुष्ट कर दी गयी। भल्की की इस सन्धि का मुख्य भाग यह था कि गोदावरी तथा ताप्ती नदियो के बीच का बरार का समस्त पश्चिमी भाग निजाम ने मराठो को दे दिया। इसमे पूरा बागलान तथा खानदेश भी सम्मिलित थे। निजाम के राज्य का यह सीमा परिच्छेद व्यवहार रूप से अन्त समय तक वर्तमान था। भल्की की सन्धि के पहले सह्याद्रि पवतमाला के पूरब मे समस्त प्रदेश पर निजाम अपना स्वत्व रखता था। नासिक, त्रिम्बक[3] तथा उस क्षेत्र के समस्त महत्वशाली

---

[3] मराठो के लिए इस गढ का सार्थक इतिहास है जो उल्लेखनीय है। पूना के उत्तर मे नासिक जिले का प्रदेश पेशवा को उतना ही प्यारा था जितना कि उसके दक्षिण का सतारा तक का प्रदेश। यह महाराष्ट्र का केन्द्र माना जाता था जिसको सवप्रथम मुस्लिम शासन से शिवाजी ने मुक्त किया था। नासिक तथा त्रिम्बकगढ तीर्थस्थान थे जहाँ पर देश के विभिन्न भागो से हिन्दू यात्रियो के दल एकत्र होते थे। केवल अपनी धर्मान्ध नीति के कारण औरंगजेब ने इन स्थानो पर अधिकार कर लिया था। उसने त्रिम्बकेश्वर के प्राचीन मन्दिर को भूमिसात कर दिया था

गढ इस प्रकार मराठा के अधिकार म आ गय, तथा शीघ्र ही वहा पर उत्तम प्रबन्ध तथा शासन स्थापित हो गया। इस प्रकार मराठा प्रदेश के एक बडे भाग का मुगल शासन स मुक्त होना कोई कम लाभ न था।

सन्धि निश्चित होने के बाद पेशवा तथा बुसी अनेक बार एक-दूसरे स प्रेमपूर्वक मिल तथा परस्पर वार्तालाप किय। पेशवा न बुसी स आग्रह किया कि वह उसकी सेवा म आ जाय परन्तु बुसी न बुद्धिमानीपूर्वक इसस इन्कार कर दिया। अब बुसी मराठा का शत्रु न था।

२ तोपखाने का उपयोग—मुजफ्फरखा—पेशवा तथा उसके चचेरे भाई सदाशिवराव पर जो इस युद्ध का प्रमुख नायक रहा था परम्परागत मराठा रणकौशल की अपेक्षा भारतीय युद्ध प्रणाली म तोपखाना और अनुशासित सेना की सर्वोपरि उपादेयता का बडा गहरा प्रभाव पडा। युद्ध काल की इस नवीन यूरोपीय शैली का मुख्य शिक्षक इस समय बुसी था। परन्तु सदाशिवराव और पेशवा के पुत्र विश्वासराव म स एक को भी साहस न हुआ कि व बुसी के साथ कार्य कर। इसके विपरीत उन्होंन मुजफ्फरखाँ या इब्राहीमखाँ सदृश बुसी के भारतीय सहायको को अपने यहाँ नौकरी म रख लिया। इनकी सेनाओ को गर्दे (फ्रासीसी शब्द) कहा जाता था जो बिगडकर गर्दी हो गया जिसका अर्थ पश्चिमी शैली के अनुसार तोपखान के उपयोग म प्रशिक्षित अनुशासित पैदल

तथा नासिक का नाम गुलशनाबाद रख दिया था। शाहू तथा पेशवा की इच्छा थी कि य तीर्थस्थान पुन हिन्दुओ के अधिकार म आ जाय। वास्तव म त्रिम्बकगढ का अपने विशेष रूप स शाहू न अपन स्वराज्य की माँग म कर दिया था जो बालाजी विश्वनाथ द्वारा सयद हुसनअली के सम्मुख १७१८ ई० म उपस्थित की गयी थी। बाजीराव इन स्थानो को वापस न ल सका था। सदाशिवराव भाऊ अपने विश्वस्त साहसी नायक त्र्यम्बक सूर्याजी द्वारा इस कार्य म सफल हो गया। त्र्यम्बक न २ दिसम्बर १७५१ ई० को गढ पर अधिकार कर लिया। नासिक पर भी उस अधिकार प्राप्त हो गया तथा यहाँ पर पेशवा न शीघ्र ही महल तथा मन्दिर बनवा दिय। यद्यपि त्रिम्बकगढ कुछ समय के लिए मुस्लिम नियन्त्रण म वापस कर दिया गया था किन्तु दो ही वर्षों म मराठा न उस पर पुन अपना अधिकार कर लिया मस्जिद को गिरा दिया तथा प्राचीन मन्दिर को पुन स्थापित कर दिया। नाना तथा भाऊ त्रिम्बकेश्वर के इस मन्दिर का विधिपूर्वक दर्शन करने सर्वप्रथम नवम्बर १७५४ ई० म आय। सतारा के छोटे छोटे गढो पर भी—जस वसन्तगढ, त्रिगलवाडी, विशालगढ तथा अन्य—उसी समय मराठा का अधिकार हो गया। बाद म १७५९ ई० म शिवाजी के जन्म स्थान गढ शिवनेर पर भी मराठा का अधिकार हो गया।

सेना है जिसके वस्त्र तथा अस्त्र शस्त्र पूर्णत एक प्रकार के हो। जब वे भल्की मे एक-दूसरे से मिले पेशवा ने इस विषय पर बुसी के साथ वार्तालाप किया तथा मुजफ्फरखाँ को दो हजार पैदलो एक हजार सवारो तथा कुछ तोपचियो सहित सम्मिलित रूप से ५५ हजार रुपये मासिक के संयुक्त वेतन पर अपने यहाँ नौकर रख लिया। यहाँ सर्वप्रथम मल्हारराव होल्कर ने मुजफ्फरखाँ के चातुर्य तथा नैपुण्य की परीक्षा ली, तथा पेशवा से उसकी सिफारिश की। दुर्भाग्यवश यह व्यक्ति योग्य होते हुए भी अति विपत्तिकारक सिद्ध हुआ क्योकि वह संकटावस्था मे निष्ठापूर्वक कर्तव्यपालन न करते हुए व्यक्तिगत लाभ के लिए स्वार्थवश सौदेबाजी करने लगता था। सदाशिवराव का कठोर स्वभाव खान के इस व्यवहार को सहन न कर सका तथा वे दोनो स्पष्ट शत्रु हो गये।

भारत की राजनीतिक परिस्थिति मे शीघ्र परिवर्तन हो रहे थे। यूरोप मे इगलण्ड तथा फ्रास के बीच मे सप्तवर्षीय (१७५६ ६३ ई०) युद्ध आरम्भ हो गया था। इसका प्रभाव भारत पर भी पडा। भल्की से पेशवा ने कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया। आगामी ५ वर्षों तक वह उस क्षेत्र मे वार्षिक अभियान करता रहा। प्रथम को श्रीरगपट्टन का अभियान कहते हैं (८ जनवरी से १९ जून १७५२ ई० तक), जो इस क्षेत्र मे अर्काट की नवाबी के सम्बन्ध मे मुहम्मदअली तथा चाँदासाहब के बीच मे हुआ था और जिसमे डूप्ले तथा क्लाइव ने मुख्य भाग लिया था। ३ जून, १७५२ ई० को चाँदासाहब की हत्या डूप्ले की कूटनीति के प्रति प्रहार सिद्ध हुई तथा इससे कर्नाटक मे फ्रासीसी प्रभुता समाप्त हो गयी। १७५३ ई० मे पेशवा भल्की से सीधा श्रीरगपट्टन को गया और वहाँ ठहर गया। २० मार्च को भाऊसाहब ने होली हान्नूर के गढ पर अधिकार कर लिया जो तुगा तथा भद्रा नदियो के सगम पर स्थित है। वहाँ से मुडकर उन्होने १४ मई को धारवाड पर अधिकार कर लिया। वहा से पूना जाते हुए वे कोल्हापुर मे ठहरे। यहाँ पर राजा सम्भाजी तथा उसकी रानी जीजाबाई ने उनका सप्रेम स्वागत किया। उन्होने पहले की एक प्रतिज्ञा की पूर्ति रूप मे भाऊसाहब को भीमगढ पारगढ वल्लभगढ तथा कालनिधि के गढ तथा खानापुर को भी जिला दिया।

वर्षाऋतु के बाद पेशवा ने गत वर्ष के अधूरे कार्य को पूरा करने हेतु पुन कर्नाटक जाने का निश्चय किया। १७५४ ई० मे प्रत्येक स्थान पर घोर युद्ध के बाद बागलकोट, अजनी हरिहर तथा मुण्डलगी पर अधिकार हो गया तथा पेशवा वर्षाऋतु व्यतीत करने के लिए पूना वापस आ गया। यह उसका द्वितीय नियमित अभियान था।

पेशवा के अगले अभियान को सवनूर का अभियान कहते हैं। २८ अक्टूबर,

१७५४ ई० को नानासाहब तथा भाऊसाहब पूना से चलकर पश्चिमी कर्नाटक को गये तथा उन्होंने महादोबा पुरन्दरे को मुजफ्फरखाँ गर्दी के साथ बदनूर भेज दिया। वहाँ पुरन्दर तथा खान के बीच में अनुशासन सम्बन्धी एक विषय पर झगड़ा हो गया। ऐसा ज्ञात हुआ है कि खान के पास सैनिकों की नियत संख्या न थी और न नियत युद्ध-सामग्री ही थी। महादोबा ने उपस्थिति पंजिका माँगी जिस पर खान को आपत्ति हुई। गरमागरम शब्दों के आदान प्रदान के पश्चात अति रुष्ट होकर खान मराठा शिविर से चला गया और श्रीरंगपट्टन के राजा के यहाँ उसने नौकरी कर ली। उसने पेशवा के विरुद्ध स्पष्ट विद्रोह कर दिया तथा उसके प्रति शक्तिशाली विरोध का संगठन किया। श्रीरंगपट्टन का राजा पेशवा द्वारा कर माँगने के कारण उससे पहले से ही नाराज था क्योंकि उसकी कभी भी कर देने की इच्छा नहीं थी। उसके समान ही सावनूर का नवाब भी मराठा नियन्त्रण को स्वीकार करने के विरुद्ध था तथा चुकार का प्रतिरोध कर रहा था। पेशवा के संकटों से लाभ उठाकर मुजफ्फरखाँ उसके शत्रुओं से मिल गया तथा शीघ्र ही भयावह हो गया। पेशवा ने पूना जाकर सलाबतजंग तथा बुसी की मित्रता प्राप्त कर ली और दक्षिण में मुजफ्फरखाँ द्वारा उपस्थित भय का प्रतिरोध करने हेतु उस ओर विशाल सम्मिलित अभियान की योजना बनायी।[४]

४ सावनूर का पतन—मुजफ्फरखाँ का अन्त—१७५५ तथा १७५६ ई० के वर्ष पेशवा के लिए अत्यन्त चिन्ता के वर्ष सिद्ध हुए। गत वर्ष उसका भाई रघुनाथराव उत्तर में था तथा वहाँ उसने कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं की थी। तुलाजी आंग्रे अत्यन्त निन्दनीय सिद्ध हो गया था तथा उसके दमनार्थ कठोर उपाय करने थे। नाविक युद्ध में अपनी निर्बलता को दूर करने के लिए पेशवा ने अंग्रेजों से एक समझौता कर लिया जिसके द्वारा बम्बई से उसको नाविक सहायता मिल गयी। परन्तु उसका यह उपाय अन्त में मराठा हितों के प्रति विनाशक सिद्ध हुआ। इसी समय जयप्पा शिन्दे मारवाड़ में अपने राठौर शत्रुओं के साथ दुस्तर संघर्ष में फँस गया। पेशवा बहुत साहसी था तथा सावनूर पर अधिकार करने के लिए उसने तैयारियाँ कीं। सावनूर के नवाब ने विद्रोही मुजफ्फरखाँ को शरण दे रखी थी तथा इस प्रकार वह आक्रामक हो गया था। अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए पेशवा ने उत्तर से अपने पास विशेष रूप से मल्हारराव होल्कर उसके योग्य सहायक शत्याजी खराटे तथा विट्ठल शिवदेव विंचूरकर को भी बुला लिया। जानोजी तथा

---

४ ग्वालियर फाइल्स, खण्ड ३, पृ० २९५।

नागपुर का मुधोजी भोंसले भी उसके निमन्त्रण पर उसके पास आ गये। दुर्भाग्यवश मुरारराव घोरपडे ने पेशवा का पक्ष त्याग दिया तथा सावनूर के नवाब के साथ हो गया जिससे मराठा परिस्थिति काफी गम्भीर हो गयी।

मार्च १७५६ ई० के आरम्भ मे पेशवा सावनूर के सम्मुख पहुँच गया और घोर सैनिक प्रवृत्तियाँ अविलम्ब आरम्भ कर दी गयी। दो मासों तक सतत युद्ध होता रहा। सलाबतजंग तथा बुसी बहुत विलम्ब से उपस्थित हुए तथा अपने साथ कोई वास्तविक सहायता भी न लाये।

नवाब तथा मुजफ्फरखाँ ने योग्यतापूर्वक अपने स्थान की रक्षा की। १२ मार्च को दुर्गस्थ सेना ने निराश होकर आक्रमण किया जिसमे मुजफ्फरखाँ के गर्दियों का घोर संहार हुआ। खान को अपने सैनिकों की अजेयता पर बड़ा गर्व था तथा उसने पेशवा और बुसी की सम्मिलित शक्ति को तुच्छ बताया था। पेशवा ने नवाब से मुजफ्फरखाँ को उसके हवाले करने के लिए कहा, परन्तु नवाब ने इन्कार कर दिया। मई के मास मे बुसी की घोर अग्नि-वर्षा के कारण सावनूर का सुदृढ परकोटा तथा अजेय रक्षा-साधन भंग हो गये। यह देखकर कि उस स्थान की रक्षा अधिक देर तक नहीं की जा सकती, मुजफ्फरखाँ अपनी प्राणरक्षा के निमित्त भाग निकला तथा १८ मई को नवाब ने सावनूर को पेशवा को समर्पित कर दिया। पश्चिमी तोपखाने की क्षमता का दक्षिण मे यह प्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन था जिसका गम्भीर अवलोकन मित्र तथा शत्रु एक ही भांति कर रहे थे।

सावनूर के इस युद्ध मे दोनों पक्षों ने अत्यन्त धैर्य से काम लिया। अनेक मराठा नायकों को भारी घाव लगे। बाबा फडनिस (नाना का पिता), जो शिविर मे उपस्थित था, लिखता है—"नवाब ने नम्रतापूर्वक शर्तों की प्रार्थना की। ११ लाख रुपये का कर देने पर वह सहमत हो गया। नवाब के पास देने के लिए नकद रुपये न थे। आधे धन के बदले मे उसने अपने आधे जिले दे दिये—बंकापुर, मिस्रीकोट, कुण्डगोल तथा हुबली। सावनूर का कार्य समाप्त करके जब पेशवा तथा सलाबतजंग तुंगभद्रा से आगे बढ़े तो बेन्नूर का सामन्त भी १२ लाख का कर देने पर सहमत हो गया। इसी प्रकार चित्रदुर्ग रायदुर्ग तथा हरपनहल्ली के सामन्त भी कर चुका गये। सोधा ८ लाख का कर देने पर सहमत हो गया। मदनगढ तथा वासवपत्तन भी पेशवा के अधिकार मे आ गये। गोपालराव पटवर्धन तथा रास्ते को कर्नाटक मे नियुक्त करने के

बाद पेशवा जुलाई में पूना को वापस आ गया।' इस प्रकार मराठा राज्य की दक्षिणी सीमा अब कृष्णा से तुंगभद्रा तक फैल गयी।[४]

सावनूर के पतन के बाद मुरारराव ने पेशवा से प्रार्थना की—'यदि आप मेरे साथ उस सम्मान तथा महत्त्व से व्यवहार करें जो मेरे प्रति उचित है, तो मैं निष्ठापूर्वक आपकी सेवा करने को तैयार हूँ, अन्यथा मैं समस्त कार्य छोड़ कर मौन व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करूँगा।' मराठा राज्य के सम्मानित सदस्य के रूप में उसके प्रति पेशवा ने अपनी सहानुभूति प्रकट की तथा पूर्ण सम्मान का उसको आश्वासन देते हुए कहा— 'यदि आप निष्ठापूर्वक तथा उत्साहपूर्वक राज्य की सेवा करेंगे तो हम आपके हितों का पूरा ध्यान रखेंगे।' वह भविष्य में अपने पूर्ण उत्साह से पेशवा की सेवा करने के लिए सहमत हो गया तथा अपने ४ हजार सिपाहियों के दल के साथ गूटी में अपने निवास स्थान को वापस हो गया।

सावनूर के इस साहसिक कार्य में मुजफ्फरखाँ की समस्त ख्याति सदा के लिए नष्ट हो गयी। १६ मार्च को जब नवाब ने उसको निष्कासित कर दिया तो उसने निजाम के एक सरदार रामचन्द्र जाधव के पास कुछ समय के लिए शरण ग्रहण की। वेतनाभाव के कारण उसके अधिकांश साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया। सदाशिवराव के प्रबल प्रत्यादेश के विरुद्ध भी पेशवा ने अपने व्यक्तिगत कार्यकर्ताओं द्वारा खान से अपने मूल स्थान को पुनः ग्रहण करने को कहा। खान ने सावनूर पर उपयोग के लिए गोआ से बहुत सी युद्ध सामग्री मोल ली थी जिसके कारण उसको पुर्तगालियों को काफी धन देना था। उसके अधीन व्यक्तियों ने उसका साथ छोड़ दिया। इस प्रकार अत्यन्त दरिद्रता की स्थिति में उसने पेशवा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जो उसके पास शेट्याजी खराडे द्वारा पहुँचाया गया था। पेशवा ने उसको अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के निमित्त २५ हजार रुपये नकद दिये। १७५६ ई० के दशहरा के समीप खान पुनः पूना में अपनी नौकरी पर आ गया।

इसके बाद खान को उत्तर कोंकण के दुस्साध्य गढ़ों को विजय करने का कार्य सौंपा गया। किसी महत्त्वशाली अभियान या वैदेशिक युद्ध से उसको जानबूझकर अलग रखा गया, क्योंकि इसमें उसे पेशवा के शत्रुओं से कपटपूर्वक मिलकर लाभ उठाने का अवसर मिल सकता था। परन्तु इन गढ़ों की विजय में भी उसने निरपराध जनता को कष्ट दिया और उनसे बलपूर्वक धन वसूल

---

४ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २८, पृ० १४० १८२, १८३ १८५ राजवाड़े संग्रह खण्ड ३ पृ० ४७२ ४७३ ४७६, ४८१।

किया, जिससे उस पर नियन्त्रण का काय कठिन होता गया। मुजफ्फरखाँ को भाऊसाहब से घोर घृणा थी। जब भाऊसाहब ने उसके प्रतिद्वन्द्वी गर्दी नामक इब्राहीमखाँ की सेवाएँ प्राप्त कर लीं, तो मुजफ्फरखाँ ने बदला लेने का प्रयास किया। २८ अक्टूबर १७५६ ई० की सायवेला म जब पूना के गारपीर म स्थित अपने डेरे म भाऊसाहब अपना नियमित काय कर रहा था, उसके दमाद हैदरखाँ ने अकस्मात उसकी पीठ म छुरा भोंक दिया। सौभाग्यवश घाव प्राण घातक सिद्ध न हुआ, यद्यपि वह काफी गहरा था। तुरन्त जाँच पडताल की गयी, तथा आठ अपराधी, जिनम मुजफ्फरखाँ तथा उसका दामाद भी शामिल थे, ३० अक्टूबर को गोलियो से उडा दिये गये।

४ **कर्नाटक विषयक काय असम्पूर्ण**—दक्षिणी प्रदेशो मे पेशवा के आगे के कार्यों के वणन को यहाँ पर समाप्त कर देना उपयुक्त होगा। १७५७ ई० मे एक बार पुन उसने स्वय कर्नाटक पर प्रयाण किया। १ जनवरी को पूना से प्रस्थान कर वह तथा सदाशिवराव श्रीरंगपट्टन पहुँच गये। माग मे उन्होने कर-सग्रह भी किया। मुरारराव घोरपडे तथा मुजफ्फरखाँ दोनो पेशवा के साथ थे। प्राचीन मसूर राज्य का अन्त करने के उद्देश्य से पेशवा का इरादा था कि वह उसकी राजधानी पर अपना अधिकार कर ले। नगरावरोध-काल म तोप के एक गोले से श्रीरंग के प्रसिद्ध मन्दिर का स्वण शिखर भग हो गया। यह अपशकुन माना गया तथा पारम्परिक सन्धि वार्ता प्रारम्भ हो गयी। राजा तथा उसका मन्त्री ३२ लाख का कर देने पर सहमत हो गये। इनम से ५ लाख रुपये नकद चुका दिये गये तथा शेष धन के लिए १४ मूल्यवान जिले निक्षेप रूप मे दे दिये गये। पेशवा मई म वापस आ गया और अभियान के शेष काय को पूरा करने हेतु अपने प्रतिनिधि के रूप म बलवन्तराव मेहेनदले को वहाँ छोड आया। लौटते हुए उसने शिरा के शक्तिशाली गढ़ पर अधिकार कर लिया।

१७५७ ई० के बाद स्वय पेशवा ने दक्षिण म कभी किसी अभियान का नेतृत्व नहीं किया। जो कुछ काय करने को रह गया था उसके सहायको ने उसको पूरा कर दिया। अन्तिम तीन वर्षों म मराठा राज्य की सीमाओ के अन्दर समस्त कन्नड देश आ गया। इसम वतमान मसूर का राज्य भी सम्मिलित था। इसका विस्तार कावेरी नदी से पूरबी समुद्रतट तक था। जब पेशवा ने अपना पद ग्रहण किया, मराठा राज्य की दक्षिणी सीमा एक मोटी रेखा थी जो पूरब मे कृष्णा नदी के मुहाने से प्रारम्भ होकर पश्चिम म गोआ तक फैली हुई थी। इस रेखा से आगे के प्रदेश की वास्तविक विजय म गोपाल राव पटवधन बलवन्तराव मेहेनदले विसाजी कृष्ण, रस्ते तथा पसे का काय जो १७५८ तथा १७६० ई० के बीच म सम्पादित किया गया, स्वय पेशवा की

उन विजयो से अधिक था जो १७२३ तथा १७५७ ई० के बीच म उसने प्राप्त की थी। पानीपत के सवनाश से हैदरअली की इन विजित प्रदेशा को पुन छीन कर मराठा के अर्जित लाभो को नष्ट कर देने का वाछित अवसर मिल गया।

कर्नाटक म मराठा महत्त्वाकाक्षाओ का मुख्य उद्देश्य यह था कि औरगजेब के समय के चार नवाबा—अर्थात शिरा सावनूर कर्नूल तथा कडप्पा के नवाब को अधीन किया जाय। पांचवां नवाब—अर्थात अर्काट का नवाब—मराठो के आक्रमण से बच गया क्योकि उसे अग्रेजो का समथन प्राप्त था। स्वय पशवा ने शिरा तथा सावनूर को जीता था। कडप्पा का अधिकार कोलार, हासकोट तथा बालापुर के जिलो पर था जो एक समय शाहजी राजे की जागीर थे। बलवतराव मेहेनडले की सामथ्य द्वारा यह अधीन किया गया। कडप्पा का नवाब अब्दुल मजीदखां वीर तथा कुशाग्र बुद्धि का व्यक्ति था। २४ सितम्बर १७५७ ई० को सिघौट तथा कडप्पा के बीच मे हुए घोर युद्ध मे खान तथा उसके चार सौ सिपाहियो का वध हुआ। उसी रात्रि को कडप्पा पर अधिकार प्राप्त हो गया। इसके बाद विसाजी कृष्ण ने वेदनूर की ओर अपना ध्यान दिया परन्तु इस पर अधिकार प्राप्त करने के पहले ही विसाजी को अकस्मात पूना बुला लिया गया। मसूर सेना के एक नायक के रूप मे हैदरअली ने ठीक इसी समय प्रसिद्धि प्राप्त की तथा उसने मराठा आक्रमण का वीरतापूवक प्रतिरोध किया। वह साहसी तथा चतुर सनिक था। युद्ध की कला मे उस समय उसके समान कोई अय व्यक्ति निपुण न था। उसने अपनी सेनाओ को पश्चिमी अनुशासन के अनुसार इस योग्यता से प्रशिक्षित किया था कि वह शीघ्र ही दक्षिण मे अप्रतिरोध्य हो गया। गोपाल राव पटवधन ने मसूर पर अधिकार करने का घोर प्रयत्न किया परतु वह सनिक कायवाही के बीच ही मे पूना वापस बुला लिया गया। इस बीच म विसाजी कृष्ण ने कृष्णा नदी के मुहाने के समीपवर्ती समुद्रतट पर आगोल नेल्लौर सवपल्ली कलाहस्ती तथा अय स्याना पर अधिकार कर लिया। पूरबी समुद्र म पवित्र स्नान द्वारा मराठा सनाओ न अपनी विजय को पूरा किया। कनूल क नवाब ने बिना प्रतिरोध के मराठा मांगा को स्वीकार कर लिया।

६ बुसी चारमीनार मे—अब हम हैदराबाद के नवाब सलाबतजग के साथ पशवा क सम्बधा का अध्ययन करना है और इसके हेतु दिसम्बर १७५२ ई० की शाति के समय स इस कथा को पुन आरम्भ करना है। बुसी को राज्य क [illegible] वृद्ध तथा योग्य सवका—सयद लशकरखां तथा शाह

नवाजखाँ—के षडयन्त्रों का सामना करने का आह्वान प्राप्त हुआ। इनको अपनी शक्ति तथा प्रशासन पर उसके नियन्त्रण से बड़ी ईर्ष्या थी। इनके कारण निजाम के दरबार में हत्याओं तथा गुप्त षड्यन्त्रों की वृद्धि होती जा रही थी और अन्त में सलाबतजंग भी इनका शिकार हो गया।

१७५६ ई० की ग्रीष्मऋतु में जब बुसी सावनूर को विजय करने में व्यस्त था, उसके स्वामी सलाबतजंग की इच्छा हुई कि उसको इस उद्धत तथा सत्ता-ग्राहक सेवक से छुटकारा मिल जाये। अतः उसने १८ मई को उसके पास आज्ञा भेजी कि वह सेवा से पृथक् कर दिया गया है। यह उस घोर भय का परिणाम था जो भारतीय शासकों को उस बढ़ती हुई शक्ति से होने लगा था जो अंग्रेज तथा फ्रांसीसी अपने उत्तम सैनिक संगठन द्वारा स्थापित कर रहे थे। जैसे ही पेशवा को बुसी के निष्कासन का समाचार प्राप्त हुआ, उसने उसको (बुसी को) अपनी सेवा में लेने का प्रस्ताव भेजा। ऐसा मालूम हुआ कि दोनों पक्ष इस पर सहमत हो गये। बुसी एक श्रेष्ठ युक्तिकुशल पुरुष था। उसका अपना निश्चय भारतीय शासकों को यह दर्शाना था कि भविष्य में भारत की सत्ता के स्वामी यूरोप निवासी होंगे तथा इसका पूर्वबोध वह इन्हें कराना चाहता था। प्रत्येक प्रार्थना पर, जो उससे की गयी बुसी ने शान्तिपूर्वक 'हाँ' कह दिया, तथा हैदराबाद में कुछ दिन ठहरकर उसने अपनी सम्पत्ति को एकत्र करके मछलीपट्टम चले जाने के आज्ञापत्र माँगे। पेशवा ने स्वयं अपना अंगरक्षक दल उसको मार्गदर्शन के लिए दिया। अपने समस्त अनुचर-वर्ग सहित बुसी जून में हैदराबाद पहुँच गया। नगर के केन्द्र में स्थित चारमीनार के नाम से प्रसिद्ध भव्य प्राचीन भवन में जाकर वह ठहर गया। अपने शक्तिशाली तोपखाने के द्वारा उसने अपने को इस प्रकार सुरक्षित कर लिया कि उसको वहाँ से हटाया नहीं जा सकता था। इसके शीघ्र पश्चात् ही सलाबतजंग अपना समस्त दल लेकर वहाँ आ गया, परन्तु चार मास तक सतत घोर संघर्ष के बाद भी वह बुसी की स्थिति पर कोई प्रभाव न डाल सका। अन्त में सलाबतजंग पूर्णतया झुक गया तथा १६ नवम्बर को उसने उसको उसके प्राचीन पद पर पुनः नियुक्त करने की लिखित सहमति दे दी। हैदराबाद में अपने कार्यों का प्रबन्ध करने के बाद बुसी अपने लाभदायक जिलों का प्रबन्ध करने के लिए जो उसको अपनी सेना के व्यय के लिए उत्तरी सरकार में मिले थे मछलीपट्टम गया। वहाँ से वह सितम्बर १७५७ ई० में हैदराबाद वापस आया।[६] यदि सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस के भाग्य का इतना ह्रास न हो गया

६ अनेक भारतीय तथा यूरोपीय लेखकों ने चारमीनार के युद्ध की घटना का बड़ा रोचक वर्णन किया है। इसके आमूलचूल परिवर्तनकारी स्वरूप

करना निजाम का मुख्य ध्येय था। नवम्बर मे युद्ध कार्यवाही आरम्भ हुई। सलाबतजंग ने अभियान का भार निजामअली को दिया। बुसी उस समय पूर्वी समुद्रतट पर था।

जबकि मराठे औरंगाबाद की ओर प्रयाण कर रहे थे, उन्हें समाचार मिला कि निजाम का एक शक्तिशाली सरदार रामचन्द्र जाधव भल्की से राजधानी पर आये हुए संकट को दूर करने के लिए शीघ्रतापूर्वक उधर आ रहा है। पेशवा की सेना पर औरंगाबाद पहुँचने से पहले ही रामचन्द्र जाधव आक्रमण न कर दे इसलिए दत्ताजी ने सिन्दखेड मे उसकी उपस्थिति की जानकारी पाते ही उस पर घेरा डाल दिया। यह आश्चर्यकारी प्रगति अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई। सिन्दखेड का छोटा-सा गढ बहुत समय तक सामना नही कर सकता था। इब्राहीमखाँ गार्दी को अपने साथ लेकर निजामअली औरंगाबाद से सिन्दखेड की ओर बढा। वह रामचन्द्र जाधव पर दबाव को कम करने के उद्देश्य से दत्ताजी की सेना के पीछे पीछे ही आया। परन्तु यह दबाव अनेक दिशाओं से मराठा के दलो के इकट्ठे होने से प्रति क्षण बढ़ता ही गया। उस छोटे से स्थान पर लगभग एक मास तक दोनो विरोधी दलो म घोर संघर्ष हुआ। निजामअली तथा इब्राहीमखाँ का सम्पर्क जाधव से स्थापित हो गया तथा उन्होंने एक साथ होकर अपने शक्तिशाली तोपखाने की रक्षा मे १२ दिसम्बर को मराठो की घेरा डालने वाली सेना को बीच मे चीरकर निकल जाने की कोशिश की। फलस्वरूप सिन्दखेड के फाटक पर चार दिनो तक लगातार युद्ध होता रहा। यहाँ पर जाधव का एक सहायक नागोजी मान अपने साथियो सहित मारा गया। १६ दिसम्बर को सायंकाल अंधेरा हो जाने पर दोनो विरोधी दल अलग अलग हो गये और विजय मराठो के पक्ष मे रही।

अगले कुछ दिनो मे अभियान के भाग्य का निर्णय हो गया। मराठा सवारो के दल निजाम की सेना पर टूट पडे। १७ दिसम्बर को निजामअली ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उसने विट्ठल सुन्दर को मराठा शिविर मे भेजकर शर्तों की प्रार्थना की। निजाम ने शान्ति स्थापित कर ली तथा नलदुर्ग के साथ पेशवा को २५ लाख रुपये वार्षिक की आय का प्रदेश दे दिया। साखर-खेर्डा के स्थान पर दोनो प्रमुख व्यक्तियो के अभ्यागमनो द्वारा २९ दिसम्बर, १७५७ ई० को संधि-पत्र विधिपूर्वक प्रमाणित तथा सम्पुष्ट हो गये।[७] पेशवा के निर्देशन मे मराठा दलो का ऐक्य एक बार पुनः भारतीय जगत के

---

[७] पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द २५, पृ० १८३, १८४।

समक्ष उपस्थित हो गया। ताराबाई के कार्यों द्वारा उत्पादित फूट का अब सर्वथा अंत हो गया था।

अब आसफजाह द्वारा परिपोषित राज्य के सलाहकारों में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ अति स्पष्ट हो गयीं। इस मराठा मुस्लिम संघर्ष से अलग रहने के लिए बुसी जानबूझकर हैदराबाद में ही रह गया था। युद्ध के बाद उसने अपने स्वामी का मुजरा करने के लिए औरंगाबाद की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वह पेशवा से मिला तथा उसके साथ साधारण परिस्थिति पर विचार विनिमय किया। औरंगाबाद आकर अति दीनभाव से वह सलाबतजंग से मिला। वह निजामअली से भी विधिपूर्वक मिला परन्तु उसकी ओर से किसी विश्वासघातक योजना के प्रति वह अत्यन्त सावधान रहा। शाहनवाजखाँ अब कृपापात्र नहीं रहा था तथा सलाबतजंग ने उसको प्रधानमन्त्री के पद से हटा दिया था। बुसी के परामर्श से उसके विश्वासपात्र सचिव हैदरजंग को उसने उस स्थान पर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार एक ही झटके में बुसी की धाक फिर जम गयी जिससे निजामअली को बहुत बुरा लगा।

८ भीषण हत्याएँ—सलाबतजंग बुसी के सामने थर थर काँपता था। उसके परामर्श से निजाम को हैदराबाद का सूबेदार नियुक्त किया गया ताकि वह आसानी से दूर रखा जा सके। अपना पद ग्रहण करते ही हैदरजंग ने तुरन्त दौलताबाद के गढ़ पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ से शाहनवाजखाँ के समस्त पदातियों को हटा दिया। स्वयं स्थान पर उसने कठोर पहरा लगा दिया। यह स्पष्ट हो गया कि निजामअली के विरुद्ध भी उसी योजना को कार्यान्वित करने का विचार बुसी कर रहा था। हैदरजंग निजामअली से मिलने गया तथा उसको यह सन्देश दिया कि वार्तालाप के लिए बुसी उससे तुरन्त मिलना चाहता है। अपने प्राणों के प्रति संकट के भय से निजामअली ने उत्तर दिया कि अगले दिन वह स्वयं बुसी से मिलने आयगा। हैदरजंग ने हठ किया कि वह तुरन्त ही मिलने जाय। इस धमकी भरे स्वर पर निजामअली का मस्तिष्क जाग्रत हो गया। उसने अपने हाथ की छोटी सी तलवार को खींचकर तुरन्त हैदरजंग के शरीर में भोंक दिया जिससे तत्क्षण उसका देहान्त हो गया। वहाँ उपस्थित विट्ठल सुन्दर ने तुरन्त हैदरजंग का सिर काट लिया तथा निजामअली के साथ सुरक्षित स्थान को भाग गया।

जैसे ही इस उपद्रव का समाचार जनसाधारण को ज्ञात हुआ सलाबतजंग ने अपने कोट में मराठा अनुचरों को एकत्र किया तथा बुसी के पास जाकर उसको इस घटना का समाचार दिया। क्रोध में उन्मत्त होकर बुसी ने अपने अधीन अधिकारी लक्ष्मण दुर्ग को शाहनवाजखाँ का उसके पुत्र सहित वध

करने का आदेश देकर भेजा, क्योंकि उसके विचारानुसार वे ही हैदरजंग की हत्या के जिम्मेदार थे। यह व्यक्ति साधा खान के मकान को गया तथा वहां उसके दो पुत्रों तथा मीर मुहम्मद नामक एक अन्य व्यक्ति सहित उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार ११ मई १७५८ ई० का दिन हत्याओं का दिन सिद्ध हुआ। निजामअली के सौभाग्य से बुसी ठीक उसी समय घटनास्थल से हटा दिया गया। पूर्वी समुद्रतट पर फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों के बीच में घोर युद्ध हो रहा था। फ्रांसीसी राज्यपाल काउण्ट लली ने बुसी को वापस बुला लिया और उसको तुरन्त अपनी समस्त फ्रांसीसी सेना सहित वहां जाना पड़ा। वह सलावतजंग को उसके भाई की दया पर छोड़ गया। बुसी ने जनवरी १७६० ई० में वाण्डीवाश के युद्ध में भाग लिया। अंग्रेजों ने उसको युद्धबन्दी बना लिया तथा यूरोप को भेज दिया। वह २० वर्ष बाद १७८३ ई० में भारत पुनः वापस आया। यहाँ पर १७८५ ई० में ६१ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

बुसी की वापसी के बाद निजाम के राज्य की दशा शीघ्र ही अधिक बिगड़ गयी। सलावतजंग तथा निजामअली में प्रशासन के प्रबन्ध अधिकार के विषय में झगड़ा हो गया क्योंकि सलावतजंग नाममात्र का निजाम था तथा अपने शक्तिशाली मन्त्रियों के हाथों का खिलौना था। पूर्वी तट के युद्धकाल में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कप्तान फोर्ड ने उत्तरी सरकार में प्रयाण किया तथा वहाँ के जिलों पर अपना अधिकार कर लिया। सलावतजंग और निजामअली दोनों ही इसको न रोक सके। निजामअली ने सलावतजंग से प्रबन्ध के सारे अधिकार मांगे। परन्तु क्योंकि सलावतजंग को भय था कि इब्राहीमखाँ की अध्यक्षता में निजामअली के गर्दी उसके प्राण ले लेंगे, अतः उसने इब्राहीमखां को नौकरी से निकाल देने की शर्त पर निजामअली को समस्त अधिकार सौंप देने की प्रतिज्ञा की। वह इस पर सहमत हो गया। निजामअली ने इब्राहीमखाँ को अक्टूबर १७५९ ई० में निकाल दिया और सलावतजंग ने उसको प्रशासन का पूरा अधिकार दे दिया। जब पूना में सदाशिवराव ने इब्राहीमखां के निष्कासन का समाचार सुना तो उसने तुरन्त इब्राहीमखाँ की ईमानदारी तथा योग्यता के विषय में अपने को सन्तुष्ट कर लिया था। यही कारण था जिससे उत्तेजित होकर मुजफ्फरखाँ ने भाऊसाहब के प्राण हरण का प्रयास किया, जिसका वर्णन पहले हो चुका है।

६ **उदगीर का युद्ध**—निजामअली उस आक्रमण पर बहुत नाराज था जो इस समय पेशवा ने तोपखाने से सुसज्जित होकर हैदराबाद राज्य के विरुद्ध आरम्भ किया था—विशेषकर अहमदाबाद दौलताबाद बुरहानपुर तथा

वाजीपुर पर अधिकार करन क कारण जो समस्त प्रसिद्ध राजधाना स्थान थ तथा प्राचीन मुस्लिम वभव के अवशष थ। धन तथा जागीर के रूप म पर्याप्त पुरस्कार प्राप्त हान पर अहमदनगर क रक्षक कवि जग न ६ नवम्बर १७५६ ई० को वह स्थान पशवा को समर्पित कर दिया। इसक कारण दोना पडासिया के बीच म नवीन युद्ध का आरम्भ हो गया। सदाशिवराव तथा विश्वासराव के नतृत्व म मराठा सनाआ न पूना स पूरब की ओर प्रयाण किया। जनवरी १७६० ई० म उन्हान निजाम क राज्य म प्रवश किया तथा उस मास की २० तारीख को युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध म बीदर क उत्तर म कुछ मील पर स्थित उदगीर के समीप कई लडाइयाँ हुई जिनम तापखान तथा सवारा न भाग लिया। ३ फरवरी को घार युद्ध हुआ जिसम आसफजाही सनाआ की पूर्ण पराजय हुई और निजामअली न शर्तों की प्रार्थना करन क लिए अपन दूत भज। वह पेशवा का ६० लाख की आय का प्रदेश समर्पित करन पर सहमत हो गया जिसम ऊपर कही हुई चारा मुस्लिम राज धानियाँ भी सम्मिलित थी। ११ फरवरी को सन्धि पत्र का निर्माण हुआ तथा आगामी दा मासा म समस्त नियत स्थाना पर मराठा अधिकार हो गया। परन्तु इस विजय के वभव का अकस्मात सर्वनाश हो गया क्योंकि अफगा निस्तान क पठान शासक अहमदशाह अब्दाली न उत्तर भारत म कई स्थाना पर मराठा का परास्त कर दिया था तथा मराठा की पराजय बढ़ती जा रही थी। इसक पूर्व कि निजाम के साथ निश्चित की हुई शर्तों का वह कार्यान्वित कर सक सदाशिवराव का उत्तर की ओर प्रयाण करन का आज्ञा प्राप्त हुई। उस उत्तापकारक प्रहार स जो मराठा का एक वर्ष बाद पानीपत क स्थान पर सहना पडा निजाम का राज्य सर्वनाश स बच गया। सलाबतजंग निजाम अली स अपनी रक्षा न कर सका। उसन ७ जुलाई, १७६२ ई० का उस कद म डाल दिया तथा बाद म १६ सितम्बर १७६३ ई० को उसका वध कर दिया।

तिथिक्रम

अध्याय १६

१७५४	तुलाजी आग्रे के दमनाथ ब्रिटिश प्रयास ।
१४ फरवरी, १७५५	रघुजी भोंसले का देहान्त ।
१० मार्च, १७५५	तुलाजी के दमनाथ मराठा ब्रिटिश सहमति ।
२६ मार्च, १७५५	कप्तान जेम्स का सुवर्णदुर्ग पर आक्रमण ।
१२ अप्रैल, १७५५	सुवर्णदुर्ग समर्पित, पेशवा की सेना द्वारा आग्रे के प्रदेश पर चारों ओर से स्थलमार्ग द्वारा आक्रमण ।
७ फरवरी, १७५६	ऐडमिरल वाटसन के जहाजी बेड़ा का बम्बई से प्रस्थान ।
१४ फरवरी, १७५६	आग्रे के नौ समूह के जलाने पर विजयदुर्ग का समर्पण, तुलाजी का आत्मसमर्पण और पूना भेजा जाना, उसकी माता तथा बालक वाटसन के अधीन ।
२८ जून, १७५६	फोंडा पर निष्फल पुर्तगाली आक्रमण, काउण्ट अल्वा की मृत्यु ।
२० जुलाई, १७५६	विजयदुर्ग पर ब्रिटिश अधिकार के विरुद्ध पेशवा का प्रतिवाद ।
१ अगस्त, १७५६	पूना में ब्रिटिश दूतमण्डल ।
१२ अक्टूबर, १७५६	ब्रिटिश पेशवा सहमति, विजयदुर्ग के स्थान पर बानकोट प्राप्त ।
मार्च, १७५७	जानोजी भोंसले द्वारा नागपुर राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त ।
२३ सितम्बर, १७५८	मानाजी आग्रे की मृत्यु ।
नवम्बर, १७५८—फरवरी, १७५९	पश्चिमी समुद्रतट पर पेशवा का दौरा ।
२८ जनवरी, १७५९	उन्देरी पर अधिकार ।
२१ फरवरी, १७५९	कसा उर्फ पद्मदुर्ग पर अधिकार ।
अगस्त, १७५९	पूना में प्राइस का दूतमण्डल ।
२३ अक्टूबर, १७५९	प्राइस का दूतमण्डल वापस ।

१७६०	
२३ अक्टूबर, १७६०	भारतीय समस्याओं के कारण क्लाइव इंगलैंड में।
१७६६	रेवदाण्डा का राजकोट भूमिसात।
	तुलाजी के दो पुत्रों रघुजी तथा सम्भाजी का बम्बई को पलायन।
१७८६	तुलाजी आंग्रे की मृत्यु।

अध्याय १६

दो न सुधरने योग्य सरदार

[१७५५–१७६०]

१ नागपुर का उत्तराधिकार। २ तुलाजी आग्रे उद्धत।
३ विजयदुर्ग का पतन। ४ पेशवा का विरोध।
५ क्या पेशवा ने मराठा नौ सेना का नाश किया? ६ मानाजी तथा रघुजी आग्रे।

१ नागपुर का उत्तराधिकार—नागपुर के भोसले तथा कोलाबा के आग्रे—ये दो न सुधरने योग्य सरदार थे। पेशवा को मराठा राज्य के एकीकरण के प्रयास में इन दो सरदारों को काबू में करना अपने समस्त धैर्य तथा कूटनीति के बावजूद दुस्साध्य प्रतीत हुआ। यहाँ उनके साथ पेशवा के सम्बन्धों का वर्णन करना उचित होगा। पेशवा के साथ रघुजी भोसले के सम्बन्धों का पहले ही सविस्तार वर्णन हो चुका है। वे दोनों चतुर तथा सावधान थे परस्पर स्नेह के लाभ को अच्छी तरह समझते थे तथा पारस्परिक कल्याण के उपायों में एक दूसरे से पूर्ण सहयोग करते थे। रघुजी को बहुत दिनों से पेट का रोग था तथा अपने जीवन के अन्तिम दो या तीन वर्षों में वह प्रायः शय्याग्रस्त रहा। उसने केवल बंगाल की विजय में ही नाम नहीं कमाया था अपितु उसने गोंडों को अधीन करने में तथा नागपुर राज्य के निर्माण में महान वीरता प्रकट की थी। उसका अपना विशेष व्यक्तित्व था जिसमें वह मल्हार राव होल्कर या किसी भी सिन्धिया से कम न था। उसने नागपुर तथा अन्य नगरों में मराठों को बसा दिया था और युद्ध तथा कूटनीति में राजभक्त सहकारियों की विशाल संख्या को प्रशिक्षण देकर अपने राज्य को शक्तिशाली तथा सम्पन्न केन्द्र बना दिया था।

उड़ीसा की विजय को पूरा करने के बाद १७५१ ई० में नवाब अलीवर्दीखाँ के साथ अन्तिम समझौता करके रघुजी ने शान्तिमय जीवन व्यतीत किया, तथा उन विभिन्न महान योजनाओं और अभियानों से अपना कोई विशेष सम्बन्ध न रखा जो पेशवा अविराम गति से कर्नाटक क्षेत्र में कर रहा था। बाबूराव कोन्हेर कोल्हटकर उसका घनिष्ठ परामर्शदाता था, जिसने रघुजी के

योग्यतम पुत्र जानोजी के साथ उसको नागपुर के शासन सम्बन्धी वर्तमान कार्य को चलाने में सहयोग किया। रघुजी का देहान्त १४ फरवरी, १७५५ ई० को हुआ। कहा जाता है कि इस अवसर पर उसकी छह पत्नियों तथा सात पासवानों ने अपने को उसकी चिता पर भस्म कर दिया। उसने अपनी इच्छा प्रकट कर दी थी कि उसके बाद जानोजी सेनासाहब सूबा हो। उसके चार पुत्रों में से जानोजी तथा साबाजी का जन्म उसकी छोटी पत्नी से हुआ था तथा मुधोजी और बिम्बाजी का जन्म बड़ी पत्नी से हुआ था। प्रथम दो साधारणतया वीर तथा योग्य व्यक्ति थे।

यद्यपि जानोजी छोटी रानी का पुत्र था, परन्तु आयु में वह बड़ी रानी के पुत्र मुधोजी से बड़ा था। इस कारण से उत्तराधिकार के सम्बन्ध में जटिल विवाद उपस्थित हो गया जिससे उनके राज्य की स्थिति निर्बल हो गयी। अपने पिता की आज्ञा का ध्यान न रखकर मुधोजी ने सेनासाहब सूबा के स्थान पर अपना स्वत्व उपस्थित किया तथा अपने पत्रों में जानोजी को इस प्रकार सम्बोधित किया जो छोटे भाई के लिए ही उपयुक्त था। यह विवाद पेशवा के सम्मुख पहुँचाया गया जिसको उत्तराधिकार शुल्क के भारी धन का लोभ था। जानोजी का सलाहकार देवजीपन्त छोरघडे पूना गया तथा ढाई लाख रुपये की नजर का वचन देकर उसने पेशवा का निश्चय अपने स्वामी के पक्ष में प्राप्त कर लिया। उस समय पेशवा सावनूर को जा रहा था तथा उसने दोनों भाइयों को अपने साथ चलने का निमन्त्रण दिया। उन दोनों ने आज्ञा का पालन किया तथा पेशवा के साथ गये। इसका परिणाम यह हुआ कि नागपुर राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न खटाई में पड़ गया। अन्त में गोदावरी के तट पर मार्च १७५७ ई० में एक सम्मेलन किया गया और इसने राज्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। जानोजी सेनासाहब सूबा घोषित किया गया तथा मुधोजी को कहा गया कि सेना धुरन्धर की उपाधि से वह चांदा में राज्य करे। चारों भाइयों से २० लाख रुपये का उपहार प्राप्त कर पेशवा ने इस निश्चय को प्रमाणित कर दिया।[1] कुछ समय तक सभी भाइयों ने एक साथ कार्य किया, तथा सिन्दखेड के स्थान पर निजाम पर आक्रमण करने में उन्होंने पेशवा की सहायता की। परन्तु चारों भाइयों की घरेलू लड़ाई का

---

[1] खरे संग्रह खण्ड १ पृ० ११, राजवाडे संग्रह खण्ड ३ पृ० १८८, १९३ ४६४ ४६८, ५१४ ५५६ ५५७ पत्रे यादी १५३ १५५, पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २० पृ० ७५ ऐतिहासिक पत्र ६६ विस्तार के लिए नागपुर बखर भी देखिए। नागपुर के इतिहास पर बहुत सा साहित्य प्रकाशित हो चुका है। विद्यार्थी उसको भी देखें।

कभी अत न हुआ, इसके परिणामस्वरूप नागपुर राज्य की शक्ति तथा गौरव का ह्रास हो गया।

२ तुलाजी आग्रे उद्धत—आग्रे परिवार तथा उनका नौ-समूह मराठा राज्य के पश्चिमी समुद्र तट के सरक्षक थे। शाहू के जीवनकाल म पेशवा इन अवज्ञाकारी सरदारा का निग्रह पूण शक्ति से नही कर सका था। मराठा राज्य की सुरक्षा तथा पश्चिमी शक्तियो के निग्रह के निमित्त पश्चिमी समुद्र तट की सावधानी के साथ रक्षा करना आवश्यक था। इस विषय मे पशवा के प्रति तुलाजी आग्रे की शत्रुवत वृत्ति शीघ्र ही असह्य हो गयी। भारतीय शासका की अत कलह के अतिरिक्त फासीसी तथा अग्रेजी व्यापारिक कम्पनिया ने अब भारतीय राजनीति मे स्पष्ट हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया था। अधिकाश बगाल तथा मद्रास पर उनका अधिकार हो गया था तथा पेशवा का यह कतव्य था कि वह ऐसे समय म पश्चिमी तट की रक्षा करे। इसके लिए यह आवश्यक था कि समस्त मराठा नौ समूह उसके नियत्रण मे हो।

इस समय पश्चिमी तट के दक्षिणी भाग पर तुलाजी आग्रे का नियत्रण था जिसका क द्र स्थान विजयदुग था। उत्तरी भाग पर रामजी महादेव का अधिकार था जो पेशवा क अधीन कल्याण का सूबेदार था। य दोनो ही शक्तिशाली तथा विचित्र व्यक्ति थे। उन दोना को गत वर्षो मे एक दूसर के प्रति घणा हो गयी थी। अधिक गम्भीर कार्यों म व्यस्त रहने के कारण पेशवा आग्रे परिवार क साथ स्वय व्यवहार न कर सका तथा उसने इस क्षेत्र के प्रत्येक काय को रामजीपत के हाथो मे छाड दिया। इस प्रकार अग्नि को इधन प्राप्त हो गया। गाआ के पुतगाली जो १७३९ ई० मे बसइ से हाथ धो बैठे थ अपनी पुरानी सम्पत्ति को पुन प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयास कर रहे थे। वे पेशवा के प्रत्यक विरोधी का साथ दते थे। वाडी का सामत पेशवा का आश्रयभोगी था, तथा तुलाजा और पुतगालियो दोना न उसकी अत्यत दुदशा कर रखी थी। १७५१ ई० मे जब ताराबाई पेशवा का विरोध कर रही थी, उसन तुलाजी आग्रे तथा पुतगालिया दोनो को उत्तेजित किया तथा पुतगालियो को पेशवा का पूण दमन कर देने की शत पर उनका बसइ का प्रदेश वापस लौटा दने का वचन दिया। अत इस विकट परिस्थिति मे पेशवा का यह कतव्य हो गया कि वह गाआ के पुतगालियो तथा बम्बइ के अग्रेजो के बीच मे मित्रता न होने द। पशवा कुछ समय तक यथाशक्ति अग्रेजो की मित्रता प्राप्त करन का प्रयास करता रहा। अग्रेज तुलाजी आग्रे से घोर घृणा करते थे अत उन्होने शन शनै पेशवा के प्रस्तावा को स्वीकार कर

लिया। अग्रजों को बम्बई आना स्वाभाविक था उन्हें पेशवा अथवा तुलाजी स कोई विशेष लगाव न था। उन्होंने तुलाजी का दमन करने म पेशवा का साथ देने का प्रस्ताव किया। पूर्वी तट पर अग्रजों तथा फ्रांसीसियों म युद्ध हो रहा था। पेशवा अग्रजों द्वारा पश्चिम म तुलाजी का साथ म दमन का तथा पूर्वी समुद्र-तट पर फ्रांसीसियों को सहायता न करने के लिए सहमत हो गया। इस प्रस्ताव म पेशवा का मकसद यह उद्देश्य था कि वह तुलाजी को अपने नियन्त्रण म ले आये तथा उसको मराठा राज्य के शत्रुओं का साथ देने से रोके। आंग्र के अधिकार म मराठा नौ-समूह को नष्ट करने की पेशवा की कोई योजना न थी। तुलाजी की अपनी स्वयं की क्रोधी प्रकृति के कारण परिस्थिति बिगड़ गयी। उसके ऊपर पेशवा और विशेषकर रामजी महादेव के प्रति असाधारण घृणा का भूत सवार था जो घरनाधपन पर पेशवा का प्रतिनिधि था। समष्टि रूप से मराठा राज्य के उत्तरदायित्व का कार्यान्वित करने म यह पेशवा से कभी सहमत न होता था। उसने कभी भी पेशवा के साथ रहने की इच्छा प्रकट न की अन्यथा पेशवा ने प्रसन्नतापूर्वक उसकी सेवाओं का उपयोग किया होता और साथ ही तुलाजी सदृश वीर नौ-सेना नायक की हितवृद्धि भी होती।

बसई पर मराठा अधिकार होने क समय स बम्बई की ब्रिटिश नीति का मुख्य आधार पेशवा क साथ प्रेममय सम्बन्ध बनाये रखना था ताकि वह फ्रांसीसियों का साथ न दे सकें। जब रामजी महादेव तथा तुलाजी क बीच म तनाव बहुत बढ़ गया तो रामजी न सतुलन क विचार स बम्बई कौंसिल की शुभकामनाएँ प्राप्त कर ली जिससे कि वह आंग्र तथा जजीरा क सिद्दी दोनों पर अपना नियन्त्रण रख सके। १७५४ ई० म जब पेशवा कर्नाटक के कार्यों म व्यस्त था रामजीपन्त कई बार बम्बई क राज्यपाल बूरशियर स मिला तथा तुलाजी क दमनार्थ बम्बई की नौ सेना का उपयोग करन क लिए सहमत हो गया।[2]

१० मार्च १७५५ ई० को गवर्नर बूरशियर न अपनी सभा के सम्मुख पेशवा के पत्र उपस्थित किये जो ८ तथा ११ फरवरी और ८ मार्च १७५५ ई० को लिखे गये थे। अन्त म १९ मार्च को रामजीपन्त तथा अंग्रेजों के बीच निम्नलिखित शर्तों पर सहमति हो गयी

(१) मराठा तथा अंग्रेज नौ सेनाएँ पूर्णत अंग्रेजों के नियन्त्रण म रहेंगी।

(२) आंग्र के जो पोत पकड़ म आ जायेंगे वे आधे आधे उन दोनों के बीच म बाँट लिये जायँगे।

फोरेस्ट कृत मराठा सीरीज — आंग्र से युद्ध।

(३) तुलाजी के परास्त होने के बाद मराठे अंग्रेजों को बानकोट तथा हिम्मतगढ़ का गढ़ (जिसका नाम बाद में गढ़ विक्टोरिया रख दिया गया) समीपवर्ती पाँचों गाँवों के साथ दे देंगे।

(४) अंग्रेज समुद्रमार्ग द्वारा कोई भी सहायता तुलाजी को न पहुँचने देंगे।

(५) जो कुछ भी धन, गोला-बारूद तोपें या सामग्री पकड़ ली जाये या मराठों के गढ़ों और स्थानों में मिल जाय, वह बराबर हिस्सों में बाँट ली जायेगी।

(६) यदि अंग्रेज तथा मराठे सम्मिलित रूप से मानाजी आंग्रे पर आक्रमण करें तो खण्डेरी का टापू अंग्रेजों को दे दिया जाय।

पेशवा ने इन शर्तों पर अपनी अनुमति दे दी तथा युद्ध आरम्भ हो गया।

३ विजयदुर्ग का पतन—चूँकि इस संधि के निश्चित होने के समय में ही १७५५ ई० की अनुकूल ऋतु समाप्त होने वाली थी अतः निर्णय किया गया कि विजयदुर्ग पर अधिकार प्राप्ति को आगामी अनुकूल ऋतु के लिए स्थगित कर दिया जाय तथा पहले हरनाई के गढ़ सुवर्णदुर्ग पर आक्रमण किया जाय। बम्बई की सभा ने कप्तान विलियम जेम्स को इस नाविक अभियान का नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया। रामजीपंत उसके साथ था। वे २२ मार्च को बम्बई के बन्दरगाह से चले, तथा चौल के गढ़ के बाहर मराठा नौसेना के जहाज उनके साथ मिल गये। २९ मार्च को सुवर्णदुर्ग के बन्दरगाह में सम्मिलित नौसेना ने आंग्रे के जहाजों पर गोलियाँ चलायीं। आंग्रे भागकर बच निकला। २ अप्रैल को गढ़ पर अग्निवर्षा आरम्भ की गयी। ३ अप्रैल को गढ़ में एक विस्फोट हुआ जिसमें आंग्रे का गोला बारूद स्वाहा हो गया। अगले दिन ४ अप्रैल को आंग्रे के कुछ व्यक्ति अपने हाथों में श्वेत ध्वज लिये हुए रामजीपंत के पास आये। अब आक्रान्ता गढ़ में उतर गये जिसने १२ अप्रैल को आत्मसमर्पण कर दिया। पेशवा के पक्ष से स्थल मार्ग द्वारा जावजी गौली तथा खण्डोजी माकड ने युद्ध में सहायता दी। शमशेर बहादुर तथा दिनकर महादेव दो अन्य सेनानायक थे जिनको तुलाजी के विरुद्ध स्थलमार्ग से युद्ध संचालन के निमित्त पेशवा ने नियुक्त किया था। मई के अन्त के समीप अम्बा घाटी के मार्ग से वे आंग्रे के रत्नागिरि नामक गढ़ पर टूट पड़े तथा स्थल की ओर से उस पर घेरा डाल दिया। परन्तु बिना नाविक सहयोग के वे गढ़ पर अधिकार न कर सके। वर्षा ऋतु के आगमन के कारण यह सहयोग सम्भव भी न था। आगामी वर्ष १८ फरवरी १७५६ ई० को उस स्थान पर अधिकार कर लिया गया। इसके कुछ समय पहले उसी

पेशवा की सेना ने १४ जनवरी को तुलाजी के अधिकार से अजनवेल तथा गोवलकोट को भी छीन लिया था।

परन्तु इस अभियान का मुख्य उद्देश्य तुलाजी के केन्द्र स्थान विजयदुर्ग पर अधिकार करना था। इस स्थान को घेरिया भी कहते थे क्योंकि गिर्ये नामक एक गाँव इसके समीप था। यह एक रहस्य है कि तुलाजी अन्त समय तक क्यों सर्वथा उदासीन या निश्चिन्त रहा। शायद उसको यह विश्वास था कि वह किसी भी आक्रान्ता के विरुद्ध गढ़ की रक्षा करने में समर्थ होगा और इसी कारण उसने कोई प्रगति नहीं की। दो वर्ष तक आक्रमण पर वार्तालाप होता रहा तथा १७५५ ई० में उसके बहिस्थ स्थानों पर एक दूसरे के बाद पेशवा का अधिकार होता गया और तब भी तुलाजी अपने आसन से न हिला। उसने गोआ से लगभग ५०० व्यक्तियों की अन्य पुर्तगाली सहायता भी प्राप्त कर ली थी। आंग्रे का एक सहायक रुद्रजी धुलाप युद्ध में परास्त हो गया। उसके अपने कुछ आदमी तथा कुछ पुर्तगाली मारे गये जो उसके साथ थे।

१७५५ ई० के अक्टूबर मास में कप्तान क्लाइव के अधीन कुछ सेना तथा ऐडमिरल वाटसन के अधीन एक नाविक दल इंगलण्ड से मद्रास आ गया। इसी समय बम्बई से मद्रास को तुलाजी आंग्रे के विरुद्ध कार्य करने के लिए कुछ सैनिक सहायता की माँग की गयी। मद्रास के अधिकारियों ने बम्बई की प्रार्थना को तुरन्त स्वीकार कर लिया, तथा क्लाइव और वाटसन की सेनाओं को बम्बई भेज दिया। गवर्नर बूरशियर ने इनको तुरन्त विजयदुर्ग के विरुद्ध प्रयाण करने की आज्ञा दी। इनको निम्नलिखित विशेष निर्देश भी दिये गये—(१) विजयदुर्ग के पतन के बाद तुलाजी बम्बई लाया जावे। (२) आंग्रे के अन्य गढ़ों तथा स्थानों को हस्तगत करने में बम्बई की सेना पेशवा की सेना से सहयोग करे। (३) जब तक कि बानकोट तथा उसका प्रदेश वास्तव में अंग्रेजों को प्राप्त न हो जावे विजयदुर्ग पेशवा के अधिकार में न दिया जाय। (४) इस प्रकार के अन्य स्थान तथा बन्दरगाह जो अंग्रेजों के प्रति लाभदायक समझे जाते हों, प्राप्त करने का प्रयास किया जाय। (५) तुलाजी दुष्ट है अतः उसके वचन का विश्वास न किया जाय। 'वह बहुत वर्षों से हमारे अनेक पोतों का नाश कर रहा है, तथा इस प्रकार तीन या चार लाख रुपये वार्षिक की हमारी हानि करता है। उसे किसी भी कारण पेशवा को न सौंपा जाय क्योंकि वह फिर स्वतन्त्र हो सकता है तथा हमको फिर पर्याप्त कष्ट दे सकता है।

७ फरवरी, १७५६ ई० को १४ ब्रिटिश युद्धपोत तथा ८०० ब्रिटिश सैनिक और एक हजार भारतीय सैनिक क्लाइव तथा वाटसन की अधीनता

म समुद्रमाग द्वारा बम्बई से चले। आशा थी कि युद्ध लम्बा तथा कठोर होगा, परन्तु बम्बई से चलने के साथ ही अग्रेजा न विजयदुग पर अधिकार कर लिया। १४ फरवरी को वाटसन न समाचार भेजा—"हम ११ फरवरी को विजयदुग के सम्मुख पहुँचे तथा हमको मालूम हुआ कि तुलाजी पेशवा से शर्तों पर बातचीत कर रहा है। इस विचार से कि उसको सधि प्रस्ताव के निमित्त समय न मिल सके, मैंने उसको तुरन्त कह भेजा कि गढ मेरे सुपुद कर दो। १२ फरवरी को हमने गढ पर अग्नि वर्षा आरम्भ कर दी। तासरे पहर चार बजे एक गोला आग्रे के एक पोत पर गिरा जिससे उसक छाटे-बडे सब पोता मे आग लग गयी। इनकी सख्या लगभग ७० के थी। शीघ्र ही वे भस्म होकर राख हो गये। १३ फरवरी को हमारे कुछ आदमी स्थल पर उतरे। पशवा के एक भी आदमी को हमन गढ के अन्दर नही जान दिया। तीसर पहर ६० लोगो को अपने साथ लेकर कप्तान फोर्ड न गढ मे प्रवेश किया तथा अग्रेजी झण्डे को सर्वोच्च स्थान पर लगा दिया। आज प्रात काल हमारे समस्त सनिको ने सुविधापूर्वक गढ मे प्रवेश किया। आज रामजीपन्त मुझसे मिलन आ रहा है। उससे मरी यह माँग होगी कि तुलाजी आग्रे को मेरे सुपुद कर दिया जाय। हमारी कोई वास्तविक हानि नही हुई है।

जबकि अग्रेजी पोत विजयदुग को जा रहे थ, पेशवा के लगभग ४० या ५० पोत भी मार्ग म उनक साथ हो गये। पूना सरकार की स्थल सनाएँ मुख्य गढ के पूरब मे अपन डेरो म छावनी डाले हुए थी। तुलाजी इस आकस्मिक मुठभेड के लिए तयार न था। नवम्बर से वह अग्रेजी सना के पोता के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था किन्तु जब वे तीन महीने से भी अधिक समय तक प्रकट न हुए तो वह असावधान हो गया। जसे ही उसने पोता को देखा वह मराठाशिविर मे रामजीपन्त से मिलने दौड गया। रामजीपन्त ने तुलाजी आग्रे की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। तुलाजी अपने प्रति अग्रेजा की घृणा से पूणतया परिचित था, अत उसने गढ से अग्रेजी पोतो पर अग्नि-वर्षा आरम्भ की, परन्तु आरम्भ मे ही करीब-करीब उसके समस्त पोतो मे सहसा आग लग गयी और वे तुरन्त जल गये। क्लाइव ने सवप्रथम दुग म घुसकर समस्त मूल्यवान वस्तुओ पर अधिकार कर लिया। पेशवा के सनिक भी गढ की ओर झपटे, परन्तु द्वार पर कप्तान फोड हाथ मे नगी तलवार लिये दरवाजा रोके खडा था तथा आग बढने वाल को काट गिराने की धमकी दे रहा था। इस प्रकार दुखी मन मराठे अपने शिविर को वापस आ गये। अग्रेजा को गढ मे २५० तोपें १० लाख रुपये नकद, पीतल की ६ बन्दूकें तथा लगभग ४ लाख पौण्ड का सामान तथा वस्तुएँ मिली।

बन्दरगाह में अंग्रेजी पोतों के आगमन के कुछ बाद रामजीपन्त ने दिसम्बर वाटसन से उसके [illegible] पोत पर मिलने आया और सूचित किया कि तुलाजी शान्ति की शर्तें पूछ रहा है। वाटसन ने उत्तर दिया— शान्ति स्थापित करने के लिए मेरे पास कोई आज्ञा नहीं है। परन्तु यदि आपकी यही इच्छा है तो तुलाजी को मेरे पोत पर आने दीजिए। यदि वह कुछ नहीं आता है तो मैं गढ़ पर गोले चलाऊँगा। परन्तु तुलाजी शीघ्र ही कुछ निश्चय न कर सका। तब अंग्रेजों ने गोले चलाये और उसके पोतों को जला दिया तथा गढ़ पर अधिकार कर लिया। तुलाजी ने मराठों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया तथा पेशवा के सैनिकों ने सभी प्रकार उसकी रक्षा की। अगले दिन रामजीपन्त पुनः वाटसन से उसके पोत पर मिला। तब वाटसन ने कहा— तुलाजी को मेरे सुपुर्द कर दो। रामजी ने प्रत्युत्तर में अपने स्वामी (पेशवा) से लिखित आज्ञा न मिलने तक ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। रामजीपन्त ने गढ़ पर अधिकार की माँग प्रस्तुत की। वाटसन ने उत्तर दिया कि उसके पास ऐसी कोई आज्ञा नहीं है परन्तु वह अपने झण्डे के साथ पेशवा का झण्डा भी लगाने पर सहमत हो गया। उसने धमकी दी कि यदि तुलाजी को उसके सुपुर्द नहीं किया जाता तो वह मराठा सैनिकों को गढ़ में प्रवेश नहीं करने देगा। अंग्रेजों ने गढ़ का संचित धन प्राप्त करने के लिए उसे समूल खोद डाला। उनको पर्याप्त धन मिला भी जिसे उन्होंने अपने सैनिकों में बाँट लिया। चूँकि पेशवा उस समय सावनूर में था अतः कोई अन्तिम हल प्राप्त न हो सका जिसके द्वारा गढ़ पर अधिकार हो सके तथा तुलाजी की व्यवस्था के विषय में मतभेद दूर किये जा सकें।

वाटसन के पास एक एडवर्ड आइव्ज नामक एक शल्य चिकित्सक था। उसने अपनी यात्राओं की एक पंजिका लिखी है तथा विजयदुर्ग प्रकरण के विषय में कुछ उपयोगी विवरण दिये हैं। वह लिखता है कि जब अंग्रेजों ने गढ़ में प्रवेश किया उनके अपने २० से अधिक व्यक्ति न तो मरे और न घायल हुए। तुलाजी ने तीन दिन पहले ही गढ़ को छोड़ दिया था तथा अपने साले को गढ़ का अधिकारी नियुक्त कर दिया था। अंग्रेजों को गढ़ में तुलाजी की दो पत्नियाँ तथा उसके दो पुत्र मिले। जब वाटसन ने गढ़ में प्रवेश किया तो वे अपनी आँखों में आँसू भरकर पृथ्वी तक उसके सामने झुक गयीं। इस पर वाटसन को उन पर दया आ गयी और उसने अपनी ओर से उनको सुरक्षा तथा सम्मान का आश्वासन दिया। तुलाजी की वृद्धा माता पर इस आश्वासन का बहुत प्रभाव पड़ा और उसने उत्तर दिया— अब हमारा कोई रक्षक नहीं है न हमारे पिता हैं न बच्चे हैं। तुलाजी के एक ६ वर्ष के बच्चे

न वाटसन का हाथ पकड लिया और कहा—'अब आप हमारे पिता है। इन शब्दा का वाटमन के हृदय पर भी प्रभाव पडा। तुलाजी के उपरलिखित परिवार के अतिरिक्त अग्रेजा को गढ मे दस अग्रज तथा तीन डच भी मिले। इनको तुलाजी न बन्दी बना रखा था। वाटसन न उन सबको मुक्त कर दिया।

यह स्पष्ट है कि गढ पर अपना अधिकार करके समस्त मूल्यवान वस्तुआ के अपहरण क साथ साथ तुलाजी को अपने निरोध म माँगकर अग्रेजा ने समझौत के विरुद्ध आचरण किया। जस ही अग्रेजी नौ सेना विजयदुग पहुची, तुलाजी ने भयभीत हाकर रामजीपन्त के साथ सन्धि वार्तालाप आरम्भ कर दिया जिमका अग्रेजा न यह अथ लगाया कि मराठो न उनका सहमति के बिना समझौत को भग कर दिया है और सन्धि क निमित्त वे वार्तालाप कर रहे हैं। अत उन्होन अकेले ही गढ पर आक्रमण किया तथा मराठा को उसम प्रवश न करन दिया। परन्तु वास्तविकता यह थी कि पेशवा ने तुलाजी के दमनाथ अग्रेजा की नौ सेना का सहयोग प्राप्त किया था स्वय अग्रेजा न अपनी आर स तुलाजी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ नही किया था। यदि दा सौ मील स भी अधिक लम्बे क्षेत्र म मराठे तुलाजी को पहले स न घेरे होत तो तुलाजी इस सुविधा से परास्त नही किया जा सकता था। अग्रेजा के लिए विजयदुग का बन्दरगाह उनकी नौ सना क लिए महत्त्वपूण स्थान था अत वे स्वय उस पर अधिकार चाहते थ और उसके एवज म बानकोट तथा उसके दुग हिम्मतगढ क समपण पर राजी थे। रामजीपन्त न इसका काफी विराध किया जो कि खुली लडाई स कुछ ही कम था। वह पशवा क सावनूर से पूना वापस आन की प्रतीक्षा कर रहा था। वास्तव मे अग्रेजा न बलपूवक विजयदुग पर अधिकार करके अपनी सत्ता का पश्चिमी समुद्र तट पर स्थापित करन का वसा ही प्रयास किया जसा कि उन्हाने पूरबी समुद्र तट पर बगाल तथा मद्रास म किया था। चूकि बम्बई उस समय अच्छी तरह उन्नत न हुआ था अत अग्रज विजयदुग को अपनी सत्ता क प्रसार के लिए अत्यन्त उपयुक्त बन्दरगाह समझत थ।

४ **पेशवा का विरोध**—पशवा २० जुलाइ, १७५६ ई० को पूना पहुँचा तथा अगल ही दिन उसन गवनर का एक पत्र लिखा जिसम उसन विजयदुग पर अपना अधिकार रखन के लिए अग्रजा के काय की घोर निन्दा की। उसके अनुसार उसने अग्रेजी सहायता केवल विजयदुग के लिए ही माँगी थी। उसन माँग की कि परस्पर मैत्री-सम्बन्ध रखन क लिए विजयदुग तुरन्त उसको समर्पित कर दिया जाय। पशवा न यह भी लिखा—'यदि आप इसके अनुसार

काय नही करते है, तो भविष्य ईश्वर के हाथो म है।" यह स्पष्ट धमकी थी जिसकी उपेक्षा आसानी से नही की जा सकती थी।

इसके प्रति गवनर ने १ अगस्त को नम्र उत्तर दिया तथा वचन दिया कि वर्षाऋतु समाप्त होते ही वह स्थान वापस कर दिया जायेगा, क्योंकि वर्षा ऋतु मे पोत दुगस्थ सेना को वापस नही ला सकते थे। उसने इसके साथ ही अपने दो प्रतिनिधि टामस चाइफील्ड तथा जॉन स्पेन्सर को पूना भेजने का प्रस्ताव किया ताकि व व्यक्तिगत रूप से शेष प्रश्नो का समाधान कर दें जो इस प्रसग के कारण उत्पन्न हो गये थे। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी बगाल तथा मद्रास म एक युद्ध म व्यस्त थी इस कारण पश्चिमी तट पर अधिक कष्ट उठाने के लिए अग्रेज तयार न थे। अत उन्होने तुरन्त पेशवा की माँग को स्वीकार कर लिया तथा अपनी हठ को छोड दिया।

पुर्तगालियो ने इस बीच पेशवा के सकटो से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उन्होने २८ जून, १७५६ ई० को गोआ से १० मील दक्षिण की ओर फोडा की मराठा चौकी पर आक्रमण कर दिया। मराठा दुर्गस्थ सेना ने वीरता पूर्वक इसकी रक्षा की तथा पुर्तगाली राज्यपाल काउण्ट द अल्वा मारा गया तथा उसकी १० तोपें और अस्त्र मराठा के हाथ लगे।

अंग्रेजी राजदूत पूना आया तथा १२ अक्टूबर को एक नवीन सन्धि की रचना की गयी। इसमे मुख्यतया यह निश्चित किया गया कि विजयदुर्ग के स्थान पर बानकोट तथा १० गाँव अंग्रेजो को दे दिये जाये। गोविन्द शिवराम खासगीवाले तुरन्त विजयदुर्ग का गया तथा पेशवा की ओर से इस पर अधिकार कर लिया। तुलाजी पेशवा के पास कठोर पहरे म रखा गया। उसकी माता पत्नियाँ तथा दो पुत्र रघुजी और सम्भाजी समय-समय पर विभिन्न गढो म निरोध म रहे। १७६६ ई० म य दोनो भाई अपने निरोध से बम्बई को भाग गये, परन्तु अग्रेजो ने अपने उपनिवेश मे कही भी इसको शरण न दी। रघुजी तब हैदरअली के पास गया और वहाँ बहुत दिनो तक रहा। तुलाजी का देहान्त बन्दी के रूप म वन्दनगढ़ म १७८६ ई० म हो गया।[१]

५ क्या पेशवा ने मराठा नौसेना का नाश किया?—राजवाडे तथा अन्य समकालीन इतिहासकारो ने पेशवा की कटु आलोचना की है कि तुलाजी के दमनार्थ ब्रिटिश सहायता स्वीकार कर पेशवा ने मराठा नौसेना का नाश

---

[१] यह आंग्र आख्यान उस समय घटित हुआ जब पूरबी तट पर महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो रही थी—यथा अग्रेज फ्रांसीसी युद्ध सिराजुद्दौला प्रकरण तथा चारमीनार पर निजाम के विरुद्ध बुसी को वार प्रतिरोध।

कर दिया। यहा पर यह अवश्य कहना होगा कि कुछ महत्त्वपूण विपयो पर समालोचको ने असत्य धारणाओ का आश्रय लिया है। पशवा इस पर तुला हुआ था कि वह अविनीत तथा दपशील तुलाजी का दमन कर दे, जो न तो किसी नियम का पालन करता था और न किसी सत्ता को ही मानता था। पेशवा को आग्रे नौ सेना से कोई ईर्ष्या न थी। नौ सेना को पशवा के मित्र अग्रेजो ने जला दिया था। युद्ध के समय मे विनाश को नियमित रखना कठिन है। तुलाजी के हटा दिये जाने के बाद पेशवा ने एक नौ सेना अधिकारी धुलाप को उसके स्थान पर नियुक्त किया था। पेशवा यह कल्पना भी नही करता था कि आग्रे को हटाकर वह मराठा राज्य की कोई हानि कर रहा है। इसके पूर्व ही उसने दमाजी गायकवाड को विनीत कर दिया था तथा दाभाडे और ताराबाई को चुप कर दिया था। पेशवा ने तुलाजी के भाई मानाजी को अलग नही किया था, जिसने कोलाबा के स्थान की रक्षा की। सुवणदुग, अजनवल, रत्नागिरि तथा विजयदुग के महत्त्वपूण स्थानो तथा बन्दरगाहो पर अधिकार प्राप्त करके पश्चिमी तट की समुचित रक्षा करना पशवा का मुख्य ध्येय था जिसके कारण ही उसने अग्रेजी सहायता ली थी, परन्तु इस विषय मे भी यह पूछा जा सकता है कि उसने इस स्पष्ट राजनीतिक नियम की क्या उपेक्षा की कि अपने हितसाधन के निमित्त किसी भी कारण से शत्रु को निमन्त्रण न दिया जाये। समस्या का सार यही है। अग्रेजी सहायता की सहमति १७५५ ई० के आरम्भ मे निश्चित की गयी थी जबकि अग्रेज मराठो के शत्रु नही माने जाते थे। सप्तवर्षीय युद्ध अभी आरम्भ न हुआ था। बुसी जो एक फ्रासीसी अधिकारी था, पहले से ही पशवा का मित्र था। ये पश्चिमी अधिवासी—फ्रासीसी डच तथा अग्रेज—एक शताब्दी से भी अधिक समय से शान्तिमय व्यापारियो के रूप मे अपना काय कर रहे थे तथा उनकी प्रादेशिक महत्त्वाकाक्षाएँ उस समय तक प्रकट न हुई थी जब तक कि सम्राट ने १७६५ ई० मे क्लाइव को दीवानी का पट्टा न दिया था।[४] पशवा पर असभ्य, विनाशक एव अविवेकी का दोष लगाना इतिहास की पूवकल्पना करना है।

---

[४] हम अच्छी तरह जानते हैं कि पलासी के काण्ड के बाद ही क्लाइव भारत विजय की रूपरेखा तयार करने लगा और फरवरी १७६० ई० मे इगलैण्ड को गया ताकि वह स्वय उस विपय पर इगलण्ड के प्रधान मन्त्री अर्ल चथम मे वार्तालाप करे। परतु चथम ने उसका समथन नहीं किया। वह उससे मिला तक भी नहीं। डूप्ले ने निस्सन्देह उस दिशा मे कुछ कार्य किया था परन्तु वह पूण असफल रहा तथा अपमान की अवस्था मे वापस बुला लिया गया।

अठारहवीं शताब्दी के ठीक मध्य में पेशवा बहुत शक्तिशाली था। उसके पास यह सन्देह करने का कोई कारण न था कि वह बम्बई की अंग्रेज सत्ता के कार्य का नियन्त्रण नहीं कर सकता है।

अंग्रेजों के साथ पेशवा का भावी व्यवहार किस प्रकार का रहा—इसका भी ध्यान रखना चाहिए। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि जंजीरा के सिद्दी तथा सूरत के नवाब को अधीन कर ले। जिनको अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था तथा जिससे मराठा राज्य की हानि होती थी। अतः तुलाजी के निराकरण के बाद पेशवा का ध्यान जंजीरा तथा सूरत की ओर गया तथा उसने उस कार्य के लिए १७५८ ई० में अंग्रेजी सहायता की प्रार्थना की। दोनों राष्ट्रों के बीच में अन्य विवादास्पद विषय भी थे जिनके निपटारे के लिए अगस्त १७५६ ई० में प्राइस की अध्यक्षता में एक अंग्रेजी दूतमण्डल पूना भेजा गया।[५] प्राइस स्वयं ७ सितम्बर को पूना आया तथा २३ अक्टूबर १७५६ ई० को वहाँ से उसने बम्बई को प्रस्थान किया। गोविन्द शिवराम की मध्यस्थता के द्वारा अनेक अभ्यागमन तथा वार्तालाप हुए परन्तु उनका कोई निर्णायक परिणाम न हुआ क्योंकि सूरत या जंजीरा की विजय के सम्बन्ध में अंग्रेज पेशवा को कोई सहायता नहीं देना चाहते थे। वास्तव में लगभग इसी समय उन्होंने सूरत पर अधिकार कर लिया था। प्राइस का जनरल अध्ययन के लिए रोचक है।

६. मानाजी तथा रघुजी आंग्रे—२३ सितम्बर, १७५८ ई० को मानाजी आंग्रे के देहान्त पर आंग्रे परिवार में फूट का अन्त हो गया। जंजीरा के सिद्दी को अधीन करने की पेशवा की चिरपोषित महत्वाकांक्षा मानाजी की मृत्यु से मानो नष्ट हो गयी क्योंकि कुछ ही मास पूर्व उसने पेशवा के साथ इस कार्य में उत्साहपूर्वक सहयोग किया था। मानाजी के १४ पुत्र थे—१० वैध तथा ४ अवैध। इनमें से ज्येष्ठ तथा योग्यतम रघुजी था। उसको सरखेल तथा वजारत-माब की नाना प्रकार की उपाधियाँ दी गयीं। रघुजी ने पेशवा के वंश के प्रति निरन्तर मित्रता स्थिर रखी। मानाजी के देहान्त के बाद पेशवा ने नवम्बर १७५८ से फरवरी १७५६ ई० तक के लम्बे चार मास पश्चिमी तट का दौरा करने में तथा वहाँ की स्थिति का निरीक्षण करने में व्यतीत किये। उसका विचार सिद्दी के विरुद्ध एक अभियान का संगठन करने का था। अपनी योजना द्वारा रघुजी ने २८ जनवरी १७५६ ई० को सिद्दी के सुन्दर उन्देरी के थाने का हस्तगत कर लिया तथा आगामी २१ फरवरी को स्वयं जंजीरा से लगभग ५ मील दूर मुरुड के समीप कसा या पद्मदुर्ग पर भी अधिकार कर लिया।

---

५ पारसनीस कृत मराठा सीरीज में पूर्ण वृत्तान्त।

उन्देरी का नाम जयदुग रखा गया। स्वय जजीरा पर भी कुछ ही दिना म मराठा का अधिकार हो गया होता यदि सदाशिवराव भाऊ को अकस्मात उत्तर जाने का आह्वान न प्राप्त होता इसके शीघ्र बाद ही १३ अक्टूबर १७६० ई० को पशवा ने चौल के गढ राजकोट को तथा उसकी बडी मस्जिद को गिरा दिया। चौल पर इस समय पुतगालिया का अधिकार था, यद्यपि यह बहुत दिना मराठा क पास रह चुका था। इसके दढ प्राचीर तथा इसकी मस्जिद वहा के हिन्दू निवासिया के लिए सदव कटकस्वरूप थे। अब य पूण तया भूमिसात कर दिये गय।[१]

---

१ पत्र यादी १८७ पशवा दफ्तर सग्रह जिल्द २४ पृ० २६१ २६२, २६५।

तिथिक्रम

अध्याय १७

दिल्ली के वजीर

मई, १७४९—१३ मई, १७५३ ई० सफदरजग।

१३ मई, १७५३—३१ मई, १७५४ ई० इतिजामुद्दौला।

३ जून, १७५४—२९ नवम्बर, १७५९ ई० गाजीउद्दीन इमादुलमुल्क।

१७२४	अहमदशाह अब्दाली का जन्म।
१७३७	अब्दाली का नादिरशाह की सेवा में आगमन।
१७३९	दिल्ली पर नादिरशाह के आक्रमण मे अहमदशाह अब्दाली उसके साथ।
१ जुलाई, १७४५	पजाब के सूबेदार जकरियाखाँ की मृत्यु।
१९ जून, १७४७	नादिरशाह का वध, अब्दाली काबुल का शाह।
२० जनवरी, १७४८	अब्दाली का लाहौर पर अधिकार तथा दिल्ली की ओर उसका प्रयाण।
२१ मार्च, १७४८	शाहजादा अहमद द्वारा मनुपुर मे अब्दाली परास्त, वजीर कमरुद्दीनखाँ का वध।
१७४८	मीर मन्नू पजाब का सूबेदार नियुक्त।
२५ अप्रल, १७४८	सम्राट मुहम्मदशाह की दिल्ली मे मृत्यु।
२८ अप्रल, १७४८	अहमदशाह सम्राट तथा सफदरजग वजीर नियुक्त।
आरम्भिक मास, १७४९	सफदरजग के विरुद्ध दोआब के पठानों का विद्रोह।
" "	अब्दाली का पजाब पर आक्रमण तथा मीर मन्नू के वार्षिक कर देने पर सहमत हो जाने पर वापसी।
३ अगस्त, १७५०	दोआब के पठानों का वजीर से युद्ध, अहमदखा बगश द्वारा फर्रुखाबाद में वजीर के शिविर पर आक्रमण, वजीर के सेनानायक नवलराय का वध।
१२ सितम्बर, १७५०	कासगज का युद्ध, स्वय सफदरजग घायल, पठानों द्वारा इलाहाबाद पर घेरा, वजीर द्वारा पूना से मराठा सहायता की प्रार्थना।
जनवरी, १७५१	सिंधिया तथा होल्कर से कोटा मे वजीर के प्रतिनिधियों की भेंट, सहायता की शर्तों पर सहमति।
२१ फरवरी, १७५१	इलाहाबाद की रक्षा के निमित्त सफदरजग का दिल्ली से प्रस्थान।

२ मार्च, १७५१	सफदरजंग की जयप्पा तथा मल्हारराव से भेंट, उनकी सेवा प्राप्त।
२० मार्च, १७५१	कादिरजंग का युद्ध, मराठों द्वारा बंगश परास्त, पीछे घोर संघर्ष।
२८ अप्रैल, १७५१	फर्रुखाबाद के समीप युद्ध, १० हजार पठानों का वध, अहमदखां बंगश की शक्ति का अन्त, नजीबखां के नेतृत्व में पठानों द्वारा अपनी सहायता के लिए अब्दाली को काबुल से बुलाना।
दिसम्बर, १७५१	अब्दाली का काबुल से भारत के लिए प्रस्थान।
फरवरी, १७५२	मराठा मध्यस्थता द्वारा लखनऊ में संधि निश्चित, इसके द्वारा पठान वजीर युद्ध समाप्त।
१५ मार्च १७५२	अब्दाली का लाहौर पर अधिकार।
२३ मार्च, १७५२	मीर मन्नू शरण में, अब्दाली की शर्तों पर सहमत।
१२ अप्रैल १७५२	सम्राट की रक्षा के लिए मराठा सरदारों के साथ सफदरजंग की गम्भीर सहमति।
२३ अप्रैल, १७५२	अब्दाली के साथ मीर मन्नू के प्रबन्ध का सम्राट द्वारा पुष्टीकरण तथा अब्दाली अपने देश को वापस।
२३ अप्रैल १७५२	सिंधिया तथा होल्कर का दिल्ली पहुंचना तथा अपने साथ सहमति की पूर्ति की मांग पेश करना।
१४ मई, १७५२	पेशवा की इच्छानुसार गाजीउद्दीन के साथ सिंधिया तथा होल्कर का दक्षिण के लिए प्रस्थान।
२७ अगस्त, १७५२	वजीर द्वारा ख्वाजा जाविदखां की हत्या।
१३ फरवरी १७५३	अब्दाली के दूतों का कर के लिए दिल्ली आगमन।
२६ मार्च— ७ नवम्बर, १७५३	दिल्ली में गृह युद्ध सूरजमल द्वारा वजीर का समर्थन, सफदरजंग के विरुद्ध सम्राट की रक्षार्थ नजीबखां घटनास्थल पर प्रकट।
१३ मई, १७५३	सम्राट द्वारा सफदरजंग वजीर पद से निष्कासित।
१४ जून १७५३	तालकटोरा का युद्ध गोसाईं राजेन्द्रगिरि का वध।
१६ अगस्त, १७५३	दूसरा युद्ध—सफदरजंग परास्त, अपनी सहायतार्थ सम्राट का मराठों को बुलावा पेशवा का रघुनाथराव का उत्तर की ओर भेजना।
सितम्बर, १७५३	इस युद्ध के कारण सफदरजंग की महान क्षति।
७ नवम्बर १७५३	विधिवत संधि द्वारा सम्राट तथा सफदरजंग का युद्ध समाप्त सफदरजंग लखनऊ के सूबे को वापस।
१७ अक्टूबर १७५४	सफदरजंग की मृत्यु।

अध्याय १७

दिल्ली मे मराठो की जटिल परिस्थिति

[१७५०–१७५३]

१ अब्दाली तथा पजाब। २ पठान युद्ध, सफदरजग द्वारा मराठा सहायता की याचना। ३ मराठो का उद्देश्य। ४ अब्दाली के प्रति पजाब का समथन। ५ दिल्ली मे गृह युद्ध।

१ **अब्दाली तथा पजाब**—राजा शाहू का मृत्यु क पश्चात उत्तर भारत म मराठा के कार्यों की हम पुन व्याख्या करनी है तथा बताना है कि अफगानिस्तान क पठान बादशाह अहमदशाह अब्दाली तथा दक्षिण के मराठा क बीच म घार सघष किस प्रकार उत्पन्न हा गया। मराठे दिल्ली क दरबार म प्रभुता प्राप्त करन का प्रयत्न कर रहे थ। यह एक लम्बा प्रकरण है जिसका दुख दायी अन्त पानीपत म हुआ (जनवरी १७६१ ई०)।

१७४१ तथा १७४८ ई० क बीच म स्वय बालाजी बाजाराव न उत्तर भारत म चार महत्त्वपूण अभियाना का नतृत्व किया था, तथा उस सुदूर क्षेत्र म अपन प्रतिनिधिया क कृत्या पर, जो उसके नाम स काय कर रह थे उसन सतक दृष्टि रखी थी। परतु दुर्भाग्यवश शाहू की मृत्यु क पश्चात ११ वष तक वह दक्षिण के कार्यों म इतना व्यस्त रहा कि उस एक बार भी उत्तर की आर जान का अवकाश न मिल सका। उत्तर के समस्त काय मल्हारराव होल्कर तथा सिधिया-ब धुओ पर छाड दिये गय थे। हिंगने परिवार दिल्ली म मराठा कूटनीति का भार सँभाले हुए था, गोवि दपन्त बुन्देले बुन्देलखण्ड तथा दाआब म नागरिक अधिकारी था तथा अन्ताजी मानकेश्वर दिल्ली म छाटा-सा मराठा सना का नायक था। पशवा का छाटा भाई रघुनाथराव अवश्य दा बार उत्तर को भजा गया था परतु वह इस गुरुतर काय क लिए अति निबल तथा अयाग्य सिद्ध हुआ।

१६ जून १७४७ ई० को नादिरशाह का वध कर दिया गया तथा उसके योग्य मुख्य सहायक अहमदशाह अब्दाली न उसकी सत्ता और राज्य का अपहरण कर लिया। अहमद का जन्म १७२४ इ० म हुआ था। १३ वष की आयु म वह नादिरशाह की सना म भरती हा गया था, तथा उसक साथ १७३९ ई० के उसक प्रसिद्ध आक्रमण म वह भारत आया था। नादिरशाह की सेना म

सुदूर देशों में सुसज्जित सेनाओं का नेतृत्व करने का बहुमूल्य अनुभव उसने प्राप्त कर लिया था। उसमें विजय के प्रति लालसा उत्पन्न हो गयी थी तथा अनेक अवसरों पर उसने वीरता साहसिकता तथा राजनीतिज्ञता के लिए विशेष गौरव प्राप्त किया था। नादिरशाह की मृत्यु के कुछ ही महीनों के भीतर उसने काबुल में अपना शासन संगठित कर लिया। इस कार्य में उसका सहायक शाहवलीखाँ था जो स्वयं योग्य सैनिक तथा कूटनीतिज्ञ था। अहमदशाह अब्दाली ने उसको अपना मंत्री नियुक्त किया। शाहपसन्दखाँ एक अन्य योग्य सरदार था जिसकी सेवा भी प्राप्त कर ली गयी। अन्त ये तीन नाम भावी भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हो गये। नादिरशाह की विशाल सम्पत्ति अहमदशाह के अधिकार में आ गयी और इससे उसकी शक्ति और भी अधिक बढ़ गयी। इन भाग्यवान पठान सैनिकों का अपने भारतीय भाइयों रुहेलों तथा बंगशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनके द्वारा भारत की दशा का विशेषकर मुगल दरबार की स्थिति का समाचार नित्यप्रति उनको प्राप्त होता रहता था। इस प्रकार अहमदशाह ने अपने जीवन के आरम्भ में ही अपने अल्प साधनों को समृद्ध बनाने की योजना की कल्पना कर ली। उसकी योजना थी कि भारत से अधिक से अधिक धन एकत्र किया जाय। पंजाब का लाभ उसका विशेष था क्योंकि दिल्ली की राजनीति पर प्रभावक दबाव डालने के लिए यह उपयुक्त बाह्य स्थान बन सकता था। उसका विचार यह कभी न था कि भारतीय साम्राज्य के मुकुट को वह स्वयं धारण करे। क्योंकि पंजाब उसके घर अफगानिस्तान के सन्निकट था अतः अपने पश्चिमी राज्य के लाभदायक अनुबन्ध के रूप में पंजाब उसके लिए बहुमूल्य था।

इस देश में आने वाले प्रत्येक साहसी वीर का राजमार्ग प्राचीन समय से पंजाब रहा है तथा भारत के सम्राटों के लिए इसकी रक्षा अत्यन्त कष्टप्रद रही है। जब भी पंजाब पर भारतीय नियन्त्रण शिथिल हुआ, बाबर तथा नादिरशाह सदृश विदेशी आक्रान्ताओं को भारत पर आक्रमण करने तथा यहाँ पर अपनी सत्ता स्थापित करने का सुयोग प्राप्त हो गया।

मुहम्मदशाह के शासनकाल में जकरियाखाँ ने अपनी विशेष योग्यता से दीर्घ समय तक पंजाब पर शासन किया। १ जुलाई १७४५ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी। उसके दो पुत्र थे—यहियाखाँ तथा शाहनवाजखाँ। उनके बीच में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष शुरू हो गया। सम्राट के वजीर कमरुद्दीनखाँ तथा उसके योग्य पुत्र मीर मन्नू ने यहियाखाँ के स्वत्व का समर्थन किया। यहियाखाँ वजीर का दामाद था। अपने पिता के देहान्त के बाद रक्षा के लिए वह तुरन्त दिल्ली को दौड़ आया। छोटे भाई शाहनवाज के पास अदीनाबेग

नामक एक योग्य सहायक था, जिसने अब्दाली की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, तथा उसको पजाब पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। अब्दाली ने तुरन्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, तथा जनवरी १७४८ ई० मे उसने इस देश पर अभियान किया। २० जनवरी को उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया, तथा आगामी मास मे अपनी सैनिक तैयारियों को सम्पूर्ण करने के बाद उसने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। सम्राट मुहम्मदशाह इस समय रुग्ण था अत उसने अपने पुत्र शाहजादा अहमद को उसके विरुद्ध भेजा। उसके साथ वजीर तथा अन्य सामन्त जैसे सफदरजग, मीरबख्शी तथा जयपुर के ईश्वरीसिंह थे। इनके पास विशाल सेनाएँ तथा धन था। शाही फौजो तथा अब्दाली की फौजो के बीच मे २१ मार्च को सरहिन्द के १० मील उत्तर मे मनुपुर के स्थान पर घोर युद्ध हुआ। अब्दाली पूर्णत पराजित हो गया। परन्तु युद्ध के आरम्भ ही मे एक आकस्मिक गोली से वजीर कमरुद्दीनखा की मृत्यु हो गयी।[1]

पजाब के सूबेदार मीर मन्नू से मेल करने के बाद शाह तुरन्त अपने देश को वापस चला गया। मनुपुर का युद्ध साम्राज्यवादियो की अन्तिम विजय सिद्ध हुआ। सम्राट मुहम्मदशाह का देहान्त दिल्ली मे २५ अप्रैल को हो गया। यह समाचार शाहजादा अहमद को पानीपत मे २८ अप्रैल को प्राप्त हुआ। सफदरजग के परामर्शानुसार उसने अपने को तुरन्त सम्राट घोषित कर दिया। सफदरजग वजीर नियुक्त हुआ। इसके अतिरिक्त अवध तथा इलाहाबाद के सूबो का शासन भी उसके हाथो मे रहा। इस समय तक सारा दक्षिणी प्रदेश दिल्ली के हाथो से निकल चुका था। कुछ प्रान्तो पर मराठो का तथा कुछ पर आसफजाह के वश का अधिकार था। बगाल, बिहार तथा उडीसा पर पहले से ही मराठो की चौथ लग गयी थी। सूरजमल के नेतृत्व मे जाटो ने आगरा के सूबे का अपहरण कर लिया था। राजपूत राजा पहले से ही स्वतन्त्र हो बैठे थे। जो प्रदेश सीधे सम्राट के अधिकार मे रह गया था, वह था दिल्ली तथा अटक के बीच मे उत्तर पश्चिमी प्रदेश तथा दोआब के कुछ भाग।

आगामी वर्ष (१७४९ ई०) मे जबकि भारतीय पठानो ने वजीर से विद्रोह किया शाह अब्दाली ने जाडे की ऋतु मे पजाब मे प्रवेश किया। मीर मन्नू ने वजीराबाद के समीप उसका प्रतिरोध किया परन्तु यह मालूम होने पर कि दिल्ली से उसको कोई सहायता प्राप्त नही हो सकती वह इस बात पर सहमत हो गया कि वह उसको पजाब के चार उत्तरी जिलो की वार्षिक आय दिया करेगा और इस प्रकार उसने अपनी प्राणरक्षा कर ली। इसके साथ उसने

[1] पेशवा दफ्तर सग्रह जिल्द २, पृ० ९ पत्रे यादी ६५।

१० हजार रुपये नकद नजर में भी लिया। चूँकि अब ग्रीष्म ऋतु आरम्भ हो गयी थी अतः नये प्राप्त सम्पत्ति को साथ लेकर पेशवा पूना वापस हो गया।

२ पठान युद्ध—सफदरजंग द्वारा मराठा सहायता की याचना—मुहम्मदशाह के पश्चात सम्राट अहमदशाह के राज्यकाल में मतभेद उत्पन्न हो गया। उसकी माता उधमबाई तथा ख्वाजा जावेद खाँ ने वजीर के विरुद्ध षड्यन्त्र करके समस्त सत्ता को स्वयं हथिया लिया। उन्होंने सम्राट पर भी नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। सम्राट के विलास भाग में लीन रहने के कारण राज्य को अत्यधिक क्षति हुई और वजीर सफदरजंग को भी पता चल गया कि उसका नाम मात्र में कोई अधिकार नहीं है। वह सम्राट को इस बात पर राजी न कर सका कि वह स्वयं सेना लेकर पंजाब की ओर प्रयाण करे तथा अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण रोकने में सहायता करे। नवम्बर १७४८ ई० के अन्त में सफदरजंग को एक षड्यन्त्र का पता चला जिसके द्वारा राजभवन में प्रवेश करते ही बाहर के एक ढेर में आग लगाकर उसका प्राणहरण करने की योजना बनायी गयी थी। सम्राट ने इस इच्छा से कि वह सफदरजंग के वजीर पद का अपहरण कर ले, दक्षिण से नासिरजंग को इस काम के लिए बुलाया। नासिरजंग ने मार्च १७४९ ई० में दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। इस विपत्ति में सफदरजंग ने हिंगने परिवार के द्वारा जो दिल्ली में मराठा प्रतिनिधि थे अपनी स्थिति को स्थिर रखने में पेशवा की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस पर पेशवा ने तुरन्त सिंधिया तथा होल्कर को आज्ञा दी कि वे दक्षिण की ओर प्रयाण कर नासिरजंग को दिल्ली जाने के लिए नर्मदा पार करने से रोक दें। सफदरजंग ने दिल्ली से सेनाएँ एकत्र की तथा सम्राट के विरुद्ध बलपूर्वक भी अपनी स्थिति की रक्षा करने का प्रयत्न किया। वजीर की इस प्रगति पर सम्राट इतना भयभीत हो गया कि उसने स्वयं अपने हाथ से नासिरजंग को एक पत्र लिखकर उसे दिल्ली की ओर न बढ़कर दक्षिण वापस लौट जाने का परामर्श दिया। फलस्वरूप मई में नासिरजंग नर्मदा से वापस होने पर विवश हो गया। परन्तु सफदरजंग की स्थिति में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। इसके विपरीत जाटों, रुहेलों तथा दोआब के पठानों ने एक संयुक्त मोर्चा स्थापित कर लिया तथा उसके प्रदेश पर खुला आक्रमण आरम्भ कर दिया।

ये भारतीय पठान मुगलों के वंश परम्परागत शत्रु थे तथा भारत में मुगलों के शासन का अन्त कर देने का स्वप्न देखा करते थे। सीमा पार पठानों के साथ सम्पर्क स्थापित कर उन्होंने अपनी सत्ता का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया। वे सुन्नी सम्प्रदाय के मतावलम्बी भक्त थे तथा शिया वजीर से घोर घृणा करते थे जिसने मुहम्मदशाह के समय में उनके विरुद्ध सतत युद्ध किया था। रुहेलों की

राजधानी बनी थी, तथा बगशा की फर्रुखाबाद । जब सफदरजंग १७५० ई० में दिल्ली में व्यस्त था, फर्रुखाबाद के समीप उसके शिविर पर ३ अगस्त की रात्रि में अहमदखाँ बंगश ने सहसा आक्रमण कर दिया। वह इतिहास में लँगडा पठान के नाम से प्रसिद्ध है। वजीर का सेनापति नवलराय मारा गया तथा उसका समस्त शिविर लूट लिया गया । यह वजीर के लिए महान विपत्ति थी क्योंकि वह इसके पहले ही दिल्ली में निर्बल हो गया था । पठानों की सेना की संख्या इस समय तक ६० हजार हो गयी थी, तथा उन्होंने वजीर के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। सफदरजंग विपत्ति का सामना करने को तैयार हो गया तथा उसने आग्रहपूर्वक जाटों तथा सिंधिया और होल्कर के अधीन मराठों की सहायता की याचना की । सिंधिया तथा होल्कर रामराजा के राज्यारोहण पर पेशवा की सहायतार्थ दक्षिण गये हुए थे। पेशवा ने जुलाई १७५० ई० में उनको उत्तर जाने की आज्ञा दे दी ।

मराठा सहायता पहुँचने के पहले सफदरजंग तथा उसके पठान विरोधियों के बीच में १२ सितम्बर, १७५० ई० को दोआब में फर्रुखाबाद के समीप कासगंज नामक स्थान पर घोर युद्ध हुआ । वजीर की पुनः घोर पराजय हुई वह स्वयं घायल हो गया तथा युद्धक्षेत्र से बेहोशी की दशा में हटा लिया गया। यह समाचार दिल्ली पहुँचा, तथा इसके साथ ही उसके आसमान गौरव तथा सत्ता का सम्पूर्ण अन्त हो गया जिसका उपभोग राजधानी में उसने दो वर्ष तक किया था। अपनी विजय के बाद पठानों ने सीधे लखनऊ की ओर प्रयाण किया तथा कुछ समय तक ऐसा प्रतीत हुआ कि सफदरजंग ने सभी कुछ गँवा दिया है । लखनऊ को लूटने के बाद पठान इलाहाबाद पर टूट पड़े और वहाँ के गढ़ को घेर लिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने जौनपुर तथा गाजीपुर पर भी अधिकार कर लिया ।

अति संकटग्रस्त होकर सफदरजंग ने अपनी चतुर पत्नी सदरुन्निसा बेगम तथा कुछ व्यक्तिगत मित्रों से परामर्श किया । उन सबने एक स्वर से उसे मराठों से उनकी इच्छानुसार किन्हीं भी शर्तों पर मित्रता कर लेने का परामर्श दिया । सिंधिया तथा होल्कर १७५१ ई० के आरम्भ में कोटा के समीप तक पहुँच गए थे। सफदरजंग ने अपने व्यक्तिगत प्रतिनिधियों—राजा रामनारायण तथा जुगलकिशोर—को भेजकर उन्हें पूर्ण वेग से उसकी सहायतार्थ आने का निमन्त्रण दिया। वह स्वयं २१ फरवरी को दिल्ली छोड़कर पूरब की ओर इलाहाबाद पर पठानों के दबाव को कम करने के उद्देश्य से रवाना हुआ । अपने मार्ग में २ मार्च को वह जयप्पा सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर से मिला तथा २५ हजार रुपये दैनिक भुगतान पर उनकी सहायता स्वीकार करने

को सहमत हो गया। मराठो के लिए वास्तव मे यह गम्भीर काय का अगीकरण था। मूल विरोध सम्राट तथा पठाना मे था। पठाना का स्वप्न था दिल्ली के पठान-साम्राज्य की पुन स्थापना, जो कि मुगला के पहले खलजियो तथा तुगलको के समय म विद्यमान था। उन्होने उत्तर पश्चिम स अहमदशाह अब्दाली को भी बुलाया। वे मुगल-साम्राज्य पर निर्णायक प्रहार करना चाहते थे।

डा० श्रीवास्तव लिखते हैं—'रुहेला तथा बगश पठानो ने विश्वासघात कर अफगानिस्तान के अब्दाली आक्रान्ता के साथ मत्री स्थापित कर ली थी। आगामी १० वर्षों का इतिहास यह पूणतया सिद्ध कर देता है कि जब कभी हिन्दुस्तान म उसके पठान भाइयो पर उसके शत्रुओ द्वारा भारी दबाव डाला गया, अहमदशाह अब्दाली तुरत उत्तर भारत के मैदानो पर टूट पडा। उसका उद्देश्य केवल उनकी रक्षा करना न होता था, बल्कि यह भी होता था कि वह उनको अपने स्वप्न को सत्य सिद्ध करने म सहायता दे और वह स्वप्न था भारत म पठान प्रभुत्व की स्थापना। दिल्ली के तूरानी सामन्त वजीर क कट्टर शत्रु थे और पठान विद्रोहियो से गुप्त सहानुभूति रखते थ। अत सफदरजग के सम्मुख दो रास्ते थे—या तो वह पठानो को मुगल प्रभुता तथा अपने क और अधिकृत प्रान्तो अर्थात अवध तथा इलाहाबाद का अपहरण कर लेने दे अथवा मराठो की सहायता से उनको कुचल दे। उसको दो अनिष्ट विकल्पो म से एक को स्वीकार करना था—विदेशी आक्रान्ता जिसकी सहायता अपने ही देश के शत्रु कर रहे थे या मराठे जो गत वर्षों से साम्राज्य के निष्ठावान मित्र थ और १७४७ ई० स उसके भी मित्र हो गये थे। हम सफदरजग पर यह दोषारोपण नहीं कर सकते कि मराठो का आह्वान देने क अपमानजनक उपाय का उसने आश्रय लिया।'[२]

अति सकटग्रस्त होकर वजीर ने १५ हजार रुपये दनिक भुगतान का वचन देकर जाटो का भी समथन प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार की शत उसने मराठो क साथ भी मान ली।

इस बीच मे दो रुहेला सरदार सादुल्लाखा तथा बहादुरखा विशाल सेनाओ सहित बगश की सहायता को शीघ्र उपस्थित हो गये। होल्कर दल के गगाधर यशवन्त तथा जवाहर्रसिह जाट ने सहसा वगपूवक इन पठानो के विरुद्ध प्रयाण किया तथा २८ अप्रल का घोर युद्ध हुआ जिसम अपने नेता बहादुरखा सहित १० हजार रुहेले काटकर गिरा दिये गये। सादुल्लाखाँ ने भागकर अपनी प्राण रक्षा की। मराठा न बहुत सा लूट का माल तथा अनेक बन्दी प्राप्त किये।

इन घटनाओ से अहमदखा बगश पूणत हतोत्साह हो गया, तथा अपन अधिकाश अनुयायियो सहित रात्रि म अपनी छावनी से भाग गया। उसके अनक सनिक नदी म डूबकर मर गये। पठान शिविर लूट लिया गया और बजार को बहुत सा लूट का माल प्राप्त हुआ। गोविन्दपन्त बुन्देले लिखता है—पठानो न दिल्ली मे अपने शासन को पुन स्थापित करन का प्रयास किया। इसम असफल होने पर उनकी इच्छा सम्राट से वजीर तथा मीरबख्शी के पद स्वय के लिए प्राप्त करने की हुई जिससे सफदरजग की सत्ता का अन्त हो जाये। अहमदखा को गगा के तट पर वह दशा हुई जिसके वह योग्य था। यदि उसकी इस प्रकार पराजय न होती तो मराठो का सारा परिश्रम निष्फल हो जाता, तथा गत वर्षो मे उनके द्वारा प्राप्त देश उनके हाथो मे निकल जाते। पठानो म सर्वाधिक विश्वासघातक तुराईखा अहमदखाँ बगश के साथ था, तथा वह अपने समस्त अनुचरों सहित मारा गया।' इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सकट म मराठो न ही साम्राज्य की परिस्थिति की रक्षा की। जब पठानो पर मराठों की इस विजय का समाचार पूना पहुँचा तो समस्त महाराष्ट्र म हर्ष की लहर फल गयी। पेशवा ने सरदारो को अपनी हार्दिक बधाइया भेजी। दत्ताजी सिन्धिया ने दोआब के इस अभियान म प्रथम बार प्रसिद्धि प्राप्त की।[1]

३ **मराठों का उद्देश्य**—इन समस्त प्रवृत्तियो मे मराठो का उद्देश्य राजनीतिक होने के साथ साथ धार्मिक भी था। उनकी उत्कट इच्छा थी कि प्रयाग तथा काशी क तीर्थस्थान पुन हिन्दुओ के अधिकार म आ जायें। १८ जून, १७५१ ई० को एक मराठा कार्यकर्ता लिखता है—"मल्हारराव ने अपना वर्षाकालीन शिविर दोआब म लगाया है। उसका इरादा है कि बनारस म औरगजेब की बडी मस्जिद को गिरा दे तथा काशी विश्वेश्वर के प्राचीन मन्दिर को पुन स्थापित कर द। काशी के ब्राह्मणो को इस प्रगति से अत्यन्त भय है

---

[1] राजवाडे सग्रह खण्ड ३ पृ० १६०, ३८३ ३८४ ३६७ राजवाडे सग्रह, खण्ड ६ पृ० २७२, पत्रे यादी, ७६ ८२, ८३।

क्योंकि उनको इन स्थानो मे मुसलमानो की शक्ति का मान है। जो कुछ भी गगा माता तथा विश्वेश्वर की इच्छा होगी वही होगा। सरकार के इस प्रकार के प्रयत्न के विरुद्ध ब्राह्मण पेशवा से प्रबल प्रार्थना करने जा रहे हैं।'

वर्षा के बाद वजीर पठान युद्ध पुन आरम्भ हुआ। मेल मिलाप का प्रयास करने के स्थान पर वजीर ने पठानो के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना प्रकट की। पठानो ने अपने खेत व घर जला दिये तथा उत्तरी जगलो को भाग गये। उन्होने अहमदशाह अब्दाली को भारत आने का साग्रह निमन्त्रण दिया। इस अवसर पर उनको एक सुयोग्य नेता—नजीबुद्दौला—प्राप्त हो गया जो मराठों का कट्टर शत्रु था और किसी भी प्रकार से सम्राट का मित्र न था। उसने परिस्थिति के स्पष्ट तथ्यो को तोड मरोडकर धर्म सकट की आवाज उठायी जिससे मराठो तथा उनके समर्थक सफदरजग दोनो की निन्दा हो जाये। इस प्रकार से साधारण मुस्लिम भावुकता को प्रेरणा प्राप्त हुई तथा इसके कारण मराठा की स्थिति निर्बल हो गयी। यह स्पष्ट है कि मराठो की इस्लाम पर आक्रमण करके मुसलमानो की शुद्धि करने की कभी भी इच्छा न थी। उनकी इच्छा केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था।

१७५१ ई० के अन्त के समीप अब्दाली पुन पजाब में प्रकट हुआ, तथा दिल्ली का सम्राट थर थर कांपने लगा। उसने सफदरजग को परिस्थिति की रक्षार्थ दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया। वजीर को सकट का ज्ञान था। इस समय वह पठानो का पीछा करने में व्यस्त था, पर शीघ्र ही इस कार्य से अपने को मुक्त कर वह दिल्ली मे उपस्थित हो गया। परन्तु उसके आगमन के पूर्व ही सम्राट ने अपने प्रतिनिधि अब्दाली के पास भेज दिये थे तथा पजाब उसको देने पर सहमत हो गया था। वजीर की भी स्थिति यह न थी कि वह जमकर होने वाले युद्ध मे अब्दाली का सामना कर सके। सिन्धिया तथा होल्कर उसके मित्र थे। उन्होने इस नवीन विपत्ति को दृष्टि मे रखकर वजीर से साग्रह प्रार्थना की कि गगाधर यशवन्त की मध्यस्थता द्वारा किन्ही भी युक्तियुक्त शर्तों पर वह भारतीय पठानो के साथ शान्ति स्थापित कर ले जिससे वह अपना सम्पूर्ण ध्यान अफगानिस्तान के शाह द्वारा उपस्थित इस सकट की ओर दे सके। फरवरी १७५२ ई० में वजीर ने लखनऊ के सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इस सन्धि पत्र के द्वारा मराठो को अपने व्यय तथा सैन्यधन के स्थान पर दोआब में विशाल प्रदेश प्राप्त हुआ जिस पर उस समय से तब तक उनका शासन रहा जबकि १८०३ ई० में लॉर्ड लेक ने इसको सिन्धिया से विजय कर लिया। दूसरो के अधिकृत प्रदेश को छीनना पेशवा का उद्देश्य कभी न था। उसका उद्देश्य चौथ लगाना तथा तीर्थस्थानो को मुस्लिम नियन्त्रण से

मुक्त करना था। चौथ के बदले म वह उनको अपनी सुरक्षा प्रदान करता था। परन्तु इस विषय मे मुस्लिम भावना अत्यन्त प्रबल सिद्ध हुई। हिन्दू तीर्थ स्थानो पर मुसलमानो का अधिकार विजय गौरव का प्राचीन चिह्न था। हिन्दू तीर्थस्थानो का समर्पण करने के विषय मे सफदरजग तथा उसका पुत्र शुजाउद्दौला भी तनिक न झुके यद्यपि अन्य प्रकार से वे मराठो के मित्र थे। उनको यह साहस तो न था कि साफ इन्कार कर दें क्योंकि वे मराठो की शक्ति को जानते थे किन्तु इस माँग को पूरा न करने के वे थोथे कारण उपस्थित कर देते तथा इस प्रकार से समय को टाल जाते। यहाँ इस प्रश्न का केवल अध्ययन सम्बन्धी महत्त्व है।

४ **अब्दाली के प्रति पंजाब का समर्पण**—इस बीच मे भारतीय पठानो के नेता नजीबखाँ को मराठो की सहायता से सफदरजग के हाथो हुई पराजय के कारण घोर वेदना हो रही थी। अत उसने अब्दाली शाह से भारत पर पुन आक्रमण करने का आग्रह किया ताकि उनके शत्रु सफदरजग तथा उसके सहायक मराठो का दमन हो जाये जिन्होने बलपूर्वक सत्ता को हथिया लिया था। इस निमन्त्रण के उत्तर मे अहमदशाह दिसम्बर १७५१ ई० मे काबुल से चला तथा बिना विरोध के ठीक लाहौर के समीप तक पहुँच गया। मीर मन्नू सम्राट तथा वजीर दोनो को नित्य सहायतार्थ साग्रह प्रार्थनाएँ भेजता रहा। जब तक उससे हो सका उसने अब्दाली शाह का प्रतिरोध किया परन्तु १५ मार्च, १७५२ ई० को लाहौर के समीप एक युद्ध म परास्त होकर व्यक्तिगत रूप से उसने लाहौर तथा मुलतान के दो सूबे उसके सुपुर्द कर देने की सहमति दे दी (२? मार्च १७५२ ई०)।

पंजाब म अब्दाली के प्रत्यागमन के समाचार से सम्राट् तथा दिल्ली नगर भयाकुल हो उठा। सम्राट ने मराठा दलो को अपने साथ लेकर वजीर को तुरन्त राजधानी पहुँचने के क्रोधपूर्ण आह्वान भेजे। सफदरजग को लखनऊ म २७ मार्च को यह आह्वान प्राप्त हुआ तथा वह तुरन्त जाकर सिन्धिया और होल्कर से कन्नौज म मिला जबकि वे दक्षिण को जाने वाले थे। सम्राट के हित समर्थन मे मराठा सहायता प्राप्त करने के लिए उसने उनके साथ विधिपूर्वक समझौता कर लिया। १२ अप्रैल, १७५२ ई० को गम्भीर शपथो तथा राजकीय मुद्राओ द्वारा उसने सम्राट की ओर से इसका पुष्टिकरण भी कर दिया। सहमति मे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण धाराएँ थी

१ पठानो, राजपूतो या अन्य विद्रोहियो सदृश आन्तरिक शत्रुओ से तथा अफगान शाह अब्दाली सदृश बाह्य शत्रुओ से पेशवा सम्राट की रक्षा करेगा।

२ सम्राट् मराठो को उनकी सहायता के बदले म ५० लाख रुपये देगा

जिनमें से ३० लाख अब्दाली के कारण तथा २० लाख पठानों के सदृश आन्तरिक शत्रुओं के कारण होंगे।

३ इसके अतिरिक्त पेशवा को पंजाब, सिन्ध तथा दोआब पर चौथ लगाने का भी अधिकार होगा।

४ पेशवा को आगरा तथा अजमेर की सूबेदारी दी जायेगी जिनका प्रशासन वह परम्परागत मुगल शासन की पद्धति पर करेगा।

५ यदि पेशवा स्वयं सम्राट की सेवा में उपस्थित न हो सकेगा तो वह अपने सरदारों को इस कार्य के लिए नियुक्त कर देगा।[४]

इस समझौते को कार्यान्वित करने के लिए सफदरजंग सिंधिया तथा होल्कर को साथ लेकर तुरन्त दिल्ली को गया। वहाँ पहुँचने पर उनको मालूम हुआ कि अब्दाली के साथ मीर मन्नू द्वारा स्थापित सहमति को सम्राट ने स्वयं अपने हाथ से २३ अप्रैल को प्रमाणित कर दिया है। अब्दाली शाह का प्रतिनिधि कलन्दरखाँ इस कार्य के लिए दिल्ली आया था किन्तु वजीर की अनुपस्थिति के कारण अब्दाली को दिल्ली आने से रोकने के निमित्त स्वयं सम्राट ने यह समझौता कर लिया था। जैसे ही इस समझौते का पुष्टीकरण हो गया शाह तुरन्त लाहौर से अपने घर को वापस चला गया। इस प्रकार भारत भूमि से अब्दाली के निराकरण के अपने प्रथम अवसर पर मराठे निष्फल हो गये जबकि पंजाब की ओर जाने के उद्देश्य से ही ये सरदार दिल्ली आये थे।

यह कहना कठिन है कि सफदरजंग ने दिल्ली पहुँचने में इतना विलम्ब क्यों किया। मराठों के साथ संधि प्रस्तावों में उसे काफी समय लग गया किन्तु वजीर के शत्रुओं ने विलम्ब का कारण यह बताया कि सम्राट के परोक्ष रूप से विनष्ट कर दिये जाने पर उसको गुप्त सन्ताप का अनुभव होता था। यद्यपि अब्दाली शाह अपने देश को वापस हो गया था तथापि दिल्ली पहुँच जाने पर सफदरजंग की इच्छा थी कि वह पंजाब में प्रयाण करे तथा पठानों के भावी अनधिकार प्रवेश के विरुद्ध उसकी रक्षा सुनिश्चित कर दे। परन्तु सम्राट ने वजीर का समर्थन न किया क्योंकि वह वजीर की बढ़ती हुई शक्ति से बहुत डरता था। उसने मराठों के साथ वजीर की सहमति को प्रमाणित करने से इन्कार कर दिया। मराठा सेनाएं बलपूर्वक दिल्ली में डटी रहीं और बिना

---

[४] राजवाडे संग्रह खण्ड १ पृ० १ राजवाडे संग्रह, ६, पुरन्दरे डायरी, पृ० ८२ कोटा दफ्तर संग्रह जिल्द १ पृ० ८६।

प्रतिज्ञात ५० लाख रुपये प्राप्त किये वे वहाँ से हटना भी न चाहती थी। दिल्ली मे विशाल सेनाओं की उपस्थिति शीघ्र ही जनता के लिए कष्टप्रद हो गयी क्योंकि जब उनको रुपय न मिले, तब जो कुछ भी उनके हाथ लग सका वे उसको लूटने लगे। इसी समय सिंधिया तथा होल्कर को गाजीउद्दीन को अपने साथ लेकर तुरन्त दक्षिण पहुँचने का पेशवा का आह्वान प्राप्त हुआ। यह उनके तात्कालिक संकट का सुखद उपाय सिद्ध हुआ। सिंधिया तथा होल्कर ने सम्राट से सलावतजंग को पदच्युत करके गाजीउद्दीन को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त करने की शर्त पर दक्षिण लौट जाने का प्रस्ताव किया। गाजीउद्दीन को अपनी नियुक्ति के लिए सम्राट को ३० लाख रुपये का नजराना देना था और यह धन प्रतिज्ञात धन के आंशिक चुकारे के रूप में मराठों को दिया जाना था। इस प्रकार योजना निश्चित हो गयी। गाजीउद्दीन तथा सरदार लोग १४ मई को दिल्ली से दक्षिण की ओर चल पड़े। इसके परिणाम को हम पहले से ही जानते हैं।

५ **दिल्ली मे गृह युद्ध**—सम्राट तथा वजीर के सम्बन्ध काफी बिगड़ गये। वे एक दूसरे से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते जुलते नहीं थे वरन् एक दूसरे से अपने जीवन का भय मानने लगे थे। ख्वाजा जावेदखाँ (नवाब बहादुर) सम्राट की माता उधमबाई के साथ समस्त शाही सत्ता का उपभोग करता था। यह उधमबाई ही मुख्य पापात्मा थी जिसको वजीर सहन न कर सकता था। २७ अगस्त १७५२ ई० को छलपूर्वक वजीर ने ख्वाजा को भोजन पर निमन्त्रित करके उसका वध करा दिया, और इस प्रकार उससे अपना पीछा छुड़ाया। इससे सम्राट और भी अधिक भयभीत हो गया। परिणामत वे दोनों एक दूसरे की जान के दुश्मन हो गये। सम्राट अब अपने आपको वजीर के हाथों में एक बंदी मानने लगा। अब्दाली ने परिस्थिति को तुरन्त पहचान लिया तथा अपने प्रतिनिधि को दिल्ली भेजकर गत वर्ष के समझौते में नियत ५० लाख के वार्षिक कर की माँग प्रस्तुत की। १३ फरवरी १७५३ ई० को यह प्रतिनिधि दिल्ली पहुँचा। वजीर ने बड़ी कठिनाई से कुछ धन देकर उसको विदा कर दिया। अपने संकट को समझकर वजीर ने पेशवा को शीघ्र ही सशस्त्र सहायता भेजने के साग्रह आह्वान भेजे। सम्राट की माता उधमबाई बड़ी चतुर महिला थी। उसने सफदरजंग के विरुद्ध प्रबल विरोध का संगठन कर लिया तथा सम्राट को उसे पदच्युत करके उससे युद्ध करने की प्रेरणा दी। कमरुद्दीनखाँ का पुत्र इन्तिजामुद्दौला मीरबख्शी था। वह उधमबाई की योजना में शामिल हो गया। मीर शहाबुद्दीन उर्फ गाजीउद्दीन ने भी ऐसा ही किया। अन्ताजी मानकेश्वर के अधिकार में दिल्ली में एक छोटा सा मराठा दल था,

तथा हिंगने न्तु मराठा राजदूत थ । सम्राट तथा वजीर दोना न उनग अपने अपने पक्ष का समथन करन का प्राथना की ।[५]

अताजी का सुनिश्चित पत्र दिल्ली क इस समय के जीवन तथा स्थिति का सविस्तार स्पष्ट वणन करता है । उसन जानबूझकर पशवा को स्पष्ट वणन भेजा और उससे प्राथना की कि वह स्वय या सदाशिवराव भाऊ तुरत दिल्ली आकर मराठा की जटिल परिस्थिति का सुलझाए जो टाली टाइ न्यि जान पर अवश्य ही विनाश का कारण बन जायगी । दुख इसका है कि चेतावनी की ओर ध्यान न दिया गया । पेशवा ने दिल्ली का अपन अयोग्य भाई रघुनाथराव को भेजा जिसन परिस्थिति को और अधिक बिगाड न्या, जसा कि आगे प्रकट होगा । इस बीच म लघु किन्तु साहसी नायक अताजी को तथा हिंगन सदृश लोभी राजदून को राजधानी म गम्भीर परिस्थिति को यथाशक्ति सभाल लेने की आज्ञा दी गयी । प्रत्येक व्यक्ति को दिखायी देता था कि सम्राट तथा वजीर के बाच म राजधानी म गृहयुद्ध होने वाला है । दोनो दलो ने उत्सुकतापूवक अताजी से सहायता की प्राथना की तथा इसके लिए दोनो ने भारी घूस प्रस्तुत की । अताजी बिना सोच समझे अवध तथा इलाहाबाद के दोना सूबे जिन पर वजीर का अधिकार था मराठा को दिये जान पर सम्राट का समथन करने पर सहमत हो गया ।

अत म न्लिली म दोनो मुख्य दलो के बीच खुला युद्ध आरम्भ हो गया । यह २६ माच से ७ नवम्बर १७५३ ई० तक लगभग आठ महीना तक चलता रहा । इसका सविस्तार वणन यहाँ आवश्यक नही है । इसके प्रथम चरण म २६ माच से ८ मई तक मुश्किल से ही कोई वास्तविक युद्ध हुआ क्याकि वजीर युद्ध के लिए तयार होते हुए भी बहुत दिनो तक सशयग्रस्त रहा कि वह युद्ध करे अथवा अपने पद से त्यागपत्र देकर अपने राज्य लखनऊ को वापस चला जाय । दूसरा चरण ९ मई को आरम्भ हुआ जब सूरजमल जाट वजीर का समथन करने के लिए घटनास्थल पर उपस्थित हो गया । दोना सामन्ता ने सम्राट को किले म घेर लिया तथा राजभवन पर अग्नि वर्षा करके सम्राट को बन्दी बना लेन का प्रयत्न किया । युद्ध की यह गति सहसा उस समय रुक गयी जबकि वजीर का कट्टर शत्रु नजीबखाँ रुहेला घटनास्थल पर अकस्मात प्रकट हो गया । यद्यपि वह सदव अवसरवादी रहा था किन्तु सम्राट के पक्ष के समथन म उसके आगमन स युद्ध को निर्णायक दिशा प्राप्त हो गयी । सौभाग्यवश यह युद्ध दिल्ली से बाहर १० या २० मील स अधिक न फला ।

---

५ ऐतिहासिक पत्रव्यवहार ८६ ।

१३ मई को सम्राट ने सफदरजंग को वजीर के पद से हटाकर इंतिजामुद्दौला को उसके स्थान पर नियुक्त कर लिया। इसके शीघ्र पश्चात छोटा गाजीउद्दीन इमादुल्मुल्क सम्राट के पक्ष में शामिल हो गया। उसकी आयु उस समय केवल १६ वर्ष की थी। यद्यपि वह दुष्ट था पर सूझ बूझ वाला था। १४ जून को तालकटोरा में घोर युद्ध हुआ जिसमें सफदरजंग के निष्ठापूर्ण समर्थक राजेन्द्रगिरि गोसाइं के प्राण जाते रहे। १६ अगस्त को एक दूसरा युद्ध हुआ जिसमें सफदरजंग की पराजय हुई तथा वह शनै शनै अपने देश की ओर हटने लगा। इस बीच में सम्राट तथा गाजीउद्दीन ने पेशवा, सिंधिया तथा होल्कर को समस्त वेग से सहायतार्थ पहुँचने के आग्रहपूर्ण पत्र लिखे। उन्होंने उनकी सहायता के बदले में एक करोड़ रुपये तथा अवध और इलाहाबाद के दो सूबे देने का वचन दिया।

जैसे ही पेशवा को यह आह्वान प्राप्त हुआ, उसने रघुनाथराव को सिंधिया और होल्कर के साथ पूना से भेज दिया। परन्तु उनके दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया तथा उत्तर में मराठा सेनाओं की कोई आवश्यकता न रह गयी। युद्ध से दोनों पक्ष ऊब गये थे। सम्राट ने जयपुर से माधवसिंह को बुलाया जिसने आकर शान्ति स्थापना का प्रबन्ध किया। अन्तिम लड़ाई बारापुला के समीप हुई जिसमें सफदरजंग की बहुत हानि हुई। उसने अपने वकील को सम्राट के पास भेजा। उसने क्षमायाचना करते हुए उसको अपने दोनों सूबों को वापस जाने की आज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना की तथा वजीर के पद पर अपने समस्त स्वत्व को उसने त्याग दिया। वजीर इंतिजामुद्दौला उधमबाई माधवसिंह तथा सूरजमल सब ने अपने अपने ढंग से दोनों पक्षों के बीच में संधि स्थापित कराने का प्रयत्न किया। सफदरजंग को उसके दोनों सूबे विधिपूर्वक दे दिये गये, और इस प्रकार उस प्रतिज्ञा का खण्डन कर दिया गया जो अन्ताजी मानकेश्वर के साथ की गयी थी। ७ नवम्बर १७५३ ई० को अन्तिम रूप से संधि निश्चित कर दी गयी। सूरजमल के अपने विरुद्ध युद्ध करने के अपराध को सम्राट ने क्षमा कर दिया। सफदरजंग समस्त वेग से लखनऊ को चल दिया। वह युद्ध के कष्ट तथा अपनी परिस्थिति के प्रति चिंता के कारण पूर्णतः श्रान्त हो गया था तथा एक ही वर्ष के अन्दर १७ अक्टूबर १७५४ ई० को उसका देहान्त हो गया। सूबेदार के पद पर उसका पुत्र शुजाउद्दौला उत्तराधिकारी हुआ जिसने आगामी २० वर्षों तक उत्तर भारत के इतिहास में विशेष भाग लिया।

तिथिक्रम

अध्याय १८

१० जून, १७४६	मारवाड के अभयसिंह की मृत्यु, उसके भाई बख्तसिंह का राज्य पर बलपूर्वक अधिकार।
जून, १७५२	अभयसिंह के पुत्र रामसिंह का जयप्पा सिंधिया से अपने राज्य की प्राप्ति के लिए सहायता चाहना।
२१ सितम्बर, १७५२	बख्तसिंह की मृत्यु, उसका पुत्र अजीतसिंह उसका उत्तराधिकारी।
५ अक्टूबर, १७५३	उत्तर के सम्बन्धों को ठीक करने के लिए दिल्ली जाते हुए रघुनाथराव द्वारा नर्मदा को पार करना।
३ नवम्बर १७५३	लाहौर में मीर मन्नू का देहान्त, उसकी पत्नी मुगलानी बेगम द्वारा सत्ता ग्रहण।
२१ नवम्बर, १७५३	खाण्डेराव होल्कर दिल्ली में।
१७ दिसम्बर, १७५३	रामसिंह की रघुनाथराव तथा जयप्पा से जयपुर में भेंट तथा सहायता की प्रार्थना।
१७ दिसम्बर, १७५३	गाजीउद्दीन के निमन्त्रण पर रघुनाथराव का जाट राजा पर आक्रमण।
जनवरी, १७५४	रघुनाथराव का कुम्भेर पर घेरा, घेरा चार महीना तक चालू।
१७ मार्च, १७५४	खाण्डेराव होल्कर का वध, मल्हारराव द्वारा जाट राजा से बदला लेने की प्रतिज्ञा।
मई, १७५४	जाट राजा से सन्धि के निमित्त जयप्पा की मध्यस्थता।
१७ मई, १७५४	सम्राट का सिकन्दराबाद जाना।
१८ मई, १७५४	मराठा सेनाओं द्वारा कुम्भेर का त्याग, गाजीउद्दीन तथा रघुनाथराव का दिल्ली पर आक्रमण।
२६ मई, १७५४	होल्कर के पिण्डारियों द्वारा सम्राट की महिलाओं की लूट।
३१ मई, १७५४	सम्राट द्वारा गाजीउद्दीन की मांगें स्वीकृत।
२ जून, १७५४	गाजीउद्दीन वजीर नियुक्त, उसके द्वारा सम्राट सिंहासनाच्युत तथा आलमगीर द्वितीय सिंहासनारूढ़।

२८ जनवरी, १७५७	अब्दाली का दिल्ली मे प्रवेश ।
फरवरी, १७५७	नजीबखा की सहायता से अब्दाली का दिल्ली को नष्ट करना और लूटना ।
२२ फरवरी, १७५७	अब्दाली द्वारा अपने सेनापतियो को मथुरा की ओर भेजना ।
३ माच, १७५७	अब्दाली का स्वय दिल्ली से मथुरा को जाना, जाट राजा के द्वारा उसका प्रतिरोध ।
५ १२ माच, १७५७	होली का सप्ताह, मथुरा पर अकथनीय अत्याचार, चार हजार नंगे गोसाईयों का बहुसख्यक मुसलमानो का सहार करते हुए मारा जाना ।
माच, १७५७	अब्दाली की सेना पर महामारी का प्रकोप ।
१ अप्रल, १७५७	अब्दाली का दिल्ली से काबुल को प्रस्थान, माग मे मुगलानी बेगम को उचित दण्ड ।
अप्रल, १७५७	अब्दाली द्वारा सिक्खों का स्वण मन्दिर भूमिसात ।
दिसम्बर, १७५९	अन्ताजी मानकेश्वर बन्दी, धनापहरण के आरोप में उसे पूना भेजा जाना ।
३ सितम्बर, १७७२	मारवाड के रामसिह की मृत्यु ।

अध्याय १८

मराठों का दुराचार—अब्दाली का अधिकार सुदृढ

[१७५४-१७५७]

१ रघुनाथराव कुम्भेर के समीप। २ सम्राट की हत्या।
३ रघुनाथराव का कुप्रबन्ध ४ राठौर युद्ध, जयप्पा की हत्या।
५ अब्दाली को निमन्त्रण। ६ दिल्ली मे अत्याचार।
७ अब्दाली का विजयोल्लासपूर्ण निवर्तन।

१ रघुनाथराव कुम्भेर के समीप—पूना म घटनाओं का क्रम सरल नहीं था। पेशवा की मित्रवत गाजीउद्दीन को निजाम की गद्दी पर बैठा देने की योजना उस सामन्त की अकस्मात हत्या कर देने के कारण निष्फल हो गयी। इस विषय म काफी कष्ट उठाने तथा परिश्रम करने के बावजूद जयप्पा सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर को कुछ भी प्राप्त न हुआ, अत उनमे विरोधाभास उत्पन्न हो गया और वे स्पष्ट रूप म एक-दूसरे के विरोधी हो गये। दूसरी ओर, काफी दिनो से पेशवा का ध्यान कर्नाटक की विजय पर केन्द्रित था, और चूंकि वह सैनिक न था अत सेनापति के कर्तव्यों का निपुणतापूर्वक पालन करने हेतु उसे सदैव एक विश्वसनीय व्यक्ति की आवश्यकता थी। इस प्रकार का व्यक्ति उसका अपना चचेरा भाई सदाशिवराव भाऊ था जो दृढ चरित्र तथा वीर पुरुष था, परन्तु उसकी प्रकृति स्वतन्त्र तथा अनम्य थी जिसके कारण पेशवा सदैव उससे डरता था। अत जब १७५३ ई० की वर्षाऋतु म पेशवा के पास दिल्ली से साग्रह आह्वान पहुँचे, तो उसने इस प्रकार का चुनाव किया जो अन्त म विनाशक सिद्ध हुआ। वह जानता था कि उसका भाई रघुनाथ, जिसकी आयु उस समय १८ वर्ष की थी, इस योग्य न था कि कठिन परिस्थितियों तथा परस्पर विरोधी तत्त्वों पर नियन्त्रण कर सके परन्तु अहमदाबाद की नवीन विजय का श्रेय उसको प्राप्त था, अत पेशवा ने उसको सिन्धिया तथा होल्कर के साथ उत्तर जाने का आदेश दिया, तथा वह स्वयं सदाशिव भाऊ के साथ कर्नाटक को गया। भाऊ बखर का लेखक पेशवा के इस कार्य की समालोचना इस प्रकार करता है

जयपि मराठा राज्य के शासक के रूप म बालाजीराव की प्रसिद्धि

द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति बढ़ता थी, उसने दुष्परिणाम न देख रघुनाथराव को अपना प्रथम अनुभव प्राप्त करने के लिए उत्तर भेजने की गलत प्रेरणा दी। उसका यह कदम विनाशकारी सिद्ध हुआ।[1]

इस समय रघुनाथराव के साथ अपनी सेना के अतिरिक्त उल्लेखनीय सरदार उपस्थित थे—सखाराम बापू, शिवाजी विट्ठल, मल्हारराव होल्कर, शमशेर बहादुर, त्र्यम्बकराव पेठे, रामचन्द्र गणेश, कृष्णराव काले, नारोशंकर, विट्ठल शिवदेव तथा मानजी यादव। उन्होंने ७ अक्टूबर १७५३ ई० को नर्मदा को पार किया तथा मुकुन्दरा दर्रे से इन्दौर और उज्जैन होकर वे दिसम्बर के मध्य जयपुर पहुँच गए। मार्ग में उन्होंने धन कर का संग्रह किया तथा राजपूत राजाओं को भयभीत कर दिया। गोविन्दपन्त बुन्देले बुन्देलखण्ड से आकर वहीं पर उनके साथ हो गया।

इस समय मराठों का कोई विशिष्ट उद्देश्य न था क्योंकि जिस युद्ध के लिए उनको निमन्त्रण दिया गया था वह युद्ध समाप्त हो गया था। इस समय उत्तर में विशाल मराठा सेनाओं की उपस्थिति संकटपूर्ण समझी जाने लगी क्योंकि वे अपनी भोजन-सामग्री शत्रु तथा विवश जनता से बलपूर्वक प्राप्त करती थीं। इस परिस्थिति में भरतपुर के जाट राजा के साथ अप्रत्याशित शत्रुता उत्पन्न हो गयी जिसे मराठा नेताओं ने ईश्वरीय देन माना क्योंकि अपनी शक्ति को व्यस्त रखने के लिए इससे उत्तम कोई अन्य उपाय उनके सम्मुख न था। सूरजमल जाट वीर और शक्तिशाली सरदार था तथा भरतपुर में शासन करता था। उसके पास कुम्भेर तथा अन्य दुर्ग थे जो उसके शक्तिशाली केन्द्र-स्थान थे। गत गृह युद्ध में वह सफदरजंग का मुख्य समर्थक रहा था। यद्यपि सम्राट् ने उसको विधिपूर्वक क्षमा कर दिया था, परन्तु वह दिल्ली दरबार तथा गाजीउद्दीन द्वितीय की घृणा का पात्र था। गाजीउद्दीन ने इस समय उसकी धृष्टता का दण्ड देने का निश्चय कर लिया। मराठों को हाल ही में आगरा तथा अजमेर के सूबे प्राप्त हुए थे, तथा उनका विचार वहाँ पर अपना वास्तविक नियन्त्रण स्थापित करने का था। आगरा का सूबा सूरजमल के लिए विशेष लोभ का कारण था क्योंकि वह उनके भरतपुर तथा मथुरा के अधिकृत प्रदेशों के सन्निकट था। अजमेर का सूबा मारवाड़ के राजा का

---

[1] बाळाजीपंत प्रधान बीजेच्या चंद्राप्रमाणे चढत चढत राज्य करीत असतांपुढे विनाशकाले येणार भविष्य आलें तेव्हां कलह लागण्यास कारण झाले की रघुनाथराव प्रथम स्वारीस हिंदुस्थानांत पाठविले। (भा० व०, पृ० ४)

समान रूप से प्यारा था तथा उसने जयप्पा के लोभ को भी जाग्रत कर दिया था।

मल्हारराव होल्कर ने अपने पुत्र खाडेराव को अपने विश्वस्त सहायक गंगाधर तात्या के साथ दिल्ली भेजा ताकि वह गाजीउद्दीन से मिलकर अभियान की योजना की रचना करे। वे २१ नवम्बर को दिल्ली पहुँचे तथा उन्होंने जाट राजा के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। सम्राट की इच्छा आगरे के सूबे का त्याग करने की न थी, अतः उसने खाडेराव को उपहार आदि देकर उसको प्रसन्न करने का यत्न किया। परन्तु खाडेराव ने गाजीउद्दीन के परामर्श से सम्राट की इच्छाओं को ठुकरा दिया तथा उसके उपहारों को अस्वीकृत कर वह अपने पिता के पास जनवरी १७५४ ई० में वापस आ गया। जाट राजा के विरुद्ध तुरन्त युद्ध आरम्भ हो गया। कुम्भेर पर घेरा डाल दिया गया जहाँ पर राजा ने अपनी रक्षा की। युद्ध को स्थगित करने के प्रयास में सूरजमल अनुनय की सीमा तक पहुँच गया। इस कार्य के लिए उसने अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री रूपराम कोठारी को भेजा और शांति के मूल्य के रूप में ४० लाख रुपये देकर मराठों की मित्रता मोल लेने का प्रयत्न किया। रघुनाथराव ने अभिमानवश एक करोड़ रुपये की माँग की। इस पर जाट राजा ने प्रत्युत्तर में बारूद तथा गोलियों का एक छोटा-सा डिब्बा भेज दिया। कुम्भेर पर तुरन्त घेरा डाल दिया गया, तथा २० जनवरी से १८ मई, १७५४ ई० तक पूरे चार मास तक संघर्ष चलता रहा। इस सैनिक संघर्ष में एक गोली से १७ मार्च को खाडेराव होल्कर का देहान्त हो गया जिसके कारण उसके पिता को वृद्धावस्था में घोर दुख हुआ।[२]

इस घोर वेदना से मल्हारराव होल्कर ने जाटों के विरुद्ध घोर प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की और किसी समझौते को स्वीकार न किया। दोनों पक्षों में प्रचण्ड क्रोध उत्पन्न हो गया। सूरजमल अपनी चतुर पत्नी रानी किशोरी उर्फ हंसिया से प्रत्येक संकट के अवसर पर सदैव परामर्श करता था। उसको उस

---

२ ३० वर्ष की आयु में खाडेराव होल्कर का देहान्त हो गया तथा उसकी सुप्रसिद्ध पत्नी अहिल्याबाई विधवा हो गयी। उसका मलराव नामक एक पुत्र था जिसका देहान्त १७६७ ई० में हो गया। खाडेराव के और भी स्त्रियाँ थीं। इनमें से तीन रानियाँ तथा उसकी सात पासवानें उसकी चिता पर सती हो गयीं। अपने श्वसुर मल्हारराव की प्रार्थना पर केवल अहिल्याबाई जीवित रही। खाडेराव निस्सन्देह वीर था परन्तु मदिरा पान तथा भोग विलास से उसको असाधारण प्रेम था। (फाल्के सीरीज, ग्वालियर ३, २०५)

कठोर वमनस्य का पूरा ज्ञान था जो मल्हारराव तथा जयप्पा के बीच म विद्यमान था। उसने जयप्पा को उपहारो तथा मैत्रीपूर्ण प्राथनाओ द्वारा अपने वश म कर लिया। जयप्पा अपने प्रभाव का उपयोग करके रघुनाथराव द्वारा घेरा उठवा देने के लिए सहमत हो गया। जाटो ने कुम्भेर की इतनी वीरता से रक्षा की कि मराठो की विजय की कोई आशा न रह गयी। मल्हारराव को अपनी गम्भीर प्रतिज्ञा को पूरी न कर सकने का अत्यन्त दुख हुआ। जयप्पा ने आग्रह किया कि जाटो से समझौता कर लेना तथा निरथक युद्ध को समाप्त कर देना ही उत्तम होगा क्योकि कुम्भेर पर बिना लम्बी मार की तोपो के अधिकार सम्भव नही था और ये तोपें केवल सम्राट के पास थी जिसने इन तोपो को देने से इन्कार कर दिया था। इस परिस्थिति म जब जाट राजा ३० लाख रुपये तीन वार्षिक भागो म देने को सहमत हो गया तो शान्ति स्थापित कर ली गयी। यह रघुनाथराव की असफलता थी।

२ सम्राट की हत्या—गाजीउद्दीन इस समय सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति था। सम्राट के कार्यों पर उसका नियन्त्रण था जिसके प्रति उसको कठोर घृणा थी। सम्राट ने कुम्भेर को तोपें नही भेजी थी अत मराठो की सहायता से गाजीउद्दीन सम्राट के प्रति अपने क्रोध का बदला लेने को तयार हो गया। अब सम्राट को सफदरजग के स्थान पर गाजीउद्दीन को नियुक्त करने की गलती पर पछतावा हुआ। गाजीउद्दीन की सेनाओ को बहुत दिनो से उनका वेतन न मिला था। चूकि सम्राट उसको धन नही देता था, अत उसने महल पर घेरा डाल दिया तथा उसके निवासियो को भूखा मारने लगा। इसके बाद उसने यमुना को पार कर दोआब के कई नगरो को लूट लिया। नाम मात्र का वजीर इन्तिजामुद्दौला न तो अपने स्वामी की सहायता कर सका और न गाजीउद्दीन के अपकार को ही रोक सका। कुछ शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से शिकार के बहाने इन्तिजामुद्दौला सम्राट् को सिकन्दराबाद[१] ले गया। उसका विचार था कि वहाँ पर वह राजपूत राजाओ जाटो तथा सफदरजग से सहायता प्राप्त करने के उपाय करेगा। वह शाही अन्त पुर तथा उनके बहुमूल्य पदार्थों को भी वहाँ पर उठा लाया। उसका विचार था कि दिल्ली से लम्बी मार की तोपो को लाकर वह वहाँ पर एक दुर्ग का निर्माण भी करेगा।

गाजीउद्दीन ने इन प्रतिक्रियाओ का अवलोकन पूर्ण गम्भीरता से किया

---

[१] सिकन्दराबाद बुलन्दशहर जिले म है। यह दिल्ली के दक्षिण म लगभग ३० मील पर तथा यमुना के पूरब मे लगभग २५ मील पर है।

तथा मल्हारराव होल्कर की सहायता से वह सम्राट को परास्त करने के लिए तयार हो गया। सम्राट सिकन्दराबाद १७ मई को पहुँचा। उसके अगले ही दिन मराठा जाट युद्ध समाप्त हो गया। मल्हारराव तथा गाजीउद्दीन साथ साथ मथुरा गये। उनका विचार था कि दिल्ली पर आक्रमण करके अहमदशाह को राजच्युत कर दें, तथा एक अन्य शाहजादे को गद्दी पर बिठा दें। यह समाचार २५ मई को सिकन्दराबाद में सम्राट को प्राप्त हुआ। वह असमय तथा हतोत्साह हो गया। अपनी माता उधमबाई तथा अपनी प्यारी बेगम इनायतपुरी को अपने साथ लेकर वह शीघ्रतापूर्वक रात्रि में अपनी रक्षार्थ दिल्ली को वापस चल दिया।

जैसे ही मलिका जमानी तथा अन्तःपुर के अन्य सदस्यों को (जिनकी संख्या अनुमानतः ३५० से अधिक थी) सम्राट के जाने का समाचार ज्ञात हुआ उन्होंने अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को हाथियों पर लाद लिया तथा एक लम्बी पंक्ति बनाकर दिल्ली को प्रस्थान किया। मराठा सेनाएं दूर न थी। उनको इन महिलाओं के अपने आभूषणों सहित पलायन का समाचार मिल गया। वे उन पर २६ मई की अँधेरी रात में टूट पड़े। महिलाओं को बन्दी बना लिया गया उनके समस्त मूल्यवान पदार्थ तथा समान उनसे छीन लिये गये तथा सिकन्दराबाद शिविर की प्रत्येक उपयोगी वस्तु लूट ली गयी। जब गाजीउद्दीन तथा मल्हारराव को शाही अन्तःपुर पर इस उपघात का हाल मालूम हुआ तो वे अत्यन्त लज्जित हुए। मलिका जमानी ने मल्हारराव को अपने सम्मुख बुलाकर उसकी घोर निन्दा की। रानी की उपस्थिति में उसने अपने मुह पर स्वयं थप्पड लगाये, तथा अपनी निरापराधिता को सिद्ध करने का प्रयास किया। उसने इसे उन लुटेरे पिण्डारियों का कार्य बताया जो उसकी सेना के साथ थे। मल्हारराव ने कुछ अपराधियों को पकड़ लिया तथा उसकी उपस्थिति में उनके सिर काट लिए। तब उसने समस्त महिलाओं तथा उनके सामान को एकत्र किया तथा उनको अपने पास से दो लाख रुपये व्यय के लिए दिये। यद्यपि शाही आभूषण वापस कर दिये गये किन्तु सिकन्दराबाद शिविर की बहुत सी वस्तुएँ—५०० तोपें तम्बू सज्जा का सामान, सोने और चांदी के परिच्छद मराठों के ही पास रह गये। स्वयं गाजीउद्दीन मलिका जमानी से २८ मई को मिला और उसने उसके पैरों पर गिरकर उससे क्षमा याचना की।

जब ये दुखद घटनाएँ दोआब में घटित हो रही थी गाजीउद्दीन तथा मल्हारराव दिल्ली के समीप एक घोर दुखदायी काण्ड की रचना में व्यस्त थे। मल्हारराव ने सम्राट के सम्मुख कुछ कठोर मागें प्रस्तुत की तथा उनको

स्वीकार करता यह स्वयं वहाँ गया। ३१ मई को सम्राट ने उन समस्त माँगों के प्रति अपनी लिखित स्वीकृति दे दी। परिणामतः मराठों ने नगर के बाह्य भागों को लूटना आरम्भ कर दिया। १ जून को सम्राट ने इन्तिजामुद्दौला को वजीर के पद से हटाकर उसके स्थान पर गाजीउद्दीन को नियुक्त कर दिया। दूसरे ही दिन एक भव्य दरबार का आयोजन हुआ जिसमें गाजीउद्दीन ने घोषणा की कि सम्राट शासन करने के योग्य न था। उसने बहादुरशाह के एक पौत्र अजउद्दौला को उपस्थित किया तथा उसको गद्दी पर बैठा दिया। उसने उसका नाम आलमगीर द्वितीय रखा। अहमदशाह तथा उधमबाई को बन्दी बनाकर कैद में डाल दिया गया। कुछ दिनों के बाद उनकी आँखें निकाल ली गयीं और वे मार डाले गये। राजगद्दी पर आसीन निर्बल प्राणियों का यही विधिलिखित भाग्य है।

इसके शीघ्र पश्चात् रघुनाथराव, जयप्पा तथा अन्य नेता दिल्ली पहुँच गये। इस वैभवशाली क्रान्ति में उनकी सहायता के पुरस्कारस्वरूप गाजीउद्दीन ने उनको ८२ लाख रुपये देने का वचन दिया। इस आचरण तथा राजा शाहू की उस बुद्धिमत्तापूर्ण नीति में कितना भयंकर भेद है जिसका अनुसरण उसने अपने दीर्घकालीन शासन में सदैव किया था। इस समय से मराठों के नाम तथा चरित्र पर ऐसा कलंक लग गया जो कभी नहीं मिट सकता।

३ रघुनाथराव का कुप्रबन्ध—अब हम उत्तर में पेशवा के प्रतिनिधि के रूप में रघुनाथराव के कार्यों की व्याख्या करेंगे। नया सम्राट आलमगीर द्वितीय इस समय ५० वर्ष का था। उसका जन्म ६ जून १६९९ ई० को हुआ था। उसने अपना अब तक का समस्त जीवन राजभवन में कारागार की दीवारों के अन्दर व्यतीत किया था, तथा बाह्य जगत के स्वतन्त्र वातावरण में उसने कभी श्वास भी न लिया था। अपने उस महान् पूर्वज की भाँति जिसकी उपाधि उसने धारण की थी उसको अपने धर्म से घनिष्ठ प्रेम था। २५ अक्टूबर, १७५४ को एक फरमान जारी करके उसने मराठा प्रतिनिधियों (हिंगने परिवार) को गया तथा कुरुक्षेत्र में यात्री कर संग्रह का कार्य सौंप दिया। इससे पूर्व यह काम मुसलमान अधिकारी करते थे। सम्राट की यह इच्छा थी कि प्रयाग तथा वाराणसी के दोनों तीर्थ स्थानों का प्रबन्ध मराठों को दे दिया जाये, परन्तु इन स्थानों पर सफदरजंग का अधिकार होने के कारण वह ऐसा न कर सका। यद्यपि वह धार्मिक कर्मकाण्ड में दृढ़ था पर अपने स्वभाव से भोग विलासी तथा असंयमी था। उसकी कामुक दृष्टि से शाही अन्तःपुर की नवयुवतियाँ भी न बच सकीं।

इस सम्राट मे न तो इतना साहस था और न ही योग्यता थी कि किसी काय म स्वतन्त्र रूप मे वह अपनी सत्ता का उपयोग कर सके। जब भी कोई व्यक्ति उसके सामने कोई शिकायत लेकर आता, वह केवल वजीर की ओर इशारा कर दता। शाही वैभव को स्वीकार करने म उसका एकमात्र उद्देश्य केवल अपने लोभ की तृप्ति-मात्र था। उसका अपना बडा परिवार था तथा उसके पालन पोषण एव गौरव के निमित्त उसको धन की आवश्यकता थी। उसके ५ पुत्र तथा १ पुत्री थी, और इनके अतिरिक्त उसके भाई के ६ पुत्र थे और बहुत से पौत्र तथा एक प्रपौत्र भी था। इनम से प्रत्यक सदस्य को ३० हजार रुपये वार्षिक की लिखित वृत्ति मिलती थी। अतएव उसकी प्रमुख एव प्रथम समस्या इस विशाल व्यय के लिए धन प्राप्त करना था।

वजीर गाजीउद्दीन समस्त शाही वजीरो म निस्सन्देह अत्यन्त स्वार्थी तथा निश्शक्त था तथा उसमे कल्पना शक्ति तथा विस्तीर्ण अवेक्षा का अभाव था। उसने अपनी योग्यताओ का उपयोग समयानुसारी नीति के अनुसरण म किया। वह सदव अपनी स्वार्थ सिद्धि का यत्न करता रहा। उस समय के वृत्तान्ता-नुसार उसको अपने पिता से एक करोड रुपय से भी अधिक धन पतृक सम्पत्ति के रूप म प्राप्त हुआ था। उसके पास अपनी प्रशिक्षित सेना भी थी जिसकी संख्या १२ हजार थी। परन्तु वह अपने अनुचरो की निष्ठा या भक्ति को प्राप्त न कर सका था। सब बाता पर विचार करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि उसका स्वामी—नवीन सम्राट—सदव उसके समथन हतु प्रस्तुत रहता था परन्तु वजीर उसकी सद्भावना को प्राप्त करने म असफल रहा। किसी अन्य वजीर ने अपने शासनकाल मे राजधानी म अथवा बाह्य नगरो म इतनी गडबड, अव्यवस्था व दरिद्रता नही देखी थी जितनी कि इसके प्रशासन के इन ६ वर्षो म फल गयी थी। स्वय उसकी अपनी सनाएँ सदव आवश्यकता ग्रस्त रहती थी। उनको समय पर वेतन न मिलता था। उन्होने उसके कपडे फाड डाले तथा उसको पानीपत की गलियो म इस अपमान से घसीटा जिसका अनुभव कभी पहले किसी वजीर को न हुआ था। उसने मराठो को उनकी सहायता क बदले मे विशाल धन दन का वचन दिया था, परन्तु अपने वचन को उसने कभी पूरा न किया। अत व अपने प्रति देयधन को प्राप्त किय बिना राजधानी छोडने को तयार न थे। कभी वह नजीबखाँ की मित्रता प्राप्त करने का यत्न करता और कभी अब्दाली की परन्तु वह किसी के प्रति स्थिर न रहता और न अपनी प्रतिज्ञा का पालन ही करता। अन्त म, जब उसने

१७५९ ई० में सम्राट आलमगीर की निष्ठुरता से हत्या कर दी तो किसी को उसमें लशमात्र भी विश्वास न रह गया।[४]

जून १७५८ ई० में नवीन सम्राट के सिंहासनारूढ होने के शीघ्र पश्चात ही इस वृत्ति के वजीर से रघुनाथराव का पाला पड़ा। पूरे ५ महीना तक रघुनाथराव दिल्ली के समीप चक्कर काटता रहा तथा वजीर अथवा सम्राट से प्रतिज्ञात धन प्राप्त करने के व्यर्थ प्रयास करता रहा। उसकी विशाल सेनाएं जो कुछ भी मिल सका खा गयीं। अंत में अपनी असह्य स्थिति में उसने दिल्ली को छोड़ दिया तथा यमुना पार रुहेलों के देश में घुस गया। वहाँ पर तीर्थ स्नान करने तथा गढमुक्तेश्वर जैसे तीर्थ स्थानों की यात्रा करने में उसने दो मास व्यतीत कर दिये। यहाँ पर भी उसको धन प्राप्त न हो सका। उसने यमुना को पुनः पार किया तथा राजस्थान में कर संग्रहार्थ गया। कनौड नारनौल सांभर तथा अन्य स्थानों से होकर वह ३ मार्च १७५५ ई० को पुष्कर पहुँच गया। मल्हारराव होल्कर भी उसके साथ था।

इस समय जयप्पा सिंधिया मारवाड के विजयसिंह के विरुद्ध युद्ध प्रवृत्तियों में व्यस्त था। चूंकि रघुनाथराव के पास व्यस्त रहने के लिए अन्य कोई विषय न था वह जयप्पा का साथ देने को तयार हो गया। परन्तु जयप्पा ने उस कार्य में किसी के हस्तक्षेप का प्रबल विरोध किया जिसका संचालन वह सम्पूर्ण स्वाधीनता तथा वीरता से कर रहा था। उसने रघुनाथराव को मारवाड न जाने का नम्र संकेत भी भेज दिया। इस प्रकार पराभूत होकर रघुनाथराव ग्वालियर चला गया जिस पर ठीक उसी समय विट्ठल शिवदेव ने अधिकार कर लिया था। अंत में वह पेशवा के आह्वान पर पूना को वापस हो गया।[५] इस प्रकार यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि सितम्बर १७५३ से अगस्त १७५५ ई० तक के अपने लगभग दो वर्षों के लम्बे अभियान में रघुनाथराव कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात न कर सका जिसको उसका कोई अधीनस्थ व्यक्ति न कर सकता था। गोविन्दपंत बुन्देले ने रघुनाथराव के आचरण का अनुमोदन न करते हुए अपनी भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में पेशवा

---

[४] इसके बाद ऐसा कोई स्थान न रह गया था जहाँ वह अपने लम्बे शेष जीवन को कुशलतापूर्वक व्यतीत कर सकता। अंत में पेशवाओं को उसके दुर्भाग्य पर दया आ गयी। उन्होंने बुंदेलखण्ड में उसको कुछ भूमि दे दी, जहाँ पर वह १८०२ ई० तक अपनी मृत्युपर्यन्त कठिनता से अपना निर्वाह करता रहा।

[५] फाल्के सीरीज ग्वालियर ३, २८४, २८९ आदि।

तक पहुँचा दिया। उसने साफ कह दिया कि जब तक स्वयं पेशवा या सदा शिवराव उत्तर को न आयेगा क्षति की पूर्ति न हो सकेगी।

परन्तु रघुनाथराव की एकमात्र निकृष्ट देन वह स्पष्ट शत्रुता थी जो उसने दिल्ली के मराठा नायक अन्ताजी मानकेश्वर तथा दिल्ली दरबार में पेशवा के कूटनीतिक प्रतिनिधियों (हिंगने बन्धुओं) के बीच में फैल जाने दी। वह इन दो सरदारों के बीच में सिन्धिया तथा होल्कर की भांति ही वैर शांति कराने में असफल रहा। इस कलह का मूल कारण धन का लोभ था। जब कभी मराठा सहायता की प्रार्थना की जाती थी, प्रार्थी सर्वप्रथम वहां पर स्थित मराठा राजदूत के पास जाता और उससे परामर्श करता था। हिंगने राजदूत था तथा अन्ताजी नायक। उनमें से प्रत्येक अपनी आर्थिक उन्नति की सम्भावना से इस अवसर का उपयोग करना चाहता था। हिंगने-बन्धु लाभदायक महाजनी का व्यापार भी करते थे। उनकी अनेक बाह्य स्थानों पर अपनी शाखाएँ थीं। अन्ताजी का भ्रष्टाचार तथा जाली लेखापत्र बनाना इतना कुख्यात हो गया था कि पेशवा ने १७५९ ई० में सिन्धिया को अन्ताजी को बन्दी बनाकर पूना को परीक्षार्थ भेजने की आज्ञा प्रदान की। वह पूना उस समय पहुँचा जबकि भाऊसाहब पानीपत के अभियान पर प्रस्थान करने को था। उस समय भाऊसाहब को अन्ताजी के विरुद्ध आरोपों की परीक्षा करने का अवकाश न था। वह विशाल मराठा दलों के साथ उत्तर को ले जाया गया जहाँ पानीपत में उसको अपने समस्त पापों का दण्ड मृत्यु के रूप में प्राप्त हो गया।

४ राठौर युद्ध—जयप्पा की हत्या—जिस प्रकार सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद मल्हारराव होल्कर को जयपुर के उत्तराधिकार संघर्ष में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हो गया था उसी प्रकार अब जयप्पा सिन्धिया की बारी थी कि वह मारवाड़ के कार्यों में हस्तक्षेप करे जबकि उसके शासक अभयसिंह की मृत्यु १० जून १७४९ ई० को हो गयी। अभयसिंह के रामसिंह नामक एक पुत्र था जो बहुत योग्य न था। उसको आशा थी कि वह अपने पिता की गद्दी का उत्तराधिकारी होगा, परन्तु अभयसिंह के वीर तथा युद्धप्रिय भाई बख्तसिंह ने उसको निकाल दिया। दुखित रामसिंह ने जयप्पा सिन्धिया से समर्थन की याचना की। जयप्पा ऐसे अवसर की खोज में था जिसके द्वारा राजपूत राज्यों पर उसको प्रभुता प्राप्त हो जाये तथा उन पर चौथ लगा सके। जयप्पा ने रामसिंह को आश्वासन दिया कि जैसे ही वह अन्य आवश्यक कर्तव्यों से निवृत्त हो जायेगा वह उसके हित का साधन करेगा तथा उसको सहायता देगा जिससे कि उसको अपने पिता की गद्दी प्राप्त हो जाय। १७५२ ई०

में जब जयप्पा बड़े गाजीउद्दीन को सकुशल दिल्ली से दक्षिण को पहुँचाने जा रहा था, मार्ग में उसने रामसिंह को गद्दी पर बैठा देने का प्रयास किया। परन्तु जयप्पा के पास उस समय केवल एक छोटा-सा दल था तथा बख्तसिंह ने उसको आसानी से परास्त कर दिया। उसको दक्षिण जाने की जल्दी थी तथा वह मारवाड़ रो न जा सकता था। १७५३ ई० में जब सिंधिया तथा होल्कर दोनों रघुनाथराव के साथ उत्तर को गये रामसिंह उनसे जयपुर के समीप मिला तथा सिंधिया को उसके वचन का स्मरण दिलाया कि वह गद्दी प्राप्त करने में उसकी सहायता करे। रघुनाथराव कुम्भेर पर जाटों के विरुद्ध युद्ध का निपटारा होते ही सिंधिया को उस कार्य के लिए भेज देने पर सहमत हो गया। इस कार्य में १७५४ ई० के वर्ष में ५ महीनों तक मराठे व्यस्त रहे, तथा उस वर्ष के जून मास में सिंधिया रामसिंह के साथ दिल्ली से मारवाड़ के लिए चल दिया। इसी बीच में बख्तसिंह की मृत्यु हो गयी (२१ सितम्बर १७५२ ई०) तथा उसका छोटा और शक्तिशाली पुत्र विजयसिंह मारवाड़ के शासन का उत्तराधिकारी बना। जयप्पा ने विजयसिंह पर अजमेर में घेरा डाल दिया। जब विजयसिंह को ज्ञात हुआ कि अजमेर दीर्घकालीन युद्ध प्रवृत्तियों के लिए अनुपयुक्त स्थान है तो वह मेड़ता को चला गया जो अजमेर के उत्तर-पश्चिम में ४० मील पर स्थित है। जयप्पा तुरन्त विजयसिंह के पीछे अगस्त में मेड़ता को गया, तथा १५ सितम्बर, १७५४ ई० को उसने राठौरों को घोर युद्ध में परास्त कर दिया। इस पर विजयसिंह और भी पीछे उत्तर में नागौर को हट गया जो मेड़ता से लगभग ७० मील पर एक दुर्ग है। जयप्पा ने नागौर तक उसका पीछा किया तथा उस स्थान पर उसने तुरन्त उसको घेर लिया। नागौर का घेरा लगभग एक वर्ष तक चलता रहा तथा इस स्थान को राठौरों और मराठों में हुए युद्ध के कारण अपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी। कुछ समय तक मरुभूमि के उस सुदूर स्थान में जहाँ जल तथा अन्न दोनों दुष्प्राप्य हैं जीवन मरण का यह संघर्ष होता रहा। इस बीच में २१ फरवरी १७५५ ई० को सिंधिया ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। उसको आशा थी कि विजयसिंह उसकी अधीनता स्वीकार कर लेगा। परन्तु राठौर राजा चतुर व्यक्ति था। उसने संघर्ष बन्द न किया यद्यपि वह सदैव सन्धि की शर्तों को निश्चित करने का बहाना करता रहा और इसके लिए वह प्रायः मराठा शिविर में अपने दूत भी भेजता रहा। मारवाड़ के अत्यधिक महत्त्वशाली स्थानों पर मराठों ने अधिकार कर लिया था। इन स्थानों में सुदूर दक्षिण में स्थित जालौर भी सम्मिलित था जहाँ पर विजयसिंह ने अपना संचित धन छिपा रखा था। अब यह धन मराठों के हाथ लग गया था। जोधपुर पर भी

आक्रमण किया गया तथा अब कोई आशा न रह गयी कि राठौर संघर्ष को जारी रख सकेगा। केवल नागौर ही प्रतिरोध प्रस्तुत कर रहा था क्योंकि गढ़ की रतौन्दी नाव में सुरंगें प्रभावहीन सिद्ध हुई थी।

१७५५ ई० की ग्रीष्मऋतु की उष्णता की वृद्धि के साथ नागौर के योद्धाओं की भावनाओं में भी उष्णता बढ़ गयी तथा विजयसिंह ऐसे उपायों की खोज करने लगा जिनके द्वारा वह अपने अजेय प्रतिद्वन्द्वी का सर्वथा अन्त कर दे। राठौर के दूत नागौर के गढ़ से मयूर झील (ताऊस-सर) पर, सिन्धिया के शिविर को जो लगभग ७ मील की दूरी पर था शान्ति की शर्तों पर वार्तालाप करने के लिए आया जाया करते थे। यह वार्तालाप महीनों तक चलता रहा। इस दल के साथ बड़ी संख्या में रक्षक तथा सेवक भी होते थे। मराठों को किसी कुचेष्टा का सन्देह न था। शुक्रवार, २५ जुलाई, १७५५ ई० की प्रभात को जोधपुर का वकील विजय भारती गोसाईं अपने दो सहायकों राजसिंह चौहान तथा जगनेश्वर के साथ बहुत से नौकरों को लेकर जिनमें कुछ मराठों जैसे वस्त्र धारण किये हुए थे जयप्पा के शिविर को गया तथा शर्तों पर उसके साथ बहुत देर तक वार्तालाप करता रहा। सिन्धिया के शिविर में खुले हुए चौक के बीच में लगे हुए तम्बू में वार्तालाप हुआ। इस चौक में अश्वारोही दल के घोड़े लम्बी पंक्तियों में बँधे हुए थे। ११ बजे दोपहर को जयप्पा के स्नान की तैयारी हुई जिसको खुले में लकड़ी की चौकी पर बैठकर उसने समाप्त किया। सहसा दो भिखारी जो घोड़ों के दान से अन्न एकत्र कर रहे थे जयप्पा की ओर झपटे और तौलिया से अपने बाल पोंछते में ही उसके शरीर में इस प्रकार कटारें भोंक दीं कि एक घण्टे में उसका देहान्त हो गया।[१]

तुरन्त कोलाहल मच गया। दूतों तथा उनके दल के लोगों को क्रोधित मराठों ने काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया। अपनी मृत्यु के पहले जयप्पा ने अपने भाई दत्ताजी तथा अपने पुत्र जनकोजी को उसकी मृत्यु पर लेशमात्र भी हतोत्साह हुए बिना इस अन्याय का बदला लेने के पूर्ण निर्देश दिये। इस प्रकार राजपूतों के षडयन्त्र का शिकार होकर एक वीर मराठा सैनिक का देहावसान हो गया। इस गड़बड़ी में जयप्पा के पास उदयपुर के प्रतिनिधि

---

[१] ये आक्रमणकारी दूतों के दल के साथ भिखारियों का रूप बनाकर आये थे तथा जयप्पा तक पहुँचने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे। यह पूर्वरचित तथा सुनिश्चित प्रयास था। यह घटना आकस्मिक उत्तेजना के अथवा जयप्पा की धृष्ट भाषा के कारण उत्पन्न नहीं हुई जैसा कि वाकेआ नेगार कहते हैं। (फाल्के सीरीज, ग्वालियर ३ ३२०)।

रावत जतसिंह सिसोदिया को भी जो निर्दोष था, परन्तु वार्तालाप में उपस्थित था बध कर दिया गया क्योंकि प्रत्येक राजपूत उन राजपूतों का सहायक समझा गया।

दत्ताजी तथा जनकाजी अवसरानुकूल सिद्ध हुए। बिना भयभीत हुए उन्होंने अधिक वेग से युद्ध का संचालन किया। उनको शीघ्र ही भिन्न भिन्न मराठा सरदारों से सहायता प्राप्त हो गयी जो विभिन्न स्थानों पर अपना कार्य कर रहे थे। साहसी सैनिक अन्ताजी मानकेश्वर तुरन्त बुन्देलखण्ड से चल पड़ा तथा उसने जयपुर के माधवसिंह को और अन्य राजपूत दलों को विजयसिंह की सहायता के लिए नागौर जाने से रोक दिया।[७]

सिन्धिया तथा होल्कर के बीच में दलगत भावनाएं इतनी अधिक बढ़ गयीं कि एक वृत्तान्त तक फैल गये कि जयप्पा की हत्या को होल्कर ने गुप्त रूप से उत्तेजित किया था, किन्तु इस विषय पर कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पेशवा को चूंकि सामयिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था अतः उसने शीघ्र ही मल्हारराव को दक्षिण में सावनूर में युद्ध का संचालन करने हेतु वापस बुला लिया। उसने सिन्धिया के दल को स्वतन्त्र अधिकार दे दिया कि वह मारवाड़ में युद्ध प्रवृत्ति को सम्मानपूर्वक तथा लाभ के साथ समाप्त करे तथा मराठा अस्त्रों के गौरव को सिद्ध कर दे।

कुछ भी हो जयप्पा की हत्या से विजयसिंह को किसी प्रकार कोई भी लाभ न हुआ। उसको सिन्धिया की सैन्य शक्ति के कारण शीघ्र ही घुटने टेक देने पड़े यद्यपि मराठों के दमनार्थ उसने उत्तरी शासकों का एक भयानक संघ स्थापित करने का प्रयत्न किया जिसमें सम्राट, उसका वजीर नजीबुद्दौला, रुहेले पठान और अन्य लोग शामिल हों। परन्तु इस प्रकार की वीर योजना राठौर राजा की सामर्थ्य के बाहर की बात थी। जयपुर के माधवसिंह ने अनिरुद्धसिंह को विशाल सेना सहित भेजा, परन्तु १६ अक्तूबर १७५५ ई० को डीडवाना के युद्ध में वह परास्त हो गया तथा उसने शीघ्र ही शर्तों की

---

[७] जयप्पा की हत्या का राजपूत वृत्तान्तों में कुछ भिन्न रूप से उल्लेख है, जिसका आशय है कि इस षडयन्त्र की रचना पहले से जानबूझकर नहीं की गयी थी। कटु वार्तालाप में दोनों ओर से गरमा गरमी हुई तथा जयप्पा ने सम्मानित दूतों के प्रति इस प्रकार की धृष्ट तथा असभ्य भाषा का व्यवहार किया कि उसी क्षण उत्तेजना के कारण उन्होंने उसका वध कर दिया। परन्तु दूतों के दल में हथियारबन्द तथा वेश बदले हुए हत्यारों की उपस्थिति से उस तर्क का पूर्ण खण्डन हो जाता है जो टाड तथा वंशभास्कर द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

याचना की। वर्ष की समाप्ति तक विजयसिंह की स्थिति इतनी असह्य हो गयी थी कि उसकी रक्षा का एकमात्र उपाय यह था कि वह स्वयं को सिंधिया की दया पर छोड़ दे। वह स्वयं दत्ताजी से जनवरी १७५६ ई० में मिला तथा अपने प्रति लगायी गयी समस्त शर्तों से सहमत हो गया। दत्ताजी को भी इस युद्ध से कटु अनुभव प्राप्त हुआ था, अतः उसने भी पूर्ण संयम से काम लिया। विजयसिंह ५० लाख रुपये का दण्ड चुकाने के लिए सहमत हो गया। उसने अजमेर तथा जालौर को छोड़ दिया तथा अपने चचेरे भाई रामसिंह को आधा राज्य दे दिया। दत्ताजी ने अजमेर को अपने अधिकार में रखा तथा उसकी रक्षा निमित्त गढ़ में बहुत-सी सेना नियत कर दी। जालौर उसने रामसिंह को दिया। ३ सितम्बर १७७२ ई० को अत्यन्त दरिद्रावस्था में उसका देहान्त हो गया।

इस प्रकार दीर्घकालीन तथा विनाशक अभियान की आवश्यकताओं को पूरा करके दत्ताजी तथा जनकोजी नागौर से चल दिये। वे जून में उज्जैन पहुँचे जहाँ से तुरन्त पूना को चल दिये। अक्टूबर में पेशवा चम्बरगोंडा के स्थान पर उनके पास शोक प्रकट करने गया। मल्हारराव भी शोक प्रकट करने आया, परन्तु दत्ताजी ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया क्योंकि सिंधिया तथा होल्कर के बीच में खाई अब अधिक चौड़ी हो गयी थी।

५. अब्दाली को निमन्त्रण—१७५२ ई० में अब्दाली के आक्रमण से भारत का लगभग उतना ही विनाश हुआ जितना कि १२ वर्ष पूर्व नादिरशाह के आक्रमण से हुआ था। पंजाब के मुगल सूबेदार मीर मन्नू का देहान्त ३ नवम्बर, १७५३ ई० को हो गया था तथा पंजाब में सर्वत्र पूर्ण कुप्रबन्ध व्याप्त था। उस समय भारत में पितृगत सेवा का नियम प्रचलित था जिसने राज्य का सर्वनाश कर दिया। पंजाब पर शासन करने के लिए तथा सीमा की दृढ़तापूर्वक रक्षा करने के लिए योग्य व्यक्ति को नियुक्त करने के स्थान पर सम्राट ने मीर मन्नू की विधवा मुगलानी बेगम को अपने एक शिशु पुत्र के नाम में अपने पति के पद पर रहने की आज्ञा दे दी। इस शिशु का देहान्त आगामी वर्ष में हो गया। पंजाब इस समय अफगान राज्य का एक अंग बन गया था। इसका सूबेदार अपनी वास्तविक शक्ति दिल्ली के सम्राट् की अपेक्षा काबुल के शाह से प्राप्त करता था। अपने शिशु पुत्र को उसके पद पर स्थिर रखने के लिए मुगलानी बेगम को दुर्रानी शाह के समर्थन की आवश्यकता थी। लाहौर में गड़बड़ी का हाल सुनकर गाजीउद्दीन निजी नाभाथ अपने साथ भारी दल लेकर वहाँ के लिए चल पड़ा। ७ फरवरी १७५६ ई० को वह सरहिन्द पहुँचा। यहाँ पर लाहौर का सूबेदार अदीनाबेग

उससे आकर मिला। गाजीउद्दीन ने उसको लाहौर भेज दिया। उसने मुगलानी बेगम को, जो मृतक सूबेदार की विधवा थी उसकी अल्पायु पुत्री उम्दा बेगम तथा उसके समस्त संचित धन के साथ पकड़ लिया तथा पंजाब के शासन पर अदीनाबेग को नियुक्त करके वह उन सबको दिल्ली ले गया। मुगलानी बेगम दुश्चरित्र महिला थी। वह षडयन्त्र करती हस्तक्षेप करती तथा निम्नतर उपायों से अपना स्वार्थ सिद्ध करती। जब बाद में अब्दाली भारत में आया तो वह उसका विश्वास प्राप्त करने तथा अपने साथ अन्याय करने वाले गाजीउद्दीन का सर्वनाश करने के प्रयत्न में सफल हो गयी। इसका प्रभाव मराठों के हितों पर भी पड़ा।

मलिका जमानी तथा मुगल अन्तःपुर की अन्य राज महिलाओं को सचमुच भूखा रहना पड़ा क्योंकि नया वजीर समय पर उनको कुछ भी वृत्ति न दे सका। उनकी सतत याचनाओं के प्रति उसने अपने कान बन्द रखे थे अतः हताश होकर उन्होंने नजीबुद्दौला को बुलाया तथा बहुत देर तक परिस्थिति के विषय में उससे परामर्श किया। वे सब इस पर सहमत हो गये कि वजीर मराठों का पुतला है और मराठों ने समस्त सत्ता का हरण कर लिया था, तथा मराठों को निकालने का एकमात्र उपाय यह था कि अब्दाली को भारत में बुलाया जाय। इस पर नजीबुद्दौला ने महिलाओं के नाम से अविलम्ब उनकी सहायतार्थ भारत आने की साग्रह तथा सकरुण याचनाएं अब्दाली के पास भेजीं। नजीब ने अपने सगे भाई सुल्तानखाँ को काबुल में शाह से मिल कर उसको पर्याप्त सेना सहित भारत ले आने के लिए भेजा। पंजाब में अपनी सत्ता से निराकृत मुगलानी बेगम ने शाह को लिखा— भारतीय सरदारों के विश्वासघात से मेरा सर्वनाश हो गया है। मेरे स्वर्गीय श्वसुर वजीर कमरुद्दीनखाँ के महल में करोड़ों रुपये नकद तथा अन्य सामान गड़ा हुआ है जिसका मुझे पूर्ण ज्ञान है। इनके अतिरिक्त माने चाँदी के ढेर छतों के बीच में छिपे हुए हैं। यदि आप इस समय भारत पर आक्रमण करें तो भारत का राज्य अपने समस्त धन सहित आपको प्राप्त हो जायगा।[८]

परन्तु अब्दाली युद्ध से दूर रहना चाहता था। झगड़ों का शांतिपूर्वक निपटारा की इच्छा से उसने अपने दूत करन्दरखाँ को अक्टूबर १७५६ ई० में दिल्ली भेजा। परन्तु गाजीउद्दीन ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः नवम्बर में शाह पेशावर आ गया और उसने अपने पुत्र तैमूरशाह तथा सेनापति जहानखाँ को आगे पहुँचने से पहले लाहौर पर अधिकार करने के

---

८ लेटर मुगल हिन्दुस्तान और द पंजाब नामक पुस्तकों में इस पत्र का विवरण कुछ में थोड़े विवरण प्राप्त हो सकते हैं।

लिए भेज दिया। अदीनाबेग युद्ध मे परास्त हो गया और पीछे हट गया। विजयामत्त अफगान देश का लूटते हुए ठीक सतलज के तट तक पहुच गये। बिना किसी विरोध के ५ जनवरी को अब्दाली का सेनापति जहानखा सरहिन्द पहुँच गया। जब दिल्ली की इस प्रकार की निबलता का हाल शाह ने पेशावर म सुना, वह स्वय वहा स चल पडा और शीघ्र प्रयाण करता हुआ दिल्ली के समीप तक बढ आया। अब्दाली के सहसा आगमन के समाचार से दिल्ली के लोग अत्यन्त भयाकुल हो गये। नगर के धनी लोग अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर देहात म भाग गये। बहुत से लोग सावस्थान मथुरा म सकुशल रहने के विचार स चल आये। मराठा नायक अन्ताजी मानकेश्वर को जो उस समय ग्वालियर के समीप था शीघ्र दिल्ली जाने का आह्वान प्राप्त हुआ। वह अपनी ५ हजार सेना सहित शीघ्र दिल्ली पहुच गया। दिल्ली स भागने वाले व्यक्तियो का असाधारण कष्ट उठाने पडे। मार्ग म जाटो तथा जगली डाकुओ ने उनको लूट लिया। वजीर गाजीउद्दीन म इस परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य न थी। वह मुगलानी बेगम स मिला और उसके पैरो पडकर उससे अनुनय विनय की कि वह शाह स मार्ग म ही मिलकर उसे भारी दण्ड लेकर वापस चला जाने के लिए राजी कर ले। इस पर अब्दाली के दूत १८ जनवरी को वजीर के पास आये। उन्होने दो करोड रुपये का दण्ड तथा सिन्धु और सतलज के बीच का समस्त प्रदेश, लौटने के मूल्य के रूप म, तलब किया। इस बीच म नजीबुद्दौला पानीपत के स्थान पर जहानखा स जाकर मिल गया जो अब्दाली की सेना के अग्रभाग का नायक था।

दुष्ट मुगलानी बेगम द्विमुखी चाल चलने लगी। जब वजीर का सन्देशवाहक मध्यस्थता के उद्देश्य म उपस्थित हुआ, तो उसका महत्त्व बढ गया और उसको अब्दाली के मनोहकारो म तुरन्त स्थान प्राप्त हो गया तथा उसने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने का प्रबन्ध कर लिया। उसने दिल्ली के शासन तथा उसकी निबलता के विषय म सभी प्रकार का उपयोगी तथा मूल्यवान जानकारी अफगान शाह के समक्ष प्रस्तुत की। अफगान शाह न भी उसके प्रति परम अनुग्रह प्रदर्शित कर उसको प्रसन्न रखने का ध्यान रखा जिससे उसको उस जानकारी स लाभ प्राप्त हो जाय जो सचित धन के विषय म उसने दी थी। उसको दिल्ली तथा वहा के नागरिको की स्थिति का पूर्ण ज्ञान था जिसका उसने पूर्ण विवरण शाह को दिया। इसमे दिल्ली के अधिकारियो, साहूकारो तथा धनिक नागरिको की योजनाओ तथा उनके षड्यन्त्रो तथा उनके गुप्त धन का हाल भी सम्मिलित था। शाह बहुत चतुर था। अपनी स्वार्थ सिद्धि के निमित्त उसने उनके साथ प्रेमपूर्ण अनुग्रह का व्यवहार किया।

वह उसको अपनी पुत्री कहता तथा उसने भी उसको सुल्तान मिर्जा की उपाधि दी जैसे कि वह उसी का पुत्र हो। उसने उसको जालन्धर दोआब के जिले तथा कश्मीर जागीर में दे दिये। मुगल राजभवन की तथा हिन्दुओं सहित बाहर के सम्भ्रान्त परिवारों की विवाहिता और अविवाहिता सुन्दरियों के विषय में भी उसने उससे पूर्ण विवरण प्राप्त कर लिये। यह वास्तव में शाह की एक चाल थी। उसने इस प्रकार प्राप्त ज्ञान के आधार पर बलपूर्वक धन प्राप्त करने की योजनाओं की रचना की।

६ दिल्ली में अत्याचार—जब यह समाचार दिल्ली पहुँचा कि अब्दाली नगर के समीप आ गया है तो सम्राट का वजीर केवल चार नौकरों को अपने साथ लेकर अकेला अपने महल से चल पड़ा तथा उसने अब्दाली के वजीर शाहवलीखां से उसके निवास स्थान पर भेंट की। अगले दिन शाह वलीखां गाजीउद्दीन को शाह के सम्मुख ले गया। शाह ने गाजीउद्दीन को उसकी अयोग्यता तथा कुप्रबन्ध के लिए भर्त्सना की तथा उसके पद पर उसको स्थिर करने के लिए एक करोड़ रुपये माँगे। गाजीउद्दीन ने उत्तर दिया कि उसके पास एक लाख रुपये भी नहीं है तब वह किस प्रकार एक करोड़ का विचार कर सकता है। अब अब्दाली ने २८ जनवरी को दिल्ली में विधिपूर्वक प्रवेश किया और अपने नाम का खुतबा पढ़वाया। उसके पास लगभग ५० हजार सेना थी। इनमें से ३० हजार सैनिक अफगानिस्तान से उसके साथ आये थे तथा लगभग २० हजार भारत में भरती किये गये थे।

अब्दाली शाह ने अब भय का शासन आरम्भ कर दिया। दिल्ली के मन्दभाग्य नागरिकों पर ही नहीं बल्कि मथुरा और अन्य नगरों पर भी जो राजधानी से लगभग १०० मील के अर्द्धव्यास के अन्दर स्थित थे नाना प्रकार

आगरा की भी वही दशा हुई है। लगभग २० हजार मराठे तथा १५ हजार जाट संघर्ष की तैयारी कर रहे हैं। पठान सैनिकों ने दिल्ली के सम्पूर्ण नगर पर अधिकार कर रखा है। प्रत्येक ने एक घर पर अपना अधिकार कर रखा है जिसमें वह उस घर के स्वामी की भांति रहता है। बहुत से लोग मार डाले गये हैं। बहुत सी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया गया है अनेक स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली है और कुछ अपमान से बचने के लिए डूबकर मर गयी हैं। जिन राजकुमारियों का पता लग सका उनका विवाह इन विदेशी आक्रान्ताओं से बलपूर्वक कर दिया गया है। प्रत्येक सुन्दरी हिन्दू महिला का पता लगा लिया गया है तथा वह किसी मुसलमान के घर में डाल दी गयी है। नजीबखां नगर का शासक नियुक्त हुआ है। अब्दाली ने अपनी उपस्थिति में मुगलानी की पुत्री उम्दा बेगम का विवाह वजीर गाजीउद्दीन से करा दिया है। नगर में प्रत्येक घर की तलाशी ली गयी है। प्रत्येक व्यक्ति की उसके धन के लिए तलाशी ली गयी है। प्रत्येक गृहस्थ को अपना धन बता देने की लिखित आज्ञा दी गयी है। जिन लोगों ने प्रतिरोध किया, उनको भयानक यातनाओं को सहन करना पड़ा है। जो कुछ भी लोगों के पास था वे उसको बेचने के लिए लाये, परन्तु कोई ग्राहक न मिल सका। बहुत-से लोग विष खाकर मर गये और इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन का अन्त कर लिया। मुगलानी बेगम ने शाह को सूक्ष्मतम विवरण दे दिये हैं।'

अन्ताजी मानकेश्वर ने अब्दाली की सेनाओं का प्रतिरोध करने के लिए प्रत्येक सम्भव यत्न किया। उसने पेशवा को पूर्ण वृतान्त भेज दिये। काबुल की ओर से धमकी का समाचार बहुत पहले प्राप्त हो चुका था तथा पेशवा ने बिना एक क्षण विलम्ब के रघुनाथराव तथा होल्कर को नवम्बर १७५६ ई० में दिल्ली को भेज दिया था—अर्थात काबुल से अब्दाली तथा पूना से रघुनाथराव लगभग एक ही समय पर चले थे, तथा उन दोनों को साधारण समय में एक ही साथ दिल्ली के समीप एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित हो जाना चाहिए था क्योंकि दिल्ली का नगर उन दोनों आधार स्थानों से लगभग समान दूरी पर था। यदि रघुनाथराव की गति उतनी ही तीव्र होती जितनी अब्दाली की थी, तो यह संकट टल सकता था या कम से कम उसकी प्रचण्डता बहुत कम की जा सकती थी। पेशवा सिंधिया-परिवार को वापस नहीं भेज सकता था, क्योंकि मारवाड़ में कठोर अभियान के बाद वे अभी हाल में ही अपने घर वापस आये थे। सम्भवतः होल्कर की अब्दाली से युद्ध करने की इच्छा न थी। यह कर्तव्य रघुनाथराव का था कि वह सम्राट की रक्षार्थ शीघ्र ही दिल्ली पहुँच जाय क्योंकि समस्त विदेशी संकटों से उसकी रक्षा करने के लिए मराठे

प्रतिज्ञाबद्ध थे। पंजाब के सिक्ख अब्दाली के शत्रु थे। अतः दिल्ली में या उसके समीप सशक्त मराठा दल की उपस्थिति से बहुत कुछ लूटमार तथा अत्याचार जो उसने वहाँ पर किये रुक गये होते।[6]

७ अब्दाली का विजयोल्लासपूर्ण निवर्तन—दिल्ली का एक मास तक विनाश करके तथा जितना उससे हो सका उतना धन संचय करके अब्दाली ने २२ फरवरी, १७५७ ई० को अपने कुछ धर्मान्ध सेनापतियों को अलग-अलग टोलियों में मथुरा तथा कुछ अन्य दक्षिणी नगरों को भेज दिया। वे यमुना के दोनों तटों पर द्रुत गति से बढ़े। अपने सिपाहियों को उसने स्पष्ट आज्ञा दी थी कि 'मथुरा तथा कुछ अन्य स्थान हिन्दुओं के पवित्र स्थान हैं। यह तुम्हारा धार्मिक कर्तव्य है कि अधिक से अधिक हिन्दुओं का वध करो और तुम उनके सिरों को काट काटकर ढेर लगा दो।' उसने उनको प्रति सिर पाँच रुपया पुरस्कार देने का वचन दिया। मथुरा में कोई रक्षा प्राचीर न था अतः वह आसानी से शत्रुओं की रक्त पिपासु तलवारों का शिकार हो गया। घर जला दिये गये, मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दी गयीं तथा [illegible] नदी। होली के त्यौहार के अवसर पर [illegible]

वीरता से युद्ध किया कि उसके कई हजार अनुयायी मार डाले गये। यह कटु अनुभव पर्याप्त था जो अब्दाली को भारत से पीठ दिखाने पर विवश कर दे। उसने जहानखाँ को आगरा भेजा और वहाँ पर भी १५ दिनों के घेरे में उसी प्रकार के निर्दय कृत्य किये गये।

अब मार्च का महीना समाप्त हो रहा था तथा ग्रीष्मऋतु अपनी प्रचण्ड उष्णता सहित आरम्भ होने को थी। यमुना का पानी लगभग सूख गया था और जो कुछ रह भी गया था वह सड़ती हुई लाशों के कारण दूषित हो गया था। जनता के पेय जल के एकमात्र स्रोत के इस प्रकार अशुद्ध हो जाने पर अब्दाली की सेना पर महामारी का प्रकोप हो गया और लगभग २०० मौतें दैनिक होने लगीं। वह बुद्धिमत्तापूर्वक २४ मार्च को गोकुल से वापस हो गया तथा शीघ्र ही दिल्ली वापस पहुँचकर, एक भी दिन ठहरे बिना, उसने सम्राट आलमगीर को पुनः उसके समस्त प्राचीन वैभव सहित गद्दी पर बैठा दिया और गाजीउद्दीन को उसका वजीर तथा नजीबुद्दौला को मीरबख्शी नियुक्त कर दिया। वह स्वयं १ अप्रैल को अपने देश के लिए चल पड़ा। वृत्तान्तों के अनुसार वह अपने साथ १२ करोड़ रुपये की सम्पत्ति ले गया, जिसमें से ४ करोड़ रुपये केवल भूतपूर्व वजीर खानेखाना इन्तिजामुद्दौला के घर से तथा १ करोड़ रुपये गाजीउद्दीन के घर से मिला था। वह मुहम्मदशाह की पुत्री तथा शाही अन्तःपुर की अन्य महिलाओं को भी अपने साथ ले गया। इस प्रकार अपने देश से आजीवन निर्वासित होने पर उन्होंने घोर वेदनापूर्ण विलाप किया। अब्दाली ने तैमूरशाह तथा जहानखाँ को लाहौर में पंजाब की सुरक्षार्थ नियुक्त कर दिया तथा स्वयं शीघ्र काबुल को वापस हो गया।

कुछ भी हो मुगलानी बेगम को उसका उचित पुरस्कार मिल गया। अपने कार्य के निमित्त जो कुछ भी उसको उससे प्राप्त करने की आवश्यकता थी वह प्राप्त कर उसने मुगलानी को ठोकर मार दी तथा उसके पास अब समय न था कि उसकी याचनाओं की ओर ध्यान दे। चिनाब तक क्रोध से चिल्लाती हुई वह उसके पीछे पीछे गयी। नवीन शासन में जो अब्दाली ने लाहौर में स्थापित किया उसने इस सत्तापिपासु महिला को कोई स्थान नहीं दिया। उसके पुत्र तैमूरशाह का विवाह सम्राट आलमगीर की पुत्री मुहम्मदी बेगम से कर दिया गया तथा पंजाब का शासन उसको दे दिया गया। जब मुगलानी को कोई शुल्क, कोई पुरस्कार तथा प्रतिज्ञात जागीर भी न प्राप्त हुई तो वह पागल हो गयी तथा आक्रान्ता के प्रति गन्दी गालियों का प्रयोग करने लगी। उसके पास निर्वाहार्थ कुछ न था, तथा लाहौर में वह द्वार द्वार पर भीख माँगने लगी। एक बार वह वजीर शाहवलीखाँ के डेरे पर गयी तथा

उसने न्याय की प्रार्थना की। इस पर बेंतों से उसकी इस प्रकार मरम्मत की गयी कि उसकी मानसिक स्थिति की केवल कल्पना ही की जा सकती है। लाहौर में जहाँ पर कुछ दिन पहले उसने अपने पति मीर मन्नू के समय में सम्मान तथा सत्ता का उपभोग किया था उसको इस प्रकार का अपमान सहन करना पड़ा जिसका वर्णन शब्दों के द्वारा नहीं किया जा सकता।'°

तिथिक्रम

अध्याय १६

अक्टूबर, १७५६	रघुनाथराव का पूना से तथा अब्दाली का काबुल से दिल्ली के लिए प्रस्थान।
१४ फरवरी, १७५७	रघुनाथराव इन्दौर मे।
अप्रल, १७५७	अब्दाली का दिल्ली से काबुल को प्रस्थान।
मई, १७५७	रघुनाथराव आगरा में, नजीबखाँ द्वारा संधि शर्तें प्रस्तुत करना।
अगस्त, १७५७	रघुनाथराव का दिल्ली पर अधिकार, नजीबखाँ हस्तगत, परन्तु मल्हारराव का कद होने से उसे बचाना।
६ सितम्बर, १७५७	नजीबखाँ दिल्ली से विदा, दोआब पर मराठों का अधिकार।
२२ अक्टूबर, १७५७	रघुनाथराव का दिल्ली से लाहौर के लिए प्रस्थान।
जनवरी, १७५८	रघुनाथराव कुंजपुरा मे।
८ मार्च, १७५८	रघुनाथराव का सरहिन्द पहुँचना तथा उसको अधिकृत करना, सूबेदार अब्दुस्समदखाँ अधीन।
मार्च, १७५८	मराठों द्वारा तमूरशाह तथा जहानखाँ का लाहौर से निष्कासन।
११ अप्रल, १७५८	रघुनाथराव का लाहौर में निवास।
मई, १७५८	पंजाब के शासन का प्रबन्ध करने के बाद रघुनाथराव का पूना को प्रस्थान।
५ जून, १७५८	रघुनाथराव कुरुक्षेत्र मे।
जुलाई, १७५८	तुकोजी होल्कर तथा सबाजी सिंधिया द्वारा समस्त पंजाब को अधीन करना तथा अटक के गढ़ पर मराठा ध्वज फहराना।
अगस्त, १७५८	राजस्थान से प्रयाण करते हुए रघुनाथराव तथा होल्कर का कोटा के समीप जनकोजी तथा दत्ताजी सिंधिया से भेंट करना तथा पंजाब की उचित रक्षा के लिए उनको आदेश देना।

१६ अगस्त, १७५८	जनकोजी तथा मल्हारराव में कोटा के समीप भेंट।
१६ सितम्बर, १७५८	अदीनाबेग की मृत्यु, रघुनाथराव का पूना पहुँचना।
दिसम्बर, १७५८	होल्कर तथा गगाधर यशवन्त की पूना म पेशवा से भेंट तुरन्त उत्तर को वापस। दत्ताजी तथा जनकोजी दिल्ली मे।
१ फरवरी, १७५६	सिंधिया का दिल्ली से पजाब को प्रस्थान।
माच, १७५६	अलीगौहर तथा शुजाउद्दौला का पूना के विरुद्ध प्रयाण, परन्तु क्लाइव तथा नावस द्वारा लौटाया जाना।
अप्रल, १७५६	दत्ताजी द्वारा सबाजी सिंधिया लाहौर मे पजाब के रक्षाथ नियुक्त।
मई, १७५६	दत्ताजी लाहौर से वापस।
१ जून, १७५६	दत्ताजी यमुना पार दोआब मे।
जून, १७५६	नजीबखाँ की दत्ताजी से निष्फल भेंट, शुक्रताल मे पुल निर्माण पर दोनों सहमत।
जुलाई, १७५६	दत्ताजी का शिविर शुक्रताल के समीप।
१५ सितम्बर, १७५६	दत्ताजी द्वारा नजीबखाँ पर असफल आक्रमण।
२१ अक्टूबर, १७५६	गोविन्दपन्त बुन्देले का गगा को पार करके रुहेलों को पीडित करना।
अक्टूबर, १७५६	अब्दाली का लाहौर पर अधिकार।
८ नवम्बर, १७५६	लाहौर से भगाये हुए सबाजी का शुक्रताल के समीप दत्ताजी क शिविर मे पहुचना।
३० नवम्बर, १७५६	गाजीउद्दीन द्वारा सम्राट, भूतपूव वजीर तथा चार अन्य व्यक्तियों की हत्या।
३ दिसम्बर, १७५६	अब्दाली का गरजते हुए लाहौर से आना।
११ दिसम्बर, १७५६	दत्ताजी का दिल्ली की ओर शीघ्र प्रयाण।
१८ दिसम्बर, १७५६	दत्ताजी का कुजपुरा पर यमुना को पार करना।
२४ दिसम्बर, १७५६	स्थानेश्वर पर दत्ताजी तथा अब्दाली के बीच मे घोर युद्ध।
३१ दिसम्बर १७५६	दोनों प्रतिद्वन्द्वी बरारी घाटी पर एक दूसरे के सम्मुख, उनके बीच म यमुना नदी।

६ जनवरी, १७६०	दत्ताजी का अपने सामान तथा असैनिकों को दूर भेजना तथा वीरतापूर्वक अब्दाली से युद्ध के निमित्त तयार हो जाना।
१० जनवरी, १७६०	बरारी घाट पर दत्ताजी का युद्ध मे मारा जाना तथा जनकोजी का घायल हो जाना, उनकी सेना कोटपुतली को वापस, दिल्ली पर अब्दाली का अधिकार।
१३ जनवरी, १७६०	मल्हारराव होलकर को राजस्थान मे दत्ताजी के बध का समाचार प्राप्त।
८ फरवरी, १७६०	मल्हारराव होल्कर सिंधिया परिवार के साथ।
फरवरी मार्च, १७६०	मराठों तथा अफगानो मे घातक युद्ध, अफगान बलिष्ठ सिद्ध हुए।

१६ अगस्त, १७५८	जनकोजी तथा मल्हारराव में कोटा के समीप भेंट।
१६ सितम्बर, १७५८	अहीनायक की मृत्यु, रघुनाथराव का पूना पहुँचना।
दिसम्बर, १७५८	होल्कर तथा गंगाधर यशवन्त की पूना में पेशवा से भेंट तुरन्त उत्तर को वापस। दत्ताजी तथा जनकोजी दिल्ली में।
१ फरवरी, १७५९	सिंधिया का दिल्ली से पंजाब को प्रस्थान।
मार्च, १७५९	अलीगोहर तथा शुजाउद्दौला का पूना के विरुद्ध प्रयाण, परन्तु क्लाइव तथा नाक्स द्वारा लौटाया जाना।
अप्रैल, १७५९	दत्ताजी द्वारा सबाजी सिंधिया लाहौर में पंजाब के रक्षार्थ नियुक्त।
मई, १७५९	दत्ताजी लाहौर से वापस।
१ जून, १७५९	दत्ताजी यमुना पार दोआब में।
जून, १७५९	नजीबखाँ की दत्ताजी से निष्फल भेंट, शुक्रताल में पुल निर्माण पर दोनों सहमत।
जुलाई, १७५९	दत्ताजी का शिविर शुक्रताल के समीप।
१५ सितम्बर, १७५९	दत्ताजी द्वारा नजीबखाँ पर असफल आक्रमण।
२१ अक्टूबर, १७५९	गोविन्दपन्त बुन्देले का गंगा को पार करके रुहेलों को पीड़ित करना।
अक्टूबर, १७५९	अब्दाली का लाहौर पर अधिकार।
८ नवम्बर, १७५९	लाहौर से भगाये हुए सबाजी का शुक्रताल के समीप दत्ताजी के शिविर में पहुँचना।
३० नवम्बर, १७५९	गाजीउद्दीन द्वारा सम्राट भूतपूर्व वजीर तथा चार अन्य व्यक्तियों की हत्या।
३ दिसम्बर, १७५९	अब्दाली का गरजते हुए लाहौर से आना।
११ दिसम्बर, १७५९	दत्ताजी का दिल्ली की ओर शीघ्र प्रयाण।
१८ दिसम्बर, १७५९	दत्ताजी का कुंजपुरा पर यमुना को पार करना।
२४ दिसम्बर, १७५९	स्थानेश्वर पर दत्ताजी तथा अब्दाली के बीच में घोर युद्ध।
३१ दिसम्बर, १७५९	दोनों प्रतिद्वन्द्वी बरारी घाटी पर एक-दूसरे के सम्मुख उनके बीच में यमुना नदी।

६ जनवरी, १७६०	दत्ताजी का अपने सामान तथा जसनिशों को दूर भेजना तथा वीरतापूर्वक अब्दाली से युद्ध के निमित्त तयार हो जाना।
१० जनवरी, १७६०	बरारी घाट पर दत्ताजी का युद्ध मे मारा जाना तथा जनकोजी का घायल हो जाना, उनकी सेना कोटपुतली को वापस, दिल्ली पर अब्दाली का ।धिकार ।
१३ जनवरी, १७६०	मल्हारराव होल्कर को राजस्थान मे दत्ताजी के वध का समाचार प्राप्त।
८ फरवरी, १७६०	मल्हारराव होलकर सिंधिया परिवार के साथ।
फरवरी मास, १७६०	मराठों तथा अफगानों मे धायक युद्ध, अफगान बलिष्ठ सिद्ध हुए।

अध्याय १६

अब्दाली की विजयिनी प्रगति

[१७५६–१७६०]

१ रघुनाथराव दिल्ली मे। २ मराठे अटक मे।
३ नजीबखाँ के नियन्त्रण में असफलता। ४ दत्ताजी का शुक्रताल मे घिर जाना।
५ दत्ताजी का बरारी घाट पर मारा जाना।

१ रघुनाथराव दिल्ली में—इसका वर्णन किया जा चुका है कि काबुल के शाह अब्दाली का यह इरादा कभी न था कि वह दिल्ली का राजमुकुट प्राप्त करे तथा भारत पर शासन करे। भारतीय कार्यों म फँसकर रहने के लिए बाध्य हो जाने से वह जानबूझकर दूर रहा। उसका उद्देश्य सतलज नदी तक पजाब को अधीन करके केवल यह निश्चित कर लेना था कि उसको अपनी विशाल सेना तथा अपने दरिद्र देश के प्रशासन के पर्याप्त व्यय के निमित्त सतत आय प्राप्त हो जाया करेगी। यदि नजीबखाँ, मलिका जमानी तथा अन्य मराठा विरोधी व्यक्तियो ने शत्रुवत कार्य न किया होता, तो सम्भव था कि मराठो तथा अफगानों के शाह के बीच में उपस्थित विषयों का सरलता से निपटारा हो जाता। जब कभी भी इस प्रकार के समझौते की आशा होती, नजीबखाँ जानबूझकर मार्ग मे आ जाता तथा मराठो के साथ सन्धि होने म रोडे अटका देता।

अटक से बगाल की खाडी तक विस्तीर्ण समतल तथा विशाल भूमि-क्षेत्र है जिसमे कोई प्राकृतिक बाधाएँ नही हैं। इस भूमि में सैकडो नदियाँ अवश्य हैं परन्तु शुष्क ऋतुओं म इन पर सुविधापूर्वक पुल बनाये जा सकते हैं। अत यदि अटक या लाहौर पर शत्रु को रोकने का कोई विशेष प्रबन्ध न हो तो सिन्धु की घाटी स बाहर का कोई भी विजेता समस्त उत्तर भारतीय प्रदेश पर सुविधापूर्वक धावा कर सकता है। सिकन्दर महान् के समय से ऐसे अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत हैं। इस विषय में उचित व्यवस्था स्थापित करने म वजीर तथा मराठे असफल रहे। रघुनाथराव अक्टूबर १७५६ ई० म पूना स चला था। उसको दिल्ली समय पर पहुँच जाना चाहिए था जिससे वह

अध्याय १९

अब्दाली की विजयिनी प्रगति

[१७५९–१७६०]

१ रघुनाथराव दिल्ली मे। २ मराठे अटक मे।
३ नजीबखाँ के नियन्त्रण में असफलता। ४ दत्ताजी का शुक्रताल मे घिर जाना।
५ दत्ताजी का बरारी घाट पर मारा जाना।

१ रघुनाथराव दिल्ली मे—इसका वर्णन किया जा चुका है कि काबुल के शाह अब्दाली का यह इरादा कभी न था कि वह दिल्ली का राजमुकुट प्राप्त करे तथा भारत पर शासन करे। भारतीय कार्यों म फँसकर रुकने के लिए बाध्य हो जाने स वह जानबूझकर दूर रहा। उसका उद्देश्य सतलज नदी तक पंजाब को अधीन करके केवल यह निश्चित कर लेना था कि उसको अपनी विशाल सेना तथा अपने दरिद्र देश मे प्रशासन के पर्याप्त व्यय के निमित्त सतत आय प्राप्त हो जाया करेगी। यदि नजीबखाँ मलिका जमानी तथा अन्य मराठा विरोधी व्यक्तियो ने शत्रुवत काय न किया होता, तो सम्भव था कि मराठो तथा अफगानो के शाह के बीच मे उपस्थित विषयो का सरलता से निपटारा हो जाता। जब कभी भी इस प्रकार के समझौते की आशा होती, नजीबखाँ जानबूझकर माग म आ जाता तथा मराठो के साथ सन्धि होने म रोडे अटका देता।

अटक से बगाल की खाडी तक विस्तीर्ण समतल तथा विशाल भूमि-क्षेत्र है जिसमे कोई प्राकृतिक बाधाएँ नही हैं। इस भूमि में सैकडो नदियाँ अवश्य हैं परन्तु शुष्क ऋतुओ मे इन पर सुविधापूर्वक पुल बनाये जा सकते हैं। अत यदि अटक या लाहौर पर शत्रु को रोकने का कोई विशेष प्रबन्ध न हो, तो सिन्धु की घाटी से बाहर का कोई भी विजेता समस्त उत्तर भारतीय प्रदेश पर सुविधापूर्वक धावा कर सकता है। सिकन्दर महान् के समय म ऐसे अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत हैं। इस विषय में उचित व्यवस्था स्थापित करने म वजीर तथा मराठे असफल रहे। रघुनाथराव अक्टूबर १७५६ ई० म पूना से चला था। उसको दिल्ली समय पर पहुँच जाना चाहिए था जिसमे वह

अब्दाली का सामना करके उसको वापस लौटने पर विवश कर देता। परन्तु उसने मन्दगति से प्रयाण किया और चूंकि उसमें अपने ही निर्णय को बलपूर्वक कार्यान्वित करने की क्षमता न थी अत वह इन्दौर में १४ जनवरी, १७५७ ई० को तब पहुँचा जबकि अब्दाली ने मथुरा के विरुद्ध अपनी टोलियाँ भेज दी थीं। इस बीच रघुनाथराव तथा मल्हारराव ने अपने को राजपूताना से बलपूर्वक कर प्राप्त करने में व्यस्त रखा। इस प्रकार उनकी दुर्भावना प्राप्त करते हुए मई में वे आगरा पहुँचे जहाँ पर गाजीउद्दीन ने उनका हार्दिक स्वागत किया। अब्दाली की अनुपस्थिति में नजीबखाँ को मराठा प्रतिरोध का प्रचण्ड भय था। इसलिए उसने अधीनता स्वीकार करते हुए निम्नलिखित शर्तों के आशय का एक पत्र मल्हारराव को लिखा

१ मैं आपका पुत्र हूँ तथा आपके द्वारा दण्ड का पात्र नहीं हूँ। अगर आप चाहें तो मैं दिल्ली को आपके अधिकार में देकर यमुना पार जाने के लिए तैयार हूँ।

२ यदि आपकी सहमति हो, तो मैं आपके तथा शाह अब्दाली के बीच में स्थायी समझौता करा के आप दोनों के प्रभाव क्षेत्रों की सीमा निश्चित करा दूँ।

३ मैं अपने पुत्र जबतखाँ को सात हजार शस्त्रधारी अनुयायियों सहित आपके शिविर में रखने को भी तैयार हूँ। ये मेरे द्वारा अंगीकृत कार्य के उचित पालन के लिए प्रतिभू के रूप में मेरे शरीर बन्धक होंगे।

४ यदि तब भी आप मेरे विरुद्ध युद्ध पर उतारू हैं तो ईश्वर तथा उसके निर्णय में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए मैं चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।[1]

---

[1] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २ पृ० ७७। सर जदुनाथ सरकार द्वारा अनूदित नूरुद्दीन हुसन कृत नजीबुद्दौला की जीवनी भी देखो (मराठी अनुवाद 'ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार' नं० ४४७)। डा० श्रीवास्तव 'शुजाउद्दौला' (खण्ड १) की जीवनी में लिखते हैं (पृ० ३० तथा ४३)— 'औरंगजेब के चिरविस्मृत समय को पुनरुज्जीवित करने के निश्चय से वाराणसी के काजी ने धर्मान्ध मुसलमानों के एक दल को एकत्र किया तथा विश्वेश्वर के उद्धरित मन्दिर को २ सितम्बर १७५५ ई० को नष्ट कर दिया। यह आलमगीरी मस्जिद के एक कोने में बना हुआ था। इस पर पेशवा ने शुजा से इस तीर्थस्थान को मराठों को दे देने के लिए कहा। उसने उस आशय की एक सनद तैयार की तथा इस सनद को मराठा प्रतिनिधि गोपालराव गणेश को दे दिया परन्तु रघुनाथराव ने शुजा के साथ सन्धि प्रस्ताव को बन्द कर दिया। (पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २१ पृ० १२४, जिल्द २७, पृ० १६४)

यह युक्तियुक्त प्रस्ताव था तथा नजीबखाँ को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए था। परन्तु उसने अपने को सम्राट के प्रति इतना घृणास्पद बना दिया था कि वह गाजीउद्दीन को उससे अच्छा समझता था। मराठों ने दोआब में प्रवेश किया तथा शीघ्र ही सहारनपुर तक समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। स्वयं दिल्ली को १५ दिनों के संघर्ष के बाद अगस्त में उन्होंने सरलतापूर्वक हस्तगत कर लिया। विट्ठल शिवदेव ने नजीबखाँ को उसके समस्त मित्रों तथा अनुचरों सहित पकड़ लिया। इस कार्य के लिए सम्राट ने उसको वस्त्र तथा आभूषण पुरस्कार में दिये, उमदतुल्मुल्क की उपाधि से विभूषित किया तथा नासिक के समीप जागीर प्रदान की जिस पर उसके परिवार का इस समय तक अधिकार रहा।

नजीबखाँ के चरित्र को प्रत्येक मराठा तथा उत्तर भारत का प्रत्येक मुसलमान अच्छी तरह जानता था। वह सदैव मराठों के प्रति अपकार का मुख्य कारण रहा था, तथा उसी वर्ष के आरम्भ में उसने उन अत्याचारों में भाग लिया था जो मथुरा, आगरा तथा अन्य स्थानों के हिन्दुओं पर किये गये थे। उसने हिन्दू मन्दिरों के भयानक अपवित्रीकरण में भी भाग लिया था। अतः यह अत्यन्त आवश्यक था कि उसको स्थायी रूप में कैद में रखा जाय और वह भी अपेक्षाकृत सुदूर दक्षिणी गढ़ में, जिस प्रकार बाबासाहब सतारा में बन्द था। दिल्ली तथा उत्तर भारत के प्रत्येक मराठा ने रघुनाथराव को यही परामर्श दिया। परन्तु नजीबखाँ ने किसी प्रकार मल्हारराव की मित्रता प्राप्त कर ली। उसने उसके प्रति करुणाजनक प्रार्थनाएँ कीं और प्रतिज्ञा की कि यदि मृत्यु या अपमान से उसकी रक्षा कर ली गयी तो वह अपने समस्त उत्साह से मराठा हित की सेवा करेगा। मल्हारराव को उस पर दया आ गयी। सियार उल मुतख्खरीन का लेखक कहता है—'होल्कर को नजीबखाँ की ओर से भारी रिश्वत प्राप्त हुई तथा उसने रघुनाथराव से प्रार्थना की कि खान को मुक्त कर दिया जाय तथा उसकी सेवाओं का उपयोग किया जाय जिससे दिल्ली तथा उसके चारों ओर के प्रदेश पर मराठों का अधिकार पुष्ट हो जाये और उसके तथा निचले दोआब के पठानों के सहयोग से वाराणसी तथा पूर्वी प्रदेशों पर भी मराठों का अधिकार हो जाय।' यह आशा वास्तव में विमोहक थी। रघुनाथराव इसका प्रतिरोध न कर सका तथा उसने होल्कर की प्रार्थना को स्वीकार कर नजीबखाँ को बिना किसी हानि के अपने घर जाने दिया। नजीबखाँ ने प्रतिज्ञा की थी कि वह दिल्ली के विषय में फिर कभी हस्तक्षेप न करेगा तथा दोआब में अपने समस्त गढ़ों को मराठों के प्रति समर्पित कर देगा,

जो साँप की पूछ पर पैर पड जाने के समान था। ६ सितम्बर को नजीबखाँ अपने पैतृक राज्य की ओर चल दिया।

नजीबखाँ के चले जाने के बाद रघुनाथराव ने सम्राट को विधिपूर्वक गद्दी पर प्रतिष्ठापित कर दिया गाजीउद्दीन को वजीर के पद पर स्थिर कर दिया तथा अहमदखाँ बगश को मीरबख्शी नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात उसने दोआब पर अधिकार करने के लिए अपनी टोलियाँ भेज दी तथा स्वय गढमुक्तेश्वर की ओर चल दिया। ऊपर से ऐसा मालूम हुआ कि नजीबखाँ द्वारा समर्पित प्रदेश की शासन व्यवस्था के लिए वह उधर जा रहा है पर तु वास्तव म वह गगा स्नान करने तथा अनेक पवित्र स्थानो के दर्शन के उद्देश्य से रवाना हुआ था। इन स्थानो से रामायण तथा महाभारत के प्राचीनकाल का स्मरण होता है। रेनको अनाजी तथा अय मराठा सरदारो ने नजीब के प्रतिनिधि कुतुबशाह को भगाकर सहारनपुर पर अधिकार कर लिया तथा हिमालय के नीचे तक बढते चले गये। उ होने नजीबखाँ को गगा पार उसके मूल देश म भगा दिया। रघुनाथराव ने इन कार्यों के विषय मे उत्साहजनक वृत्तात पेशवा को भेजे। उसने सगव कहा कि सतलज से वाराणसी के समीप तक समस्त उत्तर भारत पर मराठा प्रभुत्व स्थापित हो गया है तथा अब उसका इरादा शीघ्र ही पजाब को अब्दाली के अधिकार से मुक्त कर लेने का है। उत्तर के अनेक विवेकशील मराठा कार्यकर्ताओ ने इस प्रब ध की निर्बलता को रघुनाथराव के सामने उपस्थित किया, पर तु उस पर होल्कर का इतना प्रभाव था कि उनकी ओर रघुनाथराव ने कोई ध्यान न दिया। अताजी मानकेश्वर हिंगन-ब धु गोवि दप त बु देले, गोपालराव बर्वे तथा उनके समान अय व्यक्ति यूनाधिक भ्रष्ट थे। वे स्वार्थी लोभवृत्ति तथा व्यक्तिगत कलह को तृप्त करने के लिए दूषित सौदे कर लेते थे। दिल्ली के कार्यों को व्यवस्थित करने म चार मास व्यतीत करने के बाद रघुनाथराव दशहरा के दिन २२ अक्टूबर को मल्हारराव को अपने साथ लेकर पजाब को चल पडा। अताजी मानकेश्वर तथा कृष्ण राव काले दिल्ली म ही ठहर गये। रघुनाथराव तथा मल्हारराव जनवरी म कुजपुरा पहुँचे। फरवरी १७५८ ई० म वहाँ के नायक नजाबतखाँ को अपने अधीन कर व ८ मार्च को सरहि द पहुँच गये।

२ मराठे अटक में—यहाँ पर मराठे प्रथम बार सिक्खो के सम्पर्क म आये। वे सीमा पार प्रदेश के पठानो के घोर शत्रु थे तथा उनकी महत्त्वाकाक्षा अपनी मातृभूमि पजाब म अपना स्वत त्र राज्य स्थापित करने की थी। १७५५ ६५ ई० तक के दस वर्षों म सिक्खो के तीन शक्तिशाली नेता प्रकट हुए—जस्सासिंह अहलूवालिया (वर्तमान कपूरथला राज्य का सस्थापक),

आलासिंह जाट (मराठा पत्रों में उल्लिखित आला जाट व पटियाला का संस्थापक), तथा जसासिंह रामगडिया। इन सबने सफलतापूर्वक अहमदशाह अब्दाली का प्रतिरोध किया क्योंकि उनमें उन्हें मराठों की अपेक्षा अधिक घृणा थी। १७५७ ई० में अहमदशाह ने मथुरा के हिंदू मंदिरों को भूमिसात करने के बाद पंजाब के मार्ग से वापस जाते हुए अमृतसर में सिक्खों के प्रसिद्ध स्वर्ण मन्दिर को ध्वस्त कर दिया तथा उसके सामने की पवित्र झील को मिट्टी से पाट दिया। परन्तु जैसे ही अफगान शाह ने अपनी पीठ फेरी सिक्खों ने मंदिर का पुन निर्माण कर लिया तथा झील को भी ठीक कर दिया जिसे हम आज भी देखते हैं। अब्दाली ने अपने पुत्र तैमूरशाह तथा सेनापति जहानखाँ को लाहौर में पंजाब पर शासन करने के लिए नियुक्त कर दिया था। उनके पास अति विशाल अधिकार रखने वाली सेना भी थी। सरहिन्द में रघुनाथराव ने इस प्रश्न पर विचार किया कि वह लाहौर की ओर बढ़े या वहीं से लौट जाय अथवा पंजाब का अधान करने की चिन्ता छोड़ दे जिस पर सिक्खों का पठानों के साथ संघर्ष हो रहा था। परन्तु सम्राट तथा गाजीउद्दीन की प्रबल इच्छा थी कि पंजाब को पुन प्राप्त किया जाय, तथा सतलज और व्यास नदी के बीच में जालन्धर दोआब का मुगल सूबेदार अदीनाबेग सिक्खों की सहायता से पठानों के विरुद्ध पहले से ही अविराम युद्ध कर रहा था। उसने रघुनाथराव को इस योजना में प्रोत्साहन दिया। यह योजना बहुत अंश में उन्मत्त साहस प्रतीत होती थी, विशेषत इसलिए कि मराठे अपनी संचार-पंक्ति को लम्बा करते जा रहे थे जबकि उनका आधार स्थान पूना था और सिन्धु तक विस्तृत इस प्रदेश पर शासन करने के लिए उनके पास कोई साधन न थे। यह बात सम्भव हो सकती थी यदि दिल्ली में मराठों की स्थिति मलिका जमानी तथा नजीबखाँ सदृश शत्रुओं के होते हुए भी सुरक्षित होती।

नादिरशाह के आक्रमण काल में पंजाब विभिन्न शक्तियों के बीच में सतत संघर्ष की भूमि बन गया था, तथा लूट और विनाश का इतना अभ्यस्त हो गया था कि वहाँ के निवासियों में एक प्रकार की उदासीन मनोवृत्ति घर कर गयी थी और वे अवश्यम्भावी को भी अंगीकार कर लेते थे। रघुनाथराव ने सरहिन्द को घेर लिया। इसकी रक्षार्थ अब्दुस्समदखाँ के नेतृत्व में १० हजार पठान सैनिक दुर्ग में नियुक्त थे। खान घायल हो गया तथा उसने मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली। जिस प्रकार उसने पहले अब्दाली की सेवा की थी उसी प्रकार अब वह मराठों की सेवा करने को सहमत हो गया। सरहिन्द के इस युद्ध में आलासिंह जाट ने पठानों का निराकरण करने के लिए मराठों का साथ दिया था। इस समय तैमूरशाह तथा जहानखाँ का लाहौर

म अदीनावग ने नग कर रखा था। यह समाचार सुनकर कि सरहिन्द पर अधिकार करने के बाद मराठे अपने दल-बल सहित अब उसके विरुद्ध प्रयाण कर रहे हैं उन दोना अफगान सरदारो ने लाहौर को खाली कर दिया तथा अपने देश को भाग गये। जो कुछ भी बन सका उतना धन तथा सामान वे अपने साथ ले गये। मराठा ने वेगपूर्वक उनका पीछा किया फलस्वरूप उनको अपना बहुत सा सामान तथा सज्जा चिनाव नदी पर छोड देना पडा क्योंकि व सकुशल उसको अपने साथ नही ले जा सकते थ। मराठा न इस सामान को आसानी स प्राप्त कर लिया तथा भागते हुए पठानो का पीछा छोडकर व लाहौर को वापस आ गये।[2] रघुनाथराव ११ अप्रल को लाहौर वापस आ गया। अदीनाबग तथा अ य व्यक्तियो ने शालामार क मुगल भवन म राजा की भांति उसका स्वागत तथा सत्कार किया। यह मराठा का बहुधा शक सवत् क अनुसार नव वर्ष दिवस था।

उन दिनो प्रशासनीय कार्यों के लिए सतलज तथा अटक क बीच का प्रदेश तीन विभागो म विभक्त था—दक्षिणी मध्य तथा उत्तरी जिनकी राजधानियाँ क्रमश मुलतान लाहौर तथा श्रीनगर थी। जब रघुनाथराव का उसके दल बल सहित लाहौर म इस प्रकार उत्साहपूर्वक स्वागत हुआ और शाहजादा तैमूरशाह तथा जहानखाँ को परास्त होकर वापस लौटना पडा तो अब्दाली उस देश को पुन प्राप्त करने म प्राय निराश हो गया—विशेषकर इस कारण कि सिक्ख उसके कट्टरतम शत्रु थ। भावी घटनाओं क आधार पर मराठा क प्रगल्भ साहस क रूप म इसका उल्लेख किया जा सकता है कि इस विजय

की ओर से अब्दाली के विरुद्ध सीमा की रक्षा का काय अगीकार करके स्वा भाविक द्विमुखी वृत्ति से अपने को प्रस्तुत किया। पूना से पेशवा ने अ दुरहमान को शीघ्रता से लाहौर भेज दिया, तथा रघुनाथराव को आदेश भेजे कि वह उसका उस योजना मे सदुपयोग कर जिसको वह उस समय कार्यान्वित कर रहा था। अत रघुनाथराव ने सिन्धु पार पशावर के प्रदश का इन दो मुसल-मान कायकर्ताओ—अब्दुरहमान तथा अब्दुस्समदखाँ—के सुपुद कर दिया। उसने उनको पेशावर म नियुक्त कर दिया और उनके अधीन सना भी रख दी। उन्ह काबुल और कन्धार के उन प्रदशो पर अधिकार करन को कहा गया जो पहल मुगल साम्राज्य के भारतीय क्षेत्र के अग थ और मुहम्मदशाह के समय म हाथ स निकल गय थ। इसका अथ था अहमदशाह अब्दाली का सवनाश तथा लोप, जो सर्वोपरि सूत्रवृक्ष का योग्य व्यक्ति था। इस विषय म वह नादिरशाह क समान या उसस भी अधिक योग्य था। यही गुप्त भय था जिनका न कोई अनुमान कर सकता था न पूव दशन। मानुषिक कार्यो म व्यक्तिगत तत्त्व की सदव प्रधानता रहती है और उसका पूव निश्चय कभी नही किया जा सकता है।

तुकोजी होल्कर सबाजी सिधिया, रेनको अनाजी रायजी सुखदव गोपालराव बर्वे तथा अन्य सरदारो को दत्ताजी सिधिया द्वारा वहाँ पहुँचकर कोई स्थायी प्रबन्ध कर दने क समय तक पजाब पर अधिकार बनाय रखन के लिए कहा गया। दत्ताजी उस समय पूना म था तथा आशा थी कि वह शीघ्र ही पजाब पहुच जायगा। स्पष्ट है कि इस शृखला की निबलतम कडी उत्तर पश्चिम भारत के सिन्धु-पार के द्वार पेशावर की रक्षा थी, तथा उस पर अपना अधिकार रखन क लिए अब्दुस्समदखाँ के साथ कोई शक्तिशाली प्रतिष्ठित मराठा नेता न था। पेशवा ने स्पष्ट आज्ञा दी थी कि होल्कर को लाहौर म रखा जाये। चूकि आशा थी कि दत्ताजी शीघ्र ही आ जायेगा, रघुनाथराव तथा होल्कर को यह विश्वास था कि यह सामयिक प्रब ध कुछ महीनो तक बिना विघ्न बाधा के चल जायगा। पर तु अब्दाली को समस्त भारतीय विवरणो का पूण परिचय था अत उसन इसी निबल स्थान पर प्रहार किया नजीबखाँ का उपयोग किया तथा दत्ताजी का बध कर दिया। इन घटनाओ को हम दैविक कहकर उपेक्षा नही कर सकत, बल्कि इनका उत्तरदायित्व सीधा होल्कर पर है।[३]

रघुनाथराव तथा होल्कर मई १७५८ इ० क अन्त म दक्षिण के लिए चल दिय। माग म ५ जून को कुरुक्षेत्र नामक स्थान पर उन्होने अपन धार्मिक कृत्य

[३] फाल्के सीरीज ग्वालियर ३—६२, ३७६ तथा ११२।

किये। अब्दुर्रहमान, अब्दुस्समद, तुकोजी होल्कर तथा सबाजी सिंधिया का दूसरा दल सीमा प्रदेश को प्रस्थान कर गया तथा जुलाई के समीप उसने अटक पर मराठा ध्वज को फहरा दिया और उस अति सुदूरस्थ उत्तर पश्चिमी प्रदेश में अपना राजस्व प्रशासन स्थापित कर लिया। अदीनाबेग ने पंजाब के नव विजित क्षेत्रों से आय के रूप में ७५ लाख रुपये मराठों को देने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। राजस्व का प्रबन्ध साबिकबेग तथा उसके हिन्दू कार्याध्यक्ष लक्ष्मीनारायण के सुपुर्द किया गया। रघुनाथराव तथा उसके दल के इस अभिमान-योग्य कृत्य पर कि वे भारत की अंतिम सीमा पर पहुँच गये हैं तथा अपने घोड़ों को उन्होंने सिंधु में स्नान कराया है[४] समस्त महाराष्ट्र में हर्ष की लहर दौड़ गयी यद्यपि इन सुदूर प्रदेशों पर मराठा अधिकार शायद ६ मास से अधिक न रह सका। सन्निकट विपत्ति का प्रथम सूचक १६ सितम्बर, १७५८ ई० को अदीनाबेग का देहावसान था। बाद में १७५९ ई० की ग्रीष्म ऋतु में अब्दाली अपने आंतरिक कष्टों से भी मुक्त हो गया। उसने अगस्त में पेशावर पर अधिकार कर लिया तथा उसके कुछ ही दिनों बाद उसने पंजाब में प्रयाण कर दिया। परन्तु १७५९ ई० की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम रघुनाथराव तथा उसके दल की प्रति-यात्रा की कहानी को समाप्त कर दें जो यह मिथ्या आशा लेकर लौटे थे कि सीमा पर सब कुशल है।

३ नजीबखाँ के नियन्त्रण में असफलता—मराठा हित के समस्त शुभ चिंतकों ने रघुनाथराव को साग्रह प्रार्थनाएँ भेजीं कि वह शीघ्र ही दक्षिण को वापस जाने का विचार न करे, और दिल्ली में या उसके समीप अपना अड्डा जमाये ताकि उसके द्वारा किये गये प्रबन्ध को स्थिरता प्रदान हो सके, हानिकर्ताओं पर नियन्त्रण रखा जा सके तथा इस प्रकार के व्यक्तियों में विश्वास उत्पन्न किया जा सके जो दोआब के पठानों की भाँति अस्थिर थे। वास्तव में रघुनाथराव को विभिन्न दिशाओं से अनेक याचनाएँ प्राप्त हुईं

---

[४] पेशवा दफ्तर संग्रह (जिल्द २७ पृ० २१८) के आधार पर सर जदुनाथ सरकार का अपने ग्रन्थ 'फॉल ऑव द मुग़ल एम्पायर' (भाग २ पृ० ७६) पर यह असत्य प्रतिपादन है कि मराठे कभी चिनाब नदी के पार नहीं गये। परन्तु चन्द्रचूड़ (खण्ड १ पृ० ६६) तथा उस ग्रन्थ का एक अन्य भाग (दो महत्त्वपूर्ण पत्र) जिसका मुद्रण नं० ६ में हाँगर द्वारा ग्वालियर में बाद में हुआ है स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि मराठों ने अटक पर अधिकार करके कुछ समय तक वहाँ कर संग्रह भी किया था तथा टट सिन्धु तक उन्होंने इस दिशा पर प्रत्यागमन भी किया था। अन्य सारांश तथा अन्य स्रोत इस निर्णय का समर्थन करते हैं।

जिनम उसस वहाँ उस समय तक ठहरे रहने की प्राथना की गयी थी जब तक कि दत्ताजी सिंधिया या कोई अन्य उत्तरदायी नेता घटना स्थल पर न पहुँच जाय। परन्तु रघुनाथराव मल्हारराव होल्कर के हाथ का खिलाना था जिसको दुष्ट नजीबखाँ के झूठे आश्वासना स धोखा हो गया था। इस बीच नजीबखाँ अफगान शाह से भारत आने तथा मराठा आक्रमण से मुस्लिम हित की रक्षा करने के सक्रिय षडयन्त्र कर रहा था। नजीबखाँ की इस द्विमुखी वृत्ति का प्रत्यक्ष वृत्तान्त कई उत्तरदायी कार्यकर्ताओं ने रघुनाथराव के पास भेज दिया था, परन्तु इस प्रकार के किसी सुझाव की ओर उसने ध्यान न दिया तथा करनाल से सीधे अपने घर की ओर शीघ्रता स प्रस्थान कर दिया। माग म स्थित दिल्ली को भी वह नहीं गया।[५] वापस लौटने के पहले उसको कम से कम इन विरोध-वचना की सूचना पेशवा को तो दे ही देनी चाहिए थी।

चूँकि मल्हारराव का इच्छा थी कि राजपूता स कर सग्रह किया जाय, अत दोना ने राजस्थान होकर मालवा म अलग अलग प्रमाण किया। माग मे वे पहले जनकोजी सिंधिया स मिले और बाद म दत्ताजी से। ये दोनों उत्तर को जा रहे थे यद्यपि दक्षिण स य साथ साथ न चले थे। जनकोजी पूना से फरवरी १७५८ ई० म चला था, और दत्ताजी मई म, जबकि भागीरथीबाई स वह माच म ही अपना विवाह कर चुका था। जनकोजी माच मे उज्जन पहुँच गया और वहाँ पर दो मास व्यतीत कर वह कोटा की ओर बढा जहाँ जुलाई म वह रघुनाथराव से मिला जो घर वापस हो रहा था। इस अवसर पर दिल्ली की साधारण परिस्थिति तथा पजाब के महत्त्व पूर्ण विषयों पर उन्होने पूर्ण परामश किया। रघुनाथराव ने जनकोजी के हृदय पर यह बलपूर्वक अंकित कर दिया कि मल्हारराव नजीबखाँ के विरुद्ध प्रत्येक काय म विघ्न डाल रहा है, तथा नजीबखाँ का समय पर नियन्त्रण कर लेना तथा उसको अपकार करने स रोक देना अत्यन्त आवश्यक है। जनकोजी से यह आशा करना कि वह उस काय को कर लेगा जो वह स्वय स्वामी के रूप म भी न कर सका था, कितनी मूर्खता की बात थी। रघुनाथराव ने जनकोजी से यह प्राथना की—"यह एक कृपा तो आप अवश्य मुझ पर

---

[५] बहुत-से पत्रों म इस दुखित कहानी का वणन है। विद्यार्थी को इसका अध्ययन सावधानी से करना चाहिए। (पेशवा दफ्तर सग्रह, जिल्द २ पृ० ८८ ८६ जिल्द २१ पृ० १५६ १५६, जिल्द २७, पृ० १५०, १५६ २२६ २२६) भाऊसाहेब बखर' सर्वथा सुस्पष्ट है तथा उसम विश्वस्त सूत्रों स तथ्य लिये गए हैं।

करें—आप इस नजीबखां पर अंतिम रूप से निग्रह प्राप्त कर लें, चाहे इस कार्य में एक करोड़ रुपये या विशाल सेनाएँ ही क्यों न जुटानी पड़ें। मल्हारराव नजीब को अपना दत्तक पुत्र मानता है। उसको इस प्रकार के अनेक पुत्रों की चिंता है। नजीब घोर दुष्ट है तथा वह निश्चय ही मराठों की आशाओं का नाश कर देगा।

कुछ दिनों बाद मल्हारराव की वापसी पर जनकोजी उससे मिला। यद्यपि वह स्वयं उससे मिलना नहीं चाहता था क्योंकि उसको नागोर तथा जयप्पा की हत्या का अनुभव था, परंतु गंगोबा तात्या ने उनको परस्पर मिला दिया। लेकिन इन सबके बावजूद नजीबखां का दमन न किया जा सका और अंत में वह अपकार करने में असफल हुआ जिसको अंत में मराठों को सहन करना पड़ा।[१] दत्ताजी जून में उज्जैन पहुँचा तथा कुछ समय पश्चात रघुनाथराव तथा मल्हारराव से मिला जो उत्तर में वापस हो रहे थे। उनमें भी उसी प्रकार का वार्तालाप हुआ जैसा जनकोजी के साथ हुआ था।

रघुनाथराव १६ सितम्बर को पूना पहुँच गया। उत्तर में जो कुछ करने में वह समर्थ हुआ था उसका पूरा विवरण उसने अपने ढंग से पेशवा को कह दिया। इसमें विशेष रूप से इस बात का उल्लेख था कि मल्हारराव के हस्तक्षेप के कारण नजीबखां अब तक स्वतंत्र है। पेशवा को गुप्त संकट का तुरंत भान हो गया तथा उसने व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण हेतु मल्हारराव को पूना बुलाया। दुर्भाग्यवश उस समय अक्टूबर तथा नवम्बर के मास में मल्हारराव इन्दौर में बीमार पड़ा था। उसने गंगाधर यशवंत को स्पष्टीकरण के लिए पूना भेजा तथा स्वयं दिसम्बर में आया। जनवरी में पेशवा ने मल्हारराव को तुरंत उत्तर जाकर सिंधिया परिवार की सहायता करने की आज्ञा दी। यह कार्य करने में मल्हारराव असफल रहा किन्तु उसकी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालना असम्भव है। उसने पूरा एक वर्ष प्रायः राजस्थान में ही व्यतीत कर दिया (१७५६ ई०) और इस वर्ष उसने कोई बड़ा काम न किया। राजस्थान से १३ जनवरी, १७६० ई० को वह सवेग दिल्ली की ओर चल पड़ा जबकि जयपुर में उसको यह मालूम हो गया था कि उस मास की १० तारीख को बरारी घाट पर दत्ताजी का वध हो गया है।

४ दत्ताजी का शुक्रताल में घिर जाना—अब हम यहाँ रघुनाथराव तथा मल्हारराव की गलतियों तथा संयोगवश पेशवा की गलतियों के कारण

---

[१] देखो पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द २ पृ० ६४ जिल्द २१, पृ० १६२, कोटा दफ्तर संग्रह जिल्द १ पृ० १८३ १६०। हमें उन कठोर शब्दों का ध्यान रखना है जिनका उपयोग मराठा लेखकों ने नजीबखां के वर्णन में किया है।

हुई दत्ताजी सिन्धिया की हत्या का वणन करेंग। नवम्बर १७५८ ई० म दत्ताजी तथा जनकोजी रेवाडी म परस्पर मिले तथा दिल्ली की परिस्थिति को सभालन हेतु आग वढे। उस समय तक उनको वहाँ की परिस्थिति को जानने का कोई अवसर न मिला था और न उनको होल्कर के आश्रित गाजीउद्दीन तथा नजीबखाँ के चरित्र से ही कोई विशेष परिचय था। इसका अथ यह था कि बिना किसी दूसरे की सहायता के उनको उन कत्तव्या का पालन करना था जो पहले ही निश्चित किय जा चुके थ—अर्थात नजीबखाँ का निरोध करना पजाब की रक्षा का प्रबन्ध करना हिन्दुओ के तीथ स्थानो को मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त करना तथा पेशवा की ऋण मुक्ति हेतु एक या दो करोड का धन-सग्रह करना। अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति हतु पूरब म पटना तक मराठा सत्ता का प्रसार आवश्यक था। ये ही काय थे जिन्ह पेशवा ने सिन्धिया परिवार को सौंपा था, तथा जिनको उन्होने परिस्थिति की भयानक अनानता म स्वीकार कर लिया था।

सिन्धिया परिवार जब दिल्ली पहुँचा, विट्ठल शिवदेव सहारनपुर के पास रुहेला द्वारा अधिकृत क्षेत्रा पर अधिकार करन म व्यस्त था। नजीवखा न एक बडा दल एकत्र कर लिया था और वह मराठा का खुला प्रतिरोध कर रहा था। सिन्धिया परिवार दिसम्बर म दिल्ली पहुँचा था। वहाँ पर मजबूर होकर उसने वडी दृढता से सम्राट तथा वजीर के कार्यों का सुव्यवस्थित किया जिसम उसके तीन मूल्यवान मास नष्ट हुए। शाहआलम द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध सम्राट का पुत्र एव उत्तराधिकारी अलीगौहर पिछले वष ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अधिकृत बिहार तथा बगाल के पूर्वी प्रदेशो पर अधिकार प्राप्त करने के निमित्त दिल्ली से रवाना हो चुका था। लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला के साथ उसन माच १७५९ ई० म पटना पर आक्रमण किया परन्तु कनल नाक्स के अधीन क्लाइव की सेना ने उसको पीछे हटा दिया।

दत्ताजी को किसी भी उपयोगी योजना को कार्यान्वित करने म गाजीउद्दीन सवथा अयोग्य मालूम हुआ अत दत्ताजी ने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया तथा स्वतन्त्र रूप से अपन कार्यों का प्रबन्ध किया। उसन अपनी सना को नजीवखा को बन्दी बना लेने के लिए भेजा परन्तु वह इसमे असफल रहा। अत उसने सवप्रथम पजाब के कार्यो का निपटारा करन के बाद ही नजीबखाँ के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से वह १ फरवरी १७५९ ई० को दिल्ली से सतलज की ओर रवाना हुआ जहाँ सादिकबेग तथा अदीनाबेग की विधवा और पुत्र उससे मिले। उनसे तथा अन्य परामशको से विचार विनिमय के बाद उसने सवाजी सिन्धिया को पजाब की रक्षाथ लाहौर

में नियुक्त कर दिया, क्योंकि गवाजी ने पन्त हा गिष्पुरपन्त दश का अपने अधीन किया हुआ था। पेशवा का सुझाव था कि तारोनार का पजाव का एकमात्र अधिकारी नियुक्त कर दिया जाय और दत्ताजी ने इस सुझाव को स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु तारानकर को इस विषय म कोई उत्साह न था और वह इस कतव्य को बिना पशवा की स्पष्ट लिखित आज्ञा क स्वीकार भी नहीं करना चाहता था। दत्ताजी को इसका स्पष्ट पता था कि लाहौर म प्रथम श्रेणी क मराठा सरदार की उपस्थिति आवश्यक है किन्तु उसने यह काम बाद म स्वय पशवा क लिए छोड़ दिया। दत्ताजी स्वय लाहौर म न ठहर सकता था क्योंकि उसको अन्य आवश्यक काय करने थे तथा वहाँ अब्दाली की ओर स उस समय किसी आक्रमण की भी कोई आशका न थी और सीमा पार सवत्र शान्ति थी।

यथाशक्ति उत्तम प्रबन्ध करने के बाद दत्ताजी पजाब स मई म वापस आ गया। यमुना पार करके १ जून को उसने दोआब म प्रवेश किया तथा नजीबखाँ को निरस्त करने म व्यस्त हो गया। दत्ताजी के साथ गोविन्दपन्त बुन्देले भी था जो स्थिर स्वभाव का शान्तिप्रिय व्यक्ति था। नजीबखाँ तथा अन्य रुहेला पठानों से उसका अपना सीधा निकट का व्यवहार था। अनेक सरदारों ने दत्ताजी को नजीबखाँ की उपेक्षा करके आगे बढ़ने का परामश दिया परन्तु यह बात न तो उचित थी और न सम्भव ही क्योंकि स्वतन्त्र नजीबखाँ उस समय का सबसे घातक शत्रु था। इस बीच म नजीबखाँ ने भी इस विषय मे दत्ताजी की आज्ञानुकूल प्रत्येक काय करने म अपनी तत्परता प्रकट की, यद्यपि उसके मन म विश्वासघात की योजनाएँ पनप रही थीं। गोविन्दपन्त की मध्यस्थता से उनके बीच म व्यक्तिगत सम्मिलन का प्रबन्ध किया गया, परन्तु यह सम्मिलन निष्फल सिद्ध हुआ। नजीबखाँ दत्ताजी के शिविर मे अकेला ही आया, परन्तु वार्तालाप प्रारम्भ होने के पहले ही उसके कुछ अनुचर जबरदस्ती अन्दर आकर उसको बलपूवक उठा ले गये। उनका कहना था कि उसका जीवन सकट म है। यह समस्त योजना पूवरचित थी या नहीं यह निश्चयपूवक नहीं कहा जा सकता। इसके बाद वार्तालाप दूतों द्वारा आरम्भ किया गया तथा नजीबखाँ दत्ताजी की सेनाओं को गगा पार करने के लिए एक नावों का पुल बनाने पर सहमत हो गया। इस समझौते के उपरान्त दोनों शुक्रताल की ओर बढ़े।[७] पुल निर्माण के लिए यह उपयुक्त स्थान था,

---

७ शुक्रताल गगा के पश्चिमी तट पर है। यह हरिद्वार के ४० मील दक्षिण म तथा मुजफ्फरनगर के रेलवे स्टेशन से १६ मील पूरब म है। नदी पार लगभग २० मील पूरब म स्वय नजीब का निवास नजीबाबाद है।

क्योंकि यहाँ पर नदी के मध्य म छोटे छोटे टापू थे तथा मिट्टी के तट पर्याप्त ऊँचे थे। दत्ताजी के लिए नजीबखा से मेल करन का प्रयास प्राणघातक सिद्ध हुआ। वह आसानी स आक्रमण करके पकडा जा सकता था, परतु घटनास्थल पर उपस्थित अनक अनुभवी व्यक्तियो के परामश पर दत्ताजी ने निश्चय किया कि मल्हारराव के सुझाव के अनुसार वह नजीबखा की सेवा का उपयोग करेगा। दत्ताजी के डेरे स बाहर निकलते हुए नजीबखा ने कहा था— 'इन मराठो की आखो म दुष्टता है उनका विश्वास नही किया जा सकता।' शुक्रताल तथा समीपवर्ती प्रदेश के जमीदार जतसिंह गूजर को पुल निर्माण का काय सौंपा गया क्योंकि वह इस काय म निपुण माना जाता था। नजीबखा तुरत शुक्रताल पहुँच गया, तथा दत्ताजी धीरे धीरे पीछे स आया ताकि पुल-निर्माण के लिए समय मिल जाय। परतु वर्षा ऋतु का आरम्भ हो गया नदी म बाढ आ गयी, तथा नजीबखा ने आग्रह किया कि पुल निर्माण का काय अब नही चल सकता। दत्ताजी ने गढमुक्तेश्वर पर गगा स्नान कर लिया था, अत आगे बढकर मीरापुर नामक स्थान पर उसन छावनी डाल दी। यह स्थान नदी के एक दीर्घकाय मोड पर नजीबखा के शिविर स दो मील दूर था।

घोर वर्षा के कारण सवत्र कीचड हो जाने से गति अशक्य हो गयी थी। नजीबखाँ ने इस परिस्थिति स उत्तम लाभ उठाया। वह परिस्थिति समीपवर्ती देश, वृष्टि-परिमाण ग्रामीण पथो तथा प्रमुख व्यक्तियो से पूणतया परिचित था, जबकि दत्ताजी इनसे सवथा अपरिचित था। नजीबखा ने शुजाउद्दौला, हाफिज रहमत तथा अन्य पठानो के पास अपने दूत भेजे और दूरस्थ अफगानिस्तान म अहमदशाह अब्दाली को शीघ्र भारत आने का निमन्त्रण दिया। दिल्ली तथा शुक्रताल की परिस्थिति तथा सिंधिया की स्थिति के समस्त विवरण भी उसने उसको भेज दिये। इस प्रकार उसने मराठो के विरुद्ध एक भयानक गुट का सगठन इस गुप्त रीति स कर लिया कि दत्ताजी शीघ्र आकुल हो उठा। नजीबखाँ ने शुजा को परामश दिया कि दत्ताजी को पूरब का माग दे देना आत्मघातक सिद्ध होगा क्योंकि ऐसा होने पर वह शीघ्र ही शुजा स अवध तथा इलाहाबाद के दोनो सूबे छीन लेगा। इसके विपरीत यदि वह इस विपत्ति मे उसकी सहायता करेगा तथा मुस्लिम सगठन का साथ देगा तो वजीर का पद प्राप्त करके वह मुगल-साम्राज्य के गौरव को पुन स्थापित कर सकेगा। परतु शुजा दत्ताजी की अपेक्षा नजीब को अधिक अच्छी तरह पहचानता था और उसकी बातो म लेशमात्र भी विश्वास नही करता था क्योंकि नजीब अपने विश्वासघात के लिए कुख्यात था। इसके अतिरिक्त उसके

शिया होने के कारण शुजा का उससे धार्मिक विरोध भी था क्योंकि वह स्वय सुन्नी था। इस सबके बावजूद शुजा का एकमात्र उद्देश्य वाराणसी तथा प्रयाग को किसी प्रकार भी मराठो के हाथो म जाने से रोकना था। यह एक भावुक विषय था परन्तु इन दो स्थानो के समपण का अथ था समस्त भारत म मुस्लिम गौरव का सवनाश। इस विचार से शुजा ने नजीबखा की सहायताथ एव स्वय अपनी स्थिति के रक्षाथ अपने दो गोसाइ सरदारो के साथ १० हजार सिपाहियो को शुक्रताल के सम्मुख गगा तट पर भेज दिया।

इस बीच म नजीबखाँ ने शुक्रताल पर अपनी स्थिति को इतना दृढ बना लिया था कि मराठे आसानी से उस पर आक्रमण नही कर सकते थे। उसने सेना एकत्र कर ली, तथा जब दो महीनो म पुल तयार हो गया दत्ताजी का कायसाधक होने के स्थान पर यह पुल नजीबखाँ के लिए अत्यन्त सुलभ माग बन गया। वह इसके द्वारा अपनी सामग्री प्राप्त करता तथा बाहर के पठानो के साथ अपना सम्पक स्थिर रखता। अगस्त के अन्त के पहले ही दत्ताजी को नजीब की चाल का स्पष्ट पता चल गया तथा इसको विफल करने के लिए उसने विरोधी उपाय आरम्भ कर दिये। १५ सितम्बर को दत्ताजी ने अकस्मात नजीबखाँ के शिविर पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वह असफल रहा। मराठा के कुछ व्यक्ति मारे गये और शेष सन्ध्या के समय वापस आ गये। इसके बाद लगभग दो महीना तक छुटपुट लडाइयाँ होती रही परन्तु भूमि म बडी-बडी दरारें होने के कारण दत्ताजी अपने शत्रु के निकट होकर युद्ध न कर सका किन्तु अपने शत्रु की योजनाओं का ज्ञान न होने पर भी वह अपने प्रयास म दत्तचित्त रहा। उसको कभी भी सन्देह न हुआ कि उत्तर-पश्चिम से काबुल का शाह अब्दाली उस पर अकस्मात आक्रमण करेगा। नजीबखाँ की सामग्री तथा सहायता को नदी पार से उस तक न पहुँचने देने के लिए दत्ताजी ने गोविन्दपत बुन्देले को १० हजार सेना सहित २१ अक्टूबर को हरिद्वार के रास्ते भेजा। पन्त सीधे नजीबाबाद की ओर गया। अपने माग के स्थानो को लूटता तथा जलाता हुआ वह आगे बढ़ा परन्तु हाफिज रहमत तथा डुण्डेखाँ ने उसको परास्त कर दिया। वे नजीबखाँ के आह्वान पर वहाँ शीघ्र पहुँच गये थे। गोविन्दपन्त पीछे हटने पर विवश हो गया। अनूपगिरि गोसाई ने भी पुर के माग म नदी को पार कर लिया तथा अक्टूबर के अन्त के समीप वह शुक्रताल म नजीबखाँ के पास पहुँच गया। दत्ताजी ने तुरन्त नजीबखाँ के शिविर पर घेरा डाल दिया। दत्ताजी के पास निपुण सेना थी तथा मस्त अनुचर थे अत यह अन्तिम डाल तक भयभीत न हुआ।

१७५६ ई० के आरम्भ म समाचार प्राप्त हुआ कि शाह अब्दाली अति

संकटग्रस्त है, परन्तु उसने शीघ्र ही अपनी स्थिति को सुधार लिया। वह मन में बड़ा क्षुब्ध हुआ जब उसने यह सुना कि मराठों ने उस पंजाब पर अधिकार कर लिया है जिसके लिए उसने गत वर्षों में घोर प्रयत्न किया था, उसका पुत्र तथा जहानखाँ घोर पराजय को सहन कर वापस आ गये हैं उनकी बहुमूल्य वस्तुएँ छीन ली गयी हैं, बहुत-से सिपाही मारे गये हैं, मराठों ने अपना झण्डा अटक पर लगा दिया है तथा उसके अपने चचेरे भाई अब्दुर्रहमान के रूप में मराठा समर्थन से पेशावर में उसका प्रतिद्वन्द्वी प्रकट हो गया है। शुक्रताल में दत्ताजी की स्थिति का पूर्ण समाचार प्राप्त कर अब्दाली ने तुरन्त अपनी सेना का संगठन किया तथा जहानखाँ को पर्याप्त सेना सहित जुलाई १७५९ ई० में लाहौर पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। ठीक उसी समय दत्ताजी नजीबखाँ से अपने लिये गंगा पर नावों का पुल बाँधने के लिए बातचीत कर रहा था। स्वयं शाह पेशावर में ठहर गया जहाँ से वह जहानखाँ की सहायता के लिए तैयार था। जहानखाँ पंजाब में प्रवेश कर चुका था। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है कि पेशवा ने पंजाब पर अधिकार रखने के लिए कोई स्थायी प्रबन्ध न किया था। सबाजी सिंधिया केवल अस्थायी रक्षक था। उसके पास केवल थोड़े से सैनिक थे जिनके द्वारा वह ३०० मील से भी अधिक विस्तृत प्रदेश की रक्षा कदापि नहीं कर सकता था। सीमा की चौकियों में बिखरी हुई मराठा टोलियाँ शीघ्र ही समाप्त कर दी गयीं तथा जहानखाँ अगस्त में लाहौर के सम्मुख प्रकट हो गया। महान वीरता तथा बल से सबाजी ने अपनी स्थिति की रक्षा की तथा जहानखाँ को पूर्णतः परास्त कर दिया। वह स्वयं काफी घायल हुआ तथा युद्ध में उसका पुत्र मारा गया। परास्त होकर जहानखाँ के पेशावर वापस आने पर शाह का क्रोध इस प्रकार भभक उठा कि उसने अपने समस्त दल सहित तुरन्त लाहौर पर आक्रमण कर दिया। सबाजी सिंधिया उसका सामना न कर सका। वह भयभीत होकर पीछे हट गया तथा ८ नवम्बर को शुक्रताल पर दत्ताजी के शिविर में पहुँच गया। उसने उसे पंजाब के हाथ से निकल जाने की दुःखपूर्ण कहानी के साथ साथ बताया कि लगभग एक हजार मराठे विभिन्न स्थानों में काट डाले गये हैं अधिकांश जीवित व्यक्तियों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया है तथा असहाय मराठे निर्दयी अफगानों से प्राणरक्षा के लिए इधर उधर भटक रहे हैं।

इस विपत्तिग्रस्त दशा में भी वीर दत्ताजी लेशमात्र भयभीत न हुआ। उसमें आश्चर्यजनक साहस था परन्तु दुर्भाग्यवश उसमें दूरदर्शिता तथा दक्षता का अभाव था। अतः तुरन्त दिल्ली वापस लौटकर विभिन्न स्थानों से सहायता प्राप्त करने की बजाय उसने अकेले ही अफगान शाह से युद्ध करने का निश्चय

किया। शाह तूफानी वेग से बढ़ रहा था। दत्ताजी शुक्रताल में अपने स्थान पर सवाजी सिंधिया के आगमन से एक मास बाद तक डटा रहा तथा प्रयत्न करता रहा कि नजीबखाँ आत्मसमर्पण कर दे* लेकिन यह कार्य असफल सिद्ध हुआ। नजीबखाँ निरंतर स्वतंत्रतापूर्वक गंगा पार से सामग्री तथा सैनिक प्राप्त करता रहा। अब्दाली के शीघ्र आगमन के समाचार से मुस्लिम प्रतिरोध को प्रोत्साहन प्राप्त हो गया। अब्दाली के आगमन का एक अन्य दुष्प्रभाव यह हुआ कि वजीर सर्वथा साहसहीन हो गया। उसको अपने जीवन के प्रति अत्यन्त भय हो गया तथा उसको संदेह हुआ कि सम्राट उसका पक्ष त्याग देगा तथा अफगान शाह के साथ हो जायगा। अतः निर्बुद्धि होकर उसने ३० नवम्बर १७५९ ई० को सम्राट आलमगीर द्वितीय, भूतपूर्व वजीर इंतिजामुद्दौला तथा चार अल्पवयस्क व्यक्तियों की हत्या कर दी। वह इस टोली को एक मुसलमान संत का दर्शन कराने के बहाने नगर के बाहर ले आया था। तत्पश्चात उसने एक अल्पवयस्क राजकुमार को गद्दी पर बैठा दिया और उसका नाम शाहजहाँ सानी रख दिया। जब अलीगौहर को बिहार में अपने पिता की हत्या का समाचार प्राप्त हुआ तो २२ दिसम्बर १७५९ ई० को उसने अपने को सम्राट घोषित कर दिया।

५. बरारी घाट के युद्ध में दत्ताजी का वध—इस जघन्य पाप का समाचार घटना के तीसरे दिन सरहिन्द में शाह को प्राप्त हुआ। उसने क्रोधोन्मत्त हो इस दुष्ट अत्याचारी को दण्ड देने के लिए तुरन्त दिल्ली की ओर प्रयाण कर दिया यद्यपि इस बार उसका इरादा सरहिन्द से आगे बढ़ने का न था। वास्तव में इस हत्याकाण्ड में मराठों का कोई हाथ न था पर चूंकि वे गाजीउद्दीन के सहायक थे अतः सम्राट की इस [illegible] हत्या के लिए वे ही उत्तरदायी माने गए। इस समय से पानीपत के युद्ध तक घटनाचक्र ने सर्वथा भिन्न रूप धारण कर लिया तथा इसके कारण क्रोध तथा प्रतिशोध की भावनाएँ उत्पन्न हो गयी।

[illegible] के इरादों का इस समय किसी को कुछ भी ज्ञान न था। [illegible] [illegible] के [illegible] देता हुआ राजस्थान में घूमता रहा। इस प्रकार परिस्थिति का [illegible] [illegible] निश्चय [illegible] उसने जघन्य अपराध किया। यह परिस्थिति [illegible] तथा गाजीउद्दीन ने उत्पन्न कर दी थी जिसका [illegible] आरम्भ हो [illegible] था।

[illegible] अब्दाली शाह [illegible] करता हुआ दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में

---

* [illegible] पृ० १६०।

दत्ताजी के समीप पहुँच गया, तो उसने विवश होकर नजीबखाँ के विरुद्ध अपने प्रयास को त्याग दिया। उसने शीघ्र ही अपने शिविर का विसर्जन कर दिया तथा ११ दिसम्बर को शुक्रताल से यमुना पार अब्दाली से युद्ध करने के लिए चल दिया। उसने यमुना को १८ दिसम्बर को पार किया। कुंजपुरा में पहुँचने पर उसको ज्ञात हुआ कि लगभग ४० हजार अफगानों सहित तैमूरशाह अम्बाला पहुँच गया है। उसका यह कार्य सर्वथा अविवेकपूर्ण था कि वह अकेला अब्दाली की समस्त सेना से युद्ध करने गया। परन्तु युद्ध से पीछे हटना दत्ताजी ने कभी नहीं जाना था। उसने तुरंत अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। २५ हजार सैनिकों की एक टुकड़ी का उसने स्वयं बढ़ते हुए शत्रु के विरुद्ध नेतृत्व किया। दूसरे दल को उसने गोविन्दपंत बुन्देले के अधीन दिल्ली को वापस भेज दिया। इसी दल के साथ भारी सामान तथा तोपखाना आदि था। २४ दिसम्बर को स्थानेश्वर के समीप उसने अफगानों का सामना किया और दो घण्टा तक उसने घोर युद्ध किया। इस युद्ध में किसी भी पक्ष को विजय प्राप्त न हुई। दत्ताजी के लगभग ४०० सिपाही मारे गये परंतु युद्ध-क्षेत्र पर उसका पूर्ण अधिकार रहा।

स्पष्ट है कि अब्दाली इस समय दत्ताजी से जमकर युद्ध नहीं करना चाहता था। वह रुहेलों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था जिससे वह सफलतापूर्वक शत्रु पर आक्रमण कर सके। अतः अब्दाली ने उसी रात को बुड़िया घाट[६] पर यमुना को पार किया तथा सहारनपुर की ओर बढ़ा जहाँ नजीबखाँ आकर उसके साथ हो गया। तदुपरान्त सम्मिलित सेनाएँ यमुना के पूर्वी तट पर दिल्ली की ओर चल पड़ी। दत्ताजी भी राजधानी की रक्षा के निमित्त तुरन्त पीछे को मुड़ गया, तथा नदी के दूसरे तट पर प्रयाण किया। दिसम्बर के अंत के समीप दिल्ली से लगभग १० मील उत्तर में दोनों विरोधी दल एक दूसरे के सम्मुख हो गये। उनके बीच में केवल यमुना नदी थी। अब्दाली लूनी में था, तथा दत्ताजी उस स्थान पर जिसको उस समय बरारी घाट कहते थे। गाजीउद्दीन इस समय सर्वथा भयग्रस्त हो गया था। दत्ताजी ने उसको रक्षा का पूर्ण आश्वासन दिया तथा समस्त उपायों द्वारा राजधानी की रक्षा का संगठन करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया।

दत्ताजी को उसके अनेक हितैषियों ने परामर्श दिया कि वह दिल्ली से हटकर होल्कर के साथ हो जाये तथा अधिक सहायता प्राप्त करने के बाद सफलता निश्चित हो जाने पर अब्दाली से युद्ध करे परन्तु उसने इस प्रकार

---

६ बुड़िया घाट लगभग १३० मील पर बरारी घाट के उत्तर में है।

के पराजय तुल्य माग का अनुसरण करने से इन्कार कर दिया। उसकी समझ मे दिल्ली छोडने का अर्थ अनेक वर्षों के परिश्रम तथा सफलता से हाथ धो बैठना था। वह सहायता आने तक अपनी तथा दिल्ली की रक्षा करने मे अपने को सवथा समर्थ समझता था। अत उसने विभिन्न स्थानो को सहायता के लिए साग्रह प्रार्थनाएँ भेज दी थी। प्रति क्षण मल्हारराव के आने की आशा की जाती थी किन्तु वह तुरन्त जयपुर से उत्तर की ओर क्यो नही गया—यह एक रहस्य है जिसकी व्याख्या केवल इस कल्पना के आधार पर की जा सकती है कि वह सिन्धिया के बलिदान से स्वय लाभ उठाना चाहता था। दत्ताजी के पास नारोशकर तथा बुन्देले के अलावा अपने ही श्रद्धालु अनुभवी वीर व्यक्ति थे। दत्ताजी को दिल्ली की रक्षा करने से अधिक उस अपार क्षति और उन पापमय कृत्यो को रोकने की अधिक चिन्ता थी जो उसके द्वारा दिल्ली छोड देने पर वहाँ अब्दाली द्वारा किये जाते।

६ जनवरी को दत्ताजी ने अपने समस्त शिविर अनुयायियो असैनिको तथा भारी सामान को रवाडी भेज दिया तथा अब्दाली के विरुद्ध युद्ध करने को तैयार हो गया। जब तक कि होल्कर वहाँ न आ जाये वह सवथा रक्षात्मक युद्ध करना चाहता था। साथ ही वह पूर्ण सतर्कता से नदी के घाटो की रक्षा करना चाहता था। इस समय उत्तर भारत मे जाडा अपने पूरे जोर पर था। दत्ताजी को आशा न थी कि सीधे दिल्ली पर या बरारी घाट के उसके शिविर पर आक्रमण होगा। इस स्थान पर नदी उथले पानी की दो धाराओ मे विभक्त थी। उनके बीच मे एक टापू सा था जिस पर लम्बा नरकुल उगा हुआ था जो मनुष्यो तथा घोडो को आसानी से छिपा सकता था। अब्दाली शुक्रवार १० जनवरी १७६० ई० की प्रभातवेला मे नजीबखाँ को इस स्थान पर नदी को पार करने के उद्देश्य से भेजा। रुहेले ऊँटो तथा छोटे छोटे हाथियो पर सवार थे। प्रत्येक पशु पर केवल दो हल्की तोपें थी और वे सब नरकुलो मे छिप गये। सबाजी सिन्धिया घाट की रक्षा कर रहा था। उसने अपने थोडे से सैनिको की सहायता से आक्रान्ताओ का प्रतिरोध किया तथा आक्रमण की सूचना पहले ही दत्ताजी को भेज दी। दत्ताजी बिना उनकी ठीक सख्या का या शत्रु की गुप्त तोपो का ज्ञान प्राप्त किये ही थोडे से सिपाहियो को लेकर घाट की रक्षार्थ आगे बढा। सिपाहियो के पास तलवारो के अलावा अन्य कोई आग्नेय अस्त्र न थे। नदी की सूखी धारा मे भयकर युद्ध आरम्भ हो गया। जनकोजी शीघ्र ही वहाँ मे आ गया तथा युद्ध मे सम्मिलित हो गया। परन्तु अकस्मात् एक गोला दत्ताजी के लगा और उसका देहान्त हो गया। एक गोला जनकोजी के भी लगा जिससे वह अचेत हो गया। मराठो की अधिक क्षति न

हुई थी, एक हजार से कम ही लोग युद्ध म काम आये। परन्तु दत्ताजी की मृत्यु से सर्वत्र शोक छा गया तथा मराठो का उत्साह ठण्डा पड गया। सेना तुरन्त तितर बितर हो गयी तथा प्रत्येक व्यक्ति सम्भव प्रकार से अपनी प्राण रक्षा हेतु भाग निकला। नजीबखाँ के तथाकथित गुरु कुतुबशाह न दत्ताजी का सिर काट लिया, तथा उसको अब्दाली शाह के सम्मुख उपस्थित किया। जनकोजी को उसके अनुयायी शीघ्र ही युद्धक्षेत्र से हटा ल गये और दक्षिण म कोटपुतली को भाग गये, जो जयपुर राज्य म अलवर के उत्तर पश्चिम मे लगभग २८ मील पर है। यहाँ पर मल्हारराव होल्कर १६ जनवरी को इन भगोडो स आकर मिल गया। इसके शीघ्र बाद ही नजीबखाँ ने दत्ताजी के शिविर पर धावा किया और वहा पर बचे खुचे माल को लूटकर ले गया। वह कुछ मुसलमान बन्दियो (सादिकबेग के बच्चे), लक्ष्मीनारायण (अदीनाबेग का प्रबन्धक) तथा कुछ अन्य व्यक्तियो को भी पकड ले गया जो किसी अन्य प्रकार स अपनी रक्षा न कर सकते थे। दत्ताजी के अनुयायियो न उसके सिर-हीन शव का दाह सस्कार कर दिया।

यह समाचार आग की लपटो की भाति सम्पूर्ण भारत म फैल गया। सबाजी सिंधिया जो बरारी घाट की रक्षा कर रहा था भागकर कोटपुतली के शिविर को चला गया। असहाय गाजीउद्दीन को जाट राजा के यहा शरण लेनी पडी। अब्दाली ने तुरन्त दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा याकूब अलीखा को वहा का शासक नियुक्त कर दिया। अब्दाली को अपनी विशाल सेना के व्यय के लिए धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। दिल्ली स उसको कुछ नही मिल सकता था क्योकि दो वर्ष पहले ही वह इसको पूर्णत लूट चुका था। नजीबखा भी उसको कुछ नहीं दे सकता था। उसने शाह स प्रार्थना की कि वह वहाँ कुछ दिन और ठहरा रहे अन्यथा मराठे पुन आ जायेंगे और उसका तुरन्त सर्वनाश कर देगे। उसकी प्रार्थना पर अब्दाली वहाँ ठहरा रहा और निरन्तर शुजाउद्दौला, सूरजमल जाट तथा जयपुर के राजा माधवसिंह स धन की माँग करता रहा, परन्तु उन सबने उसे कुछ भी धन देने म अपनी असमर्थता प्रकट की। जाट राजा न तो बहुत ही धृष्ट उत्तर दिया—'आप पहले मराठो को दिल्ली स निकालकर हमको आश्वासन दें कि आपका वहाँ पर पूर्ण अधिकार हो गया है और तब हम आपके आज्ञावश हो जायेंगे।' अब्दाली की इच्छा न थी कि वह भारत के सम्राट के रूप म वहा ठहरा रहे। उसका उत्तम हित अफगानिस्तान म ही था। दक्षिण म पेशवा दिल्ली की रक्षार्थ शक्तिशाली अभियान की तैयारी कर रहा था। अब्दाली शाह की इच्छा न थी कि वह इसमे फँस जाय। अलीगौहर ने अपने को पहले ही सम्राट्

थापित कर दिया था, तथा इलाहाबाद से दिल्ली पहुँचकर राजगद्दी पर अधिकार करने हेतु घटनाक्रम को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

कोटपुतली में दत्ताजी का क्रिया-कर्म करने के बाद मराठा दल चम्बल नदी पर स्थित सबलगढ़ को पीछे हट गया। यहाँ पर दत्ताजी की पत्नी भागीरथीबाई ने फरवरी मास में एक पुत्र को जन्म दिया। उनके बयस्क संरक्षक के रूप में मल्हारराव होल्कर ने उन सबको सान्त्वना दी। तब उन्होंने अपनी विगत स्थिति को पुनः प्राप्त करने के निमित्त उपाय आरम्भ किये। आक्रान्ता को मार भगाने के लिए उन्होंने गनीमीकावा का आश्रय लिया जिसमें होल्कर प्रवीण था। २४ जनवरी को अभियान आरम्भ हुआ। अब्दाली मराठों की प्रगतियों का निरन्तर अवलोकन कर रहा था। उसकी अपनी टोनियाँ दिल्ली के विरुद्ध किसी भी मराठा प्रगति को रोक देने हेतु आगे बढ़ चुकी थीं। कुछ समय तक वह दिल्ली में डटा रहा। फरवरी तथा मार्च में अफगान टोनियों तथा होल्कर की टोलियों के बीच में छुटपुट लड़ाइयाँ हुई। होल्कर को ४ मार्च को सिकन्दराबाद के समीप शाहदरा में घोर पराजय को सहन करना पड़ा। इन घटनाओं के पूर्ण वृत्तान्त शीघ्र ही पेशवा को पूना में पहुँच गये। एक स्वर में उससे माँग की गयी कि दुर्रानी शाह के विरुद्ध युद्ध का संचालन करने के लिए जब तक उत्तर में कुशल तोपखाना तथा कोई प्रमुख योग्य सेनानायक प्रकट न होगा यह असम्भव है कि आक्रान्ता का निराकरण हो सके तथा खोयी हुई स्थिति पुनः प्राप्त हो सके।

तिथिक्रम

अध्याय २०

१३ फरवरी, १७६०	दत्ताजी की मृत्यु का समाचार पूना पहुँचना।
७ १४ माच, १७६०	पटदुर में नेताजी का सम्मेलन इब्राहीमखां के तोप खाने सहित भाऊसाहब दिल्ली के अभियान का नेता नियुक्त।
१४ माच, १७६०	भाऊसाहब का पटदुर से प्रस्थान।
१२ अप्रल, १७६०	भाऊसाहब का नमदा के तट पर पहुँचना।
३१ मई, १७६०	भाऊसाहब का ग्वालियर पहुँचना।
२७ जून, १७६०	आगरा के समीप अनेक सरदारों का सूरजमल सहित भाऊसाहब से मिलना। अब्दाली का शिविर अलीगढ़ के समीप।
१३ जुलाई, १७६०	भाऊसाहब का गम्भीर नदी को पार करना।
१६ जुलाई, १७६०	भाऊसाहब का मथुरा पहुँचना।
१८ जुलाई, १७६०	शुजा अब्दाली के साथ भाऊसाहब के शिविर मे।
२ अगस्त, १७६०	दिल्ली पर अब्दाली का अधिकार।
अगस्त, १७६०	अब्दाली द्वारा अपने शिविर को यमुना पर दिल्ली के सम्मुख लगाना, शान्ति के निमित्त सन्धि प्रस्ताव।
अगस्त सितम्बर, १७६०	मराठा शिविर मे अन्न का पूण अभाव।
७ अक्टूबर, १७६०	भाऊसाहब का दिल्ली से कुंजपुरा को प्रस्थान।
१० अक्टूबर, १७६०	शाहआलम सम्राट घोषित।
१७ अक्टूबर, १७६०	कुंजपुरा पर अधिकार, कुतुबशाह का वध।
२५ अक्टूबर, १७६०	अब्दाली यमुना के दक्षिण तट पर।
२८ अक्टूबर, १७६०	अब्दाली का पडाव सोनपत मे।
३१ अक्टूबर, १७६०	भाऊसाहब की वापसी व पानीपत मे उसका शिविर।
४ नवम्बर, १७६०	दोनों दल पानीपत में सम्मुख।
१६ २२ नवम्बर, १७६०	छुटपुट लडाइयां।
७ दिसम्बर, १७६०	घोर युद्ध, बलवन्तराव मेहेनडले का वध।
१७ दिसम्बर, १७६०	आकस्मिक आक्रमण म गोविन्दपन्त बुन्दले का वध। अब्दाली की स्थिति काफी दृढ़।

अध्याय २०

पटदुर से पानीपत तक

[मार्च-दिसम्बर १७६०]

१ भाऊसाहब का दिल्ली को प्रस्थान। २ शुजाउद्दौला अब्दाली के साथ।
३ शान्ति प्रस्ताव। ४ कुन्जपुरा पर अधिकार।
५ पानीपत में सामना।

१ भाऊसाहब का दिल्ली की ओर प्रस्थान—बरारी घाट म हुइ दत्ताजी की मृत्यु का समाचार, घटना के ३३ दिन बाद, १३ फरवरी को अहमदनगर मे पशवा के पास पहुचा। उसन तुरत भाऊसाहब को अपनी समस्त सना सहित उदगिरि स वापस बुला भेजा ताकि सिन्धिया की मत्यु का बदला लन के लिए वह साधन जुटा सके। जालना के समीप पटदुर का स्थान इस सम्मेलन के लिए उपयुक्त समझा गया जहा पर व सब सुविधापूवक एकत्र हो सकत थे तथा जहा स सनाएँ भी सीधे उत्तर की ओर प्रयाण कर सकती थी। यद्यपि दिल्ली के इस समाचार स पशवा तथा उसके सलाहकार विचलित हो उठे थे लेकिन उन्होन अपना साहस कदापि न खोया। इसका मुख्य कारण यह था कि मराठा राज्य अभी हाल ही म अपनी शक्ति की चरमसीमा पर पहुँचा था, सेना तथा धन म वह पूण सम्पन्न था तथा गत २५ वर्षों म यह ऐसे असख्य नवयुवक नेताओं को प्रशिक्षित कर चुका था, जो अपने सनिक तथा असनिक दोनो ही कर्तव्यो का अति निपुणतापूवक पालन कर सकत थ। अब, स पहल राजकीय सेवाओ म ऐस योग्य तथा निपुण व्यक्तियो का सवथा अभाव था। अत सभी ओर स इस बात की जोरदार आवाज उठायी गयी कि शीघ्र ही पूणतया सुसज्जित सनाओं को दिल्ली भेजा जाय जिसस व आक्रान्ता को वहा स भगा सके। भाऊसाहब को निजाम के साथ युद्ध बन्द करन तथा उसके साथ अनुकूल सन्धि स्थापित करने के प्रयत्न म एक या दो सप्ताह लग गय, फिर भी भाऊसाहब उत्तर की इस सकटकालीन स्थिति के कारण उससे सम्पूण मुआवजा न प्राप्त कर सके जसा कि उनका पहले विचार था। इधर निजाम भी, उत्तर भारत म परिवर्तित सनिक परिस्थिति का समाचार पाकर, अपनी प्रतिज्ञाओ के पालन म आनाकानी करन लगा था जो उसन सैनिक

दबाव के कारण मान ली थी। पटदुर का यह सम्मेलन ७ मार्च, १७६० ई० को शुरू हुआ जिसमें सिंधिया तथा होल्कर के अलावा अन्य सभी नेता पेशवा, भाऊसाहेब, रघुनाथराव तथा अन्य सरदार और कूटनीतिज्ञ एकत्र हुए, तथा एक सप्ताह तक रात दिन भावी कार्यक्रमों पर विचार विनिमय किया गया। उत्तरदायी नेताओं में परस्पर स्वतन्त्र वार्तालाप हुआ तथा गत वर्षों में हुई सभी त्रुटियों तथा भावी सम्भावनाओं के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मतम अन्वेषण किया गया। फलस्वरूप रघुनाथराव का कुप्रबन्ध तथा अव्यवस्था जो उसके दोनों अभियानों में पूर्ण व्याप्त रही थी इस वार्तालाप का मुख्य विषय बन गया। रघुनाथराव को अधीनस्थ व्यक्तियों को सुनियन्त्रित रखने में तथा कर्तव्य की उपेक्षा करने वाले व्यक्तियों को समुचित दण्ड देने में असमर्थ समझा गया क्योंकि हिंगन, अन्ताजी मानकेश्वर तथा कुन्ते सदृश अन्य व्यक्तियों पर किसी प्रकार का भी नियन्त्रण नहीं रखा जा सका। क्योंकि उस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उन पर नियन्त्रण रख सके और इस कार्य में रघुनाथराव पूर्ण असफल रहा था। उसके द्वारा किये गये व्ययों पर भी प्रकाश डाला गया। कहने का तात्पर्य यह है कि रघुनाथराव की ये सब बुराइयाँ जो अब तक जनता तक न आ सकी थीं इस सम्मेलन में आलोचना का मुख्य विषय बन गयीं। अब एक ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो प्रत्येक संकटापन्न स्थिति में पूर्ण व्यवस्था रख सके अपनी कलम तथा तलवार का धनी हो और जिसे युद्ध तथा कूटनीति का गहन अनुभव हो। प्रत्येक व्यक्ति ने भाऊसाहेब की ओर संकेत किया तथा उनको ही उत्तर की परिस्थिति का समाधान के उपयुक्त समझा गया। पेशवा ने उक्त सभा बातों को बड़े ध्यान से सुना। अब तक उसकी दृढ़ इच्छा थी कि वह पुनः रघुनाथराव को उत्तर जाने के लिए नियुक्त करे परन्तु यहाँ पटदुर में विपरीत ही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जो कि अंतिम निर्णय था।

पेशवा ने बड़े ध्यानपूर्वक किया। उसने भूतकालीन प्रत्येक विवरण का निरीक्षण किया तथा वर्तमान अभियान के लिए उपयोगी व्यक्तियों का निर्वाचन किया। दैवयोग या बाहरी प्रभावों के लिए कुछ भी न छोड़ा गया। दमाजी गायकवाड़ यशवन्तराव पवार नारोशंकर, विट्ठल शिवदेव, अन्ताजी माणकेश्वर, बलवन्तराव मेहन्दले तथा नवयुवक नेता नाना फड़निस—जो उस समय बीस वर्ष का भी न था और पेशवा के पुत्र विश्वासराव से केवल ५ माह बड़ा था—ये सब व्यक्ति ३० हजार चुने हुए सुसज्जित सैनिकों सहित भाऊसाहब के नायकत्व में रख दिये गये। सेना के पास उपयुक्त सैनिक सुसज्जा, उत्कृष्ट तोपखाना, उत्तम अश्व तथा विशिष्ट हाथी थे। ज्यों-ज्यों सेना आगे बढ़ती गयी इसकी शक्ति में वृद्धि होती गयी क्योंकि मित्र सेनाएं इसमें सम्मिलित होती गयीं तथा नवीन सैनिकों की भरती की गयी। वीर तथा निष्ठावान इब्राहीम गार्दी ने अपने सुसज्जित तोपखाने सहित भाऊसाहब की सेना में सम्मिलित होकर उसकी शक्ति में अपार वृद्धि कर दी। पानीपत तक पहुँचते पहुँचते मराठा दल की संख्या लगभग २ लाख हो गयी। लेकिन यहां पर हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से प्रायः दो तिहाई असैनिक थे जिनमें व्यक्तिगत सेवक लेखक, दूकानदार तथा अन्य फुटकर व्यक्ति शामिल थे। भाऊसाहब ने १४ मार्च, १७६० ई० को पटदुर से प्रयाण किया और ठीक १० माह बाद १४ जनवरी, १७६१ ई० को पानीपत की समरभूमि पर उसका देहावसान हो गया। रघुनाथराव को दक्षिण में निजाम की कुचेष्टाओं पर ध्यान रखने का आदेश दिया गया।

यह आशा थी कि अब्दाली ग्रीष्मऋतु में अपने देश को वापस चला जायगा तथा उस दशा में अधिकांश राजपूत तथा अन्य शक्तिशाली सरदार तत्परतापूर्वक मराठा सेना का साथ दे सकेंगे। परन्तु यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई। अब्दाली भारत में रुका रहा, तथा उसकी उपस्थिति में उत्तरी भारत के अधिकांश सरदारों को यह साहस न हुआ कि वे मराठों का साथ देकर अब्दाली की अप्रसन्नता का भाजन बनें। अनेक सरदार तो केवल इसी बात की प्रतीक्षा में थे कि जिस दल की विजय हो उसी दल में वे सम्मिलित हो जायें। पर इस बार निराशा भाऊसाहब के भाग्य में ही लिखी थी। उसको आशा थी कि वह लगभग दो माह में दोआब पहुँच जायगा, तथा ग्रीष्मऋतु में नावों के द्वारा यमुना को पार कर यकायक अफगानों पर आक्रमण कर देगा। अतः उसने गोविन्दपन्त बुन्देले को इस कार्य के निमित्त पर्याप्त नावें तैयार रखने की आज्ञा दी थी। लेकिन वर्षा जल्दी शुरू हो जाने के कारण नदियों में बाढ़ आ गयी, जिससे उसे चम्बल के उस पार छोटी-सी 'गम्भीर

दबाव के कारण मान ली थी। पटदुर का यह सम्मेलन ७ मार्च, १७६० ई० को शुरू हुआ जिसमें सिन्धिया तथा होल्कर के अलावा अन्य सभी नेता पेशवा, भाऊसाहब रघुनाथराव तथा अन्य सरदार और कूटनीतिज्ञ एकत्र हुए, तथा एक सप्ताह तक रात दिन भावी कार्यक्रमों पर विचार विनिमय किया गया। उत्तरदायी नेताओं में परस्पर स्वतन्त्र वार्तालाप हुआ तथा गत वर्षों में हुई सभी त्रुटियों तथा भावी सम्भावनाओं के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मतम अन्वेषण किया गया। फलस्वरूप रघुनाथराव का कुप्रबन्ध तथा अव्यवस्था जो उसके दोनों अभियानों में पूर्ण व्याप्त रही थी इस वार्तालाप का मुख्य विषय बन गया। रघुनाथराव को अधीनस्थ व्यक्तियों को सुनियन्त्रित रखने में तथा कर्तव्य की उपेक्षा करने वाले व्यक्तियों का समुचित दण्ड देने में असमर्थ समझा गया क्योंकि हिंगने अन्ताजी मानकेश्वर तथा बुन्देल सदृश अन्य व्यक्तियों पर किसी प्रकार का भी नियन्त्रण नहीं रखा जा सका जबकि उस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उन पर नियन्त्रण रख सके और इस कार्य में रघुनाथराव पूर्ण असफल रहा था। उसके द्वारा लेखा पत्रों में किये गये घुटाले पर भी प्रकाश डाला गया। कहने का तात्पर्य यह है कि रघुनाथराव की वे सब बुराइयाँ जो अब तक जनता तक ही सीमित थीं इस सम्मेलन में आलोचना का मुख्य विषय बन गयीं। अब एक ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता का अनुभव किया गया, जो प्रत्येक संकटकालीन स्थिति में पूर्ण व्यवस्था रख सके अपनी कलम तथा तलवार का धनी हो और जिसे युद्ध तथा कूटनीति का गहन अनुभव हो। प्रत्येक व्यक्ति ने भाऊसाहब की ओर संकेत किया तथा उनको ही उत्तर की परिस्थिति को सँभालने के उपयुक्त समझा गया। पेशवा ने उक्त सभी बातों को बड़े ध्यान से सुना। अब तक उसकी यही इच्छा थी कि वह पुनः रघुनाथराव को उत्तर जाने के लिए नियुक्त करे परन्तु यहाँ पटदुर में विपरीत ही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जो कि अन्तिम निर्णय था।

सदाशिवराव जिसका उदय उसके महान पितामह बाजीराव प्रथम के ही समान हुआ था इस शीघ्र अभियोजित अभियान का नेता नियुक्त किया गया। अधिकांश नवयुवकों तथा वृद्ध सैनिकों एवं कूटनीतिज्ञों को तुरन्त ही उनके कर्तव्यों से परिचित करा दिया गया। सदाशिवराव को पेशवा के ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव को अपने साथ ले जाने की आज्ञा हुई यद्यपि उसकी आयु केवल १८ वर्ष की थी। उसके भेजने के दो उद्देश्य थे—प्रथम उसको अपने पेशवा पद के लिए समुचित प्रशिक्षण प्राप्त हो सके तथा दूसरे वह सदाशिवराव की उग्रता पर उपयुक्त अंकुश समझा गया। समस्त योजना का निर्माण स्वयं

शवा ने बडे ध्यानपूर्वक किया। उसने भूतकालीन प्रत्येक विवरण का निरीक्षण किया तथा वर्तमान अभियान के लिए उपयोगी व्यक्तियों का निर्वाचन किया। दैवयोग या बाहरी प्रभावों के लिए कुछ भी न छोडा गया। दमाजी गायकवाड, यशवन्तराव पवार, नारोशंकर विट्ठल शिवदेव, अन्ताजी मानकेश्वर, बलवन्तराव मेहनडले तथा नवयुवक नेता नाना फडनिस—जो उस समय बीस वर्ष का भी न था और पेशवा के पुत्र विश्वासराव से केवल ५ माह बडा था—ये सब व्यक्ति ३० हजार चुने हुए सुसज्जित सैनिकों सहित भाऊसाहब के नायकत्व में रख दिये गये। सेना के पास उपयुक्त सैनिक सुसज्जा, उत्कृष्ट तोपखाना, उत्तम अश्व तथा विशिष्ट हाथी थे। ज्यों ज्यों सेना आगे बढती गयी इसकी शक्ति में वृद्धि होती गयी, क्योंकि मित्र सेनाएं इसमें सम्मिलित होती गयी तथा नवीन सैनिकों की भरती की गयी। वीर तथा निष्ठावान इब्राहीम गार्दी ने अपने सुसज्जित तोपखाने सहित भाऊसाहब की सेना में सम्मिलित होकर उसकी शक्ति में अपार वृद्धि कर दी। पानीपत तक पहुँचते पहुचते मराठा दल की संख्या लगभग २ लाख हो गयी। लेकिन यहाँ पर हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से प्रायः दो तिहाई असैनिक थे जिनमें व्यक्तिगत सेवक, लेखक, दूकानदार तथा अन्य फुटकर व्यक्ति शामिल थे। भाऊसाहब ने १४ मार्च, १७६० ई० को पटदुर से प्रयाण किया और ठीक १० माह बाद १४ जनवरी १७६१ ई० को पानीपत की समरभूमि पर उसका देहावसान हो गया। रघुनाथराव को दक्षिण में निजाम की कुचेष्टाओं पर ध्यान रखने का आदेश दिया गया।

यह आशा थी कि अब्दाली ग्रीष्मऋतु में अपने देश को वापस चला जायगा तथा उस दशा में अधिकांश राजपूत तथा अन्य शक्तिशाली सरदार तत्परतापूर्वक मराठा सेना का साथ दे सकेंगे। परन्तु यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई। अब्दाली भारत में रुका रहा, तथा उसकी उपस्थिति में उत्तरी भारत के अधिकांश सरदारों को यह साहस न हुआ कि वे मराठों का साथ देकर अब्दाली की अप्रसन्नता का भाजन बनें। अनेक सरदार तो केवल इसी बात की प्रतीक्षा में थे कि जिस दल की विजय हो उसी दल में वे सम्मिलित हो जायें। पर इस बार निराशा भाऊसाहब के भाग्य में ही लिखी थी। उसको आशा थी कि वह लगभग दो माह में दोआब पहुँच जायगा, तथा ग्रीष्मऋतु में नावों के द्वारा यमुना को पार कर यकायक अफगानों पर आक्रमण कर देगा। अतः उसने गोविन्दपन्त बुन्देले को इस कार्य के निमित्त पर्याप्त नावें तैयार रखने की आज्ञा दी थी। लेकिन वर्षा जल्दी शुरु हो जाने के कारण नदियों में बाढ आ गयी, जिससे उस चम्बल के उस पार छोटी-सी 'गम्भीर

नदी को ही पार करने में एक माह से अधिक लग गया, तथा इस प्रकार उसकी समस्त योजना विफल हो गयी।

भाऊसाहब १२ अप्रैल को नर्मदा के तट पर पहुँचा। हन्डिया नामक स्थान पर उसने इस नदी को पार किया तथा सिहोर और सिरोंज होकर वह सीधे उत्तर को बढ़ गया। रास्ते में उसने भोपाल तथा भिलसा में भी रुकना उचित न समझा। मई के अन्त में वह ग्वालियर पहुँच गया। परन्तु आगरा तक की ७० मील की दूरी को पार करने में उसको एक माह से अधिक लग गया। १६ जुलाई को वह मथुरा में था।

आगरा जाते हुए धौलपुर के निकट वह मल्हारराव से मिला तथा कुछ समय बाद जून के अन्तिम सप्ताह में उसकी मुलाकात जनकोजी सिंधिया से हुई। सूरजमल जाट जो पहले से ही अब्दाली के साथ युद्ध में व्यस्त था अनेक भेंटों सहित भाऊसाहब के साथ हो गया। उसने केवल यह शर्त रखी कि मराठा सेना के मार्ग में पड़ने वाले उसके प्रदेश को किसी प्रकार की क्षति न हो और न उससे कर ही माँगा जाय बस स्वच्छापूर्वक वह अपने १० हजार सैनिकों सहित मराठों की सेवा करेगा तथा उनकी स्त्रियों तथा असैनिक व्यक्तियों को शरण देगा। भाऊसाहब ने तुरन्त इन शर्तों को स्वीकार कर लिया तथा जाट राजा के प्रदेश में किसी प्रकार का उपद्रव न करने के कठोर आदेश जारी कर दिये।

जैसे ही भाऊसाहब के विशाल सैन्य सहित दक्षिण से प्रस्थान का समाचार नजीबखाँ के पास पहुँचा उसने शाह से ग्रीष्म भर भारत में रुकने की प्रार्थना की ताकि जिन कार्यों को वह कर चुका था उनको सुरक्षित रखा जा सके। नजीबखाँ शाह के व्यय का भी वहन करने के लिए तैयार था। अन्त में शाह ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया तथा अपना शिविर रामगढ़ में लगा दिया जिसको उसने अभी हाल ही में जाटों से छीना था और जिसका नाम उसने अलीगढ़ रख दिया था। वह स्वयं ४० मील दूर गंगा तट पर स्थित अनूपशहर में अपने अनुचरों सहित ठहर गया।

घोर वर्षा के कारण जुलाई में यमुना नदी में बाढ़ आ गयी जिसके कारण उसे पार करना असम्भव हो गया और अब ऐसा कोई साधन न रहा जिससे कि मराठा तोपखाना नदी पार पहुँच सके और जिसकी सहायता से संघर्ष को शीघ्र समाप्त किया जा सके। अतः निश्चय किया गया कि दिल्ली की ओर प्रस्थान किया जाय और अब्दाली के प्रतिनिधि याकूबअलीखाँ से राजधानी छीन ली जाय। याकूबखाँ सरलतापूर्वक परास्त हो गया तथा नगर को मराठों को समर्पित करने की शर्त पर उसे अपने स्वामी के शिविर में वापस लौटने

की आज्ञा प्रदान कर दी गयी। किले पर थोड़ी सी अग्नि वर्षा के उपरान्त ही अधिकार हो गया तथा भाऊसाहब ने मराठा दल के समस्त सरदारों के साथ २ अगस्त १७६० ई० को राजधानी में विधिवत प्रवेश किया। अब्दाली ने राजधानी की सहायतार्थ अनेक सैनिक टुकड़ियाँ भेजी लेकिन यमुना की बाढ़ ने उसके सभी प्रयत्नों को निरर्थक कर दिया। दिल्ली पर मराठों का अधिकार होने से युद्ध ने एक नया मोड़ लिया। राजनीतिक तथा शाही कार्यों का केन्द्र काफी समय तक अब्दाली के हाथों में रहकर पुनः दिल्ली वापस आ गया। इस समय मराठों को बहुत उत्साह था और उनको विश्वास था कि वे पठान आक्रान्ताओं को भारत से निकालकर ही दम लेंगे।

२. शुजाउद्दौला अब्दाली के साथ—इस समय अवध में शुजाउद्दौला काफी शक्तिशाली था। उसके पास विशाल सेना तथा पर्याप्त धन था। यह सम्भव था कि उसका समर्थन युद्ध के पलड़े को किसी ओर झुका दे, अतः भाऊसाहब तथा अब्दाली दोनों ने ही इसका समर्थन प्राप्त करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया। भाऊसाहब ने पहले ग्वालियर से अपने प्रतिनिधि को लखनऊ भेजा तथा बाद में नारोशंकर और रमाजी अनन्त को उसके पास भेजा। वे दोनों प्रभावशाली व्यक्ति थे तथा उसके पिता के मित्र थे और शुजा से भी परिचित थे। अतः शुजा मराठों का साथ देने के लिए राजी हो गया। इसका एक अन्य कारण यह भी था कि शुजा नजीबखाँ से घृणा करता था क्योंकि वह सुन्नी था तथा विश्वासघाती और अवसरवादी था। जब शुजा के इस निर्णय की सूचना अब्दाली को दी गयी तो वह अत्यन्त चिन्ताकुल हो उठा और उसने नजीबखाँ को स्वयं शुजा के पास उसका समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करने हेतु भेजा। नजीबखाँ ने शीघ्र ही शुजा की ओर प्रस्थान कर दिया, तथा रास्ते में कन्नौज में एक दल को नियुक्त करता हुआ, नदी पार कर मेहन्दीगंज पहुँचा, जहाँ पर वह शुजा से मिला। नजीबखाँ अपने युक्तिपूर्ण तर्कों तथा निष्ठा के वचनों द्वारा शुजा का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गया। उसने शीघ्र ही अपने दल-बल सहित दोआब के लिए प्रस्थान किया तथा १८ जुलाई को अनूपशहर के अपने शिविर में नजीबखाँ तथा अब्दाली दोनों ने उसका सप्रेम स्वागत किया।

यह प्रहार मराठा पक्ष के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ, क्योंकि यदि शुजा मराठों के पक्ष में रहता तो अफगान शाह की पराजय अवश्यम्भावी थी। लेकिन फिर भी शुजा को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने यथाशक्ति अपने प्रभाव का प्रयोग करके उन दोनों प्रतिद्वन्द्वियों में स्थायी शान्ति स्थापित करा दी। अब्दाली की इच्छा भी युद्ध से दूर रहने की थी। एक अन्य हानि जो मराठा

पक्ष को उठानी पड़ी यह थी कि सूरजमल जाट ने मराठा उसका साथ छोड़ दिया तथा दिल्ली से अपनी राजधानी भरतपुर को वापस चला गया। जाट राजा अपने राज्य के बाहर भी मराठा पक्ष को अपनी सेवाएँ अर्पण करने के लिए तयार न हुआ। उसका कथन था कि जो युद्ध भी वन दे गा वह अपने देश में ही करेगा। जसे ही दिल्ली पर अधिकार हो गया सूरजमल ने यह माँग प्रस्तुत की कि उस किले को शासक नियुक्त कर दिया जाय। भाऊ साहब इस माँग को स्वीकार करने में असमर्थ था जिसके कारण स्पष्ट है। दिल्ली वास्तव में अब सम्राट के अधिकार में थी। शाहआलम जो इलाहाबाद में था तथा शुजाउद्दौला जो वजीर बनने की कल्पना कर रहा था, कभी भी इस बात के लिए तयार नहीं होते कि जाट राजा को राजधानी का रक्षक नियुक्त किया जाय। सूरजमल द्वारा भाऊसाहब के पक्ष त्यागने के अन्य समस्त कथित कारण इतिहास की कसौटी पर अरक्ष्य तथा कपोल-कल्पित हैं।

३ शांति प्रस्ताव—सवा दो महीने अर्थात अगस्त से अक्तूबर तक अपनी एक लाख से अधिक सेना सहित सदाशिवराव दिल्ली में पड़ा रहा। नगर तथा समीपवर्ती प्रदेश की समस्त खाद्य सामग्री को प्राय उसने समाप्त कर दिया। अत कुछ ही समय में मराठों को धनाभाव तथा अन्नाभाव का कष्ट होने लगा तथा बाहर से भी कोई सामग्री उपलब्ध न हो सकी। गोविन्दपंत ने दोआब से धन वसूल कर दिल्ली भेजने का प्रयत्न किया लेकिन वह ऐसा करने में असफल रहा। भाऊसाहब ने धन भेजने के लिए पूना को लिखा लेकिन वहाँ से भी धन प्राप्त न हो सका। इधर अब्दाली के साथ उसके अपने देश लौटने के लिए जो वार्तालाप चल रहा था वह भी असफल सिद्ध हुआ तथा थोड़े ही समय से भाऊसाहब को कष्ट का अनुभव होने लगा। बापूजी बल्लाल (फडके) ने १५ सितम्बर को मराठा शिविर से लिखा यमुना की बाढ़ को उतरने में अभी एक महीना लग जायेगा इसके पहले नदी पार नहीं की जा सकती। शांति के कोई लक्षण नहीं दिखायी पड़ते हैं। हमारे सिपाही भूखों मर रहे हैं। हमारे घोड़े अब यह भी नहीं जानते कि दाना क्या होता है। सेना का साहस टूट रहा है। धन अप्राप्य हो गया है। भविष्य अत्यंत अंधकारमय है। नाना फडनिस ने अपने चाचा बापूराव को लगभग उसी समय लिखा भाऊसाहब के द्वारा दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के बाद शाह अब्दाली ने अपने शिविर को अनूपशहर में नगर के सम्मुख यमुना तट पर लगाया है। समस्त नावों पर उसने अधिकार कर लिया है। नदी के इस ओर से हम उसकी सेना को स्पष्ट देख सकते हैं। शुजा शांति की शर्तों को स्थिर रखने में व्यस्त है परन्तु उसका कोई विश्वास नहीं किया जा

सकता। हम कुछ भी करने मे समर्थ हैं, परन्तु क्षुधा के कारण हम कुछ भी नही कर सकते। दो महीनो मे बाढ के उतर जाने पर ही दोनो दलो म सघर्ष की सम्भावना हो सकती है। एक बात यह अच्छी है कि हमारे सलाहकारो म पूर्णत एकता है। भाऊ साहब का निश्चय है कि वह सफल होगा।"
स्वय भाऊसाहब ने स्थिति की स्पष्ट व्याख्या करते हुए निम्न पत्र पेशवा को लिखा

'हमने सरदारो सहित दिल्ली पहुँचकर नगर पर अधिकार कर लिया है। शाह अब्दाली, शुजा तथा नजीबखा सहित, हमारे सम्मुख नदी-तट पर पहुँच गया है। नदी म अभी तक बाढ है। शुजा तथा नजीबखा ने शान्ति पूर्वक वापस लौटने के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव रखे हैं। उनकी प्रमुख शर्तें हैं कि पजाब अफगानो को दे दिया जाय दोनो क्षेत्रो के बीच म सरहिन्द सीमा नियत कर दी जाय दिल्ली पर शाह का अधिकार मान लिया जाय और शुजा को वजीर तथा नजीबखा को मीरबख्शी नियुक्त किया जाये। ये शर्तें शाह अब्दाली की ओर स प्रस्तुत की गयी हैं। हमने उनसे आग्रह किया है कि मराठा प्रभाव का प्रसार अटक तक होना चाहिए तथा दिल्ली और सम्राट पर हमारा अधिकार होना चाहिए यद्यपि हमारा यह दृढ निश्चय है कि हम उच्च पदो पर इस प्रकार की नियुक्तियाँ करेंगे जिनमे भूतकालीन व्यवस्था म कोई आमूल परिवर्तन न हो। जब तक इन दोनो प्रस्तावो के बीच का कोई मार्ग नही निकाला जाता वार्तालाप का सफल होना असम्भव है। अगर नदी ने हमारे मार्ग म बाधा उत्पन्न न कर दी होती तो अब तक हम शत्रु से युद्ध कर चुके होते। हमारा दृढ निश्चय है कि हम कठपुतली की भाति कोई शर्तें स्वीकार नही करेंगे। हमारे असनिक तथा सनिक सलाहकारो म पूर्णत एकता है। दोनो सरदार सिन्धिया और होल्कर, अत्यन्त निष्ठापूर्ण तथा सन्तुष्ट हैं। सबसे कठिन समस्या खाद्य पदार्थ की कमी है। निरन्तर सघर्ष के कारण साहूकारो से भी ऋण नही प्राप्त किया जा सकता क्योकि उन्होने अपना कारोबार ठप्प कर रखा है। उधर दोनो सरदारो अर्थात नजीबखा और शुजा पर विजय प्राप्त करने के कारण अब्दाली अत्यन्त उमग म है। वास्तव मे हमारी वर्तमान स्थिति अति गम्भीर है। फिर भी हम प्रत्येक सम्भव उपाय करके युद्ध को टालने तथा शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे, लेकिन अगर युद्ध छिड ही गया तो हम अति साहसपूर्वक उसका सामना करेंगे। आपका स्वास्थ्य सुधर जाये तो हमे आशा है कि हमारी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी।'

इन तीन प्रामाणिक उद्धरणो से परिस्थिति की स्पष्ट व्याख्या हो जाती

आवश्यकता हुई, जिसमें से २३ लाख रुपये अन्यान्य उपायों द्वारा प्राप्त हो गये। दीवानेखास की चाँदी की छत से उसको लगभग ६ लाख रुपये की मुद्रा प्राप्त हुई। गाजीउद्दीन ने पहले ही इसका कुछ गिरा रखा था, तथा धन की सख्त आवश्यकता होने पर भाऊसाहब ने शेष भाग का उपयोग किया। बाद में कुंजपुरा की लूट से उसको लगभग ७ लाख रुपये मिल गये। शेष धन की पूर्ति ऋण द्वारा या दक्षिण की सहायता द्वारा करनी थी, परन्तु यह सहायता प्राप्त न हो सकी।[1]

यहाँ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस सम्बन्ध में अब्दाली की भी दशा कुछ अच्छी न थी। नजीबखाँ से उसे उसके आक्रमण के शुरू में कुल १० लाख रुपये प्राप्त हुए थे। वह अक्टूबर १७५६ से मार्च १७६१ ई० तक पूरे डेढ़ वर्ष भारत में रहा तथा इस बीच उसको लूट का कुछ भी धन प्राप्त न हुआ। उसकी सेना लगभग उतनी ही बड़ी थी जितनी कि मराठों की यद्यपि उसके मुख्य सहायक रुहेले तथा शुजाउद्दौला अपना व्यय स्वयं उठाये हुए थे। यमुना पार प्रदेश पर बहुत समय से कठोर करों के कारण समस्त धन का शोषण हो चुका था, तथा इस सम्बन्ध में शाह तथा नजीबखाँ के बीच प्रायः झड़पें हो जाया करती थीं। शाह इन परिस्थितियों से इतना असन्तुष्ट हो गया था कि वह अब मराठों के साथ समझौता कर लेने में ही अपनी भलाई समझता था तथा इस प्रकार वह अपने गौरव को बिना कोई हानि पहुँचाये स्वदेश को वापस जाना पसन्द करता था। सदाशिवराव ने २ सितम्बर को गोविन्दपन्त को निम्न आशय का एक पत्र लिखा—'नारो शंकर को दिल्ली का शासन सौंप दिया गया है। शाह अब्दाली, रुहेले तथा शुजा, तीनों ही हमारे साथ सन्धि का प्रस्ताव कर रहे हैं परन्तु यह जानकर कि इसमें बहुत समय लगेगा और इतने समय तक यहाँ रहना हानिकारक है हमने निश्चय कर लिया है कि कुंजपुरा की ओर बढ़ा जाय, तथा इस प्रकार शत्रु को उत्तर की ओर घसीटा जाये और दिल्ली पर दबाव कम कर दिया जाय। इस दशा में आप और गोपालराव गणेश स्वतन्त्र रूप से दोआब में प्रवेश करके रुहेला प्रदेश का नाश कर सकेंगे।'[2]

---

[1] पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द २ पृ० १३०, १३१, जिल्द २७, पृ० २५५ २५८, पुरन्दर दफ्तर संग्रह, जिल्द १ पृ० ३८६। भाऊसाहब की आर्थिक स्थिति की व्याख्या के लिए सर जदुनाथ कृत 'फॉल आव द मुगल एम्पायर (भाग २, पृ० २६३) देखिए।

[2] राजवाडे संग्रह खण्ड ६, पृष्ठ ४०४।

मराठा नेता की इस चाल का प्रतिरोध करने में नजीबखाँ ने तनिक भी शिथिलता न दिखायी। उसने यह कपोलकल्पित प्रवाद प्रचलित कर दिया कि विश्वासराव को सम्राट् बना दिया गया है तथा दीवानखास की चाँदी की छत को गलाकर उसके नाम का सिक्का ढाला गया है। शान्तिपूर्वक समझौते के लिए उभयपक्ष के प्रत्येक प्रयत्न का भी उसने घोर विरोध किया। अब्दाली शाह की यह इच्छा कदापि न थी कि वह दिल्ली पर अधिकार रखे और उस पर शासन करे। साथ ही नजीबखाँ का यह भय भी उचित ही था कि यदि राजधानी पर मराठों का प्रभुत्व रहता है तो अफगान शाह के स्वदेश वापस हो जाने पर मराठों के हाथों उसको भारी प्रतिशोध सहन करना पड़ेगा।

सदाशिवराव ने अपने दूतों अर्थात् काशीराज तथा भवानीशंकर को शुजा के पास सन्धि की शर्तों का प्रस्ताव लेकर भेजा था तथा शुजा का प्रतिनिधि देवीदत्त भी उसी कार्य के लिए सदाशिवराव के पास उपस्थित था। परन्तु विविध दलों के परस्पर विरोधी हितों तथा नजीबखाँ की कठोरहृदयता के कारण समझौते का प्रत्येक प्रयास असफल रहा। नजीबखाँ की इच्छा थी कि मराठों का अन्तिम रूप से कुचल दिया जाय। शुजा की इच्छा थी कि वह वजीर बन जाये तथा साथ साथ दिल्ली में किसी पठान द्वारा सत्ता के उपभोग पर उसको कठिन आपत्ति थी। स्वयं शाह की यह इच्छा थी कि वह अपने देश को सम्मानपूर्वक लौट जाय। केवल पंजाब पर अधिकार प्राप्त करने से ही वह सन्तुष्ट था। जब बरारी घाट पर दत्ताजी की मृत्यु हो गयी मराठे चम्बल को वापस चले गये। उन्होंने दिल्ली को त्याग दिया था जो सरहिन्द तथा चम्बल के ठीक बीच में है तथा दोनों के बीच ३२० मील का फासला है। यदि भाऊसाहब पंजाब को छोड़ देते तथा सतलज को दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के बीच में सीमा पंक्ति मान लेते तो प्रस्तावित सन्धि प्रायः सम्भव थी।

४ कुंजपुरा पर अधिकार—७ अक्टूबर को भाऊसाहब ने दिल्ली से कुंजपुरा के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान दिल्ली से ७८ मील दूर है तथा इसके आगे ७८ मील पर सरहिन्द है। भाऊसाहब दिल्ली से यमुना के घाटों का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ा और चूँकि उसे किसी ऐसे घाट का पता न लगा जिसके द्वारा शाह नदी को पार कर सके उसने शाह के नदी पार करने के विरुद्ध कोई प्रबन्ध नहीं किया। भाऊसाहब सोनीपत को, जो दिल्ली से २६ मील दूर है तथा पानीपत को जो उससे भी आगे २० मील पर है पार कर गया। कुंजपुरा उससे भी आगे २२ मील पर उत्तर में यमुना नदी के दाहिनी तट पर स्थित है। इसकी रक्षार्थ शाह अब्दाली का एक शक्तिशाली दल वहाँ नियुक्त था जिसके पास भोजन-सामग्री तथा गोला

बारूद पर्याप्त मात्रा मे था। यह स्थान उसकी वापसी यात्रा का मध्यस्थ पडाव था। दिल्ली से दो मजिलें तय कर लेने के बाद सदाशिवराव को नजीबखाँ के उस षडयन्त्र का पता चला जिसके द्वारा उसने यह प्रचारित कर दिया था कि विश्वासराव को सम्राट घोषित कर दिया गया है। उसने तुरन्त दिल्ली मे एक सार्वजनिक समारोह का आयोजन किया जिसमे शाहआलम को सम्राट घोषित कर दिया गया, तथा उसकी अनुपस्थिति मे उसका पुत्र जवाबख्त उसका राजप्रतिनिधि नियुक्त किया गया और नवीन सम्राट के नाम के सिक्के भी ढाले गये (१० अक्टूबर १७६० ई०)।

सिंधिया, होल्कर तथा विट्ठल शिवदेव के अग्रगामी दस्ते १६ अक्टूबर को कुजपुरा पहुँच गये तथा उस स्थान के सरक्षक नजाबतखाँ से उन्होने आत्म समर्पण के लिए कहा। उसके इन्कार करने पर इब्राहीमखाँ ने घोर बम-वर्षा की, जो फलदायक सिद्ध हुई। अब्दुस्समद तथा मियाँ कुतुबशाह जो सरहिन्द मे नियुक्त थे, कुजपुरा की सहायतार्थ दौडे तथा अब्दाली ने भी यमुना के पूरबी तट से उस स्थान का बहुत बडी सहायता भेजी। परन्तु इससे पहले कि आक्रमण को रोकने का कोई उपाय किया जा सके दमाजी गायकवाड अपने वीर सनिकों सहित तोपो से टूटे हुए स्थानो के द्वारा अन्दर घुस गया। इस प्रकार अगले दिन १७ अक्टूबर को उस स्थान पर मराठो का अधिकार हो गया। इस युद्ध मे लगभग १० हजार अफगान मारे गये अथवा घायल हुए। अब्दुस्समदखाँ मारा गया तथा कुतुबशाह और नजाबतखाँ जीवित पकड लिये गये। नजाबतखाँ अपने घावो के कारण मर गया तथा उसका पुत्र दिलेरखाँ भाग गया। कुतुबशाह को भाऊसाहब ने मरवा डाला तथा उसके कटे हुए सिर का प्रदर्शन मराठा छावनी मे किया गया। यह उस अपराध का बदला था जो कुछ मास पूर्व इसी प्रकार बरारी घाट मे दत्ताजी का सिर काटकर किया गया था।

कुजपुरा पर अधिकार मराठा शक्ति की महत्त्वपूर्ण विजय थी। वर्तमान मे मराठा सेना की आवश्यकताओ की पूर्ति पर्याप्त से भी अधिक हो गयी। दो लाख मन गेहूँ साढे दस लाख नकद रुपये, अन्य दस लाख रुपये की लागत के अस्त्र शस्त्र गोला-बारूद तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ प्राप्त हुई। इनमे ५ तोप तथा ३ हजार घोडे भी थे। दत्ताजी का जबर हाथी भी मराठो के अधिकार मे आ गया जिसको उसकी मृत्यु पर अफगानो ने पकड लिया था। इसके अतिरिक्त सेना को भी बहुत-सा लूट का माल मिला। इस घटना के दो दिन बाद १९ अक्टूबर को दशहरा का त्यौहार था जो इतने धूमधाम से साथ मनाया गया जैसा कि मराठा इतिहास मे पहले या बाद मे कभी नहीं

मनाया था। उस दिन एक विशाल दरबार का आयोजन भी किया गया था जिसमें अप्ताबृक्ष की साधारण पत्तियों के स्थान पर असली सोना विश्वासराव को भेंट किया गया।

कुंजपुरा के पतन से शाह अब्दाली को बहुत दुःख हुआ तथा उसके हृदय में मराठों के विरुद्ध कटु शत्रुता व्याप्त हो गयी। पठानों का हृदय प्रचण्ड क्रोध तथा घृणा से भर उठा। अब्दाली ने अति उत्तेजक भाषा में अपने सैनिकों को सम्बोधित किया—'मेरे सिपाहियो! काफिर मराठों ने जो आपका खुला अपमान किया है क्या आप उसे सहन कर सकते हैं? क्या इससे आपको मराठों को पर्याप्त दण्ड देने की प्रेरणा नहीं हो रही है? अब परीक्षा का समय आ गया है आप अपना सब कुछ—अपने प्राणों को भी—होम देने के लिए तैयार हो जायँ। वास्तव में इस घटना के बाद युद्ध की मूलभूत प्रकृति में ही परिवर्तन आ गया। पहले यह संघर्ष केवल शक्ति का परीक्षण था अब इसमें रक्त पिपासा का पुट भी मिल गया। इस प्रकार से उत्पन्न कटुता पानीपत के युद्ध के बाद भी बहुत दिनों तक बनी रही तथा अब भी पक्षपातपूर्ण लेखों में प्रकट हो जाती है।

इस व्यथित दशा में अब्दाली ने दिल्ली के सम्मुख यमुना के बायें तट से उत्तर की ओर धीरे धीरे प्रयाण किया। रास्ते में वह सावधानीपूर्वक ऐसे घाट की तथा ऐसे व्यक्तियों की खोज करता गया जो उसे अपनी सेना और तोपखाने सहित नदी पार करने में सहायक हो सकते थे। वह किसी भी प्रकार मराठों के समीप पहुँच जाना चाहता था ताकि वह उनसे कन्धे से कन्धा भिड़ाकर युद्ध कर सके। दिल्ली के उत्तर में लगभग २० मील पर नदी के पूर्वी तट पर स्थित बागपत में पहुँचकर उसने चार दिन तक नदी को पार करने के साधनों का निरीक्षण किया तथा उसके पश्चात २५ अक्टूबर को नदी पार करने का निश्चय किया। यह एक बहुत ही साहसिक योजना थी जो विनाशक भी सिद्ध हो सकती थी। परन्तु अब्दाली को मध्य एशिया तथा भारत में अनेक नदियों को पार करने का असाधारण ज्ञान था। अतः उसे नदी पार करने की सम्भावनाओं का सही अनुमान लगाने में कोई कठिनाई न हुई। खुदा से भक्तिपूर्वक प्रार्थना करने के बाद उसने अपने घोड़े को नीचे उतार दिया तथा धारा में घुस गया। एक क्षण के लिए तो उसके अनुचरों को हिचकिचाहट हुई पर शीघ्र ही अनेक उत्साही साथियों ने उसका अनुसरण करना शुरू कर दिया। अब पानी भी बहुत उतर गया था तथा पार [illegible] दूसरा और [illegible] गहरे थे। जहाँ पानी गहरा था वहाँ तैरकर पार हो गए। चार दिनों में अपनी समस्त सेना तथा भारी सामान को वह हाथियों और

ऊटा पर लाद कर नदी पार उतार ले गया और इसका शत्रुओं को तनिक भी पता न लगा। सेनापतित्व के इस अद्भुत कार्य की समस्त लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

५ पानीपत में मुठभेड़—२८ अक्तूबर १७६० ई० को अब्दाली ने मराठों की खोज में यमुना के किनारे किनारे आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया तथा सात मील की यात्रा के पश्चात वह सोनपत जा पहुँचा। अब्दाली के नदी पार करने का समाचार भाऊसाहब के पास २८ अक्तूबर को पहुँचा जबकि २५ अक्तूबर को वह कुंजपुरा से उत्तर की ओर बढ़ रहा था। उत्तर दिशा में प्रयाण करने में उसका एकमात्र उद्देश्य अपने लिये रसद का पूर्ण प्रबन्ध करने के बाद नदी पार करना था क्योंकि उसकी इच्छा अब्दाली से मुठभेड़ करने की थी। उसका यह भी इरादा था कि अगर हो सके तो सिक्खों से मित्रता करने का प्रयत्न किया जाय। अतः अब्दाली के नदी पार करने के समाचार से उसको अत्यन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि वह स्वयं अब उसकी पहुँच के भीतर था। भाऊसाहब तुरन्त पीछे की ओर मुड़कर पानीपत पहुँच गये, जहाँ से अब्दाली के अग्रगामी दल ६ मील के अन्दर ही थे। अक्तूबर के अन्त में दोनों दलों ने एक दूसरे को देखा। दोनों सेनाओं के अग्रगामी दलों में छोटी छोटी झपटें भी हुई। भाऊसाहब की मूल योजना थी कि अब्दाली के युद्ध के लिए तैयार होने से पहले ही उस पर आक्रमण कर दिया जाय अथवा अगर सम्भव हो तो नदी पार करते समय उसको धर दबाया जाय। परन्तु जब वह पानीपत पहुँचा तो उसने शाह को युद्ध के लिए सर्वथा उद्यत पाया। अफगानों की दृढ़ रक्षा पंक्ति तथा उनकी पूर्ण रक्षा-व्यवस्था को तोड़ने की कठिनाइयों से वह भलीभांति परिचित था। भाऊसाहब ने उनको आसानी से परास्त करने में अपने को असमर्थ पाया, किन्तु साथ ही साथ बिना विघ्न-बाधा के दिल्ली लौटना भी असम्भव प्रतीत हुआ।

अतः उसने इब्राहीम गार्दी के परामर्श से पानीपत नगर के दक्षिण के मैदान में उस समय तक दृढ़तापूर्वक रक्षात्मक युद्ध करने का निश्चय किया जब तक कि विपक्षी सेना क्षुधा से व्याकुल न हो जाय और तब उनकी इस स्थिति से लाभ उठाकर अपनी प्रशिक्षित सेना तथा तोपखाने के उपयोग से उनके विरुद्ध छापामार युद्ध शुरू कर दिया जाय।

भाऊ के साथ असैनिकों तथा महिलाओं की भी भारी भीड़ थी जो इस समय भार सिद्ध हो रहे थे। वे उसकी खाद्य सामग्री को चट कर रहे थे तथा उनकी रक्षा की भी एक समस्या थी। सम्भव था कि यदि भाऊसाहब के साथ केवल योद्धा ही होते तो वह शत्रु दल को चीरता हुआ आसानी से निकल

जाता, परन्तु अब यह बात असम्भव था। फलस्वरूप उनकी रक्षा करने के लिए उसने रक्षात्मक व्यूह की रचना की। पूरब से पश्चिम का ६ मील की लम्बाई में तथा उत्तर से दक्षिण लगभग २ मील की चौड़ाई में डेरे तथा थापड़े खड़े करके एक शिविर की रचना की गयी तथा उसके चारों ओर खाइयां खोदी गयी जो लगभग २५ गज चौड़ी तथा ६ गज गहरी थी।[१] इस प्रकार खोदी हुई मिट्टी की एक लम्बी दीवार बन गयी, जिस पर तोप चढ़ा दी गयी। अब्दाली ने भी मराठों के सम्मुख एक स्थायी शिविर का निर्माण कर लिया। यह मराठों के शिविर के दक्षिण में लगभग तीन मील पर था तथा इसके पीछे सोनपत गांव था। उसने भी खाइयां खोदकर तथा पेड़ों को काटकर उनकी लकड़ी से अपने स्थान को सुरक्षित कर लिया। इस प्रकार दोनों प्रतिद्वन्द्वियों ने एक-दूसरे के विरुद्ध उनके घर वापस होने का मार्ग बन्द कर दिया। अब बिना एक-दूसरे का सर्वनाश किये कोई युद्धक्षेत्र से भाग नहीं सकता था। ४ नवम्बर को भाऊ साहब ने गोविन्दपन्त को लिखा—'हम शत्रु के सम्मुख हैं तथा संघर्ष के लिए तैयार हैं। हमने अपना शिविर पानीपत के मैदान पर डाला है तथा अब्दाली के घर का मार्ग पूर्णतया बन्द कर दिया है। नित्य हम उसके ऊंटों घोड़ों तथा

परन्तु उसका इतना अपमान किया गया है कि इतने दिनों से वह आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सका है। उसके घर का मार्ग बन्द कर दिया गया है। यद्यपि उसको युद्ध में सफलता की कोई आशा नहीं है फिर भी वह अकर्मण्य नहीं रह सकता, क्योंकि उसके पास अन्न बिलकुल नहीं है।" नवम्बर के प्रथम सप्ताह में उक्त स्थिति में मराठे अब्दाली पर सफलतापूर्वक आक्रमण कर सकते थे। लेकिन फिर भी भाऊसाहब नवम्बर और दिसम्बर के दो लम्बे महीनों तक न जाने क्या प्रतीक्षा करता रहे—यह एक रहस्य है जिसकी कोई सन्तोषजनक व्याख्या नहीं हो सकती। परन्तु दो बहुमूल्य संग्रह ग्रन्थ—'भाऊसाहब कफियत' तथा 'भाऊसाहब बखर'—जो विवरण प्रस्तुत करते हैं, उससे सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। निस्सन्देह उनके लक्षणों से प्रकट होता है कि उनका संग्रह मूल पत्रों के आधार पर हुआ है जो अब प्राप्य नहीं है। 'कफियत' बहुत ही विशुद्ध है, तथा 'बखर' इसका परिवर्द्धित संस्करण है। इसमें लम्बे लम्बे स्थलों के उद्धरण दिये हुए हैं जो यथाशक्य उसी रूप में हैं जैसे कि 'कफियत' में।

लेकिन कुछ ही दिनों में स्थिति इसके बिलकुल विपरीत हो गयी। अब्दाली अपने शिविर को जो यमुना नदी से कुछ मील दूर था उसके किनारे पर ले आया। इससे उसके शिविर को केवल पानी ही अधिक मात्रा में नहीं प्राप्त हो गया बल्कि दोआब के प्रदेश से उसका आवागमन भी सरल हो गया। दोआब इस समय नजीबखाँ के अधिकार में था और वहाँ से उसने पर्याप्त भोजन सामग्री प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लिया। दूसरी ओर गोविन्दपन्त या अन्य किसी मराठा सरदार को वहाँ से कुछ भी खाद्य सामग्री प्राप्त न हो सकी, जिसको मराठा शिविर में भेजा जा सकता। क्योंकि उस समय हिन्दू मुस्लिम द्वेष चरमसीमा पर था अतएव गोविन्द बल्लाल को इटावा के समीप अपनी स्थिति को स्थिर रखने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अब्दाली शाह ने कुछ ही दिनों में मराठा शिविर के चारों ओर सख्त पहरा लगा दिया तथा कोई भी खाद्य सामग्री वहाँ न पहुँचने दी। दक्षिण की ओर दिल्ली तथा राजस्थान से तथा पूरब की ओर दोआब से मराठा-आवागमन के सभी मार्ग काट दिये गये। कुंजपुरा की ओर उत्तर का मार्ग कुछ समय तक खुला रहा, परन्तु शीघ्र ही अब्दाली ने उस स्थान पर पुनः अधिकार करके उस ओर से भी मराठा-आवागमन का मार्ग बन्द कर दिया। पश्चिम की ओर कंटकपूर्ण अस्पष्ट प्रदेश था जो झाड़ियों तथा जंगलों से भरा हुआ था। फलस्वरूप दो महीने से दक्षिण को पानीपत का कोई समाचार नहीं पहुँचा।

नवम्बर के प्रथम सप्ताह के बाद से अब्दाली की स्थिति दिन प्रतिदिन सुधरने लगी तथा उसी अनुपात से भाऊसाहब की स्थिति नित्य बिगड़ती गयी।

उसको किसी दिशा से कोई खाद्य सामग्री प्राप्त न हो सका। मराठों ने अपनी ने उन सभी बातों पर अधिकार कर लिया जो पहले भाऊसाहब के लिए लाभदायक थी। लेकिन भाऊसाहब का साहस फिर भी विचलित न हुआ क्योंकि उसका सामना एक ऐसे व्यक्ति से पड़ गया था जिसे अजेय युद्ध का अनुभव था।

पानीपत तक विस्तृत कुरुक्षेत्र की रणभूमि एक पौराणिक मैदान है। आदि काल से इस भूमि पर और ऐसे युद्ध होते रहे हैं जिन्होंने भारत के भाग्य का निर्णय किया है। इस भूमि पर फिर एक अन्य महत्वपूर्ण निर्णय होने को था। अब समय निकट था कि भाऊसाहब अब्दाली को मार डालने की जिसकी प्रतिज्ञा करके उसने दक्षिण से प्रस्थान किया था।

१ नवम्बर १७६० से १४ जनवरी १७६१ ई० तक पूरे ढाई मास मराठे अपने शिविर में पड़े रहे तथा उन्होंने प्रत्येक उपयुक्त अवसर को खो दिया। दिन प्रतिदिन उनकी दशा बिगड़ती गयी। वे निरुत्साह हो गये तथा उनको विजय की कोई आशा न रही। इन ढाई मासों में दोनों दलों में अनेक छुटपुट लड़ाइयों के अलावा तीन या चार भारी युद्ध भी हुए। १६ नवम्बर की रात्रि को इब्राहीमखाँ के भाई फतहखाँ गार्दी ने अब्दाली के शिविर पर छिपकर धावा किया। वे हल्की तोपों को हाथ से ढकेलकर वहाँ ले गये थे। परन्तु उसका निराकरण सुविधापूर्वक हो गया और वह पराजित होकर वापस आ गया। तीन दिन बाद २२ नवम्बर को तीसरे पहर सिन्धिया के सिपाहियों ने दुर्रानी के वज़ीर को मराठा शिविर के पास स्थित एक कुएँ का निरीक्षण करते हुए देखा। जनकोजी सिन्धिया ने सक्रोध उस पर तुरन्त आक्रमण कर दिया। वजीर के दल के लगभग सभी सिपाही काट डाले गये तथा ठीक दुर्रानी के शिविर तक वजीर का पीछा किया गया। मराठों ने एक हजार रुहेलों को मार गिराया तथा उनकी कुछ तोपें छीन लीं। अँधेरा हो जाने के कारण युद्ध बन्द कर देना पड़ा अन्यथा अफगानों की ओर भी अधिक क्षति होती। इस युद्ध में सिन्धिया ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया परन्तु फिर भी वह सफलता नहीं प्राप्त कर सका। इसका मुख्य कारण यह था कि पेशवा की सेना के समय पर उसे सहायता नहीं पहुँचा सकी।

इस समय भाऊसाहब तथा अन्य मराठा नेता दिल्ली स्थित नारोशंकर और दोआब स्थित गोविन्द बल्लाल से इस संकट-क्षण में पानीपत को यथाशक्ति खाद्य सामग्री तथा नकद धनराशि भेजने का आग्रह कर रहे थे। लेकिन दुर्रानी इतना सतर्क था कि उसने कोई भी वस्तु आसानी से पानीपत के मराठा शिविर में न पहुँचने दी। जिस युद्ध का वर्णन ऊपर हो चुका है उसके लगभग १५ दिन

बाद ७ दिसम्बर को एक और घमासान मुठभेड हुई। नजीबखाँ ने बिना शाह की आज्ञा के अपने ही उत्तरदायित्व पर मराठों की एक टोली पर अकस्मात आक्रमण कर दिया। ये मराठे अपनी तोपों को किन्हीं विशेष स्थानों पर व्यवस्थित करने जा रहे थे। नजीबखाँ ने इस छोटी-सी टोली के साथ कठोर व्यवहार किया तथा उसको ठीक उनकी खाई तक खदेड दिया। परन्तु जब नजीबखाँ की उपस्थिति का पता चला तो मराठा दल विद्युत गति से उस पर टूट पडा। इब्राहीमखाँ की तोपों ने तथा बलवन्तराव मेहेनदले के अधीन हुजरत दल की तलवारों ने तीन हजार से भी अधिक रुहेलों को काट गिराया। परन्तु एक आकस्मिक गोली से इस वीर तथा होनहार युवक नेता के प्राण जाते रहे तथा जो सफलता मराठों ने प्राप्त की थी उसका कोई महत्त्व न रहा। उसी रात को बलवन्तराव की विधवा पत्नी सती हो गयी। इस वीर की मृत्यु से समस्त मराठा शिविर में घोर नैराश्य छा गया तथा इसी क्षण से मराठा आशाओं का पतन विशेष रूप से आरम्भ हो गया।

गोविन्दपन्त को जो निचले दोआब में स्थित था, पानीपत की वस्तुस्थिति का पूर्ण ज्ञान था तथा उसने दिल्ली के पूरबी क्षेत्र से अन्न तथा धन एकत्र करने का पूर्ण प्रयत्न किया। सिकन्दराबाद तथा अन्य स्थानों से जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसको उसने एक विशाल राशि के रूप में एकत्र कर लिया, तथा उस राशि को घिरे हुए मराठा शिविरों में भेजने का प्रयत्न किया। इस बीच उसकी सैनिक टुकडियाँ शाहदरा (दिल्ली के सम्मुख) गाजियाबाद तथा जलालाबाद के १० या २० मील के अन्दर सरगर्मियाँ कर रही थी। नजीबखाँ द्वारा नियुक्त उसका प्रतिनिधि पन्त की इन कार्यवाहियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहा था और उसने तुरन्त ही इसकी सूचना रुहेला सरदार को भेज दी। उसने अविलम्ब अताईखाँ तथा करीमदादखाँ को ५ हजार सैनिकों सहित उसकी सहायतार्थ भेज दिया। ये सैनिक अभी हाल ही में अफगानिस्तान से आये थे। उन्होंने यमुना को पार कर अन्न संग्रहार्थ भ्रमण करती हुई मराठा टोलियों की खोज में शीघ्र प्रयाण आरम्भ कर दिया। १६ दिसम्बर की शाम को उनकी मुठभेड नारोशंकर की एक छोटी सी टोली से हुई, जिसको उन्होंने काट डाला। मराठों की भूतकालिक लूट तथा अपहरण के कारण समीपवर्ती प्रदेश उनके खिलाफ था तथा उनसे बदला लेने के लिए छटपटा रहा था। दूसरे दिन १७ दिसम्बर को प्रातःकाल उन्होंने पुनः प्रयाण किया और गाजियाबाद में एक अन्य मराठा टोली को भी उसी प्रकार काट डाला। यहाँ से वे दस मील दूर पूरब में जलालाबाद को गये जहाँ पर स्वयं गोविन्दपन्त से उनकी मुठभेड हो गयी। उसको शत्रु द्वारा आक्रमण करने की तनिक भी शंका नहीं थी तथा इस

समय वह पूजा पाठ करने और खाना बनाने में व्यस्त था। उसके साथ व्यक्तिगत सेवकों की एक टोली थी। जैसे ही उन पर आक्रमण हुआ वे अपने प्राण-रक्षार्थ टट्टुओं पर चढ़कर विभिन्न दिशाओं में भाग गये। उनका द्रुतगति से पीछा किया गया। पंत के एक गोली लगी और वह घोड़े से नीचे गिर पड़ा तथा घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गयी। मुसलमान सैनिक उसके चारों तरफ एकत्र हो गये। उसका सिर काटकर हर्षपूर्वक शाह के पास ले जाया गया जहाँ उसने इसका अपने शिविर में प्रदर्शन किया तथा भेंट के रूप में उसे भाऊसाहब के पास भेज दिया। गोविन्दपंत का पुत्र बालाजी भी अपने पिता के साथ था परन्तु उसके सेवकों ने उसकी रक्षा कर ली। इस प्रकार पेशवाओं के एक वृद्ध और निष्ठावान सेवक का अन्त हो गया जिसने ३० वर्षों तक बुन्देलखण्ड तथा दोआब में मराठा ध्वज को ऊँचा रखने का प्रयत्न किया था। वास्तव में वह मूलतः सैनिक नहीं था। वह हिसाब किताब तथा राजस्व सम्बन्धी विषयों का प्रकाण्ड पण्डित था। भाऊसाहब के अभियान के समय उत्तर भारत में वह एक प्रमुख मराठा था। परिस्थितिवश भाऊसाहब को अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य उसको सौंपने पड़े थे। परन्तु उस प्रदेश की अशान्त परिस्थिति के कारण वह उन कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ रहा।

बाहर से अन्न न पहुँच सकने के कारण मराठों को अब भीषण भुखमरी का सामना करना पड़ रहा था। अन्न के बढ़े हुए भावों के कारण भाऊसाहब के कोष का रुपया भी शीघ्र समाप्त हो गया। इससे बचने के लिए उसने सिन्धिया तथा होल्कर सहित शिविर में तीन टकसालें स्थापित कीं तथा पुरुषों तथा स्त्रियों के सभी सोने चाँदी के आभूषणों को गलवाकर बहुत से नये सिक्के ढलवाये जिन पर यह शब्द अंकित थे—भाऊशाही, जनकोशाही तथा मल्हारशाही। परन्तु यह रुपया भी दो सप्ताहों से अधिक काम न दे सका।

अब तक किसी भी दल ने अपने प्रतिद्वन्द्वी पर आक्रमण करने की इच्छा नहीं की थी। दो महीने से वे छुटपुट लड़ाइयों में ही एक दूसरे से श्रेष्ठता प्राप्त करने में लगे रहे थे क्योंकि यह स्पष्ट था कि जब तक मुख्य दल निश्चल रहते हैं वह दल जिसके अश्वारोही दस्ते का अधिकार विस्तृत प्रदेश पर रहेगा, दूसरे दल को भूखा मार डालेगा। इस चाल में अब्दाली शाह अन्त में सफल हो गया तथा मराठे उसकी दृढ़ मुट्ठी के भीतर आ गये। भाऊसाहब को दक्षिण से प्रस्थान करते समय इब्राहीमखाँ की पैदल सेना में पूर्ण विश्वास था तथा इस समय तक उन्होंने पूर्ण निष्ठा से सेवा भी की थी। पानीपत में दुर्गबद्ध रहने का विचार इस विश्वास का ही परिणाम था क्योंकि जब तक मराठे अपनी सुदृढ़ परिखाओं के अन्दर थे उन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता

था। अतएव भाऊसाहब ने इस सुदृढ सुरक्षित आसन से बहुत समय तक अब्दाली के आक्रमण की प्रतीक्षा की, क्योंकि उसे विश्वास था कि इस प्रकार से आक्रमण होने पर विजय उसकी ही रहेगी। अब्दाली भाऊसाहब की चाल को ताड गया, तथा वह जानबूझकर मराठा शिविर पर स्पष्ट आक्रमण से दूर रहा। उसको आशा थी कि उसकी विजय तभी सम्भव है जबकि मराठे क्षुधाग्रस्थ होकर शिविर से बाहर निकलें। बुंदेले को लिखे हुए भाऊसाहब के पत्र क्रोध तथा निंदा से परिपूर्ण है। उनमे भाऊसाहब ने बुंदेल पर यह स्पष्ट आरोप लगाया है कि वह शाह को मराठा शिविर पर आक्रमण करने को विवश करने के प्रयत्न में पूर्णत असफल रहा है।

इस प्रकार विपद्ग्रस्त होकर अंतिम क्षण पर भाऊसाहब ने अफगान शाह से संधि करने का प्रस्ताव किया। संघर्ष से अलग होकर सकुशल दक्षिण लौट जाने देने की शर्त पर वह शाह को एक भारी रकम देने को भी तयार था परंतु पहले की भांति नजीबखां ने शाह से उस प्रस्ताव को अस्वीकार करने की प्रार्थना की, तथा धर्म युद्ध में काफिरों का संहार करने का अवसर न चूकने का आग्रह किया। वास्तव में मराठों के सर्वनाश मे नजीबखां का बहुत बड़ा हाथ था। उसने इस प्रकार सिद्ध कर दिया कि वास्तव में उसका चरित्र वसा ही है जैसा कि हाफिज रहमत ने उसको बताया है।[४]

---

४ नजीबखां असभ्य नवाबदर्या है। पहले वह अपने स्वामी की सेवा में पैदल सेना में सिपाही था। अब वह दिल्ली का एकाधिपति है तथा भारतीय विषयों पर अब्दाली शाह का प्रधानमंत्री है।

तिथिक्रम

अध्याय २१

२७ दिसम्बर, १७६०	पेशवा पठन मे।
३१ दिसम्बर, १७६०	पेशवा का उत्तर को प्रस्थान।
४ जनवरी, १७६१	पाराशर दादाजी के कोप पर अचानक आक्रमण।
४ जनवरी, १७६१	भाऊसाहब विपद्ग्रस्त, वापस होने के निमित्त शर्तों की प्राप्ति में असफल।
१२ जनवरी, १७६१	भाऊसाहब द्वारा वर्गाकार मे समस्त शिविर को हटा ले जाने का निश्चय।
१४ जनवरी, १७६१	अन्तिम सघर्ष, विश्वासराव की मृत्यु से सभ्रम उत्पन्न, भयानक जनसहार।
१५ जनवरी, १७६१	पानीपत मे अली कलन्दर की दरगाह मे अब्दाली द्वारा प्रार्थना।
१६ जनवरी, १७६१	अब्दाली द्वारा दिल्ली को प्रस्थान।
१८ जनवरी, १७६१	अब्दाली का हिंगने से परामर्श, पेशवा नर्मदा के पार।
२४ जनवरी, १७६१	विपत्ति का समाचार पेशवा को भिलसा मे प्राप्त।
२९ जनवरी, १७६१	अब्दाली का दिल्ली मे प्रवेश, तथा याकूबअली को पेशवा से मालवा मे मिलने के लिए भेजना।
१० फरवरी, १७६१	अब्दाली के दूत गुलराज का अब्दाली के उपहारों सहित पेशवा से मालवा मे भेंट करना।
२० मार्च, १७६१	अब्दाली द्वारा दिल्ली से काबुल को प्रस्थान तथा पेशवा का पछोर से पूना को प्रस्थान।
६ अप्रल, १७६१	पेशवा का इदौर होकर जाना।
१६ मई, १७६१	पेशवा टोका में, उसका तुलन।
८ जून, १७६१	पेशवा का पूना पहुँचना।
१२ जून, १७६१	पेशवा का पार्वती मे निवास।
२३ जून, १७६१	पेशवा की मृत्यु।
१४ अप्रल, १७७२	अब्दाली की काबुल मे मृत्यु।
१६ अगस्त, १७८३	भाऊसाहब की पत्नी पार्वतीबाई का देहान्त।

अध्याय २१

पानीपत के युद्ध का दुखद अन्त

[१७६१]

१ प्याला लबालब भरा । २ युद्धक्षेत्र मे दोनों दलों की स्थिति । ३ युद्ध । ४ विजेता की पूर्ण दुर्दशा तथा पेशवा से संधि । ५ बुन्देलखण्ड मे पेशवा की दुर्दशा । ६ विपत्ति का पुन निरीक्षण । ७ विपत्ति का महत्त्व । ८ पेशवा के अंतिम दिन । ९ बालाजीराव का चरित्र ।

१ प्याला लबालब भरा—गोविन्दपन्त की मृत्यु और उसकी मृत्यु के ढग से मराठा का हृदय क्रोध तथा निराशा से भर गया । इसके बाद २१ दिसम्बर से १४ जनवरी तक मराठा शिविर मे लगातार कष्टा की वृद्धि होती गयी तथा इसस छुटकारे की समस्त आशाएँ नष्ट हो गयी । गोविन्दपन्त की मृत्यु के शीघ्र पश्चात ही एक अय दुर्घटना और घटित हो गयी । पन्त न लगभग साढे चार लाख रुपया नकद एकत्र करके भाऊसाहब तक पहुँचाने के लिए नारोशकर क पास भेज दिया था, जिसके लिए भाऊसाहब ने एक विशेष दूत दिल्ली भेजा था । २१ दिसम्बर को एक लाख स कुछ अधिक रुपया मराठा शिविर मे पहुच भी गया । शेष ३ लाख रुपये होल्कर की सेवा मे नियुक्त एक युवक सरदार पाराशर दादाजी को सुपुर्द कर दिये गये थे । जनवरी क आरम्भ म दादाजी क नेतृत्व म कुछ चुने हुए सरदारा की एक टोली जिनमे से प्रत्यक के पास ५०० रुपये थ दिल्ली से रवाना हुई । य लोग केवल रात्रि म यात्रा करत थे । अफगान शिविर[1] की परिवर्तित स्थिति के अपरिचित होने के कारण वे अपने प्रयाण की अंतिम रात्रि के शीत तथा अन्धकार म अपन मार्ग क दक्षिण पश्चिम या दिल्ली की ओर लगे हुए शत्रु के पहरदारा के वृत्त म फँस गये । शत्रु को उनका अविलम्ब पता चल गया और कुछ थोडे से व्यक्तिया को छोडकर वे सभी मार डाले गये । यह घटना ८ जनवरी को घटित हुई ।

---

[1] कोटा पेपर्स, जिल्द १, पृ० २२२ ।

उनका नेता पाराशर दादाजी ६ जनवरी को दिल्ली वापस आ गया। उधर भाऊसाहब ने वीरतापूर्वक डटे रहने तथा शिविर निवासियों का साहस बनाये रखने का प्रयत्न किया। इस समय इन शिविर निवासियों का एकमात्र आश्रय भाऊसाहब ही था। अन्न तथा धन प्राप्त करने के उसके समस्त प्रयास निष्फल हो गये। मराठों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पानीपत के छोटे-से नगर से प्रत्येक वस्तु—यथा अन्न लकड़ी घास तथा फल—का पूर्णत अपहरण कर लिया गया था। उस नगर के अधिकांश निवासी मुसलमान थे और क्योंकि उनकी समस्त सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया था वे प्राय शत्रु तुल्य हो गये। इस प्रकार समस्त शिविर के सम्मुख क्षुधा तथा मृत्यु मुंह खोल खड़ी थी। मराठों के सम्मुख अब केवल दो ही मार्ग थे—या तो आत्म समर्पण कर दें अथवा लड़ते हुए शत्रु दल के बीच से निकल भागें। दीर्घ कालीन विचार विनिमय के बाद द्वितीय मार्ग को ही श्रेयस्कर समझा गया। परन्तु भाऊसाहब अपने दूतों द्वारा शुजा के माध्यम से कुछ ऐसी शर्तें प्राप्त करने का बराबर प्रयत्न करता रहा जिनसे कि उनका उस भयावह परिस्थिति से छुटकारा हो जाये।

इस समय तक इस बात की पुष्टि हो गयी थी कि पेशवा ने विशाल सैन्य दल सहित पूना से उत्तर की ओर प्रस्थान कर दिया है। उत्तर की परिस्थितियों की उसको बहुत चिन्ता थी। काफी समय से वहाँ से कोई पत्र भी प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि वहाँ से जो भी पत्र या वस्तु भेजी जाती थी शत्रु उसको बीच में ही हस्तगत कर लेता था। उसने पूना से अक्टूबर में प्रस्थान कर दिया था तथा रास्ते में धन सैनिक तथा अन्न एकत्र कर रहा था ताकि निजाम पर समुचित नियन्त्रण रखा जा सके और साथ ही साथ उत्तर में मराठा सेनाओं की आवश्यकताओं को भी पूरा किया जा सके। उसने पैठन के समीप एक नौ-वर्षीय कन्या से विवाह कर लिया। यह संस्कार २७ दिसम्बर को हुआ। लेकिन यह कहना गलत होगा कि वह अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ भोग विलास में पड़कर अपने भाई की सहायता करना भूल गया।[२] उसका स्वास्थ्य शीघ्रता से बिगड़ रहा था जिसकी सदाशिवराव को बहुत चिन्ता थी। साथ ही यह मानना भी उचित न होगा कि भाऊसाहब ने अपने अंतिम आक्रमण में इस विचार से विलम्ब किया कि पेशवा शीघ्र ही आ

---

[२] इस विषय पर अपनी नवीन पुस्तक में श्री शेजवलकर ने एक कल्पित विचार उपस्थित किया है जिसका आशय यह है कि पेशवा ने अपने बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को सुधारने के लिए ही नया विवाह किया था (देखो पृ० १२०)।

जायेगा, तथा उस दशा मे वे मुसलमानो को दो मराठा दलो के बीच म डाल कर कुचल देगे। वास्तव मे भाऊसाहब को अधिक सेना की आवश्यकता नही थी। उसकी प्रमुख समस्या तो यह थी कि किसी प्रकार अपनी सेना का पेट भरा जाये तथा आने जाने के माग को खुला रखा जाये। अत इस बात की सन्तोषजनक व्याख्या नही की जा सकती कि अपना अन्तिम आक्रमण करने से पहले भाऊसाहब ढाई मास क्यो रुके रहे।

कुछ भी हो, अब्दाली के मित्र अब अधीर हो उठे थे। उन्होन उससे शत्रु पर आक्रमण करने मे अधिक विलम्ब न करने का आग्रह किया। इस पर उसने निम्नलिखित उत्तर दिया—'मेरा काय सेनापति का है, इसको आप मुझे स्वतन्त्रतापूवक करने दें। आप अपनी राजनीति को जसी चाहें रखें, किन्तु मरी सनिक योजनाओ म हस्तक्षेप न करें। वह सदैव सतक रहता था। उसका लाल डेरा शिविर के आगे लगा हुआ था जहाँ पर वह रोज सुबह प्राथना तथा जलपान के निमित्त आता, तथा सारा दिन शिविर के चारो ओर घूमने म व्यतीत करता था। वह सारी प्रबन्ध व्यवस्था का स्वय निरीक्षण करता, आदेश देता तथा मराठो की घेराबन्दी को दढ करता जाता था। उसने ५ हजार सनिको का एक विशष दल तयार किया था जो समस्त शिविर के चारो ओर गश्त लगाने के साथ साथ अपनी सेना की शिथिलता तथा शत्रु सेना की प्रत्यक गतिविधि पर सतक दष्टि रखता था। वह स्वय प्रतिदिन तीस मील स कम घोडे पर नही चढता था। उसने शुजा तथा अन्य मित्रो को युद्ध के प्रति पूण निश्चिन्त रहने का आश्वासन दिया था।

जसे जसे समय बीतता गया, मराठा शिविर की स्थिति निराशाजनक होती गयी। अनेक मराठा टोलिया अन्न की खोज म शिविर के बाहर निकल जाती तथा शत्रु के दल उन्हे काट डालते थे। निराहार तथा मृत्यु की समस्या प्रत्यक व्यक्ति क सामने थी। पशु बडी सख्या म मरने लगे थे तथा उनके मृत शरीरो से उत्पन्न दुगन्ध अत्यन्त असह्य हो गयी थी। बालक वृद्ध नेता तथा सनिक सब ने भाऊसाहब से आग्रह किया कि अब अधिक प्रतीक्षा करना व्यथ है क्योकि शिविर मे निराहार मर जाने से व शत्रु से लडते हुए मरना अधिक पसन्द करेंगे। सब ने एकत्र होकर पूण परामश किया। १० जनवरी को वार्षिक सक्रान्ति थी। यह उत्सव उन्होन काफी धूमधाम से मनाया और इसमे अपने पास की समस्त भोजन सामग्री भी समाप्त कर दी। आगामी तीन दिनो तक व अन्तिम आक्रमण के विषय म वार्तालाप करते रहे। भावी युद्ध से सम्बन्धित विभिन्न विषयो पर आदेश जारी कर दिये गये तथा प्रत्यक व्यक्ति के कतव्यो की व्याख्या कर दी गयी। इब्राहीमखाँ के परामर्शानुसार सेना को

वर्गाकार म धन शन गमन करना था। उनके साथ चारा और तोपखाना रखने का निश्चय किया गया। महिलाओ तथा असनिको को बीच म रखकर समस्त जनसमूह को एक पिण्ड क रूप म इब्राहीमगार्दी क सरक्षण म गमन करना था। इस रचना म एक गम्भीर दोष यह था कि शत्रु का थोडा-सा भी रणचातुर्य सरलता से इस व्यूह को भग कर सकता था और बाद म हुआ भी ऐसा ही।

आगामी दिवस क लिए अपनी अन्तिम नियुक्तियां को समाप्त कर तथा अपन अधीनस्थ कमचारियो को पूण आदेश देकर भाउसाहब न जसा कि काशीराज ने लिखा है इस निर्णायक रात्रि म इस कलह को निपटान क निमित्त अपना अंतिम प्रयास किया। उसने काशीराज को लिखा कि प्याला लबालब भर गया है। अब इसम एक बूद भी नहीं समा सकती। इस कलह के निपटान के सम्बन्ध म अपना अंतिम उत्तर भेजने की कृपा कर। १४ तारीख की सुबह काशीराज न यह पत्र शुजा के सम्मुख रखा। उसने काशीराज को स्वय उस पत्र को शाह को दिखान का आदेश दिया। किन्तु जब यह पत्र शाह क समक्ष रखा गया उस समय तक मराठा ने दुर्रानी शिविर के विरुद्ध बढ़ना शुरू कर दिया था। फिर भी अब्दाली ने उत्तर दिया— एक दिन और प्रतीक्षा करो तब हम विचार करेंगे कि वह काण्ड किस प्रकार निपटाया जा सकता है।' पर तु इस समय तक युद्ध प्राय आरम्भ हो गया था।

२ **युद्धक्षेत्र मे दोनों दलों की स्थिति**—अन्त म १४ जनवरी का वह मनहूस दिन आ ही गया जबकि भाऊसाहब को अब्दाली से कठोर युद्ध करना था तथा जिसके लिए वह तभी स इच्छुक था जब वह दक्षिण स चला था। प्रभात वेला म जब शाह ने विशाल मराठा समुदाय को एक पिण्ड के रूप म अपनी ओर बढ़त देखा तो वह तुरन्त समझ गया कि आज कोई छुटपुट मुठभेड न होगी जसा कि दो महीनो से हो रहा था। उसन तुरन्त अपनी सेना युद्ध के लिए तयार होन का आदेश दिया तथा अपनी रणपक्ति की रचना इस प्रकार से की कि वह अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके। उसने अपन सभी सरदारो तथा मित्रो को उपयुक्त स्थानो पर नियुक्त कर दिया तथा उनके कर्तव्यो की समुचित व्याख्या कर दी गयी। उसकी साठ हजार सेना म लगभग आधे विदेशी तथा आधे भारतीय थे। थोडे से पदल सिपाहियो के अतिरिक्त अधिकाश भाग अश्वारोहियो का था। उसने अपने सुदूर दक्षिण पक्ष पर बरखुरदारखा तथा अमीरबेग को नियुक्त किया। उनके सन्निकट बायी ओर हाफिज रहमत तथा नवाब बगश के रुहेले सनिक थे। इनके बाद ऊटो पर सवार छोटी चक्करदार तोपें लिये उसके सिपाही तथा कुछ काबुल के पदल

सिपाही थे। इनके बाद मध्य में वजीर शाहवलीखाँ था जिसमें शाह को सबसे अधिक विश्वास था। वजीर के दायीं ओर अपने निजी दल का नेतृत्व करता हुआ शुजाउद्दौला नियुक्त था तथा उसके समीप बायीं ओर नजीबखाँ का दल था। रक्षापंक्ति के सुदूर वाम पक्ष पर शाहपसन्दखाँ नियुक्त था। शाह के निजी सेवकों का दल तथा उसका अंगरक्षक दल पृष्ठभाग में सुरक्षित था। ये अन्तिम दोनों दल समझ सोचकर पीछे रखे गये थे ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनको इधर उधर भेजा जा सके। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि रुहेले बंगश का दल तथा नजीबखाँ के सैनिक जानबूझकर शाह के अपने विदेशी सैनिकों के बीच में रखे गये थे, क्योंकि उसको अपने भारतीय मित्रों की निष्ठा में सन्देह था। वह स्वयं समस्त रक्षापंक्ति के पीछे था। उसका कार्य युद्ध का संचालन तथा उन निर्बल स्थलों पर सहायता भेजना था जो कि युद्ध आरम्भ होने पर प्रकट हों।

जब वर्गाकार में बढ़ते हुए मराठे अफगान रक्षापंक्ति के निकट आ गये तो उनकी सामूहिक गति की मूल योजना सफल न हो सकी। आगे बढ़ने का मार्ग बल द्वारा प्राप्त करने में असफल होकर भाऊसाहब ने अविलम्ब अपनी सेना की रचना शत्रु के सदृश एक लम्बी पंक्ति में कर ली जिससे कि शत्रु दल से लड़कर उनके बीच में से मार्ग प्राप्त किया जा सके। उसका मुख्य उद्देश्य शत्रुओं से लड़ना नहीं था बल्कि किसी प्रकार वहाँ से निकल भागना था। व्यूह रचना सम्बन्धी इस आकस्मिक परिवर्तन से मराठा दल में एक प्रकार की भगदड़ मच गयी, जिसके कारण इब्राहीमखाँ को अति क्लेश हुआ क्योंकि उसकी मूल योजना सर्वथा त्याग दी गयी थी।[3] फिर भी उसने अपने को परिस्थिति के अनुसार बना लिया तथा उसे सफल बनाने का पूर्ण प्रयास किया। भाऊसाहब ने अपने दल की रचना एक लम्बी पंक्ति के रूप में करके अपने वाम पक्ष पर इब्राहीमखाँ को उसके भारी तोपखाने सहित नियुक्त किया। दमाजी गायकवाड़ उसके सन्निकट उसकी सहायतार्थ उपस्थित रहा। स्वयं भाऊसाहब अपनी निष्ठापूर्ण हुजरत सेना सहित मध्य में रहा जहाँ से उसने अफगान वजीर का मुकाबला किया। अन्ताजी मानकेश्वर, पिलाजी जाधव का पुत्र सतवोजा तथा कुछ अन्य छोटे छोटे सरदार भाऊसाहब के दाहिनी ओर नियुक्त कर दिये गये। यशवन्तराव पवार जनकोजी सिंधिया तथा मल्हारराव होल्कर के वीर अनुभवी सैनिक इस पंक्ति को इसके सुदूर

---

3 गत रात्रि की वर्गाकार गति की योजना त्याग दी गयी। गाडीच चौबुर्जीचा मनसुबा राहिला। (भाऊसाहब बखर)

छोर पर विशेप रूप से सुदृढ बना रहे थे। भाऊसाहब के समयानुसार आवश्यकता के लिए किसी भी भाग को सुरक्षित नही रखा क्योंकि उनकी मूल योजना यह थी कि समस्त शिविर अफगान सेना के मध्य से बलपूर्वक मार्ग प्राप्त कर ले। इस प्रकार भाऊसाहब ने अपनी समस्त सेना सहित शत्रु दल के मध्य से भागने का प्रयत्न किया।

इस विनाशकारी युद्ध की वास्तविक दशा का वर्णन करने से पहले हमे इन दोनो दलो की स्थिति के विषय मे कुछ मुख्य बात जान लेना आवश्यक है। दोनो दल विशेषकर मराठा का दल बहुसंख्यक असैनिको की उपस्थिति के कारण अति विशाल था। हाल मे हुए अनुसंधानो के अनुसार उस युद्ध मे वास्तविक सैनिक संख्या ६० हजार मुसलमान तथा ४५ हजार मराठा थी। मराठे निराहार तथा पशुओ की हानि के कारण निर्बल हो गये थे जबकि अफगान अति उमंग मे थे। रणकौशल मे भी अब्दाली की श्रेष्ठता स्पष्ट थी, क्योंकि भाऊसाहब अपने समस्त उत्साह के होते हुए भी युद्धभूमि मे सैन्य संचालन मे शाह की अपेक्षा निम्नकोटि का व्यक्ति था। भाऊसाहब को आरम्भ से ही अपने शक्तिशाली तोपखाने तथा उसके विश्वस्त संचालक इब्राहीमखाँ द्वारा इसके अपूर्व संचालन मे अति विश्वास था। इसमे दो सौ से भी अधिक तोपें थी। परन्तु प्रस्तुत परिस्थिति मे यह तोपखाना विघ्नकारी सिद्ध हुआ क्योंकि भारी तोपो को उचित स्थान पर लाने मे बहुत समय लग जाता था और जबकि मराठा सेना प्रस्थान कर रही थी, यह समय और भी अधिक लगा। अन्यथा मराठा दल का यह भारी तोपखाना बहुत अधिक कार्य कर सकता था। इस अवसर पर इन भारी तोपो मे एक अन्य क्षति भी हुई। इब्राहीमखाँ की लम्बी मार करने वाली तोपो के गोले अपने उद्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाते थे और बाद मे जब दोनो दल एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे आ गये तो वे आसानी से शान्त कर दी गयी। इसके विपरीत शाह के पास मराठा जैसी भारी तोपें नही थी बल्कि इनके स्थान पर उसके पास दो हजार के लगभग कामचलाऊ हल्की तथा ऊटो पर लदी हुई चक्करदार तोपें थी जो मराठा दल पर समीप से कहर ढा सकती थी। अफगान शाह की इन हल्की तोपो मे से प्रत्येक को ऊँट पर चढे हुए दो निपुण तोपची चलाते थे। इस समस्त दल को शाह ने उस समय के लिए सुरक्षित रख छोडा था जबकि युद्ध के आरम्भिक दौर मे मराठे पूर्ण रूप मे थक जायें। इसके अतिरिक्त शाह ने अपने अंगरक्षक दल के ६ हजार किजिलबाशो के एक दल को भी इसी समय के लिए सुरक्षित रख छोडा था। इस दल के पास बढिया नस्ल के जवान घोडे थे, जो अभी उत्तर पश्चिम से मँगवाये गये थे। भोजन तथा वस्त्रो मे

उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाता था। वास्तव म अगर देखा जाये तो सुरक्षित रख हुए इन दो दलो न ही युद्ध क परिणाम का निश्चित कर दिया था।

दोना दलो के वस्त्रो म भिन्नता के कारण मराठा को एक अन्य विपत्ति का सामना करना पडा। बात यह थी कि दक्षिण क मराठे साद कुरते पहने थे जबकि ठण्डे मुल्क के निवासी अफगान ऊन की या चमडे की मोटी वण्डियाँ पहने हुए थ, जो उनकी रक्षा करती थी। साथ ही साथ उच्च वग के अधिकाश व्यक्ति बुन हुए लौह-कवच धारण किये हुए थे जिन पर मराठा की तलवारो तथा भालो का शायद ही कोई प्रभाव हो सकता था। इसके अतिरिक्त अब्दाली शाह अपन विरोधियो की प्रत्यक चाल पर कडी निगाह रखे हुए था, तथा अपन दल की लशमात्र त्रुटि को भी वह अविलम्ब दूर करने का प्रयत्न करता था। उसने मराठा को प्रथम टक्कर म ही थका त कर दिया तथा इस दौरान म उसन स्वय रक्षात्मक युद्ध किया। वह उस समय तक धैयपूवक प्रतीक्षा करता रहा जब तक कि मराठे पूण रूप स क्लान्त न हो गय और तब उसन उचित समय पर न केवल अपन सुरक्षित दला का ही उपयोग किया, वरन् उन सनिका म से भी कुछ का उपयोग किया जो भागकर पीछे की पक्तिया म छिप गये थ।

वास्तव म भाऊसाहब की बलपूवक माग प्राप्त करन की योजना तभी सफल हो सकती थी जबकि उसके दल के तीनो अगो अथात तोपखाना, पदल तथा अश्वारोहियो म पूण सहयोग बना रहता। परन्तु ऐसा सहयोग जबकि युद्ध पूरे वेग पर था, सुरक्षित न रह सका। मराठे न तो उन आज्ञाओ को समझे और न उन्होने उनका समुचित ढग स पालन ही किया, जो उनको इब्राहीमखाँ द्वारा निर्दिष्ट योजना के अन्तगत दी गयी थी।

३ युद्ध—सुबह नौ बजे के लगभग युद्ध आरम्भ हुआ तथा तीसरे पहर करीब तीन बजे तक अविराम गति स चलता रहा। अपन प्रथम प्रकोप म तो मराठो ने बडा घमासान युद्ध किया और अफगान सेना के छक्के छुडा दिये। मराठो का वाम दक्षिण तथा केन्द्र पक्ष प्रथम कुछ घण्टा तक घोर सघष करते रहे। गार्दी रुहेला द्वन्द्व, वजीर वलीशाह से भाऊसाहब की टक्कर, तथा मराठो के दक्षिण पक्ष से सिंधिया तथा होल्कर के नजीबखा और शाह पर तीव्र प्रहार आदि से मराठो की सुनिश्चित वीरता सिद्ध हो गयी, तथा उनके शत्रुओं की भारी क्षति तथा विनाश हुआ। अफगाना की स्थिति की रक्षा केवल उस सामयिक सहायता के कारण हुई जो शाह उन स्थानो पर भेजता रहा जहाँ पर उसे सकट की तनिक भी आशका हुई।

इब्राहीमखा ने अति वेग के साथ शाह के दक्षिण पक्ष पर आक्रमण किया, तथा अनाईखाँ को उसके दल के लगभग ३ हजार सैनिकों सहित मार गिराया जिससे एक बार के लिए तो शाह भी परिणाम के विषय में शंकित हो उठा। उसने तुरन्त ही अपने सुरक्षित दलो को आगे भेजा तथा इस प्रकार पुन स्थिति पर काबू कर लिया। इब्राहीमखा की पैदल सेना शत्रु के किसी बहुसंख्यक दल द्वारा घेर ली गयी तथा उसका सफाया कर दिया गया। उसकी भारी तोपे इस निकट से होने वाले सम्मिलित युद्ध के दौरान में सर्वथा शान्त रहीं।

तदपि केन्द्र मे बराबर दृढ़ संकल्पयुक्त भयानक युद्ध होता रहा क्योंकि वहाँ पर मराठा सेनापति तथा पेशवा का पुत्र दोनो ही उपस्थित थे। भाऊ साहब के दृढ़ प्रहारों से शाहवलीखाँ का दुर्रानी केन्द्र पूर्णतया छिन्न भिन्न हो गया। जब शुजा ने वजीर की इस दुखपूर्ण अवस्था को देखा, उसने तुरन्त ही काशीराज को सही स्थिति का पता लगाने के लिए भेजा। काशीराज ने देखा कि शाहवलीखाँ भूमि पर बैठा सिर पीट रहा है तथा अपने करुण क्रन्दन द्वारा अपने भागते हुए सैनिको को पुन एकत्र करने का प्रयास कर रहा है। वह कह रहा था— मेरे मित्रो ! तुम कहाँ भाग जा रहे हो ? काबुल बहुत दूर है तुम वहाँ भागकर नही पहुँच सकते।' जब शाह को अपने वजीर की इस संकट कालीन स्थिति का ज्ञान हुआ, उसने तुरन्त ताजा सिपाहियो की एक टुकड़ी उसकी सहायतार्थ भेजी तथा समस्त भगोडो को मृत्यु-दण्ड का भय देकर वापस बुला लिया। इस प्रकार लगभग १२ हजार सिपाही जो रणक्षेत्र से भाग गये थे तीसरे पहर दो बजे के लगभग पुन वापस आ गये। उस समय भाऊ साहब विश्वासराव, इब्राहीमखाँ, यशवन्तराव पवार जनकोजी सिंधिया अन्ताजी मानकेश्वर तथा शेष सरदार युद्ध को तीव्र करने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे तथा उनका आक्रमण भी प्रचण्ड हो गया था। मराठा पंक्ति के दक्षिण पक्ष पर भी इसी प्रकार घोर संघर्ष हो रहा था। जनकोजी सिंधिया ने शाहपसन्दखाँ तथा नजीबखाँ के हमलो का बहादुरी से मुकाबला किया तथा इसमे उनकी बहुत क्षति भी हुई थी।

मराठा सैनिको मे जो सवेरे तड़के ही प्रस्थान कर चुके थे तथा पाँच घण्टो से भी अधिक समय से निर्जल तथा निराहार घोर संघर्ष कर रहे थे अब पराजय के चिह्न प्रकट होने लगे थे। इसी समय अब्दाली ने अपनी सुरक्षित सेना के १० हजार सिपाहियो को युद्धस्थल मे अग्रसर कर दिया। इस सुरक्षित सेना ने निर्णायक रूप से युद्ध के रुख को मराठो के प्रतिकूल कर दिया तथा इस प्रकार ऊपर पर जमा हुई घूमने वाली हल्की तोपो ने

उनके विनाश को पूर्ण कर दिया। इनके तीन जत्थों ने, जिनमें से प्रत्येक जत्थे में ५०० ऊँट थे चक्कर काट-काटकर अति समीप से मराठा दल का विनाश किया। इस घमासान युद्ध में तीसरे पहर, तीन बजे के करीब एक जम्बूरक से एक आकस्मिक गोली विश्वासराव के लगी जिसके फलस्वरूप अपने घोड़े दिलपाक से गिर पड़ा और मर गया। यहीं से मराठों का क्षय आरम्भ हो गया। भाऊसाहब अपने भतीजे की मृत्यु के दृश्य को सहन नहीं कर सका, उसने उसके शव को एक हाथी पर रख दिया तथा अपने व्यक्तिगत रक्षकों सहित पूर्ण वेग से अफगान सेना में घुस गया तथा शीघ्र ही अफगानों द्वारा पूर्णतः घेर लिया गया। इस अन्तिम आध घण्टे में पेशवा के झण्डे के चारों ओर भीषण संहार हुआ। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त होने से योद्धा को पुण्य प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण से मराठों ने निस्सन्देह इस क्षण पर अपने सर्वस्व के बलिदान से इस पुण्य को प्राप्त कर लिया। भाऊसाहब के अदृश्य होते ही चारों ओर निराशा छा गयी, तथा जनवरी मास के उस अल्पकालीन दिन के चार बजने से पहले उस गड़बड़ी के साथ सामान्य भगदड़ आरम्भ हो गयी जो ऐसे अवसर पर अवश्यम्भावी होती है। अपनी पराजय का विश्वास होते ही सामान्य सैनिकों का एक छोटा सा भाग तथा उनके कुछ नेता जैसे मल्हारराव होल्कर, दमाजी गायकवाड़ विट्ठल शिवदेव तथा अन्य कुछ लोग कुशलतापूर्वक इस सर्वनाश से भाग निकले। परन्तु उस विशाल सेना का अधिकांश भाग उसके परिवारों तथा शिविर सेवकों सहित निर्दयी पठानों की तलवारों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। असहाय असैनिकों, श्रमकारियों दुकानदारों लिपिकों तथा अन्य लोगों के शवों तथा घायलों से रणक्षेत्र भर गया। कुछ लोग वापस शिविर को भागे, परन्तु वहाँ भी उनको कोई ठिकाना नहीं मिला। पौष मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को चन्द्रमा के धुंधले प्रकाश में अफगान जितने लोगों को मार सके, मार डाला। दूसरे दिन भी यह नरसंहार होता रहा। कुछ मराठे दिल्ली राजस्थान तथा जाट प्रदेश की ओर भाग निकले। जाट राजा तथा उसकी रानी किशोरी ने इन शरणार्थियों की यथाशक्ति सहायता की, उनको अन्न वस्त्र तथा निवास स्थान दिया तथा उनकी अकथनीय वेदना में उनको सान्त्वना दी।

शुजाउद्दौला के आदेश से अगले दिन अनुपगिरि गोसाईं तथा काशीराज ने रणक्षेत्र का निरीक्षण किया। वहाँ पर उनको लाशों के बड़े बड़े ३२ ढेर मिले जिनको गिनने पर २८ हजार लाशें निकलीं। इनके अतिरिक्त अगणित लाशें उस विशाल मैदान में तथा उसके चारों ओर जंगल में बिखरी हुई

मिली। लगभग ३५ हजार व्यक्तियों को निर्दयी दुर्रानियों ने बन्दी बना लिया तथा उनका बाद में निर्ममतापूर्वक संहार कर दिया गया। लगभग ८ हजार मराठा शरणार्थियों तथा ४०० अधिकारियों ने शुजाउद्दौला के शिविर में शरण ली। उसने यथाशक्ति उदारतापूर्वक उनकी रक्षा की तथा अपने निजी कोष से धन देकर उनको एक रक्षक दल के साथ सूरजमल के राज्य को भेज दिया। अनेक घायल व्यक्ति उस रात्रि की भीषण ठण्ड में मर गये। पानीपत का दीर्घ खाई लाशों से पट गयी। अनुमान है कि लगभग ७५ हजार मराठे इस विशाल नरसंहार में मारे गये तथा लगभग २२ हजार ने मुक्तिधन देकर अपने प्राणों की रक्षा की।

इब्राहीमखाँ गार्दी तथा जनकोजी सिंधिया घायल होने पर बन्दी बना लिये गये और बाद में उनका वध कर दिया गया। कुछ घोड़ों तथा शिविर की सामग्री के अतिरिक्त पानीपत के मैदान में शत्रु को कुछ भी लूट का माल न मिल सका। विश्वासराव तथा भाऊसाहब के शव ठीक-ठीक पहचान लिये गये तथा अनूपगिरि गोसाईं काशीराज तथा अन्य व्यक्तियों ने उनका उचित दाह संस्कार कर दिया। इस कृपा के लिए शुजा ने स्वयं शाह से प्रार्थना की थी तथा अब्दाली को उसने उसकी कृतज्ञता के रूप में २ लाख रुपये दिये। नवाब के प्रयास से भाऊसाहब का सिर एक दुर्रानी सवार के पास मिल गया, तथा एक दिन बाद इसका अग्नि संस्कार कर दिया गया। स्वयं काशीराज ने इस आशय के पत्र पेशवा को लिखे। भाऊसाहब की पत्नी पार्वतीबाई सकुशल ग्वालियर वापस आ गयी तथा भिलसा के समीप से पेशवा के साथ हो गयी।

अपनी विजय के स्मरणार्थ उत्सव के निमित्त अहमदशाह अब्दाली अगले दिन पानीपत के गाँव में मुसलमान सन्त अली कलन्दर की दरगाह के दर्शन करने गया। वह भव्य वस्त्र तथा आभूषण धारण किये हुए था जिनमें कोहनूर हीरा भी था। जो महान विजय उसने प्राप्त की थी उसके लिए उसने ईश्वर को भक्तिपूर्वक धन्यवाद दिया। इसके बाद उसने अपने शिविर को उखाड़ लिया तथा दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। यहाँ पर वह तीन दिन में पहुँच गया तथा नगर के बाहर उसने अपना डेरा लगाया। २९ जनवरी को उसने विजयी के रूप में प्रवेश किया तथा उन भव्य आगारों में निवास किया जहाँ पर किसी समय शाहजहाँ तथा अन्य उत्तराधिकारी रहते थे। उसने मुगल सम्राटों की प्रथानुसार शाहजहानाबाद में एक दरबार भी किया। परन्तु नाना प्रकार के कष्टों के कारण उसे हिन्दुस्तान का शासन न मिल सका, जिससे २० मार्च को उसने अपनी मातृभूमि की ओर प्रस्थान कर दिया।

स्वय अब्दाली ने युद्ध का निम्नाकित वृत्तात राजा माधवसिंह को भेजा था[४]—

'युद्ध की ज्वाला भभक उठी तथा समस्त दिशाओ म फल गयी। शत्रुओ ने भी अपना घोर पराक्रम दिखाया तथा ऐसा घमासान युद्ध किया जो अय जातियो की क्षमता से बाहर की बात है। सवप्रथम दोनो ओर से बम-वर्षा हुइ तत्पश्चात तोडेदार बन्दूक चली, इसके बाद युद्ध तलवारो, कटारो तथा छुरो की लडाई म परिवर्तित हो गया। दोनो एक दूसरे की गदन पर सवार थे। ये निभय हत्यारे (मराठे) युद्ध करने तथा ऐसे ही अय गौरवपूण कार्यो के करने म किसी से कम न थ। लेकिन तभी विजय का समीर प्रवाहित हो उठा तथा जसी अल्ला की मर्जी थी, भाग्यहीन दक्षिणियो की पूण पराजय हुई। विश्वासराव और भाऊसाहब जो मेरे वजीर के समक्ष युद्ध कर रह थ, मार डाले गये तथा उनके और बहुत से सरदारो का पतन हो गया। इब्राहीमखा गार्दी तथा उसका भाई घायल होन पर पकड लिय गये। बापू पण्डित (हिंगने) बन्दी बना लिया गया। शत्रु के ४० या ५० हजार सवार और पदल हमारी निमम तलवारो से घास की भाति काट दिये गय। मल्हार-राव और जनकोजी मार डाले गये अथवा उनका क्या हुआ, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। शत्रु के समस्त तोपखाने को, हाथियो को तथा अय सम्पत्ति को मेरे सैनिको न हस्तगत कर लिया है।'[५]

४ विजेता की पूण दुदशा तथा पेशवा से सन्धि—राजधानी मे अपने दो मास के निवास के दौरान म शाह अब्दाली ने भाऊसाहब के द्वारा किये हुए प्रबन्ध को पुष्ट करन का प्रयत्न किया अर्थात उसन शाहआलम को सम्राट घोषित कर दिया तथा उसके पुत्र जवाँबख्त को, जो उस समय दिल्ली म था, उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसने नजीबखा को मीरबख्शी बना दिया तथा शासन के काय उसके तथा जवाबख्त के सुपुद कर दिय गय। शुजा को यह दृढ विश्वास था कि शाह उसके द्वारा गत युद्ध म की गयी मित्रवत सेवाओ के उपहारस्वरूप वजीर का पद उसको द देगा लेकिन शाह ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शुजा न इसको अपना घोर अपमान समझा

---

४ सर जदुनाथ सरकार—माडन रिव्यू मई—१९४६। यहाँ अब्दाली निश्चयपूवक कहता है कि सदाशिवराव मार डाला गया। अत बाद के समस्त तक कि भावी छद्म-वेषी वास्तव मे सदाशिवराव था, गलत हैं।

५ विभिन्न लेखको ने इस खूनी युद्ध का विस्तृत वणन किया है। इनके अलावा इसके सम्बन्ध म काशीराज का बखर तथा नाना फडनिस की सक्षिप्त जीवनी भी देखी जा सकती है।

तथा ७ मार्च को वह अचानक लखनऊ चल दिया। शाह पर इसका कोई प्रभाव न पडा क्योंकि अब उसको भारत की राजनीति की विशेष चिन्ता न था। उसके सम्मुख स्वयं अपने अफगान सैनिकों का खुला विद्रोह था जिनको गत १८ मास से कोई वेतन न मिला था अर्थात उस समय से जब से वे भारत आये थे। उनको आशा थी कि भारतीय लूट के धन की प्राप्ति से वे धनिक तथा समृद्ध होकर अपने देश को लौटेंगे परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी क्योंकि इस बार लूट का कुछ भी माल उनके हाथ न लगा था। पानीपत में मराठा शिविर लूटा गया लेकिन वहाँ पर उनको कोई भी बहुमूल्य वस्तु न मिली थी क्योंकि मराठों ने प्रत्येक ऐसी वस्तु को अनाज प्राप्त करने के लिए पहले ही बेच दिया था। इसके विपरीत उनको अपना वेतन भी नही मिला था। उधर शाह निश्चिन्ततापूर्वक दिल्ली के एक भव्य महल में निवास कर रहा था तथा ऐसा प्रतीत होता है कि उसको वापस लौटने की कोई चिन्ता नही है जबकि उसके सैनिकों की इच्छा घर वापस लौटने की थी क्योंकि उनको भय था कि अगर वे यहाँ रुके तो उनको पेशवा के नेतृत्व मे आने वाले मराठों से एक दूसरा युद्ध और लडना पडेगा। जब इस जनरव का दबाव बहुत बढ गया तो शाह ने नजीबखाँ से धन का प्रबन्ध करने के लिए कहा ताकि सेना का वेतन चुकाया जा सके। वास्तव में बात यह थी कि शाह को पहले से ही अपनी सेना के पालन-पोषण पर लगभग एक करोड रुपया प्रति वर्ष खर्च करना पड रहा था जो मराठों के सेना व्यय के बराबर ही था। अतः वह उनका वेतन चुकाने में असमर्थ था। धन के विषय में नजीबखाँ ने भी, जो इस समय शासन के कार्यों का एकमात्र संरक्षक था, अपनी पूर्ण विवशता प्रकट की तथा कहा कि जो कुछ भी धन वह सम्भवतः प्राप्त कर सकता था, वह सब धन पहले ही दिया जा चुका है। उसने सुझाव दिया कि सूरजमल जाट के पास प्रचुर धन है इसलिए उस पर आक्रमण करके उसे बलपूर्वक धन देने पर विवश किया जाय। इसका अर्थ था कि एक युद्ध और किया जाय जबकि अफगान सैनिकों ने यह घोषित कर दिया था कि वे उस समय तक न हिलेंगे जब तक कि उनका पुराना वेतन नही चुका दिया जाता। शाह को इस कष्ट से मुक्त होने का कोई मार्ग न दिखायी दिया। अतः उसने घर वापस लौटने का निश्चय कर लिया। वह दिल्ली से २० मार्च को चला तथा मई में अफगानिस्तान पहुँच गया।

शाह अब्दाली की गतिविधियों तथा उसके प्रबन्धों का अध्ययन करने के बाद अब हम इस बात की समीक्षा करनी है कि उसकी प्रवृत्ति का मराठों पर क्या प्रभाव पडा। अफगानों की महान विजय तथा उनके हाथों मराठों की

घोर पराजय से विजेता को कोई अधिक लाभ न हुआ। उसको दिल्ली के ताज से तनिक भी मोह नही था। उसकी चिन्ता केवल यह थी कि किसी प्रकार पंजाब के समृद्ध प्रान्त पर, दिल्ली के कार्यों अथवा उस क्षेत्र मे मराठा के अधिकारो मे बिना हस्तक्षेप का सकट मोल लिये ही अपना अधिकार रखा जाय ताकि वहा से वह अपने दरिद्री देश की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। वास्तव मे पानीपत का यह भीषण युद्ध मराठा के प्रति नजीबखाँ की व्यक्तिगत शत्रुता के कारण ही हुआ था अन्यथा यह सभव कदापि न होता। परन्तु अब मराठा से घोर तथा अति-व्ययी युद्ध करने के बाद, शाह को यह चिन्ता हुई कि वह किसी प्रकार इस उत्पन्न हुई कटुता को दूर कर दे तथा यह सुनिश्चित कर ले कि जहाँ तक पंजाब का सम्बन्ध है मराठे उसको आगे तग न करेंगे। जब दिल्ली म उसको यह समाचार मिला कि पेशवा स्वय विशाल सेना लेकर ग्वालियर तक पहुँच गया है तथा किसी भी क्षण युद्ध पुन आरम्भ हो सकता है, तो वह पेशवा के साथ समझौता करने के लिए अधीर हो उठा, क्योकि परिस्थिति उसके सर्वथा प्रतिकूल थी और उसके अपने सैनिक खुला विद्रोह कर रहे थे। इस आशय का प्रस्ताव मराठा दूत हिंगने ने पहले ही दिल्ली म शाह के आगमन के तत्पश्चात किया था। बापूजी महादेव को इसी उद्देश्य से पानीपत के युद्ध के चार दिन के भीतर ही बुलाया गया। वह लिखता है— वजीर शाहवलीखा के माध्यम द्वारा मैं शाह से मिला, तथा उसको बताया कि पेशवा को उसके प्रति कोई द्वेष नही है और वह कुशलता-पूर्वक अपने देश को वापस जा सकता है। स्वय हिंगने उनके बीच म स्थायी शान्ति स्थापित कराने का कार्य स्वीकार कर लेगा। इस प्रस्ताव से शाह तुरन्त सहमत हो गया तथा उसने याकूबअलीखा को तुरन्त ग्वालियर जाकर पेशवा के साथ सन्धि का प्रस्ताव करने का आदेश दिया। शाह ने इस प्रस्ताव पर अपनी पूर्ण स्वीकृति दे दी तथा अपने देश को वापस जाने का निश्चय कर लिया। जब वह लाहौर पहुँचा, उसने पुन याकूबअलीखाँ को साग्रह आदेश भेजे कि स्थायी शान्ति के विषय मे विलम्ब न करे।'[६]

यदि पेशवा का मानसिक सन्तुलन इस समय यथापूर्व ठीक होता तो, सन्धि कभी की हो गयी होती। परन्तु यहाँ पर भी अड़चनें उपस्थित हो गयी— कुछ अश म तो नजीबखाँ के कारण जिससे मराठे अब अपना बदला ले सकते थे, तथा कुछ अश मे उस घातक प्रहार के कारण जो समस्त मराठा जाति तथा उनकी उत्तरी नीति पर १४ जनवरी को हुआ था। वास्तविक तथ्यो के

---

६ हिंगने पत्र जिल्द १, पृ० २०२ २०५ २०७ २१०।

एकत्र करने मे—स्वय भाऊसाहब के विषय म—भी कइ बहुमूल्य मास नष्ट कर दिये गये। बहुत समय तक तो किसी मराठा सेनापति को यह भी साहस न हुआ कि वह दिल्ली आकर अफगान शाह स मिले। यदि मल्हारराव होल्कर तथा नारोशकर दिल्ली म होते या हिंगने के बुलाने पर तुरत आ जाते तो शान्ति प्रस्तावो मे विलम्ब न हुआ होता। २३ माच को पेशवा ने हिंगने को लिखा—"शाह अब्दाली तथा उसके वजीर शाहवलीखाँ से प्राप्त पत्रो के उत्तर मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। उनका दूत गुलराज इन पत्रो को यहाँ पर लाया था। अब मैं अनवरल्लाखाँ तथा हुसन मुहम्मदखाँ को शाह के साथ शान्ति क निमित्त वार्तालाप करन के लिए भेज रहा हूँ। मैंने मल्हारराव होल्कर को अधिकार दे दिया है कि वह इस विषय को समाप्त कर दे। अब आप सीधे होल्कर स अपना पत्र व्यवहार करें तथा उसके फैसले को स्वीकार कर लें। मैं चाहता हूँ कि आप इन दो परामर्शको अर्थात अनवरल्ला तथा मुहम्मद हुसन से पूण विचार विमश करें तथा वार्तालाप की प्रगति से मुझको सूचित रखें। आजकल शाह कहाँ हैं? क्या गाजीउद्दीन उससे मिल लिया है या नही? कृपया यह सब पूण विवरण सहित लिखें।'

६ अप्रल को पेशवा न पुन वही प्रश्न हिंगने से किये और पूछा— अब दिल्ली का बादशाह कौन है वजीर कौन है अब्दाली इस प्रकार अकस्मात क्या चला गया है गाजीउद्दीन की तथा अन्य लोगो की अब क्या योजनाएँ हैं? पेशवा न यह भी कहा कि 'इस समय मल्हारराव होल्कर विशाल सेना सहित ग्वालियर म है तथा उत्तर भारत म हमारे कार्यों का पूण ध्यान रखेगा।

मई १७६१ ई० के आरम्भ म होल्कर की ओर स गगाधर यशवन्त न पेशवा को यह वृत्तान्त भेजा— स्वदेश को वापस होन के पहले शाह ने हिंगने की उपस्थिति म शुजाउद्दौला तथा अपन रुहेला मित्रो को निश्चित आदेश दिये कि चूंकि उसन अब पेशवा के साथ स्थायी सधि स्थापित कर ली है अत उन सबको पेशवा के अधिकार का सम्मान करना चाहिए तथा इसी म उनका कल्याण निहित है। पेशवा न प्रेमपूवक शाह के याकूबअली को हिंगने के साथ पूना भेजने वाले प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जिसस कि स्थायी शान्ति क निमित्त शर्तें निश्चित हो जायें।

शान्ति स्थापना क इस काय म लगभग दो वर्षों का अनिवाय विलम्ब हो गया। पेशवा की मृत्यु जून म हो गयी जिसके फलस्वरूप नवीन पेशवा माधवराव तथा उसके चाचा रघुनाथराव म घोर पारिवारिक कलह उत्पन्न हो गया। एक बात तो पत्र म ही अत्यन्त स्पष्ट है कि पानीपत क युद्ध म

जो अपने भारी नरसंहार के कारण मराठों के लिए कितना ही भयानक क्यों न हो, कोई बात अन्तिम रूप से निश्चित न हुई, तथा जहाँ तक दिल्ली की राजनीति का सम्बन्ध है प्रत्येक वस्तु की स्थिति बिलकुल पूर्वावस्था में ही रही।[७] स्वयं अब्दाली ने इस प्रकार पेशवा को लिखा—"मेरे तथा आपके बीच द्वेषभाव उत्पन्न होने का कोई विशेष कारण नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि इस दुर्भाग्यवश युद्ध में आपके पुत्र तथा भाई का वध हुआ है परन्तु इसका मूल कारण भाऊसाहब ही था। हमको तो आत्मरक्षा के हेतु लड़ना पड़ा क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई अन्य चारा ही नहीं था। तथापि उनकी मृत्यु का हमें अत्यन्त खेद है। दिल्ली के शाही प्रबन्ध का विषय हम आपकी इच्छा पर छोड़ने को तैयार हैं, बशर्ते कि आप सतलज नदी तक पंजाब पर हमारा अधिकार स्वीकार कर लें, और शाहआलम को सम्राट के रूप में सहायता दें। आप उन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं को अवश्य भूल जायें जो घटित हो चुकी हैं तथा हमारे प्रति स्थायी मित्रता रखें जिसकी हम साग्रह याचना करते हैं।"[८]

इस प्रकार के संकेतों और पत्रों के साथ जो कि शान्ति और सद्भावना के मूलभाव में ओतप्रोत थे अब्दाली ने अपने दूत गुलराज को पेशवा के पास भेजा। उसके साथ प्रथानुसार वस्त्र भी भेजे गये थे। गुलराज १० फरवरी, १७६१ ई० को मालवा में पेशवा से मिला, तथा गंगाधर चन्द्रचूड़ को आज्ञा हुई कि वह दिल्ली जाकर मामले को सुलझाये। इस प्रकार काफी विलम्ब हो गया तथा शान्ति सन्धि को उसका अन्तिम रूप देने में दो वर्ष से भी अधिक समय लग गया यद्यपि सारभूत धाराओं पर वाद विवाद हो चुका था तथा वे २० मार्च के पहले उसी दिन निश्चित हो गयी थीं जिस दिन अब्दाली तथा पेशवा अपने स्थानों से अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े थे। अब्दाली का पेशवा के साथ शीघ्र सन्धि स्थापित करने का एक और महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि अब सिक्ख पंजाब में काफी शक्तिशाली हो गये थे तथा उन्होंने उस प्रान्त पर अब्दाली के अधिकार का घोर प्रतिरोध किया। पानीपत के युद्ध के बाद शाह अब्दाली प्रतिवर्ष पंजाब आता तथा सिक्खों के हाथों परास्त होकर वापस लौट जाता था। 'पंजाब को विजय करने के व्यर्थ प्रयास में अब्दाली का स्वास्थ्य दिनों दिन क्षीण होता गया तथा उसके जीवन के अन्तिम

---

[७] पेशवा दफ्तर संग्रह खण्ड २ पृ० १०३, १४६ खण्ड २१, पृ० २०२।
[८] डा० हरिराम गुप्त कृत 'हिस्ट्री आव द सिक्ख्स'। सरकार कृत फाल आव द मुगल एम्पायर, खण्ड २, पृ० ३७६।

कुछ वर्ष दुखी और निरुद्यम सिद्ध हुए। उसकी पीठ पर फोड़ा हो गया जिसके कारण १४ अप्रल, १७७२ ई० को ४८ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

इस बीच में अब्दाली के दूत गुलराज तथा आनन्दराम पूना पहुँच गये थे तथा पेशवा माधवराव प्रथम ने फरवरी १७६३ ई० में शान्ति तथा सद्भावना की सन्धि को उसका अन्तिम रूप दे दिया। पेशवा ने पूना से वस्त्र तथा एक सुन्दर हाथी शाह को भेंट में भेजा। इस प्रकार पानीपत के विनाशकारी युद्ध की दुखपूर्ण स्मृतियों को अन्तिम रूप से मिटा दिया गया।[६]

५ बुन्देलखण्ड में पेशवा की दुर्दशा—यहाँ पर हम पुनः अक्टूबर १७६० ई० से शुरू होने वाले उन चार महीनों में पेशवा की गतिविधियों का निरीक्षण करेंगे जबकि उनका पुत्र तथा चचेरा भाई पानीपत में संकटग्रस्त थे। अब तक उसको उत्तर में घटित दुखपूर्ण घटनाओं का कोई समाचार प्राप्त न हुआ था तथा वह उस दिशा के कार्यों के प्रति निश्चिन्त था क्योंकि सदाशिवराव के अभियान के निमित्त उसने प्रत्येक आवश्यक वस्तु का प्रबन्ध कर लिया था। यथापूर्व दशहरा के अवसर पर उसने पूना से उत्तर की ओर प्रस्थान कर दिया। उसका उद्देश्य वहाँ जाकर वहाँ के राजनीतिक प्रबन्ध को पूर्ण करना था क्योंकि उसे आशा थी कि तब तक अब्दाली का पूर्ण निष्कासन हो गया होगा। भाऊसाहब के अन्तिम पत्र पर, जो उसको लिखा गया था, १४ नवम्बर की तारीख पड़ी हुई थी और उस समय तक दोनों पक्ष पानीपत में एक-दूसरे के समक्ष आकर डट गये थे तथा किसी भी समय भाग्य का निर्णय हो जाने की आशा थी। अतः बिना लेशमात्र चिन्ता किये पेशवा ने मन्द गति से अहमद नगर की ओर प्रस्थान किया तथा इसी बीच उसने दो मास तक गोदावरी के तट पर विश्राम किया परन्तु फिर भी उस उत्तर से कोई समाचार प्राप्त न हुआ। अतः अपनी सेनाओं की स्थिति के विषय में उसकी चिन्ता नित्य प्रति बढ़ती गयी। उसने कई व्यक्तियों को पत्र लिखकर समाचार भी पूछे। अन्त में किसी दुर्घटना की शंका करके १७६० ई० के अन्तिम दिन उसने शीघ्रता-पूर्वक अपने भाई रघुनाथराव तथा एक बड़ी सेना—जिसके नेता दोनों भोंसले बन्धु, गोपालराव पटवर्धन, सदाशिव रामचन्द्र, यमाजी शिवदेव तथा अन्य सरदार थे—के साथ अपने शिविर से प्रस्थान कर दिया। ९ जनवरी को उसने रघुनाथराव को निजाम पर निगाह रखने के लिए वापस भेज दिया। १८ जनवरी को पेशवा ने मालवा में प्रवेश किया तथा तुरन्त भाऊसाहब को

६ माधवराव रोज़्नुसी खण्ड १, पृ० १, ६, ७। ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, खण्ड १, पृ० ५, ६।

लिखा कि वह उसके आने तक अब्दाली को रोके रहे। उसकी योजना थी कि इस प्रकार वे अफगान सेना को अपनी दोनों सेनाओं के बीच में लेकर कुचल देंगे। भिलसा में जब वह समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था, उसने २४ जनवरी को किसी साहूकार के एक व्यक्तिगत पत्रवाहक को रोक लिया जो एक पत्र ले जा रहा था जिसमें आभूषणों से सम्बन्धित रूपकों द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि मराठा दल किसी भयानक घटना का शिकार हो गया है। अन्य गूढ युक्तियों में ये शब्द थे—'दो मोती गल गये हैं २५ सोने की मुहरें खो गयी हैं तथा चाँदी और ताँबे की कोई गिनती नहीं हो सकती।' कुछ समय बाद उसे अन्य समाचार मालूम हुए जिनसे स्पष्ट था कि किस प्रकार मराठे पानीपत की परिखा में निरुद्ध होकर क्षुधा से व्याकुल हो उठे, किस प्रकार निनाद करते हुए वे लड़ने के लिए झपटे तथा किस प्रकार शक्तिशाली अफगान सेना के द्वारा पूर्ण रूप से परास्त कर दिये गये। दुख को सहन करने में असमर्थ होकर पेशवा भग्नहृदय से अपने शिविर में प्रविष्ट हुआ। धीरे धीरे उसको नित्य कुछ न कुछ समाचार उन संकटग्रस्त सैनिकों की टोलियों से प्राप्त होते रहे जो शनैः शनैः वापस लौट रही थीं। परन्तु कोई भी वास्तविक घटना का सन्तोषजनक वर्णन न दे सका।[1]

एक मास से अधिक समय तक पेशवा तथा उसके सहयोगियों के मन में घोर संशय बना रहा। फरवरी के महीने में पानीपत से वापस लौटते हुए जब नाना पुरन्दरे उससे मिला, तब कहीं जाकर उसे १४ जनवरी को हुई मराठा दल की दुर्गति के विषय में कुछ विश्वसनीय विवरण प्राप्त हुए। अपने पुत्र की मृत्यु तथा अपनी विशाल सेना के सर्वनाश के समाचार से पेशवा कुछ समय के लिए अत्यधिक व्याकुल हो उठा। लेकिन इस समाचार से कि भाऊ साहब और जनकोजी घायल होकर वापस आ रहे हैं इन सूचनाओं की सत्यता के बारे में सन्देह हुआ तथा जिनको असत्य सिद्ध होने में दो मास और लग गये। साथ ही साथ पेशवा का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट हुआ कि इस बात का अविलम्ब निरूपण किया जाये कि वास्तव में उन लोगों की क्या दशा हुई जो अब तक जीवित माने जाते थे। लेकिन पहले से ही असाध्य रोगग्रस्त पेशवा के दुर्बल शरीर तथा गिरते हुए स्वास्थ्य के लिए यह धक्का असह्य सिद्ध हुआ तथा उसको दिल्ली की ओर जाने का अपना विचार त्यागना पड़ा। दुर्भाग्य से नारोशंकर तथा मल्हारराव अति दुखित अवस्था में दिल्ली से प्रयाण कर गये थे। इस समय यदि वे राजधानी में डटे होते तो पेशवा उनके

---

[1] राजवाडे संग्रह खण्ड ३, पृ० २१० खर, खण्ड १, पृ० २६।

साथ गर्व मनित हो सकता था तथा वापस लौटते हुए शाह अब्दाली से सम्राट-कृति स्थापित करके दिल्ली में पुनः मराठा सत्ता स्थापित कर सकता था। पेशवा भिलसा से ७ फरवरी को उत्तर की ओर चल पड़ा तथा ३२ मील दूर पठार तक पहुँच गया। यहाँ पर वह कुछ दिनों तक ठहरा रहा तथा विचार विनिमय करता रहा। काफी सोच विचार के बाद वह २२ मार्च को दक्षिण की ओर लौट पड़ा और ६ अप्रैल को इन्दौर होता हुआ आगे बढ़ा। पेशवा ने भिलसा तथा सिरोंज में जो दो मास व्यतीत किये थे वे व्यर्थ न गये। मराठा सत्ता तथा गौरव पुनः मालवा, बुन्देलखण्ड तथा दोआब में स्थापित हो गये। यद्यपि पेशवा स्वयं दुःख तथा पीड़ा से व्याकुल था परन्तु उसके पास कुछ सैनिक तथा सरदार थे जिन्होंने मराठा शासन को, जो कुछ महीनों के लिए डाँवाडोल हो गया था, पुनः स्थापित करने में यथाशक्ति प्रयत्न किया। संकटग्रस्त नेताओं के साथ, जिनमें मल्हारराव होल्कर, नारोशंकर तथा पवार-परिवार भी शामिल था, अति कठोर व्यवहार किया गया क्योंकि वे दिल्ली में शत्रु का बिना वीरतापूर्वक मुकाबला किये ही भाग निकले थे। कुछ महीनों के लिए उनके अधिकृत प्रदेशों को छीन लिया गया। लेकिन जैसे ही साधारण स्थिति पुनः स्थापित होने लगी, ये प्रदेश उनके स्वामियों को वापस कर दिये गये। मल्हारराव ने लुप्तप्राय मराठा गौरव को पुनः स्थापित करने का बीड़ा उठाया। इस समय मुख्य राजपूत शासक जयपुर का माधवसिंह था। मल्हारराव ने कठोरतापूर्वक उससे शेष कर माँगा। राजा ने कर देने से इन्कार कर दिया तथा हथियार लेकर प्रतिरोध के लिए तैयार हो गया। मल्हारराव ने उसकी चुनौती सहर्ष स्वीकार कर ली। कोटा के २० मील उत्तर पूरब में मांगरौल नामक स्थान पर पूरे दो दिनों तक (२९ तथा ३० नवम्बर १७६१ ई०) घोर युद्ध होता रहा, जिसमें उसने माधवसिंह को पूर्णतः परास्त कर दिया। इस एक उदाहरण से मराठा शक्ति का उत्तर भारत से लोप हो जाने सम्बन्धी सभी अफवाहों का खण्डन हो गया। इस प्रकार एक ही प्रहार से मल्हारराव ने मराठा राजनीति में अपने पूर्व गौरव की आभा को जिसको पानीपत के रण से अपने अति क्षिप्र पलायन के कारण वह नष्ट कर चुका था पुनः प्राप्त कर लिया।

६ विपत्ति का पुनः निरीक्षण—मराठों द्वारा पानीपत का तृतीय युद्ध लड़े हुए इस समय २०० वर्ष हो गये हैं किन्तु भारत के इतिहास पर उसका स्थायी प्रभाव पड़ा है। लेखक तथा विद्यार्थीगण इस समय तक दृढ़तापूर्वक धीर तथा विवेचनात्मक अनुसन्धान में व्यस्त हैं। प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से निन्दा और प्रशंसा की है। यहाँ पर हम उस समस्त संघर्ष का जो कि

मराठों के प्रति इतना घातक सिद्ध हुआ, संक्षिप्त तथा निष्पक्ष पुनर्निरीक्षण करेंगे तथा साथ साथ उसके महत्त्वपूर्ण परिणाम के उत्तरदायित्व को भी निर्धारित करेंगे।

इस राष्ट्रीय विपत्ति के समान महत्त्वपूर्ण विषय इस समय तक बिना अनुसन्धान के नहीं रह सकता था। ऐसा मान लेना युक्तिसंगत है कि पेशवा माधवराव प्रथम को इस घटना का जो पूर्ण तथा विधिवत विवरण प्राप्त हुआ उसका सम्बन्ध पूर्ववर्ती तथा दूरस्थ और समीपस्थ कारणों से था[11] जिनका स्पष्ट वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

रघुनाथराव उत्तर में मराठा कार्यों का प्रबन्ध समुचित ढंग से न कर सका। यहाँ तक कि वह सिन्धिया तथा होल्कर के बढ़ते हुए वैमनस्य को भी न शान्त कर सका।[12] सदाशिवराव को मुख्यतः इसी कारण से वहाँ भेजा गया था कि वह भूतकालीन गलतियों को सँभाल ले। इस कार्य का सम्पादन उसने बड़ी शीघ्रता तथा योग्यता से किया। वास्तव में वह उस समय के मराठा नेताओं में सबसे कुशल व्यक्ति था। उसके अदम्य साहस का लोग आदर करते थे तथा उससे डरते भी थे। प्रकृति से वह निश्चय हठी तथा उग्र

---

[11] यह सम्भव है कि वे दोनों प्रामाणिक ग्रन्थ, जो 'भाऊसाहब की कैफियत' तथा भाऊसाहब की बखर के नाम से प्रसिद्ध है इस प्रकार के ही किसी अनुसन्धान का परिणाम हों, जो भावी प्रशासकों की ज्ञान वृद्धि के निमित्त किया गया हो। ये दोनों पुस्तकें उन समस्त प्रधान तत्त्वों को संक्षेपतः व्यावहारिक रूप से प्रकट करती है जिनका होना एक साधारण पाठक के बोध के लिए अति आवश्यक है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि उनका आधार मूल सामग्री है। होल्कर तथा नारोशंकर को मृत्युमुख पेशवा ने उनकी उपेक्षा के फलस्वरूप दण्डित किया। वास्तव में अगर देखा जाय तो पराजित पक्ष के लोगों के प्रति इतिहासकारों का रवैया प्रायः अन्ध तथा अन्यायपूर्ण होता है और विजेता प्रायः सर्वसाधारण की प्रशंसा के पात्र बन जाते हैं। आधुनिक अनुसन्धान के कारण मराठी तथा फारसी का बहुत-सा साहित्य प्रकाश में आ गया है। विशेषकर पेशवा दफ्तर संग्रह के तीन खण्ड नं० २, २१ २७ पुरन्दरे दफ्तर, खण्ड १ काशीराज तथा नूरुद्दीन हुसन के श्रेष्ठ फारसी वृत्तान्त राजवाडे संग्रह के खण्ड १ तथा ६ के पत्र तथा फाल आव द मुगल एम्पायर' खण्ड २ में सर जदुनाथ सरकार द्वारा प्रस्तुत स्पष्ट तथा युक्तिपूर्ण विश्लेषण, विषय के स्पष्टीकरण में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं।

[12] शाहू के देहान्त के बाद स्वयं पेशवा कभी उत्तर को नहीं गया। १७५९ ई० में जब दक्षिण में उसको व्यस्त रखने वाला कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं था, वह उत्तर की ओर जा सकता था।

था परन्तु ये अवगुण उसकी राष्ट सेवा की मौलिक इच्छा के ही परिणाम थे। यद्यपि वह पहले कभी उत्तर को न गया था परन्तु अपने सतत अनुसन्धान तथा परिश्रम के द्वारा उसने इस कमी को शीघ्र ही दूर कर दिया लेकिन अपने अफगान प्रतिद्वन्द्वी की तुलना मे वह रण चातुय म अवश्य ही नीचा था। आयु मे भी वह अब्दाली शाह से सात वष छोटा था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उसका प्रशिक्षण एशिया के नैपोलियन नादिरशाह के अधीन हुआ था तथा उसे मध्य एशिया मे हुए अनेक युद्धो का असाधारण ज्ञान था। उसे नाना प्रकार के मनुष्यो तथा परिस्थितियो से सतत व्यवहार करना पडा था वह बाढग्रस्त नदियो दुगम पवतो तथा मानुषिक विषमताओ स उत्पन्न विघ्न बाधाओ को सदव परास्त करता रहा था। इसका सर्वोत्तम उदाहरण उसकी शान्त तथा धीर वृत्ति थी जिसके द्वारा उसन इस अभियान के प्रत्यक विवरण का पूण प्रबन्ध किया था तथा वह ढग जिसके द्वारा वह युद्ध की विषम परिस्थितियो को अपने शत्रु के प्रतिकूल पलटने म सफल हुआ था। अपनी इसी दूरदर्शिता के कारण उसने यमुना पर अधिकार कर उसके आग क प्रदेश स अपनी सना के निमित्त पर्याप्त भोजन-सामग्री प्राप्त करन का निश्चित प्रबन्ध कर लिया था तथा मराठो क परिखायुक्त शिविर को वह सफलतापूवक घरन म सफल हो गया था।

मल्हारराव होल्कर तथा अन्य लोगो ने भाऊसाहब को सुझाव दिया था कि वह महिलाओ तथा असनिको को चम्बल के पीछ अथवा मथुरा क समीप किसी स्थान पर रखन का प्रबन्ध करे लेकिन भाऊसाहब ने इस ठुकरा दिया। इस प्रकार असनिको की विशाल सख्या का भार उसक ऊपर अनावश्यक रूप स आ पडा। इनकी सख्या वास्तविक योद्धाओ की सख्या स कम स कम तिगुनी थी। यदि इस बडी सख्या को भोजन देन का भार उस पर न आ पडा होता तो उसकी सना को इस भयानक भुखमरी का सामना नहीं करना पडता।

(५) अक्टूबर मास के अंतिम दिन जब दोनों दल एक दूसरे के सामने आकर डट गये, भाऊसाहब को तुरंत अब्दाली पर आक्रमण कर देना चाहिए था तथा दिल्ली के अपने आधार-केन्द्र से पूर्ण सम्पर्क स्थापित रखना चाहिए था। इसके विपरीत उसने परिखायुक्त शिविर में व्यर्थ ही ढाई मास नष्ट कर दिये, और अंत में निराहार की समस्या से विवश होकर उसने बचने के लिए अपना अन्तिम असफल प्रयत्न किया। लेकिन इस समय हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा हम यह जान सकें कि भाऊसाहब के इतनी देर तक प्रतीक्षा करने के क्या कारण थे। और (६) उस समय तो स्थिति अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच गया जबकि भाऊसाहब यह देखकर कि विश्वासराव का वध हो गया है अधीर होकर रण में कूद पड़ा। उस समय शायद उसको यह विश्वास रहा हो कि मेरे बाद तो विप्लव हो ही जायगा'। (७) एक अन्य बाधा जो मराठों को सहन करनी पड़ी, उसका उल्लेख संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है। एक मराठा सैनिक का बल उसके घोड़े में ही निहित होता है तथा वही मराठा सेना को भाग दौड़ की क्षमता प्रदान करता है। पानीपत में भाऊसाहब के अधिकार में दक्षिण से आने वाला सर्वोत्तम अश्वारोही दल था। परन्तु परिखायुक्त शिविर में निवास के दौरान में उस दल के अधिकांश घोड़े क्षुधा से पीड़ित होकर मर गये थे जिसके कारण अश्वारोही भी पैदल सैनिकों की भांति लड़ने पर विवश हो गये जिसका उन्हें तनिक भी ज्ञान न था परन्तु इसके अलावा इस समय अन्य कोई चारा भी तो न था।

समालोचकों का एक दल इस तर्क को प्रस्तुत करता है कि पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय का मुख्य कारण उनकी अपनी परम्परागत छापामार युद्ध प्रणाली का परित्याग था। परन्तु यह बात तर्कसंगत नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रणाली के द्वारा ही विगत शताब्दी में मराठों ने अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक उन्नति की थी परन्तु इस प्रकार का युद्ध केवल दक्षिण के पठार के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए ही उपयुक्त था। उत्तर भारत के ऐसे विस्तृत मैदानों में जहाँ सिन्धु से बंगाल की खाड़ी तक एक भी प्राकृतिक बाधा नहीं है यह प्रणाली प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सकती थी। एक अन्य कारण यह भी था कि इन अनजाने प्रदेशों से मराठा पूर्ण अनभिज्ञ थे और यहाँ के निवासी उनसे केवल अपरिचित ही न थे बल्कि उनसे शत्रुवत व्यवहार करते थे। इन्हीं त्रुटियों के प्रतिकार के लिए भाऊसाहब ने अपने को निपुण तोपखाने से सुसज्जित कर लिया था तथा इसी की सहायता से उसने दिल्ली तथा कुंजपुरा पर अधिकार किया था। लेकिन पानीपत में अन्तिम दिवस पर परिस्थिति इस प्रकार परिवर्तित हो गयी कि यही तोपखाना भारस्वरूप सिद्ध हुआ।

७ विपत्ति का महत्त्व—यह मान लेना कि पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण उत्तर मे मराठा शक्ति का सवनाश हो गया था इसके कारण भारत म मराठा-साम्राज्य की नीव हिल गयी सवसाधारण मे प्रचलित मिथ्या प्रवाद के अतिरिक्त कुछ भी नही है। वास्तव मे इस युद्ध म मराठा शक्ति के भयानक जनसहार के बावजूद भी किसी बात का कोई समुचित निणय न हो सका। लेकिन इसके दूरस्थ परिणामस्वरूप शासक जाति के दो प्रमुख नताओ—नाना फडनिस तथा महादजी सिंधिया—का उदय अवश्य हुआ जो किसी प्रकार पानीपत की उस महान विपत्ति स बच निकले थे। इन्होने मराठा सत्ता को पुन उसके प्राचीन वभव को पहुँचाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप पानीपत के कुछ दिन बाद ही मराठा सत्ता यथापूव समृद्ध होने लगी तथा इसी प्रकार ४० वर्षों तक जब तक कि महादजी सिंधिया का देहान्त न हो गया या १९वी शताब्दी के आरम्भ मे द्वितीय मराठा युद्ध द्वारा (१८०३ ई०) ब्रिटिश प्रभुता की स्थापना न हो गयी उसका उत्थान जारी रहा। सवप्रथम हानि जो मराठा सत्ता को पहुँची वह उनके महान पेशवा माधवराव की अकाल मृत्यु थी। इसके कारण ब्रिटिश सत्ता को इतिहास के मच पर सुविधापूवक प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हो गया तथा उन्होंने २५ वर्षों तक मराठा से भारतीय प्रभुता के निमित्त संघर्ष किया। पानीपत की विपत्ति वास्तव म प्रकृति का प्रकोप था इसमे धन और जन दोनो का ही नाश हुआ लेकिन फिर भी इसका कोई निर्णायक राजनीतिक परिणाम न हुआ। यह कहना कि पानीपत की विपत्ति ने मराठों के प्रभुता के स्वप्न का अन्त कर दिया परिस्थिति को गलत समझना है तथा जिसका उल्लेख समकालीन विश्वसनीय पत्रो म है। वास्तविकता का शुद्ध निरूपण एक विद्वान मनीषी ने इस प्रकार किया है। उसका कथन है—

आग्र-परिवार के पतन (१७५६ ई०) तथा पानीपत की विपत्ति (१७६१ ई०) ने अग्रजो को उनके दुष्ट पडोसियो की दासता म मुक्त कर दिया तथा उनकी उन्नति का माग प्रशस्त किया।[११] यह वास्तव म मराठा विफलता का अप्रत्यक्ष परन्तु महत्त्वपूर्ण परिणाम था। इस घटना ने मराठा आक्रमणों का हमेशा के लिए परिवर्तन करने के स्थान पर उनको नवीन बल तथा उत्साह प्रदान किया जैसा कि भारतीय महाद्वीप पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के उनके प्रयत्नो म ज्ञात होता है यद्यपि पानीपत के युद्ध म एक समय का बलिदान पूरा हो चुका था और जिसमे कि व अति शक्ति-

[११] कुछ इस आरजिन आव बौम्बे।

शाली सिद्ध हुए थे। घिर हुए शिविर के अति दुख तथा क्लेशमय जीवन के पश्चात भी उनमें तनिक भी निराशा पराजय तथा विद्रोह की भावना पैदा न हुई। भाऊसाहब के साहस से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपूर्व वीरता दिखाने की प्रेरणा प्राप्त हुई तथा इस अन्तिम पराजय के बाद भी लोगों ने उस घटना का इस प्रकार वर्णन किया जैसे कि वे लोग महान योद्धा थे। वास्तव में अगर देखा जाय तो मराठे बहुत ही व्यवहारकुशल लोग हैं। उनकी प्रकृति ऐसी है कि वे अपनी विजय पर अति उत्साहित नहीं होते और न ही अपनी पराजय पर वे निरुत्साह होते हैं। मेजर इवान्स बेल लिखता है—"पानीपत का युद्ध मराठों के लिए अपूर्व विजय तथा गौरव का विषय था। उन्होंने भारत भारतीयों के लिए है' की भावना से प्रेरित होकर युद्ध किया था, जबकि दिल्ली, अवध तथा दक्षिण के मुसलमान शासक इस युद्ध से अलग रहे तथा षड्यन्त्रों में व्यस्त रहे। यद्यपि मराठों की पराजय हुई, तथापि विजयी अफगान वापस हो गये तथा फिर कभी उन्होंने भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं किया।

प्रकार अंग्रेज व्यापारी इस काय के समथ हो गये कि व बगाल तथा बिहार म राजनिर्माता का स्थान प्राप्त करन का सफल प्रयास कर सके तथा इस प्रकार प्राप्त शक्ति का उपयोग इस चातुय स करें कि समस्त देश म उनके आधिपत्य का जाल सफलतापूवक बिछ जाय। अनानी तथा परस्पर युद्ध म सलग्न भारतीय शासक इन ब्रिटिश गतिविधियो के महत्त्व को समझन म असफल रह तथा उनकी राजनीतिक तथा प्रादेशिक महत्त्वाकाक्षा के अथ को भी वे न समझ सके। उनक सभी प्रमुख नता अर्थात अलीगौहर शुजाउद्दौला सूरजमल, गाजीउद्दीन नजीबखा रघुनाथराव मल्हारराव होल्कर आदि कोई भी दूरदर्शी नही था। अत व उन युगान्तरकारी घटनाओ की प्रवृत्ति का मूल्याकन करने म असमथ रह जो बगाल तथा कर्नाटक म घट रही थी। इसके विपरीत वे दिल्ली म अपन व्यक्तिगत झगडो मे अपनी शक्ति नष्ट करत रह।

पानीपत का युद्ध १४ जनवरी १७६१ ई० को हुआ था। उसके दूसरे ही दिन मुगल सम्राट शाहआलम को बगाल का शासन प्राप्त करने के प्रयत्न म घोर पराजय उठानी पडी। यह युद्ध सोन नदी के तट पर मुगल फौजो तथा मेजर कोनाक के नेतृत्व म ब्रिटिश फौजो के मध्य हुआ था जिसम शाहआलम के फासीसी अधिकारी बन्दी बना लिये गय तथा उसको स्वय विवश होकर ब्रिटिश सुरक्षा की शरण लेनी पडी। इस घटना के दूसरे ही दिन अर्थात १६ जनवरी को अंग्रेजो न पाण्डुचेरी पर अधिकार कर लिया तथा इस प्रकार भारत से फासीसी सत्ता का पूण लोप हो गया। वास्तव मे यह तीन दिन इस देश के भावी भाग्य क निर्माण म अति महत्त्वपूण सिद्ध हुए। पानीपत के इस प्रहार के कारण पेशवा का देहान्त हो गया तथा थोड-से वर्षों क लिए क्षितिज पर अंग्रेजो का कोई भी प्रतिस्पर्द्धी न रहा। उनके व्यवहार तथा पत्रव्यवहार का जो स्वर पेशवा बाजीराव प्रथम के समय से माधवराव के समय तक प्रचलित रहा था, अब विशेष रूप से बदल गया। यह बात गाडन तथा प्राइस के आयोग मण्डलो से पूणतया सिद्ध हो जाती है। दक्षिण म हैदरअली का उदय भी पानीपत मे मराठा पराजय का प्रत्यक्ष परिणाम था।

वास्तव म यदि भारतीय परिस्थिति के इन स्पष्ट राजनीतिक प्रश्नो को दृष्टि से दूर रखा जाय तो स्वय मराठो को पानीपत के युद्ध से राजनीति तथा युद्ध का अभूतपूव अनुभव प्राप्त हुआ तथा उनके राष्ट्रीय गव तथा भावुकता म अत्यधिक वृद्धि हो गयी। उनकी भावनाओ को कुचलने के स्थान पर इस विपत्ति ने उनको और भी अधिक बल प्रदान किया, क्योकि किसी भी राष्ट्र की प्रगति के पथ पर इस प्रकार के उत्थान पतन अवश्यम्भावी हैं। वास्तव

म दत्ताजी, जनकाजी, इब्राहीमखाँ, सदाशिवराव तथा विश्वासराव आदि जसे वीर सनानिया न व्यथ म ही अपने प्राण नही गँवाये थ। वे अपने राष्ट्र के भाग्यपटल पर अपनी स्मृति के चिह्न छोड गये थे तथा इसको समुन्नत माग पर अग्रसर होन क लिए तयार कर गय थे, जैसा कि युवक पेशवा माधवराव के सद्प्रयत्ना म ज्ञात होता है। वास्तव मे यह सवथा सत्य है कि मृत्यु स ही जीवन की उत्पत्ति होता है। पानीपत की इस घटना के साथ ही पुरानी पीढी का लोप हो गया और उसका स्थान नयी पीढी ने ग्रहण कर लिया तथा वह यथापूव राष्ट्र की सवा के लिए तयार हा गयी। महाराष्ट्र के लगभग प्रत्यक परिवार न इस विपत्ति को वयक्तिक समझा तथा इमम प्रत्यक प्राणी को प्रेरणा प्राप्त हुई कि वह राष्ट्र क आह्वान का स्वीकार करने के लिए तैयार हा जाये।

८ पेशवा के अंतिम दिन—पशवा के बिगडे हुए स्वास्थ्य के विचार स यह निश्चय किया गया कि वह पूना को वापस लौट जाये। फलस्वरूप, २३ माच को उसन पछोर स प्रस्थान किया तथा नमदा और ताप्ती को पार करता हुआ वह गोदावरी के तट पर स्थित टोका नामक स्थान पर पहुँचा जहाँ १६ मई का उसन अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध किया। नमदा पार करते समय वह अचेत हो गया था तथा डूबने से बाल-बाल बचा था। यहाँ पर वह तोला गया तथा उसका वजन ४५६८ ताला अथवा लगभग ११४ पौंड निकला, जबकि ६ वष पूव उसका वजन १७८ पौड था।[१४] चूंकि उसके पुत्र नारायण-राव को उस समय चेचक निकल रही थी, अत बालक तथा उसकी मा का पीछे ही छोड दिया गया, और पेशवा ५ जून के समीप पूना पहुँच गया। यहा पर पुरुषोत्तमराव पटवधन उसकी सवा मे रहा तथा उसको प्रसन रखन का प्रयत्न करता रहा। उसका एक समय का हृष्ट-पुष्ट शरीर अब अति क्षीण हो गया था तथा स्मरण शक्ति बिगड गयी थी। उसका स्वभाव इतना चिडचिडा हो गया था कि उसके मित्र तथा सलाहकार उसके सामने आने से तथा वार्ता लाप करने से डरते थे। वह राज्य के गुप्त रहस्या को बिना समझे-बूझे उन लोगा से कह देता था जो उससे मिलन आते थे। १२ जून को वह शनिवार महल से चला गया तथा पावती नामक पहाडी पर एक मकान म रहने लगा जहाँ पर मगलवार, २३ जून को रात्रि के प्रथम पहर म उसका स्वगवास हो

---

[१४] नाना फडनिस ने अपनी आत्मकथा मे पेशवा के स्वास्थ्य के विषय में कुछ रोचक विवरण प्रस्तुत किये हैं क्योंकि माग म कुछ समय तक वह उसके साथ रहा था।

था। लकड़ी के नये पुल पर[15] उसका अन्तिम संस्कार हुआ। इसके बाद ७ जुलाई को माधवराव को पेशवा पद के वस्त्र प्राप्त हुए जो छत्रपति ने उसे सतारा से भेजे थे।

बालाजीराव के गोपिकाबाई तथा राधाबाई नामक दो पत्नियाँ थी। गोपिकाबाई से उसके तीन पुत्र थे जिनमें विश्वासराव सबसे बड़ा था तथा जिसका देहान्त पानीपत में हुआ था, माधवराव जो बाद में उसका उत्तराधिकारी हुआ तथा नारायणराव जो माधवराव का उत्तराधिकारी हुआ तथा बाद में जिसकी हत्या कर दी गयी। सदाशिवराव की पत्नी पार्वतीबाई पानीपत के युद्धक्षेत्र से सकुशल वापस आ गयी थी तथा १६ अगस्त १७८३ ई० को उसका देहान्त हो गया।

६ बालाजीराव का चरित्र—अनुकूल परिस्थितियों तथा साधनों की दृष्टि से जो उसके पेशवा घोषित होने के समय प्रस्तुत थे, पेशवा बाजीराव अपने पिता तथा पितामह की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली कहा जा सकता है। वास्तव में अगर देखा जाय तो प्रथम चारों ही पेशवाओं के कार्य भारतीय इतिहास में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन लोगों ने मराठा साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार अपने उन पूर्वजों के स्वप्नों से भी बहुत आगे तक कर लिया था जिन्होंने औरंगजेब के विरुद्ध स्वाधीनता के संग्राम में भाग लिया था। यही नहीं बल्कि उन्होंने महाराष्ट्र में तथा उन बाह्य प्रदेशों में, जिनको इन्होंने अपने अधीन कर लिया था एक सुव्यवस्थित तथा मानवतापूर्ण शासन स्थापित किया था जो कि उस आतंक तथा अराजकतापूर्ण शासन के सर्वथा विपरीत था जो कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद सर्वत्र फैल गयी थी। विस्तृत क्षेत्रों में बुद्धिसंगत तथा सुसंगठित प्रशासन की स्थापना का मुख्य श्रेय इस तृतीय पेशवा को ही है। धैर्यपूर्वक परिश्रम से उसने वर्षों तक जो ठोस तथा उपयोगी कार्य किये थे उस पर उसकी इस असामयिक तथा दुःखद मृत्यु से अन्धकार छा गया। अन्त में उसकी समस्त त्रुटियों तथा असफलताओं के होते हुए भी हम सारांश रूप में उस निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए जो निष्पक्ष ग्रांट डफ ने सोचविचार उसके विषय में घोषित किया है।

एक समकालीन सम्मति इस प्रकार है—'बालाजीपन्त नाना ने महान छत्रपति शाहू का सम्पूर्ण स्नेह प्राप्त कर लिया तथा राज्यसेवा में उसने उन सब लोगों की उन्नति की, जिनको उसके पिता तथा चाचा ने उच्च स्थानों पर

[15] राजवाड़े खण्ड जिल्द ६ पृ० ४१६, पेशवा दफ्तर से चुने जिल्द १८ पृ० १०३ पुरन्दर दफ्तर संग्रह जिल्द १ रामराजा का जिन्तिम दफ्तर।

नियुक्त किया था। वह योग्य व्यक्तियों को प्रोत्साहन देता था, तथा उन लोगों को, जो वीरता तथा क्षमता प्रकट करते थे, उपाधियाँ, पुरस्कार तथा सम्मान देता था। सार्वजनिक कल्याण की भावना से उसने राज्यसेवा में उच्च योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों को नियुक्त किया। उसकी प्रजा तथा सरदारों ने अनेक साहसपूर्ण कार्य सम्पादित किये तथा अनेक महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त की। उसकी विजयों का प्रसार रामेश्वर से इन्द्रप्रस्थ तक था। उसकी मधुर अनुरंजक तथा क्षमाशील वृत्ति ने उसके शत्रुओं के हृदय को भी जीत लिया। वास्तव में नाना साहब तथा भाऊसाहब दोनों ही दिव्य गुणों की साक्षात मूर्ति थे।[19]

जब तक शाहू का कृपापूर्ण हाथ उसकी पीठ पर रहा, नाना साहब अनेक विरोधी तत्त्वों को एक साथ रखने में सफल रहे, परन्तु शाहू की मृत्यु के बाद उसके सम्मुख घोर राजनीतिक जटिलताएँ एक के बाद एक उपस्थित होती गयी तथा उसके चरित्र की निर्बलताए और उनके परिणामस्वरूप उसकी असफलताएँ प्रत्यक्ष होने लगी। शाहू की मृत्यु के बाद वह प्रशासन को सतारा से पूना को उठा ले गया। इस प्रकार उस पर यह आरोप लगाया गया कि उसने अपने स्वामी छत्रपति के अधिकार का अपहरण कर लिया है। उत्तर में वह होल्कर तथा सिन्धिया के मतभेदों को दूर करने में असफल रहा तथा उसने उनको राजपूतों के विरुद्ध खुली छूट दे दी जिससे राजपूत मराठों के विरुद्ध हो गये। उसने उस कुप्रबन्ध को भी सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया जो कि उसके भाई रघुनाथराव ने उत्तर में कर रखा था। तुलाजी आंग्रे के दमन के लिए उसने अंग्रेजों की सहायता प्राप्त की, जो शीघ्र ही उसके लिए अत्यन्त दुखदायी सिद्ध हुई। उसके जीवन के अन्तिम काल में शासन की बागडोर भी उसके हाथों से निकल गयी। उसका देहान्त, भाऊसाहब तथा विश्वासराव की मृत्यु पर विलाप करते हुए, अति उन्माद की अवस्था में हुआ।

बालाजीराव सुसंस्कृत रुचि का व्यक्ति था। उसको विलासी जीवन अति प्रिय था तथा ललित कलाओं तथा वैभव के उपभोग में उसको बहुत आनन्द आता था। उसके शासनकाल में महाराष्ट्र के सामाजिक जीवन की विभिन्न दशाओं में महान युगान्तरकारी परिवर्तन हुए। मराठा शिविर जीवन ने अपनी मूल कष्टप्रियता तथा सरलता को खो दिया तथा उसका स्थान शाही दरबारों के ह्रासमय वैभव ने ले लिया। उसके अधीन मराठा राज्य की आर्थिक दशा का सही अनुमान लगाना कठिन है। एक लेखक के मता-

---

[19] राजवाडे संग्रह जिल्द २ में पानीपत बखर, तथा भाऊसाहब बखर।

नुसार पेशवा की मृत्यु के समय सरकारी ऋण लगभग १७ लाख था। अन्य विद्वानों के अनुसार यह लगभग एक करोड़ का था। परन्तु ८० लाख का आँकड़ा कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा तथा यह उसके शासन प्रबन्ध को देखते हुए कुछ विश्वसनीय-सा प्रतीत होता है। पेशवा हिसाब रखने की कला में अति निपुण था तथा आय और व्यय पर वह कठोर निगरानी रखता था। सचिवालय की एक विशेष संस्था में जिसको फड़ कहते थे, राज्य कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता था। स्वयं नाना फड़निस ने यहीं पर अपना प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

कूटनीति तथा युद्ध दोनों में वह पेशवा बल की अपेक्षा अनुनयपूर्ण उपायों से काम लेना अति लाभदायक समझता था। अपनी जाति के प्रति पक्षपात का आरोप उस समय पर लगाया सकता गया है। उसका व्यवहार समस्त जातियों के साथ एकसा था तथा समान व्यवहार तथा पक्षपातहीन शासन के नियमों को उसने सबके लिए लागू कर रखा था। फिर भी यह सत्य है कि पेशवा को अपने ब्राह्मण सम्बन्धियों तथा मित्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध था और इससे इन लोगों को बहुत लाभ भी हुआ यद्यपि पेशवा ने कभी उनकी ओर समुचित ध्यान अथवा प्रोत्साहन देने का प्रयत्न न किया था। अन्त में अपनी समस्त त्रुटियों के बावजूद बालाजीराव का स्मरण चार महान पेशवाओं में किया जायगा क्योंकि उसने व्यावहारिक रूप से मराठा शासन का विस्तार समस्त भारत में कर दिया।

सर रिचर्ड टेम्पुल ने बालाजीराव के चरित्र का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है— बालाजी के चरित्र का निर्माण उसके पिता के ही समान हुआ था तथा उसकी प्रकृति का झुकाव भी उसी दिशा में था। अपने पिता की भाँति ही वह कुशल वक्ता प्रभावशाली सलाहकार तथा निपुण प्रशासक था। लेकिन अपने पिता की भाँति वह एक कुशल सैनिक तथा राजनीतिज्ञ नहीं था। अपने समीपवर्ती व्यक्तियों की योग्यताओं का उपयोग करना वह भलीभाँति जानता था। यही कारण है कि उसकी कई महत्त्वपूर्ण विजयें सिर्फ उसके सहायक सेनापतियों द्वारा ही की गयी थीं यद्यपि यह सदैव सबसे आगे रहता था तथा स्वयं ही संगठन तथा निरीक्षण आदि के कार्य करता था। उसके शासनकाल में मराठा सत्ता अपने परमोत्कर्ष को पहुँच गयी थी। *उसी के शासन में* मराठा अश्वारोही दल जिसकी संख्या पूरी एक लाख थी गर्व के साथ यह कह सकता था कि उन्होंने हिमालय तथा कन्याकुमारी के बीच बहने वाली प्रत्येक नदी के जल से अपनी प्यास को बुझाया है। परन्तु उसने अपने इस विशाल राज्य को जनहितकारी बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया, शायद वह

इस कार्य को करने में असमर्थ था। उसने मराठा शासन को उसके पूर्व रूप में ही रखा, अर्थात यह सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की अपेक्षा लूट के निमित्त एक प्रकार का संगठन मात्र था। इस विषय में वह व्यक्तिगत रूप से संशय रहित था। नैतिक दृष्टि में वह अपने पिता तथा पितामह के समान न था।"[१७]

इस सम्बन्ध में ग्राण्ट डफ की सम्मति अधिक सन्तुलित है— 'बालाजी बाजीराव उन शासकों में से था जिनके भाग्य का उदय उनके समय से पूर्व की अनुकूल परिस्थितियों के कारण हुआ था। अर्थात राष्ट्रीय समृद्धि के फल-स्वरूप वह शीघ्र ही प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच गया यद्यपि वह उसका समुचित पात्र नहीं था। बस वह सुसंस्कृत, कुशल राजनीतिज्ञ तथा निपुण वक्ता था। स्वयं पेशवा द्वारा प्रशासित प्रदेश क्रमशः उन्नत दशा में थे। बालाजीराव ने स्थायी मामलातदारों या सूबेदारों को नियुक्त किया तथा उनमें से प्रत्येक को कई जिलों का अधिकार सुपुर्द कर दिया। पुलिस, राजस्व, दीवानी तथा फौजदारी की अदालतों पर उनको पूर्ण अधिकार था तथा वे अधिकांश अभियोगों में प्राणदण्ड दे सकते थे। विशेषकर महाराष्ट्र में प्रशासन की उत्तम शैली के आरम्भ का श्रेय रामचन्द्र बाबा शेणवी को है तथा उसकी मृत्यु के बाद सदाशिवराव ने उसके द्वारा प्रस्तावित दशा में और भी उन्नति की। बालकृष्ण गाडगिल नामक एक सम्मानित शास्त्री पूना का न्यायाधीश नियुक्त किया गया तथा राजधानी में पुलिस को भी काफी शक्ति प्रदान की गयी। बालाजीराव के शासन में नागरिक न्याय की सामान्य संस्थाओं अर्थात पंचायतों की उन्नति हुई तथा उसके राज्य की सीमाओं का अधिकाधिक विस्तार हुआ। इसी समय को अधिकांश मुख्य ब्राह्मण-परिवार अपने उदय का आरम्भ मान सकते हैं। संक्षेप में, उसके शासनकाल में समस्त जनता की दशा में आमूल सुधार हुए। किसानों की दशा भी इन सुधारों से अछूती न बची तथा उन्होंने नाना साहब पेशवा के समय का स्मरण प्रशंसा सहित किया है।'[१८]

किनकेड ने इसको बड़ी रोचक भाषा में लिखा है। वह लिखता है— 'बालाजी को अपने समस्त नगरों की अपेक्षा पूना से अधिक प्रेम था। वहाँ पर उसने विद्वान पण्डितों धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों तथा प्रसिद्ध कवियों को बसाने में बहुत धन व्यय किया। उसने व्यापार को प्रोत्साहन दिया तथा नवीन पेठ

---

[१७] ओरिएण्टल एक्सपीरिएन्स, पृ० ३९२।
[१८] ओरिएण्टल एक्सपीरिएन्स, खण्ड २ पृ० १५७।

बनवाये जिनमें से सदाशिव पेठ तथा नारायण पेठ अभी तक विद्यमान हैं। ये देखने में बहुत सुन्दर हैं तथा घने बसे हुए हैं। उसने सड़कों की समुचित मरम्मत कराई तथा थेउर, चिंचवड़ी और गणेशखिण्ड के मार्गों पर बाग्र पेड़ लगवाये। कटराज की झील को उसने भव्य रूप दिया। परन्तु पार्वती की पहाड़ी पर निर्मित शाहू का स्मारक इन सब में अद्वितीय है जो आज भी दर्शकों के हृदय में इस श्रेष्ठ शासक की स्मृति को ताजा कर देता है। बालाजी के समय से पहले इस पहाड़ी की चोटी पर पार्वती देवी का एक छोटा-सा मन्दिर था तथा इसके बारे में यह प्रसिद्ध था कि इसमें रुग्ण व्यक्तियों को स्वस्थ करने की सामर्थ्य है। एक दफा गोपिकाबाई की एड़ी में फोड़ा हो गया, वह देवी के दर्शन करने गयी तथा ठीक हो गया। इस पर उसके पति ने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वहाँ पर एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया जिसको इस समय देवदेवेश्वर कहते हैं। शाहू के देहान्त के बाद बालाजी ने यहाँ पर शाहू की पादुकाएँ रख दीं तथा इस प्रकार यह पहाड़ी मराठा राजा की स्मृति चिह्न बन गयी। इसी पहाड़ी पर उत्तर की ओर उसने विष्णु का एक मन्दिर बनवाया, जहाँ प्रत्येक मास को वह नियमपूर्वक पूजा करने जाता था। इसके दक्षिण की ओर के मैदान में पेशवा गरीबों को भोज तथा दान देता था। वास्तव में इस पहाड़ी से उसका इतना प्रेम था कि उसने वहाँ पर एक महल बनवाया तथा अपने जीवन का अन्तिम समय उसने इसी पहाड़ी पर बिताया। निस्सन्देह बालाजी पेशवा का यश सिन्धु नदी से दक्षिण सागर तक फैल गया था।'[१६]

---

[१६] हिस्ट्री ऑव द मराठा पीपुल खण्ड ३ पृ० ७६ ७७।

तिथिक्रम

अध्याय २२

१६ फरवरी, १७४५	माधवराव का जन्म
९ दिसम्बर, १७५३	माधवराव का रमाबाई से विवाह।
६ जुलाई, १७६१	निजामअली द्वारा सलाबतजंग राजच्युत तथा विट्ठल सुंदर उसका मन्त्री नियुक्त।
२० जुलाई, १७६१	माधवराव को पेशवा के वस्त्र प्राप्त।
२९ सितम्बर, १७६१	मल्हारराव होल्कर की पत्नी गौतमाबाई का देहान्त।
२९ ३० नवम्बर, १७६१	होल्कर द्वारा माधवसिंह मांगरोल में पूर्णतः परास्त।
नवम्बर, १७६१	निजामअली का पूना पर आक्रमण, टोका तथा अन्य तीर्थस्थानों का विध्वंस, श्रीगोंडा का उन्मूलन।
९ दिसम्बर, १७६१	निजामअली द्वारा चास पर अधिकार तथा उरुली में उसका आगमन, वहाँ पर उसकी पराजय।
५ जनवरी, १७६२	रघुनाथराव द्वारा निजामअली के साथ शान्ति स्थापित।
७ जनवरी, १७६२	माधवराव का कर्नाटक को प्रस्थान।
मार्च, १७६२	मल्हारराव होल्कर का मालवा से आगमन।
जून, १७६२	माधवराव द्वारा मिरज को पटवर्धन परिवार के सुपुर्द करना।
जुलाई, १७६२	पूना के दरबार में दलबन्दी।
२२ अगस्त, १७६२	रघुनाथराव का वडगांव को पलायन।
सितम्बर अक्टूबर, १७६२	रघुनाथराव विंचूर में, माधवराव से युद्ध की तयारी करना, निजामअली तथा जानोजी भोंसले उसके साथ।
७ नवम्बर, १७६२	घोडे नदी पर अनिर्णायक युद्ध।
१२ नवम्बर, १७६२	माधवराव आलेगांव में परास्त होकर रघुनाथराव की शरण में तथा उस पर निरोध। मराठा सरदारों की स्मरणीय सभा।

२१ नवम्बर, १७६२	रघुनाथराव का निजामअली को वे समस्त प्रदेश वापस करना जो उसने उदगीर मे प्रदान कर दिये थे, उसके द्वारा पदो पर नवीन नियुक्तियाँ ।
६ दिसम्बर, १७६२	रघुनाथराव द्वारा आलेगाँव से सतारा को प्रस्थान ।
दिसम्बर, १७६२	रघुनाथराव द्वारा रामचन्द्र जाधव सेनापति नियुक्त, तथा उसका शिशु पुत्र प्रतिनिधि नियुक्त ।
२६ दिसम्बर, १७६२	रघुनाथराव द्वारा मिरज का अवरोध, महादजी सिंधिया तथा दमाजी गायकवाड उसके साथ ।
३ फरवरी, १७६३	मिरज का समर्पण ।
६ फरवरी, १७६३	निजामअली तथा जानोजी भोसले का गुलबर्गा मे मिलन, विट्ठल सुन्दर तथा गामाजी यामाजी सघ मे सम्मिलित ।
मार्च, १७६३	रघुनाथराव तथा मराठा सरदारो द्वारा शत्रु सघ से युद्ध करने के लिए अपना सघ स्थापित ।
१० मार्च, १७६३	रघुनाथराव का औरंगाबाद पहुँचना और होल्कर द्वारा उसका साथ देना, रामचन्द्र जाधव बन्दी, निजामअली से युद्ध का आरम्भ ।
अप्रैल जून, १७६३	बुरहानपुर तथा हैदराबाद के बीच दोनों के प्रदेश का विध्वस । पूना का लूटा तथा जलाया जाना ।
१० मई, १७६३	हैदराबाद के समीप मेडक मे मराठे ।
६ अगस्त, १७६३	मराठा सेनाएँ मजलगाम पर ।
१० अगस्त, १७६३	राक्षसभुवन का युद्ध, विट्ठल सुन्दर का वध, निजाम की सेना का सम्पूर्ण विनाश ।
१ सितम्बर, १७६३	पेशवा का गोदावरी को पार करना तथा निजाम अली को भत्सना ।
६ सितम्बर, १७६३	निजामअली द्वारा सलाबतजग की हत्या ।
२३ सितम्बर, १७६३	औरंगाबाद का सन्धि पत्र, पेशवा को समस्त वापस किया हुआ प्रदेश पुन प्राप्त ।
अक्टूबर, १७६३	माधवराव का विजयी होकर पूना को वापस आना तथा अपने अधिकार को पुन ग्रहण करना ।
२६ अक्टूबर १७६३	महादजी सिन्धिया का गोदावरी तट पर पेशवा से मिलना, रघुनाथराव का नासिक को जाना ।

अध्याय २२

माधवराव का स्वत्वाधिकार-ग्रहण

[१७६१-१७६३]

१ निजामअली का पूना पर आक्रमण। २ गृह युद्ध—पेशवा की पराजय।
३ आलेगाव की सभा। ४ मराठा निजाम शत्रुता।
५ राक्षसभुवन का निर्णय।

१ निजामअली का पूना पर आक्रमण—पेशवा नाना साहब की मृत्यु के पूर्व ही सामान्य रूप से यह निश्चित हो गया था कि पेशवा पद का उत्तराधिकारी उसका पुत्र माधवराव होगा, जिसकी आयु उस समय केवल १६ वर्ष की थी। अत इसका निदान यह रखा गया था कि वह अपने चाचा रघुनाथराव की देखरेख मे प्रशासन का सचालन करेगा। युवक पेशवा परिवार का एक अन्य व्यक्ति जिसने उसे सलाह मशविरा देने का प्रयत्न किया था स्वयं उसकी माँ गोपिकाबाई थी। वह एक स्वाभिमानी महिला थी तथा महान बाजीराव के समय से अब तक अनेक घटनाक्रमो को देख चुकी थी।

उधर रघुनाथराव अपनी प्रकृति से ही निर्बल, अस्थिर सयमहीन और निर्लज्ज रूप से कामुक था तथा इन विषम परिस्थितियो मे राज्य का नेतृत्व करने मे पूर्ण अयोग्य था। इसका ज्वलन्त उदाहरण उसका वह कुप्रबन्ध था जो उसने उत्तरी भारत मे किया था। इस पर भी उसे अपने ऊपर बडा घमण्ड था तथा उसका दावा था कि अगर वह पानीपत मे सेनापति के पद पर नियुक्त होता तो इस युद्ध मे मराठा पक्ष की विजय निश्चित थी। अत इसमे कोई आश्चर्य की बात नही कि उसने पेशवा पद को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने तुरन्त सम्राट तथा शुजाउद्दौला को पत्र लिखे, जिनमे उसने अपनी योजनाओ की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा उनसे समर्थन करने की प्रार्थना की। परन्तु रघुनाथराव के ये स्वप्न निश्चय ही निष्फल होने थे क्योकि प्रशासन मे एक भी ऐसा व्यक्ति नही था जो अल्पवयस्क माधवराव के स्वत्व का अतिक्रमण करके पेशवा-पद पर उसकी नियुक्ति का समर्थन करता। अत उसको अनिच्छापूर्वक सामान्य भावना को स्वीकार करना पडा। जैसे ही मृतक पेशवा का क्रिया-कर्म पूरा हुआ माधवराव सतारा ले जाया गया, जहाँ पर उसे २० जुलाई को छत्रपति के हाथो से पेशवा पद के वस्त्र प्राप्त हो गये। इसकी शुरुआत ही अशुभ सिद्ध हुई जिसने निकटवर्ती सकटो का सकेत कर दिया।

हस्तगत करना आरम्भ कर दिया था। ये जिले उदगीर की सधि द्वारा मराठो को समर्पित कर दिये गये थे। इस काय का प्रतिकार करने के लिए माधवराव तथा रघुनाथराव ने औरगाबाद पर आक्रमण का प्रस्ताव किया। धन के अभाव मे उन्होने व्यक्तिगत आभूपणो तथा गृहोपयोग के सोने तथा चादी के बतनो को सिक्के ढालने के लिए गला डाला। उन्होने दमाजी गायकवाड तथा मल्हारराव होल्कर को तीव्र वेग से पूना आने के लिए साग्रह लिखा क्योकि इस समय ये ही दो नेता ऐसे थे जो पानीपत की विपत्ति से सकुशल बच निकले थे तथा अनुभवी और प्रौढ होने के कारण उनके शब्दो म प्रभाव था। मल्हार-राव परिस्थितिवश मालवा म अपने स्थान को न छोड सका, क्योकि उसको उत्तर भारत म मराठा गौरव को सुरक्षित रखन तथा अब्दाली के साथ शाति के सधि पत्र की रचना का कायभार दिया गया था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी थ। उसकी पत्नी गौतमबाई का देहान्त इन्दौर मे २६ सितम्बर, १७६१ इ० को हो गया था। फलस्वरूप कुछ समय तक वह उसके क्रियाकम तथा शोक मे व्यस्त रहा। उसको जयपुर के माधवसिह स भी युद्ध करना था। जब वह इस प्रकार युद्ध प्रवृत्ति मे व्यस्त था, उसको मागरोल के युद्ध मे कुछ घाव लगे (२६ नवम्बर), जिनके कारण वह अपने बिस्तर से भी नही उठ सकता था। अत माच १७६२ ई० म ही मल्हारराव पूना पहुँच सका।

उदगीर के अपमान से निजामअली बहुत दुखी था। अत जसे ही वर्षा ऋतु समाप्त हुइ, उसने ६० हजार सनिको की एक विशाल सेना सहित सीधे पूना की ओर प्रयाण किया। उसका अभिप्राय सुनिश्चित था अर्थात वह मराठा के ममस्थान पर अधिकार करके उनके सिर को सदैव के लिए झुका देना चाहता था जो निजामअली की आक्रामक सेना के पद चिह्न तथा विनाश द्वारा प्रकट होते थे। दो महान हिन्दू तीथस्थानो अर्थात टोका तथा प्रवर सगम का सवनाश कर उसने घोर धमान्धता को अपने राजनीतिक उद्देश्यो मे सम्मिलित कर लिया। गुप्त धन प्राप्त करने के लिए उसने श्रीगोडा म सिन्धिया के महलो को समूल नष्ट कर दिया। यह समाचार अति वेग से पूना पहुँच गया तथा वहाँ पर सवत्र भय व्याप्त हो गया, जिसके फलस्वरूप पेशवा का परिवार तथा साधारण जनता मे से कुछ लोग सुरक्षा के लिए लोहगढ पुरन्दर तथा अन्य स्थानो को चले गये।

इस परीक्षा के अवसर पर माधवराव तथा उसके चाचा ने जानोजी भासले तथा अन्य सरदारो को पशवा के झण्डे के नीचे एकत्र होने के साग्रह आह्वान भेजे। फलस्वरूप अक्टूबर के अन्त तक लगभग ७० हजार की सेना एकत्र हो

सखाराम बापू पर स्पष्ट आरोप लगाये कि वह रघुनाथराव तथा निजामअली के बीच गुप्त समझौते का प्रयत्न कर रहा है।

२ गृह युद्ध—पेशवा की पराजय—हैदराबाद वापस आने के कुछ मास पश्चात ६ जुलाई, १७६२ इ० को निजामअली ने अपने भाई सलाबतजंग को पदच्युत कर दिया तथा विट्ठल सुन्दर[1] को अपना दीवान नियुक्त किया। उसके ही परामर्श से उसने अपने भाई की सर्वसत्ता का अपहरण कर लिया तथा उसको अपने नियन्त्रण में डाल दिया।

माधवराव, जो घटनाचक्र का बड़े विवेक से अध्ययन कर रहा था, शीघ्र ही मराठा राज्य से सम्बन्धित समस्याओं तथा उसके विभिन्न अधिकारियों की योग्यता से पूर्णतः परिचित हो गया। उसके अधिकांश कर्मचारियों को शीघ्र ही इस बात का ज्ञान हो गया कि उनके स्वामी में अपनी स्वतन्त्र विचार-शक्ति है तथा उसको निर्भय कार्यान्वित करने का उसमें दृढ़ निश्चय है। उरली की सन्धि स्थापित होने के दूसरे दिन ही उसने अपनी माता को लिखा—'दादा साहब कहते हैं कि उनकी इच्छा सांसारिक व्यवहार को त्याग कर अपने शेष जीवन को पूजा तथा प्रार्थना में व्यतीत करने की है। सखाराम पन्त भी अपने पद पर बने रहने से इन्कार करता है। यह कोंकणस्थों के दलीय षड्यन्त्रों से स्पष्ट है। मैंने दादा साहब से प्रार्थना की है कि वे संसार का त्याग न करें तथा मैं विनयपूर्वक उनसे परामर्श करता हूँ।' त्रिम्बकराव पेठे ने जो पुराना तथा अनुभवी सेवक था, रघुनाथराव से वर्तमान कष्टों पर दीर्घ समय तक वार्तालाप किया तथा उसके परिणाम के सम्बन्ध में उरली के अपने शिविर से गोपिकाबाई को इस प्रकार वृत्तान्त भेजा—'पेशवा की अवयस्क अवस्था में राज्यकार्य का उच्च उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए दादा साहब सर्वथा अयोग्य है। यह सर्वविदित है कि उत्तर में परिस्थिति का उसने किस प्रकार कुप्रबन्ध किया था तथा राज्य के आर्थिक भार को किस प्रकार बढ़ा दिया था। मुझको उसकी बात पर किंचित विश्वास नहीं है। दूसरे अगर सखाराम बापू अपने पद पर बना रहता है तो बाबूजी नायक तथा कुछ अन्य व्यक्ति राज्यसेवा में रहना पसन्द नहीं करेंगे। दादा साहब को अपने व्यक्तिगत खर्च

---

[1] चतुर कूटनीतिज्ञ विट्ठल सुन्दर परशुरामी का पालन-पोषण रामदास पन्त ने सलाबतजंग के आरम्भिक शासनकाल में किया था। उसने निजाम-अली के जीवन को अपने को न्योछावर कर लिया था। निजामअली ने उसको राजा प्रतापवन्त की उपाधि दी थी। वह सखाराम बापू की जाति का यजुर्वेदी ब्राह्मण था तथा कुछ समय तक हैदराबाद के भाग्य निर्णय में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा था।

के लिए ६० या ७० लाख रुपये वार्षिक चाहिए। यह सब रुपया कहा से आयेगा ? नाना साहब के शासनकाल मे दादा साहब सदैव ही भारी ऋण से लदकर वापस आते थे तथा पेशवा को चुपचाप उस हानि को सहन करना पडता था। परन्तु अब कौन उसके कार्यों पर समुचित नियन्त्रण रखेगा और बिना नियन्त्रण के वह प्रशासन को पूर्ण अव्यवस्थित कर देगा। इस समय उसके तथा माधवराव के बीच खूब तनातनी चल रही है। इस विशाल शिविर का प्रत्येक व्यक्ति रुष्ट है तथा उन घोर परिणामो के प्रति चिन्तित है जो अवश्यम्भावी है।

रघुनाथराव ने स्वय गोपिकाबाई को अवकाश ग्रहण करने की धमकिया दी। उसने लिखा—"मुझको राज्य का कार्यभार सँभालने की तनिक भी इच्छा नही है। मैंने तथा सखाराम बापू ने अवकाश लेने तथा राज्य के कार्य भार को राव साहब तथा बाबूराव फडनिस को सौपने का निश्चय कर लिया है। यथार्थ मे मैं बहुत सीधा सच्चा व्यक्ति हूँ तथा मुझे कूटनीतिक चालो का कोई अनुभव नही है। जो कुछ भी मेरी समझ मे आता है, मै उसको स्पष्ट कर बैठता हूँ और तब मुझको इस बात का पता चलता है कि लोग मेरी बात समझ नही है। अब मुझे राज्यकार्यों मे कोई रुचि नही है।" लेकिन इस प्रकार के विरोध पत्रो मे सत्य का कोई अश नही था। वे सिर्फ उसके गलत इरादो पर पर्दा डालने के लिए लिखे गये थे। गोपिकाबाई ने इस स्पष्ट दरार को रोकने के लिए बडी समझदारी से काम लिया तथा समझौता कराने का प्रयत्न किया। उसने निर्देश दिया कि सखाराम बापू राज्यसेवा से अलग हो जाये तथा अपना कार्यभार बाबूराव फडनिस तथा त्रिम्बकराव पेठे को सौंप दे जो रघुनाथराव के निर्देशन मे अपना कार्य करेंगे। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि दोनो कारभारी रघुनाथराव की स्वच्छन्दता पर नियन्त्रण के रूप मे कार्य करेंगे। लेकिन इससे किसी भी दल का कोई भी व्यक्ति सन्तुष्ट नही हुआ। अधीन व्यक्तियो के रूप मे रघुनाथराव की स्वच्छन्दता पर जो नियन्त्रण रख दिया गया था उससे वह क्रुद्ध हो उठा तथा वह इन व्यक्तियो को पसन्द भी नहीं करता था। बापू के अवकाश ग्रहण को वह अपना व्यक्तिगत अपमान समझता था। इसके विपरीत दोनो कारभारियो अर्थात् पेठे तथा फडनिस ने अपने को अपने पद तथा उत्तरदायित्व के सम्बन्ध मे असुरक्षित अनुभव किया।

इस प्रकार की तनातनी से राज्यकार्य मे क्षति होने लगी। पेशवा तथा उसका चाचा ७ जनवरी को अपनी सेना सहित उन्नी से कर्नाटक की ओर चल पडे। उनका उद्देश्य हैदरअली को रोकना था जो कि गत दो वर्षों मे उनके अधिकृत क्षेत्रो पर अनाधिकार प्रवेश करने की चेष्टा कर रहा था।

लेकिन मार्ग में उन दोनों चाचा भतीजे का वैमनस्य इतना बढ़ गया था कि रघुनाथराव ने आवेश में आकर कृष्णा नदी पर स्थित चिकोडी नामक स्थान से पूना की ओर प्रस्थान कर दिया। माधवराव अकेला ही निम्बकराव पेठे के साथ तुंगभद्रा की ओर आगे बढ़ा। उसने अपनी माता को इस वैमनस्य की तथा रघुनाथराव के पूना वापस लौटने की सूचना दे दी तथा उससे प्रार्थना की कि वह उसकी गतिविधियों पर अपनी सतर्क दृष्टि रखे। रघुनाथराव के साग्रह निमन्त्रण पर मल्हारराव होल्कर मालवा से वफगाँव (नासिक) मार्च में पहुँच गया। इससे पेशवा को घोर चिन्ता हो गयी क्योंकि वह उसके चाचा का प्रतिज्ञाबद्ध पक्षपाती था।

माधवराव ने बदलते हुए घटनाक्रम को देखकर अपने पक्ष को सुदृढ़ करना शुरू कर दिया। अपने दक्षिण के प्रवासकाल में उसने गोविन्दहरि पटवर्धन को मिरज के गढ़ पर नियुक्त कर दिया, क्योंकि सकटकाल में शरण लेने के लिए यह एक सुरक्षित स्थान था। गोविन्दहरि तथा उसका पुत्र गोपालराव अल्प वयस्क पेशवा के प्रमुख सलाहकारों में थे। अब मिरज के उनके अधिकार में आने से रघुनाथराव वस्तुत सतर्क हो गया। गोविन्दहरि ने अविलम्ब मिरज के दुर्ग की पूर्ण किलेबन्दी कर ली तथा इस प्रकार अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर वह अपने हटाये जाने के किसी भी प्रयत्न को विफल करने के लिए तैयार हो गया। ग्रीष्म ऋतु के अन्त में पेशवा पर्याप्त धन तथा युद्ध सामग्री लेकर पूना वापस आ गया।

उस वर्ष (१७६२ ई०) जून के आगामी कुछ महीनों में पूना में असाधारण सरगर्मी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि वैमनस्य की जो आग कुछ समय से दोनों पक्षों में अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी, अब खुले आम भभक उठी। रघुनाथराव से समझौता करने के लिए वार्तालाप मध्यस्थता आदि सभी उपायों का खुलेआम तथा व्यक्तिगत रूप से प्रयोग किया गया, लेकिन इसका कोई फल न निकला, क्योंकि रघुनाथराव की यह तीव्र महत्त्वाकांक्षा थी कि वह सर्वोच्च सत्ता का बिना किसी नियन्त्रण के स्वयं उपभोग करे। यही कारण था कि उसने समझौते के सभी प्रयासों को अस्वीकृत कर दिया। गोपिकाबाई, माधवराव तथा त्रिम्बकराव आदि सभी ने अपने विचार स्वतन्त्र रूप से प्रकट कर दिये। केवल सखाराम बापू अस्पष्ट तथा जटिल रूप से वार्तालाप करता रहा जिससे कोई निश्चय नहीं किया जा सका।

माधवराव की इच्छा थी कि रघुनाथराव से उसकी मित्रता बनी रहे। अत उसने घुटने टेककर उसके सहयोग की प्रार्थना की। परन्तु उसकी प्रार्थनाओं पर उसने कोई ध्यान न दिया। इस समय तक मल्हारराव होल्कर

भी पूना पहुँच गया तथा उसने भी इस शांति वार्तालाप में भाग लिया। एक मास तक अनिश्चित रहने के बाद रघुनाथराव ने यह स्पष्ट माग रखी कि ५ महत्त्वशाली गढ़ों सहित उसको १० लाख वार्षिक आय की अलग जागीर दी जाय। पेशवा इस प्रकार की प्रतिद्वन्द्वी सत्ता को सहन करने के लिए कदापि तैयार न था। अतः उसने दृढता के साथ इस माग का विरोध किया। इस तनाव की दशा में यह समाचार फैल गया कि पेशवा का विचार अपने चाचा को पकड़कर कैद में डाल देने का है। इस प्रकार भय से आतंकित होकर रघुनाथराव २२ अगस्त को अकस्मात पूना छोड़कर वडगाव चला गया। पेशवा तथा उसकी माता भी अविलम्ब वहाँ पहुँच गये तथा रघुनाथराव से पूना वापस लौटने का आग्रह किया। इस प्रकार के आग्रह को ऊपर से स्वीकार कर वह सहसा ही अपने डेरे तम्बू को उखाड़कर कुछ अनुचरों सहित आगे बढ़ गया तथा कोडेगाव और अहमदनगर होता हुआ नासिक के समीप विंचूर नामक स्थान पर पहुँच गया। यहाँ पर सखाराम बापू ने पहले से ही विट्ठल शिवदेव की सहायता प्राप्त कर ली थी। शीघ्र ही उसके अन्य समर्थक आबा पुरन्दरे, नारोशंकर राजबहादुर तथा बहिरो अनन्त भी आ पहुंचे। परस्पर परामर्श करके इन लोगों ने पेशवा से युद्ध करने का निश्चय किया। इन लोगों ने गुप्त रूप से जानोजी भोसले तथा निजामअली का समर्थन प्राप्त करने का प्रबन्ध भी कर लिया था। तुरन्त ही संकेत दे दिया गया तथा लगभग ५० हजार की एक बड़ी सेना पूना पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गयी। इसमें निजाम की सेना भी सम्मिलित थी।

यह जानकर कि रघुनाथराव ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसको किसी भी काम करने में कोई संकोच हो माधवराव तथा उसके परामर्शक तुरन्त चुनौती को स्वीकार कर स्पष्ट संघर्ष द्वारा प्रश्न का समाधान करने को तैयार हो गये। कुछ समय तक दोनों दल शपथों के आदान प्रदान द्वारा अपने पक्ष के लोगों को एकत्र करते रहे। इसके साथ साथ अन्तिम क्षणों तक दोनों दलों में समझौता कराने के प्रयत्न भी जारी रहे। रामशास्त्री, कृष्णराव पारसनिस, गंगाधर भट्ट बर्वे तथा अन्य सम्मानित व्यक्तियों ने शांति स्थापित कराने के भरसक प्रयत्न किये। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिनकी किसी पक्ष विशेष में कोई रुचि न थी तथा जिनकी राज्य के प्रति पूर्ण निष्ठा थी। ये लोग इस बात का भी निश्चय न कर सके थे कि वे किस पक्ष का साथ दें क्योंकि दोनों ही पक्षों ने उनसे अपना अपना समर्थन करने की प्रार्थना की थी। उदाहरणार्थ गोपिकाबाई का भाई म्हारराव रास्ते रघुनाथराव के पक्ष में था तथा आनन्दराव और उसके अन्य भाई माधवराव के प्रति निष्ठापूर्ण थे।

पेशवा ने अपने चाचा की सेना से युद्ध करने के लिए पूना से प्रस्थान किया। ७ नवम्बर को दोनों दल घोड़ नदी के पास एक दूसरे के सम्मुख डट गये। यह नदी पूना से लगभग ३० मील पर दक्षिण पूरब की दिशा में बहती है। तीसरे पहर दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ। शाम को अंधकार हो जाने के कारण दोनों प्रतिस्पर्द्धी दल एक दूसरे से अलग हो गये।

इसके बाद पेशवा अपना शिविर घोड़ नदी के तट से आलेगाँव को हटा ले गया, जो कि लगभग १५ मील दक्षिण में भीमा नदी के उत्तरी तट के निकट था। रघुनाथराव की सेना, जिसके साथ अब उसके मित्र निजामअली की सेना भी थी उसका पीछा करती हुई शीघ्र ही यहाँ आ पहुँची तथा उसने १२ नवम्बर को सहसा पेशवा पर आक्रमण कर दिया। पेशवा इसके लिए कतई तैयार न था फलस्वरूप उसकी घोर पराजय हुई। इस गृह युद्ध को अधिक समय तक जारी न रखने के विचार से अवयस्क पेशवा ने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया। वह निर्भयतापूर्वक अपने चाचा के शिविर में चला गया तथा अपनी सत्ता तथा शरीर दोनों उसको समर्पित कर दिये। मल्हारराव होल्कर ने मध्यस्थ का कार्य किया तथा उन दोनों में शान्ति स्थापित करा दी। माधवराव अपने चाचा के सम्मुख पूर्णतः नतमस्तक हो गया तथा अपने सिर को उसके जूतों पर रख दिया। रघुनाथराव ने बनावटी रूप से उससे बड़ी दयालुता का व्यवहार किया तथा कहा कि उसको सत्ता तथा गौरव का कोई मोह नहीं है। परन्तु वह पेशवा के कुछ समर्थकों से जिनमें गोपालराव पटवर्धन त्रिम्बकराव पेठे तथा बाबूराव फड़निस प्रमुख हैं, अपना बदला लेने पर कटिबद्ध था। गोपालराव मिरज में अपने पिता के पास चला गया तथा एक मनिक की भाँति रघुनाथराव का प्रतिरोध करने के लिए तैयार हो गया। त्रिम्बकराव पेठे तथा बाबूराव फड़निस को बाबूजी नायक ने बारामती में शरण दे दी।

३ आलेगाँव की सभा—इस भयानक संघर्ष के बीच में ही आलेगाँव में एक अपूर्व दृश्य उपस्थित हो गया। दोनों विरोधी दल जिनकी संख्या एक लाख से अधिक थी एक ही शिविर में एकत्र हो गये। अधिकांश मराठा सरदार तथा कूटनीतिज्ञ भी वहाँ पर उपस्थित थे। नवम्बर, १७६२ ई० में कुछ दिनों तक इन महापुरुषों की उपस्थिति में इस दल ने एक विशाल सभा का रूप ले लिया। निजामअली सहित इन लोगों ने एक विशाल सभा की, जिसमें पेशवा परिवार की गृह-कलह की शान्ति के प्रयत्न किये गये। पानीपत की हार की विपत्ति भी इस तात्कालिक समस्या के समक्ष फीकी पड़ गयी।

२१ नवम्बर को पेशवा तथा उसके चाचा ने निजामअली को एक भोज

दिया तथा सब में पारस्परिक सौजन्य का आदान प्रदान हुआ। २३ नवम्बर को निजामअली के दीवान विट्ठल सुन्दर का भी इसी प्रकार सत्कार किया गया क्योंकि उसको रघुनाथराव की ओर आवश्यकता के समय पर उसकी सहायतार्थ इस प्रकार सौजन्यतापूर्वक उपस्थित हो जाने का पुरस्कार मिलना ही चाहिए था। मध्यस्थ का काम निजामअली के एक उच्च अधिकारी मुरादखां ने किया। उसके द्वारा रघुनाथराव तथा निजामअली में गुप्त रूप से वार्तालाप होता रहा। निजामअली द्वारा उदगीर में समर्पित ६० लाख का प्रदेश मांगा गया। रघुनाथराव उसके अधिकांश भाग को वापस देने पर सहमत हो गया। इसमें दौलताबाद का गढ़ भी सम्मिलित था जो इस समय मुरादखां के अधिकार में वापस दे दिया गया था। रामचन्द्र जाधव इस शर्त पर मराठा पक्ष में आने को तैयार हो गया कि उसका सेनापति का पद जो उसके पिता चन्द्रसेन से छीन लिया गया था, पुनः वापस दे दिया जाय। इन समझौतों के बाद निजामअली अपनी राजधानी को वापस हो गया। जानोजी भोंसले को छत्रपति होने की हार्दिक इच्छा थी, और इसका सूत्रपात रघुनाथराव द्वारा ही किया गया था। परन्तु यह विचार कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया तथा इस विषय पर कुछ विचार विनिमय के बाद जानोजी को वापस होने की आज्ञा मिल गयी।

इस प्रकार रघुनाथराव ने आलेगांव में अपने भतीजे की ओर से अपने को सुरक्षित बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया। माधवराव पर उसने घोर प्रतिबन्ध लगा दिये तथा २ हजार सैनिकों के एक रिसालदार को उस पर कड़ी निगाह रखने के लिए तैनात कर दिया। पूना में गोपिकाबाई की गतिविधियों पर भी उसी प्रकार का नियन्त्रण रख दिया गया। इस काम के लिए उसके निवास स्थल शनिवार भवन पर एक रिसालदार नियुक्त कर दिया गया। परन्तु रघुनाथराव की स्थिति को पूर्णतया सुरक्षित रखने के लिए ये उपाय पर्याप्त न थे। वास्तव में उसके पास तात्कालिक सेवा के लिए ऐसे व्यक्ति होने चाहिए थे जिनकी उसके प्रति श्रद्धा में लेशमात्र भी सन्देह न हो सके। त्र्यम्बकराव पेठे तथा बाबूराव फड़नीस अपने पद से हटा दिये गये। सखाराम बापू को मुख्य कार्यवाहक-अधिकारी नियुक्त किया गया तथा उसको अपने व्यय के लिए एक समृद्ध तथा सुरक्षित निवास-स्थान के लिए सिंहगढ़ का दुर्ग भी दिया गया। इसी प्रकार रघुनाथराव के एक अन्य पक्षपाती नीलकंठ पुरन्दरे को पुरन्दर का गढ़ दे दिया गया। पेशवा-परिवार का पितृ-परम्परागत सौंपा हुआ फड़नीस-परिवार था। उनसे इस पद का अपहरण कर लिया गया तथा रघुनाथराव के विश्वस्त सचिव चिन्तो विट्ठल रायरीकर को फड़नीस नियुक्त

किया गया। मल्हारराव होल्कर को अपने काय पर पुन वापस जाने का आना दे दी गयी। परन्तु रघुनाथराव ने दमाजी गायकवाड का विशेष रूप से अपने पास रखा ताकि वह सतारा तथा मिरज के अभियान पर उसके साथ चल सके। इस समय उसकी योजना इन स्थानो पर अधिकार करने की थी जिससे कि वह पटवधन-परिवार तथा उसके पक्षपातियो को दण्ड द सके तथा छत्रपति पर अपना पूण नियन्त्रण रख सके।

इन सभी कार्यों को पूरा करने के बाद रघुनाथराव न अपने समस्त सैन्य दल सहित ६ दिसम्बर को आलेगाव से प्रस्थान कर दिया। वह लगभग एक सप्ताह तक सतारा म ठहरा जहा उसन रामराजा का समथन निश्चित रूप म अपने लिये प्राप्त कर लिया। इसी समय दाभाडे से सेनापति का पद छीनकर रामचन्द्र जाधव को दे दिया गया। विट्ठल शिवदेव को न्यायाधीश का पद दिया गया तथा दोनो को जागीरें भी दी गयी। प्रतिनिधि के पद का प्रबन्ध इतनी सरलतापूवक न हो सका। प्रतिनिधि का मुतलिक यामाजी यामाजी एक शक्तिशाली व्यक्ति था। वह विट्ठल सुदर का सम्बन्धी था जो इस समय गोपालराव पटवधन के पक्ष मे था। अपने शिशु पुत्र भास्करराव को उस पद पर नियुक्त करके रघुनाथराव न इस गुत्थी को भी सुलझा दिया। सहायक के रूप मे नारोशकर को उसके साथ नियुक्त किया गया। इस हास्यजनक परिवतन से शीघ्र ही विस्फोट के लिए चिनगारी प्राप्त हो गयी। उस उच्च पद पर अपनी नियुक्ति के तीन मास के भीतर ही शिशु भास्करराव का देहान्त हो गया। फलस्वरूप उसके सहायक नारोशकर को वह पद उत्तराधिकार के रूप म प्राप्त हो गया। इन अकारण परिवतनो से राज्य मे घोर असन्तोष व्याप्त हो गया, जिसे ब्राह्मण जाति न रघुनाथराव को एक खुला विरोधपत्र लिखकर प्रकट किया। उन्होने इस बात का स्पष्ट सकेत किया कि उसन निजामअली की सहायता प्राप्त कर समस्त देश को खड्ड म डालने का प्रयत्न किया है। उन्होने पेशवा की माता को कद म रखने का घोर विरोध किया तथा कहा कि उसके कारण ही राज्य के कई निष्ठावान सेवको को सुरक्षा के लिए स्वदेश का त्याग करना पडा है। ब्राह्मणो ने साधारणत इन कष्टो का मुख्य दोषी रघुनाथराव के दुष्ट सलाहकार सखाराम बापू को ठहराया।

परन्तु इस खबर रघुनाथराव पर कोई असर नही हुआ तथा वह अपनी पापयुक्त महत्त्वाकाक्षा के पथ पर अग्रसर रहा। वह मिरज दुग के सरक्षक पटवधन परिवार को अपना घोर शत्रु समझता था। अत उसने उनको मिरज के दुग को उसको समर्पित करने का आदेश दिया। इस पर गोपालराव हरि ने अवज्ञापूवक उत्तर दिया कि जब तक उसको उस विशाल धन का मुआवजा

न मिल जायगा जो उसने पेशवा के लिए सेना भरती करने में तथा मिरज के रक्षास्थलों को सुदृढ करने में व्यय किया था, वह मिरज को नहीं खाली करेगा। उसकी आज्ञा की इस धृष्टतापूर्ण अवज्ञा के कारण पटवर्धन-परिवार रघुनाथराव के सम्पूर्ण क्रोध का भाजन बन गया। उसने सतारा से मिरज की ओर प्रस्थान कर दिया तथा अपने ४० हजार सशक्त दल सहित २९ दिसम्बर को मिरज पर घेरा डाल दिया। गोविन्दहरि ने डटकर उस स्थान की रक्षा की तथा उसके पुत्र गोपालराव ने बाहर से शत्रुओं को तंग करने का प्रयत्न किया। रघुनाथराव ने नीलकण्ठराव पुरन्दरे के अधीन गोपालराव को दण्ड देने के लिए एक सेना भेजी। गोपालराव जिमखण्डी के समीप परास्त हो गया तथा निजामअली के पास शरण के लिए भाग गया। मिरज का घेरा और भी कड़ा कर दिया गया। गोविन्दहरि ने ३ फरवरी १७६३ ई० को निश्चित शर्तें प्राप्त करने के बाद गढ को रघुनाथराव के सुपुर्द कर दिया।

मिरज से रघुनाथराव हैदरअली के आक्रमण का दमन करनेके लिए दक्षिण की ओर गया। परन्तु वह बहुत दूर न पहुँच सका था कि उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि सहस्रों असन्तुष्ट व्यक्तियों सहित जानोजी भोंसले तथा निजामअली के बीच एक संघ की स्थापना हो गयी है। असन्तुष्ट व्यक्तियों में पटवर्धन परिवार तथा प्रतिनिधि सदृश व्यक्ति थे जिनकी पैतृक सम्पत्ति तथा गौरव का अपहरण किया गया था। इस संघ के प्रमुख नेता विट्ठल सुन्दर (निजाम का दीवान) तथा सदाशिव यमाजी (प्रतिनिधि का सहायक) थे। यमाजी को सर्वसाधारण गामाजी कहते थे। इन समस्त सरदारों के दूत शीघ्र ही विभिन्न स्थानों को भेजे गये। जानोजी भोंसले को निजामअली के विचारों से सहमत करने के लिए कोई खास अनुनय विनय की आवश्यकता नहीं पड़ी। वे सब ६ फरवरी को गुलबर्गा में मिले तथा उन्होंने एक विशेष समझौते की रचना की जिसके अनुसार उनका इरादा पेशवा के प्रदेशों पर अधिकार करने तथा लूट के माल को आपस में बाँट लेना था। उन्होंने अपने दलों को संगठित कर लिया तथा अभियान की एक विशेष योजना बनायी। गामाजी ने सेना का नेतृत्व करने तथा छत्रपति को बन्दी बनाकर जानोजी को उसकी गद्दी पर बैठाने के गुरुतर कार्य को अंगीकार किया। जानोजी तथा निजामअली ने मिलकर सेना का संचालन किया तथा पेशवा के प्रदेशों के विरुद्ध अति वेग से प्रस्थान किया। निजामअली ने अपना गर्वोक्त माँगों को पेशवा के पास भेज दिया। उसने यह माँग रखी कि भीमा नदी के पूरब में स्थित समस्त प्रदेश तथा गढ़ों को उसको समर्पित कर दिया जाय तथा उन जागीरों को पुनः वापस कर दिया जाय जिनका अपहरण अन्यायपूर्वक कर लिया गया था और उसके द्वारा

नियुक्त व्यक्ति को ही वह अपना दीवान नियुक्त करे तथा मराठा राज्य के समस्त कार्यों मे उसके परामर्शानुसार काय करे।

४ मराठा निजाम शत्रुता—इस प्रकार मराठा राज्य के प्रति घोर सकट उत्पन्न हो गया तथा उसकी स्वतन्त्रता के प्रति भी भय उपस्थित हो गया। इस समय पूना का कोष बिलकुल खाली था तथा पक्षत्याग के कारण सेना नेताहीन थी। उसके पास सुसज्जा का अभाव था फिर भी इस सकटग्रस्त स्थिति के कारण समस्त परस्पर विरोधी तत्त्व सयुक्त हो गये तथा सामान्य सकट के निवारणार्थ पेशवा के दरबार के समस्त दल अपने भेदभावो को भुलाकर शत्रु का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गये। माधवराव ने अपनी माता को करुणाजनक पत्र लिखे जिनमे उसने स्थिति का स्पष्ट वर्णन किया तथा उसका मुकाबला करने के लिए सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता पर जोर दिया। उसके चाचा रघुनाथराव तथा सखाराम बापू दोनो ने पूर्ण हृदय से इसका नेतृत्व ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। उनके अधीन लगभग ५० हजार सैनिक थे परन्तु खुली लडाई मे शत्रु के शक्तिशाली तोपखाने का सामना करने के लिए उनके पास कोई साधन न था। अत आमने-सामने के युद्ध के बजाय उन्होने यह निश्चय किया कि वे शत्रु के प्रदेश को विनष्ट करने का प्रयत्न करें तथा उसको इधर-उधर भटकाकर थका डालें। बदला लेने की भावना से रघुनाथराव मिरज से उत्तर मे औरगाबाद की ओर बढा, जबकि जानोजी तथा निजामअली की सेनाए पेशवा के प्रदेश को लूटती हुई भीमा नदी के साथ साथ आगे बढ रही थी। मराठो ने भी उसी प्रकार निजाम के प्रदेश को लूटना आरम्भ कर दिया। उन्होने मार्च के आरम्भ मे औरगाबाद पर आक्रमण कर दिया लेकिन नगर की इससे कोई हानि न हुई क्योकि मुरादखा वीरतापूर्वक उसकी रक्षा कर रहा था तथा उसने नगर की रक्षार्थ दो लाख रुपये दिये थे। औरगाबाद के समीप १० मार्च को मल्हारराव होल्कर भी पेशवा के दल मे सम्मिलित हो गया तथा इस प्रकार समस्त सेना भोसले के प्रदेश का नाश करती हुई सवेग मलकापुर की ओर बढी।

रामचन्द्र जाधव जिसको रघुनाथराव ने मुगल सेवा त्याग देने पर राजी कर लिया था, सहायक की अपेक्षा बाधक ही अधिक सिद्ध हुआ। यह जाधव अपने पिता की भाँति ही पेशवाओ का कट्टर शत्रु था और इस समय जबकि मराठा सेनाएँ औरगाबाद के समीप पडी हुई थी उसने रघुनाथराव की जान लेने का गुप्त प्रयत्न किया। परन्तु सौभाग्यवश यह प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुआ। इसके पहले उसने सतारा के प्रदेश को लूट लिया था तथा पण्ढरपुर के मन्दिर को अपवित्र कर दिया था। अपने इस कार्य के कारण वह मुसलमानो से भी

अधिक घृणास्पद हो गया था। रघुनाथराव ने तुरन्त जाधव को अपना बना लिया तथा अपनी शत्रुता के अन्त तक उसे कठिन कष्ट में रखा।[2]

१० मार्च से १० अगस्त तक अर्थात् पूरे पाँच महीने दोनों प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे को थका डालने में व्यस्त रहे। वे एक दूसरे के प्रदेशों का नाश करते रहे तथा ऐसे लाभदायक स्थान की खोज में रहे जहाँ पर युद्ध या कुछ निर्णय प्राप्त किया जा सके। जब मुगल नासिक तथा सतारा के बीच में मराठा प्रदेश का नाश करते, तो मराठा सेनाएँ उसी तरह उसका प्रत्युत्तर मल्कापुर तथा हैदराबाद के बीच के प्रदेश में देतीं। जबकि मराठों ने बरार में प्रवेश किया जो भोंसले के अधिकार में था तो निजामअली उनके पीछे ही पीछे चला आया। परन्तु मराठे युद्ध बचाकर दक्षिण की ओर शोलापुर तथा नलदुर्ग को भाग गये। तब निजामअली ने अपनी गतिविधि को बदल दिया। उसको पता चल गया कि अपने भारी तोपखाने के साथ मराठों का पीछा करना व्यर्थ है। मराठों को पीछे खदेड़ने के लिए उसने अप्रैल के मध्य में पुनः महाराष्ट्र में प्रवेश किया जबकि मराठे यादगिरि तथा बीदर के समीप लूटमार कर रहे थे। विट्ठल सुन्दर के भतीजे विनायकराव ने नासिक, जुन्नार तथा संगमनेर के धनी नगरों को लूट लिया। स्वयं निजामअली ने अपना ध्यान पूना की ओर लगाया तथा रामाजी सतारा को लूटता हुआ दक्षिण की ओर बढ़ा। उन्होंने सारे ग्रामीण प्रदेश को अग्नि के हवाले कर दिया तथा वहाँ के निवासियों का वध कर डाला और उनका कुछ भी प्रतिरोध नहीं किया गया।

पूना की भयंकर दुर्गति हुई। इसका अधिकांश भाग जलाकर भस्म कर दिया गया। गोपिकाबाई ने नगर को छोड़ दिया तथा अपने छोटे पुत्र नारायणराव और अपने आभूषण तथा मूल्यवान वस्तुओं सहित उसने सिंहगढ़ में शरण ले ली। पूना के अधिकांश भद्र पुरुष सुरक्षा के निमित्त विभिन्न स्थानों तथा दुर्गों को भाग गये। पार्वती पहाड़ी पर स्थित मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़ डाली गयीं तथा भ्रष्ट कर दी गयीं। नारो अप्पाजी ने नगर को सुरक्षित रखने के लिए निजामअली को भारी मुक्तिधन दिया परन्तु उसका यह धन निरर्थक गया। गोपालराव पटवर्धन के आचरण से गोपिकाबाई को बहुत दुःख हुआ तथा पेशवा की राजधानी के दुर्भाग्य के लिए उसने उसको उत्तरदायी ठहराया। परन्तु वास्तव में गोपालराव इस समय बिलकुल असहाय था तथा मराठा हितों के लिए हो रहे दुर्व्यवहार को रोकने में पूर्ण अशक्त था।

---

२ सितम्बर में शान्ति की स्थापना पर जाधव निजाम की सेवा में वापस कर लिया गया, परन्तु वह कभी पूर्ण रूप से क्षमा नहीं किया गया। १७७० ई० में निजामअली ने उसकी हत्या कर दी।

वह उस अवसर की प्रतीक्षा म था जबकि वह बिना किसी क्षति को सहन किय हुए इस निन्दित स्थिति म निकलकर अपनी पूव प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सके।

५ राक्षसभुवन का निणय—१० अप्रैल का नलदुग, २३ अप्रल का उदगीर तथा १० मई को मेडक को लूटकर पेशवा तथा रघुनाथराव हैदराबाद के सम्मुख प्रकट हुए, जहाँ पर उनको शत्रु द्वारा अपनी राजधानी लूटे जाने का हाल मालूम हुआ। पशवा न ५ जून को अपनी माता को लिखा—'हम भागानगर स वापस लौटकर कृष्णा नदी के तट पर आ गय हैं तथा उस अवसर की खोज मे है जबकि हम शत्रु स पूना के विनाश का बदला ल सकें।' उसी दिन रघुनाथराव न भी गापिकाबाइ को पत्र लिखा जिसम उसन निजामअली के विरुद्ध अपन क्रोध को व्यक्त किया था। वह शत्रु म युद्ध करन के लिए इतना उतावला हो रहा था कि मल्हारराव होल्कर सखाराम बापू तथा अन्य लोग उसको बडी मुश्किल स उस समय तक रोक सके जबकि वे शत्रु का उसक नय मित्रा अर्थात जानोजी भासले गोपालराव पटवधन पीराजी निम्बालकर, धायगुडे प्रतिनिधि आदि मे पृथक न कर दें। इस काय के लिए गुप्त मन्त्रणाएँ हुइ तथा गोविन्द शिवराम को गोपालराव के पास तथा सखाराम बापू को जानाजी भासल के पास भेजा गया। उसको यह प्रलोभन दिया कि यदि वे निजामअली का पक्ष त्याग दें और अपनी पूव निष्ठा का पुन ग्रहण कर लें ता उनकी जागीरें उन्ह वापस कर दी जायेंगी। वास्तव म इन सब लागा का मराठा पक्ष त्यागने से कोई लाभ नही हुआ था बल्कि इसके विपरीत उनको इस नवीन मैत्री से बहुत अधिक हानि हुई थी। जानोजी को अब इस बात का पूण विश्वास हो गया था कि छत्रपति की गद्दी प्राप्त करने का उसक लिए काई आशा नहीं है। प्रत्युत पेशवा ने यह भी धमकी दी थी कि नागपुर के मुधोजी को उसका स्थान दे दिया जायगा। उसका बरार का प्रान्त पददलित कर दिया गया था तथा लूट लिया गया था। पेशवा के निमन्त्रण पर महादजी सिन्धिया भोसले के उत्तरी प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए उज्जन स प्रयाण कर चुका था। निजामअली का भाई सलाबतजंग प्रलाभन के द्वारा पशवा के पक्ष म आ गया था। जानोजी भोसले के एक अधीनस्थ सरदार पीराजी निम्बालकर ने भी ऐसा ही किया था।

ये वार्तालाप जुलाई के अन्त तक होते रहे। निजामअली को अब तक यह पता चल गया था कि उसकी परिस्थिति दिन प्रतिदिन बिगडती जा रही ह। अत उसन एक एस सुरक्षित स्थान की खोज करना शुरू कर दिया, जहा पर वह मराठा के आकस्मिक आक्रमण स बच सके। जून के आरम्भ म पेशवा

की सेना बीदर से घर की ओर लौटी। रास्ते में वह सावधानीपूर्वक एक स्थान की खोज करती गयी जहाँ से वह अपनी ओर बढ़ते हुए शत्रु का दमन कर सके।

जैसे जैसे दोनों सेनाएँ एक दूसरे के समीप आती गयीं, निजामअली के मित्र एक एक करके उसका पक्ष त्यागने लगे। उनका तर्क यह था कि वर्षा ऋतु के कारण वे घर वापस लौट रहे हैं। इस असामयिक विपत्ति से निजामअली इतना भयभीत हो गया कि उसने अपनी मूल प्रगति को रोक दिया तथा औरंगाबाद की ओर वापस लौट गया, क्योंकि वर्षाऋतु में वह सुरक्षा का अच्छा स्थान था। जानोजी भोसले ने जो इस समय भी मुगल शिविर में था तुरंत ही इस परिवर्तन की सूचना पेशवा को भेज दी तथा उसको सलाह दी कि वह शत्रु द्वारा गोदावरी नदी को पार करने के पहले ही उस पर आक्रमण कर दे। फलस्वरूप पेशवा ने वापस लौटते हुए शत्रु का वेगपूर्वक पीछा किया और वह ५ अगस्त को बीड पहुँच गया। ६ तारीख को मराठे मजलगाँव पहुँच गये जहाँ पर उनको यह सूचना प्राप्त हुई कि जानोजी तथा प्रतिनिधि मुगल शिविर से पृथक् हो गये हैं तथा निजामअली अपने कुछ अनुचरों सहित बाढ़ से प्लावित गोदावरी को शीघ्रता से पार कर गया है और विट्ठल सुन्दर के अधीन वह मुख्य सेना तथा तोपखाने को अगले दिन नदी पार करने का आदेश देकर राक्षसभुवन में पीछे छोड़ गया है। नारो शंकर तथा सखाराम बापू उस समय वहाँ न थे। वे जानोजी भोसले द्वारा पक्षत्याग का प्रबन्ध कर रहे थे। यद्यपि पेशवा की सेना कई दिनों के निरंतर प्रयाण के कारण बहुत थकी हुई थी फिर भी यह निश्चय किया गया कि शत्रु को नदी पार कर भागने का मौका दिये बिना उस पर तुरन्त आक्रमण कर दिया जाय। उस दिन अषाढ़ की अमावस्या की अन्धकारमय रात्रि थी। घोर वर्षा हो रही थी तथा बिजली चमक रही थी जिनके कारण प्रगति कठिन थी। अतः समस्त सेना में यह आज्ञा प्रसारित कर दी गयी कि प्रभात के बहुत पूर्व प्रयाण आरम्भ कर दिया जाये तथा हलके मराठा सैनिकों की टोलियाँ १० तारीख को सूर्योदय के कुछ बाद असावधान मुगलों पर अकस्मात् टूट पड़ें।

निजाम के तोपखाने ने मराठा अग्रदल पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। घूमता हुआ एक गोला एक पेटी पर गिरा जिसमें कि गोले भरे हुए थे। फलस्वरूप एक बड़ी जोर का धमाका हुआ तथा इस प्रकार उत्पन्न हुई अव्यवस्था से लाभ उठाकर आबा पुरन्दरे तथा विंचूरकर शत्रु के बाह्य स्थानों में घुस गये तथा मुख्य दल की ओर झपटे। रघुनाथराव के नेतृत्व में एक शक्तिशाली टोली अन्दर की ओर प्रवेश कर गयी। विट्ठल सुन्दर ने तुरंत

अपने सनिको को एकत्र किया तथा बढते हुए मराठा को रोषपूवक पीछे ढकेल दिया। उसने शीघ्र ही उनको परास्त कर दिया तथा रघुनाथराव का घेर लिया जो हाथी पर सवार था। इस सकट-क्षण पर अल्पवयस्क माधवराव पृष्ठ-दल से उस ओर झपटा तथा उसके दल को बलपूवक पीछे ढकेल दिया और अपने चाचा को बदी होने स बचा लिया। इस युद्ध मे महादाजी शिन्दे ने विशेष गौरव प्राप्त किया। विट्ठल सुन्दर तथा अय कई प्रमुख नता या तो युद्ध मे लडते हुए मार गये अथवा बदी बना लिये गय। परिणामस्वरूप दो घण्टा मे मराठा न सम्पूण विजय प्राप्त कर ली। युद्ध के तुरत बाद ही स्वय पशवा ने निम्न वृत्तात अपनी माता को भेजा

'शत्रु दल की अव्यवस्थित दशा का समाचार पाकर हमने प्रात काल उस पर आक्रमण कर दिया। अति घोर युद्ध के बाद हमने शीघ्र ही पूण विजय प्राप्त कर ली। विट्ठल सुदर का कटा हुआ सिर लाया गया। उसका भतीजा विनायकदास तथा कधार का राजा गोपालदास भी मारे गय। मुरादखाँ तथा अय १६ सरदार बदी बना लिय गये हैं। शत्रु के लगभग ८ हजार सवारा का तथा ४ हजार प्रतिष्ठित पदला का वध हुआ है। १५ हाथी २५ तोपें, बहुत-से पशु तथा युद्ध सामग्री प्राप्त हुई है। शाहजी सूपेकर, सदाशिव रामचद्र तथा हमारे अय कुछ सरदारा न जो हमारा पक्ष त्याग कर शत्रु से मिल गय थे भागकर अपनी प्राणरक्षा की है। वास्तव मे बाढग्रस्त नदी न इस दुगति से निजामअली की रक्षा कर ली।

उसक सुयोग्य मत्री विट्ठल सुदर का सिर निजामअली को भेज दिया गया। वह नदी के दूसरे तट पर असहायावस्था मे खडा हुआ इस दुदशा का देखता रहा। उसको अपनी सुशिक्षित सेना के सहार का बहुत दुख हुआ। इस भय से कि मराठे अब नदी को पार कर उस पर आक्रमण करेंगे, उसन मुरादखाँ को जो मराठा के द्वारा बदी बना लिया गया था, मराठा स शाति के लिए वार्तालाप करन को कहा। मराठा की ओर से मजरा नदी तथा औरगाबाद के बीच के विशाल तथा समृद्ध प्रदेश की माँग की गयी, जिसकी कीमत लगभग एक करोड रुपये थी। परन्तु बाढग्रस्त नदी के कारण इस माँग पर दृढ आग्रह न किया जा सका। बाढ उतरन की व्यथ प्रतीक्षा म मराठा न लगभग एक सप्ताह बिता दिया। निजामअली न इसस पूरा फायदा उठाया तथा अपनी स्थिति की रक्षा का प्रबध कर लिया। इस बीच म जानोजी भोसले, गोपालराव तथा अय सरदारा ने पेशवा के प्रति अपनी अधीनता स्वीकार कर ली तथा वे पुन उसके कृपापात्र हो गय। वास्तव मे १० अगस्त के युद्ध म उन्होंने कोई भाग नहीं लिया था। पेशवा ने अपने व्यवहार द्वारा

उन्हें यह दिखाने की चेष्टा की कि निज़ामअली के मानमर्दन में उनको उनके सहयोग की कोई खास चिन्ता न थी तथा अपनी सत्ता को मनवाने में वह स्वयं समर्थ था। इस विजय से लाभ उठाने में पूर्व लगभग ३ सप्ताह नष्ट हो गये।

१ सितम्बर को मल्हारराव होल्कर तथा जानोजी भोंसले ने गोदावरी को पार कर लिया तथा उनके शीघ्र पश्चात् ही समस्त मराठा दल नदी पार हो गया। उन्होंने औरंगाबाद पर चढ़ाई कर दी। कुछ अनियमित युद्ध तथा संधि प्रस्तावों के बाद २५ सितम्बर को एक सन्धिपत्र की रचना हुई। इसके अनुसार निज़ाम ने पेशवा को ८२ लाख रुपये का प्रदेश समर्पित कर दिया अर्थात् वह समस्त प्रदेश जो ४ वर्ष पूर्व उदगीर के स्थान पर पेशवा को पहले ही प्राप्त हो गया था किन्तु जिसको बाद में स्वार्थचिन्तक रघुनाथराव ने उरली तथा आलेगाव के स्थानों पर निज़ामअली को वापस कर दिया था। इस संधि को औरंगाबाद की संधि कहते हैं।

इस प्रकार मराठा निज़ाम संघर्ष का अन्त हो गया। यह संघर्ष लगभग दो साल तक अर्थात् जून १७६१ ई० से सितम्बर १७६३ ई० तक रुक रुक-कर होता रहा था। आसफजाह के उत्तराधिकारियों ने मराठों को पंगु बनाने के अनेक प्रयत्न किये थे। निज़ामअली भी उनमें से एक था। उसने पेशवा की गृह कलह से फायदा उठाकर सलाबतजंग के शासनकाल की पराजयों का बदला लेने का प्रयत्न किया। लेकिन मराठों ने एक बार पुनः यह सिद्ध कर दिया कि वे मुगलों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं।

राक्षसभुवन के युद्ध में विशेषकर स्वयं माधवराव के उपक्रम तथा उत्साह द्वारा विजय प्राप्त हुई थी। उसने न केवल अपने चाचा के माध्यम द्वारा आरम्भिक प्रयाणों में सैनिक गतिविधियों का संचालन किया था अपितु लड़ाई के दिन भी उसने सावधानी से प्रत्येक योजना का निर्माण तथा सेना का विन्यास किया था। अतः इस विजय का श्रेय माधवराव को ही है। इस अवसर पर माधवराव ने युद्ध में तथा साधारण प्रशासन के प्रबन्ध में अपनी क्षमता सिद्ध कर दी। इस प्रकार उसको अपनी प्रजा की अत्यधिक प्रशंसा तथा मित्रों और शत्रुओं के हृदयों पर समान रूप से अधिकार प्राप्त हो गया। इसके विपरीत निज़ामअली को इस युद्ध में सबसे अधिक हानि उठानी पड़ी।

राक्षसभुवन की विजय की प्रतिक्रिया समस्त भारत में हुई। इससे सिद्ध हो गया कि पानीपत की विपत्ति से मराठा शक्ति का अन्त नहीं हुआ है अपितु उसमें अब भी वह स्फुरणशील शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा उन्होंने अपने ध्वज को भारत के सुदूरस्थ कोनों तक पहुँचा दिया था। इस विजय

का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि अल्पवयस्क पेशवा ने अपनी शक्ति का सिक्का अपने चाचा तथा उसके पक्षपातियों पर जमा दिया। विशाल मराठा राज्य पर नियन्त्रण करने तथा उस पर शासन करने मे उसने अपनी जन्मजात प्रतिभा द्वारा अपनी योग्यता सिद्ध कर दी। इसके विपरीत उसके चाचा रघुनाथराव की शिथिलता तथा अनिर्णायिकता स्पष्ट रूप से प्रकट हो गयी। अब वह अपने योग्य भतीजे को अपने अधीन रखने मे पूर्ण असमर्थ था। अपने जीवन के इन दो वर्षों में माधवराव ने युद्ध तथा कूटनीति दोनों में ही अनेक मूल्यवान अनुभव प्राप्त किये। यह कार्य उसने परस्पर विरोधी तत्त्वों पर नियन्त्रण रखने तथा अपने राष्ट्र को उसके पूर्व गौरव तक पहुँचाने के माध्यम से किया। उनका स्थान जिसका सर्वनाश पानीपत मे हो गया था, दूसरी पीढ़ी ने शीघ्र ग्रहण कर लिया जो पहली पीढ़ी की अपेक्षा अधिक कुशल थी। अत राक्षसभुवन का यह युद्ध राष्ट्रीय पुनरुत्थान का आरम्भ सिद्ध हुआ।

परन्तु रघुनाथराव की यह इच्छा कि वह अवकाश ग्रहण करना चाहता है, किसी प्रकार भी सत्य नहीं है। वह सदैव यह सोचने में निमग्न रहता था कि किस प्रकार पेशवा पर अपनी प्रभुता कायम की जाय। उसने शीघ्र ही अपने भतीजे के सम्मुख ६ लाख रुपये की जागीर तथा ५ महत्त्वपूर्ण गढ़ों पर अपने अधिकार की माग प्रस्तुत की। सखाराम बापू ने भी जो चिन्ताकुल तथा गूढ़-सा दिखायी पड़ता था उसकी सेवा से मुक्त होने की अपनी इच्छा प्रकट की। माधवराव इस बात को भलीभाँति जानता था कि इन दोनों को नाराज करने से उसका कितना बड़ा अहित है। अत उसने उन दोनों की चापलूसी करना प्रारम्भ कर दिया। वह उनके ज्ञान तथा अनुभव की प्रशंसा करता तथा प्रशासन का संचालन करने के हेतु अपने समीप उनकी उपस्थिति अत्यावश्यक बताता। इस उद्देश्य से बाद में उसने सखाराम बापू को सदैव अपने पास रखा ताकि वह गम्भीर विषयों पर उससे परामर्श कर सके। परन्तु माधवराव ने उसको कभी कोई विशेष पद अथवा स्वतन्त्र अधिकार न दिया। बापू पेशवा की इस चाल को ताड़ गया लेकिन इसका कोई प्रतिरोध न कर सका। औरंगाबाद से पेशवा पूना चला गया तथा रघुनाथराव ने त्रिम्बकेश्वर के दर्शनार्थ नासिक की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ गोविन्द शिवराम तथा त्रिम्बकराव पेठे थे जिनको पेशवा ने अपने व्यक्तिगत प्रतिनिधियों के रूप में उसकी सेवा में नियुक्त कर दिया था।

गत युद्ध के कारण उत्पन्न विषम परिस्थितियों के निराकरण हेतु माधवराव अक्टूबर के अन्त तक अर्थात पूरे चार महीने औरंगाबाद के समीप व्यस्त रहा। महादजी सिन्धिया ने जो पेशवा की भाँति ही गृह युद्ध में व्यस्त

था, पेशवा के साग्रह निमन्त्रण पर उज्जन से प्रस्थान कर दिया तथा २६ अक्टूबर को जबकि पेशवा पूना लौट रहा था गोदावरी के तट पर उससे मिला। उसने शीघ्र ही अपनी आज्ञाकारिता तथा स्वेच्छापूर्वक सेवा द्वारा पेशवा के हृदय में स्थान बना लिया। नाना फड़निस तथा उसके चचेरे भाई मोरोबा को उनके पूर्व पद दे दिये गये, जो रघुनाथराव के अल्प शासनकाल में उनसे छीन लिये गये थे। अल्पवयस्क पेशवा तथा उसके समान अल्पवयस्क उसके सहकारी नाना तथा महादजी सिंधिया जो दोनों किसी प्रकार से पानीपत के युद्ध से बच निकले थे, अब एक त्रिमूर्ति बन गये जिसके ऊपर मराठा राष्ट्र का भविष्य निर्भर था।

तिथिक्रम

अध्याय २३

अक्टूबर, १७६१	अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने के निमित्त गोविन्द शिवराम का बम्बई प्रस्थान तथा उनके आयोग की पूर्ण असफलता।
नवम्बर, १७६३	रघुनाथराव द्वारा सिंधिया राज्य को केदारजी सिंधिया को सौंपना।
फरवरी, १७६४	पेशवा का कर्नाटक को प्रस्थान।
अप्रैल, १७६४	हैदरअली की सावनूर पर चढ़ाई।
मई, १७६४	रैतेहल्ली का युद्ध तथा हैदरअली की पराजय।
मई, १७६४	महादजी सिंधिया का रघुनाथराव से क्रुद्ध होकर उज्जैन को भाग जाना।
जून, १७६४	पेशवा का कर्नाटक में वर्षाकालीन शिविर लगाना।
जुलाई, १७६४	गोपालराव पटवर्धन पर अचानक आक्रमण।
अक्टूबर, १७६४	रघुनाथराव का कर्नाटक को प्रस्थान।
२३ अक्टूबर, १७६४	बक्सर का युद्ध तथा अंग्रेजों द्वारा सम्राट तथा उसके मित्रों को पराजित करना।
६ नवम्बर, १७६४	दो मास के अवरोध के बाद पेशवा का धारवाड़ पर अधिकार। नकली सदाशिवराव का प्रकट होना।
२५ जनवरी, १७६५	गढ़ मलवन पर अंग्रेजों का अधिकार।
२७ जनवरी, १७६५	रघुनाथराव का सावनूर से पेशवा के साथ होना।
३० मार्च, १७६५	अनन्तपुर में हैदरअली से शान्ति संधि।
३ मई, १७६५	मल्हारराव होल्कर कड़ा के समीप फ्लेचर द्वारा पराजित तथा उसका काल्पी को प्रस्थान।
जून, १७६५	पेशवा का कर्नाटक से पूना वापस लौटना।
४ अगस्त, १७६५	होल्कर द्वारा सुल्तानपुर में नकली भाऊ की परीक्षा, उसका पलायन तथा पीछा किया जाना और पकड़ कर पूना लाया जाना।

१५ अक्टूबर, १७६५	२६ व्यक्तियों की एक समिति द्वारा नकली भाऊ की परीक्षा तथा उसको आजीवन कारावास का दण्ड।
दिसम्बर, १७६५	जानोजी भोंसले तथा निजामअली मे युद्ध।
जनवरी, १७६६	पेशवा का निजाम की सेना सहित भोंसले के विरुद्ध प्रयाण। उसके द्वारा अधीनता स्वीकार करना तथा दरियापुर की सधि स्वीकार करना।
५ १५ फरवरी, १७६६	पेशवा तथा निजामअली का मित्रतापूर्वक मिलना तथा उनमे बन्धु सम्बन्ध स्थापित और इस सप्रेम सम्बन्ध को पुष्ट करना।
मार्च, १७६६	बाबूजी नायक का मानमर्दन।
१६ नवम्बर, १७६७	मोस्टिन का आयोग पूना को तथा ब्रोम का नासिक को।
२७ फरवरी, १७६८	मोस्टिन तथा ब्रोम का बम्बई लौटना।
१३ अक्टूबर, १७७२	अंग्रेजी दूत के रूप मे मोस्टिन का पूना आगमन।

अध्याय २३

पेशवा द्वारा अपने अधिकार की मांग

[१७६३-१७६७]

१ हैदरअली पर आक्रमण।	२ पुरन्दर के कोली।
३ हैदरअली से सन्धि।	४ जानोजी भोसले के विरुद्ध प्रयाण।
५ निजामअली से मित्रता।	६ बाबूजी नायक का मानमर्दन।
७ नकली सदाशिवराव भाऊ।	८ महादजी सिन्धिया का उदय।

९ ब्रिटिश विभीषिका।

१ **हैदरअली पर आक्रमण**—माधवराव २० जुलाई १७६१ ई० से १८ नवम्बर १७७२ ई० तक अर्थात पूरे ११ वर्ष ४ महीने पेशवा रहा, जिनमें से प्रथम दो वर्ष बाल्यावस्था के थे जैसा कि हम पहले देख चुके हैं। अपने अंतिम वर्ष वह सर्वथा शय्यारूढ रहा। अतः लगभग केवल ८ वर्षों तक ही उसने शासन प्रबन्ध में सक्रिय भाग लिया तथा प्रशासन पर अपनी व्यक्तिगत छाप लगा दी। उसके कार्यों को निम्न चार मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है

१ हैदरअली के दमनार्थ कर्नाटक का उसके अभियान।

२ निजामअली से उसका सम्बन्ध।

३ उसका संघर्ष—प्रथम अपने चाचा के विरुद्ध तथा उसके बाद नागपुर के भोसले-परिवार के विरुद्ध।

४ उत्तर मे मराठा सत्ता का पुनरुत्थान।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी छोटी मोटी घटनाएँ हैं परन्तु यदि इन चार शीर्षकों को दृष्टि मे रखा जाय, तो पेशवा की परिस्थिति की जटिलताओं का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है, तथा इस प्रकार एक महान शासक के रूप में उसकी शक्तियों का यथायोग्य अनुमान करना भी सम्भव हो जायेगा। उसने इस बात के स्पष्ट लक्षण प्रकट किये कि वह अपने दो समकालीन अंग्रेज राजनीतिज्ञों अर्थात क्लाइव तथा वारेन हेस्टिंग्ज की प्रतिस्पर्द्धा में भारत के भाग्य विधाता का आसन ग्रहण कर लेगा। सुविधा की दृष्टि से सर्वप्रथम हम कर्नाटक के अभियान का वर्णन करेंगे। परन्तु ऐसा करने के पहले हम भार-

तीय राजनीति की साधारण स्थिति का पुन अवलोकन कर लेना चाहिए जिसने पेशवा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया तथा इस बात पर जोर दिया कि वह अन्य कार्यों की अपेक्षा इस काम को अधिक महत्त्व दे।

जनसाधारण का विश्वास था कि पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय से उनकी सत्ता पर गहरा आघात पहुँचा है। पेशवा के सत्तारूढ होने के शीघ्र पश्चात ही उसके परिवार में उत्पन्न गृह-कलह के कारण यह भावना और भी अधिक पुष्ट हो गयी। लेकिन जब अल्पवयस्क पेशवा ने राक्षसभुवन में निजाम अली को तथा मराठा पक्ष को त्यागने वाले व्यक्तियों के साथ उसके अपवित्र गठबंधन का दमन करके अपनी योग्यता सिद्ध कर दी तो पुन एक नवीन आशा का संचार हुआ। १७६३ ई० के अन्तिम महीनों में जब पेशवा ने अपने को कुछ स्वतन्त्र अनुभव किया दक्षिण तथा उत्तर दोनों ही समान रूप से पेशवा की दृष्टि में थे। हैदरअली ने तुंगभद्रा से लगभग कृष्णा नदी के तट तक मराठा सत्ता को पीछे ढकेल दिया। उत्तर की परिस्थिति भी उससे कुछ कम भयावह न थी। नजीबखाँ रुहेला को जो उस समय दिल्ली के शासन का प्रबंध कर रहा था, जाट, सिक्ख तथा अफगानिस्तान का अब्दाली शाह बहुत कष्ट दे रहे थे। सम्राट शाहआलम द्वितीय तथा उसके वजीर शुजाउद्दौला ने मीरकासिम के सहयोग से बिहार की अपहृत भूमि को पुन प्राप्त करने का प्रयास किया, लेकिन नवोदित अंग्रेजी सत्ता ने उनको परास्त कर दिया। वास्तव में यह अंग्रेज मराठों के लिए एक नयी समस्या बन गये थे जिनसे अब मराठों को निपटना था। १७६३ ई० में जब पेशवा तथा निजामअली में भयंकर युद्ध हो रहा था हैदरअली ने बेदनूर को विजय कर लिया तथा सावनूर करनूल तथा कडप्पा के नवाबों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। ये नवाब बहुत दिनों से मराठों के अधीन थे। हैदरअली ने उसी प्रकार मुरारराव घोरपडे का प्रदेश भी छीन लिया था। अत हैदरअली का भय सन्निकट था तथा इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। पेशवा को धन की अति आवश्यकता थी। अत पूर्ण सोच विचार के बाद उसने उत्तर की समस्याओं को भविष्य के लिए स्थगित कर दिया तथा १७६४ ई० के आरम्भ में यह निश्चय किया कि हैदरअली को दण्ड देने तथा उसके आक्रमण का अन्त कर देने के निमित्त वह दक्षिण को प्रयाण करे।

पर्याप्त संख्या में सेना के संग्रह तथा उसको अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित करने में पेशवा को जनवरी का पूरा महीना लग गया तथा फरवरी से पहले कृष्णा नदी को पार करने के लिए वह कदापि तयार न हो सका। पेशवा के दक्षिण के प्रवास-काल में हैदरअली मराठा प्रयाण के प्रतिरोध की तयारियों में व्यस्त था।

उसने निजामअली का सहयोग प्राप्त करना चाहा, लेकिन कोरे वायदा के अतिरिक्त कुछ भी उसके पल्ले न पडा। अप्रल मे वदनूर से चलकर हैदरअली सावनूर के समीप पहुँच गया तथा मराठा से खुले युद्ध के लिए तयार हो गया। वहाँ के नवाब ने बहुत पहल ही मराठा आधिपत्य स्वीकार कर लिया था तथा हैदरअली की सेना क आगमन से उसका अपना अस्तित्व सकट मे पड गया। पशवा क लिए यह स्पष्ट चुनौती थी कि वह अपन अधीनस्थ सामन्त की तुरन्त रक्षा कर। फलस्वरूप गोपालराव पटवधन को दो हजार सेना के साथ तुरन्त हैदरअली के प्रयाण को रोकने तथा नवाब की रक्षा करन के लिए भेजा गया।

पेशवा ने मुरारराव घारपडे को निमन्त्रित किया तथा उसको अपने पक्ष मे कर लिया और हैदरअली से होन वाल सघष म उसकी सहायता प्राप्त कर ली। शीघ्र आरम्भ हाने वाल युद्ध म दोनो प्रतिद्वन्द्विया की युद्ध तथा सगठन सम्बन्धी क्षमता की परीक्षा हो गयी। वे दोना दृढ, क्रियाशील तथा साहसी थे। दोना के बीच अनेक छुटपुट लडाइया हुइ तथा चाल पर चाल चली गयी। मई म हैदरअली को जो रेतेहल्ली म अपन सुदृढ स्थान पर आक्रमण का केन्द्र बना हुआ था, घेर लिया गया तथा पूणतया पराजित कर दिया गया। उसक एक हजार सैनिक खेत रह तथा वह कारवार के जगलो म अनावती को भाग गया। अब चूकि मौसम शीघ्रता से वदल रहा था तथा अभियान अभी तक अनिर्णायक सिद्ध हुआ था अत पशवा न यह निश्चय किया कि वह वही पर ठहरा रहे तथा आगामी शीत ऋतु म अपन काय को समाप्त कर दे। इस निश्चय का उत्साहपूवक स्वागत किया गया तथा इसस मराठा सेना मे इस प्रयास को जी-जान स सफल बनाने का उत्साह व्याप्त हो गया। मुरारराव मइ मे पशवा के साथ मिल गया तथा सतारा राज्य के सनापति के पद पर उसकी नियुक्ति करके उसका उसकी सेवाओ का पुरस्कार दिया गया। दुराचार के कारण रामचन्द्र जाधव की पदच्युति के फलस्वरूप यह पद हाल म ही रिक्त हुआ था। इस नियुक्ति की वैधानिक कायवाही अगले वष मे हुई (२० सितम्बर, १७६८ ई०)।

वर्षा के कारण युद्ध कुछ समय तक स्थगित रहा। लेकिन इस समय का उपयोग युद्ध की तयारिया को पूण करने मे किया गया। सेना का सगठन इस प्रकार किया गया कि शत्रु को शीघ्र ही पराजित किया जा सके। अभियान का मुख्य क्षेत्र धारवाड तथा सावनूर के बीच का प्रदेश था। जुलाइ क महीन म हैदरअली न गोपालराव पर रात्रि म गुप्त आक्रमण की योजना बनायी। गोपालराव जो सावनूर की रक्षा कर रहा था अपन गुप्तचरा द्वारा इस

योजना की सूचना पाकर पूर्ण सतर्क हो गया तथा इस प्रकार शत्रु की योजना निष्फल हो गयी। पेशवा ने तुरन्त गोपालराव की सहायता भेजी तथा स्वयं अपना ध्यान धारवाड़ की विजय पर दिया जो मराठा तथा गुर्गिरा गढ़ था और कर्नाटक के उत्तरी भाग के नियन्त्रण का प्रमुख स्थान था। हैदरअली के सेनानायक फज्जलअली ने दो मास तक इस स्थान की दृढ़तापूर्वक रक्षा की किन्तु अन्त में ६ नवम्बर को अपनी व्यक्तिगत रक्षा की शर्त पर उसने यह स्थान पेशवा को समर्पित कर दिया।

इस सफलता से मराठों का साहस बढ़ गया। उन्होंने वर्षा की समाप्ति पर शत्रु के विरुद्ध पुनः आक्रमण शुरू कर दिये। १ दिसम्बर को सावनूर के निकट दक्षिण में जहाँ आँवती के स्थान पर एक निर्णायक युद्ध हुआ। यहाँ पर हैदरअली का मुख्य शिविर लगा हुआ था। मराठों ने इस पर अकस्मात आक्रमण किया। हैदरअली पूर्णतः पराजित हुआ तथा उसके १२०० सिपाही मार डाले गये। समीपवर्ती घने जंगल में भागकर उसने इस सर्वनाश से अपनी रक्षा की। आँवती के इस युद्ध में मुरारराव घोरपड़े ने प्रमुख भाग लिया। इस मुठभेड़ के बाद हैदर का कदापि साहस न हुआ कि वह मराठों के सामने डटकर युद्ध करे। इसके विपरीत वह भागकर बदनूर के घने जंगलों में जा छिपा तथा रुक रुककर युद्ध करता रहा। उसका विचार था कि आगामी वर्षाऋतु तक संघर्ष को खींच ले जाये और इस प्रकार अपने विरोधियों को थका मारे। इस बीच में युद्ध को स्थायी रूप से बन्द करने के लिए वह सन्धि का प्रस्ताव भी करता रहा। हैदरअली को वास्तव में पूना की परिस्थिति का तथा उस द्वेष भावना का पूर्ण ज्ञान था जो पेशवा तथा उसके चाचा के बीच उत्पन्न हो गयी थी। परिस्थितियों के कारण जिनकी व्याख्या नासिक में रघुनाथराव की कार्यवाहियों के उल्लेख से हो सकती है उसको अनुकूल शर्तें प्राप्त करने का पुनः अवसर प्राप्त हो गया तथा रघुनाथराव की इन कार्यवाहियों के कारण ही पेशवा की अनेक योजनाएँ प्रायः असफल रहीं।

२ पुरन्दर के कोली—इस बात की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है कि १७६४ ई० के आरम्भ में जबकि पेशवा ने हैदरअली के विरुद्ध अपना अभियान शुरू ही किया था रघुनाथराव ने किस प्रकार बहाना किया कि वह सांसारिक कार्यों से मुक्त होना चाहता है तथा उसने नासिक में रहना आरम्भ कर दिया था। माधवराव ने उसे प्रसन्न रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। वह उसको आदरपूर्वक पत्र लिखता युद्ध की दशा का वृत्तान्त भेजता तथा शासन-कार्यों पर प्रायः उससे परामर्श करता था। जब पेशवा राजधानी से दूर था, उसने अपने चाचा को व्यस्त रखने के विचार से उससे पूना के कार्यों

की देखभाल करने की प्राथना की। १७६४ ई० की ग्रीष्मऋतु मे पुरन्दरगढ के किले के कोली रक्षको ने जो बहुत समय से पितृपरम्परागत सेवक थे, उस समय के दुगपाल नीलकण्ठ अम्बा पुरन्दरे के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। पुरन्दरे ने उनको दण्ड के रूप मे पदच्युत कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अम्बाजी की अनुपस्थिति म उन लोगो ने सम्मिलित होकर बलपूवक गढ पर अधिकार कर लिया। अम्बाजी उस समय रघुनाथराव के पास नासिक म था। रघुनाथराव को अपने आश्रय स्थान के रूप म उस गढ से अति मोह था। उसने छलपूवक पेशवा पर यह मनगढन्त दोष लगाया कि उसने गुप्त रूप से कोलियो को विद्रोह का प्रोत्साहन दिया है। इस काण्ड से इन दोनो के पक्षपातियो म अति क्रोध उत्पन्न हो गया तथा सन्देह और कटुता का वातावरण, जो सौभाग्यवश गत वष शान्त रहा था, पुनरुज्जीवित हो गया।

इस पर पेशवा ने अपनी सफाई पेश की। उसने अपनी ओर से किये गये किसी भी ऐसे क्रूर अभिप्राय का अस्वीकार कर दिया तथा विद्रोह म अपनी ओर से उत्तेजना फैलाने का उसने खण्डन किया। घटना स्वय तुच्छ थी, परन्तु अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि रघुनाथराव ने स्वाथवश इस घटना को इस प्रकार मोड दिया है, जिससे पेशवा की हानि हो। उसने इसको स्पष्ट रूप से पेशवा की सुनिश्चित योजना बताया, जिसका निर्माण उसकी (चाचा) शक्ति का अपहरण करने के लिए किया गया था। रघुनाथराव ने नाना फडनिस को नासिक से पूना बुलवाया और उससे वही पर स्वय के निरीक्षण म काय करने को कहा। नाना यह काय करने को तयार न हुआ। नासिक म स्थिति इतनी बिगड गयी कि रघुनाथराव ने पेशवा के विरुद्ध कायवाही करने की धमकी दी। नाना फडनिस ने इन सभी विषयो की सूचना पेशवा को भेज दी तथा पूना के वतमान शासन के सचालन म अपनी असमथता व्यक्त की। इस आकस्मिक सकट से पेशवा को, जो कर्नाटक म था, बहुत पीडा हुई। माधवराव को आशका हुई कि कही उसका चाचा पुन विद्रोह न कर दे अथवा अपने पूव षडयन्त्रो को पुन आरम्भ न कर दे अत पेशवा ने हैदरअली के विरुद्ध युद्ध-कार्यों म परामश लेने हेतु उसको अपने शिविर म बुलाया। इस काय के लिए भी रघुनाथराव ने गोविन्द शिवराम के द्वारा अपनी शर्तों का प्रस्ताव किया जिनको पेशवा ने स्वीकार कर लिया। वह अक्टूबर १७६४ ई० म नासिक से प्रस्थान किया तथा धीरे धीरे एक महान सामन्त की भाँति आगे बढा तथा २७ जनवरी को सावनूर के समीप पेशवा के शिविर म पहुँच गया।

३ हैदरअली से सन्धि—घटना स्थल पर रघुनाथराव के आगमन ने युद्ध म एक नया मोड लिया। इस समय पेशवा, पटवधन-परिवार, [illegible]

सावनूर का नवाब आदि सभी पूर्ण उत्साह में थे तथा शक्तिपूर्वक युद्ध का संचालन कर रहे थे। उनका इरादा था कि शत्रु को ऐसी शर्तें मानने के लिए बाध्य कर दिया जाय जिनसे उसका पूर्ण दमन हो जाय। वे उससे वह समस्त प्रदेश छीन लेना चाहते थे जिसका उसने अपहरण कर लिया था तथा मैसूर के राजा को पुनः उसकी गद्दी पर बैठाना चाहते थे। जब रघुनाथराव वहाँ पहुँचा हैदरअली के दूत मराठा शिविर में थे तथा स्थायी शांति की शर्तों पर वार्तालाप कर रहे थे। इस वार्तालाप को अब रघुनाथराव ने अपने हाथों में ले लिया तथा उसका प्रबन्ध इस प्रकार किया कि पेशवा की बढ़ती हुई शक्ति तथा जनप्रियता पर अंकुश लग जाय। चूंकि हैदरअली निजाम की भाँति दक्षिण में मराठों का खुला दुश्मन था, अतः रघुनाथराव ने यह प्रबन्ध किया कि अगर पेशवा उससे अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो, तो अन्त में हैदरअली को बराबर के जोड़ के रूप में छोड़ दिया जाय। अतः किसी न किसी बहाने हैदरअली को सरल शर्तें देकर रघुनाथराव ने युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव किया। पेशवा अपने चाचा को रुष्ट नहीं करना चाहता था। अतः हैदरअली का पूर्णतया दमन करने की योजना कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गयी। ३० मार्च को हैदरअली के प्रतिनिधि मीर फजुल्ला के द्वारा सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये गये। सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं

(१) हैदरअली ३० लाख रुपया नकद हर्जाने का दे।

(२) तुंगभद्रा के उत्तर का समस्त प्रदेश छोड़ दे।

(३) मुरारराव घोरपडे तथा सावनूर के नवाब को मराठा-अधीन सामन्तों के रूप में छोड़ दे तथा उनको किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाये।

इस सन्धि को अनन्तपुर की सन्धि कहते हैं। इस प्रकार एक बार फिर रघुनाथराव इस बात का उत्तरदायी है कि उसने मराठों के घोर शत्रु की रक्षा की जो एक या दो मास के भीतर ही सर्वथा नष्ट कर दिया जाता। इतिहास साक्षी है कि इस परिणाम का मराठों के भावी भाग्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। अब पेशवा ने गोपालराव मुरारराव तथा रस्ते-बन्धुओं को उनके अधीन पर्याप्त सेना सहित प्राप्त प्रदेश की रक्षार्थ नियुक्त कर दिया तथा स्वयं जून में पूना वापस आ गया। मार्ग में उसने कई मन्दिरों के दर्शन किये तथा शेष कर का संग्रह किया।

४ जानोजी भोसले के विरुद्ध प्रयाण—जब माधवराव दक्षिण में खोई भूमि को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था उत्तर में परिस्थिति इस प्रकार हो गयी जिससे मराठों को बहुत क्षति पहुँची। इन घटनाओं की बिना पूर्व कल्पना किये हम यह जान लेना चाहिए कि उस समय पेशवा दक्षिण की

किन किन मुख्य समस्याओं में व्यस्त था। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि अंग्रेज मराठों के भारतीय प्रभुसत्ता के संघर्ष में प्रतिद्वन्द्वी थे। उत्तर में अस्थायी ह्रास के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बहुत मूल्यवान अवसर प्राप्त हो गया था। जब माधवराव राक्षसभुवन में निजाम को परास्त करने में व्यस्त था, अंग्रेजों ने न्यायसम्मत नवाब मीरकासिम को बंगाल से निकाल दिया। आगे जब पेशवा धारवाड पर अधिकार प्राप्त करने में व्यस्त था, अंग्रेजों ने तीन मुसलमान शासकों अर्थात् सम्राट वजीर तथा सूबेदार के सम्मिलित दल को हराकर बक्सर की महान विजय प्राप्त की और अपना प्रभाव पूरबी भारत के उस विशाल क्षेत्र पर स्थापित कर लिया जो इलाहाबाद से बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ है। इससे पेशवा बहुत रुष्ट हुआ क्योंकि उत्तर में मराठा प्रभुत्व के प्रति यह सीधी चुनौती थी। १७६५ ई० के आरम्भिक महीनों में मल्हारराव होल्कर ने अंग्रेजों को दोआब से निकाल देने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे घोर पराजय उठानी पड़ी तथा वह पीछे हटने को विवश कर दिया गया।[१] १७६५ ई० की वर्षाऋतु में पूना में पेशवा ने अपने चाचा के साथ इस घटना पर विचार विमर्श किया तथा उससे तुरन्त दक्षिण में जाकर मराठा गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए कहा, क्योंकि उस समय जीवित सरदारों में वह सबसे अधिक अनुभवी था। रघुनाथराव ने सदा की भाँति दशहरा के बाद दक्षिण से प्रस्थान किया।

इस समय बरार में निजामअली तथा नागपुर के भोंसले परिवार के बीच घोर संघर्ष हो रहा था। दोनों ने पेशवा से सहायता की याचना की। यह याचना उस समझौते के अन्तर्गत की गयी थी जो दो वर्ष पूर्व औरंगाबाद की सन्धि के समय हुआ था। पेशवा को सदैव यह भय रहता था कि अगर उसके चाचा, भोंसले तथा निजाम के मध्य कोई संगठन हो गया, तो इसमें उसकी स्थिति के प्रति गम्भीर भय उत्पन्न हो जायगा। पूना तथा अन्य स्थानों के सर्वनाश के अवसर पर १७६३ ई० के ग्रीष्मऋतु में जानोजी के अत्याचारों को पेशवा अभी भूला न था और न उसने उनको क्षमा ही किया था। अतः उसने इस परिस्थिति से फायदा उठाकर भोंसले की बढ़ती हुई शक्ति को क्षीण करने तथा निजाम को अपने और भी अधिक विश्वास में लाने का निश्चय किया। यद्यपि भोंसले मराठा राज्य का सदस्य था किन्तु प्रायः वह पेशवा के प्रति निष्ठाहीन था तथा पेशवा के शत्रुओं के साथ षडयन्त्र करने में व्यस्त

---

[१] इस घोर विपत्ति से वयोवृद्ध होल्कर अति दुःखी हुआ, उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया तथा एक वर्ष के भीतर ही उसका देहान्त हो गया (२० मई, १७६६ ई०)।

रहता था। अब यह शुभ अवसर था जबकि पेशवा उसके विश्वासघात का दमन कर उसको दण्ड दे सकता था। उसने अपने चाचा को इस योजना की अस्पष्ट सी रूपरेखा अवश्य बतायी लेकिन अपनी कार्य पद्धति का पूर्ण रूप से गुप्त रखा। उसने अपने इस उद्देश्य को भी प्रकट न किया कि वह किस पक्ष को सहायता देने का विचार रखता है। उसने अपने चाचा को लिखा कि वह नासिक से सीधे आकर गोदावरी पर उसके साथ हो जाय। भोसले तथा रघुनाथराव को यह कदापि आशा नहीं थी कि पेशवा निजामअली से मित्रता कर लेगा तथा इस प्रकार उनके गुप्त षडयन्त्रों[१] को पूर्ण विफल कर देगा। पूर्व योजना के अनुसार गोदावरी पर निजामअली की सेना पेशवा के साथ हो गयी तथा दोनों ने भोसले के विरुद्ध प्रयाण किया तथा एक मास के अन्दर ही उसको इतना संकटग्रस्त कर दिया कि जनवरी १७६६ ई० के अन्त तक अमरावती के समीप दरियापुर के स्थान पर उसने पेशवा के सम्मुख घुटने टेक दिये तथा उसको २४ लाख की आय का प्रदेश दे दिया। यह उस ३२ लाख के प्रदेश में से था जो दो वर्ष पहले राक्षसभुवन के युद्ध के अवसर पर उसे सान्त्वना के रूप में मिला था। अब वह गम्भीरतापूर्वक भावी अभियानों में पेशवा की आज्ञानुसार कार्य करने के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार रघुनाथराव अपनी पूर्ण विवशता में जानोजी के मानमर्दन का साक्षी हुआ।

५ निजामअली से मित्रता—वापस लौटते समय पेशवा ने निजामअली के साथ एक अत्यन्त सफल तथा सस्नेह सम्मिलन के द्वारा एक अन्य कूटनीतिक विजय को अपनी इस सफलता के साथ जोड़ दिया। यह सम्मिलन पूर्व निर्धारित था तथा दक्षिण बरार में कुरमगाँव (जिला उमरावती) नामक स्थान के समीप हुआ था। लेकिन उसके ईर्ष्यालु चाचा को इसका भान भी न होने पाया था। दोनों शासकों का सम्मिलन गोदावरी तट पर परसनेर तथा माकला के स्थानों पर हुआ तथा ५ फरवरी से आगामी १० दिनों तक जारी रहा। इसमें दोनों ओर से पूर्ण स्नेह शिष्टाचार भोजों उपहारों तथा आमोद का प्रदर्शन किया गया जिसमें भय तथा सन्देह की कोई गुंजायश नहीं थी। साथ अनेक प्रकार तथा धार्मिक वातावरण का विशेष रूप से आयोजन किया गया था। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिए यह दृश्य समान रूप से आश्चर्यजनक था तथा ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा गया था। निजामअली जो उम्र में लगभग १० वर्ष बड़ा था पेशवा के विचार तथा नीति व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ तथा उसकी इस मित्रता पेशवा के समय तक (१७७२ ई०)

---

[१] इति॰ संग्रह ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, पृ० १०९ दिनांक २५ नवम्बर, १७६५ ई०।

बनी रही, तथा निजाम इसका भय से स्मरण करता रहा। पेशवा के प्रति उच्च आदर भावना के कारण ही निजामअली ने नारायणराव की हत्या के बाद रघुनाथराव के विरुद्ध बड़भाई के हित का समर्थन किया।[३] वास्तव में इस चतुर कूटनीति से एक परम्परागत शत्रु शक्तिशाली मित्र बन गया तथा वे सब पुराने घाव भर गये जो पानखेड से राक्षसभुवन तक (१७६३ ई०) मराठा निजाम सम्बन्धों में प्रकट हुए थे। यद्यपि निजाम मराठों का हार्दिक मित्र न बन पाया फिर भी कुछ समय के लिए वह अनपकारी अवश्य हो गया। यह कोई छोटी बात न थी। लेकिन इसका अनुमान उस समय के तथाकथित बुद्धिमानों ने हृदय से न किया, क्योंकि वे सभी अपने-अपने षड्यन्त्रों में व्यस्त थे। उत्तर को जाते हुए जब रघुनाथराव को यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा तथा उसने अपने कर्मचारियों को व्याकुलतापूर्ण पत्र लिखे।

इस प्रकार माधवराव के साथ राजनीति के क्षेत्र में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। उसने परम्परागत कूट उपायों तथा मित्रों और शत्रुओं के साथ व्यवहार में समान रूप से छल और कपट का त्याग कर दिया। इस स्पष्ट तथा निश्छल कूटनीति के नवीन परिवर्तनों के अनेक उदाहरण इस स्वतन्त्र विचारक पेशवा के अल्पजीवन में देखे जा सकते हैं। उसके समस्त क्रियाकलापों में यह साहसपूर्ण तथा नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

६ बाबूजी नायक का मानमर्दन—बारामती का बाबूजी नायक जोशी एक पुराना तथा पितृपरम्परागत राज्य सेवक था। वह एक विचित्र स्वभाव का व्यक्ति था तथा पेशवा के परिवार से सम्बन्धित था, और क्रमागत छह पेशवाओं के शासनकालों को देख चुका था। यद्यपि वह पेशवाओं के उदय को ईर्ष्यालु दृष्टि से देखता था तथा स्वर्गीय पेशवा की आँखों में सदैव ही खटकता है लेकिन वर्तमान में उसने गोपिकाबाई के दल का साथ दिया था तथा यूनाधिक निष्ठा से उसने माधवराव की सेवा की थी। परन्तु वह प्रायः अव्यवस्थित तथा अस्थिर स्वभाव का था। गत वर्ष कर्नाटक में पेशवा के अभियान के अवसर पर उसने हैदरअली के साथ षड्यन्त्र किया था। इस विषय की जाँच की गयी तथा उसका भेद खुल गया। परन्तु उसने पश्चात्ताप करने का नाम न लिया बल्कि इसके विपरीत वह पेशवा को छोटे मोटे कष्ट देता रहा तथा उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करता रहा। उसके अधिकार में शोलापुर तथा वण्डन के दो शक्तिशाली दुर्ग थे, जहाँ पर उसने अपनी बहुमूल्य वस्तुओं सहित

---

[३] पेशवा दफ्तर संग्रह, खण्ड २०, पृ० १६५, १६६, १६७ १७२ १७४।

अपने को सुरक्षित कर लिया था। पेशवा को उसकी निष्ठा का कोई भरोसा न था अत उसने आज्ञा दी कि वे दोनों गढ़ उसके अधिकार से छीन लिये जायें। नायक ने पेशवा की मांग का प्रतिरोध किया तथा गढ़ों को समर्पित करने से इन्कार कर दिया। पेशवा के सेनानायक रामचन्द्र गणेश ने गढ़ों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया (१७६६ ई०)। नायक कुपित होकर बारामती की अपनी जागीर में जा छिपा लेकिन उसे पेशवा से युद्ध करने का साहस न हुआ।

७ नकली सदाशिवराव—महत्त्वपूर्ण कार्यों के अलावा पेशवा को अपना ध्यान सदैव कुछ अन्य गौड़ विषयों की ओर भी देना पड़ता था जो कि कुछ समय के लिए अति उत्तेजनात्मक होते थे। ऐसा ही विषय नकली व्यक्तियों की बाढ़ थी जिसकी ओर महाराष्ट्र में बहुत दिनों तक गम्भीर चर्चाएँ रहीं और जिन्होंने सभी का ध्यान आकर्षित किया। ये सब पानीपत के युद्ध के कारण उत्पन्न हो गये थे। बात यह थी कि उस युद्ध में अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्राण जाते रहे थे। उनमें बहुत-से व्यक्तियों के शवों को पहचाना नहीं जा सका और न उनका विधिपूर्वक दाह संस्कार ही हुआ। इनमें से सदाशिवराव भाऊ तथा जनकोजी सिंधिया प्रमुख थे यद्यपि पेशवा का अपना सन्निकट परिवार अपने विश्वस्त कर्मचारियों द्वारा यह जानता था कि उनकी मृत्यु का समाचार सत्य है। एक वंचक जो अपने आपको सदाशिवराव बताता था कुछ वर्षों तक दक्षिण में हलचल मचाता रहा। १७६१ ई० के अन्त में सुखलाल नामक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण बुन्देलखण्ड में छतरपुर के पास प्रकट हुआ जिसके बारे में गणेश सम्भाजी विश्वासराव लक्ष्मण राजा बहादुर आदि निम्न श्रेणी के मराठा अधिकारियों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह भाऊसाहब है। उसने कुछ अनुचर एकत्र कर लिये तथा बलपूर्वक कर ग्रहण करता तथा अंश माँगता हुआ वह भ्रमण करने लगा। प्रारम्भ में उसकी गतिविधियाँ उत्तर भारत तक ही सीमित रहीं लेकिन १७६४ ई० में उसने नर्मदा को पार किया तथा महाराष्ट्र में प्रकट हो गया। १४ जनवरी, १७६५ ई० को माधवराव ने आज्ञा निकाली कि इस विषय की जाँच की जाये तथा उस मनुष्य के सत्य या असत्य होने का पता लगाया जाय। तदनुसार १२ अगस्त १७६५ ई० को सुल्तानपुर नामक स्थान पर मल्हारराव होल्कर ने एक अन्वेषक समिति का आयोजन किया। सुखलाल की पड़ताल की गयी तथा यह घोषित किया गया कि वह भाऊसाहब नहीं है। सुखलाल भाग गया तथा उसने नये संकट उत्पन्न कर दिये। हरि दामोदरराव नेवलकर तथा उसके पुत्र रघुनाथ हरि ने, जो झाँसी की रानी का पूर्वज था उसका पीछा

किया तथा उसको पकडकर दण्ड के लिए पूना भेज दिया। वहाँ पर फिर कुछ प्रमुख व्यक्तियो ने अलग-अलग पडताल की तथा उसको वचक घोषित कर दिया। तब नगर के बुधवार चौक मे उसका सावजनिक प्रदशन किया गया। १५ अक्टूबर १७६५ ई० को रामशास्त्री तथा अन्य बहुत से अधिकारियो ने पावती मन्दिर की प्रतिमा के सामने उसकी पुन जाच पडताल की। यहाँ पर उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तथा अपनी समस्त पूव कथा कह दी। फलस्वरूप उसको आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया।[४]

इसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति को जो जनकोजी सिन्धिया होने का दावा करता था उचित दण्ड दिया गया।

८ महादजी सिन्धिया का उत्कर्ष—महादजी सिन्धिया अपने आरम्भिक जीवन मे अपने ज्येष्ठ भ्राताओ के साथ व्यस्त रहा था अत उपलब्ध पत्रो मे उसका कोई विशेष उल्लेख नही है। रानोजी सिन्धिया के विशाल परिवार मे केवल महादजी ही ऐसा पुत्र था जो राष्ट्र हित मे मृत्यु स बच निकला था तथा मराठा राज्य का मुख्य सहायक होने के लिए पर्याप्त समय तक जीवित रहा था। उसका जन्म सम्भवत १७२७ ई० के समीप हुआ था और वह अधिकतर उत्तर भारत मे मराठा कार्यों मे व्यस्त रहता था। पानीपत की विपत्ति के दिन उसके पाव म घाव लग गया था और वह अचेत हो गया था। राणाखा नामक एक भिश्ती ने उसको उठा लिया तथा उसकी प्राण रक्षा की। दिसम्बर १७६२ ई० म वह मालवा से दक्षिण को आया तथा मिरज के घेरे म वह पशवा के साथ था जबकि सिन्धिया राज्य पर उसके उत्तराधिकार के प्रश्न का निणय न हुआ था। बाद म उससे भारी उत्तराधिकार शुल्क अथवा नजराने का माँग की गयी, जो वह न दे सका। फलस्वरूप रघुनाथराव ने अपन भतीजे के प्रति द्वेष के कारण सिन्धिया परिवार की सम्पत्ति का वारिस पहले केदारजी तथा बाद म मानाजी सिन्धिया को नियुक्त किया। उस परिवार की विधवा महिलाओ न महादजी को कुछ कम कष्ट नही दिया। ८ जुलाई १७६७ ई० के एक पत्र मे महादजी ने अति कटुतापूवक लिखा है कि स्वय उसकी माता चिमाबाई क पास आजीविका का कोई साधन न था। अपन जीवनयापन के लिए उसको भारी ऋण लेना पडता था तथा जिसको चुकाने के लिए उसके पास कोई साधन नही था।

---

४ पहले वह अहमदनगर के गढ मे रखा गया, तथा उसके बाद अन्य स्थानो म। १७७६ ई० म वह रत्नागिरि के गढ से भाग निकला तथा कुछ हल चल के बाद पकड लिया गया तथा उसको मृत्यु-दण्ड दिया गया।

१७६३ तथा १७६४ ई० में रघुनाथराव तथा पेशवा ने सिंधिया परिवार की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के प्रश्न पर परस्पर विरोधी आज्ञाएँ दीं। महादजी पर रघुनाथराव की टेढ़ी नजर थी यद्यपि पेशवा की पारिवारिक कलह में उसने स्पष्ट रूप से किसी पक्ष विशेष का समर्थन नहीं किया था। १७६४ ई० की ग्रीष्म ऋतु में जब पेशवा कर्नाटक में था महादजी रघुनाथराव की बिना नियमित आज्ञा के उज्जैन को वापस चला आया। रघुनाथराव ने तुरन्त उसे पकड़ने की आज्ञा दे दी। परन्तु महादजी का दमन इतनी सरलता से न हो सका। उसने वीरतापूर्वक अपना पीछा करने वालों का मुकाबला किया तथा सकुशल मालवा पहुँच गया। यहाँ पर उसने रघुनाथराव द्वारा नियुक्त केदारजी तथा मानाजी की बिना कोई परवाह किये हुए अपनी सम्पत्ति का प्रबन्ध अविलम्ब अपने हाथों में ले लिया। जब रघुनाथराव ने केदारजी को अपने सम्मुख बुलाया, तो उसने वीरतापूर्वक यह उत्तर दिया—"पूज्य महादजी बाबा यहाँ पर पहले से निष्ठापूर्वक सेवा कर रहे हैं। जो कुछ भी आज्ञा आप देना चाहें, उनको दें। मैं सर्वथा उनकी इच्छा का पालक हूँ। हम दोनों आपकी निष्ठापूर्वक सेवा करेंगे।' जब रघुनाथराव केदारजी को महादजी से अलग करने में असफल हो गया, तो उसने एक अन्य व्यक्ति मानाजी सिन्धिया को केदारजी के स्थान पर उस परिवार का मुखिया नियुक्त कर दिया। मानाजी साबाजी सिंधिया का पौत्र था जिसने मराठा ध्वज को अटक तक पहुँचा दिया था और जो सिंधिया-परिवार का ही एक सदस्य था। इन समस्त वर्षों में महादजी ने मालवा तथा राजस्थान में मराठा हितों को सुरक्षित रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था। उसने अपने अल्प साधनों का सावधानीपूर्वक प्रयोग करके एक सेना तैयार की जिसको वह नियमपूर्वक वेतन देता था। इस प्रकार उसने अपनी सैनिक स्थिति को सुदृढ़ बना लिया था। उसने अपने पास निष्ठापूर्ण अनुचरों का एक जत्था भी एकत्र कर लिया था। राघोराम पागे नामक उसके एक सहायक ने १७ अगस्त १७६५ ई० को एक पत्र में लिखा है— 'यहाँ पर महादजी के पास निष्ठापूर्ण साथियों का एक जत्था है जो उनके लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने पर तैयार है। सबका एक मत है और सब पेशवा के प्रति निष्ठावान हैं। इस कार्य में वे उनके पूर्व-पुरुषों के बलिदान का अक्षरशः अनुकरण कर रहे हैं।'

इस प्रकार १७६१ से १७६८ ई० के अन्त तक का लगभग ८ वर्ष का समय महादजी के जीवन का निर्माण-काल था। १७६९ ई० के आरम्भ में वह हिन्दुस्तान के इतिहास में युग-पुरुष के रूप में प्रवेश करता है।

१ सिन्धिया हिस्टोरिका—[illegible] ने टामस मॉर्स्टन का, जिसने

उसने पूना में अपना दूत नियुक्त किया था, निर्देश देते हुए १६ नवम्बर, १७६७ ई० को लिखा—"मराठों की बढ़ती हुई शक्ति चिन्ता का विषय बन गयी है और उसने हमारा मद्रास का तथा फोर्ट विलियम का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।"[५] वास्तव में माधवराव को अपने अल्प शासन काल के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों की वर्द्धमान शक्ति से बहुत अधिक दुःख और भय हो गया था। दोनों एक-दूसरे को अपना अत्यन्त शक्तिशाली शत्रु समझते थे तथा माधवराव को इस तीव्र गति से बढ़ने वाली विपत्ति की सदैव चिन्ता रहती थी। अंग्रेजों ने पहले ही अपनी शक्ति का मद्रास तथा बंगाल में दृढ़तापूर्वक विस्तार कर लिया था, तथा इस समय उन्हें पश्चिम में अपनी शक्ति का विस्तार न करने का सख्त अफसोस था। १७६१ ई० में जब पूना पर निजामअली द्वारा आक्रमण किये जाने का भय था रघुनाथराव ने अपने दूत गोविन्द शिवराम को बम्बई भेजा तथा अंग्रेजों से सैनिक सहायता की प्रार्थना की थी। गोविन्द शिवराम कुछ शर्तें लेकर वापस आया जिन पर अंग्रेज सैनिक सहायता देने को तैयार थे। इस पर रघुनाथराव ने बाजी गंगाधर को अपने कुछ प्रस्तावों सहित अंग्रेजों के पास भेजा। परन्तु चूंकि इस प्रकार की सहायता के बदले में अंग्रेज बसई तथा सालीसट के समस्त टापू पर अधिकार मांगते थे अतः रघुनाथराव ने सहायता अस्वीकार कर दी तथा बम्बई को स्पष्ट उत्तर भेज दिया कि बसई कभी भी उन्हें नहीं दिया जा सकता। निजाम के आक्रमण के भय का लोप हो चुका था और अब अंग्रेजों की सहायता की कोई आवश्यकता भी न रही थी।

कुछ समय बाद जब पेशवा ने हैदरअली के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया बम्बई के शासकों ने तुरन्त इस संघर्ष से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। वे बम्बई के टापुओं के समीपस्थ समुद्री तटों पर अपना अधिकार करने को बहुत उत्सुक थे, क्योंकि यहाँ से उनको अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त अन्न तथा ईंधन प्राप्त होता था और वे उस पर अधिकार करने के उपयुक्त अवसर की ध्यानपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने २५ जनवरी, १७६५ ई० को मलवन के गढ़ पर अधिकार कर लिया जो कोल्हापुर के छत्रपति के क्षेत्र में था तथा इसका नाम फोर्ट आगस्टस रख दिया।

इस घटना ने भारत में अंग्रेजों के उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया तथा इससे समस्त महाराष्ट्र में त्राहि त्राहि मच गयी। माधवराव के ध्यान में यह बात शीघ्र ही आ गयी तथा उस समय से ही वह इस पश्चिमी शक्ति को अपना

---

५ फारेस्ट—मराठा सीरीज, पृ० १४१।

सर्वप्रथम शत्रु समझने लगा तथा इस ढंग से यह शनै शनै इसका विरोध करने लगा। निजामअली के साथ उसकी मित्रता इस उद्देश्य की पूर्ति का प्रथम चरण था। लेकिन इस सम्बन्ध में पेशवा को अपने चाचा तथा नागपुर के भोसले परिवार की ओर से घोर शंका थी क्योंकि उसे इस बात की अत्यधिक चिन्ता थी कि कहीं वे किसी प्रलोभन में आकर अंग्रेजों के पक्ष में न हो जायें। इसी कारण से माधवराव ने उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की थी। मैसूर का हैदरअली एक ऐसा शत्रु था जिससे अंग्रेज भाग उसकी ही घृणा तथा भय करते थे। अतः जब १७६७ ई० में उससे युद्ध आरम्भ हुआ, बम्बई के अध्यक्ष ने पेशवा की सरकार से मित्रता स्थापित करने के निमित्त टामस मोस्टिन के नेतृत्व में एक दूतमण्डल पूना भेजा। यह दूतमण्डल बम्बई से १६ नवम्बर को रवाना हुआ तथा २६ नवम्बर को पूना पहुँच गया। मोस्टिन का एक सहायक, जिसका नाम ब्रोम था, रघुनाथराव से मिलने नासिक गया। यद्यपि इस मण्डली के सदस्यों के साथ पूना में पर्याप्त शिष्ट भाव से व्यवहार किया गया किन्तु उनको कोई वास्तविक लाभ नहीं हुआ क्योंकि उनके वास्तविक उद्देश्य मराठा शासकों को इतने स्पष्ट हो गये थे कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। अतः २७ फरवरी १७६८ ई० को यह मण्डली घोर निराशा के साथ बम्बई वापस आ गयी। उनको केवल यह लाभ हुआ कि पेशवा तथा रघुनाथराव के मध्य उत्पन्न गृह-कलह की सूचना प्राप्त हो गयी। रघुनाथराव के साथ ब्रोम के प्रस्तावों का उल्लेख हम बाद में करेंगे। अपने चाचा से निपटने के बाद पेशवा ब्रिटिश विभीषिका का सामना करने के लिए तैयार हो गया। अतः बम्बई के शासकों ने मोस्टिन को पुनः पूना दरबार में भेजा। वह वहाँ पर पेशवा की मृत्यु से कुछ समय पहले अर्थात् १३ अक्टूबर १७७२ ई० को पूना पहुँचा तथा १७७४ ई० के अन्त तक वहीं ठहरा। उसने नारायणराव का हत्याकाण्ड स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

तिथिक्रम

अध्याय २४

२६ ३० नवम्बर, १७६०	मागरोल का युद्ध, मल्हारराव होल्कर द्वारा माधव सिंह परास्त।
१७६२ ६७	पजाब को पुन प्राप्त करने के अ दाली के प्रयत्न सिक्खों द्वारा विफल।
जुलाई १७६३	कटवा तथा घेरिया के युद्ध, अग्रेजों के हाथों मीर कासिम परास्त।
३ मई, १७६४	पटना के समीप युद्ध, शुजाउद्दौला तथा मीरकासिम परास्त।
२३ अक्टूबर, १७५४	बक्सर का युद्ध, हेक्टर मुनरो के हाथों सम्राट, वजीर तथा मीरकासिम को करारी हार।
फरवरी, १७६५	मल्हारराव होल्कर द्वारा जवाहरसिंह जाट तथा नजीबुद्दौला मे शांति स्थापित।
३० माच, १७६५	शुजा की होल्कर से अनूपशहर मे भेंट, अग्रेजों के विरुद्ध शुजा द्वारा उसकी सहायता प्राप्त।
३ मई, १७६५	फ्लेचर के हाथों कडा के समीप होल्कर की घोर पराजय।
३ मई, १७६५	क्लाइव का कलकत्ता पहुँचना।
२४ जून, १७६५	क्लाइव का कलकत्ता से उत्तरी घटना स्थल के लिए प्रयाण करना।
जुलाई १७६५	क्लाइव का इलाहाबाद पहुँचना।
१२ अगस्त, १७६५	क्लाइव की शुजाउद्दौला के साथ सन्धि।
१२ अगस्त, १७६५	क्लाइव द्वारा सम्राट से दीवानी का पट्टा प्राप्त करना।
सितम्बर, १७६५	क्लाइव का कलकत्ता को वापस आना।
फरवरी, १७६६	रघुनाथराव का अपने उत्तरी प्रयाण पर प्रस्थान।
२० मई, १७६६	मल्हारराव होल्कर की मृत्यु।
जून, १७६६	रघुनाथराव द्वारा गोहद का अवरोध।

२ जनवरी, १७६७	रघुनाथराव द्वारा गोहद के राणा से शान्ति का प्रस्ताव।
फरवरी, १७६७	रघुनाथराव का गोहद से दक्षिण को प्रस्थान करना।
२७ मार्च, १७६७	मल्हारराव होल्कर की मृत्यु।
अप्रैल १७६७	अहिल्याबाई द्वारा रघुनाथराव की धमकी की अवज्ञा।
२१ दिसम्बर, १७६७	जयपुर के माधवसिंह की मृत्यु।
१७६८	महादजी द्वारा अपने पारिवारिक अधिकार तथा मुख्य पुरुष का स्थान प्राप्त।
दिसम्बर, १७६९	मराठा सेनाएँ उत्तर के मार्ग पर।
५ अप्रैल, १७७०	गोवर्धन का युद्ध, नवलसिंह जाट परास्त, मराठों का आगरा तथा मथुरा पर अधिकार।
५ अप्रैल, १७७०	नजीबुद्दौला द्वारा अधीनता स्वीकार, परन्तु पुरानी चाल आरम्भ।
५ अप्रैल, १७७०	बगश नवाब के विरुद्ध मराठा दलों का दोआब मे प्रवेश तथा रामघाट पर पडाव डालना।
२३ अगस्त, १७७०	वाराणसी के बलवन्तसिंह की मृत्यु।
८ सितम्बर, १७७०	जाटो के साथ शान्ति की सन्धि।
३१ अक्टूबर, १७७०	नजीबुद्दौला की मृत्यु, उसका पुत्र जबेतखाँ कैद मे, बाद मे होल्कर द्वारा मुक्त।
१५ दिसम्बर, १७७०	मराठो का इटावा पर अधिकार, फर्रुखाबाद पर उनका प्रयाण, फर्रुखाबाद के नवाब द्वारा मराठा प्रदेश वापस करना।
दिसम्बर, १७७०	मिर्जा नजफखाँ के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा मराठा योजनाओं का विरोध, सम्राट द्वारा मराठा रक्षा की प्रार्थना।
१० फरवरी, १७७१	महादजी का दिल्ली पर अधिकार, उसके द्वारा जवाबख्त सिंहासनारूढ़।
१२ अप्रैल, १७७१	सम्राट् का इलाहाबाद से दिल्ली को प्रस्थान।
११ जुलाई, १७७१	अहमदखाँ बगश की मृत्यु।
२६ जुलाई, १७७१	सम्राट का फर्रुखाबाद पहुँचना।
१८ नवम्बर, १७७१	सम्राट का अनूपशहर पहुंचना तथा महादजी की उससे भेंट।

६ जनवरी, १७७२	सम्राट का दिल्ली पहुँचना तथा अपनी गद्दी पर बठना ।
फरवरी, १७७२	सम्राट तथा मराठो का जबतलों का पीछा करना ।
४ माच, १७७२	महादजी का शुक्रताल पर अधिकार ।
१४ अप्रल, १७७२	अहमदशाह अब्दाली की काबुल मे मृत्यु ।
१४ अप्रल, १७७२	नजीबाबाद पर अधिकार, मराठों को पानीपत की लूट का माल पुन प्राप्त ।
वर्षाऋतु, १७७२	महादजी तथा विसाजी कृष्ण द्वारा दिल्ली के कार्यों का प्रबन्ध ।
१७ नवम्बर, १७७२	पेशवा की पूना मे मृत्यु ।

अध्याय २४

उत्तर मे मराठा आकाक्षाएँ पूर्ण

[१७६१–१७७२]

१ उत्तर भारत मे मराठा अवनति। २ मल्हारराव होल्कर परास्त।
३ क्लाइव तथा दीवानी। ४ रघुनाथराव गोहद के सम्मुख।
५ रामचन्द्र गणेश का अभियान तथा उसके परिणाम। ६ अंग्रेजों द्वारा मराठा योजनाओं का विरोध।
७ सम्राट का पुन दिल्ली लौटना।

१ उत्तर भारत म मराठा अवनति—डा० दिघे न लिखा है—"पानीपत म मराठा विपत्ति के परिणाम मित्रा तथा शत्रुआ स बहुत दिना तक गुप्त न रह सके। भारत मे मराठा का प्रभुत्व अब सुरक्षित नही रह गया था। जब तक मराठे अपने शासन को शक्ति द्वारा सशक्त नही कर लेत, उत्तरी भारत के शासक उनकी अधीनता स्वीकार करने वाले न थे। उत्तर म मराठा साम्राज्य, जिसम दिल्ली, आगरा, दोआब बुन्देलखण्ड तथा मालवा भी शामिल था पूणरूप स छोटे शासको के विद्रोह से, स्थानीय सेनाओ के उपद्रव से, तथा पहाडी जाति की हलचल से भभक उठा तथा आगामी कुछ वर्षो म मराठा सीमाओ को सकुचित होते तथा उनकी शासन सीमाओ को चम्बल के दक्षिण म सीमित होत देखा।

"पानीपत के विजेता अहमदशाह अब्दाली की दशा भी कुछ अधिक अच्छी न थी। यद्यपि १७६१ ६२ ई० न सिद्ध कर दिया कि एशिया का यह महान सेनापति बडी बडी लडाई जीत सकता था लेकिन शासन की बागडोर सँभालने म वह पूर्ण असफल सिद्ध हुआ था। यही कारण है कि वह अपनी आश्चर्यकारी सफलताओ का फल भोगने म असफल रहा। अफगानिस्तान म अपने पर्वतीय देश की सकीर्ण सीमाओ से उसकी दृष्टि पजाब तक ही सीमित थी अर्थात वह पजाब का ही अपने साम्राज्य म मिलाना चाहता था। लेकिन जब उसके सैनिको ने शेष वेतन के लिए विद्रोह कर दिया तथा तुरन्त वापस होने का आग्रह किया, तो विवश होकर उसे वापस लौटना पडा और इस प्रकार पजाब को हस्तगत करने का अपने जीवन का बहुमूल्य अवसर उसने

खो दिया। अपनी आश्चर्यजनक सफलताओं के बाद यकायक अपने देश को वापस लौटने के कारण दबी हुई शक्तियाँ स्वतन्त्र हो गयीं तथा अनेक व्यक्तियों का रंगमंच पर आगमन हुआ। इस प्रकार परिस्थितियों ने ऐसा पलटा खाया कि शाह का कोई अस्तित्व ही न रहा।[1] पंजाब के मार्ग से उसके आगमन को सिक्खों ने इस प्रकार प्रतिरोध किया कि वह धीरे धीरे अपने उन समस्त प्रदेशों को खो बैठा जिन्हें उसने अपने १० वर्षों के घोर संघर्ष के पश्चात् प्राप्त किया था। १७६२ तथा १७६७ ई० के बीच में उसने सिक्खों के दमन के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष किया परन्तु अन्त में उसी की पराजय हुई। इस समय तक उसका स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि वह किसी कार्य के करने योग्य न रहा था और इस प्रकार माधवराव की मृत्यु के कुछ मास पूर्व उसकी मृत्यु अति शोचनीय दशा में हुई।

उत्तरी भारत के मराठा विरोधियों में सर्वाधिक शक्तिशाली राजपूत लोग थे जिनका नेता जयपुर का माधवसिंह था। परन्तु मल्हारराव होल्कर ने शीघ्र ही कोटा के समीप मांगरोल के स्थान पर २९ तथा ३० नवम्बर, १७६१ ई० को उसे पराजित कर दिया तथा उसका और उसके सहयोगियों का पूर्ण दमन कर दिया। लेकिन होल्कर को इसी समय दक्षिण जाना पड़ा। महादजी सिन्धिया पहले से ही शक्तिहीन था, क्योंकि अभी तक उसको अपनी पैतृक सम्पत्ति का वारिस घोषित नहीं किया गया था। अतः उत्तर में मराठों को अपनी पूर्व स्थिति (पानीपत से पहले की) प्राप्त करने में कई वर्ष लग गये। मराठों की इस अवनति का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को बंगाल तथा बिहार में सुविधापूर्वक प्रभुता प्राप्त हो गयी। वहाँ पर पानीपत के युद्ध के तीन वर्षों के भीतर ही तीन न्यायानुमोदित अधिकारियों अर्थात् सम्राट, अवध का वजीर तथा बंगाल के नवाब का पूर्ण दमन कर दिया गया था। अंग्रेजों के इस आक्रमण के प्रति न तो नागपुर के भोंसले ने और न पेशवा ही ने कोई प्रतिरोध उपस्थित किया। पेशवा माधवराव जिसने राक्षस भुवन (अगस्त १७६३ ई०) में अपनी विजय के बाद राज्य कार्य को स्वयं ग्रहण कर लिया था अब पूर्ण रूप से हैदरअली के आक्रमण की समस्याओं में उलझा हुआ था और इस प्रकार वह उत्तरी भारत के कार्यों को सिन्धिया तथा होल्कर पर छोड़ने के लिए विवश हो गया था। इधर सिन्धिया कई वर्षों तक कोई महत्त्वपूर्ण कार्य न कर सका क्योंकि रघुनाथराव ने सिन्धिया राज्य के उत्तराधिकार सम्बन्धी प्रश्नों में हस्तक्षेप किया था तथा उसे विद्रोही घोषित कर रखा था।

---

[1] इलाहाबाद सिन्हा—पेशवा माधवराव।

सम्राट शाहआलम उस समय इलाहाबाद मे रहता था, जहाँ पर वह वजीर का सम्मानित मेहमान था। अग्रेज लोग नवाब की ओर से बगाल तथा बिहार के राजस्व का प्रबन्ध करते थे। राजच्युत मीरकासिम ने अग्रेजो के झूठे दावे का प्रतिरोध करने का व्यर्थ ही प्रयास किया था। उसके पतन के बाद अब समस्त क्षेत्र अग्रेजो की महत्त्वाकाक्षाओ के लिए खुला पडा था। अगर भारतीय शासको का कोई कार्य उनके उद्देश्य के अनुकूल होता, तो वे उसका खुला समर्थन करते थे, और यदि अनुकूल न होता तो वे यह तर्क प्रस्तुत करते थे कि इस विषय पर उन्हे अपने देश के शासको से आज्ञा लेनी होगी जिसका अर्थ होता था वर्षों का विलम्ब। भारत मे वे एक शक्ति का दूसरी शक्ति के विरुद्ध समर्थन करने मे कभी नही चूकते थे। जब उन्हे बगाल तथा अवध के नवाबो का दमन करना होता तो वे कहते कि यह कार्य वे सम्राट की आज्ञा से कर रहे है। यदि उनको अपना कोई कार्य लाभदायक न मालूम होता तो वे सरलतापूर्वक पीछे हट सकते थे तथा यह तर्क उपस्थित कर देते थे कि उनके देश से उन्हे ऐसी ही आज्ञा प्राप्त हुई है। इसके विपरीत, भारतीय शासको के सामने किसी विषय मे एक बार उलझ जाने पर इसके सिवाय कोई विकल्प न था कि वे अपने कर्मों के फल को भोगे। इस प्रकार इन भारतीय शासको की अपेक्षा, जिनसे कि उन्हे निपटना होता था, अग्रेजो की स्थिति विचित्र रूप से सुरक्षित थी। अत जो सफलताएँ उन्होने पलासी तथा बक्सर मे प्राप्त की थी, उनसे वे उत्तरोत्तर बढते ही गये।

मीरकासिम जिसको स्वय अग्रेजो ने नवाब बनाया था, शासक के [illegible] नियमित अधिकारो का उपभोग करने के कारण उनके लिए घृणास्पद हो गया। दोनो स्पष्ट शत्रु हो गये तथा युद्ध पर उतर आये। मीरकासिम को क्रमागत युद्धो मे कटवा तथा घेरिया के स्थानो पर जुलाई १७६३ ई० मे परास्त हो गया। परिणामस्वरूप अग्रेजो ने मीरजाफर को नवाब बना दिया। इस पर मीरकासिम ने शुजाउद्दौला की सहायता प्राप्त की, तथा दोनो ने सम्राट के निर्देशन मे बगाल तथा बिहार के खोये हुए प्रान्तो को प्राप्त करने का पुन प्रयास किया। इस कार्य मे उन्हें मराठो की भी सहायता प्राप्त हो गयी। उन्होने अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध पुन प्रारम्भ कर दिया। अग्रेजो ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया तथा सघ की सयुक्त सेनाओ के विरुद्ध मेजर कार्नाक ने प्रयाण किया। ३ मई १७६४ ई० को पटना के समीप युद्ध हुआ जिसमे इस सम्मिलित सघ की पराजय हुई। लेकिन इससे कोई निर्णय न हो सका और दोनो सेनाएँ पटना के [illegible] पडी रही तथा [illegible] तैयार हो गयी। यह युद्ध

२३ अक्टूबर १७६४ ई० को बक्सर में लड़ा गया, जिसमें मेजर हेक्टर मुनरो ने तीनों शासकों को पूरी तरह परास्त कर दिया तथा उनको वाराणसी तक पीछे हट जाने पर विवश कर दिया। इस प्रकार अपने पूरबी प्रान्तों को पुनः प्राप्त करने की उनकी आशाओं पर अन्तिम रूप से तुषारापात हो गया। सम्राट् ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करके उनका संरक्षण प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार बक्सर के युद्ध में वह प्रगति पूर्ण हो गयी जिसका आरम्भ सात वर्ष पूर्व पलासी में हुआ था। उन प्रान्त के अधिपतियों से रूप में नागपुर के भोसले बहुत दिनों तक चौथ वसूल करते रहे। मीरकासिम बहुत दिनों से उनसे सहायता की प्रार्थना कर रहा था परन्तु जानोजी ने इस महत्त्वशाली उत्तरदायित्व की उपेक्षा की तथा वह निजामअली के साथ पूना में पेशवा की राजधानी को विनष्ट करने में व्यस्त रहा। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने भारत के दो समृद्ध पूरबी प्रान्तों पर अपना स्थायी प्रभुत्व सरलता से स्थापित कर लिया।

भारतीय राजनीति के रंगमंच से जब दो प्रमुख प्रतिद्वंद्वियों अर्थात् मराठों तथा अफगानों ने विदा ले ली तो यह रिक्त सा हो गया। लेकिन इसकी पूर्ति शीघ्र ही नयी शक्तियों के अभ्युदय से हो गयी। नजीबखाँ रुहेला ने दिल्ली में सर्वोपरि सत्ता धारण कर ली। उधर भरतपुर के जाट ने जिसने अब शक्ति संचय कर ली थी उसको युद्ध की चुनौती दी। दोनों सरदारों ने मराठों से सहायता की याचना की। इस पर मल्हारराव होल्कर को आदेश हुआ कि वह परिस्थिति पर नियंत्रण करे। होल्कर नजीबखाँ को अपना दत्तक पुत्र मानता था अतः जाट सरदार को सहायता देने के लिए तैयार न था। नजीबखाँ तथा जाट सरदार जवाहरसिंह के मध्य कुछ समय तक युद्ध होने के उपरान्त मल्हारराव ने उन दोनों में संधि करा दी तथा इस प्रकार वह इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण आह्वान का पालन करने के लिए मुक्त हो गया।

२ **मल्हारराव होल्कर की पराजय**—बक्सर के बाद अंग्रेजों ने मीर कासिम को पकड़ने तथा पटना में एलिस तथा अन्य अंग्रेजों की निर्मम हत्या के लिए उसको घोर दण्ड देने का प्रयत्न किया। परन्तु शुजा ने अंग्रेजों के प्रतिशोध से मीरकासिम की रक्षा की। इस पर मेजर फ्लेचर ने शुजा के विरुद्ध प्रयाण कर दिया तथा इलाहाबाद तक उसका पीछा किया। उसने शुजा के सैनिक महत्त्व के स्थान चुनार पर अधिकार कर लिया। यह स्थान उस विजेता के लिए पड़ाव के समान था जो उत्तर से बिहार में प्रवेश करना चाहता हो। अंग्रेजों ने घोषित कर दिया कि वे सम्राट् की ओर से कार्य कर

रहे हैं तथा उसके विश्वासघातक सेवकों, शुजा तथा मीरकासिम के विरुद्ध उसके प्रदेश की रक्षा कर रहे हैं। यह घोषणा-पत्र जो उन्होंने इस समय निकाला, राजनीतिक वाक छल का रोचक उदाहरण है।[२]

इलाहाबाद पर अधिकार करने के बाद अंग्रेजों ने शुजा की राजधानी लखनऊ पर अपना प्रयाण आरम्भ कर दिया। अति संकट की अवस्था में शुजा को यह पता चला कि मराठा सरदार अर्थात मल्हारराव होल्कर तथा महादजी सिंधिया आगरा के समीप नजीबखाँ और जाट सरदार के बीच समझौता कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। चूंकि होल्कर की सेना पहले से ही दोआब में थी, अत शुजा ने उससे सहायता की याचना की। ३० मार्च १७६५ ई० के एक पत्र में होल्कर ने लिखा है—'मैं अनूपशहर पहुँच गया हूँ। शुजा यहाँ पर आकर मुझसे मिला है तथा मैं उसको सहायता देने के लिए सहमत हो गया हूँ और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं अब गंगा की ओर जा रहा हूँ।[३]

इस प्रकार शुजा तथा मल्हारराव ने अपनी सेनाओं को परस्पर मिला लिया। भूतपूर्व वजीर गाजीउद्दीन भी अपनी सेना निश्चित मानो में ले आया। मेजर फ्लेचर इन कार्यवाहियों को बड़े ध्यान से देख रहा था। उसने इलाहाबाद से प्रयाण किया। दोनों विरोधी सेनाएँ कोड़ा के मैदान में एक दूसरे के सम्मुख डट गयीं। मल्हारराव होल्कर ने छापामार युद्ध प्रणाली के द्वारा पहले फ्लेचर को बहुत परेशान किया। परंतु उसने ३ मई को अपने सुसज्जित तोपखाने को शीघ्रतापूर्वक युद्ध में अग्रसर कर दिया तथा होल्कर को अपनी रक्षा के निमित्त कालपी तक हट जाने पर विवश कर दिया। एक मराठा समाचार लेखक लिखता है अंग्रेजों के पास शक्तिशाली तोपखाना था। इसके सामने हमारे सिपाही डट न सके तथा भाग निकले। मल्हारराव अति संकट की दशा में कालपी पहुँच गया। इस प्रकार मराठों की छापामार युद्ध प्रणाली का अंत हो गया।

होल्कर की इस पराजय के समय महादजी सिंधिया राजस्थान में कोटा के समीप था। वहाँ से वह इस वयोवृद्ध सेनानी की सहायता के लिए तुरन्त दौड़ा। लेकिन अब चूंकि घटना घटित हो चुकी थी, अत वह स्थिति को पुन काबू में करने के लिए कुछ न कर सका। १० अगस्त को उसने पेशवा को लिखा— 'होल्कर दतिया में है तथा मैं वहीं पर उससे मिलने जा रहा हूँ। मेरी उत्कट इच्छा है कि मैं इसके सहयोग से किसी विशाल योजना को

---

२ पर्शियन कैलेण्डर खण्ड १, पृ० २६०६।

३ सरे, पृ० /३/ पेशवा दफ्तर संग्रह खण्ड २६ पृ० ९०, ९८।

आरम्भ करें। उस समय के अधिकांश भारतीय राजनीतिज्ञ तथा शासकों ने इस परिवर्तन को चिन्ता तथा दुःख की दृष्टि से देखा। शुजाउद्दौला ने व्याकुल होकर अहमदखाँ बंगश से उसका परामर्श माँगा। इस पर बंगश ने कहा— आप इस बात की तनिक भी आशा न रखें कि आर लोग आकर आपकी लड़ाइयाँ लड़ लेंगे। यदि आप में साहस है तो वीरतापूर्वक अंग्रेजों से युद्ध करिए, भले ही आप इसमें नष्ट भी क्यों न हो जायँ। यदि आप में इस प्रकार का साहस नहीं है तो आप निःशंक होकर अंग्रेज सेनानी के पास चले जायँ तथा जो कुछ भी शर्तें वह आपके समक्ष रखे, आप उनको शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लें। शुजा ने इस द्वितीय मार्ग का ही अनुसरण किया।[४]

३ क्लाइव तथा दीवानी—१७६५ ई० की शरद्‌ऋतु में उत्तर भारत की राजनीति में अनेक महान परिवर्तन आये। सम्राट दिल्ली पहुँचकर सिंहासन पर बैठने के लिए उतावला हो उठा। समस्त भारत उत्सुकतापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि अंग्रेज इलाहाबाद में ठहरते हैं या सम्राट को उसकी शाही राजधानी में पहुँचाते हैं। इसी समय भारतीय रंगमंच पर ब्रिटिश साम्राज्य के महान निर्माता क्लाइव का आगमन हुआ। अब वह बंगाल का राज्यपाल था और परिस्थिति के प्रबन्ध का उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। अब तक अंग्रेज सप्तवर्षीय युद्ध में विजयी हो गये थे तथा समुद्र पर उनका एकाधिकार था। क्लाइव ने समकालीन घटनाओं का अध्ययन किया और भारत की राजनीतिक जटिलताओं का बहुत ध्यान से विश्लेषण किया। ३ मई को वह कलकत्ता पहुँचा। ठीक उसी दिन फ्लेचर के हाथों होल्कर की घोर पराजय हुई थी। उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि प्रत्येक भारतीय शासक अंग्रेजों के इस आक्रमण के कारण उनका घोर विरोधी है। अतः इस निश्चय से कि वह समस्त शत्रुता का अन्त कर देगा क्लाइव २५ जून को कलकत्ता से युद्ध क्षेत्र के लिए चल दिया तथा जुलाई के अन्त में इलाहाबाद पहुँच गया।

क्लाइव सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों से अलग-अलग मिला तथा उसने अपनी भावी कार्यरेखा निश्चित कर ली। वह सम्राट से मिला तथा उससे बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के तीन प्रान्तों के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हित में दीवानी का पद प्राप्त कर लिया, अर्थात् राजस्व संग्रह तथा उसके व्यय का एकमात्र अधिकार अब उसे प्राप्त हो गया था। इसके साथ-साथ प्रान्तीय प्रशासन के प्रति अब सम्राट का कोई उत्तरदायित्व नहीं था लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं था कि अंग्रेज लोग उन प्रान्तों के पूर्ण रूप से स्वामी बन

---

[४] डा० श्रीवास्तव कृत शुजाउद्दौला खण्ड २ पृ० २।

जायँगे। क्लाइव ने इसको महत्त्वपूर्ण लेखपत्र का रूप दे दिया तथा इसको सम्राट से स्वीकृत करा लिया। यही व्यवहार उसने शुजाउद्दौला तथा बगाल के नवाब के साथ किया तथा उनको पृथक पृथक संधि पत्रो द्वारा बाँध लिया। इस प्रकार उसके द्वारा उस महान साम्राज्य की स्थापना की नींव रख दी गयी जिसका कि निर्माण अब शनै शनै होने को था। वास्तव मे यह उसकी नीति का एक अग था जो शीघ्र ही अगस्त के प्रथम सप्ताह मे ही कार्यान्वित हो गयी।[५]

उसके द्वारा अग्रेजो को शक्ति की बागडोर प्राप्त हो गयी तथा शासन प्रबन्ध भी उनके हाथ मे आ गया। इस प्रकार क्लाइव की योजनानुसार मुगल शासन की अभिन्न कडिया अर्थात सम्राट, वजीर तथा बगाल का नवाब हमेशा के लिए एक दूसरे से विमुख हो गये। उनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न रहा। साथ ही साथ अब वे इतने अशक्त हो गये कि कम्पनी की सहायता के बिना वे अपने को स्थिर भी नहीं रख सकते थे।

इस प्रकार विभिन्न दलो की भावनाओ को शान्त करने मे क्लाइव ने लगभग एक मास व्यतीत किया। उसने उन पर यह स्पष्ट कर दिया कि विनाशक युद्ध के युग का स्थान अब शान्ति तथा सद्भावना के युग ने ले लिया है। उसने स्वय सम्राट की सत्ता को मान्यता दे दी परन्तु दोनो नवाबो पर से उसने नियन्त्रण उठा लिये। चूँकि सम्राट दिल्ली जाने के लिए अधीर हो रहा था, क्लाइव ने उसको विश्वास दिलाया कि परिस्थिति अनुकूल होने पर यह काय भी शीघ्र ही सम्पादित कर दिया जायगा। इन महत्त्वपूर्ण घटनाओ के कुछ महीनों बाद ही रघुनाथराव घटनास्थल पर प्रकट हुआ लेकिन इन परिवर्तनो के गूढ अर्थ को शायद वह न समझ सका तथा आन्तरिक राजनीति की प्राचीन प्रणाली तक ही सीमित रहा।

विशाल कूटनीतिक काय को समाप्त करके क्लाइव सितम्बर मे कलकत्ते वापस चला गया। इलाहाबाद मे एक मराठा दूत ने क्लाइव की कृति पर इस प्रकार वृत्तान्त भेजा—'समस्त बगाल पर समुद्रतट से वाराणसी तक अग्रेजो का अधिकार हो गया है। उनके बीच मे अब कोई विघ्न-बाधा नही है। उनके शत्रु अब उनके उपजीवी हो गये है।' इस प्रकार बगाल विजय की योजना, जिसको पूरा करने की पेशवा बालाजीराव की हार्दिक इच्छा थी एक विदेशी शक्ति के द्वारा कार्यान्वित हुई।

---

५ बगाल के नजमुद्दौला के साथ यह समझौता जुलाई मे हुआ तथा शुजा के साथ २ अगस्त को, और दीवानी के पट्टे पर १२ अगस्त की मोहर है।

४ रघुनाथराव गोहद के सम्मुख—शक्तिशाली जाट राजा सूरजमल का देहान्त अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर २५ दिसम्बर १७६३ ई० को नजीबखाँ के विरुद्ध युद्ध में हो गया। उसकी पटरानी हंसा तथा रानी किशोरी ने जवाहरसिंह को अपना दत्तक पुत्र के रूप में गोद ले लिया। बाद में वह सूरजमल का उत्तराधिकारी हुआ तथा उसने वीर पिता का उत्साह यथापूर्व स्थिर रखा। उसने उसके तीनों शत्रुओं अर्थात् मुगलों, मराठों तथा जयपुर के राजा का पूर्ण प्रतिरोध किया। कुछ वर्षों में मराठों ने अपनी स्थिति को पुनः प्राप्त कर लिया तथा वे रघुनाथराव के नेतृत्व में उत्तरी हिन्दुस्तान पर १७६६ ई० में प्रकट हुए। रघुनाथराव जैसा कि हम देख चुके हैं पूना से कोल्हापुर के स्थान पर फरवरी में विदा हुआ तथा नारोजी भोसले को अपने साथ लेकर अप्रैल में झाँसी पहुँच गया। वहाँ पर सिन्धिया तथा होल्कर उसके साथ हो गये। गोहद के जाट राजा ने जवाहरसिंह की शक्तिशाली बाहु का समर्थन प्राप्त कर एक विशाल विरोधी गुट की स्थापना की। रघुनाथराव को उसका दमन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। जिस समय गोहद की विजय की योजना की रचना हो रही थी मल्हारराव का २० मई को आलमपुर के समीप देहान्त हो गया। इस प्रकार उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक और समस्या उत्पन्न हो गयी। रघुनाथराव के आगमन से मराठों और उनके मित्रों का उत्साह बढ़ गया सम्राट के राजदूत आ पहुँचे तथा उन्होंने प्रार्थना की कि वह अंग्रेजों से युद्ध करे तथा गत वर्ष क्लाइव द्वारा सम्पादित कार्य को नष्ट कर दे जिससे मुस्लिम शक्तियों की बहुत हानि हुई थी। परन्तु रघुनाथराव इस कार्य के लिए सहमत न हुआ। उसने विभिन्न भारतीय शासकों को कूटनीतिक आयोग भेजकर ही सन्तोष कर लिया। उसने शान्ति संधि स्थापित करने के निमित्त एक आयोग अंग्रेजों के पास कलकत्ता भी भेजा।[1] गोहद घेर लिया गया, परन्तु कई महीनों तक कुछ भी प्रगति न हो सकी, क्योंकि चम्बल के जाटों ने गोहद के राजा को भरपूर सहायता दी थी। रघुनाथराव को यह शीघ्र पता चल गया कि इस दुस्साध्य कार्य से मुक्ति पाना कठिन है। दो प्रमुख सरदारों अर्थात् होल्कर तथा गायकवाड ने घृणावश उसका साथ छोड़ दिया क्योंकि उनकी सेनाओं को कई महीनों से वेतन नहीं मिला था तथा वे विद्रोह करने पर उतारू थी। साथ ही गोहद के विरुद्ध कई अचानक आक्रमण भी असफल हुए थे। महादजी सिंधिया ने अपनी मध्यस्थता से २ जनवरी १७६७ ई० को राना के साथ संधि का प्रबंध कर परिस्थिति को संभाल लिया।

---

[1] पर्शियन कैलेण्डर, खण्ड २ पृ० ७८, १४५, २०७।

को पेशवा के पास भेज दिया तथा रघुनाथराव इसका निराकरण न कर सका। वह सर्वथा भग्न रूप होकर शीघ्रतापूर्वक ग्रीष्मऋतु में नासिक वापस आ गया। अब उसे पेशवा को अपना मुंह दिखाने का साहस न था।

रघुनाथराव की इस असफलता का उत्तर में मराठा गौरव पर बुरा प्रभाव पड़ा। जाट राजा जवाहरसिंह ने यह देखकर कि मराठा सेनाएँ वापस हो गयी हैं, १७६७ ई० की शरद्ऋतु में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया तथा कालपी तक के समस्त प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। कालपी सरदार बालाजी गोविन्द खेर उसका मुकाबला न कर सका। अक्टूबर तक लगभग समस्त बुन्देलखण्ड पर उसका अधिकार हो गया। पूना में पेशवा के सम्मुख यह समस्या खड़ी हो गयी कि अगर वह उत्तर में मराठा शक्ति की रक्षा करना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम जाटों का दमन करना चाहिए। भाग्यवश इसी समय जयपुर के राजा ने जवाहरसिंह पर आक्रमण कर दिया तथा १४ दिसम्बर, १७६७ ई० को जाट सीमा पर स्थित नारनौल के समीप मोंठा के स्थान पर उसने जवाहरसिंह को बुरी तरह से परास्त कर दिया। इसके शीघ्र पश्चात ही उसके एक कृपापात्र सैनिक ने जिसका उसने अपमान किया था, उसका बध कर दिया।

५ रामचन्द्र गणेश का अभियान तथा उसके परिणाम—माधवराव को इस समय तक इस बात की घोर चिन्ता थी कि किसी प्रकार उत्तरी क्षेत्र में मराठा स्थिति पुनः दृढ़ हो जाये। १७६८ ई० की वर्षाऋतु में अपने चाचा का उचित प्रबन्ध करने के बाद वह प्रथम बार उचित तैयारियाँ करने में समर्थ हो गया। लेकिन मार्च १७६९ ई० में कनकपुर की सन्धि द्वारा जानोजी भोसले के विद्रोह को शान्त करने में कुछ मास और व्यतीत हो गये। तब रामचन्द्र गणेश तथा विसाजी कृष्ण नामक दो योग्य नायकों के अधीन मराठा सेनाओं ने उत्तर की ओर प्रयाण कर दिया। महादजी सिंधिया तथा तुकोजी होल्कर उनसे कुछ मास पूर्व ही प्रस्थान कर चुके थे।

सम्राट जो कि इलाहाबाद में अंग्रेजों द्वारा अपने निग्रह पर उद्विग्न हो रहा था मराठों के आगमन से अति प्रोत्साहित हुआ। जाट विद्रोहियों का दमन करने के लिए उसने मराठों को ५० लाख रुपया देना स्वीकार किया। जयपुर के राजा माधवसिंह का जिसका उत्तर भारत की राजनीति पर कई वर्षों से प्रभुत्व रहा था २१ दिसम्बर, १७६७ ई० को देहान्त हो गया। वह अपने पीछे अति दुर्व्यवस्थापूर्ण स्थिति छोड़ गया था। उसका उत्तराधिकारी प्रतापसिंह अब मराठों के साथ हो गया। भोपाल के नवाब ने भी ऐसा ही किया।

माधवराव ने अपने सेनानायकों को दिल्ली की ओर प्रस्थान करने तथा उस पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। परन्तु आगरा के क्षेत्र मे जाटो ने मराठा आगमन का विरोध किया। इस अन्त कलह के कारण उस राज्य की सगठन शक्ति नष्ट हो गयी, फलस्वरूप वह कोई प्रबल विरोध उपस्थित न कर सका। नवलसिंह तथा रणजीतसिंह की आपसी कलह के कारण जाटो का बल क्षीण हो गया तथा उन्हे विदेशी हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत हुई। रणजीत-सिंह ने मराठा सहायता प्राप्त कर ली तथा उनकी सहायता से ५ अप्रैल, १७७० ई० को गोवधन के स्थान पर घोर युद्ध मे उसने नवलसिंह को परास्त कर दिया। इस अपूर्व विजय के परिणाम तुरन्त प्रकट हो गये। मराठो ने आगरा तथा मथुरा पर अधिकार कर लिया। नजीबखाँ ने जिसके अधिकार मे शाही राजधानी थी, शान्ति प्रस्ताव आरम्भ कर दिये तथा यमुना पार के भूतपूर्व मराठा प्रदेशो को पुन प्राप्त करने मे उसने अपना सहयोग प्रस्तुत किया। तदनुसार अप्रैल १७७० ई० मे मथुरा के समीप मराठा सेनाओ ने यमुना को पार किया और फर्रुखाबाद के अहमदखाँ बगश के प्रदेश मे प्रवेश किया। नजीबखाँ के परामर्श पर गगा के समीप रामघाट के स्थान पर मराठो ने अपना शिविर स्थापित किया। नजीबखाँ ने अब अपनी पुरानी चालो को चलना शुरू कर दिया, जिनका उपयोग ११ वर्ष पहले उसने शुक्रताल के स्थान पर किया था। इसमे सिर्फ एक बात की कसर थी कि इस समय सिन्धु पार से उसका समर्थन करने के लिए शाह अब्दाली उपस्थित न था। अहमदखाँ बगश का शिविर गगा के दूसरे तट पर था तथा उसकी और नजीबखाँ की गुप्त योजना थी कि मराठो का पूरी तरह से सर्वनाश कर दिया जाय। रामघाट मे मराठो को पता चल गया कि उनकी स्थिति कुछ समय से सकटग्रस्त है क्योकि विरोधी पठानो ने उनको चारो ओर से बुरी तरह घेर लिया था। अपनी सेनाओ की परिस्थिति की सूचना पाकर पेशवा ने अविलम्ब उनकी सहायतार्थ दक्षिण से अन्य प्रबल दल भेजे। सौभाग्यवश अपने पूर्व-अनुभवो के कारण मराठा सरदार रणचातुर्य मे अति निपुण हो गये थे। अत उन्होने अपनी बुद्धिमत्ता से गगा पर अपनी स्थिति की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया। इसके लिए वे यमुना पर अधिक सुरक्षित स्थानो को शनै शनै हट आये। ठीक इसी सकट-क्षण पर ३१ अक्टूबर, १७७० ई० को नजीबाबाद जाते हुए नजीबखाँ का देहान्त हो गया और जबतखाँ अपने पिता की शक्ति तथा सम्पत्ति का वारिस हुआ। इससे मराठो की चिन्ताएँ कुछ कम हो गयी तथा उत्तर मे अपनी सेनाओ के पुनरुद्योग का समाचार पाकर पेशवा ने उनको सहायता भेजने का विचार त्याग दिया।

बगश नवाब उन गुप्त चालो को न समझ सका जिनका अनुसरण मराठा

सेनापति ने अल्पकाल के लिए पीछे हटने तथा पठानों के दोनों दलों—बंगश तथा रुहेला—का सर्वथा विमुख करने में किया था। जैसे ही उनको नजीबखाँ की मृत्यु का समाचार मिला रामचन्द्र ने उसके पुत्र जबेतखाँ को, जो उस समय मराठा शिविर में उपस्थित था, कैद कर लिया। लेकिन मल्हारराव की परम्परा के अनुसार तुकोजी होल्कर ने जबेतखाँ की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया। उसने गुप्त रूप से उसको वहाँ से हटाकर बन्धन से मुक्त कर दिया।

जबेतखाँ स्वतन्त्र होते ही सम्राट के पास पहुँचा तथा उसने मीरबख्शी का पद बलपूर्वक प्राप्त कर लिया। इस अतिरिक्त अधिकार सहित उसने दोआब में रामचन्द्र पन्त के विरुद्ध प्रयाण किया। इस समय वर्षाऋतु समाप्त हो गयी तथा मराठा सेना पूर्ण तैयार थी। रामचन्द्र तथा महादजी ने पूर्ण सहयोग से कार्य किया तथा बंगश और रुहेला दलों को पूर्णतः परास्त कर दिया। उन्होंने इटावा पर अधिकार करके १५ दिसम्बर १७८० ई० को फर्रुखाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया। अहमदखाँ पूर्ण शान्त हो गया तथा उसने मराठों का वह समस्त प्रदेश भी वापस कर दिया जिस पर पानीपत के युद्ध के पहले उनका अधिकार था। इस पराजय के कारण अहमदखाँ इतना खिन्न हो गया कि दुःख की अवस्था में ११ जुलाई १७७१ ई० को उसका देहान्त हो गया। अब तक पूर्व मराठा स्थिति पूर्णतः प्राप्त कर ली गयी थी।

इस उत्तरी अभियान की सैनिक प्रगति का अवलोकन माधवराव किस सूक्ष्मता से कर रहा था तथा उसका निर्देशन कितने उत्साह से उसने किया—इन सभी बातों की स्पष्ट व्याख्या एक पत्र में है जिसका पता हाल में ही लगा है। यह वही पत्र है जो उसने २१ दिसम्बर १७७० ई० को अपने सेनापति रामचन्द्र गणेश तथा विसाजी कृष्ण को लिखा था।* वह लिखता है—

आज से २० माह पूर्व आपको लगभग ५० हजार सेना सहित उत्तर को प्रयाण करने की आज्ञा दी गयी थी। आपके अधीन इस सेना के नेतृत्व के लिए चुने हुए सरदार नियुक्त किये गये थे। भाऊसाहब के प्रसिद्ध पानीपत अभियान के समय से पूर्व कभी भी इतनी विशाल सेना ने उस क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था। आपको पूर्ण अधिकार दिये गये थे तथा आपको आज्ञा थी कि जाटों तथा अन्य नायकों का दमन करें जिन्होंने हमारे शासन के प्रति निष्ठा का त्याग कर दिया था तथा राजपूतों, सिक्खों और अब्दाली को जता दें कि उत्तर में मराठा शासन अब पुनः शक्तिशाली हो गया है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के निमित्त आपकी क्षमता तथा वीरता में पूर्ण विश्वास किया गया था तथा यह

* ऐतिहासिक नवीन साहित्य, खण्ड ७, पृ० ४२।

आशा थी कि धन के रूप म आप पर्याप्त कर-सग्रह भी करेंगे। सिधिया तथा होल्कर वश के दो अनुभवी सरदार जो हमारे राज्य के मुख्य स्तम्भ ह, इसी उद्देश्य स आपके साथ किये गये थे।

"परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोगो मे आपसी सहयोग का पूर्ण अभाव है। होल्कर तथा सिधिया स्पष्ट रूप से आपस मे झगड रहे हैं तथा आप दोनो भी पूर्ण एकता के साथ कोई काय नही कर रह ह। सौभाग्य से आपने जाट राजा पर विजय प्राप्त कर ली है, जबकि वास्तविकता यह है कि इस विजय से हमे बहुत कम लाभ हुआ है। आपने शुजाउद्दौला से भी वार्तालाप किया लेकिन आप उससे वाराणसी तथा प्रयाग के दोनो तीर्थों का अधिकार प्राप्त करने म असफल रहे हैं। इन पर हमारा पुराना स्वत्व है तथा आपको चाहिए था कि आप इन पर पुन अधिकार प्राप्त कर लेते। रुहेलो के साथ आपके व्यवहार के कोई अच्छे परिणाम नही निकल ह यद्यपि दुष्ट नजाबुद्दौला की मृत्यु से आपको अत्यन्त अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था कि आप उसके द्वारा किये गये प्रत्येक अन्याय का पूर्ण प्रतिशोध लेते। अब आपको चाहिए कि आप सरलता स दिल्ली पर अधिकार कर लें तथा शुजा को वजीर का पद दे दें। यह पद आप गाजीउद्दीन को भूलकर भी न दें क्योकि उसकी बात का कोई भरोसा नही है। आप नजीबखाँ के पुत्र जबेतखा पर पूर्ण नियन्त्रण रखें, लेकिन उसकी कोई हानि अथवा अपमान नही होना चाहिए। वास्तव म आपके समक्ष यह स्वर्ण अवसर है, आप इसस यथाशक्ति लाभ उठायें। लेकिन यह तभी सम्भव है जबकि आप लोग पूर्ण सहयोग स काय करे। आप इस बात का भलीभाँति जानते हैं कि भूतपूर्व फूट तथा व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि म हमारे राष्ट्रीय हितो को कितनी हानि पहुँची है। आपको यह भी नही भूल जाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण समस्त राष्ट्र के सयुक्त कल्याण की साधना मे ही हो सकता है। आप इस बात का पूर्ण विश्वास रखें कि आपका स्वामी पेशवा आपकी व्यक्तिगत योग्यता का पुरस्कार आपको अवश्य देगा।

६ अंग्रेजों द्वारा मराठा योजनाओ का विरोध—इन समस्त घटनाओ के मध्य दो प्रमुख सरदारो अर्थात सिधिया तथा होल्कर की शत्रुता के कारण समय समय पर अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती रही। घटनास्थल पर कोई ऐसा व्यक्ति न था जो कि इन दो सरदारो की गतिविधियो पर नियन्त्रण रख सकता। रामचन्द्र गणेश और विसाजी कृष्ण इन दोनो मे स कोइ भी ऐसा नही था जो इन शक्तिशाली तथा परम्परागत सामन्तो को कोइ अनिवार्य आज्ञा दे सके। लेकिन कुछ समय के लिए तो इन दोनो ब्राह्मण सेनापतियो

तथा महादजी ने तुकोजी पर कठोर प्रभाव डाला तथा उसे इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह जाबताखाँ का पक्ष लेना छोड़ दे जिसको उसने अपने पास शरण दे रखी थी। जाट लोग जो वर्षा के आरम्भ में ही पराजित हो गये थे अब शांति की याचना कर रहे थे। ८ सितम्बर, १७७० ई० को एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर हो गये जिसके अनुसार नवलसिंह हर्जाने के रूप में मराठों को ६५ लाख रुपये देने को सहमत हो गया तथा उसके भाई रणजीत सिंह ने जाट राजा के पद पर अपने स्वत्व का त्याग कर दिया तथा अपने पालन पोषण के निमित्त २० लाख रुपये की जागीर स्वीकार कर ली। इस प्रकार ये दोनों युद्ध (प्रथम जाटों के विरुद्ध तथा द्वितीय रुहेलों तथा पठानों के विरुद्ध) सफलतापूर्वक समाप्त हो गये। वास्तव में जब तक दिल्ली की ये समीपवर्ती शक्तियाँ मराठों के विरुद्ध रहीं, तब तक राजधानी में मराठा प्रभाव को पुनः स्थापित करने की उनकी केन्द्रीय योजनाओं में कोई प्रगति न हुई। साथ साथ मराठों की इन विजयों से सम्राट की स्थिति का आकलन करने के लिए भी मार्ग प्रशस्त हो गया।

पाठकों को याद होगा कि सम्राट् के कार्यों का प्रबन्ध कुछ समय तक उसके मुख्य परामर्शदाता मिर्जा नजफखाँ ने किया था, जो अंग्रेजों का उपजीवी था। चूँकि उसको अंग्रेजों से वेतन मिलता था अतः वह सम्राट् की ऐसी सभी योजनाओं का विरोध करता था जिनके अनुसार सम्राट् अपने शासन कार्यों के प्रबन्ध को अंग्रेजों की अपेक्षा मराठों की संरक्षकता में रखना अधिक पसन्द करता था। अंग्रेजों के पक्ष का एक अन्य प्रबल समर्थक वाराणसी का राजा बलवन्तसिंह था जिसकी २३ अगस्त को मृत्यु हो जाने से शाही दरबार में मराठा प्रभाव स्थापित करने के मार्ग में अन्तिम बाधा भी हट गयी। मराठा आधिपत्य में उत्तरी भारत के संगठन का अंग्रेजों को गहरा भय रहा था तथा पानीपत के युद्ध के समय से ही उन्होंने अपनी नीति का यह मुख्य उद्देश्य बना लिया था कि वे ऐसे किसी भी संगठन का यथाशक्ति विरोध करेंगे। इस समय शुजाउद्दौला तथा बंगाल का नवाब भी अपना अंग्रेजों के प्रति

प्रगति की थी। उसको इस बात का पर्याप्त अनुभव हो गया था कि वह अपने अग्रेज रक्षकों से किस लाभ की आशा कर सकता है तथा उनके मधुर वचनों मे वह कहाँ तक विश्वास रख सकता है। अब चूकि उत्तरी घटनास्थल पर मराठे प्रकट हो गये थे और उन्होंने अपने पूर्व गौरव को शीघ्र ही पुन स्थापित कर लिया था, सम्राट् ने अपने अग्रेज आश्रयदाताओं से कहा कि वे या तो आगे बढकर मराठा आक्रमण का स्पष्ट विरोध करें, या उसको स्वतन्त्रतापूर्वक अपने मार्ग का निर्देशन स्वय करने दें। अब वह अग्रेजों की चिकनी चुपडी बातों को धैर्यपूर्वक सहन करने वाला न था और न ही उसे उनके सुनहरे आश्वासनों मे कोई विश्वास था। अत उसने अग्रेजों से केवल परामर्श देने की अपेक्षा शीघ्र कोई कार्यवाही करने की माग की। उसने स्पष्ट कहा कि जब तक दिल्ली पर उसका अधिकार नही हो जाता, उसके सम्राट पद का कोई महत्त्व नही है।

अत जब १७७० मे मराठा सेनाएँ दोआब मे शिविर डाले पडी थी शुजाउद्दौला सम्राट की ओर से रामचन्द्र गणेश से मिला। १० अगस्त को स्वय सम्राट ने रामचन्द्र पन्त को लिखा— हम आपसे यह आश्वासन पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि आप मे तथा हमारे भाई वजीर शुजाउद्दौला मे पूर्ण प्रेम है तथा आप हमारे साम्राज्य के हित मे वजीर तथा अग्रेजों से टक्कर लेंगे। आपकी निष्ठा तथा प्रेम मे हमको पूर्ण विश्वास है। यदि आपने अपने कथनानुसार ही कार्य किया तो हम आप पर अपनी विशेष कृपा-दृष्टि रखेंगे। सम्राट ने इस प्रकार के पत्र अन्य मराठा सरदारों तथा पेशवा को भी लिखे, जिसमे उसने स्पष्ट प्रकट किया कि उनकी सुरक्षा मे राजधानी पहुँचने के लिए वह किस प्रकार अधीर हो उठा है।

७ **सम्राट् का पुन दिल्ली लौटना**—सम्राट की मा जीनतमहल ने भी उसको इसी मार्ग पर अग्रसर होने की अर्थात मराठा सुरक्षण स्वीकार करने की प्रेरणा दी। उसने मिर्जा नजफखा को मराठा सेनापतियो से मिलने तथा सम्बन्धित विषयों का प्रबन्ध करने के लिए भेजा। शाहआलम पर दबाव डालने के लिए सिंधिया ने उसे धमकी दी कि वह किसी अन्य व्यक्ति को सम्राट बना देगा तथा गाजीउद्दीन को वजीर नियुक्त कर देगा, जो इस समय मराठा शिविर मे मौजूद था। इस धमकी का तुरन्त प्रभाव पडा। १७७१ ई० के आरम्भ मे महादजी ने अपना ध्यान दिल्ली की विजय की ओर दिया जिस पर उस समय जवानबख्त का अधिकार था। सिंधिया अपना दल लेकर आगे बढा तथा १० फरवरी को उसने राजधानी पर अधिकार कर लिया। जवानबख्त (शाहआलम का पुत्र) को उसने गद्दी पर बैठा दिया तथा उसको नजर पेश

की। दिल्ली पर अधिकार मराठा हित के लिए बहुत कल्याणकारी सिद्ध हुआ। १२ फरवरी को शाहआलम ने मराठा प्रतिनिधियों के साथ विधिवत स्थापित समझौते का पुष्टीकरण कर दिया तथा उसने शुक्रवार १२ अप्रैल को इलाहाबाद से दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। २६ जुलाई को वह फर्रुखाबाद पहुँचा ताकि वहाँ पर अपनी परिणामभूत स्थिति के कार्यों का प्रबन्ध कर ले। १६ नवम्बर को वह अनूपशहर पहुँचा जहाँ महादजी सिंधिया ने आकर उसको मुजरा किया। वहाँ से वे साथ साथ दिल्ली गये तथा ६ जनवरी १७७२ ई० (*नवीन शैली*) को *उन्होंने विधिवत राजधानी में प्रवेश* किया। इस प्रकार मराठों ने वह स्थिति पुनः प्राप्त कर ली जो सदाशिवराव भाऊ के हाथों से पानीपत की विपत्ति के कारण निकल गयी थी। इसका *समाचार पाते ही पेशवा ने इस सम्बन्ध में अपने सेनापति को इस प्रकार* लिखा

मैं उस कार्य के महत्त्व को भलीभाँति समझता हूँ जिसको करना अंग्रेजों ने अस्वीकार कर दिया था। तथापि मेरी इच्छा यह जानने की है कि कितना धन तथा प्रदेश सम्राट् ने आपको दिया है। अब आपका वहाँ पर तीसरा वर्ष है। सम्राट ने अपने वांछित उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है लेकिन मेरी समझ *में नहीं आता कि आपको इससे क्या लाभ हुआ है। हमारे सैनिकों ने अपना* रक्त बहाया है उसके बदले में उनके बलिदान के अनुपात में आपको धन तथा प्रदेश अवश्य मिलने चाहिए। क्या आपने काशी तथा प्रयाग के तीर्थस्थानों को मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त कर लिया है? क्या आपने वह धन प्राप्त कर लिया है जो हमने अपनी सेना पर व्यय किया है? इसी प्रकार आपको उस ऋण का भी भुगतान कर देना चाहिए जो हमारे शासन ने इस साहसिक कार्य के कारण लिया है। वास्तव में अंग्रेजों में शक्ति थी और अगर वे चाहते तो सम्राट को उसके पूर्वजों की गद्दी पर बैठा सकते थे, परन्तु चूँकि उनकी शक्ति का आधार मुख्यतः समुद्र है उन्होंने दूरस्थ प्रदेशों में प्रवेश करने से उस समय तक के लिए इन्कार कर दिया जब तक कि उनको तत्समान लाभ न प्राप्त हो जाय। अब आप इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि दिल्ली में अंग्रेजों के पैर न जमने पायें। यदि वे दिल्ली में एक बार भी प्रवेश कर गये तो उनको कभी नहीं निकाला जा सकेगा। निस्सन्देह अंग्रेज समस्त यूरोपीय *राष्ट्रों में सर्वाधिक शक्तिशाली हैं। उन्होंने मुख्य के सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर* अपना अधिकार कर लिया है तथा कलकत्ता से सूरत तक भारतीय महाद्वीप के चारों ओर अपना संगठन स्थापित कर लिया है। पेशवा के इन शब्दों से

स्पष्ट है कि वह देश की राजनीतिक परिस्थिति को अच्छी तरह समझता था तथा अंग्रेजों के आगे होने वाले आक्रमणों को रोकने के लिए अधीर था।[८]

सम्राट इस प्रकार अपने पूर्वजों की गद्दी पर स्थिरतापूर्वक बैठ गया। इस समय चूकि जाबतखाँ ही एक ऐसा व्यक्ति था जो मराठों के प्रति दुर्व्यवहार कर सकता था, अत महादजी तथा विसाजी कृष्ण ने सम्राट के नेतृत्व मे फरवरी १७७२ ई० को उसके विरुद्ध दोआब पर चढाई कर दी तथा रुहेलखण्ड के उसके समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। जाबतखाँ ने पुन शुक्रताल मे अपनी घेराबन्दी कर ली। ४ मार्च को महादजी ने इस स्थान पर अधिकार कर लिया तथा खान रात्रि के अन्धकार मे बिजनौर की ओर भाग गया। शीघ्र ही नजीबाबाद (जिसका उस समय पत्थरगढ कहते थे) तक उसका पीछा किया गया। इस पर भी मराठो ने अप्रैल मे अधिकार कर लिया तथा जाबतखाँ उत्तरी जगलो मे भाग गया। इस प्रकार महादजी ने नजीबखाँ द्वारा सिन्धिया परिवार के प्रति किये गये प्रत्येक अन्याय तथा अत्याचार का पूर्ण प्रतिशोध ले लिया। रुहेलो की कब्र खोद डाली गयी तथा उसके अस्थिपंजर बिखेर दिये गये। पानीपत की लूट का जो कुछ भी माल वहाँ पर मिला, उस पर अधिकार कर लिया गया। ऐसा कहा जाता है कि इसमे कुछ मराठा महिलाएँ भी थी। लूट के माल मे बहुत सा धन, हाथी, घोडे तोपे तथा मूल्यवान वस्तुएं भी थी। भूतपूर्व क्षतियो के प्रतिशोध के रूप मे महादजी ने सदैव इस कार्य को गर्व के साथ याद किया। रुहेले अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे परन्तु इस समय उनकी जाति मे कोई भी ऐसा व्यक्ति न था जो वीरतापूर्वक मराठो का सामना कर सकता। इसके बाद जाबतखाँ ने जाटो तथा सिक्खो के पास शरण ली। इन सफलताओ के समाचार मई मे पूना पहुँचे तथा उन्होने मृत्यु-मुख पेशवा के हृदय को प्रसन्न कर दिया। वर्षा-ऋतु मे मराठा सेनाएँ पुन राजधानी को वापस आ गयी।

पेशवा को इस बात से सर्वाधिक सन्तोष हुआ कि अन्त मे उसने पानीपत के कलक को धो ही डाला तथा मराठा सत्ता को पुन उत्कर्ष की चरमसीमा तक पहुँचा दिया जिसके निर्माण के लिए उसके तीन महान पूर्वजों ने घोर परिश्रम किया था। अब केवल जाबतखाँ ही दिल्ली के क्षेत्र मे बाधास्वरूप था। अपने स्वार्थों के कारण सम्राट भी उसका दमन करने की अनुमति नही देता था। भारतीय इतिहास मे कुख्यात व्यक्तियों मे शाहआलम शायद सर्वाधिक धूर्त तथा षडयन्त्रकारी था। वह महादजी के लिए एक स्थायी

---

[८] कम्पियर्स तथा यात्रियो पृ० १८६।

समस्या हो गया। फिर भी उसने अन्तिम क्षण तक उनकी सेवा की तथा अत्यन्त विपत्तिग्रस्त परिस्थितियों में उनके प्राण तथा मान की रक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न किया। मराठों के भाग्योदय पर शुजाउद्दौला भी प्रसन्न न था। वही प्रथम भारतीय शासक था जिसने अंग्रेजों के विरुद्ध मराठों का साथ देने की बजाय भारत में अंग्रेजों को अपना शासन स्थापित करने में मदद दी।[६] मराठा चरित्र की निर्बलताओं का कोई विशद वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। ये निर्बलताएँ उन मतभेदों से स्पष्ट हो जाती हैं जो उस महत्त्वशाली अभियान के समय मराठा शिविर में विद्यमान था जिसका वर्णन अभी हो चुका है। वास्तव में चूंकि पानीपत के घटनास्थल पर ऐसा कोई शक्तिशाली नेता न था जिसके शब्दों में पूर्ण प्रभाव हो अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि युद्ध तथा नीति के प्रश्नों पर विभिन्न मतभेद पैदा हो गये हों। होल्कर ने रुहेला सरदारों की रक्षा करने की अपनी पुरानी नीति को कभी न छोड़ा तथा इस प्रकार उसने महादजी को अति क्रुद्ध कर दिया। केवल विसाजी कृष्ण के बुद्धिसंगत तथा मित्रतापूर्ण व्यवहार के कारण परिस्थिति की रक्षा हो गयी। उसने जवेतखाँ के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार किया तथा मुक्तिधन के चुकाने पर उसका परिवार उसको वापस कर दिया। सम्राट ने अपने विश्वासघात में कोई कसर न छोड़ी। उसने अकारण ही १६ दिसम्बर १७७२ ई० को दिल्ली में मराठा शिविर पर आक्रमण कराने का गुप्त प्रबन्ध किया। आक्रमण बुरी तरह असफल रहा और उसका मराठों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि इसके विपरीत सम्राट को ही अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया गया। लेकिन इसके पहले कि दिल्ली तथा उत्तर में शाही शासन पुनः सामान्य अवस्था में आ जाय, पूना में पेशवा का देहान्त हो गया तथा उसके भाई की, जो पेशवा पद का उत्तराधिकारी था, दुर्भाग्यपूर्ण हत्या कर दी गयी। इसके कारण ही मराठा सेनाएँ जो उस समय उत्तर में थीं, दक्षिण को वापस चली गयीं।

६ इतिहास में इस बात का पर्याप्त उल्लेख है कि अवध, मुर्शिदाबाद, अर्काट तथा हैदराबाद के चार मुसलमान शासकों ने किस प्रकार भारतीय स्वाधीनता को बेच डाला। इसके विपरीत १९वीं शताब्दी के अन्त तक एक भी हिन्दू इस प्रकार के अपवित्र कार्य में सम्मिलित नहीं हुआ था। लेकिन अंग्रेजों के आगमन के बाद तो एक भी हिन्दू नेता इतना शक्तिशाली न रहा था जो अंग्रेजों की सत्ता के विस्तार को रोक सके।

तिथिक्रम

अध्याय २५

१७६४ ६७	रघुनाथराव तथा पेशवा का सघर्ष चरमसीमा पर ।
नवम्बर, १७६६	पेशवा का कर्नाटक को प्रयाण ।
जनवरी, १७६७	पेशवा द्वारा अपनी सेना का अचानक निरीक्षण ।
फरवरी, १७६७	पेशवा का शिरा पर अधिकार, बदनूर की रानी सरंक्षण मे ।
मई, १७६७	पेशवा का कर्नाटक युद्ध को बन्द करके शीघ्रतापूर्वक पूना को वापस लौटना ।
जून, १७६७	रघुनाथराव परास्त होकर नासिक को वापस और पेशवा के विरुद्ध सघर्ष की तयारी प्रारम्भ ।
सितम्बर, १७६७	आनन्दवल्ली मे उन दोनो का मिलन ।
१३ अक्टूबर, १७६७	दोनों के बीच समझौता होना ।
दिसम्बर, १७६७	रघुनाथराव द्वारा नवीन षडयन्त्रों का आरम्भ ।
१७६७ ६९	हैदरअली द्वारा कर्नाटक के विजित प्रदेशो को पुन हस्तगत करना ।
जनवरी, १७६८	पेशवा तथा रघुनाथराव द्वारा युद्ध की तयारी ।
१९ अप्रल, १७६८	रघुनाथराव का अमृतराय को गोद लेना ।
मई, १७६८	पेशवा का अपने चाचा के विरुद्ध नासिक के समीप प्रयाण ।
१० जून, १७६८	ढोडप का युद्ध, रघुनाथराव का परास्त होना तथा बन्दी बनाकर पूना लाया जाना तथा वहाँ पर कद मे डाल देना ।
१८ अगस्त, १७६८	दमाजी गायकवाड की मृत्यु ।
सितम्बर, १७६८	जानोजी भोंसले का पेशवा के प्रति विद्रोह ।
दिसम्बर, १७६८	पेशवा द्वारा दमाजी गायकवाड के पुत्रों का प्रतिरोध ।
जनवरी, १७६९	निजाम की सम्मिलित सेना सहित पेशवा की नागपुर पर चढ़ाई, भोंसले-बन्धुओ द्वारा पेशवा का प्रदेश नष्ट ।

मार्च, १७६९	अंग्रेजों का फिर आना तथा उनके द्वारा शान्ति प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
२३ मार्च, १७६९	कानपुर की संधि रचना।
१८-२४ अप्रैल, १७६९	पेशवा तथा भोसले का एक दूसरे से विधिपूर्वक मिलना।
दिसम्बर, १७६९	उत्तर भारत की ओर अभियान।
जनवरी, १७७०	पेशवा कर्नाटक में।
फरवरी, १७७०	निजामअली तथा मुरारराव का पेशवा के साथ सम्मिलित होना।
३० अप्रैल, १७७०	निजगल के किले पर अधिकार, नारायणराव घायल।
मई, १७७०	रोग के कारण पेशवा कर्नाटक से वापस।
१९ अक्टूबर, १७७०	गढ़ गुरमकोण्डा पर पेठे का अधिकार।
दिसम्बर, १७७०	पेशवा का कर्नाटक के लिए प्रस्थान किन्तु विवश होकर युद्ध का नेतृत्व त्रिम्बकराव पेठे को सौंपकर वापस लौटना।
१७ जनवरी, १७७१	गोपालराव पटवर्धन की मृत्यु।
८ मार्च, १७७१	मोतीतलाव (अर्थात चिनकुराली) पर हैदरअली के विरुद्ध पेठे की विजय।
मार्च, १७७२	रुग्ण पेशवा का रघुनाथराव को बुलाना तथा नारायणराव को उसके नियन्त्रण मे सौंपना।
१८ मई, १७७२	पेशवा से मिलने के बाद जानोजी भोसले की मृत्यु।
जून, १७७२	कर्नाटक से त्रिम्बकराव का वापस बुलाया जाना।
६ अक्टूबर, १७७२	रघुनाथराव का कैद से भागना, किन्तु पुनः पकड़ा जाना।

अध्याय २५

राज्य के आन्तरिक कार्य

[१७६५-१७७२]

१ रघुनाथराव—विभाजन की मांग। २ रघुनाथराव की पूर्ण पराजय। ३ भोंसले आज्ञापालन पर विवश। ४ दमाजी गायकवाड की मृत्यु। ५ हैदरअली से युद्ध का पुन आरम्भ (१७६७ १७७२ ई०)।

१ रघुनाथराव—विभाजन की मांग—राक्षसभुवन म पशवा की सफलता के समय स ही रघुनाथराव यह समझन लगा था कि अपन भतीजे के बढत हुए गौरव तथा नैतिक महत्त्व के समक्ष उसका प्रभाव मन्द पडता जा रहा है। वह अपनी जन्मजात निबलता को दूर करन की अपेक्षा उसका नग्न प्रदशन ही अधिक कर सकता था तथा चिन्तो विटठल सदृश उसके मन्निकट साथियो की अत्यधिक चाटुकारिता से उसकी यह निबलता और भी अधिक बढ गयी थी। उसकी पत्नी आनन्दीबाई सम्भवत उस समय इतनी अल्पवयस्क थी कि वह उसको अच्छी या बुरी कुछ भी सलाह नही दे सकती थी। पशवा न उसको सन्तुष्ट रखन का यथाशक्ति प्रयत्न किया तथा अपनी क्षमता के अनुसार जो कुछ भी अच्छा काय वह कर सकता था, उसस कराया। पशवा की मां गोपिकाबाइ न जो प्रतिदिन होन वाल झगडो से तग आ गयी थी, उसी माग का अनुसरण किया तथा वह नासिक के समीप रहकर शान्ति के निमित्त उपासना करन लगी। रघुनाथराव के निवास-स्थल म भेजा हुआ एक वृत्तान्त इस प्रकार है— दादा का एकमात्र परामशक चिन्तो विटठल है। होलकर के कुछ लोग जो यहां आ गये है उसको पूण प्रमत्त रखत हैं। यहा पर सभी प्रकार के लोग एकत्र है। प्रत्यक का अपना स्वार्थी उद्देश्य है। राज्य के हित का ध्यान किसी को नही है। श्रीमन्त का चित्त अति चचल है। बुद्धिमान व्यक्तियो के प्रत्यक युक्तिसगत तक को उनके समक्ष गलत रूप म पश किया जाता है। अभी हाल ही म उन्होन अग्निहोत्र का कठिन व्रत धारण करन की इच्छा प्रकट की थी। शीघ्रतापूवक उसकी सभी तयारियां पूण कर दी गयी। यज्ञशाला भी बनकर तयार हो गयी। लेकिन ठीक उसी समय जबकि हवन आरम्भ होन को था दादा न यकायक कहा—"यह कष्टसाध्य काय मुझ म नही

हो सकता तथा उसके सलाहकारों आदि को गुप्तचर उसने ... के दफ्तर में लिखवा लिया। क्योंकि सारे जो दूर दूर से दक्षिण में आये थे वापस लौटा दिये गये। ... में मराठा राज्य का नाश कर ... गया ... विश्लेषण पूर्ण रूप से हुआ है। इन पत्रों से रघुनाथराव के चित्त की अस्थिरता पूर्णत स्पष्ट हो जाती है।

गत वर्षों में कई बार माधवराव ने अपने चाचा को समझाया तथा उसे मौखिक तथा लिखित रूप से शिकायत की कि उसके (चाचा के) सलाहकार उसकी (पेशवा की) आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं तथा उसके स्थान में घर जाते हैं और उसकी सुरक्षा ... करते हैं। इससे पेशवा की सत्ता को धक्का पहुँचता है तथा राज्य के विरुद्ध किये गये कार्य ... सहन किया जा सकता। इन शिकायतों का और कोई ध्यान नहीं दिया गया तथा पेशवा इस दुहरे शासन प्रबन्ध के कारण पग पग पर ठोकरें खाता रहा। उसने अपनी इच्छाओं को अपने चाचा के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया लेकिन रघुनाथराव अपनी बात पर दृढ़ रही था। वह सदा चाटुकारों की प्रत्येक बात को विश्वासपूर्वक सुनता था। वे लोग पेशवा के प्रत्येक शब्द तथा कार्य को रघुनाथराव के समक्ष विकृत रूप में रखते थे।[1]

पेशवा ने अपने पत्रों में जो उसने अपने चाचा के अनुयायियों को लिखे थे इस बात का पूर्ण आग्रह किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को निष्ठापूर्वक राज्य की सेवा करनी चाहिए। उसने इस बात की ओर भी स्पष्ट संकेत किया है कि उसका चाचा रघुनाथराव राज्य का विभाजन चाहता है जिससे कि राज्य की शक्ति क्षीण हो जायगी तथा उसके शत्रुओं को उस पर आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जायगा। अत वह इस प्रकार के विभाजन की अपेक्षा पेशवा का पद त्याग कर अपने चाचा की सेवा करना अधिक पसन्द करेगा।

१७६५ ई० की शरद्‌ऋतु मे यह परिस्थिति अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी जबकि दोनो सरदार पूना में एक दूसरे से मिले तथा एक महीने तक दोनो के बीच गरमा गरम वार्तालाप चलता रहा। माधवराव ने रघुनाथराव के विश्वासपात्र चिन्तो विटठल के समक्ष अपनी नीति की व्याख्या इस प्रकार की— हमारा राज्य अति विशाल है। अत सभी छोटे बडो को इसकी रक्षा करनी चाहिए। लेकिन दादा साहब की मूर्खतापूर्ण विभाजन की माँग से मैं *कदापि सहमत नहीं हूँ। प्राचीन परम्परा के अनुसार शासन की सम्पूर्ण शक्ति*

---

[1] उदाहरण के लिए नारोकृष्ण के प्रकरण का अध्ययन पेशवा दफ्तर संग्रह, खण्ड १६ पृ० ५२ तथा पत्रे यादी, पृ० २११ २१३ और राजवाडे संग्रह खण्ड १३, पृ० ८४ मे किया जा सकता है।

एक व्यक्ति में निहित होती है तथा उसका ही समस्त सदस्यो पर अविभाजित नियन्त्रण रहता है। वह बुद्धिमत्तापूर्वक सबका उचित ध्यान रखता है। दादा साहब की माँग का स्पष्ट अर्थ यह है कि चिरकाल से चली आ रही इस परम्परा का त्याग कर दिया जाय। उनकी माँग है कि गुजरात का अधिकार उनको दे दिया जाय तथा कुछ गढ़ भी उनको एकमात्र सरक्षण मे सौंप दिये जायें। वास्तव म इस प्रकार राज्य को एक सूत्र म नही बाधा जा सकता। मेरी इच्छा है कि राज्य का इस प्रकर विभाजित होने देने की अपेक्षा पूर्ण रूप मे दादा साहब को सौंप दिया जाय तथा मैं सार्वजनिक कार्यों से मुक्त होकर कही सुदूर स्थान पर निवास करने के लिए चला जाऊँ। वही पर दादा साहब की इच्छानुसार जो कुछ भी मुझ से बन पडेगा मैं सन्तोषपूर्वक करूँगा। मेरी राय म वर्तमान सकटो के उन्मूलन का यही सर्वोत्तम उपाय है।'

इस प्रकार के पत्रो से स्पष्ट है कि दोनो दल एक दूसर के प्रति किस प्रकार की मनोवृत्ति धारण किये हुए थे। एक लम्बे वाद विवाद के बाद रघुनाथराव अपने एकमात्र उत्तरदायित्व म कोई भी स्वतन्त्र कार्य करने को तैयार हो गया लेकिन शर्त यह थी कि पेशवा की ओर से कोई विघ्न बाधा नही पहुचायी जायगी। फलस्वरूप उस समय विभाजन की माँग स्थगित हो गयी। फरवरी १७६६ ई० म रघुनाथराव उत्तर की ओर गया तथा पेशवा वहा से निजाम अली के साथ मनोपूर्ण मिलन के बाद पूना वापस आ गया। उत्तर मे रघुनाथ राव ने किस प्रकार कुव्यवस्था फैला दी, इसका विस्तृत वर्णन पहले हो चुका है।

२ **रघुनाथराव की पूर्ण पराजय**—गोहद के राना के विरुद्ध युद्ध म परास्त होकर रघुनाथराव जून १७६७ ई० म नासिक वापस आ गया। वह अपने मन म बहुत खिन्न था तथा उसने अपनी असफलता का दोष अपने भतीजे के सिर मढ दिया। पुरानी कलह एक दफा फिर प्रकट हो गयी। उनके पारस्परिक सम्बन्धो मे तनाव आ गया तथा वे एक दूसरे के प्रति इतने शकालु हो गये कि उन्होने स्पष्ट रूप से परस्पर मिलना जुलना तक बन्द कर दिया। अपनी इस कलह को तलवार की नोक से निपटाने के ख्याल से रघुनाथराव ने नासिक म सेना भरती करना तथा युद्ध की सी तैयारियाँ करना आरम्भ कर दिया।

गत दो वर्षों मे पेशवा का उच्च चरित्र तथा उसकी योग्यता पूर्णतया स्पष्ट हो गयी तथा इसके विपरीत उसके चाचा की अपकीर्ति चारो ओर फैल गयी। इस गृह कलह के मूल कारणो को प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह समझता था। रघुनाथराव की विद्य प्रगतियो से पेशवा का दरबार भयभीत हो उठा। अनेक

सरदारों तथा नेताओं से होता गया । [illegible] का [illegible] था । इन सरदारों को प्रलोभन दिए जाने लगे । अधिकांश गायकवाड़ [illegible] थे, परन्तु उनकी निष्ठाएँ अब शिथिल हो गयीं । ज्यों ज्यों युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं देश में सर्वत्र हलचल मच गयी । माधवराव ने सखाराम बापू को उसके पद से हटा दिया क्योंकि उसकी निष्ठा पर उसे सन्देह हो गया था और मोरोबा फड़नीस को अपना प्रधान सचिव नियुक्त किया । इस समय पेशवा ने बड़ी सहिष्णुता का परिचय दिया । उसने गोविन्द शिवराम को अपने चाचा के साथ सन्धि प्रस्ताव करने तथा उन दोनों के बीच उत्पन्न मतभेदों का समाधान करने के लिए भेजा परन्तु गोविन्द शिवराम अपने प्रयास में पूर्ण असफल रहा । अन्त में पेशवा ने विशेष रूप से इस कार्य के लिए सखाराम बापू को चुना तथा उसको शान्ति प्रस्ताव तथा शंका समाधान के निमित्त रघुनाथराव के पास भेजा । सखाराम बापू पर रघुनाथराव को पूर्ण विश्वास था अतः उसके प्रयत्नों से दोनों सरदारों के बीच परस्पर मिलन का निश्चय किया गया । अतः इस अन्तिम उपाय को कार्यरूप में परिणत करने अर्थात् अपने चाचा से मिल कर इस झगडे को निपटाने के लिए पेशवा ने अपनी राजधानी से प्रस्थान कर दिया । दोनों के साथ बडी-बडी सेनाएं थीं तथा वातावरण सन्देह से पूर्ण व्याप्त था जिसके कारण कुछ समय तक उनका परस्पर सम्मिलन न हो सका । जिस समय पेशवा राहुरी (जो पूना तथा नासिक के अर्द्ध-मार्ग में स्थित है) में था चिन्तो विट्ठल दादा की तरफ से समझौते की रूपरेखा निश्चित करने के लिए आया । लम्बे वाद विवाद तथा आगे पीछे की बातों की अन्य चर्चाओं के बाद दोनों चाचा भतीजे १२ सितम्बर को चान्दोर के समीप परस्पर मिले तथा साथ साथ मन्दगति से आनन्दवल्ली की ओर बढे । पेशवा ने जो अब संघर्ष के अन्तिम परिणाम को देखने के लिए कटिबद्ध था रघुनाथराव से कहा कि या तो वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर दे अथवा युद्ध के द्वारा इस कलह को निपटा ले । इस प्रकार उसने जानबूझकर गत वर्षों के अपने शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार को त्याग कर अपने चाचा के प्रति बडा रूखा तथा कठोर रुख अपनाया । पेशवा के व्यवहार में इस आकस्मिक परिवर्तन से जो इस समय स्पष्ट देखा जा सकता था रघुनाथराव का घमंड ढीला पड गया । दोनों के बीच अनेक लिखित प्रस्ताव हुए । कोई किसी प्रस्ताव का विरोध करता तब दूसरा उसका *अनुमोदन करता । लेकिन अन्त में विवश होकर रघुनाथराव ने पेशवा से स्पष्ट* कहा— आप पेशवा तथा स्वामी हैं । आपके शासन प्रबन्ध से मेरा कोई सरोकार नहीं है । वह इस शर्त पर अवकाश ग्रहण करने के लिए तैयार हो गया कि उत्तरी अभियान के कारण उस पर हुए २५ लाख रुपये के ऋण को

चुका दिया जाय उसके निर्वाह के लिए उपयुक्त वृत्ति का प्रबन्ध कर दिया जाये, जिससे कि वह किसी तीर्थस्थान में जाकर त्याग का जीवन व्यतीत कर सके। यद्यपि यह समझौता बड़ा महँगा था, पर चूंकि पेशवा की यह इच्छा थी कि किसी प्रकार इस प्रकरण को शान्तिपूर्ण ढंग से हमेशा के लिए समाप्त कर लिया जाय, अतः उसने इस माँग को स्वीकार कर लिया। पेशवा ने अपनी ओर से उससे असीरगढ़, शिवनेर तथा सतारा के गढ़ों की माँग की जिन पर उस समय रघुनाथराव का अधिकार था। रघुनाथराव के निर्वाह के लिए वह १० लाख की जागीर भी देने के लिए सहमत हो गया। दशहरा के दिन ३ अक्टूबर, १७६७ ई० को इस समझौते का पुष्टीकरण हो गया तथा बाह्य अनुरंजन के रूप में वस्त्रों का दान प्रदान किया गया। आनन्दवल्ली में कुछ दिन व्यतीत करने के बाद दोनों चाचा भतीजे एक दूसरे से विदा हुए।

यह समझौता अल्पकालीन विराम संधि सिद्ध हुआ। इसके द्वारा रघुनाथराव के हाथों से वह उच्च पद तथा प्रभाव निकल गया जिसका वह दीर्घकाल तक भोग करता रहा था तथा इस पराजय से उसे गहरी ठेस लगी। उसने तुरन्त ही अपने पुराने विश्वस्त साथी निजामअली, हैदरअली, दमाजी गायकवाड़, जानोजी भोंसले तथा अन्य सरदारों से मिलकर पेशवा के विरुद्ध षड्यन्त्र आरम्भ कर दिये। इसी समय मोस्टिन के नेतृत्व में अंग्रेजों का एक आयोग पूना पहुँचा। मोस्टिन का सहायक ब्रोम नासिक में रघुनाथराव से मिला। उसने रघुनाथराव से कई बार भेंट की (१९ दिसम्बर, १७६७ ई० में) तथा पेशवा के विरुद्ध उसको सहायता देने का वचन दिया। जब पेशवा को अपने चाचा की इन काली करतूतों का समाचार मिला, वह बड़ा क्रुद्ध हुआ तथा उसे इस बात का सख्त अफसोस हुआ कि उसने गत सितम्बर में उसके साथ क्यों नहीं अति कठोर व्यवहार किया तथा उसको एक ही प्रहार में क्यों न खत्म कर दिया। उसने पुनः अपनी सेनाएँ एकत्र की तथा नासिक की ओर प्रस्थान कर दिया। दमाजी गायकवाड़ तथा होल्कर के दीवान गंगोबा तात्या ने स्पष्ट रूप से रघुनाथराव का पक्ष लिया और महादजी सिंधिया ने आकर पेशवा का साथ दिया। तुकोजी होल्कर ने इस युद्ध में तटस्थ रहना ही अधिक श्रेष्ठ समझा।

रघुनाथराव के कोई पुत्र न था अतः उसने अपने पक्ष को अधिक प्रबल बनाने के लिए १९ अप्रल को एक अन्य परिवार से एक बालक को विधिपूर्वक गोद ले लिया और उसका नाम अमृतराव रखा। इसका स्पष्ट अर्थ था कि रघुनाथराव ने अपनी विभाजन की माँग को पुनः प्रस्तुत कर दिया। पेशवा के लिए यह खुली चुनौती थी। रघुनाथराव की योजना थी कि अभियान को

वर्षाऋतु के बाद किसी उपयुक्त समय के लिए स्थगित कर दिया जाय। परन्तु पेशवा ने उसको अपनी सुविधानुसार कार्य नहीं करने दिया। मई में वह शीघ्रतापूर्वक रघुनाथराव की ओर बढ़ा तथा उसको तनिक भागने का कोई अवसर न दिया। रघुनाथराव धोडप गढ के नीचे शिविरस्थ पाया गया। जब उसको पेशवा की सेना के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ वह भयग्रस्त हो गया तथा उसने उस पहाडी गढ में शरण ले ली। इस प्रकार उसने जन साधारण के इस विश्वास को कि वह एक वीर योद्धा है, छिन्न भिन्न कर दिया। गोपालराव पटवर्धन तथा पेशवा के अन्य सहायकों ने रघुनाथराव की सेना से टक्कर ली तथा उसकी सेना का बिलकुल सफाया कर दिया। रघुनाथराव के अनुचरों में से चिन्तो विट्ठल घायल हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। उसके भाई मोरोपन्त का इस युद्ध में वध कर दिया गया। सदाशिव रामचन्द्र ने भागकर अपनी प्राणरक्षा की। घोडों हाथियों तथा युद्ध सामग्री के रूप में बहुत सा लूट का माल प्राप्त हुआ। पेशवा ने अपने चाचा को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने की आज्ञा दी। चाचा के पास अन्य कोई उपाय न था। वह गढ से नीचे उतर आया तथा अपने को गढ सहित पेशवा को समर्पित कर दिया। वह तुरन्त बन्दी बनाकर पूना भेज दिया गया, जहाँ उसे राजभवन में कठोर नियन्त्रण में रख दिया गया। यह युद्ध जून १७६१ से जून १७६८ ई० तक पूरे सात महीने रुक रुककर चलता रहा तथा अन्य कारणों की अपेक्षा इस युद्ध के कष्ट तथा चिन्ता के कारण पेशवा का स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड गया।

अपने विरोधी को मार डालने की मुस्लिम प्रथा के विपरीत पेशवा ने अपने चाचा के साथ अपूर्व उदारता का व्यवहार किया। उसको कारागार में व्यक्तिगत सुख की तथा अन्य सभी सुविधाएँ दी गयी। लेकिन रघुनाथराव ने अपनी पराजय को एक वीर पुरुष की भाति सहन नही किया। वह सदव छोटी मोटी शिकायतें करता रहा तथा जिनको बलपूर्वक कार्यान्वित कराने के लिए उसने अनशन तथा आत्म पीडा के अन्य उपायों का आश्रय लिया। इस प्रकार के वृत्तान्त प्राप्त हुए हैं कि पेशवा का सर्वनाश करने के लिए वह सूर्योपासना तथा यन्त्र मन्त्र भी करता था। उसके पास व्यर्थ के लोगों की एक मण्डली थी जिसमें पण्डित, गायक तथा हरीदास भी सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त बहुत-से अनुचर तथा पासवानें भी उसके साथ थी। यह सब प्रबन्ध पेशवा को परेशान करने के लिए था अर्थात उसे यह भारी व्यय उठाना पडे। रघुनाथराव के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आकांक्षा यह थी कि वह किसी प्रकार वैधानिक पेशवा के रूप में सुशोभित हो। माधवराव के

शासनकाल म उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। उसके कारावास के तीन साल बाद अर्थात माच १७७२ ई० म जब माधवराव को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी मृत्यु सन्निकट है, उसने अपने चाचा को बुलाया तथा बड़े आग्रह-पूवक उससे निवेदन किया कि वह अपने गत जीवन को भूल जायें तथा भविष्य मे उसकी मृत्यु के बाद उसके छोटे भाई नारायणराव का ध्यान रखें। परन्तु पेशवा की इस मार्मिक अपील का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, न ही उसके हृदय म कर्तव्य अथवा प्रेम की कोई भावना ही पैदा हुई। उसने पेशवा के लिए नये नये संकट उत्पन्न करने मे कोई कसर न उठा रखी तथा इस प्रकार उसने पेशवा को उसके अंतिम काल म भी चैन न लेने दिया। ६ अक्टूबर, १७७२ ई० को, अर्थात पेशवा की मृत्यु मे ६ सप्ताह पूर्व वह पूना के महल मे निकल भागा तथा पेशवा-पद पर अधिकार करने के लिए उसने सेना एकत्र करने का प्रयत्न किया। उसका तुरंत पीछा किया गया। तुलापुर म उसे पुन पकड़ लिया गया तथा कैद मे डाल दिया गया।

अब मराठा राज्य के दुर्दिन आ गये थे। शाहू की मृत्यु से छत्रपति-परिवार का अन्त हो गया था तथा तृतीय पेशवा की मृत्यु के बाद पेशवा के वंश का भी यही हाल होने को था, लेकिन सौभाग्यवश उसके पुत्र माधवराव ने परिस्थिति को संभाल लिया, यद्यपि अपने परिवार की कलह को शान्त करने मे उसके बहुमूल्य जीवन के कई वर्ष व्यर्थ ही नष्ट हो गये। राज्य के अन्य सदस्य अर्थात सिंधिया होल्कर, गायकवाड तथा भोसले भी जो उस समय के चार मुख्य स्तम्भ थे, इस पारिवारिक गृह कलह के दूषित प्रभाव स न बच सके। इन प्रथम दो व्यक्तियों का पूर्व प्रसग म हम वर्णन कर चुके है। अंतिम दो म से हम सर्वप्रथम नागपुर के भोसले परिवार का वर्णन करेंगे।

३ भोसले आज्ञापालन पर विवश—भोसले-परिवार ने आरम्भ से ही पेशवा की सत्ता के अधीन रहने की अनिच्छा प्रकट की थी। यह परिवार इस तथ्य की महत्ता को कभी भी न समझ सका कि उस समय की राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए बिना केन्द्रीय सहायता के वे अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को स्थिर नहीं रख सकते थे। वे सदैव पेशवा के संकटों से लाभ उठाने के लिए तैयार रहते थे, अत संकट के समय में उनका कोई विश्वास नहीं किया जा सकता था। पेशवा भोसले परिवार की इस प्रवृत्ति को सहन न कर सका तथा १७६६ ई० के एक छोटे से अभियान मे ही उसने उसे पूर्ण परास्त कर दिया। लेकिन रघुनाथराव के आग्रह के कारण उसके साथ कोई कठोर बर्ताव नहीं किया गया। परन्तु जानोजी न अपने मन्त्री देवाजी पंत की अनुचित सलाह को मानकर १७६६ ई० के समझौते का उल्लंघन किया तथा

पेशवा के विरुद्ध षड्यन्त्र का अपना पुराना खेल आरम्भ कर दिया। दो वर्ष के पश्चात् अर्थात् जून १७६८ ई० में ढोडप के युद्ध में अपने चाचा से निपटने के बाद पेशवा ने जानोजी को कठोर दण्ड देने का निश्चय किया, क्योंकि वह सदैव ही पेशवा के शत्रुओं के साथ साँठ गाँठ करने में व्यस्त रहता था। माधवराव ने उसके मन्त्री देवाजी पन्त को स्वयं उससे मिलने पूना बुलाया। उसने इस निमन्त्रण को ठुकरा दिया तथा इस प्रकार पेशवा से अपनी मुलाकात को टाल गया। परन्तु वह रघुनाथराव तथा अंग्रेजों के साथ मिलकर नियम विरुद्ध षड्यन्त्र करता रहा जिससे पेशवा की सत्ता को हानि पहुँचती थी। २१ सितम्बर को माधवराव ने जानोजी को लिखा—"आपका प्रतिनिधि चिमाजी रघुनाथ आया है तथा आपकी ओर से उसने कुछ स्पष्टीकरण किया है परन्तु मेरी इच्छा है कि इस आपसी कलह को निपटाने के लिए देवाजी तुरन्त यहाँ आयें।" एक मास बाद उसने फिर पत्र लिखा, जिसमें उसने जानोजी और उसके मन्त्री दोनों को अविलम्ब वहाँ आकर उससे मिलने की आज्ञा दी। जब इस चेतावनी की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया तो पेशवा ने तुरन्त भोसले के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। बरार होकर उसने उसके प्रदेश की ओर प्रयाण कर दिया तथा स्वयं नागपुर को हस्तगत करने की धमकी दी। देवाजी पन्त को आने वाले संकट का पूर्वाभास हो गया तथा वह बरार में पेशवा से मिलने आया। वह तुरन्त बन्दी बना लिया गया, जिससे जानोजी और भी अधिक रुष्ट हो गया।

उत्तर की ओर प्रयाण करने के निमित्त पेशवा ने रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में एक शक्तिशाली अभियान का संगठन किया था। जब उसका पूर्णतया [illegible] सेनापति को आज्ञा दी कि वह नागपुर पर आक्रमण करे तथा भोसले के प्रदेश को नष्ट कर दे। गोपालराव पटवर्धन को, जिसको पहले कर्नाटक जाने की आज्ञा दी गयी थी, वापस बुला लिया गया तथा भोसले के विरुद्ध चतुर्मुखी आक्रमण आरम्भ किया गया। सैनिक सहायता के लिए पेशवा की प्रार्थना पर निजामअली ने अपने मन्त्री रुकनुद्दौला के अधीन अपनी सेनायें भेज दीं। रामचन्द्र जाधव भी उसकी सहायता के लिए भेजा गया। इस प्रकार सहायता प्राप्त कर पेशवा ने भोसले के प्रदेश में अपना [illegible] शुरू कर दी तथा [illegible] के बाद उसने [illegible] पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार शीघ्र ही उसने वर्धा नदी तक बरार के प्रदेश का [illegible] कर लिया जिस पर भोसले का अधिकार था। जनवरी १७६९ ई० के आरम्भ में पेशवा ने नागपुर में प्रवेश किया तथा रामचन्द्र गणेश ने [illegible] पर अधिकार कर लिया। १० जनवरी को [illegible]

के समीप पचगाव के स्थान पर घोर युद्ध हुआ जिसमे भोसले परिवार का योग्य सेनापति नरहर बल्लाल रिम्बुद मारा गया।[२]

इसी समय दिवाकर पण्डित ने मराठा शिविर मे अपने कारावास स्थल से अपने स्वामी के साथ षडयन्त्र करने का प्रबन्ध कर लिया। वह उसको महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ भेज देता था तथा पेशवा को परास्त करने के लिए वह योजनाओ तथा उपायो का निर्देश भी करता था। उसके परामर्श के अनुसार ही जानोजी ने, जिसका आधार केन्द्र चादा मे था और जो अपनी छोटी सी सेना के कारण पेशवा के बल का सामना करने मे असमर्थ था छापामार युद्ध प्रणाली का आश्रय लिया। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि वह पूना पर आक्रमण करेगा तथा रघुनाथराव को स्वतन्त्र करके उसको पेशवा की गद्दी पर बठा देगा। उसने गोदावरी को पार कर अपने शत्रु के प्रदेश को निर्ममतापूर्वक लूटा। इस पर माधवराव चादा को अधीन करने के अपने उद्देश्य को स्थगित करने के लिए विवश हो गया। उसने शीघ्रतापूर्वक रामचन्द्र गणेश तथा गोपालराव पटवर्धन को जानोजी के पीछे भेज दिया ताकि व उसको पूना पहुँचने से रोक दें। फरवरी मास मे तीन या चार दिन तक पूना मे भय तथा आतक छाया रहा क्योकि जानोजी ने अनेक भ्रमात्मक समाचार इधर उधर फला दिये थे। इन समाचारो का प्रतिकार करने तथा अनावश्यक भय मे जनता को छुटकारा दिलाने के लिए पेशवा ने अविलम्ब उपाय किये।

जानोजी अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने म सफल नही हुआ। गोदावरी को पार करने के बाद उसने भालकी तथा मेडक के समीप निजाम के प्रदेश को लूटना आरम्भ कर दिया। परन्तु रामचन्द्र गणेश तथा गोपालराव ने अविराम गति से उसका पीछा किया तथा उसको इतना अधिक परेशान किया कि उस आक्रमण के दौरान म जबकि उसके सिपाही भागते हुए लड रहे थे, उनको भूखो मरना पडा। यह दुखदायी युद्ध पूरे माच के महीने भर होता रहा था। मध्य गोदावरी के क्षेत्र मे जानोजी को घेर लिया गया तथा इस प्रकार विवश होकर वह आत्मरक्षा के निमित्त आन्ध्र प्रदेश म स्थित चिनूर के जगलो म भाग गया। हरिपन्त फडके ने १३ माच को लिखा है— पेशवा कल कनकपुर पहुँच गया है जो गोदावरी के उत्तरी तट पर स्थित है। जानोजी लगभग ६० मील पूरब की ओर चिनूर के जगलो म छिपा हुआ ह। गोपालराव ब्रह्मेश्वर म है। इस अवसर पर जानोजी के भाइ मुधाजी ने पेशवा का साथ दिया क्योकि वह जानोजी की असहायावस्था का समय गया था। अब चूकि दोनो

---

२ पेशवा दफ्तर सग्रह खण्ड २०, पृ० २०० २१० तथा २७४।

दोनों पक्ष युद्ध से तंग आ गये थे तथा दोनों ही युद्ध को समाप्त करना चाहते थे। नागपुर के राजा ने भी सन्धि का साथ दिया। पेशवा ने जानोजी से सन्धि के लिए प्रार्थना भेजी, जिससे उनके दोनों के समक्ष प्रस्ताव के सम्बन्ध हुए राष्ट्र के सुरक्षित भविष्य का ध्यान किया तथा उसे स्वीकार किया। उसके लिए निमन्त्रण भी दिया। पेशवा के इस उदार व्यवहार के प्रति भोंसले ने अपनी सम्मति प्रकट की, क्योंकि वे दोनों समझ गये थे कि मराठा राज्य की सेवा करना ही बुद्धिमत्ता है और इसके लिए उन्हें अब अपने पूर्व आचरण को भूलकर राष्ट्रीय हित के लिए एक दूसरे का हार्दिक सम्मान देना चाहिए। अपने पूर्वज किये तथा अपने कुल स्वामी के नाम पर पेशवा ने प्रतिज्ञा की कि वह तन मन धन से राज्य की उन्नति का प्रयास करेगा। पेशवा ने जानोजी को लिवा लाने के लिए अपने दूत भेजे तथा उनके आगमन पर १६ अप्रैल को उनके पैर पड़के तथा माधोबा पटवर्धन ने पेशवा की ओर से आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। २४ अप्रैल को मन्दिर के समीप एक स्वागत समारोह हुआ जिसमें पेशवा तथा भोंसले का मिलन हुआ। उन्होंने परस्पर वार्तालाप किया जिसमें निजामअली के प्रतिनिधि रुकनुद्दीन ने भी भाग लिया।[३]

उन दोनों के मध्य पारस्परिक मित्रता का सन्धि पत्र लिखा गया जिसका कनकपुर या ब्रह्मेश्वर में पुष्टीकरण कर लिया गया। ये दोनों स्थान एक दूसरे के सम्मुख गोदावरी तथा मजरा नदियों के संगम पर स्थित हैं। दोनों शिविर अन्न तथा जल की सुविधा के लिए यहाँ पर आ गये थे। इस सन्धि-पत्र में १६ धाराएँ थीं तथा यह माँग और उनके प्रत्युत्तरों के रूप में लिखा गया था। संक्षेप में यह जानोजी द्वारा स्वीकृत प्रतिज्ञा-पत्र था जिसमें उसने स्वीकार किया था कि वह अपने परिवार सहित मराठा राज्य के मुख्य पुरुष के रूप में पेशवा की आज्ञाओं का हृदय से पालन करेगा तथा निश्चित संख्या से अधिक सेना नहीं रखेगा जहाँ कहीं और जब भी उसको आज्ञा प्राप्त होगी वह ५ हजार सैनिकों की सेना सहित तुरन्त पेशवा की सेवा में हाजिर होगा तथा ५ लाख रुपये वार्षिक कर के रूप में देगा तथा राज्य के विरुद्ध किसी विदेशी सत्ता से षडयन्त्र नहीं करेगा।[४]

इन सब घटनाओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पेशवा भोंसले संघर्ष का मुख्य कारण देवाजी की काली करतूतें थीं। उसके सम्बन्ध

---

[३] पेशवा दफ्तर संग्रह, खण्ड २०, पृ० २५७ २५८, २६३ २६४, २६८ २७० २७४ २७८, ऐतिहासिक पत्रव्यवहार पृ० ११६ ११९।

[४] ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, पृ० ११७ ११९।

म यह घोषणा कर दी गयी कि वह अवांछित चरित्र का व्यक्ति है जिसका कतई भी विश्वास नहीं किया जा सकता है। पेशवा ने जानोजी को विश्वास दिलाया कि उसका देवाजी को अपनी सेवा म रखना व्यथ मे विपत्ति मोल लेना है। पेशवा के कहने स जानोजी न उसको कठोर कद मे डाल दिया। लेकिन पेशवा तथा जानोजी की मृत्यु हो जाने के कारण यह सभी कल्याण-कारी काय निष्प्राण हो गये। दिवाकर पण्डित मुक्त कर दिया गया तथा उसने अपने पुराने षडयन्त्र पुन आरम्भ कर दिये जिनसे मराठा राज्य को बहुत क्षति पहुची। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह किस प्रकार वारेन हस्टिंगस के हाथो का खिलौना बन गया था।

पेशवा तथा नागपुर के भोसलो के बीच म हुआ यह अल्पकालीन युद्ध था जिसका सुखद अन्त पेशवा की उस नीति की अपूर्व विजय का परिचायक था, जो कठोर होने के साथ साथ अनुनयपूर्ण भी थी तथा जिसने मराठा राज्य के अनेक विद्रोही नेताओ को एकता के सूत्र मे पिरो दिया। प्रथम बार केन्द्रीय सत्ता तथा उसके अधीन शक्तियो के परस्पर सम्बन्धो की व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया। कनकपुर की इस सधि स स्पष्ट हो जाता है कि अब मराठा ने अपना तुष्टीकरण तथा भ्रष्टाचार की पूव नीति का सवथा त्याग कर दिया था। पेशवा अपनी इस नीति की पूणता तक धीरे धीरे क्रम से पहुँचा था तथा इसके निमित्त ही उसने निजामअली को सवप्रथम अपना मित्र बनाया और अपने चाचा को पूण निहत्था कर दिया।

४ दमाजी गायकवाड की मृत्यु—बडौदा के गायकवाड नागपुर के भोसले, सिन्धिया तथा होल्कर आदि चारो ही पेशवा के अधीन थे तथा उन पर ही मराठा राज्य की रक्षा का पूरा भार था। वास्तव म ये चारो ही परि-वार इस पेशवा के अपूव शासनकाल के महत्त्वपूण अग थे। इनमे दमाजी गायकवाड सर्वाधिक चतुर तथा दूरदर्शी था। वह न तो पेशवा के प्रति अगाध प्रेम ही रखता था और न ही उसने कभी उसका स्पष्ट विरोध किया था। उसकी निष्ठा की परीक्षा उस समय हुई जबकि १७६८ ई० म पेशवा तथा रघुनाथराव के बीच मे घोर युद्ध हुआ। दमाजी इस समय इन दोनो म से किसी का पक्ष लेने की बजाय गुजरात म अपनी शक्ति को सुदृढ करने म व्यस्त रहा। साथ ही साथ उसने अपनी सीमाओ को उत्तर म ठीक पालनपुर तक तथा पश्चिम म द्वारका तक विस्तृत कर दिया और इस प्रकार वह पेशवा की पारि वारिक कलह म भाग लेने मे बचा रहा। चूकि दमाजी ने बहुत दिनो तक रघुनाथराव के अधीन काय किया था तथा अनेक अभियानो म उसके साथ रहा था, अत उसके लिए यह काय अति कठिन था कि मराठा पेशवा द न का

आह्वान मिलने पर वह रघुनाथ की आज्ञा का पालन न करे। परन्तु १७६७ तथा १७६८ ई० में दमाजी का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था अतः गृह युद्ध में उसने बुद्धिमत्तापूर्वक किसी पक्ष का साथ न दिया। उसने ४० वर्षों तक घोर परिश्रम किया था तथा गुजरात और काठियावाड़ में मराठा राज्य के विस्तार तथा पुनरुत्थान में सहायता दी थी। दमाजी का देहान्त बड़ौदा में १८ अगस्त १७६८ ई० को हो गया। अपने पीछे उसने सयाजी, गोविन्दराव, फतहसिंह तथा मानाजी नामक चार पुत्र छोड़े, जिन्होंने मराठों के भावी इतिहास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उनमें आपसी फूट के कारण उनकी स्थिति निर्बल हो गयी। २१ दिसम्बर १७६८ ई० को माधवराव ने फतहसिंह को सम्बोधित करते हुए कठोरतापूर्वक लिखा—

"ऐसा समाचार प्राप्त हुआ है कि आप अपने भाइयों में झगड़ा कर रहे हैं तथा इस प्रकार आप अपने अधिकृत प्रदेशों के तथा अपने राज्य के हितों को हानि पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार के किसी उपद्रव को हम सहन नहीं कर सकते। हमने अप्पाजी गणेश को इस आज्ञा सहित भेज दिया है कि वह राज्य पर अधिकार करें तथा स्वतन्त्र रूप से शासन का संचालन करें। आप कृपया समस्त प्रबन्ध उसको सौंप दें तथा पूना चले आयें। जो कुछ भी आप कहना चाहते हैं यहाँ पर आकर कहें। गोविन्दराव यहाँ पर आ गया है तथा आप सबकी उपस्थिति में ही हम आप सबका फैसला करेंगे तथा हमारा फैसला आप सबको मान्य होगा और इसमें कोई बहाना नहीं सुना जायगा। यह निश्चय करना हमारा कर्तव्य है कि आप सब में कौन अधिक योग्य है तथा कौन अयोग्य है। लेकिन इस बीच हम किसी प्रकार की कुचेष्टा को सहन नहीं करेंगे। यदि आपको अपने हित की कोई चिन्ता है तो आप इस आज्ञा का अक्षरशः तथा बिना संकोच के पालन करें। यदि आप इसकी अवज्ञा करेंगे तो आपको घोर कष्ट सहन करना पड़ेगा। कृपया समझ सोचकर कार्य करें।"

निवलता को समझता था तथा उसने इस दोष को दूर करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न भी किया।

५ हैदरअली से युद्ध का पुन आरम्भ (१७६७ १७७२ ई०)—कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के बीच के प्रदेश पर मराठा प्रभुत्व पुन स्थापित करने के बाद १७६५ ई० की वर्षाऋतु म पेशवा पूना वापस आ गया। १८वी शताब्दी के षष्ठम् दशक के मध्य म मराठे, अंग्रेज निजाम तथा हैदरअली आदि ये ही चार शक्तियाँ थी, जो दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप पर प्रभुत्व के लिए परस्पर संघर्षशील थी। कुछ शक्तियो ने अन्य दूसरी शक्तियो से मित्रता करने का प्रयत्न किया ताकि वे दूसरो को पराजित कर सकें। माधवराव की इच्छा थी कि उत्तर म अंग्रेजो के आक्रमण की ओर ध्यान देने के पहले वह हैदरअली को समाप्त कर दे। १७६६ ई० म उसने निजामअली से मित्रता कर ली जिससे वह उसके चाचा और हैदरअली म से किसी का भी साथ न दे सके। १७६६ ई० के अन्त म उसने पहले गोपालराव पटवर्धन को कर्नाटक भेजा और उसके शीघ्र पश्चात वह स्वयं पूरबी माग से कर्नाटक को गया। उसने तुरन्त सुरपुर रायचूर तथा मुद्गल पर अधिकार कर लिया तथा कनकगिरि, अदवानी, बल्लारी, करनूल चित्रदुग देवदुग तथा रायदुग के सरदारो से बल पूर्वक कर वसूल किया तथा हैदरअली के मुख्य स्थान श्रीरंगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण के लिए तैयार हो गया। पेशवा का उत्साह इस समय बहुत बढा हुआ था। उसकी सहायता के निमित्त उसके पास अनेक योग्य कूटनीतिज्ञ तथा सेनानी थे। जनवरी १७६७ ई० म जब उसका पडाव देवदुग म था, उसने अभियान म भाग लेने वाले सरदारो की सेनाओ की संख्या तथा उनकी सुसज्जा का अचानक निरीक्षण किया तथा अपराधियो को कठोर दण्ड दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इसके बाद म उसके शिविर म पूर्ण अनुशासन रहा तथा अनियमितता और छल कपट के लिए कोई स्थान न रहा। फरवरी मे पेशवा ने हैदरअली से शिरा के सुदृढ दुर्ग को छीन लिया। इसी समय निजामअली अपने पुत्र सहित वहाँ आ पहुँचा तथा हैदरअली के विरुद्ध पेशवा के अभियान म उसके साथ हो गया। शिरा का नवाब तथा हैदरअली का एक मुख्य सरदार मीर रजा भी मराठा सेना म सम्मिलित हो गये।

४ मार्च को एक ही दिन म मदगिरि के गढ पर अधिकार कर लिया गया। इस महान काय का शत्रु पर घातक प्रभाव पडा। इस गढ म बदनूर की रानी तथा उसका पुत्र जो हैदरअली के बन्दी थे मुक्त कर दिये गये तथा रक्षा के लिए पूना भेज दिये गये। अब केवल श्रीरंगपट्टन तथा बदनूर ही हैदरअली के अधिकार म रह गये थे। पेशवा ने अब अपना ध्यान उनकी ओर

दिया। इस चाल से हैदरअली इस प्रकार स्तब्ध हो गया कि उसने अपने प्रतिनिधियों को नम्रतापूर्वक शर्तों की प्रार्थना करने के लिए उसके पास भेजा तथा उन्हें इस बात का अधिकार दिया कि वे कर्नाटक के उस प्रदेश को पेशवा को समर्पित करने को सहमत हो जायें जो कि पूर्व पेशवा नाना साहब के अधिकार में था। इस समय रघुनाथराव ने अपने उत्तरी अभियान में पूर्णतया परास्त होकर भी पूना में पुनः उत्पात आरम्भ कर दिया था, जिससे विवश होकर पेशवा को वापस लौटना पड़ा तथा उसने हैदरअली को समाप्त कर देने के स्थान पर उसके द्वारा प्रस्तावित सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया। जब पेशवा कर्नाटक में था तभी मद्रास में अंग्रेजी शासन द्वारा हैदरअली के विरुद्ध उससे सहयोग की प्रार्थना की गयी थी तथा मैत्रीपूर्ण सन्धि की स्थापना के लिए उनका प्रतिनिधि लेफ्टिनेंट टाड उसके पास भेजा गया था। लेकिन पेशवा ने यह सोचकर कि अपने शत्रु का दमन करने के लिए विदेशी सहायता लेना विपत्तिजनक है अंग्रेजों के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। टाड ने अपने उच्च अधिकारियों को यह वृत्तान्त भेजा—'जब मुझे अपने साथ किये गये अपमानजनक व्यवहार का तथा अपने पद का और जिनका मैं प्रतिनिधि था उनका ध्यान आता है तो मेरा सिर लज्जा से झुक जाता है। फिर भी मैं पूर्ण शान्त रहा हूँ तथा अपनी घृणा को प्रकट न होने देने का मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है। माधवराव ने हैदरअली के साथ पृथक समझौता कर लिया है तथा वह पूना को वापस चला गया है। अपने शत्रुओं के मन में उसने मराठा अस्त्रों तथा गौरव के लिए उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।[५]

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है पेशवा आगामी दो वर्षों में अपने चाचा तथा जानोजी भोंसले के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त रहा था। अतः १७६९ ई० के अन्तिम मासों तक उसको हैदरअली की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न मिला। इस बीच (१७६७-६९ ई०) हैदरअली को अपनी शक्ति बढ़ाने तथा उन सरदारों पर जो मराठों के पक्ष में चले गये थे, प्रभुत्व स्थापित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। उसने मुरारराव घोरपड़े तथा सावनूर के नवाब को कुचल दिया। अतः पेशवा के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह पुनः उस कार्य को शुरू कर दे जिसका श्रीगणेश पहले हो ही चुका

आरम्भ कर लिया। निजामअली तथा मुरारराव घोरपडे दोना फरवरी मे पशवा के साथ हो गये तथा अधिकाश पालीगरा न भी उसका साथ दिया। वगलौर के रक्षक दुग वहिरागढ तथा दवराई और कोलार के दुर्गो पर भी अधिकार कर लिया गया। ३० अप्रल को जब निजगल मे गढ पर आक्रमण हा रहा था, पेशवा के भाई नारायणराव के हाथ मे चोट आ गयी जो सौभाग्य वश घातक न थी। ऋतु अनुकूल न हाने के कारण पशवा अपने घार परिश्रम क बावजूद सफलता प्राप्त न कर सका तथा अपर घातक रोग क आक्रमण की आशका से विवश होकर वह युद्ध का नतृत्व त्रिम्बकराव पेठे क सुपुद कर पूना वापस चला गया।

१७७० ई० के अन्त म पशवा ने पुन कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया, परन्तु अपनी घार रुग्णता के कारण वह मिरज से वापस हान पर विवश हो गया। १७७० ई० की ग्रीष्मऋतु के आगामी दो वर्षो म उसके सेनाध्यक्ष पठे न शष काय का बहुत भाग सम्पादित कर लिया तथा इस काय म पटवधन-परिवार न उसको अपना हार्दिक सहयोग दिया। पशवा न पूना स नय सनिको की मण्डलिया के साथ भारी तोपखाना भी भेज दिया। १७७० ई० की वर्षा-ऋतु मे पेठे न हैदरअली को कई युद्धा म परास्त किया तथा इसी साल के अन्त म गोपालराव पटवधन, जो कई वर्षों के घोर परिश्रम के कारण रुग्ण रह रहा था अधिक रुग्ण होने के कारण युद्ध का भार अपन भाई वामनराव का सौप कर अपने घर वापस हो गया। १७ जनवरी, १७७१ इ० का मिरज नामक स्थान पर उसका देहान्त हो गया जिसके कारण समस्त राष्ट्र को घोर दुख हुआ।

त्रिम्बकराव न हैदरअली स घार युद्ध किया तथा ५ माच, १७७१ ई० को श्रीरगपट्टन के समीप युद्ध म उसको पूण रूप से कुचल दिया। इस युद्ध को त्रिकुर्ली या मोतीतलाव का युद्ध कहत है। इसम शत्रु के कई हजार सैनिक मारे गये तथा बहुत से पशु तथा युद्ध की सामग्री प्राप्त हुई। हैदरअली वेश बदलकर रात्रि के अन्धकार म अपन प्राण लेकर भाग गया। पेठ न तुरत श्रीरगपट्टन तक उसका पीछा किया, लेकिन उस स्थान की अजयता क कारण बहुत दिना तक उस पर कोई प्रभाव नही डाला जा सका। १७७१ ई० की वर्षा ऋतु आरम्भ हो गयी लेकिन मराठे जो मातीतलाव पर शिविर डाले पडे थ, विभिन्न दिशाओ म सतत युद्ध करत रहे तथा उन्हान अनेक स्थाना पर शत्रु को बुरी तरह पराजित किया। लेकिन फिर भी हैदरअली धयपूवक डटा रहा तथा दृढतापूवक मराठा स युद्ध करता रहा। त्रिम्बकराव के लिए यह काय दुस्साध्य हो गया। चूकि मराठा सनिक गत तीन वर्षो मे सतत युद्ध मवा मे

थ और निरंतर अभियान क कारण श्रांत हो गय थ, अत घर वापस लौटन क लिए व अत्यंत व्याकुल हो उठे थ। इस बीच पूना स पेशवा की रुग्णता का द्रावक समाचार मिला जिसन उनके रहे-सहे उत्साह को भी समाप्त कर दिया। उधर हैदरअली की भी दशा अच्छी न थी। इस समाचार से कि पेशवा बीमार है तथा उसके बचन की कोई आशा नहीं है उसको कुछ आशा बँधी। फिर भी उसने कुछ महीने पूर्व ही पेठे से समझौते क निमित्त वार्तालाप शुरू कर दिया। लेकिन जस ही पेठे को पूना वापस लौटन की आज्ञा प्राप्त हुई उसने तुरंत हैदरअली के साथ संधि कर ली तथा जून १७७२ ई० म वह वापस हो गया। इस संधि के अनुसार हैदरअली ३१ लाख रुपय दण्डस्वरूप देन को तयार हो गया तथा उसन तुंगभद्रा के दक्षिण प्रदश का बड़ा भाग भी पेशवा को समर्पित करना स्वीकार कर लिया। फिर भी मृत्युमुख पेशवा को अपने अल्पकालीन परंतु संघर्षपूर्ण जीवन के अंतिम समय म इस बात का सम्भ अफसोस रहा कि वह हैदरअली की बढ़ती हुई शक्ति का हमेशा के लिए अन्त न कर सका।

तिथिक्रम

अध्याय २६

आरम्भ, १७७०	पेशवा को क्षयकारक आन्त्र रोग का प्रथम दौरा आना।
शरद्ऋतु, १७७०	सखाराम बापू को शासन का सचालन करने तथा नारायणराव को इस काय मे शिक्षित करने की आज्ञा।
१७७०	पेशवा क स्वास्थ्य-लाभ के निमित्त विशेष अनुष्ठानो का आयोजन।
दिसम्बर, १७७०	पेशवा का स्वण-तुलादान।
अप्रल, १७७१	गोपिकाबाई का पूना मे पेशवा से मिलन।
२८ अगस्त, १७७१	पेशवा द्वारा नारायणराव को सदाचारी बनने की चेतावनी।
अगस्त, १७७१	पूना, गोआ तथा जयपुर के तीन विशेषज्ञो द्वारा पेशवा की चिकित्सा।
१७७१	वायु-परिवतन के निमित्त पशवा गोदावरी स्थित काटोर तथा सिद्धटेक मे।
ग्रीष्मऋतु, १७७२	पेशवा का थेउर में निवास।
३० सितम्बर, १७७२	पेशवा द्वारा अतिम आदश देना।
१८ नवम्बर, १७७२	कार्तिक अष्टमी को ८ बजे प्रातःकाल पेशवा का देहान्त और रमाबाई का सती होना।
८ अगस्त, १७८८	गगापुर मे गोपिकाबाई का देहान्त।

अध्याय २६

दुखद अन्त

[१७७२]

१ पेशवा का असाध्य रोग।
२ उसकी अन्तिम अभिलाषा।
३ शान्तिपूर्ण मृत्यु।
४ पत्नी तथा माता।
५ पेशवा का चरित्र।
६ विदेशी प्रशंसा।
७ उपाख्यान

१ पेशवा का असाध्य रोग—पिछले पृष्ठों में जिन महान घटनाओं का वर्णन हो चुका है उसका एक बालक के शरीर तथा मन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। १६ वर्ष की अल्पायु में ही उसको अपने सुविस्तृत लेकिन संकटग्रस्त साम्राज्य के शासन प्रबन्ध को सँभालना पड़ा था। उसका शरीर लम्बा, पतला परन्तु पुष्ट था। आकृति से वह सुन्दर तथा प्रभावशाली था, परन्तु उसकी मूलशक्ति का शीघ्र ही ह्रास हो गया—विशेषकर जब उसे इस बात का पता चला कि क्षय रोग का घुन बहुत पहले से ही उसके शरीर में प्रवेश कर गया है और अब तक किसी के ध्यान में नहीं आया था। कुछ समय तक रोगी ने अपने जन्मजात साहस से इस रोग से लड़ने का प्रयत्न किया और वह अपने साधारण श्रमसाध्य कार्यों को करता रहा। १७७० ई० के अन्त में उसने अपने कार्य को समाप्त करने के विचार से कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया लेकिन मार्ग में उसका रोग इतना बढ़ गया कि मिरज से उसे वापस लौटना पड़ा तथा उचित चिकित्सा की शरण लेनी पड़ी। इस प्रकार उसके अन्तिम दो वर्ष स्वास्थ्य लाभ के प्रयत्न में व्यतीत हुए। इस बीच कभी वह गोदावरी के तट पर स्थित कायगाँव को जाता तो कभी सिद्धटेक को अन्त में वह पूना के समीप स्थित थेऊर चला गया।

उस समय क्षय रोग के निराकरण हेतु जिसे पुराने लोग राजयक्ष्मा अथवा रोगों का राजा कहते थे कोई वैज्ञानिक चिकित्सा न थी। पेशवा को आँतों का क्षय था तथा उसका सीना तथा फेफड़े बिलकुल ठीक थे। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि कभी-कभी वह अपने पेट की असह्य वेदना से

व्याकुल होकर [illegible] औरों को [illegible] था । पेशवा का अब [illegible] हो गया था कि उसका मृत्यु [illegible] सौभाग्य से [illegible] जीवित [illegible] के [illegible] सौभाग्य [illegible] कि उसके [illegible] विजयों के कारण उसका आत्मविश्वास और [illegible] है [illegible] १७७२ ई० की [illegible] किया गया है यद्यपि उसका पूरा [illegible] था । उसी वर्ष के आरम्भ में मुगल सम्राट पुनः मराठा [illegible] के विरुद्ध दिल्ली में अपनी गद्दी पर पुनः बैठा दिया गया तथा इस घटना से यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि पानीपत के युद्ध में कोई [illegible] नहीं हो गया था । मराठा संघ के विभिन्न सदस्य पुनः पूरी तरह से पेशवा की आज्ञा में आ गये थे । इस प्रकार मराठा राज्य के विषय में यह कहना कि यहाँ अब उसकी एकता और आज्ञाकारिता पहले कभी [illegible] न्यायसंगत प्रतीत होता है । नागपुर के भोसले बड़ौदा के गायकवाड़ गुत्ती के घोरपड़े प्रतिनिधि और बाबूजी नायक को कठोरतापूर्वक उचित मार्ग पर लाया गया । होल्कर के दीवान [illegible] षड्यन्त्रकारी गंगोबा को उदाहरणस्वरूप दण्ड दिया गया । तुकोजी होल्कर अहिल्याबाई तथा महादजी सिंधिया आदि पहले से भी अधिक पेशवा के पूर्णरूपेण भक्त हो गये । रघुनाथराव पर रोक लग जाने से अन्य व्यक्तियों में भी दलीय प्रवृत्ति का पूर्ण रूप से दमन हो गया । उसके समर्थकों अर्थात चिन्तो विट्ठल सदाशिव रामचन्द्र सखाराम बापू आदि सभी को सबक मिल गया । हरिपन्त फड़के तथा नाना फड़नीस सदृश व्यक्ति भी जो पेशवा के विश्वस्त सचिव थे अपने स्वामी से भय खाते थे ।[1]

वयोवृद्ध सखाराम बापू अपनी पुरानी दुष्ट कुचेष्टाओं से दूर रहा । १७७० ई० की शरद्‌ऋतु में इतना कार्य इकट्ठा हो गया था कि पेशवा अपनी गिरती हुई दशा के कारण उन्हें नहीं सँभाल सकता था । अत उसने सखाराम बापू को आज्ञा दी कि वह साधारण दैनिक कार्यों का निपटारा करे तथा प्रशासन के कार्यों में नारायणराव को दीक्षित करे । ब्राह्मणों को यह आज्ञा दी गयी कि

---

[1] रघुनाथराव के विद्रोह का मुख्य प्रेरक होने के कारण गंगाधर तात्या पर ३० लाख रुपये का मुक्ति दण्ड लगाया गया । इस भारी धन को चुकाने से बचने का प्रयास करने पर वह तीन वर्ष कैद में रखा गया । उस पर खुले दरबार में बहुत से बेंत लगाये गये जो कुछ व्यक्तियों के विचारानुसार उसे शोभा नहीं देते थे । परन्तु इस कार्य से प्रत्येक व्यक्ति भयभीत हो गया ।

वे पेशवा के स्वास्थ्य लाभ के लिए मदिरा मे प्राथना करें तथा ईश्वरीय कृपा की याचना करें। उसकी माता गोपिकाबाई ने कुछ धार्मिक कृत्या का प्रस्ताव किया, जिनका नाना फडनिस के व्यक्तिगत सरक्षण म अक्षरश पालन किया गया। मिरज स वापस लौटते समय कृष्णा नदी के तट पर पेशवा का स्वण स तुलादान किया गया। गोदावरी के तट पर कटोर म भी इसी प्रकार का तुलादान हुआ तथा यह स्वण राशि दरिद्रा म बाट दी गयी। जानोजी भोसल न, जिसन अभी हाल ही मे पशवा की अधीनता स्वीकार की थी पेशवा की बीमारी पर बहुत चिन्ता प्रकट की तथा १७७२ ई० की ग्रीष्म ऋतु मे वह विशेष रूप स रघुनाथराव की सजा को शिथिल कराने के निमित्त पशवा मे याचना करन पूना आया, क्योकि उस समय के विश्वासानुसार उसका ख्याल था कि कही बन्दी पशवा के स्वास्थ्य लाभ मे बाधा डालने के लिए अभिचार-कम का उपयोग न करे।[२]

जब पेशवा पूना म अत्यधिक बीमार था, उसकी मा भी नासिक मे बीमार हो गयी तथा उसन वाराणसी जाने की इच्छा प्रकट की ताकि वह तीथ स्थान मे अपने प्राणा का त्याग कर सके। लेकिन उससे अपने इस विचार को त्यागने की प्राथना की गयी क्योकि वह यात्रा के भार को सहन करने म समथ न थी। पेशवा न भी उससे मिलने की इच्छा प्रकट की, लेकिन न ता वह पूना ही आ सकती थी और न पशवा अपने स्वास्थ्य की सदिग्ध अवस्था म नासिक जा सकता था।[३] पूना म नारायणराव पेशवा के निकट उपस्थित रहता था लेकिन वह उसके व्यवहार स सन्तुष्ट न था क्योकि यह बालक चचलचित्त तथा चिडचिडे स्वभाव का था तथा बात-बात मे वृद्ध पुरुषा तथा परामशका का अपमान कर देता था। २८ अगस्त १७७१ ई० के एक पत्र म यह स्पष्ट है कि पेशवा नारायणराव को विभिन्न विषया पर उपदेश देता था जिनकी कटुता स इस बात का बोध होता है कि पशवा इस बालक के चरित्र स बहुत असन्तुष्ट था। पेशवा की चिकित्सा अनेक विशेषज्ञा द्वारा की गयी जिनमे स अन्तिम दिना म उसकी चिकित्सा करने वाला म स तीन के नाम अब भी उपलब्ध हैं। उनम स एक पूना का बाबा वैद्य था, एक यूरोपीय चिकित्सक भी था, जो शायद गोआ से आया था तथा गगाविष्णु

---

२ जानोजी का देहान्त ठीक इसके बाद १६ मई १७७२ ई० को तुलजापुर मे हो गया।

३ इस बात का उल्लेख मिलता है कि अप्रल १७७१ ई० म कुछ दिनो पूना म गोपिकाबाई उसक साथ रही थी।

नामक उत्तर भारत का एक प्रमुख वद्य था, जो जयपुर से आया था और जिसने दो वर्षों तक पेशवा की चिकित्सा की थी।

२ उसकी अंतिम अभिलाषा—१७७२ ई० की ग्रीष्म ऋतु के बाद पेशवा की दशा स्पष्ट रूप से बिगड गयी तथा उसके पुन स्वस्थ होने की कोई आशा न रही। उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह अपने जीवन का अत अपने कुल देवता गणेशजी के चरणों के निकट करे। अत उसको थेउर के प्रसिद्ध मन्दिर म ले जाया गया तथा वहाँ पर समस्त व्यक्तियो को आने और उसको देखने की आना दे दी गयी। यहाँ पर उसने चाचा रघुनाथराव को नारायणराव तथा अन्य मुख्य अधिकारियो सहित बुलवाया तथा उन सबकी उपस्थिति म एक पत्र लिखा गया जिसको उसका अंतिम इच्छापत्र कहते हैं। इस पर ३० सितम्बर १७७२ ई० की तारीख पडी है और जो सार रूप मे इस प्रकार है

१ 'मेरे समस्त ऋण को चुका दिया जाय, चाहे इसके लिए मेरे व्यक्तिगत धन म से भी जो गुरुजी (महादजी बल्लाल) के पास है क्यो न लेना पडे।

२ राजस्व कर को वसूल करने का ठेका देने की विधि प्रजा के लिए अति कष्टप्रद सिद्ध हुई है अत सूक्ष्म अन्वेषण के बाद इसका रूप परिवतन होना चाहिए।

३ प्रयाग तथा काशी के दोना तीथस्थानो को मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त करा लेना चाहिए। यह मेरे पूवजो की उत्कट इच्छा थी तथा अब इसके उपयुक्त समय भी आ गया है।

४ जितना शीघ्र हो सके मेरी माता की काशी जाने की इच्छा पूरी होनी चाहिए।

५ चाहे चाची पावतीबाई सती हो या नही लेकिन भाऊसाहब की श्राद्ध क्रिया आगामी फरवरी म अवश्य होनी चाहिए।

६ वार्षिक वृत्ति जो काशी के योग्य ब्राह्मणा को मिलती है वह यथा योग्य नियमपूवक मिलती रहनी चाहिए।

७ मेरे दाह सस्कार के सम्बन्ध म दो लाख ब्राह्मणा को भोज दिया जाय तथा प्रत्यक को आध आना दक्षिणा म दिया जाय।

८ दादा साहब को निर्वाह के लिए ५ लाख की जागीर दी जाय ताकि वह सन्तुष्ट रहें।

९ जब तक प्रशासन म कम स कम ५ लाख रुपय का वार्षिक कर प्राप्त होता रह श्रावण मास म दान देन की परम्परा प्रचलित रहनी चाहिए।

गणेशजी के सम्मुख सभी उत्तरदायी व्यक्तियों ने प्रतिज्ञा की कि वे इन समस्त इच्छाओं को कार्यान्वित करेंगे।

३ शान्तिपूर्ण मृत्यु—इस पत्र से स्पष्ट है कि वह धार्मिक वृत्ति का न्यायप्रिय व्यक्ति था। इसी कारण जब उसको मालूम हुआ कि उसकी मृत्यु सन्निकट है उसने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को अपने सम्मुख बुलाया तथा उससे सावधानीपूर्वक शान्ति के साथ विदा ली क्योंकि उसे अपने कर्तव्य का पालन कर लेने का पूर्ण सन्तोष था। जब वह अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था, उसकी पत्नी रमाबाई प्राय पूना में रहती थी तथा साध्वीशीला और पतिव्रता स्त्री की भाँति अक्सर अपने पति के दर्शन करती थी तथा उसके स्वास्थ्य लाभ के निमित्त घोर तप तथा व्रत करती थी। व्याधि के कारण पेशवा को प्राय मर्मच्छेदी पीड़ा होती, उस क्षण वह जोर जोर से कराहता तथा अपने सेवकों से कहता कि वे उसको समाप्त कर दें। व्याधि की अन्तिम अवस्था में वह भोजन के दृश्यमात्र से ही घृणा करने लगा, परन्तु जब वह भोजन नहीं करता था तो उसके समीप का कोई भी व्यक्ति अन्न ग्रहण न करता था, अत उनके लिए वह स्वल्प भोजन करने को विवश हो जाता था। अपने अन्तिम क्षण तक वह उतना ही कुशाग्रबुद्धि, सचेत तथा उग्र रहा जितना कि वह पहले था। अत उसकी निर्बल अवस्था में भी लोगों को उसके पास जाने का साहस नहीं होता था। सखाराम बापू तथा नाना फडनिस उसके अन्तिम दिनों में सदैव उसके पास रहे। उनको आज्ञा थी कि वे उसके बाद नारायणराव को पेशवा बनाकर स्वयं राज्यकार्य का संचालन करें। निर्दयी मृत्यु जो उसके समीप मुँह खोले खड़ी थी तथा जब उसके शरीर में हाथ पैर हिला सकने भर की भी शक्ति न थी उसमें निराशा अथवा दुख का एक भी लक्षण नहीं दिखायी देता था। यह विचार कि उसने अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया है—उसको अन्तिम समय तक धैर्य देता रहा। उसने रामशास्त्री तथा अपने दरबार के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अपने पास बुलाया और उन सबसे विदा ली। अन्तिम क्षण तक उसको चेतना बनी रही। बुधवार कार्तिक कृष्णा अष्टमी (१८ नवम्बर, १७७२ ई०) को प्रात ८ बजे उसका देहान्त हो गया।

४ पत्नी तथा माता—पेशवा की पत्नी रमाबाई ने अपने पति की चिता पर अपने प्राण उत्सर्ग करके उसके समान ही धैर्य का परिचय दिया। औध्वदैहिक संगीत तथा वादन के साथ वह जुलूस के रूप में मन्दिर से नदी तट के सन्निकट स्थित श्मशान तक पैदल गयी। वहाँ पहुँचकर वह अपने पति के सम्मुख धर्मशिला पर वीरता तथा प्रसन्नतापूर्वक खड़ी हो गयी। अपना समस्त

आभूषणों को जो वह पहने हुए थी उसने दान में दे दिया। नारायणराव को उसने दादा साहब की गोद में दिया तथा शान्त मुख से समस्त एकत्र जनसमूह को आशीर्वाद देती हुई अपने पति की चिता में प्रविष्ट हो गयी। उसके पुण्य स्मरण में स्थापित एक छोटा-सा प्रस्तर मन्दिर आज भी जिज्ञासु यात्री को इस प्रेम पाशबद्ध दम्पत्ति के पुण्य जीवन का स्मरण दिलाता है जिन्होंने कभी न अलग होने के निमित्त इस संसार का भार एक साथ त्याग दिया। जन साधारण के विश्वासानुसार वे रमा तथा माधव थे जो साक्षात् नारायण तथा उनकी सहधर्मिणी लक्ष्मी के ही अवतार थे।

मिरज के रामचन्द्र बल्लाल जोशी की कन्या रमाबाई का विवाह ६ या ७ वर्ष की अवस्था में ९ सितम्बर १७५३ ई० को माधवराव के साथ हुआ था तथा उसने २६ वर्ष की अवस्था में इस जीवन का त्याग कर दिया। वह सुन्दर स्वस्थ तथा पुष्ट थी। उसके कोई सन्तान न थी। वह सती थी अपने पति का सदैव आदर करती थी तथा उससे भय मानती थी। वह उसके राज्यकार्यों में कभी हस्तक्षेप नहीं करती थी। वह दक्षिण के तीर्थस्थानों की प्राय यात्रा करती रहती थी।

माधवराव की माता गोपिकाबाई दृढ़ इच्छा वाली अनुभवी चतुर तथा आदर्शभूत महिला थी तथा उसने अपने श्वसुर के समय से मराठा राज्य के अनेक उत्थान पतन देखे थे। ऐसा मालूम होता है कि माधवराव अपने पिता की अपेक्षा अपनी माता के अधिक अनुरूप था। अपने पुत्र के पेशवा-पद के प्रथम एक या दो वर्षों तक उसने राज्यकार्य का निर्देशन किया था तथा महत्त्वशाली प्रश्नों पर अपना परामर्श दिया था। परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि उसके हस्तक्षेप के कारण दरबार में दलीय भावना उत्पन्न हो रही है उसने पूना से पूर्णत विदा ले ली तथा स्थायी रूप से गोदावरी पर स्थित नासिक के समीप गंगापुर में निवास करने लगी। यहाँ पर उसने १७८८ ई० में अपनी मृत्यु तक अपने शेष जीवन को पूजा पाठ में व्यतीत किया। उसको अपने व्यय के लिए १२ हजार की वार्षिक वृत्ति मिलती थी। यद्यपि माता तथा पुत्र में प्राय भेंट न हो पाती थी परन्तु उनमें प्राय नियमपूर्वक पत्र व्यवहार होता रहता था जिससे उनका घनिष्ठ प्रेम तथा पारस्परिक सम्मान व्यक्त होता है। माधवराव प्राय अपने हाथ से बालबोधलिपि में लिखकर छोटे बड़े प्रत्येक विषय का वृत्तान्त अपनी माता को भेजता जिसका सम्बन्ध केवल उसके व्यक्तिगत स्वास्थ्य से ही न होकर राजनीतिक महत्त्व की घटनाओं, युद्धों सन्धिपत्रों और अधिकारियों तथा सम्बन्धियों के आचरण से भी होता था। यद्यपि वह संकटकाल में प्राय उससे परामर्श लेता, परन्तु स्वयं

अपने विवेक के विरुद्ध उसको स्वीकार न करता। एक बार उसकी माँ ने उससे अनुरोध किया कि अकाल तथा अन्नाभाव के कारण नासिक को जिला यातायात कर से मुक्त कर दिया जाये, परन्तु पेशवा ने इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि एक जिले में कर मुक्ति की आज्ञा दी गयी, तो समस्त अन्य जिलों में भी वही कार्य करना होगा। गोपिकाबाई रघुनाथराव से कम से कम १० वर्ष बड़ी थी। वह बाहरी मन से उसका सम्मान करता तथा भय मानता था, यद्यपि वह (गोपिकाबाई) उसकी दुष्ट तथा स्वार्थी वृत्ति के कारण उससे घृणा करती थी।

५ पेशवा का चरित्र—सर्वसाधारण की सम्मति में चरित्र के विषय में माधवराव समस्त पेशवाओं में महान है। उसमें ईमानदारी न्यायप्रियता क्षिप्रकारिता, अधीनस्थ जनों के कल्याण की भावना तथा स्वतन्त्र विवेक शक्ति आदि सभी एक अच्छे शासक के गुण मौजूद थे जिनके अनुसार वह बिना भय तथा पक्षपात के कार्य करता था। यदि हम इन सभी बातों का ध्यान रखें कि १६ वर्ष की अल्पायु में ही उसको एक सुविस्तृत साम्राज्य के जटिल कार्यों के प्रबन्ध का भार ग्रहण करना पड़ा था तथा लगभग ११ वर्षों में ही उसने अपने तीन महान पूर्वजों के मुख्य उद्देश्यों को पूर्ण कर दिखाया जिनमें से अनेक वर्ष अनावश्यक रूप से गृह-युद्ध में तथा क्षय रोग से युद्ध करने में व्यर्थ व्यतीत हो गये थे, तो उसकी सम्पूर्ण शक्तियों का सही अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में वह मराठा इतिहास का प्रमुख व्यक्ति तथा अपने राष्ट्र का उज्ज्वल रत्न था। उसमें बालाजी विश्वनाथ की राजनीतिज्ञता थी यद्यपि वीरता में उसका स्थान बाजीराव के बाद ही था। उसके चरित्र में दृढ़ता थी जिसका उसके पिता में पूर्ण अभाव था। उसने उस कलंक को धो डाला जो पानीपत की विपत्ति के कारण मराठा जाति पर लग गया था। उसने मराठा ऐश्वर्य को उसके उत्कर्ष की चरमसीमा तक पहुँचा दिया था, जिसके कारण यह कहना उचित ही है कि पेशवा की अकाल मृत्यु पानीपत की विपत्ति की अपेक्षा अधिक घातक सिद्ध हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार ग्राण्ट डफ ने ठीक ही कहा है—'इस श्रेष्ठ राजकुमार की अकाल मृत्यु की अपेक्षा पानीपत की रणभूमि मराठा साम्राज्य के लिए अधिक घातक न थी।'

पानीपत के युद्ध में पेशवा परिवार के तीन मुख्य व्यक्तियों अर्थात भाऊ साहब विश्वासराव तथा प्रथम दो के शीघ्र पश्चात ही नाना साहब की मृत्यु होने से जनसाधारण में यह विश्वास हो गया था कि अब मराठा राज्य के पतन के दिन आ गये हैं लेकिन माधवराव के नेतृत्व में अल्पकाल में ही योग्य नेताओं की एक नवीन पीढ़ी उत्पन्न हो गयी, जिसने उन सभी व्यक्तियों के

प्रवीण व्यक्ति था। वह उस त्रिमूर्ति का एक प्रमुख स्तम्भ था जिसके अन्य दो स्तम्भ गोविन्द पन्त तथा माधवराव थे तथा जिनका उदार विशुद्ध चरित्र तथा निष्पक्ष व्यवहार के कारण छोटे बड़े सभी आदर करते थे। अधिकांश सरदार महादजी सिन्धिया तुकोजी होल्कर अहिल्याबाई दमाजी गायकवाड तथा उसके पुत्र पटवर्धनों का बड़ा परिवार तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति आदि सभी मराठा राज्य के अनन्य भक्त हो गये। इस पेशवा की मृत्यु के समय राज्य की क्या आय थी इसके विभिन्न अनुमान लगाये गये हैं, जिनके अनुसार उसकी आय उस समय के गिनती में लगभग १० करोड़ रुपये वार्षिक थी।

अपने अल्प जीवनकाल के आरम्भ में ही माधवराव को जिन कठिन परीक्षाओं तथा कष्टों का सामना करना पड़ा था उन्होंने उसे मराठा प्रशासन के ममस्थल का पता लगाने के लिए विवश कर दिया। शाहू के समय से मराठा शासन व्यवस्था का विकास एकतन्त्रीय रूप की बजाय संघीय रूप में ही अधिक हुआ था। वह केन्द्रीय शासन के अधीन राज्यों का एक शिथिल संघ था। इस संघ में सामन्तों के अधिकारों कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों की कभी स्पष्ट परिभाषा नहीं की गयी थी न उनका कठोरता से पालन ही किया गया था। इस प्रकार यह अव्यवस्थित तथा दुर्भाग्यपूर्ण उत्तरदायित्व माधवराव को अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था तथा उसको इस बात का शीघ्र अनुभव हो गया कि जागीरदार लोग या तो केन्द्रीय सत्ता का स्पष्ट अनादर करते थे या राज्य के शत्रुओं का साथ देते थे। योग्य तथा विश्वस्त परामर्शकों की सहायता से धीरे धीरे वह इस दोष के निराकरण में सफल हो गया। इस कार्य के लिए उसे अपराधियों को दण्ड देना पड़ा। शासन में उसको दृढ़ता तथा कामचलाऊ एकत्व स्थापित करना पड़ा। यह महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति न केवल उसके युद्धों तथा प्रशासनीय कार्यों द्वारा व्यक्त होती है अपितु उस ईर्ष्या द्वारा भी जो उसकी वर्तमान शक्ति के कारण अंग्रेजों के मन में उत्पन्न हो रही थी। १० मार्च १७७१ ई० को मद्रास की कौंसिल ने लिखा—"उत्तर तथा दक्षिण में मराठों के वर्तमान आचरण से, तथा माधवराव की विलक्षण बुद्धि उत्साह तथा महत्त्वाकांक्षा से हमको यह सन्देह होता है कि उनकी योजनाएँ केवल चौथ संग्रह की नहीं हैं, अपितु वे समस्त प्रायद्वीप को अपने अधीन करना चाहते हैं।"[५]

६ **विदेशी प्रशंसा**—सर रिचर्ड टेम्पुल ने, जो कभी भी पूर्वी चीजों

---

[५] डा० सिन्हा कृत हैदरअली पृ० १८७।

का प्रशसक नही रहा, पशवा के चरित्र के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रामाणिक विवरण दिया है

'कुछ चरित्रा म जिनका चित्रण अभी हुआ है शक्ति साहस, उत्साह देश भक्ति आदि द्वितीय श्रेणी क सभी गुण पाये गये है लकिन उनम विशुद्ध, उत्कृष्ट तथा उन्नत प्रकार के सद्गुणा का सवथा अभाव पाया गया है। इसक विपरीत माधवराव म इस प्रकार के सभी गुण मौजूद थे। कठिन अवसरा पर उसने न केवल अपनी प्रतिभा का परिचय दिया अपितु गवशील चेतना का भी उसन अपन निकटवर्ती व्यक्तिया क समक्ष एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने अपन मत्रियो का निर्वाचन विवकपूवक किया जिनम से कुछ न अपन भावी परिणामा द्वारा उसके निर्वाचन को न्यायसगत सिद्ध कर दिया और इस समय जबकि भ्रष्टाचार चारो ओर फैला हुआ था उसन शासन काय मे शक्ति द्वारा सत्य का प्रतिपादन किया। यदि उच्च स्थानो म उस कही जरा सा भी भ्रष्टाचार दिखायी पडता तो उसकी निन्दा वह इतनी स्पष्टता स करता कि उन लोगो को भी आश्चय होता जो उस भ्रष्ट युग म रहत थ। उसने विवश होकर ही अपन चाचा को उन स्थानो स दूर रखा जहा पर उसके हानि पहुँचाने की सम्भावना थी, फिर भी उसने अपन इस सम्बन्धी क प्रति अत्यन्त आदर प्रकट किया। एक दफा प्रयाण क समय जब उसक दो अधिकारी मल्ल-युद्ध के द्वारा किसी झगडे को निपटाना चाहते थे उसन उन दोनो स कहा कि तुम म स जो भी पहले इस दुर्ग स्थान पर चढकर राष्ट्रीय ध्वज को परकोटे पर फहरा देगा, मेरा निणय उसी के पक्ष म होगा। इसके अतिरिक्त वह वित्तीय, न्याय सम्बन्धी तथा सामान्य विभागो का पूण ध्यान रखता था। उसके समय के सभी लोग इस बात को भलीभाँति जानते थ कि उनका राजा राज्य के सभी कार्यों म पूण दक्ष है तथा पीडित जनता का मित्र है और अपराधियो का कट्टर दुश्मन है। उसने बहुत-स उत्तम व्यक्तियो को चुनने का प्रयत्न किया जो उसकी कल्याणकारी आज्ञाओ का पालन कर सक। अपनी विचारशीलता तथा आदर भाव म वह अद्वितीय था तथा य यदाकदा उसके कार्यों म प्रकट होते रहते थ। उदाहरणाथ उसन शिवाजी क पुत्र तथा उत्तराधिकारी द्वारा अश्वारोही दल के नेता सन्ताजी घोरपडे की हत्या के बावजूद एक पीढ़ी के बाद भी उसक वशजो के प्रति पूण सहानुभूति दिखायी अर्थात शवयावस्था म भी वह निरन्तर न्याय का पालन करता था। वह सदव युद्ध तथा राजनीति म व्यस्त रहा। उसक समक्ष अनेक काय थ, अर्थात उसे दक्षिण क निजाम स अपनी रक्षा करनी थी मसूर क हैदरअली का निराकरण करना था तथा पानीपत की उस महान विपत्ति का समाधान करना

था जिसके शोक में उसके पिता का देहान्त हो गया था। नागरिक प्रशासक के रूप में तथा युद्धोचित कार्यों में वह अपने पूर्वजों से किसी भी प्रकार कम न था। उसके सहायक जब पानीपत की विपत्ति का सामना कर रहे थे उसके स्वास्थ्य ने, पहले से कुछ अच्छा न था जवाब दे दिया। अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने चाचा को शपथ दी कि वह उसके बाद पदारूढ़ होने वाले बालक पेशवा की रक्षा करे ताकि शासक परिवार में फूट न पड़ जाय तथा साम्राज्य में गड़बड़ी न फैलने पाय। उसको क्या उत्तर प्राप्त हुआ, हमको ज्ञात नहीं है परन्तु उसका देहान्त सुखद आशा की दशा में हुआ, जो बाद में निर्मूल सिद्ध हुई। मृत्यु से कुछ समय पूर्व अपनी जाति के स्वभावानुसार वह पूना के समीप एक छोटे से गाँव में चला गया जहाँ २९ वर्ष की अवस्था में उसका शान्तिपूर्वक देहान्त हो गया। मराठे इस समय भी उस गाँव को अपनी ऐतिहासिक भूमि में एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान मानते हैं। उसकी निःसन्तान विधवा जिससे उसका प्रगाढ़ प्रेम था उसके साथ सती हो गयी, जिससे उसका स्वयं का दुःख शान्त हो जाये तथा साथ ही साथ अपने पति की आज्ञा का भी पालन हो सके। यह उन लोगों का जीता जागता उदाहरण है जो अपने संयुक्त जीवन में एक दूसरे के प्रति पूर्ण निष्ठावान तथा सन्तुष्ट होते हैं तथा जिनके लिए मृत्यु कोई वियोग उपस्थित नहीं करती।

वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दू शासक माधवराव ने अपने अल्प जीवनकाल में विभिन्न प्रकार की अनेक असुविधाएँ तथा प्रलोभनों के होते हुए भी इतना महान कार्य कर दिखाया। उसने अपनी योग्यता केवल उन कार्यों में ही प्रकट न की जो युवावस्था में विलक्षण पुरुषों द्वारा किये जा सकते हैं परन्तु उन कार्यों में भी दिखायी जिनको साधारणतः प्रौढ़ अनुभव की आवश्यकता होती है। वास्तव में एक आदर्श शासक के रूप में वह सर्वदा सम्मान की दृष्टि से देखा जायगा तथा उसकी गणना उन महान पुरुषों में होगी जिनको हिन्दू जाति समय समय पर उत्पन्न करती रही है।[१]

किन्केड ने लिखा है—'देशी तथा विदेशी शत्रुओं द्वारा डराये जाने पर भी माधवराव ने अपने सभी शत्रुओं पर अपूर्व विजय प्राप्त की। लेकिन उसे इन कोरी विजयों से सन्तोष नहीं हुआ, अर्थात अपने शत्रुओं पर विजयी होकर उसने अपने जीवन का परिश्रम से प्रजा की दशा सुधारने में व्यतीत किया। उसके अविराम निरीक्षण तथा परिश्रम के उदाहरण से प्रत्येक विभाग को प्रेरणा प्राप्त हुई। उसका गुप्तचर विभाग दोषरहित था तथा इसके कारण

---

१ ओरिएण्टल एक्सपेरिएंस पृ० ३९३ ३९६।

अपराधी कितनी भी दूर क्यों न हो शायद ही कभी दण्ड से बच सकता था। पेशवा की सेनाएँ युद्ध के निमित्त हमेशा पूर्ण सुसज्जित रहती थी, क्योंकि समस्त सैनिक संगठन उसके अपने नियन्त्रण में था। यद्यपि वह शीघ्र रुष्ट हो जाता था परन्तु क्षमा भी वह उतनी ही जल्दी कर देता था। इस प्रशंसनीय शासक में एक कटु आलोचक केवल एकमात्र दोष यह निकाल सकता है कि उसने अपने बहूमूल्य जीवन को अपनी प्रजा की भलाई के निमित्त घोर तथा अविरत परिश्रम करके बहुत छोटा कर दिया।

७ उपाख्यान—महाराष्ट्र में अब भी इस पेशवा के नैतिक जीवन से सम्बन्धित उपाख्यानों एवं किंवदन्तियों को बड़े प्रेम के साथ स्मरण किया जाता है। वे मूलरूप से निस्सन्देह सत्य हैं तथा उनसे हमको उसके व्यक्तित्व का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। कहा जाता है कि आरम्भ में जब पेशवा ने अपना ज्यादातर समय एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण की भांति प्रार्थना तथा पूजापाठ में व्यतीत करना शुरू कर दिया तो रामशास्त्री ने उससे उपालम्भपूर्वक कहा कि वह अपने लौकिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर रहा है। उसने उसको परामर्श दिया कि यदि उसकी इच्छा इस प्रकार धर्माभिमानी बनने की है तो वह वाराणसी को चला जाये और वहां पर अपने जीवन को व्यतीत करे। पेशवा ने इन सभी बातों को बड़ी शांति तथा कृतज्ञतापूर्वक सुना और समझा तथा तुरन्त ही अपने इस कार्य को बन्द कर दिया। वास्तव मे इसमे कोई सन्देह नही कि उसका स्वभाव क्रोधी था परन्तु उससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उसको अन्याय तथा अत्याचार से घृणा थी तथा गलतियो को सुधारने के लिए वह अधीर हो जाता था। इस कारण से लोग शीघ्र उससे डरने लगे थे तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करने लगे थे।

जब माधवराव को मालूम हुआ कि उसकी मृत्यु सन्निकट है उसने धीरे धीरे राज्य के उन गुप्त पत्रों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया जिनका खुला सम्बन्ध उसके अधिकारियों तथा सेवकों के बीच षडयन्त्रों से था। जब सखाराम बापू को इस बात का पता चला, तो वह उसके इस कार्य का विरोध करने के लिए उसके पास गया। इस पर पेशवा ने जो इस समय अपनी शय्या से हिल भी नही सकता था सखाराम बापू से अपने पास की पेटी में एक पत्र वेष्टन उठाने के लिए कहा। जब बापू इस वेष्टन को लाया पेशवा ने उसको आज्ञा दी कि वह उसको खोलकर पढ़े। बापू के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब उसको पता चला कि उस वेष्टन के पत्रों का सम्बन्ध उसके स्वयं के गुप्त षडयन्त्रों तथा योजनाओं से था, जो उसको अपराधी ठहराती थीं तथा जिनके कारण उसको दण्ड मिलना चाहिए था। पेशवा के पास बापू के

अदालतों में प्रमाण थ परन्तु उनको कभी भी इस बात का ध्यान न आने दिया कि वे किस प्रकार उनका पक्ष ले रहे हैं।

माधवराव प्रत्येक विवरण का बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करता, पर जिसका कारण अब भी यह स्वामी प्रशंसा का पात्र है। पूना में वह अनधिकृत भवनों के निर्माण के विषय में पूरी जानकारी रखता था। भवनों दर्शनार्थी की सफाई तथा उनके भवन की सुविधाओं का वह स्वयं व्यक्तिगत ध्यान रखता था। कर्नाटक से वह पूछता कि पूना में नाना फड़नीस किस प्रकार का व्यवहार कर रहा है अर्थात् स्वामी की तरह या सेवक की तरह ?* वह पूछता कि वाराणसी में बापूजी नायक के संबंध से जो लघु ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं उनको पूना दान देने का भी क्या प्रबन्ध किया है ? उसके दैनिक हिसाबों में आप को छोटी छोटी रकमों का उल्लेख होता था जैसे (॥) का तेल जो कनिष्ठों को दिया गया। वह स्वयं उन पत्रों तथा उत्तरों का चयन करता था जो उसे निजामअली तथा उसके मन्त्री को गाजीउद्दीन को अथवा गोवा से आदि किसी राजदूत को भेंट करते होते थे। वह गबन के अभियोगों का बड़ा सूक्ष्मता पूर्वक निरीक्षण करता था। उन अधिकारियों में बहुत भ्रष्टाचार था जो जागीरदारों तथा सरदारों की सैनिक-मुलाहजा उनकी योग्यता उनके घोड़ों की जाति उनकी जीनें, अस्त्र शस्त्र तथा वेशभूषा का निरीक्षण करने भेजे जाते थे। असल बात यह थी कि घूस मिलने पर यह निरीक्षक इन लोगों के पक्ष में प्रमाणपत्र दे देते थे। जब शिकायतें आतीं पेशवा अपने विश्वस्त अधिकारियों को जिनमें गुरुजी नाना फडनीस तथा नारो अप्पाजी प्रमुख हैं इन छल-कपटों का पता लगाने के लिए भेजता था। जब ये लोग निरीक्षण के लिए पहुँचते समस्त अधिकारीमण्डल भयभीत हो जाता तथा भावी दण्ड की आशंका से काँप उठता। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस पेशवा के शासन में, उसके अन्य समकालीन शासकों के शासन की अपेक्षा भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी को मिटाने के लिए अधिक सार्थक कदम उठाये गये थे।

पेशवा किसी प्रकार भी अपनी प्रजा को दुखी नहीं देखना चाहता था। सैन्य प्रयाण से जब उनकी क्षति होती, तो वह उन्हें विस्तार धन दे देता था। अपने दौरे में वह स्वयं लोगों से उनका दुख-दर्द पूछता तथा उसके ध्यान में जो भी अन्याय आता, वह उसको तुरन्त दूर करने का प्रयत्न करता। जब राजनीतिक उपद्रव होते अथवा वर्षा न होती राजस्व कर में छूट दे दी

---

* पेशवा दफ्तर संग्रह, खण्ड ३६, पृ० ६४। इस पत्र से पेशवा का चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

जाती थी। कोतवाल के कर्तव्य तथा नियम जिनके अनुसार उसको नगरों का प्रबन्ध करना चाहिए, पेशवा के भेजे हुए पत्रों मे स्पष्ट लिखे हुए मिले हैं जो अब 'पेशवा डायरियों' मे मुद्रित कर दिये गये हैं।

इस पेशवा की मृत्यु से मराठा इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ होता है जो प्रस्तुत पुस्तक के अन्तिम खण्ड का विषय होगा।

अपराधा के प्रमाण थ, परन्तु उसने कभी भी इस बात का पता न चलने दिया कि वे किस प्रकार तथा कहाँ से उसके पास पहुँचे।

माधवराव प्रत्येक विवरण का बडी सूक्ष्मतापूवक निरीक्षण करता था, जिसके कारण अब भी वह हमारी प्रशसा का पात्र है। पूना म वह अनधिकृत भवनो के निर्माण के विषय म पूर्ण जानकारी रखता था। अपने परिचारको की सख्या तथा उनके वेतन की सूचियो को वह स्वय ध्यानपूवक देखता था। कर्नाटक से वह पूछता कि पूना म नाना फडनिस किस प्रकार का व्यवहार कर रहा है अर्थात स्वामी की तरह या सेवक की तरह ?* वह पूछता कि बारामती म बापूजी नायक के सस्थान से जो पशु प्राप्त हुए हैं उनको भूसा दाना देने का भी क्या प्रबन्ध किया है ? उसके दनिक हिसाबो म व्यय की छोटी-छोटी रकमो का उल्लेख होता था जसे १।।) का तेल जो कर्णिका को दिया गया। वह स्वय उन वस्त्रो तथा उपहारो का चयन करता था, जो उसे निजामअली तथा उसकी मण्डली को, गाजीउद्दीन को अथवा गोआ से आये किसी राजदूत को भेंट करने होते थे। वह गबन के अभियोगो का बडी सूक्ष्मता पूवक निरीक्षण करता था। उन अधिकारियो म बहुत भ्रष्टाचार था, जो जागीरदारो तथा सरदारो की सनिक-सुसज्जा, उनकी योग्यता, उनके घोडो की जाति, उनकी जीनें अस्त्र शस्त्र तथा वेशभूषा का निरीक्षण करने भेजे जाते थे। असल बात यह थी कि घूस मिलने पर यह निरीक्षक इन लोगो के पक्ष मे प्रमाणपत्र दे देते थे। जब शिकायतें आती पेशवा अपने विश्वस्त अधिकारियो को जिनमे गुरुजी, नाना फडनिस तथा मोरो अप्पाजी प्रमुख हैं, इन छल-कपटो का पता लगाने के लिए भेजता था। जब ये लोग निरीक्षण के लिए पहुँचते समस्त अधिकारीमण्डल भयभीत हो जाता तथा भावी दण्ड की आशका से काँप उठता। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस पेशवा के शासन मे उसके अन्य समकालीन शासको के शासन की अपेक्षा, भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी को मिटाने के लिए अधिक साथक कदम उठाये गये थे।

पेशवा किसी प्रकार भी अपनी प्रजा को दुखी नही देखना चाहता था। सैन्य प्रयाण से जब उनकी क्षति होती, तो वह उन्हें निस्तार धन दे देता था। अपने दौरे म वह स्वय लोगो से उनका दुख दद पूछता तथा उसके ध्यान म जो भी अन्याय आता, वह उसको तुरन्त दूर करने का प्रयत्न करता। जब राजनीतिक उपद्रव होते अथवा वर्षा न होती, राजस्व कर म छूट दे दी

---

* पेशवा दफ्तर सग्रह खण्ड ३६ पृ० ६४। इस पत्र से पेशवा का चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

जाती थी। कोतवाल के कर्तव्य तथा नियम जिनके अनुसार उसको नगरी का प्रबन्ध करना चाहिए, पेशवा के भेजे हुए पत्रों में स्पष्ट लिखे हुए मिले हैं जो अब 'पेशवा डायरियाँ' में मुद्रित कर दिये गये हैं।

इस पेशवा की मृत्यु से मराठा इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ होता है जो प्रस्तुत पुस्तक के अंतिम खण्ड का विषय होगा।